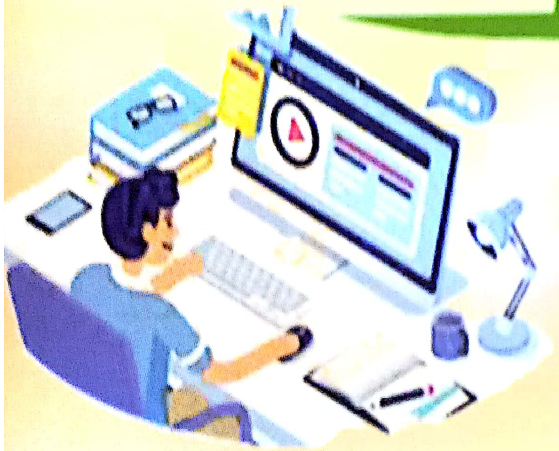
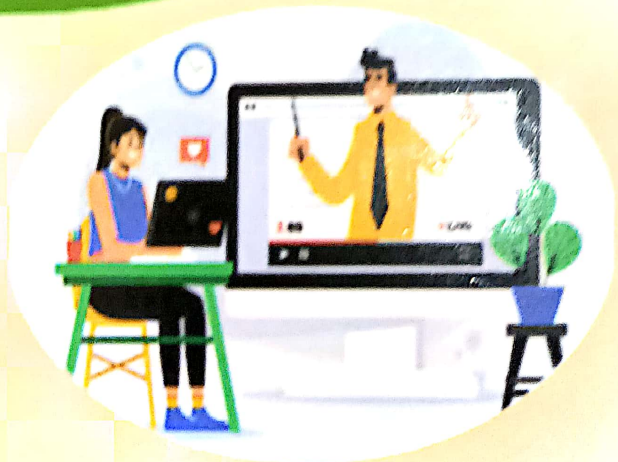
आज़ादी का अमृत महोत्सव

शिक्षणशास्त्र, नवाचार व शिक्षा : वैश्विक परिप्रेक्ष्य में







श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय,

केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर - 302031

Email : ctejamdoli@gmail.com

Website : shriagrasenpgttcollegecte.com

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशक :

शिवम् बुक हाउस (प्रा.) लिमिटेड

टी–13, एसजीएम हाउस

संघीजी का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर

पुस्तक प्राप्ति स्थल :

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय,

केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर

©सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN : 978-93-84524-62-3

संस्करण : प्रथम, 2023

टाईप सैटिंग एवं मुद्रण :

श्री पदम कम्प्यूटर सेन्टर, जयपुर

Scanned with OKEN Scanner

शिक्षण अधिगम में सूचना एवं संचार तकनीकी

डॉ. अमिता जैन*

प्रस्तावना–

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीके से ज्ञान प्राप्त करने की कला मनुष्य में है। जब कोई विद्यार्थी किसी कारणवश प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, तब वह अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करता है। अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करने के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे– पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, चित्र, फोटोग्राफ, फिल्म, वीडियो, रेडियो, टेपरिकॉर्डर, कम्प्यूटर इत्यादि। उपर्युक्त माध्यमों से सूचना के आधार पर विद्यार्थी किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु विशेष के बारे में जानने का प्रयास करता है। जितने भी सूचना के माध्यम है उन सभी से ठीक प्रकार से सूचना प्राप्त करना और सूचना का ठीक समय पर प्रयोग करना ही सूचना तकनीकी है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी एक दूसरे से सम्बन्धित है क्योंकि सूचना के अभाव में सम्प्रेषण का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और सम्प्रेषण के बिना सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र गति से नहीं पहुँचाया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूचना एवं संचार तकनीकी एक विस्तृत अवधारणा है, जिसमें सूचना एवं संचार प्रक्रिया और उसके प्रबंध सम्बन्धी सभी क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। कम्प्यूटर हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और इंटरनेट सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के आधारभूत साधन है, जिनका प्रयोग डिजाइन तैयार करने, उन्हें विकसित करने, उनके संचालन अथवा प्रबंध के कार्य आदि में किया जाता है। इस नई सदी में सूचना एवं संचार तकनीकी का वर्चस्व होगा। इस तकनीकी ने आज सम्पूर्ण विश्व को एक वैश्विक गांव में परिवर्तित कर दिया है।

---

* सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, नागौर

Scanned with OKEN Scanner

आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियाँ– इसमें हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, मीडिया तथा सम्प्रेषण प्रणालियों का मिश्रण है। इनमें से प्रमुख हैं–

- डिजिटल वीडियो कैमरा
- मल्टीमीडिया पर्सनल कम्प्यूटर
- एलसीडी प्रोजेक्टर
- कम्प्यूटर डेटाबेस
- पावर पॉइंट सिमुलेशन
- डिजिटल लाइब्रेरी
- ई–मेल, इंटरनेट एवं वर्ल्ड वाइड वेब
- वीडियो–टेक्स्ट, टैली–टेक्स्ट, इण्टरएक्टिव वीडियो–टेक्स्ट, इण्टरएक्टिव रिमोट इंस्ट्रक्शन।
- दृश्य–श्रव्य कॉन्फ्रेंसिंग
- अंतःक्रियात्मक रिमोट अनुदेशन
- आनासी कक्षा

शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का क्षेत्र–

1. **शैक्षिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण**– इस तकनीकी की सहायता से शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। इन उद्देश्यों को निर्धारित कर विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन कर उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।

2. **शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए युक्तियों का चयन**– इस तकनीकी द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए प्रयोग की जाने वाली नवीन युक्तियों का चुनाव एवं विकास आसानी से किया जा सकता है। शिक्षण प्रतिमानों का ज्ञान, विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान एवं चयन करने में सूचना एवं संचार तकनीकी सहायता कर सकती है।

3. **दृश्य–श्रव्य सामग्री का चुनाव, उत्पादन और उपयोग**– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए विभिन्न प्रकार की दृश्य– श्रव्य सामग्री का चयन, उत्पादन और उपयोग सूचना एवं संचार तकनीकी द्वारा किया जा सकता है। दृश्य–श्रव्य सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों को बहुत लाभ होता है।

4. **मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण में सहायक**– सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली तभी सफल मानी जाती है जब उसका मूल्यांकन सही समय पर हो। मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों और शिक्षकों की अधिगम और शिक्षण विधियों की सफलता के बारे में जांच की जाती है। और त्रुटियाँ होने पर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी द्वारा मूल्यांकन या पृष्ठपोषण विधियों का चयन, विकास तथा उनकी उपयोगिता सम्भव हो सकती है।

5. **शिक्षक प्रशिक्षण में भूमिका**– सूचना एवं संचार तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसके लिए शिक्षण अभ्यास प्रतिमानों की रचना, सूक्ष्म शिक्षण, अनुकरणीय शिक्षण एवं प्रणाली उपागम का उपयोग किया जाता है।

शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग–

1. **कार्य कुशलता में वृद्धि**– विषय को कुशलतापूर्वक स्पष्ट करने का अवसर आई.सी.टी. के माध्यम से मिलता है। छात्र भी पढ़ने के लिए पूर्ण रूप से तैयार होते हैं और विषय को पूरे ध्यान से समझने की कोशिश करते हैं, जिससे शिक्षक की कुशलता का आभास होता है।

2. **सरलता**– इससे शिक्षण कार्य सरल हो जाता है। किसी भी विषय से सम्बन्धित ज्ञान को सी.डी., रेडियो, कम्प्यूटर, स्मार्ट बोर्ड आदि के माध्यम से विद्यार्थी सरलता से अर्जित कर रहे हैं।

3. **गुणात्मक उन्नति में सहायक**– इस तकनीकी से पढ़ाने के स्तर में तरह–तरह के प्रयोग हो रहे हैं। शिक्षण में गुणात्मक सुधार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

4. **समय की बचत**– पढ़ाने व अध्ययन कार्य कराने में समय की बचत अधिक हो रही है। आज शिक्षण में तरह–तरह के अनुप्रयोग जैसे– सी.डी., रिकॉर्डर, स्मार्ट बोर्ड, वर्चुअल क्लास आदि के माध्यम से शिक्षण कार्य में समय की बचत हो रही है।

5. **विशिष्टीकरण में सहायक**– किसी विषय विशेष को खास तरह से उजागर करने या कक्षा में किसी विशिष्ट विषय को पढ़ाने के लिए तकनीकी का पूर्ण रूप से सहयोग लिया जा रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

6. **दूरस्थ शिक्षा में सहायक**– उपयुक्त उपकरणों द्वारा घर बैठे छात्र इनका लाभ ले रहे हैं अर्थात् सूचना एवं संचार तकनीकी ने दूरस्थ शिक्षा में बहुमूल्य योगदान दिया है।

सूचना एवं संचार तकनीकी का शैक्षिक महत्त्व–

1. **शिक्षक के लिए शिक्षण कार्य में महत्त्व**– शिक्षण कार्य शिक्षा जगत में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। वर्तमान में जो शिक्षक सूचना एवं संचार तकनीकी का ज्ञाता है, वह अपने कार्य क्षेत्र में इसको व्यवहार में लाता है। इससे शिक्षक अपने छात्रों को ठीक से समझा सकता है तथा अध्ययन कार्य को सफल बना सकता है साथ ही छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन ला सकता है।

2. **अधिगम कार्य में महत्त्वपूर्ण**– अधिगम के क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीकी अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन कर रही है, जैसे– छात्रों को उनकी क्षमता के अनुसार सीखने के सिद्धांतों का ज्ञान कराती है, विषय सामग्री को धरोहर के रूप में स्थायी बनाती है। वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करते हुए नवीन प्रतिमान स्थापित करने में यह तकनीकी विशिष्ट महत्त्व रखती है।

निष्कर्ष–

आधुनिक समय में अध्यापक, छात्र एवं शिक्षा के क्षेत्र से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति सूचना एवं संचार तकनीकी के अभाव में अपने ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा को तृप्त नहीं कर सकता है। इसका प्रयोग वर्तमान में व्यापकता को ग्रहण करता जा रहा है। हम देखते हैं कि आज सीखने के सिद्धांतों की अपेक्षा शिक्षण तकनीकी के नियमों एवं सिद्धांतों को अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

❑

Scanned with OKEN Scanner

EDUCATION

VARIOUS DIMENSIONS

शिक्षा : विविध आयाम



DR. HARISH KUMAR YADAV

EDUCATION: VARIOUS DIMENSIONS

शिक्षा: विविध आयाम

EDUCATION: VARIOUS DIMENSIONS

शिक्षा: विविध आयाम

EDITED BY

Dr. Harish Kumar Yadav

red'shine
PUBLICATION
INDIA

EDUCATION: VARIOUS DIMENSIONS

by: Dr. Harish Kumar Yadav

■

RED'SHINE PUBLICATION PVT. LTD.

Headquarters (India): 88-90 REDMAC, Navamuvada,

Lunawada, India-389 230

Contact: +91 76988 26988

Registration no. GJ31D0000034

In Association with,

RED'MAC INTERNATIONAL PRESS & MEDIA. INC

India | Sweden | UK

■

Text © *Authors*, 2023

Cover page ©REDSHINE Studios, Inc, 2023

■

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or used in any form or by any means- photographic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information storage and retrieval systems- without the prior written permission of the author.

■

ISBN: 978-93-5879-606-3

ISBN-10: 93-5879-606-5

DIP: 18.10.9358796065

DOI: 10.25215/9358796065

Price: ₹ 700

November, 2023 (First Edition)

■

The views expressed by the authors in their articles, reviews etc. in this book are their own. The Editor, Publisher and owner are not responsible for them. All disputes concerning the publication shall be settled in the court at Lunawada.

■

www.redshine.co.in | info@redshine.in

Printed in India | Title ID: 9358796065

Dedicated to...

Lord Sri Krishna

ABOUT THE EDITOR

Dr. Harish Kumar Yadav is working an Assistant Professor in the department of B.Ed. RCU Govt. PG. College Uttarkashi, Uttarakhand. He is Post Graduate in Education, Economics and Hindi. He is UGC – NET qualified in Education and more than Ten years of Teaching and Learning experience in Teacher Education. He has published research papers, articles, and book chapters in national and international journals and books and also presented research paper at national symposiums. His research field covers inclusive education, special education, yoga education and philosophy etc. He can be contacted at yadavh101@gmail.com

ABOUT THE BOOK

This edited book is a compilation of the contributions of professors, assistant professors, teachers, and researchers working in the fields of education, management, psychology, Hindi, etc. The edited book "Education: Diverse Dimensions" contains chapters on various aspects of education, such as: Value Education, Yoga Education, Sex Education, School Education, Higher Education, Inclusive Education, Special Education, Integrated Education, Vocational Education, Women Education, Environment education, adult education, health and physical education, blended learning, online education, moral education, peace education, special education and value education, etc. This book has been edited with the special aim of providing information to the students of B.Ed., M.Ed., and pedagogy. The author's effort has been to shed light on the diverse dimensions of education so that teachers, researchers, and students can get maximum benefit from the book in solving the problems of learning and teaching-learning. All those educationists, professors, and publishers who have played a constructive role in preparing this book deserve thanks.

Editor
Dr, Harish Kumar Yadav
Assistant Professor. B.Ed. Department
RCU Govt. PG College Uttarkashi, Uttarakhand

CONTENTS

SR.NO.	CHAPTER NAME	PAGE NO.
1	VALUE EDUCATION **Dr. Vibha Saxena**	1
2	YOGA EDUCATION **Komal Arora**	7
3	SEX EDUCATION **Dr. Harish Kumar Yadav**	18
4	SCHOOL EDUCATION **Prof. (Dr.) Shauli Mukherjee**	33
5	HIGHER EDUCATION **Dr. Akshita Sharma**	50
6	INCLUSIVE EDUCATION **Mr. Manash Protim Neog**	59
7	SPECIAL EDUCATION **Shivani**	70
8	INTEGRATED EDUCATION **Parama Kundu**	89
9	VOCATIONAL EDUCATION **Dr. Manohar Lal**	104
10	WOMEN EDUCATION **Dr. Samir Kumar Panigrahi**	113
11	ENVIRONMENT EDUCATION **Ms. Mahima Sharma**	124

SR.NO.	CHAPTER NAME	PAGE NO.
12	ADULT EDUCATION **Sandhya Yadav**	132
13	HEALTH AND PHYSICAL EDUCATION **Pallabi Banerjee**	145
14	BLENDED EDUCATION **Pranay Pandey**	161
15	ONLINE EDUCATION **Dr. Seema Yadav**	179
16	MORAL EDUCATION **Ms. Varsha Madhulika**	196
17	शांति शिक्षा **डॉ. नेहा गोस्वामी**	219
18	विशिष्ट शिक्षा **डॉ अमिता जैन**	230
19	मूल्य शिक्षा **डॉ. दीपशिखा अग्रवाल**	239

CHAPTER 1

VALUE EDUCATION

Dr. Vibha Saxena
Assistant professor
S.R.P.M.T.T. college, kotri, kota (Rajesthan)
Email: sachinjs07@yahoo.co.in

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.01

ABSTRACT
Value education refer to the aspect of the educational practice which entail that moral or political value as well as norms, dispositions and skill grounded in these values are mediated to or developed among students .value education can be referred to as explicit or implicit. Value in modern society is a serious challenge and problem for individual, society and nation. Individual's personality has developed all round, if the environment of truthfulness, love, co-operation, sympathy, forbearance, brotherhood has to be created in society, if the nation has to be defended. Education play an important role in understanding the importance of values and assimilating

KEYWORD*: explicit, implicit, Human-centrist, Catastrophic, All-round*

Introduction

Value has originated from the Latin word 'Valere' which mean ability, utility and importance. The education that cultivates value in the child is called value education. It is a process of education which begin with the infancy period of the child through his interaction with the family environment. Moral education inculcates moral value in the life of the child so that in his later life he may utilize his capacity to judge immorality which is the outcome of his material process.

Today, due to the progress of science and technology, people have become competitive and materialistic in earning wealth and

gaining prosperity through any means, fair or foul. There is no place of any value of life. People value money and pleasure only as a matter of fact, we suffer from ignorance about our value of life. The aim of education is to effect all-round development of person ,that is to effect development of all aspects of his life physical, mental, emotional, social, moral, spiritual, occupational etc.

Principal education value -- empathy by putting ourselves in other people's shoes both cognitively and emotionally. We improve our ability to resolve conflicts and understand other opinions. Equal opportunities, Respect for the environment, Care for health. Critical thinking are most importance principal of education value.

Meaning---- value based education aims at training the student to face the outer world with the right attitude and value. It is a process of overall personality development of a student. It includes character development, citizenship development, and spiritual development. Education has the greatest value. All Those activities that are good, useful and valuable from education point of view are consider as educational values. Education has its aim to modify the nature of the educated and merely to supply a certain amount of knowledge. Value education is a discipline that is fundamental to all around student learning and development. Understanding the importance can help you gain all the relevant emotion and spiritual tools needed to work in different situations. The learning can be spread out across the course of your academic career.

Objective of value education

- To understand the relationship between education and values.
- To appreciate the need for value education .
- To understand the objectives of value education in school.
- To identify the diff rant source of value education.
- To understand diff rant approaches to value education.
- To plan different learning experience for children to develop value among themselves.
- To find out a suitable method for providing value education among the student.

Source of value education

There are many sources which can be utilized by the teacher to impact value education.

1) Regular subject of the school curriculum are the first source of value education. Generally different subject like science, mathematics, history, civics, literature etc.
2) Co-curricular activity develop some value in school children with its multifarious programme which are not only confined with education and instruction, but also provide young pupil with opportunity for self-exasperation and self fulfillment..
3) School environment provided some short of values among the student.

Method of value education

(1) **Direct Method;**-value education can be imparted to the student directly in the class room in this method the teacher can be explain discuss and illustrate values through stories ,biographies of great man, moral and real life situations. Direct instruction of teacher and students is possible in the method.

(2) **Indirect method**;- value education can be imparted indirectly through existing curricular and co-curricular activities without separating the period in the time table. Different teaching subject will develop the value like free enquiry, Scientific temper, appreciation of dive sties, interdependence of people, logical thinking etc. different co-curricular activities will develop certain value like co-operation, team spirit, fellow felling, tolerance, democratic living, etc among the students.

Types of value education -Value education is many types they give us-



1) **Human Value** :- Positive attitude about environment and basic human value 'man in nature' rather than 'nathur for man' need to be infused through the same.

2) **Social Value** :- Love, compassion ,tolerance and justice which are the basic teaching of most of our religious need to be woven into environment education ,These are the value to be nurtured so that all form of life and the biodiversity on this earth are protected.

3) **Cultural and Religious Value** :- Our cultural customs and rituals in many ways tech us to perform such function as would protect and nurture nature and respect every aspect of nature, treating them as sacred, are it river, earth ,mountain or forest. Value enshrined in Vedas like Yajurveda give "you give me and I give you" ,Dharma "duty and responsibility", Vedanta 'Purusharthas '(aim of life), Kama(plasure) and Artha(wealth) etc.

4) Ethical value :-Envioronment education should encompass the ethical values of earth-centric rather then human-centric world view.The educational system should promote the earth-citizenship thinking. Instead of considering human being as supreme we have to think of the welfare of the earth.

5) Globe values:-The concept that the human civilization is a part of the planet as a whole and similarly nature and various natural phenomena over the earth are interconnected and inter-linked with special bond of harmony. If we disturb this harmony anywhere there will be an ecological imbalance leading to catastrophic results.

6) Spiritual values:-Principal of self-restraint, self - discipline, contentment, reduction of wants, freedom from greed and austerity are some of the finest element intricately woven into the traditional and religious fabric of our country. all these values promote conservationism and transform our consumerist ic approach.

Role of teacher in cultivation of value Education :-

Value education is needed for developing respect for the dignity of individual, inclusion of good manner, becoming responsible and cooperative citizens developing tolerance towards the understanding of diffrent religious faiths etc. There for teacher have to play an important role in imparting value education. The care of teaching consist of four basic values -dignity, truthfulness, fairness, and responsibility and freedom. All teaching is founded on

ethics whether it be the teacher student relationship wither it be the teacher student relationship ,pluralism or a teacher's relationship with their work. Dignity means respect for humanity. children mostly idealize their teacher based on their teachers based on their action and their behavioural practices are imitated by student. Teacher are the role model of many student. Teacher give a proper shape to the life and career of student . They are the constructor of society. A good teacher will help you improve your skill and knowledge . A teacher will discover the unique quality within a student and encourage him/her to enhance the quality .A teacher is the only person who can guide a student on the right path in life. A teacher can make learning easy as well as interesting for the students. Teacher clears the doubts of the students regarding diff rant subject and makes them strong academically and conceptually.

Role of school in cultivation of values -school environment is democratic ,clean, aesthetic, encourage , disciplined and creative. All students should be treated equally and should be given equal rights .Co-curricular activities are as important as the curricular activites in the cultivation of values in children

Conclusion

value signifies the importance of a person in his social, cultural, spiritual and moral life. In philosophical term, it is however ,a thought of a person which earn for him importance and respect in the society. India society is highly materialistic. Value Education cannot be included in the curriculum as an independent subject ,nor can it be taught theoretically. This is a practical subject which has to be taught in and out of school informally by which the conduct and behavior of student will be guided to proper and right path. Value education cannot be taught by lectures ,note-talking or writing work like other subject. value education has acquire a strong and practical science for human construction in which should be included spirituality, science, technology, social work, internationalism, scientific humanism, future active element etc.All guardian and citizen should be aware of value in the proximity of all student and citizen, and they should be self -conscious at all times.

REFERENCES

1. http://ischoolconnect.com
2. http://www.admitkard.com

3. http://Yourarticelibrary.com
4. http://indusedu.org>IJREISS
5. http://www.orj.fi>education>teacher
6. Ncertbooks.guru
7. Pachauri Dr.Girish(2008),Philosophical and Sociological Perspective of Education, value: meaning, nature and type(page 461-480)
8 Gupta Dr,B,D (2011), Philosophical and Sociological Foundation of Education, value Education (page 192-201)

ABOUT THE AUTHOR



Dr. Vibha Saxena has completed her M.Sc. In zoology from kota open university kota(Rajesthan) and M.A. in sociology from kota university,kota (Rajesthan).She has done her M.Ed. From Pt. Ravishanker shukla university,Raipur (Chattisgar) and done her Ph.D in Education from Carrier point university, kota (Rajesthan). She has 3 year of teaching experience in various schools as T.G.T. and P.G.T. Science teacher and more than 8 year of teaching experience in B.Ed Department. She has also appointed as B.Ed. Practical examiner in kota university.Presently she is working as Assistant professor in B.Ed.Department at S.R.P.M.T.T College kotri,kota (Rajesthan).She has published research papers,articles in national and international journals and also presented research paper at national and international seminar and workshop . A part of this she has participated in many seminars and workshop online and offline mode.

CHAPTER 2

YOGA EDUCATION

Komal Arora
Incharge Middle Section
HOD-Social studies Kundan Vidya Mandir
Email: komalarora19741974@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.02

ABSTRACT
The word "Yoga" literally means "union," and refers to an inner state where one experiences everything as a part of oneself. Yoga is an integral part of ancient culture of India. Yoga is a technique which unites the body, mind and spirit. Yoga relieves you from stress and tension. It is stress that causes weakness, anger, jealousy and all the negative emotions. When you get rid of stress using breathing techniques, meditation and some simple exercises, it helps your body and mind and creates a sense of well-being and happiness from inside.

Yoga is a word derived from the Sankrit word 'yuj' which means 'to unite or integrate', yoga is a 5,000-year-old Indian body of knowledge. Yoga is all about harmonizing the body with the mind and breath through the means of various pranayamas, yoga asanas (yoga poses) and meditation.

As in today's world people are suffering from anxiety and stress and students too are facing same problems so it's a need of an hour that yoga Education should be made a part of curriculum and should be given proper stress and must be taught on regular basis in schools and colleges for the holistic development of children.

***KEYWORDS**: Holistic, Meditation, Pranayamas, Asanas*

INTRODUCTION

Yoga is a healthy way of life, originated in India. Now it is believed to be a form of science accepted all over the world. The western culture also is accepting it as a healthy form of scientific exercise. Although the origin of yoga is obscure, it has a long tradition. In course of time, various schools of yoga developed. The major schools of yoga are Jnana yoga, Bhakti yoga, Karma yoga and Raja yoga. These schools of yoga advocate particular type of methodology which includes a variety of systematised practices of yoga depending on their particular approach. However, all these are leading to the common goal of self realisation and integration of body and mind. Yoga for a common person contains the practices of yama, niyama, asana, pranayama, pratyahara, kriya, mudra, bandha and meditation which are helpful to keep oneself physically fit, mentally alert and emotionally balanced. This ultimately prepares ground for the spiritual development of an individual.

What is Yoga?

The word 'Yoga' is derived from Sanskrit root yuj which means 'join' or 'unite'. This may be taken as the union of body, mind and soul, and is used in the literature both as an end as well as means. As an end, yoga signifies 'integration of personality' at the highest level. As means, yoga includes various practices and techniques which are employed to achieve the development of such integration. These practices and techniques are means in the yogic literature and are also referred collectively as 'Yoga'.

The Tradition of Yoga

Yoga is widely considered as an ‘immortal cultural outcome’ of Indus Saraswati Valley civilization – dates back to 2700 B.C. It is believed that several thousand years ago, in the mountain ranges of the Himalayas, Adiyogi (Lord Shiva - the First Guru in the Yogic tradition) poured his profound knowledge into the legendary Saptarishis or "seven sages”. The sages carried this powerful yogic science to different parts of the world. However, it was in India that the yogic system found its fullest expression. Though Yoga was being practiced in the pre-Vedic period, the great Sage Maharshi Patanjali systematized and codified the then existing practices of Yoga, its meaning and its related knowledge through his Yoga Sutras - a collection of 196 Indian sutras (aphorisms) on the theory

and practice of Yoga. The Yoga Sūtras of Patañjali was the most translated ancient Indian text in the medieval era, having been translated into about forty Indian languages and two non-Indian languages. Yoga is essentially a spiritual discipline based on an extremely subtle realm, focusing on bringing harmony between one's mind and body – an amalgamation of both an art and science towards healthy living and up-liftment of oneself and humanity at large.

Relevance of Yoga Tradition in Modern Era

Yoga is not just a set of exercises that keeps the body fit, but promises restraint and balance. Further, practice of Yoga promises calmness, mental relief from stress and anxiety and provides hope, strength and courage to the individual. The 21st of June marks the International Day of Yoga (IDY) has now become a global phenomenon and has created huge impacts all around the world. Because of its myriad health (physical, psycho-social-emotional) benefits and overall development of personality, Yoga has created a new global wave of peace and tolerance.

Objectives of Yogic Practices

- To develop a understanding of yogic practices and apply this understanding accordingly in one's life and living.
- To develop a healthy habit and lifestyle in children.
- To develop humane values in children.
- To develop physical, emotional and mental health through yogic activities.

General Guidelines for Yogic Practices.

- The yogic practices should start with a quiet mood which could be attained by reciting a short prayer.
- It is essential that body should be prepared by activities such as ankle bending, knee bending, finger movements, hand clenching, wrist bending, wrist rotation, elbow bending, shoulder rotation and eye movement. After this, Surya Namaskara can be practised.
- Regularity of practice is essential both in the physical and mental aspects of yoga.
- Patience is an important requirement for yoga. Do not despair if you do not succeed today in doing a certain asana or in

following a right principle of conduct. Perseverence in your efforts is needed. Success will come with time.

- Do not compete but cooperate. A spirit of competition is a definite hindrance on the path of yoga. Competitions feed our ego while yoga helps us to rise above our ego.
- Yogic practices should be learnt under the guidance of experienced teacher.
- Some yogic practices should be practised on an empty or on a very light stomach.
- Early morning is the ideal time for yoga practice but it can also be practised in the evening.
- Yoga should not be practised in hurry or when you are exhausted.
- Select a well-ventilated, clean and non-disturbing place for your practice.
- Yogic practices should not be performed on hard surface. A durry, a mat or a blanket can be used for this purpose.
- Bathing before the practice is good. Use cold or warm water as per the requirement of the individual and season.
- Clothes should be loose and comfortable while performing the yogic practices.
- Breathing should be as normal/natural as possible. It is not to be manipulated unless instructed specifically to do so.
- There are limitations of yogic practices. If you are suffering from any problem or chronic disease, inform your teacher before starting yogic practices . • Yogic practices should be adopted on the basis of the principle of progress. At initial stage, easy practices should be adopted. Later on more difficult ones can be practised. Therefore, start with simple yogic practices and gradually proceed to do advance practices.
- Yogic practices should not be combined with other physical activities in same session. These are two different types of activities and could be separately practised.
- Yogic practices can be carried on at home once they are properly learnt in the school.
- Yoga has a broader meaning. Therefore, apart from asana and pranayama, one should practise moral and ethical values in life.

Common Yogic Practices

Yogic texts propound several practices such as yama, niyama, asana, pranayama, pratyahara, shatkarma (cleansing practices), mudra, bandha, dharana, dhyana (meditation). Here, we will discuss those practices which are commonly used. Introduction 5 Yama and Niyama These are initial sets of principles that are concerned with our conduct in personal and social life. These are related to ethics and values. Asana The term asana means sitting in a particular posture, which is comfortable and which could be maintained steadily for long time. Asana gives stability and comfort, both at physical and mental level. There may be variations in the techniques of some of the asanas depending upon the following yoga institutions.

Asana may broadly be classified into three categories:
(a) Cultural or Corrective asana
(b) Meditative asana
(c) Relaxative asana

Cultural asanas can further be classified into two groups, depending on the effects produced:

(i) asana that work through and on the spine and visceral organs.
(ii) asanas that work through the skeletal muscles, ligaments and joints.
(iii) Meditative asanas are those asanas which are aimed at quiet sitting and are used for higher practices in yoga. padmasana, swastikasana, sukhasana and siddhasana can be put in this category.
(iv) Relaxative asanas are those which remove tension and bring about physical as well as mental relaxation. The important asanas in this category are shavasana and makarasana.

Guidelines for the Practice of Asanas

- Generally, the asanas are practised in the sequence of standing, sitting, prone-lying and supine-lying position. Though there is other version which follows different sequence.

- Asanas must not be practised in haste or by applying any sort of undue force and under an urgency. Jerks should be avoided.
- Asanas should be performed with body and breath awareness. There should be coordination between breath and movement of body-parts.
- As a general rule, inhale while raising any part of the body and exhale when bending down.

The practitioner has to follow instructions sincerely with optimal attention.

- Final position should be attained slowly step-by-step and should be maintained with closed eyes for developing an inward awareness within the body.
- Final position of asanas must be maintained for as long as one is comfortable. One should maintain the final posture according to one's own limitations and should not go beyond one's capacity.
- During maintenance of final position of asana, there should ideally be no tremors or any type of discomfort.
- An utmost care must be taken in increasing the time for maintaining the asanas.
- Regular practice is essential. Body starts listening to your command only after a regular and diligent training for a sufficient period of time. If regularity is disturbed due to some reasons, then one should resume the practice within minimum time.
- In the initial phase, asanas involve de-conditioning and reconditioning processes. Therefore, initially, one may feel little fatigued after the practice but after few days' practice, body and mind get adjusted and one starts experiencing a feeling of well-being and happiness again.

Pranayama

Pranayama consists of the breathing techniques which are related to the control of breath or respiratory process. Pranayama popularly known as 'yogic breathing', involves a conscious manipulation of our breathing pattern. The health of the respiratory system depends upon the quality as well as the quantity of air inhaled by the person. It also depend on the rhythm and completeness of the breathing. Through pranayama, a practitioner

advantageously works with her/his respiratory, cardiovascular and the nervous system which bring about emotional stability and peace of mind.

Pranayama has three phases known as puraka, rechaka and kumbhaka. Puraka is controlled inhalation; rechaka is controlled exhalation and kumbhaka is controlled retention of breath. Initially, the exhalation (Rechaka) may be a little more prolonged in comparison to inhalation (Puraka).

Insistence on 1:2 ratio in the beginning may prove counterproductive. As we practice, 1:2 ratio is reached in natural manner.

Guidelines for the Practice of Pranayama

- Pranayama should be done preferably after the practice of asanas.
- Breathing in pranayama should be done through the nose only except sheetali and sheetkari.
- During pranayama, there should not be strain in facial muscles, eyes, ears, neck, shoulders or any other part of the body.
- During pranayama, eyes should remain closed.
- In the beginning, one should be aware about the natural flow of the breathing. Make inhalation and exhalation prolonged in a gradual manner.
- While observing breathing, attend to your abdominal movement which bulges a bit during inhalation and goes in a bit during exhalation.
- In the beginning stage one should learn to maintain in gradual manner the 1:2 ratio of breathing which means exhalation time should be double the inhalation. However, while practicing pranayama, do not make haste in resorting to any of the above mentioned ideal ratio.
- Kumbhaka (retention of breath) should not be performed in the initial stage. After a prolonged practice of the 1:2 ratio, one should learn the retention of breath under the guidance of a competent teacher.
- The ideal ratio according to tradition is 1 (puraka): 4 (kumbhaka): 2 (rechaka). Kumbhaka must not be resorted to unless one has undergone sufficient practice of 1: 2 ratio.

Pratyahara

Yogic practice of Pratyahara means withdrawal of senses from sense organs in order to control mind. In pratyahara the awareness about the external surrounding is withdrawn and is taken to inside. Introspection, studying good books are some practices which can help in pratyahara. Bandha and Mudra Bandha and Mudra are the practices involving manipulation of certain semi-voluntary and involuntary muscles in the body. These practices bring about voluntary control and tone up the internal organs. 8

Shatkarma/Kriya (Cleansing Process)

Shatkarma means six karmas or kriyas. The karma/kriya means 'action'. Shatkarma consists purificatory processes which cleanse the specific organs of the body by detoxifying them. The purification helps to keep the body and mind healthy. There are six cleansing processes described in hatha yogic texts. These are Neti, Dhauti, Basti, Trataka, Nauli and Kapalabhati. These are used to clean the internal organs or systems by using water, air or manipulation of certain organs of the body.

Guidelines for the Practice of Kriyas

- Kriyas should be done with an empty stomach. Therefore, they should be done preferably in the morning.
- Kriyas should be performed under supervision of an expert.
- Each kriya has specific process which should be strictly adhered to.
- Different things like water, salt, air, manipulation are used for each kriya. Meditation Meditation is a practice which helps in concentration of the body and mind. In meditation, concentration is focussed for a long time on a single object like tip of the nose, space between eyebrows, etc. It develops a sense of well-being and improves memory and decision making power in the person. Guidelines for the Practice of Meditation
- Practice of asana and pranayama if performed before meditation will help in developing ability to sit in one position for a considerable period of time in meditation.
- Select a peaceful calm and quiet place for the practice of Meditation.

- Allow your eyes to get closed gently to enter into an inner awareness.
- A meditative practice invites many thoughts, memories and emotions may surface on mind. Remain non-reactive to them.
- As you continue with this process for sometime, you may feel an abstract and a non-specific awareness of the whole body. Now continue with the whole body awareness. In case of any difficulty go back to the breathing awareness
- In the beginning it is, generally difficult to observe the breath. If mind wanders, do not feel guilty. Slowly but firmly bring your attention to your breath.

Yoga education in today's era is the need of an hour. NCERT has also given a manual so that yoga can be practiced in proper manner at secondary and senior secondary stage. Manual for Yoga Higher Education Institutional Accreditation is also been released so that in higher classes too yoga education can be given due importance.

Problems in implementation of Yoga Education

1. Uniform needs to be changed.
2. Curriculum needs to be adjusted.
3. Teachers need to be trained.
4. Breakfast time to be given to children.
5. Students need to be encouraged.
6. Parents should understand the importance of yoga.

CONCLUSION

Yoga education will take us back to our roots. As in gurukuls yoga was an integral part of education as mental, physical and intellectual education was given for making children physically and mentally fit. In today's world of internet, social media, false relations, individualism, which results in blood pressure, anxiety, mental disorders yoga education is the need of an hour and it must be implemented. Yoga should be made a compulsory subject to be taken up by every child and must be mandatory for every child to clear some levels. Yoga offers new learning possibilities to a wider group of students than traditional sports or fitness curriculum, making it a valuable addition to any educational program. Additionally, adding yoga to a school's curriculum will help provide

a quality physical education program as modification of traditional physical education yoga in sports as important as other think it helps us in different ways and different levels in a sports men life. Yoga can play a key role in cultivating mind control and concentration which helps a sportsperson to perform at their game. It offers children and adults an opportunity to experience success in physical activity, which can help build a foundation of strong of life. However, curriculum specialists, teachers, trainers and students should know and analyze seriously the real challenges of yoga education in classroom settings and real life as well.

REFERENCE

1. Manual for Yoga Higher Education Institutional Accreditation
2. Yoga a healthy way of living - NCERT
3. https://www.icbse.com/yoga
4. Basham, A.L. (1954). The Wonder That Was India, New York, Grove Press Books & The Macmillan Co.
5. Betty, Reardon (1999). Educating the Educators: The Preparation of Teachers for a Culture of Peace, paper presented at the World Conference on Higher Education, UNESCO, Paris.

ABOUT THE AUTHOR



Mrs. Komal Arora has completed her M.A in Political Science from IGNOU University Delhi. she has M.A history from Panjab university. She has done her M. Ed from Panjab University, M.PHIL from Punjabi university Patiala. She has more than 30 years of teaching experience in school as T.G.T and P.G.T.She has also appointed as practical Examiner and head Examiner in C.B.S.E exams. Presently she is working as incharge of Middle section. She

has published research papers, articles in national and international journals and also presented research papers at national and international seminars and workshops. Apart of this she has participated in many seminars and workshops online and offline mode.

CHAPTER 3

SEX EDUCATION

Dr. Harish Kumar Yadav
Assistant professor (B. Ed. Department)
RCU Govt. P.G. College Uttarkashi, Uttarakhand
Email: yadavh101@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.03

ABSTRACT
Sex education has long been a topic of discussion and debate within the Indian education system. The article explores the significance of comprehensive sex education in India, examining its historical evolution, current challenges, and international comparisons. It underscores the need for inclusive, age-appropriate, evidence-based sex education that addresses a wide range of topics, from sexual health to gender equality and digital safety, to empower the youth with the knowledge and skills required to make informed decisions and lead healthy lives. It delves into the cultural, societal, and governmental influences that have shaped the way sex education is imparted in schools and colleges across the country. The article advocates for improving sex education in India, emphasizing the role of policy changes, teacher training, parental involvement, and inclusivity. It concludes by highlighting the transformative potential of comprehensive sex education in fostering a society that values informed choices, diversity, and the well-being of all its citizens.

KEYWORDS: *Comprehensive Sex Education, Sexuality, Health, Misinformation, Trained Teachers, age-appropriate, Gender Issues, Social issues.*

INTRODUCTION

In the ever-evolving landscape of human society, there exists a topic of unceasing significance - one that transcends cultural, geographical, and temporal boundaries. It is a subject matter

essential to our understanding of ourselves, our relationships, and our overall well-being. This topic is sex education, a comprehensive and structured program designed to shed light on the intricate tapestry of human sexuality.

In a world where information flows freely, sex education takes center stage as an essential tool for equipping individuals with the knowledge and understanding necessary to navigate the complex realm of sexuality. Its relevance cannot be overstated, as it impacts not only the individual's sexual health and relationship but also the broader fabric of society. With each passing generation, sex education evolves to reflect changing norms, emerging challenges, and new opportunities.

WHAT SEX EDUCATION IS?

Sex education is a broad term that refers to the process of providing information and guidance about human sexuality. Sex education, as defined by Leepson and Kearney, encompasses a comprehensive approach to instructing individuals in the various physiological, psychological, and sociological aspects of sexual response and reproduction. It extends beyond mere reproduction, as it serves as a platform for understanding the broader spectrum of human sexuality. This holistic approach includes education on family planning, reproductive processes, body image, sexual orientation, sexual pleasure, values, decision making, communication, dating, relationships, sexually transmitted infections (STIs) and birth control methods. The content and depth of sex education may vary based on the age and comprehension levels of students, with the ultimate aim of equipping individuals with the knowledge and understanding needed to make informed and responsible decisions regarding their sexuality, integrating it meaningfully into their present and future lives as they reach maturity.

HISTORICAL PERSPECTIVE

Sex education in India has a complex and evolving history influenced by various cultural, religious, and social factors. The approach towards sex education has undergone significant changes over the years. In ancient India, sexuality was not a taboo subject. The Kamasutra, written by Vatsyayana around the 4^{th} century, is a well-known ancient Indian text that discusses various aspects of

human sexuality, relationships, and sexual health. This demonstrates that sexual knowledge was considered important and was openly discussed in the society of that time. During British colonial rule, traditional Indian values and practices began to be influenced by Victorian morality. This period witnessed the suppression of open discussions on sexuality and the rise of conservative attitudes. Sexuality became a taboo topic in public discourse, and this influence continued for decades. After gaining independence in 1947, India grappled with issues related to sexual education and population control. In the 1960s and 70s, there were initial attempts to introduce family planning and reproductive health programs, which included some aspects of sex education. However, these efforts were met with resistance from conservative groups and limited success. The late 20th century saw a shift in attitudes. With increasing globalization and exposure to Western ideas, there was a growing awareness of the need for comprehensive sex education. The HIV/AIDS crisis in the 1980s prompted discussions on sexual health and the importance of safe sex practices. In the 21st century, there has been a growing recognition of the importance of sex education, especially in addressing issues like teenage pregnancies, sexually transmitted infections, and gender-based violence. India's National Population Education Program (NPEP) and the National AIDS Control Program (NACP) have included sex education components.

Attitudes towards sex education in India have gradually evolved. Traditional and conservative beliefs still exist, and sex education remains a controversial and sensitive issue in some segments of society. However, there is also a more progressive and informed perspective that recognizes the importance of providing young people with accurate and age-appropriate information about sexuality.

CURRENT STATUS AND CHALLENGES OF SEX EDUCATION IN INDIA

The status of sex education in India is marked by a complex history of shifts and challenges. Over the years, the country has made efforts to introduce sexuality education, but it has often been met with resistance and varying levels of acceptance at different state and regional levels. The content and approach to sex education have evolved, incorporating elements beyond population control

and focusing on broader aspects of sexual and reproductive health, gender, and human rights. Recent initiatives, like the Adolescence Education Programme (AEP) and the Saathiya Resource Kit, have aimed to provide comprehensive sexuality education to adolescents. However, the landscape remains complex, with pockets of opposition from conservative groups and political entities. The overall trajectory is toward a more rights-based approach to sex education, but implementation remains a challenge, and the status of sex education in India continues to be influenced by a range of political, cultural, and social factors. Here are some of the key controversies and challenges surrounding sex education in India:

Cultural and Religious Objections: Conservative cultural and religious beliefs can lead to objections against sex education. Some individuals and groups may view discussions on sexuality as conflicting with traditional values and norms.

Lack of Uniform Curriculum: India's diverse education system means that sex education policies and curricula vary between states and regions. There is no uniform approach to sex education across the country, which can lead to disparities in the quality and content of education.

Age-Appropriateness: Ensuring that the content of sex education is age-appropriate and sensitive to the developmental stage of students can be challenging. Balancing the need for information with cultural sensitivities and age-appropriateness can be contentious.

Parental Concerns: Some parents may have reservations about the content and delivery of sex education in schools. They may feel that certain topics should be the responsibility of parents rather than the the school system.

Lack of Trained Teachers: In many cases, teachers may not be adequately trained or comfortable discussing sensitive topics related to sex education. This can impact the quality of education provided to students.

Stigma and Taboos: Stigma and taboos associated with sexuality can create barriers to open discussions. These cultural attitudes can perpetuate myths and misconceptions.

Lack of Awareness: There is a lack of awareness about the importance of sex education in some communities. Educating parents and community leaders about the benefits of comprehensive sex education can be challenging.

Political Controversies: Sex education can become a politically charged issue, with debates on whether to include certain topics and how to approach them.

Inadequate Teacher-Student Interaction: A shortage of counseling and support services in schools can hinder teacher-student interactions and the provision of information and guidance related to sexual health and relationships.

Access to Information: Access to reliable and age-appropriate sexual health information can be limited, particularly for adolescents who may seek information independently.

Efforts like the Rashtriya Kishor Swasthya Karyakram (RKSK) and the Ayushman Bharat initiative indicate a commitment to addressing adolescent health issues more comprehensively, including sexuality education. Despite the challenges, there is ongoing progress in promoting comprehensive sex education in India.

SUCCESS STORIES AND CASE STUDIES

While sex education in India has faced various challenges, there have been successful initiatives and case studies that demonstrate the positive impact of well-implemented sex education programs. Here are a few success stories and case studies regarding sex education in India:

1. The Comprehensive Sexuality Education Program in Maharashtra: Maharashtra, one of India's states, introduced a comprehensive Sexuality Education Program in schools. This initiative aimed to provide age-appropriate, culturally sensitive sex education to students. The program emphasized gender equality, reproductive health, and consent. Early results indicated that students who received this education were more knowledgeable about sexual health and relationships.

2. The Adolescent Sexual Health and Awareness Project in Gujrat: The ASHA project was launched in Gujarat to provide comprehensive sex education to adolescents in both rural and urban areas. The project used innovative techniques, such as peer-led education and interactive workshops, to engage and educate young people. It reported improved knowledge and awareness about sexual health among participants.

3. Educational Initiatives and NGOs: Various non-governmental organizations (NGOs) and educational initiatives in

India have been working to provide sex education in schools and communities. Some of these organizations focus on marginalized and underserved populations. The UDAAN program, led by the Centre for Catalyzing Change (C3), is a remarkable example of such an initiative. These initiatives have contributed to increasing awareness and understanding of sexual health and relationships.

4. Schools with Inclusive Sex Education: Some schools and educational institutions in India have successfully implemented comprehensive and inclusive sex educational programs. These programs emphasize openness, inclusivity, and the importance of addressing the diverse needs of students. These schools often involve parents in the process and encourage a collaborative approach.

5. The Humsafar and Naz Foundation Trust's Work: The Humsafar Trust, an organization in Mumbai, has been active in promoting sex education and awareness among LGBTQ+ communities in India. Naz foundation is known for its advocacy for LGBTQ+ rights and comprehensive sex education in India. They have made efforts to challenge legal barriers and stigma associated with homosexuality. Their work includes support for LGBTQ+ individuals, advocacy for inclusive sex education, and efforts to reduce stigma and discrimination.

While these success stories demonstrate initiative in India, it's important to note that progress can vary significantly from region to region and that challenges persist. The success of sex education programs often depends on factors such as community support, teacher training, and the cultural context in which they are implemented.

SEX EDUCATION WORLDWIDE

When comparing sex education in India to other countries, it's important to recognize that sex education policies, approaches, and cultural contexts can vary significantly from one nation to another. In India, Sex education varies by state, and it may not be uniformly implemented across the country. Comprehensive sex education is still a growing concept, and traditional cultural and religious norms can influence the approach and content. The focus is often on reproductive health. While discussions on broader topics like consent, LGBTQ+ issues, and gender equality are not consistently addressed. Sex education in the United States varies by state and

even by school district, resulting in a diverse range of approaches. The content of sex education can range from comprehensive sex education that covers a wide range of topics, including contraception, consent, and relationships. The Netherlands is often cited as a global leader in comprehensive sex education. Their approach includes open discussions on relationships, safe sex, contraception, and consent. The Netherlands has lower rates of teenage pregnancy and sexually transmitted infections, which are often attributed to their comprehensive sex education programs. Sweden has a well-established sex education system that emphasizes gender equality, consent, and LGBTQ+ issues. Sex education in Sweden is mandatory and begins at an early age. The approach is known for its inclusivity and openness in addressing sexual health and relationships. Sex education in Canada varies by province and territory, with some regions offering comprehensive programs. The content can include topics such as safe sex, consent, LGBTQ+ issues, and relationships. There has been an ongoing debate about the inclusivity and extent of sex education across the country. Japan's approach to sex education has traditionally focused on biology and reproduction. Discussions on sexual health, relationships, and consent have been relatively limited in the past. There have been efforts to update and expand sex education in recent years to address issues like sexual violence and consent.

These international comparisons highlight the diversity of sex education approaches and policies across different countries. The content and quality of sex education can vary significantly, and cultural norms, government policies, and the level of community support play crucial roles in shaping the approach to sex education in each nation.

Lessons from International Models:

1. *Uniform National Policy:* India can consider developing a uniform national policy for sex education, providing consistent guidelines for all states, while allowing some flexibility to address regional cultural nuances.
2. *Comprehensive Approach:* Lessons from countries like the Netherlands, Sweden, and Canada emphasize the importance of comprehensive sex education. India can learn to broaden the scope of topics covered, including consent, gender equality, LGBTQ+ issues, and relationships.

3. *Inclusivity:* Promoting inclusivity in sex education is vital. Lessons from countries that emphasize gender equality and LGBTQ+ issues, like Sweden, can be applied to make sex education more inclusive in India.
4. *Early Start:* Initiating sex education at an early age, as seen in countries like Sweden and the Netherlands, can help normalize discussions about sexuality and provide a foundation for understanding later in life.
5. *Parental Involvement:* Encouraging parental involvement, as seen in the United States and Canada, can help ensure a collaborative approach that respects cultural values and concerns.
6. *Teacher Training:* Training teachers to deliver sex education effectively is crucial. Lessons from countries with well-developed programs emphasize the importance of well-developed programs emphasize the importance of well-trained educators.
7. *Open Dialogue:* Countries like the Netherlands emphasize open dialogue about sexual health, reducing the stigma and discomfort associated with discussions about sexuality.
8. *Adaptive Curriculum:* India can consider adapting its curriculum to reflect the evolving needs and cultural context, learning from countries like Japan that are making efforts to update and expand sex education.

In summary, international models offer important insights into developing a more comprehensive, inclusive, and effective sex education system in India. While recognizing cultural diversity and sensitivities best practices and strategies used in other nations to promote informed decision-making and sexual health.

THE NEED OF COMPREHENSIVE SEX EDUCATION

Comprehensive sex education is a holistic approach to instructing individuals on a wide range of topics related to human sexuality. It goes beyond the basic understanding of human sexual anatomy and reproduction to include comprehensive discussions on various aspects of sexual health and relationships. This inclusive form of sex education covers topics such as sexual activity, safe sex, contraception, emotional relations and responsibilities, reproductive health, age of consent, and reproductive rights. Comprehensive sex

education is often contrasted with abstinence-only sex education, which primarily emphasizes refraining from sexual activity and may omit critical information on safer sex practices and reproductive health.

Here are some key reasons highlighting the importance of comprehensive sex education:

1. Promotes Health and Well-Being & Reduces Unintended Pregnancies: Comprehensive sex education provides accurate information on sexual health, including changes adolescents go through in puberty, safe sex practices, prevention of sexually transmitted infections (STIs), and access to contraception. This knowledge empowers individuals to make informed decisions and protect their health. A report highlights the concerning statistics in India, revealing that 14% of pregnancies among those under the age of 20 were unintended. Alarming levels of physical and emotional abuse were reported by 34% of adolescent married women. Even more distressing, a staggering 50% of maternal deaths for individuals aged 15 to 19 were attributed to unsafe abortion practices (Apte, 2019). By teaching about contraception and family planning, comprehensive sex education helps reduce unintended pregnancies, especially among teenagers. This can lead to better life opportunities for young parents and healthier outcomes for both parents and children.

2. Encourages Informed Decision-Making & Prevents Myths and Misinformation: In this digital age, individuals may make uninformed decisions about sex-related issues or their own sexuality due to various factors. One prominent issue is the abundance of misinformation on the internet, where inaccurate or biased information can mislead individuals. Additionally, the lack of comprehensive sex education in many places leaves people without the necessary knowledge to make informed decisions. Peer pressure, societal expectations, and the anonymity of the internet can also influence decisions, sometimes leading to ill-informed choices. Providing accurate sex education and critical thinking skills when navigating online resources is crucial in helping individuals to counteract myths and misconceptions about sex and relationships that can lead to unhealthy behaviors and negative consequences, promoting responsible behavior and consent.

3. Promote Gender Equality: India has predominantly patriarchal societies, and the implication of this are far-reaching. It's

not just about addressing the challenges faced by women and girls; it's equally crucial to focus on boys and men. Sex education is a valuable tool in nurturing respect for women and molding young men into well-rounded, self-assured, and compassionate individuals. Comprehensive sex education often includes discussions on gender roles, consent, and respecting personal boundaries. This can contribute to reducing gender-based violence and promoting equality in relationships.

4. Promote Sensitivity Toward Gender Diverse People: It includes inclusive content that educates students about diverse gender identities, challenging stereotypes, and emphasizing the importance of respect for individuals' chosen gender expressions and pronouns. This education also addresses issues like gender-based bullying and discrimination, creating empathy and understanding among students. By representing a range of gender identities in curricula and materials, it helps students see themselves and others who may be gender-diverse, promoting a sense of belonging. Comprehensive sex education provides a safe space for open discussion, where students can ask questions and seek support, reducing stigmatization and fostering sensitivity and acceptance toward gender-diverse individuals.

5. Prevents and Addresses Sexual Abuse: Comprehensive sex education empowers young people to recognize various forms of sexual abuse, understand the signs of abusive relationships, and differentiate between consensual and non-consensual touch. While it is essential to emphasize that survivors are not responsible for preventing abuse, education equips them with the knowledge and resources to identify and seek help when needed. By instilling respect for bodily autonomy, especially among young boys, sex education contributes to a future where individuals are less likely to become perpetrators of abuse, ultimately fostering a safer and more equitable society.

6. Contributes to Digital Safety: In this digital era, individuals may explore their sexual desires or experiment with activities like sexting, pornography, or any kind of explicit content. While these actions are personal choices, they can have both positive and negative consequences for society and individuals involved. On the positive side, they can offer a safe and consensual outlet for sexual exploration. However, when done without proper understanding and consent, they can lead to issues such as privacy

breaches, cyberbullying, and non-consensual distribution of explicit content, causing harm to victims. With various apps and websites, people can connect with others, but this also opens the door to potential dangers, such as falling victim to catfishing schemes, where false identities are used by sexual predators seeking to exploit naive individuals. Comprehensive sex education plays a vital role in addressing these challenges. It can teach individuals about consent, boundaries, privacy, and respect in sexual relationships. It can also provide information about potential risks and consequences of sharing explicit content and ways to protect one's privacy online.

7. Empowers Youth & Reduces Stigma and Shame: Comprehensive sex education empowers young people to take control of their sexual health and make choices that align with their values and goals. Open discussions about sexuality can reduce stigma and shame associated with sexual health issues, encouraging individuals to seek help and support when needed. It addresses the emotional and psychological aspects of sexual relationships, helping individuals develop healthy relationships, communication skill, and emotional well-being.

8. Meets the Needs of Diverse Populations: The misconception that people with disabilities are not subject to sexual assault. Similarly, assuming their incapacity for sexual activity or intimacy further isolates them. Comprehensive education recognizes and addresses the unique needs of different populations, such as marginalized communities and individuals with disabilities.

9. Supports Parental Involvement: Many parents often find it difficult to initiate such conversations and may lack the necessary information and skills to do so effectively. However, research has shown that comprehensive sex education can empower parents and caregivers to engage in better inter-generational dialogue about sexuality within their homes. It also encourages collaboration between schools and parents, allowing parents to play an active role in their child's sexual education.

Comprehensive sex education is crucial for promoting healthier, safer, and more informed attitudes and behaviors related to human sexuality. It equips individuals with the knowledge and skills needed to make responsible choices and maintain their overall well-being.

FUTURE DIRECTIONS

As we navigate the complexities of the present, it is essential that we also cast our gaze towards the future. Looking ahead, we can envision a host of transformative possibilities and opportunities. Improving sex education in India requires a multifaceted approach that encompasses various strategies. They include:

- *National Policy and Curriculum Development:* Develop a uniform national policy for sex education that sets standards for content and implementation. Create a comprehensive, evidence-based curriculum that includes topics like consent, gender equality, LGBTQ+ issues, and reproductive health. Ensure that sex education is age-appropriate and culturally sensitive.
- *Teacher Training:* Implement training programs for teachers to equip them with the knowledge and skills needed to effectively deliver sex education. Focus on creating a supportive environment for teachers to address the challenges of discussing sensitive topics.
- *Parental Involvement:* Promote parental involvement by providing resources, workshops, and information on the importance of sex education. Encourage open communication between parents, schools, and students to address concerns and preferences.
- *Inclusivity:* Emphasis on inclusivity by addressing the diverse needs of students, including those with disabilities and students from marginalized communities. Recognize and respect cultural and religious diversity while ensuring that sex education remains inclusive.
- *Awareness and Advocacy:* Raise awareness about the importance of comprehensive sex education and its role in promoting sexual health and reducing risks. Encourage advocacy groups and organizations to work with policymakers to drive policy changes. NGOs and student clubs can play a vital role by organizing events that invite professionals to share their expertise and knowledge.
- *Age-Appropriate Education:* Begin sex education at an early age with age-appropriate contents to create a foundation for understanding sexual health and relationships. Gradually introduce more complex topics as students mature.

- *Data Collection and Evaluation:* Implement mechanism for data collection and evaluation to measure the effectiveness of sex education programs and identify areas for improvement.
- *Cultural Competence:* Ensure that teachers and educators are culturally competent and able to address the specific needs and concerns of diverse student populations.
- *Digital and Online Resources:* Develop and promote digital and online resources that provide accurate information on sexual health and relationships for students and parents. Government programs should leverage technology and digitalization, utilizing social media and online platforms to reach young adults effectively.
- *Public - Private Partnerships:* Encourage partnerships between public and private organizations to support and fund sex education initiatives, including teacher training and resource development.

CONCLUSION

In conclusion, sex education in India stands at a critical juncture, marked by a diverse range of challenges and opportunities. The importance of comprehensive sex education cannot be overstated. It is not merely a matter of conveying information about the biological aspects of sex; rather, it is about empowering individuals with knowledge and skills to make informed decisions about their sexual health, relationships, and overall well-being. India's journey towards effective sex education necessitates a holistic approach. A uniform national policy, inclusive curriculum, and the involvement of teachers, parents, and communities are all integral components. Efforts to reduce stigma and promote open dialogue about sex and sexuality are pivotal, as they can create a more inclusive and informed society. It is through such collective efforts that India can work towards a future where every individual, regardless of their background or circumstances, has access to comprehensive and respectful sex education. This journey is not just about informing young minds; it is about nurturing a society that values and respects the diversity of human experiences, celebrating the importance of informed choices, and promoting the well-being of all its citizens.

REFERENCES

1. Barua, A., Watson, K., Plesons, M. et al. Adolescent health programming in India: a rapid review. Reprod Health 17, 87 (2020). https://doi.org/10.1186/s12978-020-00929-4
2. Lack of Sex Education in India and its Growing Importance in the Digital Era https://ijpsl.in/wp-content/uploads/2021/05/Lack-of-Sex-Education-in-India-and-its-Growing-Importance-in-the-Digital-Era_Palak-Chakraborty-Avantika-Mishra.pdf
3. Concept Sex Education for Youths https://healtheducationresources.unesco.org/sites/default/files/resources/bie_sex_education_youths_bzga.pdf
4. SEXUALITY EDUCATION – niepid https://niepid.nic.in/SE_IG.pdf
5. On the Lack of Comprehensive Sexuality Education in India – ohchr https://www.ohchr.org/sites/default/files/lib-docs/HRBodies/UPR/Documents/Session1/IN/YCSRR_IND_UPR_S1_2008_YouthCoalitionforSexualandReproductiveRights_uprsubmission.pdf
6. India-comprehensive sexuality education: the way forward – Arrow https://arrow.org.my/wp-content/uploads/2017/10/India-CSE-brief.pdf
7. https://scholar.google.com/scholar_url?url=https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/26318318231155993&hl=en&sa=T&oi=ucasa&ct=ufr&ei=2BEtZdySCcruygT5m5iABQ&scisig=AFWwaeZgnINGaOtqoLwEazfi-nRh
8. https://www.tarshi.net/downloads/What_Makes_Sexuality_Education_Comprehensive-a_Working_Paper_by_TARSHI.pdf
9. importance of sex education - ProBono India https://probono-india.in/Indian-Society/Paper/507_IMPORTANCE%200F%20SEX%20EDUCATIO%20BY%20AYUSH%20GOYAL%20-%20Ayush%20Goyal%200k.docx
10. Policy Brief Sexuality Education in India: Curriculum in the Sheets … https://lexquest.in/wp-content/uploads/2020/01/LQF-Policy-Brief-Sexuality-Education-in-India_-Curriculum-in-the-Sheets-Silence-in-the-Streets.pdf
11. Prevailing Need for Sex Education in the Indian Education Setting https://www.academia.edu/76799168/Prevailing_Need_for_Sex_Education_in_the_Indian_Education_Setting

12. the need of sex education in school curriculum- a case study https://www.academia.edu/76799168/Prevailing_Need_for_Sex_Education_in_the_Indian_Education_Setting
13. The journey towards comprehensive sexuality education https://cdn.who.int/media/docs/default-source/hrp/379607.pdf?sfvrsn=5b6761dc_7&download=true
14. https://en.m.wikipedia.org/wiki/sex_education
15. Apte, K. (2019, June 27). *Sexual health largely neglected, reproductive health not a priority in policy discourse*. https://yourstory.com/socialstory/2019/06/sexual-health-reproducative-health-policy-discourse

ABOUT THE AUTHOR



Dr. Harish Kumar Yadav is working an Assistant Professor in the department of B.Ed. RCU Govt. PG. College Uttarkashi, Uttarakhand. He is Post Graduate in Education, Economics and Hindi. He is UGC –NET qualified in Education and more than Ten years of Teaching and Learning experience in Teacher Education. He has published research papers, articles, and book chapters in national and international journals and books and also presented research paper at national symposiums. His research field covers inclusive education, special education, yoga education and philosophy etc. He can be contacted at yadavh101@gmail.com

CHAPTER 4

SCHOOL EDUCATION

Prof. (Dr.) Shauli Mukherjee
Professor & Director-School of Education,
Adamas University, India
Email: meetingdrmukherjee@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.04

ABSTRACT
School Education is the bedrock of a prosperous and enlightened society. It plays a multifaceted role in shaping the future of individuals and the collective destiny of nations. At its core, school education serves as a conduit for the transfer of knowledge, where young minds are exposed to a rich tapestry of subjects spanning mathematics, science, humanities, and the arts. This intellectual nourishment equips students with the fundamental building blocks to pursue their academic and career ambitions.

Yet, the significance of school education extends far beyond textbooks and classrooms. It fosters critical thinking, problem-solving skills, and a spirit of inquiry, nurturing the cognitive abilities needed to grapple with the complex challenges of the 21st century. Through interactions with peers and teachers, students learn the art of collaboration, teamwork, and effective communication, skills that are indispensable in modern society. School education, thus, serves as a crucible for the development of well-rounded, versatile individuals capable of adapting to a rapidly changing world.

Moreover, school education has a profound impact on character development and moral values. It is within the walls of schools that students are exposed to a diverse community, enabling them to cultivate empathy, tolerance, and an appreciation for cultural diversity. Ethical and moral education is instilled through curricula

and the actions of educators, nurturing responsible citizens who understand the importance of ethics and social responsibility.

Education is also a powerful tool in addressing social inequalities. Access to quality school education can bridge the gap between the privileged and the marginalized, offering opportunities to those who may not have them otherwise. It has the potential to level the playing field and ensure that all members of society, regardless of their background, have the chance to realize their potential and contribute meaningfully to their communities.

In conclusion, school education is the cornerstone of a thriving society. It equips students with the knowledge, skills, and values they need to excel academically and to become informed, engaged, and responsible citizens. It lays the foundation for lifelong learning and personal growth, ensuring that individuals can adapt to the evolving demands of the modern world. As societies continue to evolve, the role of school education remains indispensable in shaping the leaders, thinkers, and citizens of tomorrow.

KEYWORDS: *Prosperous, Critical Thinking, Problem-Solving, Collaboration, Teamwork, Social Responsibility, Lifelong Learning, Personal Growth.*

INTRODUCTION

School education, the initial rung on the educational ladder, is the fundamental cornerstone of knowledge acquisition, personal development, and the cultivation of essential life skills. It lays the groundwork for a lifetime of learning and shapes the intellectual, social, and ethical framework of students. This early phase of formal education caters to the holistic development of young minds by offering a comprehensive curriculum spanning diverse subjects, including mathematics, science, languages, humanities, and the arts. It is within the hallowed halls of schools that students embark on their intellectual journeys, gaining the basic building blocks of knowledge that will empower them in their academic pursuits and future careers.

However, school education transcends the mere transmission of facts and figures. It is a crucible where young minds are honed into critical thinkers, problem solvers, and lifelong learners. By

fostering intellectual curiosity, nurturing analytical skills, and encouraging creativity, schools prepare students to grapple with the multifaceted challenges of the rapidly evolving global landscape. Moreover, the school environment facilitates social interaction, teaching students the art of collaboration, communication, and teamwork. These essential interpersonal skills are pivotal in today's interconnected world, equipping students with the ability to navigate the complexities of diverse personal and professional relationships.

In addition to academics, school education plays a significant role in character development and the inculcation of moral values. It is here that students are not only exposed to a diverse community but also imbued with empathy, tolerance, and an appreciation for cultural diversity. Through formal curricula, as well as the actions and attitudes of educators, students are instilled with the principles of ethics and social responsibility. Thus, school education not only shapes the intellect but also molds responsible, ethical citizens who understand the importance of contributing positively to society.

Furthermore, education serves as a powerful tool in addressing social inequalities. It is the means by which individuals, regardless of their socio-economic background, can access opportunities for personal and societal advancement. Access to quality school education can level the playing field, reducing disparities and ensuring that everyone has an equal chance to realize their potential.

In conclusion, school education is the bedrock upon which the future is built. It provides students with the knowledge, skills, and values needed to succeed academically and to become informed, engaged, and responsible citizens. This initial phase of education sets the stage for a lifetime of personal and professional growth, fostering the abilities to adapt, innovate, and contribute positively to an ever-changing world. As such, it remains an indispensable element of our collective journey toward progress, enlightenment, and a brighter future.

HOLISTIC DEVELOPMENT AND SCHOOL EDUCATION

Holistic development and school education are intricately intertwined, with the latter serving as a fertile ground for nurturing the former. Holistic development encompasses the physical, intellectual, emotional, social, and moral growth of an individual, aiming to create well-rounded, balanced individuals capable of

thriving in diverse aspects of life. School education plays a pivotal role in fostering this holistic development.

In terms of intellectual growth, school education provides the structured environment and resources for students to acquire a wide range of knowledge and skills. It encourages critical thinking, problem-solving, and creativity, enabling students to develop their cognitive abilities to the fullest. Exposure to various subjects, including science, mathematics, literature, and the arts, ensures that students have a well-rounded education, enhancing their intellectual capacities.

Emotionally, school education helps students develop self-awareness, emotional intelligence, and resilience. Through interactions with peers and educators, they learn to manage their emotions, communicate effectively, and build healthy relationships. The challenges and successes they experience in school contribute significantly to their emotional growth, preparing them to cope with the ups and downs of life.

Socially, schools are microcosms of society, offering students the opportunity to interact with individuals from diverse backgrounds. This exposure cultivates tolerance, empathy, and an appreciation for cultural diversity. Students learn to work in teams, collaborate, and understand the importance of community and social responsibility. Schools often engage in extracurricular activities and community service, further enhancing students' social development.

Moral and ethical development is another essential aspect nurtured through school education. Ethics are often embedded in the curriculum, and educators model and teach values such as honesty, respect, and responsibility. These lessons play a vital role in shaping students into responsible, ethical citizens who understand the implications of their actions on a broader societal scale.

Physical development is often addressed through physical education and health programs in schools. These components help students understand the importance of maintaining a healthy lifestyle, promoting physical fitness, and adopting habits that contribute to their overall well-being.

In essence, school education is not just about academic knowledge but also about molding individuals into well-rounded, capable, and ethically responsible citizens. It provides the environment for students to grow intellectually, emotionally, socially, and morally. Thus, it plays a crucial role in fostering

holistic development and preparing students to face the challenges and opportunities of the real world with confidence and competence.

COMMUNITY ENGAGEMENT IN SCHOOL EDUCATION

Community engagement in school education is a dynamic and mutually beneficial relationship between schools and the communities they serve. It involves the active participation of various stakeholders, including parents, local residents, businesses, and organizations, in the educational process. This collaboration contributes to enriching the educational experience and strengthening the ties between the school and the community.

Parental Involvement: Parents are the first and most influential teachers in a child's life. Encouraging parents to actively participate in their children's education, attend parent-teacher meetings, and support their learning at home is a fundamental aspect of community engagement. This involvement helps create a bridge between home and school, ensuring that students receive consistent support and motivation.

- **Collaboration with Local Organizations:** Schools can partner with local businesses, nonprofit organizations, and community groups to provide additional resources and opportunities for students. This collaboration can include internships, job-shadowing programs, or educational initiatives that expose students to real-world experiences and career options.
- **Community-Driven Projects:** Involving the community in school projects and initiatives can have a meaningful impact. Schools can engage in community service projects, environmental initiatives, or cultural events that not only educate students but also benefit the community at large.
- **Resource Sharing:** Sharing resources between schools and the community can be mutually beneficial. For instance, schools can open their facilities for community use during non-school hours, while the community may provide funding or equipment for educational programs.
- **Parent-Teacher Associations (PTAs):** PTAs play a vital role in connecting parents, teachers, and administrators. They facilitate communication and collaboration, raise funds for

school projects, and advocate for policies that support the best interests of students.

- **Community Feedback and Decision-Making:** Schools can solicit input from the community regarding educational goals, curriculum development, and policy decisions. This inclusiveness ensures that the community's needs and aspirations are reflected in the educational system.
- **Cultural and Diversity Celebrations:** Recognizing and celebrating the cultural diversity within the community fosters a sense of belonging and inclusivity. Schools can organize events that showcase various cultural traditions and perspectives.
- **Community Outreach Programmes:** Schools can establish outreach programs that address community needs, such as adult education, health and wellness initiatives, or workshops on financial literacy. These programs benefit not only the students but also the broader community.

Community engagement in school education creates a symbiotic relationship that supports the growth and development of students, enhances the effectiveness of the educational system, and strengthens the ties that bind schools and their communities. It promotes a sense of shared responsibility for the well-being and success of the next generation, ensuring that education is not limited to the classroom but extends to every aspect of community life.

ROLE OF EDUCATIONAL TECHNOLOGY IN SCHOOL OF EDUCATION

Educational technology (EdTech) plays a pivotal role in modern school education, revolutionizing the way students learn, teachers instruct, and institutions operate. Here are some key roles of educational technology in the field of school education:

- **Enhanced Learning Resources:** EdTech provides a vast repository of digital resources, including e-books, interactive simulations, videos, and educational software. These resources make learning more engaging and accessible, allowing students to explore subjects in-depth, at their own pace.

- **Personalized Learning:** Educational technology can tailor learning experiences to individual students. Adaptive learning systems use data analytics to identify each student's strengths and weaknesses, adapting content and pace accordingly. This personalization enhances comprehension and retention.
- **Blended Learning:** EdTech enables a blend of traditional classroom teaching with online learning. This approach offers flexibility and customization while still allowing face-to-face interaction with teachers and peers.
- **Access to Information:** The internet and digital libraries provide students with vast amounts of information and learning materials, breaking down the barriers of geographical location and resource constraints. This access is particularly valuable for research and project-based learning.
- **Online Collaboration:** Tools for online collaboration and communication, such as Google Workspace and Learning Management Systems (LMS), facilitate group projects and peer-to-peer learning. They also enable teachers to provide immediate feedback and guidance.
- **Professional Development:** Educational technology is used for teacher training and professional development. Online courses and webinars allow educators to continually update their knowledge and skills, staying current with the latest pedagogical methods and technologies.
- **Assessment and Analytics:** EdTech provides tools for assessment and data analysis. Teachers can use these systems to create and grade assignments, quizzes, and exams. Data analytics help educators identify students who need extra support and make data-driven decisions for curriculum improvement.
- **Gamification and Engagement:** Gamification techniques and educational games make learning fun and engaging. They can motivate students to complete tasks, solve problems, and achieve learning objectives in a playful and interactive manner.
- **Accessibility:** Educational technology includes accessibility tools that cater to students with disabilities. These tools, such as screen readers and speech-to-text software, ensure that all students have equal access to education.

- **Administrative Efficiency:** EdTech streamlines administrative tasks in schools, from student registration and attendance tracking to resource allocation and communication with parents. This efficiency frees up time and resources that can be reinvested in the educational process.
- **Global Learning Opportunities:** Virtual classrooms and online platforms connect students to peers and educators around the world, fostering a global perspective and facilitating cultural exchange.
- Preparation for the Digital Age: Educational technology equips students with digital literacy skills and a familiarity with the tools and technologies they will encounter in the workforce, preparing them for success in the modern digital age.
- **Innovation and Adaptation:** EdTech encourages innovation in teaching and learning. Teachers can experiment with new tools, methodologies, and resources to adapt to changing educational needs and societal demands.

In essence, educational technology is a transformative force in school education, empowering both students and educators to achieve better learning outcomes, adapt to the demands of the 21st century, and create a more dynamic and engaging educational experience. When used effectively, EdTech has the potential to enhance educational quality and accessibility, making it an indispensable component of modern education systems.

CONTINUOUS PROFESSIONAL DEVELOPMENT OF TEACHERS

Continuous Professional Development (CPD) of teachers is a critical aspect of ensuring the quality of education and the ongoing growth and effectiveness of educators. It involves a systematic, lifelong process of learning and skill development that allows teachers to stay current with best practices and adapt to the evolving needs of their students and the education system. Here are some key elements and benefits of continuous professional development for teachers:

1. **Lifelong Learning:** CPD emphasizes that learning is an ongoing journey, not a destination. Teachers are encouraged to expand their knowledge and skills throughout their careers.

This commitment to learning helps them to be more adaptable and effective in the classroom.

2. **Updated Knowledge:** As educational theories, teaching methodologies, and subject matter evolve, teachers need to keep their knowledge up-to-date. CPD ensures that educators have access to the latest research and developments in their field.
3. **Improved Teaching Practices:** CPD provides opportunities for teachers to explore and adopt innovative teaching methods and technologies. It enables them to enhance their teaching practices, making lessons more engaging, interactive, and effective.
4. **Enhanced Student Outcomes:** When teachers engage in continuous professional development, it often leads to improved student outcomes. Teachers who are better equipped to meet the diverse needs of their students can create a more enriching and supportive learning environment.
6. **Tailored Professional Growth:** CPD allows teachers to pursue professional development that aligns with their individual goals and interests. This personalized approach empowers teachers to invest in areas they are passionate about, which can reignite their enthusiasm for teaching.
7. **Reflective Practice:** CPD encourages teachers to reflect on their teaching methods, identify areas for improvement, and make adjustments based on self-assessment and feedback. This reflective practice enhances self-awareness and effectiveness.
8. **Networking and Collaboration:** CPD often involves networking with other educators and education professionals. This collaboration can lead to the sharing of best practices, ideas, and solutions to common challenges.
9. **Adaptation to Changing Needs:** Educational systems and student demographics are continually changing. CPD equips teachers to adapt to these shifts and better serve their evolving student populations.
10. **Increased Job Satisfaction:** Teachers who engage in CPD are often more satisfied with their careers. The sense of personal and professional growth, along with the tangible improvements in teaching and learning, can boost morale and job satisfaction.

11. **Compliance with Professional Standards:** In many countries, teacher licensing and accreditation agencies require teachers to complete a certain amount of CPD to maintain their teaching credentials. Compliance with these requirements ensures that educators meet established professional standards.
12. **Regulatory and Legislative Compliance:** Compliance with state, national, or international education regulations and legislation is often a necessary component of CPD. Ensuring that teachers meet legal requirements is crucial for the functioning of educational systems.

In summary, continuous professional development is a fundamental aspect of maintaining the quality and effectiveness of education. It empowers teachers to be lifelong learners, adapt to changing educational landscapes, and deliver the best possible education to their students. Ultimately, CPD benefits not only teachers but also the students they serve and the broader educational community.

CURRICULUM ENRICHMENT IN SCHOOL EDUCATION

Curriculum enrichment in school education refers to the process of enhancing the standard curriculum with additional or supplementary content, activities, and resources. This enrichment is designed to provide students with a more comprehensive and engaging educational experience, going beyond the core curriculum to foster deeper understanding, critical thinking, and a love of learning. Here are some key aspects and benefits of curriculum enrichment in school education:

- **Diverse Learning Experiences:** Enriched curriculum offers a variety of learning experiences that cater to different learning styles and abilities. This diversity can include hands-on activities, field trips, guest speakers, and interdisciplinary projects, making learning more engaging and relevant.
- **Critical Thinking and Problem-Solving:** Enriched curriculum often incorporates activities and challenges that promote critical thinking and problem-solving skills. Students are encouraged to analyze, synthesize, and apply knowledge to real-world situations.

- **Depth of Knowledge:** Curriculum enrichment allows for a deeper exploration of topics. Rather than covering subjects superficially, students delve into specific areas of interest or study topics in greater depth, fostering a more profound understanding.
- **Cultural and Global Awareness:** Enrichment can include the study of diverse cultures, global issues, and the integration of international perspectives. This helps students develop a broader worldview and appreciate cultural diversity.
- **Interdisciplinary Learning:** Enriched curriculum may integrate multiple subject areas, emphasizing the connections between them. This interdisciplinary approach helps students see how different subjects relate to one another and to the real world.
- **Creativity and Innovation:** Enrichment activities often encourage creativity and innovation. Students are given the opportunity to express themselves through art, music, project-based learning, and other creative outlets.
- **Exposure to Contemporary Issues:** Enriched curriculum can incorporate current events, contemporary issues, and emerging trends, helping students understand the world they live in and encouraging them to become informed, responsible citizens.
- **Advanced and Specialized Courses:** For academically advanced students, enrichment can include advanced courses or specialized programs that cater to their unique talents and interests, such as advanced math, science, or arts courses.
- **Extracurricular Activities:** Schools often offer extracurricular activities such as sports, clubs, and community service opportunities as part of the enrichment process. These activities contribute to students' personal development and social skills.
- **Civic Engagement:** Enriched curriculum can include civic education and opportunities for students to engage in community service, fostering a sense of social responsibility and community involvement.
- **Lifelong Learning Skills:** Enriched curriculum not only imparts subject-specific knowledge but also equips students

with valuable skills for lifelong learning, such as research, critical analysis, and effective communication.

- **Teacher Professional Development:** Teachers involved in delivering enriched curriculum often engage in their own professional development to ensure they are equipped to deliver high-quality, engaging lessons.

Curriculum enrichment enhances the educational experience by making it more engaging, relevant, and comprehensive. It nurtures a love of learning, promotes critical thinking, and equips students with the skills and knowledge they need to succeed in a complex, ever-changing world. By providing students with opportunities to explore their interests and connect classroom learning to real-life experiences, curriculum enrichment fosters a more holistic and effective approach to education.

PEDAGOGICAL INNOVATIONS ADOPTED IN SCHOOL EDUCATION

Pedagogical Innovations in School Education represent a shift from traditional teaching methods to more dynamic, student-centered approaches that aim to enhance learning outcomes and engage students in meaningful ways. These innovations leverage technology, research-based practices, and a deeper understanding of how students learn. Here are some pedagogical innovations that have been adopted in school education:

- **Flipped Classroom:** In a flipped classroom, students review lecture materials at home (often in the form of videos or digital content) and then engage in active learning activities, discussions, and problem-solving during class time. This approach promotes deeper understanding and engagement.
- **Project-Based Learning (PBL):** PBL is an inquiry-based approach where students work on extended projects that require critical thinking, collaboration, and problem-solving. It allows students to apply their knowledge to real-world situations, fostering a deeper understanding of the subject matter.
- **Collaborative Learning:** Collaborative learning encourages students to work together on tasks and projects, promoting teamwork and communication skills. Collaborative activities can include group projects, discussions, and peer teaching.

- **Game-Based Learning:** Using educational games and gamified elements in the classroom can make learning more engaging and fun. Games can help students grasp complex concepts, develop problem-solving skills, and maintain interest in the subject matter.
- **Flipped Mastery Learning:** This approach combines elements of the flipped classroom with mastery-based learning. Students progress at their own pace, ensuring they fully understand a topic before moving on to the next. Teachers provide support and guidance as needed.
- **Inquiry-Based Learning:** This method focuses on students asking questions, conducting research, and making discoveries. It encourages curiosity, critical thinking, and independent learning.
- **Differentiated Instruction:** Differentiated instruction tailors teaching methods and content to meet the diverse needs and abilities of students. Teachers adapt their approach to ensure that each student is challenged and supported appropriately.
- **Blended Learning:** Blended learning combines face-to-face classroom instruction with online components, such as digital assignments, discussions, and multimedia resources. This approach offers flexibility and personalization.
- **Technology Integration:** The integration of technology in the classroom, such as the use of tablets, interactive whiteboards, and educational software, enhances teaching and learning by providing interactive, multimedia-rich content and tools.
- **Global and Cultural Awareness:** Schools are increasingly incorporating global and cultural perspectives into the curriculum, helping students understand and appreciate the interconnectedness of the world and the diverse cultures within it.
- **STEM Education:** Science, Technology, Engineering, and Mathematics (STEM) education emphasizes hands-on, inquiry-based learning in these fields. It prepares students for careers in these critical areas and fosters problem-solving skills.
- **Social and Emotional Learning (SEL):** SEL programs focus on developing students' social and emotional skills, such as

self-awareness, empathy, and responsible decision-making. These skills are essential for academic success and personal well-being.

- **Socratic Seminars:** Socratic seminars encourage critical thinking and open discussion. Students engage in thoughtful, respectful dialogue about a text or topic, deepening their understanding and communication skills.
- **Mindfulness and Well-being Programs:** Many schools are introducing mindfulness practices and well-being programs to help students manage stress, build resilience, and focus on their overall mental and emotional health.
- **Self-Directed Learning:** Self-directed learning empowers students to take ownership of their education, set their learning goals, and manage their progress, fostering independence and motivation.

These pedagogical innovations reflect a growing recognition that education should be student-centric, engaging, and aligned with the demands of the 21st century. Educators are continually exploring and adopting these innovative approaches to create dynamic and effective learning environments that prepare students for the challenges and opportunities of the modern world.

CONCLUSION

School Education is the cornerstone of individual development and societal progress. It provides the foundational knowledge, skills, and values that empower students to navigate the complexities of the world. School education fosters intellectual growth, critical thinking, and problem-solving abilities, preparing students for lifelong learning and adapting to a rapidly changing landscape. It also plays a significant role in character development, promoting ethics, values, and social responsibility. Additionally, school education addresses social inequalities by offering opportunities for all, irrespective of their background. It creates a sense of community and shared purpose, nurturing informed and responsible citizens.

As we move forward, it is imperative that we continue to innovate and adapt in the realm of school education. Pedagogical advancements, curriculum enrichment, and the integration of educational technology are reshaping the learning experience,

making it more engaging, relevant, and accessible. Continuous professional development for teachers ensures that educators remain effective and enthusiastic. The integration of diverse perspectives, cultural awareness, and a focus on well-being reflect the changing needs of the modern world.

In embracing these changes, we are laying the foundation for a brighter future, where education remains a dynamic force for personal growth and social progress. By acknowledging the essential role of school education and supporting its evolution, we empower future generations to meet the challenges and opportunities that lie ahead with knowledge, skill, and resilience.

REFERENCES

1. Basavarajappa (2018). Indian Higher Education: The contemporary issues by UK. *International Journal of Academic Research and Development, 3* (2), 658-660
2. Garry Jacobs Vision (2020). *Towards a Knowledge Society*. Paper prepared for New Delhi: Planning Commission.
3. Government of India (2005). *Selected Educational Statistics 2002-03*. New Delhi: Ministry of Human Resource Development, Statistics Division.
4. Government of India (2007). *Selected Educational Statistics 2004-05*. New Delhi: Ministry of Human Resource Development, Statistics Division.
5. Hoque, J. (2018). Quality Concern in Higher Education in India. *EDULIGHT*, *7* (13).
6. Nadar, R. N. (2018). Contemporary Issues and Challenges in the Indian Education System. *International Management Research Conference.*
7. Nanda, P. K. (2017). NIRF Rankings amplify Education Inequality in India.
8. National Council of Education Research and Training (2002). *Seventh All India School Education Survey: Guidelines for Survey Officers.* New Delhi: Department of Educational Surveys and Data Processing.
9. National Council of Education Research and Training (2005). *Seventh All India School Education Survey - Statistics.* New Delhi: Department of Educational Surveys and Data Processing.

10. National Council of Education Research and Training (2006). *Annual Report 2005-2006*. New Delhi: NCERT, Chapter – 12, pages 83 – 85.
11. Singh, V. P. (2002). Some Conceptual Issues on Measures of Educational Development in India. *National Journal of Education, 7*(2), 79-87.
12. Singh, V.P. & Raju, B. M. K. (2006). *Manual on Statistics and Indicators of School Education.* New Delhi: National Council of Educational Research and Training.

ABOUT THE AUTHOR



PROF. (DR.) SHAULI MUKHERJEE is a passionate academician, global thought leader and internationally acclaimed inspirational speaker with more than 21 years of expertise in the education space. She has been awarded as India's Top 50 Women Leaders in the Education Industry and Top 20 Revolutionary Education Leaders as well as among 99 Women Achievers of India for the year 2021. She has been listed among the Top 50 Most Courageous Women in Business, Leadership and Entertainment in 2022. She has been the Founder Principal of Adamas World School and the first STEM School of West Bengal which was awarded as the 2nd Best International Day School in West Bengal by Education World under her inspiring leadership. Prof. Mukherjee has also held senior academic and administrative positions in some of the reputed colleges of West Bengal. Prof. Mukherjee has 30+ publications in Scopus Indexed and other international journals along with Patents, Copyrights, Authored and Edited Books to her credit. She has been featured in 50+ national and international journals, newspapers and magazines (including Cover Features), the Convener of 200+ national and international Conferences, FDPs, Seminars, Workshops and has 300+ Invited Talks/Special Lectures as Resource Person,

Keynote Speaker, Conference Session Chair, Guest of Honour and Chief Guest in national and international Conferences/ Seminars/FDPs and Summits to her credit. Prof. Mukherjee has represented her current University in International Summits, Conclaves, Conferences and Pavilion in the UK, USA, Canada, Egypt, Kenya, Ivory Coast, South Africa, Vietnam and Bhutan. As an internationally acclaimed inspirational speaker, Prof. Mukherjee is regularly invited to numerous national and international Conferences, Universities and Conclaves to share her insights on futuristic and transformative role of education. Prof. Mukherjee is associated with premiere educational organizations across India as well as globally in senior advisory capacity. She has been the recipient of numerous prestigious awards including GEM OF INDIA Award, NATIONAL EDUCATION LEADERSHIP Award, BHARTIYA GYAN RATNA Award and WORLD PEACE Award. She is currently working as the Professor and Director of School of Education at Adamas University, India.

CHAPTER 5

HIGHER EDUCATION

Dr. Akshita Sharma
Asst. Prof (MSMSR)
Mats University, Raipur
Email: akshitasharma911990@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.05

ABSTRACT
India got its independence in the year of 1947, when India was treated as an underdeveloped country within the world. Through passage of time India develop its various base pillars for nation's growth. As we know education system is one of the important pillars for a nation development, India also put her step an away forward for the development of its education system through revising its education policy from time to time. Generally Indian education system divided in to two parts. One is School education another one is College or University level education (Higher education). The Indian school educated is based on Moral value and ethics. Whereas Indian higher education system exist on skill based practice. In present situation to resolve the crucial problem of India like unemployment, India needs the help of updated higher education practice. Here the researcher tries to visualize a descriptive analysis on Indian higher education system and the role of updated education policy (NEP-2020) in retrieving the Indian higher education system as per modern scenario.

KEYWORDS: *Higher Education, Gross Enrolment Ratio, NEP*

INTRODUCTION

Education creates a scope for nation to build people as per the nations need. No doubt education is the backbone of every nation. It also fosters a certain degree of knowledge, morals, and awareness while also being essential to the advancement of

technology. If a country has a greater literacy rate, its GDP will grow faster, and its unemployment rate will be lower. Nations are currently dealing with various issues, including a pandemic, terrorism, global warming, poverty, and gender inequality. Whether it is a day-to-day school or residential school, they play a vital role in shaping children and the country. Everyone with access to a high-quality education may help to solve these challenges and improve living conditions across the country. The ability of the human mind to radically alter civilization is vast. The most important thing to do to benefit from human intelligence is to educate people. So, let's examine some elements that make education so important to society.

Review of literature:

Hernard, 2008: As higher education systems grow and diversify, society is increasingly concerned about the quality of programmes, public assessments and international rankings of higher education institutions. However these comparisons tend to overemphasize research, using research performance as a yardstick of institutional value. If these processes fail to address the quality of teaching, it is in part because measuring teaching quality is challenging

British Council, 2014: The need to enhance the employability of graduates is presenting entry points for collaboration in enterprise education and entrepreneurship, links with industry, research skills and the wide range of transferable skills, including English. The emerging interest in Indian higher education institutions in the vocational skills market provides areas for potential engagement with international partners. There is a need to build stronger relationships and increase mutual understanding in higher education by increasing support and participation in platforms (conferences, workshops, seminars) which enable debate and dialogue with other countries of the world.

Objectives:

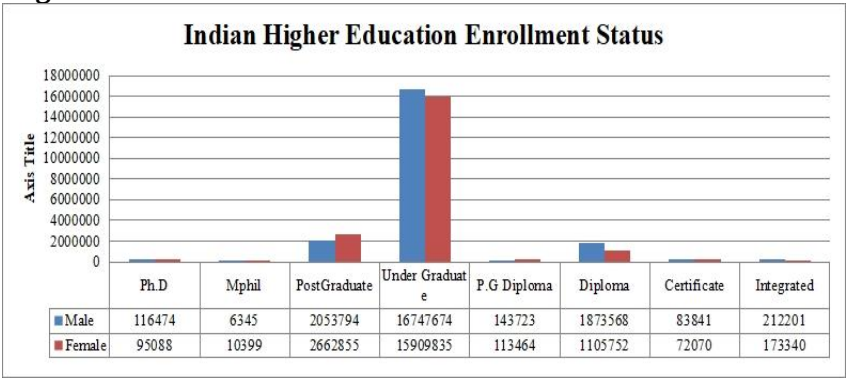
- To explore the current existence of Indian higher education system
- To explore the problems faced by the Indian higher education system for growth

- To explore the role NEP-2020 towards Indian higher education system

Research Methodology:

This is a pure descriptive analytical chapter where the researcher collects fully secondary data from different journals, books, magazine, paper etc.

Higher Education Scenario in India:



	Ph.D	Mphil	PostGraduate	Under Graduate	P.G Diploma	Diploma	Certificate	Integrated
Male	116474	6345	2053794	16747674	143723	1873568	83841	212201
Female	95088	10399	2662855	15909835	113464	1105752	72070	173340

Source: Aishe-2021

Regulatory Bodies of India conducting higher education system and Research practice:

University Grant Commission (UGC)
All India Council for Technical Education (AICTE)
Council of Architecture (COA)

Research Councils:

Indian Council of Historical Research (ICHR)
Indian Council of Social Sciences Research (ICSSR)
Indian Council of Philosophical Research (ICPR)
National Council of Rural Institute (NCRI)
Project of History of Indian Science Philosophy and Culture (PHISPC)

Challenges of Higher Education System in India:

- **Less percentage of Gross Enrolment Ratio**: Though India is declared as a country of youth and more than 50% of Indian

are within the age of 16to 25 at the age for higher education but in reality there is very less number of students are enrolled in higher education system .

- **Inadequate research infrastructure**: Though now India is going to be achieving the adjective like Vishwaguru in near future but till now Indian higher education system suffering the problems like inadequate infrastructure for research except some institute of repute.
- **Negligible out come from the research:** Though our research scholar and higher education faculties are writing research paper and it is improving from past years but till now it is not up to the standard like other developed countries.
- **Less qualitative course curriculum:** though our higher education system provides different courses under different stream but till now our course curriculum is based theoretical aspects instead of practical exposure.
- **Insufficient qualitative faculties:** Though in 21st century our higher education system develops but till now we are incapable to provide qualitative faculty with proper qualification based to each and every higher education institution.
- **Inadequate Infrastructure and Facilities:** except some repute institution, most of the higher education institution facing the problems like inadequate infrastructure (unavailability of research lab, updated library system,) etc.
- **Gap between industrial need and outcome of human recourse from Indian higher education system:** In present situation though Indian higher education system produces a huge number of graduates and post graduates in different stream but they are not capable to get the job of industry.
- **Accreditation:** As per the data provided by the NAAC, as of June 2010, "not even 25% of the total higher education institutions in the country were accredited. And among those accredited, only 30% of the universities and 45% of the colleges were found to be of quality to be ranked at 'A' level".
- **Political interference**: Most of the educational Institutions are owned by the political leaders, who are playing key role in governing bodies of the higher educational institutions. They are using the innocent students for their selfish means.

Students organize campaigns, forget their own objectives and begin to develop their careers in politics.

Different Steps taken by the government for resolving higher educational problems as well as social Issues :

- An ideal project has introduced by government of India named national digital library of eBooks on various subjects in different streams. And lunch a digital platform through which highly qualified faculty of reputed higher education institutions like like IITs, IIMs and central universities would offer online courses.
- A special project named "Udaan" introduced by government of India for girl students. Under this scheme scholarship will be available for meritorious girl students and help them in transportation facilities from schools to technical education. And also provide updated teaching and learning facility on the topic like mathematics and science at senior secondary school level by providing free resources.
- The focus of the project is to overcome the low enrolment ratio of girl students in prestigious technical institutions and enable them to receive special incentives and support so that they can join these institutions and go on to takes leadership roles in the future.
- Our central government introduced a mission named as Pandit Madan Mohan Malviya to promote a strong professional cadre of professors by addressing all the issues related to teachers, teaching pedagogy, professional development program, curriculum design, and an effective methodology for assessment and evaluation process.
- The Government of India has also introduced an ideal scheme called Unnat Bharat Abhiyan for the updation of technologies from the laboratory to the reality. Under the scheme, higher educational institutes would connect with villages and create a relation with neighborhood and help them to resolve their critical community problems .The scheme would particularly looking for the solutions of problems like water management, organic farming, renewable energy, infrastructure and livelihood.
- Rashtriya Avishkar Abhiyan has launched to revive interest in the technology among youth through support for innovative

learning based on observations and experimentation. The focus would be on learning outside the classroom through direct interaction with the environment around the educational institutions.

- Under the program of Global Initiative of Academic Networks (GIAN) India's ministry of HRD will "create a channel for US professors for providing teaching facility in the stream of science, technology, engineering, and mathematics in indian higher education institutions.

Role of NEP- 2020 for Indian Higher Education System:

Interdisciplinary education: The NEP 2020 clearly removes the problems for students like rigid opting specific subject within the specific stream. It encourages higher education institutions to offer multi-disciplinary courses that create a better scope for students to explore various subjects and fields of study.

Flexible curriculum and credit transfer: The NEP 2020 approach towards a flexible course curriculum that create an option for students to choose from a range of subjects as per their individual interests and career goals. The policy also proposes a credit-transfer system that enables students to shift between institutions without losing academic credit, thereby boosting mobility and promoting academic excellence.

Research and innovation: The NEP 2020 aims to make India a global talent hub for innovation and research by encouraging reputed higher education institutions to prioritize research and increasing investment in science and technology. The policy also recommends the establishment of a National Research Foundation to support and fund research activities across all disciplines.

Vocational education and skill development: The NEP 2020 recognizes the importance of vocational education and skill development in preparing students for the job market. It proposes the integration of vocational education into mainstream education, offering apprenticeships, and work-integrated learning programs to help students acquire relevant skills.

Online education: The NEP 2020 acknowledges the importance of technology in education and proposes the development of a comprehensive digital infrastructure for education. It encourages universities to offer online courses and blended learning models to reach a broader student population and promote access to education.

Inclusivity and Equity: The NEP 2020 places significant emphasis on promoting inclusivity and equity in education by addressing the needs of disadvantaged groups such as girls, low-income families, and students with disabilities. It also seeks to provide equal opportunities to students from all socio-economic backgrounds.

Internationalization: The NEP 2020 aims to promote internationalization by encouraging collaborations with foreign universities, attracting international students, and facilitating student and faculty exchanges. The policy also recommends the establishment of a National Education Exchange Program (NEEP) to promote educational exchanges between states.

Autonomy and accountability: The NEP 2020 proposes greater institutional autonomy and decentralization of decision-making to improve the quality and effectiveness of higher education. The policy also emphasizes the importance of accountability, transparency, and regulatory mechanisms to ensure that institutions adhere to quality standards.

Findings:

No doubt Indian higher education system grows very rapidly since last 3 decades, but this growth is not fruit full to all regions of India. As we know today India is treated as fastest growing country within the world. After introducing NEP-2020 concept in reputed higher education institutions of India, Students have a multifaceted understanding of quality in higher education. And also another benefit of involving students in quality assurance initiatives is transparency, meaning all participants see the outcomes and subsequent changes. Student participation in QA activities influences the quality of higher education process. But this development is not up to the bench mark for India. Because till now India is facing the problems like quality education with skill based approach as well as higher education for all irrespective caste, religion, status and region etc. After NEP-2020, there should be a multidisciplinary approach in higher education so that students knowledge may not be restricted only up to his own subjects. There is a need to implement innovative and transformational approach form primary to higher education level to make Indian educational system globally more relevant and competitive.

Suggestions:

- Innovative Transformational approach (Skill Based) should be implemented in Indian higher education practice.
- Each and every higher educational institution are promoting entrepreneurial approach with in their course.
- Higher educational institutions should run with qualitative approach..
- Government should fix the sufficient fund in their budget for higher educational infrastructure development.
- Government should create a scope of promoting collaboration between Indian higher education institutes and top International institutes and also generates linkage between national research laboratories and research centers of top institutions for better quality and collaborative research.
- Some advance course should be implemented by higher education system to upgrade the graduate for getting the job or become a successful entrepreneur.
- In higher education institution, there should be no political interference.
- Educational institutions management should not set up higher education institutions for profit making purpose..
- There should be compulsory implementation of NEP-2020 for multidisciplinary approach in higher education so that student's knowledge may not be restricted only up to his own subjects.

CONCLUSION

No doubt India is a country of potential youth generation. The proper use of potential youth generation will give opportunities to nation to become the Biswa Guru within the world. But the current problem for us is how to get benefits from existing opportunities and how to make them accessible to others is the matter of concern. For continuing rate of growth, there is need to not only increase but also improve the quality of higher education requirements there is an urgent need to relook at the Financial Resources, Access and Equity, Quality Standards, Relevance, infrastructure and at the end the Responsiveness.

REFERENCE

1. Shaguri, Obadya Ray (2013). Higher Education in India

Access, Equity, Quality, EAN World Congress Scholar, Global Access to Post-secondary Education.
2. Goutam Kundu (2016). Quality in Higher Education from Different Perspectives: A Literature Review. International Journal for Quality Research, 11(1) 17–34.
3. Sarrab, M., et al. (2018). Toward Educational Requirements Model for Mobile Learning Development and Adoption in Higher Education. TechTrends: Linking Research & Practice to Improve Learning, 62(6), 635-646.
4. Kumar, Anuj & Ambrish (2015). Higher Education: Growth, Challenges And Opportunities. International Journal of Arts, Humanities and Management Studies, 1(2).
5. Palomares, F. M. G. (2014). Involving students in quality assurance. University World News.
6. Younis Ahmad Sheikh (2017). Higher Education in India: Challenges and Opportunities, Journal of Education and Practice, 8(1).

ABOUT THE AUTHOR



DR. AKSHITA SHARMA has completed her M.B.A from Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur. She has done her Ph.D. in Management from Kalinga University Raipur, Chhattisgarh. She has more than 10 years of teaching experience in various colleges as university and teaching experience in management Department. Presently she is working as Assistant Professor in School of Management Studies & Research Department at MATS University, Raipur. She has published research papers, articles in national and international journals and also presented research papers at national and international seminars and workshops. Apart of this she has participated in many seminars and workshops online and offline mode.

CHAPTER 6

INCLUSIVE EDUCATION

Mr. Manash Protim Neog
Research Scholar, Department of Education
Mahapurusha Srimanta Sankaradeva Viswavidalaya
Email: manashprotimneogghy@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.06

ABSTRACT
Inclusive education is a pedagogical approach aimed at providing equal opportunities for all students, regardless of their abilities, disabilities, or diverse backgrounds. This chapter delves into the concept of inclusive education, its historical evolution, and the underlying principles that guide its implementation. We explore the benefits of inclusive education for students, teachers, and society. Additionally, we discuss the challenges and obstacles that may impede the progress of inclusive education, as well as the strategies and policies that can facilitate its successful implementation.

KEYWORDS: *Inclusive Education, Students, Progress, Disabilities, Policies etc.*

Introduction

Inclusive education is a transformative educational philosophy that embodies the idea that all students have the right to a quality education, regardless of their individual differences. It promotes an inclusive society that values diversity and offers equitable opportunities for everyone. In this chapter, we delve into the multifaceted world of inclusive education, examining its historical roots, fundamental principles, advantages, challenges, and potential solutions.

Historical Evolution of Inclusive Education

Inclusive education is not a new concept. Its roots can be traced back to ancient civilizations where educators recognized the importance of accommodating students with diverse needs. However, the modern movement towards inclusive education gained momentum in the 20th century. Key milestones in the historical evolution of inclusive education include:

Brown v. Board of Education (1954): The landmark U.S. Supreme Court case that declared segregated schools as unconstitutional, marking a significant turning point in the pursuit of educational equality.

The Salamanca Statement (1994): An international conference in Salamanca, Spain, that endorsed inclusive education as the most effective means of promoting equity and access in education.

The United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities (2006): This convention reinforced the rights of individuals with disabilities to inclusive education and called upon member states to ensure its implementation.

Principles of Inclusive Education

Inclusive education is grounded in a set of fundamental principles that guide its implementation. These principles are the cornerstones of creating an inclusive learning environment:

- **Equal Opportunity:** Every student, regardless of their abilities or background, has the right to access the same educational opportunities.
- **Diversity and Individuality:** Embrace and celebrate the diversity of students, recognizing that each individual is unique and has their own strengths and needs.
- **Collaboration:** Encourage collaboration among educators, students, parents, and the community to create an inclusive and supportive learning environment.
- **Access and Participation:** Ensure that all students have access to the general education curriculum and participate in regular classroom activities to the greatest extent possible.
- **Quality Education:** Strive for high-quality education that meets the diverse needs of students through appropriate teaching strategies, accommodations, and modifications.

Benefits of Inclusive Education

Inclusive education offers a range of benefits to students, teachers, and society as a whole. Some of the key advantages include:

- **Academic Achievement:** Inclusive education can lead to improved academic outcomes for all students as they learn from and support each other.
- **Social Integration:** It fosters social inclusion, reducing stigmatization and promoting friendships and understanding among students of diverse backgrounds.
- **Positive Attitudes:** Inclusive classrooms help students develop positive attitudes towards diversity and individual differences.
- **Teacher Professional Development:** Educators in inclusive settings enhance their skills and adaptability, improving their overall teaching capabilities.
- **Preparation for Life:** Inclusive education prepares students for life in a diverse society, teaching them essential social skills and empathy.
- **Legal and Ethical Obligations:** In many countries, there are legal and ethical obligations to provide inclusive education to all students, ensuring equal rights and opportunities.

Challenges in Implementing Inclusive Education

While inclusive education offers numerous benefits, it also presents challenges that need to be addressed:

- **Lack of Resources:** Insufficient funding and resources can hinder the implementation of inclusive education, limiting support for students with diverse needs.
- **Teacher Preparedness:** Educators may require additional training and professional development to effectively teach in inclusive classrooms.
- **Negative Attitudes:** Prejudices and biases may exist among students, parents, and educators, hindering the acceptance of inclusive practices.
- **Diverse Needs:** Meeting the diverse needs of students in an inclusive classroom can be challenging, requiring tailored strategies and resources.

- **Assessment and Evaluation:** Traditional assessment methods may not accurately measure the progress of students in inclusive settings, necessitating innovative evaluation approaches.

Strategies and Policies for Successful Implementation

To overcome the challenges and promote the successful implementation of inclusive education, various strategies and policies can be adopted :

- **Professional Development:** Offer ongoing training and support for teachers to enhance their capacity to teach students with diverse needs.
- **Universal Design for Learning (UDL):** Implement UDL principles to create flexible and inclusive curricula that address various learning styles and abilities.
- **Inclusive Curriculum Materials:** Develop and provide inclusive curriculum materials that cater to the diverse needs of students.
- **Parent and Community Engagement:** Involve parents and the community in decision-making processes and as partners in supporting inclusive education.
- **Anti-Discrimination Laws and Policies:** Enforce and strengthen anti-discrimination laws and policies to ensure that all students receive equal opportunities.
- **Accessible Infrastructure:** Invest in accessible infrastructure to make schools physically inclusive for students with physical disabilities.

Best Practices in Inclusive Education

To implement inclusive education successfully, educators and schools can adopt various best practices:

- **Professional Development:** Continuous training for teachers in areas such as differentiated instruction, Universal Design for Learning (UDL), and classroom management is essential.
- **Collaborative Planning:** Regular meetings between teachers, support staff, and parents to develop individualized education plans and strategies.
- **Flexible Curriculum:** Teachers should adapt and modify their curriculum to meet the diverse needs of their students.

- **Universal Design:** Implementing universal design principles in the classroom, such as accessible materials and technologies, to benefit all students.
- **Peer Support:** Encourage peer-to-peer support and mentorship programs to help students build positive relationships.

The Role of Teachers in Inclusive Education

Teachers are the linchpin of inclusive education. They are responsible for implementing the principles and best practices that make inclusive classrooms effective. Here are key roles and responsibilities of teachers in inclusive education:

- **Differentiation:** Teachers should differentiate their instruction to meet the individual needs of each student. This might involve using varied teaching methods, adjusting content, and providing additional support when required.
- **Classroom Environment:** Creating a welcoming and inclusive classroom environment is crucial. This includes promoting respect, empathy, and understanding among students.
- **Collaboration:** Teachers need to collaborate with special education professionals, therapists, and support staff to develop and implement individualized education plans (IEPs).
- **Continuous Learning:** Inclusive education often requires ongoing professional development to keep up with best practices, new research, and evolving approaches.
- **Advocacy:** Teachers can act as advocates for students, ensuring that they receive the necessary resources, accommodations, and support.

The Challenges Faced by Teachers

Teachers in inclusive classrooms often encounter several challenges, which are important to acknowledge:

- **Large Class Sizes:** Inclusive classrooms can be larger than traditional ones, making it more demanding for teachers to meet the diverse needs of their students.
- **Diverse Needs:** Inclusive classrooms include students with varying abilities and disabilities, which can be intellectually and emotionally challenging to address effectively.

- **Time Constraints:** Teachers often have limited time to provide the individualized attention some students require, leading to difficulties in ensuring each student's success.
- **Behavioural Issues:** Some students may exhibit behavioural challenges that require additional support and expertise.
- **Resource Limitations:** Inadequate resources, from materials to support staff, can hinder a teacher's ability to provide a high level of support for all students.

Strategies for Teachers in Inclusive Classrooms

Despite the challenges, teachers can employ a range of strategies to create inclusive classrooms that meet the diverse needs of their students:

- **Differentiated Instruction:** Tailor lessons to address the varied abilities and learning styles of students. This might involve providing additional resources, simplifying instructions, or offering advanced materials.
- **Individualized Education Plans (IEPs):** Collaborate with special education professionals and parents to develop IEPs that outline goals, accommodations, and modifications for students with disabilities.
- **Positive Behaviour Support:** Implement a positive behaviour support system to address behavioural issues, focusing on prevention, intervention, and reinforcement.
- **Peer Tutoring and Mentoring:** Encourage students to support one another. Assigning peer mentors can help students with disabilities integrate and succeed in the classroom.
- **Professional Development:** Continuously seek professional development opportunities to enhance skills in inclusive teaching, special education, and classroom management.

The Emotional Aspect of Inclusive Teaching

Inclusive education is not just a pedagogical strategy; it's a profoundly emotional endeavour for teachers. The emotional aspects of teaching in inclusive classrooms are equally important to consider:

- **Empathy:** Cultivate empathy to understand and connect with the experiences of students with disabilities. This empathy can

foster a more inclusive and compassionate classroom environment.

- **Patience:** Inclusive teaching requires extraordinary patience. Teachers may need to repeat instructions, provide additional support, and allow extra time for assignments.
- **Celebrating Progress:** Recognize and celebrate the achievements of all students, no matter how small. This can build confidence and motivation.
- **Self-Care:** Teaching in inclusive classrooms can be emotionally draining. Teachers must prioritize self-care to maintain their own well-being.
- **Parent-Teacher Collaboration:** Work closely with parents, as they can provide invaluable insights into the emotional and social needs of their children.

Parental Involvement in Inclusive Education

Parents and caregivers play a crucial role in the success of inclusive education. Their involvement can significantly affect their child's educational journey. Here are ways parents can contribute to the inclusive education process:

- **Open Communication:** Maintain open and regular communication with teachers and school staff. Share insights about your child's needs, strengths, and challenges.
- **Collaboration:** Work collaboratively with the school to create and review Individualized Education Plans (IEPs) or 504 Plans. Your input is valuable, and a collaborative approach ensures that the child's unique needs are considered.
- **Support at Home:** Support your child's learning at home by reinforcing concepts taught in school and fostering a love for learning. Create a conducive environment for homework and study.
- **Advocacy:** Be an advocate for your child's educational rights and needs. Understand the laws and regulations that protect your child's rights, and assertively advocate for appropriate support and accommodations.
- **Community Involvement:** Connect with local organizations and support groups for parents of children with disabilities. These groups can provide valuable resources, advice, and networks of support.

Challenges Faced by Parents

Parental involvement in inclusive education can be emotionally and logistically challenging. Some of the challenges parents may face include:

- **Navigating the Education System:** Understanding complex education laws and regulations can be overwhelming, and parents may need support to advocate effectively for their child.
- **Balancing Responsibilities:** Caring for a child with disabilities, especially in the context of inclusive education, can be time-consuming and emotionally demanding. Parents may find it challenging to balance their responsibilities at home and work.
- **Emotional Impact:** Parents may experience stress, anxiety, and a sense of isolation. Coping with the emotional impact of having a child with disabilities can be an ongoing challenge.
- **Advocacy Fatigue:** Consistently advocating for one's child can be draining. Parents may experience advocacy fatigue, which affects their ability to navigate the educational system effectively.
- **Logistical Challenges:** Coordinating IEP meetings, therapy appointments, and transportation can be logistically challenging for parents, particularly when their child's school is some distance away.

Strategies for Effective Parental Involvement

To overcome the challenges and ensure effective parental involvement in inclusive education, consider these strategies:

- **Education and Training:** Invest in education and training to better understand your child's specific needs and rights. Workshops, conferences, and support groups can provide valuable knowledge and resources.
- **Build a Support Network:** Connect with other parents who share similar experiences. A support network can offer emotional support and practical advice.
- **Advocacy Skills:** Develop advocacy skills to effectively communicate your child's needs to school personnel and authorities. Be assertive but respectful in your interactions.

- **Self-Care:** Prioritize self-care to manage the emotional challenges of parenting a child with disabilities. Seek support from therapists or support groups to cope with stress and anxiety.

Policy Support for Inclusive Education

Government policies and legislation are critical in promoting and sustaining inclusive education. Here is how policy support can further the cause of inclusive education:

- **Legislation:** Strong legislation, such as the Individuals with Disabilities Education Act (IDEA) in the United States, ensures that students with disabilities have access to a free and appropriate public education. Legislation outlines the rights, responsibilities, and services provided to students with disabilities and their families.
- **Funding:** Adequate financial support is essential to provide necessary resources, special education services, materials, and teacher training. Budget allocations must be sufficient to meet the diverse needs of students.
- **Professional Development:** Policies can mandate or incentivize professional development for teachers to enhance their inclusive teaching skills. This includes training in areas like differentiated instruction, Universal Design for Learning (UDL), and behaviour management.
- **Anti-Discrimination Laws:** Anti-discrimination laws should protect students from discrimination based on disability, ensuring their right to an inclusive education. These laws extend to issues such as bullying, harassment, and equal access to educational opportunities.
- **Research and Data Collection:** Policies should support research and data collection to assess the effectiveness of inclusive education programs and make informed improvements. Research helps identify best practices and areas that require attention.

Conclusion

Inclusive education is a powerful and transformative strategy that holds the promise of releasing every learner's full potential. It is a philosophy based on the belief that all students, regardless of ability, disability, or background, have the right to a high-quality

education. Inclusive education is a progressive and transformative approach to education that fosters equity, diversity, and social inclusion. Its historical evolution, underlying principles, and myriad benefits demonstrate its significance in promoting educational equality. However, the challenges it presents necessitate careful consideration and the adoption of effective strategies and policies to ensure its successful implementation. In subsequent chapters, we will delve deeper into specific aspects of inclusive education, including its impact on students with disabilities, best practices for inclusive classrooms, and the role of stakeholders in its success.

REFERENCE

1. UNESCO. (1994). The Salamanca Statement and Framework for Action on Special NeedsEducation.Retrievedfrom: https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000109799
2. Hall, T., Strangman, N., & Meyer, A. (2003). Differentiated instruction and implications for UDL implementation. Wakefield, MA: National Center on Accessing theGener alCurriculum.Retrievedfrom:http://aim.cast.org/learn/historya rchive/backgroundpapers/differentiated_instruction_udl
3. Avramidis, E., & Norwich, B. (2002). Teachers' attitudes towards integration / inclusion: A review of the literature. European Journal of Special Needs Education, 17(2), 129-147.
4. National Center on Universal Design for Learning. (n.d.). About UDL. Retrieved from: http://www.udlcenter.org/abo utudl/whatisudl
5. Friend, M., & Bursuck, W. D. (2018). Including students with special needs: A practical guide for classroom teachers. Pearson.
6. Sharma, U., & Forlin, C. (2009). An international comparison of the perceptions of inclusive education by teachers in Australia and India. International Journal of Special Education, 24(3), 75-84.
7. United Nations. (2006). Convention on the Rights of Persons with Disabilities. Retrieved from: https://www.un.org/dev elopment/desa/disabilities/convention-on-the-rights-of-persons-with-disabilities.html
8. Hall, K., & Quigley, S. (2009). Increasing social integration for students with disabilities in a mainstream high school.

Journal of Research in Special Educational Needs, 9(2), 114-123.
9. United States Department of Education. (2021). Regulations: Individuals with Disabilities Education Act (IDEA). Retrieved from: https://sites.ed.gov/idea/regulations
10. Salend, S. J., & Duhaney, L. M. G. (1999). The impact of inclusion on students with and without disabilities and their educators. Remedial and Special Education, 20(2), 114-126.
11. Soodak, L. C., & Podell, D. M. (1993). Teacher efficacy: Toward the understanding of a multi-faceted construct. Teaching and Teacher Education, 9(5-6), 401-411.
12. UNESCO. (2017). Policy guidelines on inclusion in education. Retrieved from: http://unesdoc.unesco.org/images/0024/002482/248254E.pdf

ABOUT THE AUTHOR



MR. MANASH PROTIM NEOG has completed his M.A in Education from Dibrugarh University, Assam. He has done his M.Phil. Degree in Education from Gauhati University, Assam. He has more than 6 years of teaching experience in various colleges as an Assistant Professor. He has published research papers, articles in national and international journals and presented research papers at seminars and workshops. A part of this he has participated in many seminars and workshops in online and offline mode.

CHAPTER 7

SPECIAL EDUCATION

Shivani
M.Ed. Scholar, Education
Ram Chameli Chadha Vishvas Girls College Ghaziabad, U.P.
E-Mail: chaudharyshivani1989@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.07

ABSTRACT
This comprehensive overview of special education explores its global perspective, legislative foundations, benefits, challenges, and teaching strategies. Special education is crucial in providing tailored learning experiences for students with disabilities, ensuring their access to quality education. Global conventions and frameworks, such as the UN CRPD and UDHR, highlight the fundamental right to inclusive education. In India, a robust legal framework, including the PWD Act, NPE, and RTE Act, facilitates the integration of children with disabilities into mainstream education. The review emphasizes the importance of understanding the nuanced challenges in special education, such as diverse disabilities, limited resources, and the need for inclusive practices. Additionally, it critically analyzes key literature, highlighting areas for further exploration, including the equitable implementation of legislative mandates and a more inclusive approach to intersectionality. Embracing these critical perspectives is essential for the continued enhancement of inclusive education systems worldwide.

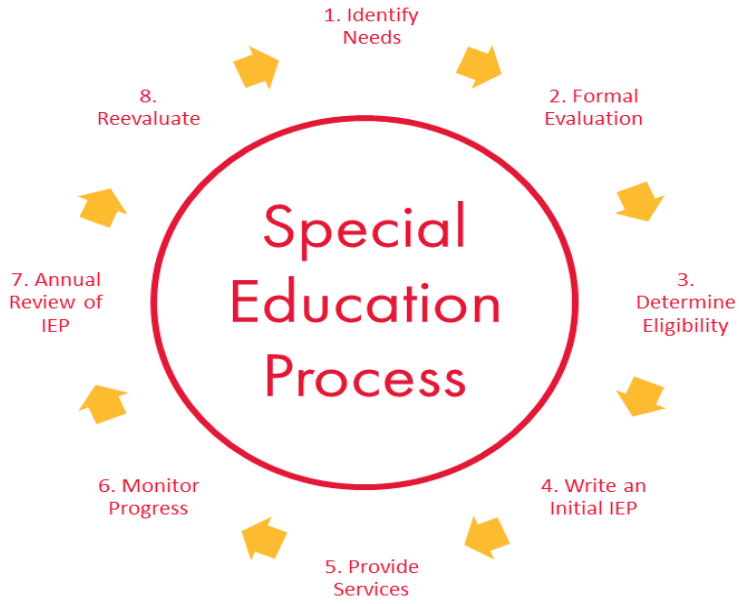
KEYWORDS: *Special Education; Disabilities; Individualized Education Programs (IEPs); Inclusive Education; Global Perspective; Legislative Foundations*

INTRODUCTION

OVERVIEW

Special education is a branch of education designed to cater to the unique learning needs of students with disabilities. These disabilities can encompass a wide range of conditions, including but not limited to learning disabilities, physical impairments, emotional or behavioral disorders, sensory impairments, and developmental challenges. The primary goal of special education is to provide a customized learning experience that enables these students to access the curriculum and achieve their educational potential. This involves a combination of specialized instruction, tailored curriculum, assistive technologies, and individualized support services. Special education programs are typically mandated by law in many countries, such as the United States (under the Individuals with Disabilities Education Act, or IDEA), to ensure that every student, regardless of their abilities or disabilities, has an equal right to quality education. The services and accommodations provided are determined through an Individualized Education Program (IEP), which is a legally binding document created collaboratively by parents, educators, and specialists. In addition to academic support, special education often involves a multidisciplinary approach that addresses social, emotional, and behavioral aspects. It aims to create an inclusive learning environment that fosters a sense of belonging, acceptance, and success for students with disabilities.

Overall, special education plays a crucial role in promoting inclusivity and equity in education, allowing students with disabilities to develop their full potential and participate meaningfully in society. It is a vital component of the broader educational system, ensuring that all learners have the opportunity to thrive academically and personally.



Sources: https://shorturl.at/inET4

GLOBAL LAWS ON SPECIAL EDUCATION

Special education laws and policies vary from country to country, reflecting the unique approaches and priorities of different nations. However, there are some international frameworks and conventions that guide the provision of education for individuals with disabilities on a global scale. Here are some of the key global laws and conventions related to special education:

United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities (CRPD): Adopted in 2006, the CRPD is a comprehensive international treaty that outlines the rights of persons with disabilities in various aspects of life, including education. Article 24 of the CRPD specifically addresses the right to inclusive education, emphasizing the right of persons with disabilities to an inclusive, quality education on an equal basis with others.

Universal Declaration of Human Rights (UDHR): While not specific to special education, the UDHR, adopted by the United Nations in 1948, sets out fundamental human rights that apply to all individuals, including those with disabilities. The principle of equal access to education is enshrined in Article 26.

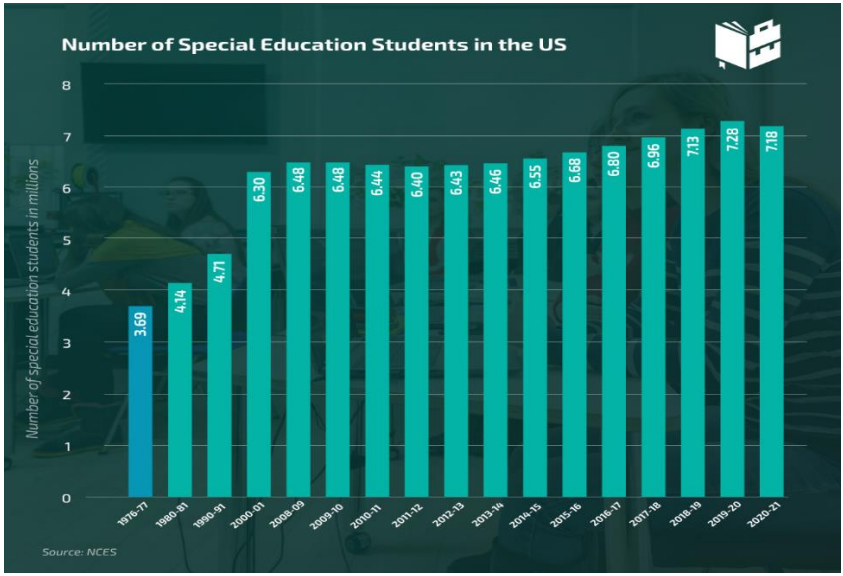
United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO) and Education for All (EFA): UNESCO is a key player in global education initiatives. The EFA movement aims to ensure quality education for all, including persons with disabilities. While EFA goals have evolved over time, inclusivity and accessibility in education remain key priorities.

World Declaration on Education for All (1990): This declaration, endorsed by 155 countries, highlighted the need for universal access to quality education and recognized the importance of addressing the diverse learning needs of all individuals, including those with disabilities.

Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education (1994): This statement, adopted by representatives of 92 governments and 25 international organizations, calls for inclusive education as a fundamental human right and outlines strategies for implementing inclusive education practices.

Incheon Declaration and Framework for Action for the Implementation of Sustainable Development Goal 4 (2015): Adopted at the World Education Forum in 2015, this declaration reaffirms the commitment to inclusive and equitable quality education for all, emphasizing that no one should be left behind.

While these international agreements provide a global framework for inclusive education, it's important to note that the specific implementation and interpretation of these principles may vary from country to country. Each nation has its own set of laws and policies that address special education within its cultural, social, and economic context.



Sources: https://shorturl.at/dwGW0

LAWS ON SPECIAL EDUCATION IN INDIA

In India, special education is governed by several laws and policies aimed at ensuring equal educational opportunities for children with disabilities. Some of the key legislations related to special education in India include:

The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995 (PWD Act): This is a comprehensive legislation that provides for the rights and entitlements of persons with disabilities, including education. It mandates the integration of children with disabilities into mainstream schools and the provision of necessary support services.

The National Policy on Education (NPE), 1986 (Revised in 1992): The NPE emphasizes the need for equal opportunities in education for all children, including those with disabilities. It encourages the integration of children with disabilities into regular schools and promotes the development of inclusive education practices.

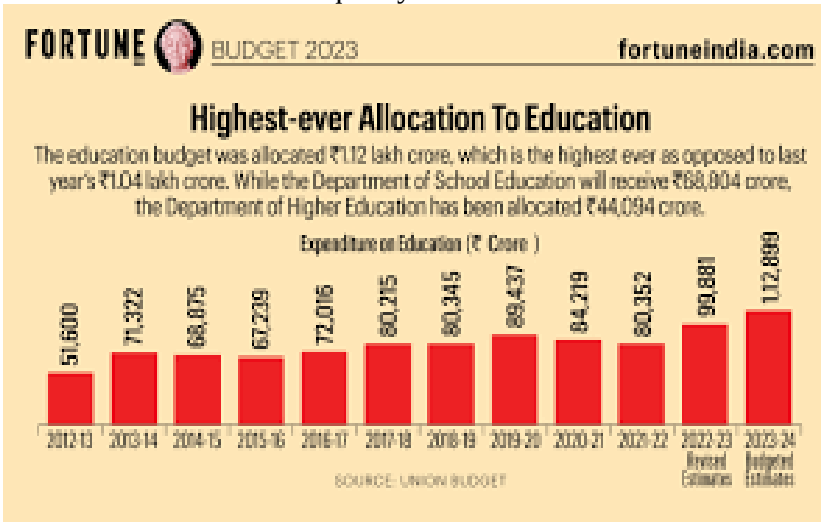
The Sarva Shiksha Abhiyan (SSA): SSA is a government program launched in 2001 to provide universal access to quality elementary education. It includes provisions for the education of children with disabilities and aims to make schools more inclusive.

The Right to Education (RTE) Act, 2009: The RTE Act is a landmark legislation that mandates free and compulsory education for all children between the ages of 6 and 14. It also emphasizes the inclusion of children with disabilities and calls for the establishment of neighborhood schools and special training for teachers to support inclusive education.

The Rehabilitation Council of India (RCI) Act, 1992: RCI is a statutory body that regulates the training and education of professionals working in the field of rehabilitation and special education. It sets standards for the recognition of special education programs and institutions.

The National Trust Act, 1999: The National Trust Act focuses on the welfare and empowerment of persons with autism, cerebral palsy, mental retardation, and multiple disabilities. It supports the creation of various programs and services, including education, for individuals with disabilities. The Mental Healthcare Act, 2017: While not specific to education, this act provides provisions for the protection and promotion of the rights of persons with mental illness, including their right to education.

These legislations collectively aim to create an inclusive and accessible educational environment for children with disabilities in India. They provide a legal framework for the rights, entitlements, and support mechanisms required to ensure that children with disabilities have access to quality education.



Sources: https://shorturl.at/iuCP7

BENEFITS

Special education offers numerous benefits to individuals with disabilities, as well as to society as a whole. Some of the key advantages of special education include:

Tailored Instruction: Special education programs are designed to meet the unique learning needs of each student. This means that instruction, curriculum, and support services are customized to address specific disabilities and learning styles.

Inclusion and Equity: Special education promotes inclusivity by ensuring that all students, regardless of their abilities or disabilities, have equal access to education. It helps to reduce barriers and create an environment where everyone can learn together.

Individualized Education Plans (IEPs): IEPs are legally binding documents that outline specific goals, accommodations, and services for each student with a disability. These plans provide a clear roadmap for educators, parents, and specialists to work together in supporting the student's academic and personal growth.

Improved Academic Performance: With tailored instruction and appropriate supports, students in special education programs can make significant academic progress. This can lead to increased self-confidence and a greater sense of accomplishment.

Enhanced Social Skills: In inclusive settings, students with disabilities have the opportunity to interact with their peers without disabilities. This interaction fosters social skills, empathy, and mutual understanding.

Development of Life Skills: Special education often includes a focus on developing essential life skills, such as communication, self-care, problem-solving, and independent living skills, which are crucial for success in adulthood.

Increased Independence: Through specialized training and support, individuals with disabilities can gain greater independence, enabling them to participate more fully in their communities and lead more self-directed lives.

Emotional and Behavioral Support: Special education programs often provide resources and strategies for addressing emotional and behavioral challenges. This can lead to improved emotional well-being and mental health.

Preparation for Employment: Special education programs aim to equip students with the skills and knowledge they need to

transition into the workforce or pursue further education. This can open up opportunities for meaningful employment and greater economic independence.

Fulfillment of Legal and Ethical Obligations: Many countries have laws and regulations in place that mandate the provision of special education services, ensuring that individuals with disabilities receive the support they need to access education on an equal basis with their peers.

Overall, special education plays a crucial role in fostering inclusion, providing tailored support, and enabling individuals with disabilities to reach their full potential in education and in life. It contributes to a more inclusive and equitable society where all individuals have the opportunity to thrive.

CHALLENGES

Special education, while incredibly important, comes with its own set of challenges. Some of the primary challenges in the field of special education include:

Diverse Range of Disabilities: Special education encompasses a wide array of disabilities, each with its own unique characteristics and learning needs. Educators must be prepared to address this diversity and provide individualized support.

Limited Resources: Special education programs often face resource constraints, including shortages of trained special education teachers, specialized materials, assistive technologies, and funding for support services.

Inclusive Practices: Striking the right balance between inclusive education (where students with disabilities learn alongside their peers without disabilities) and specialized instruction can be challenging. It requires careful planning and ongoing professional development for educators.

Parental Involvement and Advocacy: Ensuring meaningful collaboration between parents, educators, and specialists is crucial for creating effective Individualized Education Programs (IEPs) and supporting the child's learning journey. Communication and mutual understanding can sometimes be difficult to achieve.

Accessibility and Physical Accommodations: Ensuring that physical spaces, materials, and technologies are accessible to all students, regardless of their abilities, can be a significant logistical challenge.

Stigma and Social Isolation: Individuals with disabilities may face stigma, discrimination, and social isolation. Addressing these societal attitudes is an ongoing challenge in promoting inclusivity.

Behavioral Challenges: Students with disabilities may exhibit behavioral difficulties due to their unique needs. Managing these behaviors requires specialized training and strategies.

Transition Planning: Preparing students with disabilities for life beyond school, including post-secondary education, employment, and independent living, can be complex and requires careful planning.

Legislative and Policy Changes: Keeping up with evolving laws and policies in the field of special education can be a challenge for educators, administrators, and policymakers.

Cultural and Linguistic Diversity: Addressing the needs of students with disabilities from diverse cultural and linguistic backgrounds requires cultural sensitivity, appropriate assessment tools, and access to multilingual resources.

Assessment and Evaluation: Ensuring fair and accurate assessment of students with disabilities can be challenging, as traditional assessment methods may not always capture their true abilities and potential.

Professional Development: Ongoing training and development for educators and specialists in the field of special education is crucial to keep up with best practices and emerging research.

Despite these challenges, the field of special education continues to evolve, driven by a commitment to providing every student with the opportunity to learn and succeed. Efforts to address these challenges contribute to a more inclusive and equitable educational system for all learners.

WHICH IS BETTER? GENERAL EDUCATION/ SPECIAL EDUCATION/ INCLUSIVE EDUCATION

The question of whether general education, special education, or inclusive education is "better" depends on the individual needs and circumstances of each student. Each approach has its strengths and considerations:

General Education:

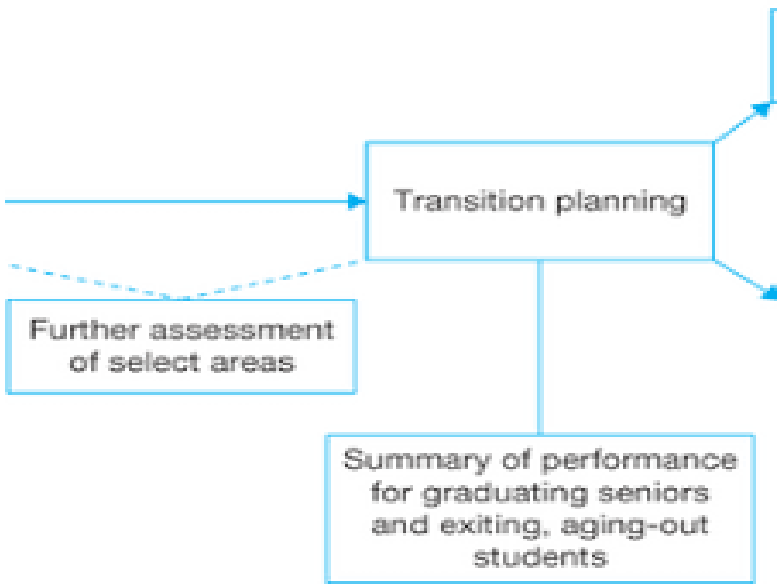
Strengths: General education provides a mainstream learning environment where students without disabilities and those with mild to moderate disabilities learn together. This environment can foster social interaction, expose students to a diverse range of peers, and promote a sense of belonging.

Considerations: Some students with more significant disabilities may struggle to keep pace with the general curriculum without additional support. In such cases, they may benefit from specialized services.

Special Education:

Strengths: Special education offers tailored instruction and support services to meet the unique needs of students with disabilities. This can be particularly effective for students with more severe or specific disabilities who may require specialized teaching methods or resources.

Considerations: While special education provides individualized attention, it's important to ensure that students do not become isolated from their peers without disabilities. Inclusion in mainstream activities can be beneficial for their social and emotional development.



Sources: https://shorturl.at/zCEX4

Inclusive Education:

Strengths: Inclusive education aims to integrate students with disabilities into mainstream classrooms, providing them with access to the general curriculum while receiving necessary accommodations and support. This approach promotes diversity, acceptance, and equal opportunities for all students.

Considerations: Inclusive education requires well-trained educators, access to appropriate resources, and a supportive school environment. Not all students may thrive in a fully inclusive setting, and some may still benefit from targeted special education services.

Ultimately, the most effective approach depends on the specific needs of the student. In many cases, a combination of approaches may be the most beneficial. For example, a student might spend most of their time in a general education classroom with additional support from special educators or related service providers as outlined in their Individualized Education Program (IEP).

The goal is to ensure that every student, regardless of their abilities or disabilities, receives an education that allows them to reach their full potential. Decisions about the best educational setting should be made on an individual basis, taking into account the student's strengths, needs, and preferences, as well as available resources and support systems.



Sources: https://shorturl.at/gqwA7

TEACHING STRATEGIES OF SPECIAL EDUCATION

Teaching special education requires a tailored approach that addresses the unique needs of each individual student. Here are some effective teaching strategies for special education:

Differentiated Instruction: This involves tailoring instruction to meet the diverse learning needs of students. It recognizes that students have different abilities, interests, and readiness levels. Teachers can provide various options for content, process, and product to accommodate these differences.

Individualized Education Plans (IEPs): IEPs are legal documents that outline the specific goals, accommodations, and services that a student with special needs requires. These plans are developed collaboratively between teachers, parents, specialists, and sometimes the students themselves.

Universal Design for Learning (UDL): UDL is an educational framework that aims to provide all students with equal opportunities to learn. It involves offering multiple means of representation, engagement, and expression to cater to different learning styles and abilities.

Multi-sensory Instruction: This approach engages multiple senses (e.g., visual, auditory, kinesthetic) to help students process information. For example, using hands-on activities, visual aids, and verbal instruction simultaneously.

Structured Environment and Routines: Establishing clear routines and providing a structured learning environment can help students with special needs feel more secure and capable of focusing on learning.

Visual Supports: Visual aids like charts, diagrams, schedules, and pictures can be especially helpful for students with autism spectrum disorders or other cognitive challenges.

Utilizing Technology: Assistive technology tools like screen readers, speech-to-text software, and specialized apps can help students with disabilities access and engage with content.

Collaborative Learning: Peer support and group work can be beneficial for special education students, as it encourages social interaction, communication skills, and the opportunity to learn from peers.

Frequent Formative Assessment: Regularly assessing students' progress through quizzes, discussions, and other methods

helps teachers understand what is and isn't working and adjust their strategies accordingly.

Positive Behavior Support (PBS): This focuses on identifying and reinforcing positive behaviors, rather than punishing negative ones. It involves creating a positive and supportive classroom environment.

Scaffolding: This involves breaking down complex tasks into smaller, more manageable steps, providing support as needed, and gradually reducing that support as the student gains confidence and skills.

Emotional and Behavioral Support: Many students with special needs may require additional support in managing their emotions and behavior. This might involve techniques like mindfulness, self-regulation strategies, and counseling services.

Culturally Responsive Teaching: Recognizing and valuing the cultural backgrounds and experiences of students is crucial for creating an inclusive and supportive learning environment.

Flexibility and Patience: Special education teachers need to be adaptable and patient. It's important to be open to modifying strategies and approaches as needed to meet each student's evolving needs.

Remember, effective teaching in special education is a dynamic process that requires ongoing assessment, reflection, and adjustment to best meet the unique needs of each student. Collaboration with specialists, parents, and the students themselves is also essential for success.

REVIEW OF RELATED LITERATURE

Special education is a critical facet of inclusive education systems, ensuring that all students, regardless of their abilities or disabilities, receive equitable opportunities for learning. The Individuals with Disabilities Education Act (IDEA) of 2004 serves as the cornerstone of special education policy in the United States, guaranteeing students with disabilities access to a free and appropriate public education (Individuals with Disabilities Education Act, 2004).

To effectively navigate the complexities of special education, educators turn to comprehensive resources that provide both theoretical foundations and practical strategies. Texts such as "Exceptional Lives: Special Education in Today's Schools" by

Turnbull, Turnbull, Shank, and Smith (2004) offer a holistic view of special education, encompassing diverse perspectives and practical applications. Similarly, "Exceptional Learners: An Introduction to Special Education" by Hallahan, Kauffman, and Pullen (2015) delves into the various dimensions of special education, emphasizing the importance of individualized approaches to meet diverse learning needs.

Understanding the legal frameworks governing special education is paramount for educators and policymakers alike. "The Law and Special Education" by Yell (2017) provides a comprehensive overview of the legal provisions and implications for students with disabilities. This text serves as an indispensable resource for ensuring compliance with legal mandates while advocating for the rights of students with special needs.

Inclusion lies at the heart of modern special education practices, emphasizing the integration of students with disabilities in general education settings. "Including Students with Special Needs: A Practical Guide for Classroom Teachers" by Friend and Bursuck (2018) provides practical strategies for creating inclusive environments that foster the academic and social growth of all students.

A critical aspect of special education involves addressing the unique needs of students with emotional or behavioral disorders. Cook and Schirmer's (2019) meta-analysis underscores the significance of specialized interventions, shedding light on the outcomes literature in this specific domain. Their work advocates for tailored approaches that consider the multifaceted needs of these students.

Consultation is a key component in ensuring the success of students with disabilities in inclusive settings. Fuchs and Fuchs (2017) examine the role of consultation in supporting inclusion, emphasizing the importance of special education teachers' knowledge and skills in collaborating with their general education counterparts.

For educators seeking practical guidance in designing educational plans, "Choosing Outcomes and Accommodations for Children (COACH): A Guide to Educational Planning for Students with Disabilities" by Giangreco, Cloninger, and Iverson (2018) serves as a valuable resource. This guide empowers educators to make informed decisions regarding accommodations and outcomes,

ultimately enhancing the educational experiences of students with disabilities.

In a rapidly evolving educational landscape, special education remains an integral component of creating inclusive learning environments. These referenced works collectively provide a comprehensive foundation for understanding the legal, theoretical, and practical dimensions of special education, equipping educators with the knowledge and strategies needed to ensure the success of all students.

Critical Analysis: Special Education Literature

The literature on special education presents a comprehensive view of the policies, practices, and challenges faced in providing equitable education to students with diverse needs. This critical analysis delves into key themes and perspectives within this body of work.

One of the central pillars in special education is the Individuals with Disabilities Education Act (IDEA) of 2004, which mandates that students with disabilities receive a free and appropriate public education. While IDEA represents a crucial legislative milestone, there are ongoing debates regarding its implementation and efficacy. Some critics argue that despite its intentions, the act can be challenging to enforce consistently across states, leading to disparities in the quality of education provided to students with disabilities.

The foundational texts such as "Exceptional Lives: Special Education in Today's Schools" and "Exceptional Learners: An Introduction to Special Education" offer comprehensive overviews of special education principles. However, they tend to be broad in scope, potentially overlooking specific nuances and emerging trends within the field. A more nuanced exploration of intersectionality and the experiences of students with multiple, intersecting identities is notably absent in these works. A critical lens could highlight the need for a more inclusive approach that addresses the unique challenges faced by marginalized groups within the special education community.

Yell's "The Law and Special Education" serves as a valuable resource in understanding the legal frameworks underpinning special education. However, it predominantly focuses on U.S. legislation, potentially excluding valuable comparative perspectives

from international contexts. This limited scope could hinder a holistic understanding of special education practices globally, impeding progress in adopting best practices from other regions.

Inclusion, a key theme in modern special education, is addressed in "Including Students with Special Needs: A Practical Guide for Classroom Teachers." While this text provides practical strategies, it may fall short in adequately addressing the complex social dynamics that can arise in inclusive classrooms. A more critical examination of power dynamics, stereotypes, and biases that influence the inclusivity agenda would add depth to the discussion.

Cook and Schirmer's meta-analysis on emotional and behavioral disorders sheds light on the outcomes literature in this domain. However, it is crucial to acknowledge that the effectiveness of interventions can be influenced by a multitude of factors, including socio-economic status, cultural background, and the quality of support systems outside of the classroom. A more nuanced analysis could explore the intersection of these variables and their impact on outcomes for students with emotional and behavioral disorders.

In summary, the literature on special education provides a valuable foundation for understanding the complexities of educating students with diverse needs. However, a critical perspective reveals areas for further exploration, including the equitable implementation of legislative mandates, a more inclusive approach to intersectionality, a global perspective on legal frameworks, a deeper examination of power dynamics in inclusive settings, and a nuanced understanding of the factors influencing intervention outcomes. Embracing these critical perspectives can lead to more effective and inclusive special education practices.

CONCLUSION

This comprehensive overview of special education has illuminated its critical role in providing tailored learning experiences for students with diverse disabilities. Special education stands as a fundamental pillar in ensuring equitable access to quality education, irrespective of one's abilities or disabilities. Through legislative mandates like the Individuals with Disabilities Education Act (IDEA) in the United States and international agreements such as the United Nations Convention on the Rights of Persons with

Disabilities (CRPD), the global commitment to inclusive education is underscored.

In India, a robust legal framework, including the Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, the National Policy on Education (NPE), and the Right to Education (RTE) Act, paves the way for the integration of children with disabilities into mainstream education. Programs like the Sarva Shiksha Abhiyan (SSA) and the Rehabilitation Council of India (RCI) Act further fortify this initiative, striving to make education inclusive and accessible nationwide.

While special education brings about numerous benefits, including tailored instruction, inclusivity, and the development of essential life skills, it is not without its challenges. Limited resources, diverse disabilities, and the need for inclusive practices are among the hurdles that educators and policymakers must navigate. Additionally, the critical analysis of related literature reveals areas for further exploration, such as the equitable implementation of legislative mandates, a more inclusive approach to intersectionality, and a nuanced understanding of intervention outcomes.

In determining the most effective educational approach, whether it be general education, special education, or inclusive education, a personalized, case-by-case evaluation is imperative. Each approach has its strengths and considerations, and a combination of methods may often be the most beneficial. The goal remains constant: to provide every student with the opportunity to learn and succeed in an environment that honors their unique abilities and needs.

In conclusion, special education is a dynamic and evolving field that plays a pivotal role in fostering inclusivity, providing tailored support, and enabling individuals with disabilities to reach their full potential in education and in life. It is through continued dedication, collaboration, and critical reflection that we can further enhance and refine inclusive education systems worldwide. By embracing a holistic perspective, we can work towards a future where every learner, regardless of their abilities or disabilities, has the opportunity to thrive and contribute meaningfully to society.

REFERENCES

1. Individuals with Disabilities Education Act of 2004. (2004). 20 U.S.C. § 1400.
2. Turnbull, A. P., Turnbull, H. R., Shank, M., & Smith, S. J. (2004). Exceptional Lives: Special Education in Today's Schools. Pearson.
3. Hallahan, D. P., Kauffman, J. M., & Pullen, P. C. (2015). Exceptional Learners: An Introduction to Special Education. Pearson.
4. Cook, B. G., & Schirmer, B. R. (2019). What is special about special education for students with emotional or behavioral disorders? A meta-analysis of the outcomes literature. Education and Treatment of Children, 42(1), 3-22.
5. Friend, M., &Bursuck, W. D. (2018). Including Students with Special Needs: A Practical Guide for Classroom Teachers. Pearson.
6. Yell, M. L. (2017). The Law and Special Education. Pearson.
7. Skrtic, T. M. (2018). Disability and Democracy: Reconstructing (Special) Education for Postmodernity. Teachers College Press.
8. Gargiulo, R. M., &Bouck, E. C. (2018). Special Education in Contemporary Society: An Introduction to Exceptionality. Sage Publications.
9. Fuchs, D., & Fuchs, L. S. (2017). Consultation as an instructional support for inclusion in general education: A focus on special education teachers' knowledge and skills. Exceptional Children, 83(4), 459-471.
10. Giangreco, M. F., Cloninger, C. J., & Iverson, V. S. (2018). Choosing outcomes and accommodations for children (COACH): A guide to educational planning for students with disabilities (3rd ed.). Paul H. Brookes *Publishing.*

ABOUT THE AUTHOR



Ms. SHIVANI has completed her B.El.Ed. from C.C.S. University Meerut & pursuing M.Ed. from Ram Chameli Chadha Vishvas Girls College Ghaziabad (UP) affiliated to C.C.S. University Meerut. She has presented many research papers, articles and chapters in both national and international seminars/workshops. She has multiple publications, both national and international. She has been recognized as A STAR ACHEIVER in RESEARCH.

CHAPTER 8

INTEGRATED EDUCATION

Parama Kundu
Assistant Professor, School of Education, Adamas University, India
Research Scholar, Department of Education, Faculty of Education
University of Technology, Vatika, Jaipur, India
Email: parama.geog@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.08

ABSTRACT
Integrated education, often referred to as inclusive education, represents a transformative approach to the educational landscape that seeks to eliminate barriers and promote the full participation of all students, regardless of their abilities, backgrounds, or differences. At its core, integrated education embodies the fundamental principle that every individual, regardless of their physical or cognitive capabilities, deserves the right to access high-quality education in a mainstream setting. This paradigm shift challenges traditional models of education that segregated students based on their perceived differences. Instead, it encourages the coexistence of students with and without disabilities in the same classrooms, fostering a learning environment where diversity is celebrated and individual strengths and weaknesses are acknowledged and accommodated.

Integrated education is a multifaceted concept that extends beyond mere physical presence in the same classrooms. It emphasizes the importance of accommodating diverse learning needs through tailored instruction, support services, and adaptive curricula. By recognizing and valuing the unique attributes of each student, integrated education aims to enhance the overall quality of education, nurturing an environment where all learners can thrive. Inclusivity does not only benefit students with disabilities; it enriches the educational experience for all students by fostering

empathy, promoting social integration, and preparing them for a world where diversity is the norm.

Furthermore, integrated education goes beyond the classroom, extending into the broader community. It promotes a more equitable society by breaking down stereotypes and prejudice, fostering a culture of acceptance, and preparing students to embrace diversity in their future endeavors. This approach aligns with international agreements such as the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, which emphasizes the right to inclusive education as a fundamental human right.

Despite the undeniable benefits of integrated education, its implementation can be complex and challenging, requiring a significant commitment from educational institutions, teachers, and policymakers. It necessitates the provision of necessary resources, teacher training, and changes in curricular practices to ensure that every student receives the support they require to succeed. The success of integrated education relies on a collaborative effort among all stakeholders to create an inclusive, welcoming, and supportive environment for every learner.

KEYWORDS: *Transformative, Cognitive, Instruction, Social Integration, Diversity, Human Right, Collaborative.*

INTRODUCTION

Integrated education, also commonly referred to as inclusive education, represents a pivotal transformation in the field of education, encapsulating a profound shift in perspective and practice. It is a pedagogical philosophy and approach that seeks to ensure equitable access to education for all individuals, regardless of their diverse backgrounds, abilities, or needs. At its heart, integrated education embodies a commitment to embracing and celebrating diversity, tearing down traditional barriers that have long segregated students based on their perceived differences. This innovative approach is underpinned by a fundamental belief in the inherent worth of every student, recognizing that every individual brings a unique set of strengths, needs, and perspectives to the learning environment. Integrated education challenges the status quo by advocating for the inclusion of students with disabilities,

exceptionalities, or differences into mainstream classrooms alongside their typically developing peers. It is not merely about physical coexistence; it extends to curricular adaptations, specialized support, and a commitment to fostering an inclusive culture that values and supports the holistic development of each learner.

Integrated education is rooted in principles of equity, social justice, and human rights. It aligns with international conventions and agreements, including the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, which underscores the right to inclusive education as an essential element of ensuring equal opportunities and participation for all. This paradigm shift extends beyond the walls of educational institutions, permeating society at large and contributing to a more inclusive and tolerant world where individuals learn to respect, appreciate, and interact with people of varying abilities, backgrounds, and perspectives.

While the concept of integrated education is undeniably noble and transformative, its successful implementation requires substantial commitment, resources, and collaborative effort from educators, policymakers, families, and communities. It demands changes in teaching strategies, curricula, and the provision of additional support services to ensure that all students have the opportunity to thrive in a unified learning environment. In essence, integrated education represents an evolving and dynamic educational landscape, one that recognizes that the true measure of a society's progress is not merely in how well it educates its elite but in how inclusively it educates all its citizens, fostering a culture that values diversity as a strength rather than a challenge.

HISTORY OF INTEGRATED EDUCATION

The history of integrated education in India is a reflection of the country's journey toward providing equitable educational opportunities for all its citizens, regardless of their abilities, backgrounds, or differences. Here is an overview of the history of integrated education in India:

- **Ancient India:** Ancient Indian education, as documented in texts such as the Rigveda, emphasized inclusive and holistic education. Ancient Indian education was not exclusive to any particular social group, and students from diverse backgrounds had access to knowledge and learning.

- **British Colonial Period:** During the British colonial rule in India, there was a hierarchical and discriminatory approach to education. British authorities often prioritized the education of the elite, while access to quality education for the masses was limited. The colonial-era education system did not promote inclusivity.
- **Post-Independence Era:** After gaining independence in 1947, India committed itself to inclusive and equitable education. The Indian Constitution, adopted in 1950, included provisions to promote equal educational opportunities for all citizens, irrespective of caste, religion, or gender.
- **Policy Framework:** In 1968, India formulated the National Policy on Education, which emphasized the importance of equal access to education. Subsequent education policies, such as the National Policy on Education (1986) and the Right to Education Act (2009), reinforced the commitment to inclusive education and the right to free and compulsory education for all children.
- **Special Education Initiatives:** India also made efforts to address the needs of children with disabilities through the establishment of special schools and institutions. However, these schools sometimes led to segregation rather than integration, which raised concerns about the quality and inclusiveness of such education.
- **Inclusive Education Initiatives:** Over the years, there has been a shift towards a more inclusive approach to education in India. The Sarva Shiksha Abhiyan (SSA) program, launched in 2000, aimed to universalize elementary education and promote the inclusion of children with disabilities. The program provided for the training of regular school teachers to better accommodate diverse learning needs.
- **Challenges and Progress:** The implementation of inclusive education in India has faced various challenges, including a shortage of trained teachers, inadequate infrastructure, and cultural attitudes. Despite these challenges, there has been progress in creating a more inclusive educational environment. Many schools in India now offer inclusive education, integrating children with disabilities into regular classrooms.

- **Advocacy and Civil Society:** Non-governmental organizations and advocacy groups have played a crucial role in promoting inclusive education in India. They have worked to raise awareness, provide support, and push for policy changes that prioritize inclusivity.
- **Legal Framework:** The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, strengthened legal provisions for inclusive education in India by mandating the provision of reasonable accommodations and support services to ensure equal educational opportunities for individuals with disabilities.

The history of integrated education in India is characterized by a shift from exclusion and discrimination to a more inclusive and equitable approach. While there have been significant policy developments and improvements in access to education, there is ongoing work to address the practical challenges and ensure that inclusive education is effectively implemented throughout the country.

OBJECTIVES OF INTEGRATED EDUCATION

The objectives of integrated education, also known as inclusive education, are multifaceted and reflect a commitment to providing equitable educational opportunities for all individuals, regardless of their abilities, backgrounds, or differences. These objectives aim to create an inclusive learning environment that fosters the holistic development of every student. Here are the key objectives of integrated education:

- **Equal Access to Quality Education:** The primary objective of integrated education is to ensure that all students, including those with disabilities, diverse learning needs, or exceptionalities, have equal access to a quality education. It seeks to eliminate discriminatory barriers that may hinder access to educational opportunities.
- **Promoting Inclusivity:** Integrated education aims to create a learning environment where students of all abilities and backgrounds can learn and interact together. It promotes a culture of acceptance, respect, and inclusivity, ensuring that students feel valued and belong.
- **Respect for Diversity:** Integrated education recognizes and celebrates the diversity of learners. It encourages an

appreciation of different abilities, cultures, languages, and perspectives. This objective aligns with the broader goals of promoting social harmony and combating prejudice and discrimination.

- **Individualized Support:** Integrated education acknowledges that each student is unique and may have different learning needs. It aims to provide tailored support and accommodations to help every student reach their full potential. This may include specialized instruction, assistive technologies, or individualized education plans.
- **Holistic Development:** Integrated education places a strong emphasis on the holistic development of students. It seeks to nurture not only their academic growth but also their social, emotional, and physical well-being. This approach is in line with the belief that education should prepare individuals for full and active participation in society.
- **Inclusive School Environments:** Integrated education aims to create inclusive school environments where both physical and attitudinal barriers are removed. This includes making school facilities accessible and providing training to teachers and staff to better meet the diverse needs of their students.
- **Mainstreaming Students:** One of the key objectives is to promote the mainstreaming of students with disabilities into regular classrooms alongside their typically developing peers. This approach challenges the practice of segregating students and encourages their participation in general education settings.
- **Empowerment:** Integrated education seeks to empower students to become self-advocates, develop self-confidence, and take an active role in their own educational journeys. It aims to equip them with the skills and knowledge needed to navigate the world beyond the classroom.
- **Legal and Human Rights:** Integrated education is often guided by legal and human rights principles, ensuring that the rights of all individuals to access education are upheld. This includes adherence to international agreements like the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities.
- **Preparation for a Diverse Society:** Integrated education recognizes that students must be prepared for life in a diverse

and inclusive society. It aims to equip them with the skills and attitudes needed to interact, work, and thrive in a world where diversity is the norm.

These objectives collectively reflect the broader aim of integrated education, which is to create a more just, inclusive, and equitable educational system and, by extension, a more inclusive and accepting society.

FEATURES OF INTEGRATED EDUCATION

Integrated education, also known as inclusive education, is characterized by several key features that distinguish it from traditional education models. These features are designed to create an inclusive and equitable learning environment for all students, regardless of their abilities, backgrounds, or differences. Here are the main features of integrated education:

- **Diversity and Inclusion:** Integrated education embraces and celebrates diversity, recognizing that all students, regardless of their abilities, backgrounds, or exceptionalities, have a place in the regular educational setting. It promotes the inclusion of students with disabilities and diverse learning needs.
- **Equal Access:** Integrated education ensures equal access to quality education for all students. It eliminates discriminatory barriers that may hinder a student's participation in the learning process.
- **Mainstreaming:** A central feature of integrated education is the practice of mainstreaming students with disabilities or exceptionalities into regular classrooms alongside their typically developing peers. This challenges the segregation of students and fosters their participation in general education settings.
- **Individualized Support:** Integrated education recognizes that each student is unique and may have different learning needs. It aims to provide tailored support and accommodations to help students reach their full potential. This support may include specialized instruction, assistive technologies, or individualized education plans (IEPs).
- **Collaboration:** Collaboration is key in integrated education. Teachers, support staff, and families work together to ensure

that students receive the support they need. Collaboration extends to curriculum adaptation and lesson planning to accommodate diverse learning styles and abilities.

- **Inclusive School Environments:** Integrated education seeks to create inclusive school environments where both physical and attitudinal barriers are removed. Schools are designed to be accessible, and teachers and staff receive training to meet the diverse needs of their students.
- **Universal Design for Learning (UDL):** UDL is an educational framework that is often associated with integrated education. It focuses on designing curriculum and instructional materials that are accessible to all students, with a variety of learning preferences and abilities.
- **Flexibility and Differentiation:** Integrated education encourages teachers to employ flexible teaching methods and differentiate instruction to meet the needs of all students. This might involve using various teaching strategies, adjusting pacing, and adapting assessments.

These features collectively create a more inclusive, equitable, and accepting educational environment that values the diversity of its students and aims to provide them with the tools they need to succeed and thrive in society.

SCOPE OF INTEGRATED EDUCATION

The scope of integrated education, also known as inclusive education, is vast and encompasses various aspects of the educational system, from policy development to classroom practices. It extends beyond the boundaries of traditional education, promoting inclusivity, equity, and diversity. Here are key areas within the scope of integrated education:

- **Policy and Legislation:** Integrated education often begins with the formulation of policies and legislation that promote inclusive practices. Governments and educational authorities develop and implement legal frameworks that ensure equal access to education for all students, including those with disabilities, exceptionalities, and diverse learning needs.
- **Curriculum and Instruction:** The scope of integrated education encompasses the development of a curriculum that is flexible and adaptable to meet the diverse needs of students.

It involves the creation of instructional materials, teaching strategies, and differentiated instruction to address a wide range of abilities and learning styles.

- **Teacher Training and Professional Development:** Integrated education requires teachers to receive training and ongoing professional development to effectively support students with diverse needs. This training covers inclusive teaching methods, understanding and addressing disabilities, and strategies for classroom management in inclusive settings.
- **Support Services:** The scope includes the provision of support services such as speech therapy, occupational therapy, and special education support within regular classrooms. These services aim to help students with disabilities or exceptionalities access the curriculum and succeed in their studies.
- **Assessment and Evaluation:** Integrated education encompasses the adaptation of assessment and evaluation methods to accommodate diverse learning needs. This includes alternative assessment methods and the use of individualized assessments when necessary.
- **Parent and Community Involvement:** Integrated education extends to engaging parents and communities in the educational process. Parents of students with disabilities and exceptionalities are included in decision-making processes and provided with information and resources to support their children's education.
- **Collaboration:** The scope involves fostering collaboration among educators, support staff, and specialists to ensure that students receive the necessary support and accommodations. Collaboration can occur within schools and with external agencies or service providers.
- **School Environment:** Integrated education requires schools to create physically and attitudinally inclusive environments. This encompasses accessible infrastructure, facilities, and the removal of any discriminatory attitudes that may hinder the inclusion of students with disabilities.
- **Advocacy and Awareness:** Advocacy for integrated education is an essential aspect of its scope. This includes raising awareness about the benefits of inclusive education,

combating stereotypes and prejudice, and advocating for the rights of all students to access quality education.

The scope of integrated education is comprehensive and evolving, reflecting a commitment to creating an inclusive and equitable educational system that values diversity, fosters respect, and ensures that every student has the opportunity to learn and thrive.

DESIGN FOR AN INTEGRATED STRATEGY OF EDUCATION

A design for an integrated strategy for education has to evolve from national priorities resource constraints and the essential inter dependence of different programmes. Seen from this angle it appears that the national goals of development, integration, excellence and equity cannot be fulfilled without ensuring that every child in the country crosses a minimum threshold of educational attainment Even for facing the challenges of today a minimum level of education is essential for the development of individual personality, appreciation of the constraints and potentials of environment internalizing a value system, imbibing an awareness of social responsibilities and the acquisition of specific capabilities to deal with life. In the years to come a general spread of this level of education will become crucial to survival hence, universlisation of elementary education has to be one of the essential ingredients of a national strategy. The emphasis on universlisation is important for another reason. Unless it is there, concern with drop-outs will not assume the urgency it deserves.

At the other end of the scale, the national strategy of education has to ensure the availability of highly educated trained and motivated manpower for dealing with the challenges which are inherent in the modernization and globalization of the economy. India has to be able to complete with the most advanced countries in many field of production to hold its own. Hence the inescapable need for setting up and maintaining institutions of excellence at all level to tap the best talent and nurture it with care and competence.

A system of production and management based on highly sophisticated technologies cannot survive unless the service sector and the infrastructural facilities are also modernized. This requires large scale vocationalization to produce a large body of skilled

technicians trained in polytechnics, vocational streams of secondary education. I.T.I & Community polytechnics and other institutions appropriately organized and equipped with the requirements of the processes of training. The educational objectives mentioned above and many other objects dependent on the values, attitudes and the participation of the people cannot be achieved n an atmosphere of ignorance and apathy, either to value of education or to the requirements of population control, health and hygiene, ecology and environment, peace and order and other imperatives of national integrity and survival a Massive programme of Adult Education supported by all the media and all the educated citizens, therefore become a crucial prerequisite. A total atmosphere for development, hard work and excellence can be built up only through a programme which involves everybody as a promoter as well as a recipient of new attitudes and ideas.

In broad terms the task of evolving the New Education policy would consists of laying down a long-term strategy for education in which the requirements of universlisation of elementary education, production of Sophisticated manpower in adequate numbers to deal creatively with new technologies diversified vocationalisation and the creation of an overall environment for change and development through adult and continuing education would be integrated with measures to improve the quality and outputs of all other educational sections. In this integrated strategy specific roles will have to be assigned to different agencies for drawing up and implementing detailed programmes. To ensure functional and sequential complementariness, it will be necessary to set forth the framework for interaction and integration.

CONCLUSION

Integrated Education represents a transformative and vital approach to the field of education. It is rooted in the principles of equality, diversity, and human rights, seeking to provide equitable educational opportunities for all individuals, regardless of their abilities, backgrounds, or differences. The key objectives of integrated education are to create an inclusive and accepting learning environment, eliminate barriers to access, and promote holistic development for every student.

Integrated education stands as a testament to the belief that diversity is a strength, not a hindrance, and that every individual has

a place in the educational system. By breaking down the walls of segregation and fostering an environment of inclusivity, integrated education not only benefits students with disabilities but enriches the educational experience for all learners. It cultivates empathy, social integration, and prepares students for a world where diversity is the norm.

While integrated education has made significant progress, there are challenges that persist, such as the need for resources, teacher training, and a shift in attitudes. Yet, the commitment to inclusivity remains unwavering, with advocacy groups, educators, policymakers, and communities working together to create a more just and equitable educational system.

Integrated education is not limited to the classroom; it extends to the broader community and reflects a vision of a more inclusive and tolerant society. The journey of integrated education is a journey toward a world where the value of diversity is recognized, where every individual's unique abilities and perspectives are embraced, and where education is a powerful force for social change.

In this ever-evolving landscape, integrated education remains an aspirational goal, one that reflects the moral imperative to ensure that education is a fundamental right for all and a cornerstone for building a more inclusive, equitable, and accepting future.

REFERENCES

1. Das, K.Ajay et.al (2013). Inclusive Education i n India: are the teachers prepared? International journal of special education. Vol 28, no: 1.
2. Developing Inclusive Teacher Education edited by Tony Booth, Kari Nes, Marit Strømstad 2003
3. European Journal of Business and Social Sciences, Vol. 1, No. 5, pp 54-69, August 2012.
4. Farrell, P., & Tsakalidou, K. (1999). Recent trends in the re-integration of pupils with emotional and behavioral difficulties in the United Kingdom. School Psychology International, 20(4), 323- 337.
5. Guidelines for Inclusion: Ensuring Access to Education for All UNESCO 2005
6. Hammond, H., & Ingalls, L. (2003). Teachers Attitudes toward Inclusion : Survey Results from Elementary School

Teachers in Three South-western Rural School Districts. Rural Special Education Quarterly, 22(2), 24-30

7. ICT in Education for People with Special Needs: Specialized Training Course, United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (2006)
8. Inclusive Education for Children with Disabilities by CRS/Vietnam (2007)
9. Jelas, Z. M. (2010). Learner Diversity and Inclusive Education: A New Paradigm for Teacher Education in Malaysia. International Conference on Learner Diversity 2010. Procedia Social and Behavioral Sciences, 7(C), 201–204.
10. Learning for All: Guidelines on the Inclusion of Learners with Disabilities in Open and Distance Learning UNESCO 2016
11. Lucheia Graves MAT, MBA, Ed.S. (cand.) Reidsville High School (North Carolina, USA)
12. MacFarlane, K. & Woolfson, L. M. (2013). Teacher attitudes and behavior toward the inclusion of children with social, emotional and behavioral difficulties in mainstream schools: An application of the theory of planned behaviour. Teaching and Teacher Education, 29 (2013), 46-52.
13. Mark A. Lamport, Ph.D. Liberty University (Virginia, USA); Colorado Christian University (Colorado, USA) Evangelische Theologische Faculteit (Leuven, Belgium); Instituto Biblico Portuges (Lisbon, Portugal)
14. Sanjeev, Kumar & Kumar, Khagendra (2007). Inclusive Education in India. Electronic Journal for Inclusive Education. Vol. 2 No. 2.
15. Sarva Shiksha Abhiyan: framework for implementation (2011) Department of School Education and Literacy .Ministry of Human Resource and Development. Govt.of India.
16. Shareefa, M. (2016). *Institutional and Teacher Readiness for Inclusive Education in Schools of Hithadhoo, Addu, Maldives: A Study of the Perceptions of Teachers.* International Journal Of Scientific & Technology Research, 5(7), Issn 2277-8616

ABOUT THE AUTHOR



MS. PARAMA KUNDU has been an inspiring teacher for over 11.3 years. She has helped many young students to become successful teachers throughout her career. She has been teaching both B.Ed. and M.Ed. students in her engagements. Apart from that, she is also involved with IGNOU as a counsellor to help students who are not able to attend regular college education. She has spent majority of her life in Santiniketan and have pursued her education from Viswa Bharati University. She finished her B.Ed from Viswa Bharati in 2010. She has completed Masters in Geography and M.Ed. degree from Sikkim Central University in 2012. She qualified UGC NET in 2012. Currently, she is pursuing her Ph.D. in Education. She has multiple publications, both national and international. She has presented her researcher papers in as many as 10 seminars across India and abroad. She has 14 published papers in noted journals in India out of which 2 are UGC care listed. She has authored 2 books and contributed chapter in 7 other books on Educations and student psychology. She is also the editorial board member of Asia Pacific Journal of Advanced Education and Technology, Phillipines. She is also a member of multiple university level committees. Apart from being the SPOC for University Students Affairs for School of Education and the Coordinator of International Relations, School of Education, she also is a member of various committees. Notable among them are School level Coordinator of Adamas Global Summit, Member of University Social Responsibility Cell for School of Education, Member of Future University Project and NAAC Fulfillment School Campion for School of Education. Apart from being a teacher, Mrs. Kundu is also an active social worker. She was awarded the Dr. Ebere Nweze

Woman of Worth Award for 2022 as recognition for her work. She also been selected as “Most Punctual Teacher Award” from Adamas University and also been awarded “Best Teacher Award” by INSC.

CHAPTER 9

VOCATIONAL EDUCATION

Dr. Manohar Lal
Assistant Professor
Swami Ganesha nand Snatan Dharam College of Education,
Uchana Kalan Jind Haryana
Email: lal123drcet@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.09

ABSTRACT
Vocational training develops the skills people need to satisfy economic needs and stay employed. It might be characterized as skill-focused education. Today, every country needs a strong system of vocational education. Education in the trades fosters economic growth. The value of education, particularly career preparation, is acknowledged by the Indian educational system. The National Council for Vocational Training was founded by the Indian government and is an advisory body that plays a pivotal role in the advancement of vocational education in India. Despite this, India is experiencing trouble implementing vocational education in a few places. This essay looks at the problems with vocational education in India and the innovative approaches being used to increase young employability and, eventually, sustainability.

KEYWORDS: *Vocational Education, Vocational Training, Skill base education, Sustainability*

Introduction

Vocational training develops the skills people need to satisfy economic needs and stay employed. Education focused on a profession or line of work is referred to as vocational education. It provides many levels of training for a variety of vocations, crafts, and trades in all facets of life. Giving young people access to high-quality vocational education will boost their

behavior, productivity, and potential, making it a wise investment. It entails a variety of practical tasks and consists of practical courses through which one can gain knowledge and experience directly related to a future vocation. It aids in students' skill development, which opens up job prospects. Today, vocational education is becoming more and more crucial since equipping young people with the necessary information and abilities may guarantee both their maximal skill development and the advancement of the country as a whole as well as economic growth. Students who receive vocational education are more likely to find jobs since it allows them to specialize. One of the main advantages of vocational education is the ability to pursue a job of one's choosing. Additionally, some skills learned in vocational education help students understand the value of hard labour.

What is Vocational Education?

Vocational education is defined as "education based on occupation and employment." Technical and vocational education and training (TVET) or career and technical education (CTE) are other terms used to describe vocational education.It provides varying degrees of training for vocations, trades, and crafts in many facets of life. It has a variety of beneficial duties. Because the student has practical expertise in a particular set of abilities, it is sometimes referred to as technical education. Vocational education is linked to the old apprenticeship system of education. Put another way, procedural knowledge training might be included in the category of vocational education. The majority of courses in vocational education are hands-on, allowing students to gain experience and information that will be immediately applicable to their future employment. Increasing students' skill sets opens up more professional options.

The argument is that this individual needs practical educations for certain of its jobs, therefore education is not just the transmission of knowledge from trainer to student. A vocational development program teaches the practical skills necessary to participate in a certain occupational activity while concentrating on a particular trade. In addition to giving people access to work possibilities, vocational development also boosts business productivity. A program for vocational development includes all

formal and informal skill transfers needed to enhance a society's productive endeavors.

Over the next ten years, vocational education will gradually become a part of every school and higher education institution. Based on a mapping of local opportunities and an examination of skills gaps, vocational education focus areas will be selected. To manage this initiative, MHRD will form a National Committee for the Integration of Vocational Education (NCIVE), which will be composed of members from all Ministries and vocational education specialists, working in conjunction with business.

To assist expand the reach of vocational education, individual early adopter institutions must innovate to uncover models and practices that succeed, then share them with other institutions using NCIVE-established procedures. Higher education institutions will also be experimenting with various kinds of apprenticeships and vocational education. Higher education institutions will establish incubators in collaboration with business.

The objectives of Vocational Education are to: fulfil the national goals of development and the removal of unemployment and destitution; impart education relevant to productivity, economic development and individual prosperity; meet the needs of skilled and middle level manpower for the growing sectors of economy, both organized and unorganized; attract a sizeable segment of population to varied vocational courses so as to reduce the'rush to tertiary level of education; prepare students for self-reliance and gainful employment.

Objectives of the Study

1. To understand the importance of vocational education
2. To know the challenges of implementing vocational education
3. To give suggestions for proper implementation of vocational education

Methodology

The present study is mainly established on secondary data which are gathered from renowned research articles, journals, position papers, etc. and are all related to "Vocational Education".

Need of Vocational education:

Vocational education is gaining tremendous importance in our country in recent years. The lack of employability as an outcome of the education system has given rise to the need for skill based education. The development and economic growth of India will be accelerated if the youth of our country get vocational education and acquire relevant skills. Right from the Wardha scheme of Basic education (1937) to Kothari commission (1964) to UNESCO (2013) to NPE (1968, 1986 and 2020) all have laid specific importance to Vocational. Central and the State Government are emphasizing on building skilled human resources. The National Skill Development Corporation has been established to further implement this objective. However, at present Vocational Education and training system is fragmented, unregulated and lacks quality. Therefore there is a need to redefine the objectives of Vocational Education, Training and Skill Development so as to align with the changing environment and industrial needs.

Problems of Vocational Education in the Present Education System

Even though there have been many tangible accomplishments, a number of issues have been seen at the field level, which has led to an underutilization of the capacity developed. The program has not received micro-level attention in several States due to weak or nonexistent management structures, poor industry links, a lack of district vocational surveys, and a lack of teacher training. Additionally, the vocational graduates' gained abilities have not been sufficiently supported to elevate their standing in the professional market.

Review Of The Related Literature

In Kumar Pradeep (2015) study "Challenges of Vocational Education System in India," noted that in order to address the issues of capacity, quality, and utilization across vocational education, various stakeholders—including the government, corporate sector, social business, and non-profit organizations—need to work together in an ecosystem. A complex set of factors, including demographic changes, economic and labour market reform, the education system, industry engagement, and upward social mobility for disadvantaged socioeconomic groups, all play a role in the

problem of increasing employability via enhancing vocational education.

According to Kaushik Kusum (2014) "Vocational education in India," only industrial training colleges and engineering trades have had success with vocational training in India. Therefore, it is urgently necessary to redefine the essential components of imparting vocational education and training to make them flexible, contemporary, relevant, inclusive, and creative in order for vocational education to play its part effectively in the changing national context and for India to reap the benefits of the technical fields.

Prof Kedareshubhangi conducted a research on "Vocational education and training in India-current scenario" that short-term training might be provided in degree colleges alongside graduation. Additionally, universities and colleges may host a variety of forums where business professionals can discuss the skills that are needed in the market with young people, such an education-industry conclave.

Aithal Shubhrajyotsna &Aithal P.S. (2020) in their research In order to promote self-dependency after the age of 18, it was recommended in "Analysis of the Indian National Education Policy 2020 towards achieving its Objectives" that students should develop skills in their chosen fields and engage in some form of economic or productive activity. This would help to lessen their dependence on their parents. This is made feasible by providing them with practical training and boosting their confidence while they study. By providing more credits to the Academic Bank of Credits (ABC), the earn as you study model of vocational training may be expanded at the higher education level. And in addition to core courses, non-core subjects, and optional topics, the undergraduate program should be structured to include two skill-based subjects that focus on employability skills and entrepreneur ability skills, respectively. Continuous internal assessment rather than semester-ending tests should be the preferred method of evaluation for these skill-based courses. The kids are more likely to pick an entrepreneurial profession thanks to such an inventive concept.

India's development process places a strong focus on education. National development was elevated to the top priority of education in the Education Commission's report from 1966–1964. The important opening line of the study, titled Education for

National Development, reads, "The destiny of India is now being shaped in her classroom." The Commission recommended reorganizing education into a standard 10+2+3 pattern that would apply throughout the nation and include ten years of unequal instruction for all students with diversification into academic and vocational streams at the +2 level. The Work Experience Program (WEP) in general education and the Vocationalization of Education Program (VEP) in secondary school were given prominence in the plans for educational reform.

Young people between the ages of 14 and 18 are supposed to be prepared for the workforce and admittance into higher education through secondary school, which acts as a transitional period between primary and higher education. The NSSO anticipated a population of 9.66 crores of relevant pupils at the secondary and upper secondary levels in 1996–1997. Only 2.70 crore of this population attended school in 1997–98, according to the enrolment data. As a result, 66% of the people who are qualified do not attend school. We have 1.10 lakh institutions to house the students in secondary schools (1998–1999). The emphasis on universalizing primary education and initiatives like the District Primary Education Program will inevitably lead to an increase in enrollment, and once this happens, we may need more than two lakh secondary schools to accommodate them.

The purpose of vocational education in this country is to provide the labour force needed for social mobility and sustained national growth. The creation of goods and services of the highest quality and standard is only possible with the help of vocationally competent people who have been developed via a need-based, suitable, and relevant education and professionally sound training program. This is necessary to preserve economic viability in a worldwide market economy. In order to prepare the desired manpower and support national development, the Vocational Education Programme (VEP) must take into account the ongoing and emerging social, economic, political, and environmental implications of rapid scientific and technological change.

The national goal of voc ational education is to fulfil the manpower requirement for sustainable national development and social requirement for employment. It is vocationally competent persons developed through a need based, adequate and appropriate education and professionally sound training programme, which can

ensure production of goods and services of the highest quality and standard to maintain economic viability in a globalized market economy. The Vocational Education Programme (VEP) must take into account the ongoing and emerging social, economic, political and environmental implications of rapid scientific and technological changes as well as other global trends in order to prepare desired manpower and contribute to national development. The purpose of the article is to offer a comprehensive overview of the changes in the preparation of middle level human resources and the provision of competelcies/skills to learners through vocational education programs in order to lessen the mismatch between supply and demand of human resources.

Government Role

It is imperative that the essential components of providing vocational education and training be redefined in order to make them flexible, modern, relevant, inclusive, and creative in order for vocational education to effectively contribute to the changing national context and for India to reap the benefits of the technical fields. The government has already taken a number of significant steps in this area because it recognizes the vital role that vocational education plays. The Central Government is creating a "National Vocational Qualifications Framework" to encourage and promote changes in skill development and to allow nationally standardized, accepted, and international comparability of qualifications. In order to create recommendations for such a National Framework, the Central Advisory Board of Education (CABE) has decided to form an interministerial committee that would also include members from State Governments.

Conclusion

Vocational training is now recognized as a critical component of a nation's growth. If all of the young people in a country like India, where the youth population is growing daily, are taught to become highly competent workers, the economy would grow. But because practically no institutions offer vocation training, pupils do not acquire the necessary skills. It will have a significant influence on improving skills and employability if essential steps are done, such as integrating vocational education into regular education and

choosing priority areas based on skills gap analysis and mapping of local possibilities.

REFERENCE

1. Aggarwal J.C.(2014) Educational vocational guidance and counseling, Doaba house booksellers and publishers 1688.
2. Aithal Shubhrajyotsna &Aithal P.S. (2020) "Analysis of the Indian National Education policy 2020 towards achieving its objectives" International journal of management, technology, and social sciences (IJMTS) ISSN: 2581-6012, Vol. 5, No 2.
3. Kuimar Pradeep (2015) "challenges of vocational education system in India" International journal of multidisciplinary research and development, Volume:2, Issue:9, 310-315, e-ISSN:2349-4182, p- ISSN:2349-5979.
4. Kaushik Kusum (2014) "Vocational education inIndia" International journal of Education andInformation studies, ISSN 2277-3169 volume4, Number 1, PP55-58, Research India Publications.
5. National Education Policy 2020, Ministry of Human Resource Development Government of India.
6. Prof Kedareshubhangi "vocational education and training in India-current scenario" Tactfulmanagement research journal, ISSN:2319-7943.
7. Sharma,J. (2016). A study of status problem faced by the schools under the Directorate of Education at +2 Level. Unpublished Ph.D. Thesis New Delhi: Jamia Millia Islamia.
8. Sharma, Y.K (2008). Principles of Educational and Vocational Guidance, New Delhi: Kanishka publication.
9. Tushar, A. (2012). Vocational education and training in India: challenges, status and labour market outcomes. Journal of Vocational Education and Training, 64(4), pp. 453-474.
10. Vivek Singh and Samit L. Mahore, 2018 Present Situation and Issues of Vocational Education in India: A Case Study of Nagur, Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol:15/ Issue: 7, ISSN 2230-7540, pp 49 – 53.

WEBSITES

1. Importance Vocational Education:
2. https://m.theindependentbd.com/home/printnews/220620

3. Implementation challenges of NEP:
4. https://www.educationworld.in/nep-2020-implementation-challenges/
5. https://ssa.assam.gov.in/

ABOUT THE AUTHOR



DR. MANOHAR LAL is working as Asstt. Professor from last 15 years. He has vast experience of teaching at UG and PG level and as well as Counseling. He is M.Com. M.A. in (English, Psychology, Sociology) M.Ed. M.Phil., Ph.D. (Education). He has participated and organised successfully more than 50 seminars, Conferences, workshops and also gave his contribution in his subject. He is master in his subjects. His research papers are published in various National and International journals, Also Published More Than 9 Books. He has played vital role in college examinations as Supervisor, Co-Supervisor. At present he is working as Assistant Professor in (Haryana) His Main Areas of Specialization is Guidance and Counseling and Special Education.

CHAPTER 10

WOMEN EDUCATION

Dr. Samir Kumar Panigrahi
Assistant Professor in Management
MATS University, Raipur, Chhattisgarh
Email: panigrahisameer@yahoo.in

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.10

ABSTRACT
Society reforms with two pillars of nature. First one is male and another one is female. Since ancient time it was clearly proved that the development of earth is possible when both pillars of the nature developed equally without any suppressed social system. As we know since ancient time India become the leader within the earth for ethical cum value based education and India was treated as a land of educational practice. In present scenario the developing nation like India focused on women development through developing their education practice by imposing various schemes not only for the development of nation but also to sustain their past glory in front of earth. According to NSO data (2021) the literacy rate of female is 70.3% where as Male literacy rate in India is 84.7%. Here literacy refers to any person is able to read and write in a specific language is termed literate in India. But in present global scenario this bench mark is not sufficient to declare a human being literate. Because as we know this present time is focused on Globalizations, so, English must be treated as prominent language. Here the researcher focused on women education system in India, its problem and prospects and its impact on nation's growth.

KEYWORDS: *Women education, women empowerment, Global world*

Introduction:

Women are the building blocks of society. They play a vital role in empowering every aspect of society and the nation. A nation is considered as well established and empowered only when the female population of the country is established, empowered, and safe. Education is that key element that helps every individual conquer the greatest war and also create the most impactful changes in the world. A woman is such an individual who has the knowledge and temperament to create lives with meaning. Promoting women's education is as necessary and useful as oxygen is for breathing. India has been able to generate some of the famous leaders who are female. Yet, in most of the portions of the country, women still lack the benefit of getting an education and are deprived of their basic amenities and rights.

Review of Literature:

Dutta and Sen, (2020): that those girls who completed secondary or higher secondary schooling were less exposed to child marriage. Meanwhile they also found that few districts in the west Bengal, had great awareness about the negative impact of early child marriage but there were 26.17% girls dropped out between the age group of 14-18 years. All the girls who dropped out were got married of the same age group.

Schultz, T.P (2002): discuss the importance of education for girls and its implication on self, child health care, job related skill development and overall well beings. The researcher also tried to find out the relationship between early marriage and dropout girls at secondary and higher secondary education.

Sen and Modak (2017): found interesting facts that families with low income or poor financial condition are not the reasons for the early child marriage in West Bengal and this the prime cause of less education for girl child.

According to the (ICRW, 2012): study said that the, girls with secondary and higher secondary education achievement will have a tendency to postpone their marriages in sort of to look up their prospect of better economic livelihood and independence. Indian society is a patriarchal society; the husband educational qualification is likely to matter in so far as that of the wife

Srinivasan et al., (2015): A study conducted in Howrah district on schedule tribe student's drop-outs and found that the

average 40.79% girls students leaving schools at Secondary level. According to the teacher's of the schools perpetual poverty is the main reason for girl's high dropout rate and other major factors came out from the parent's end that perception of girls about schools, low performance of students, social discrimination inside classrooms and lack of educational environment inside home

Meanwhile Ramanaik and Bhattacharjee (2018): discussed about the social and gender related norms which are predominantly influencing a parent decision of an adolescent girl out of fear for social rejection and parent generally prefers boys over girls to invest on education and expectation for more involvement in household activities resulting unfavorable condition at home causing lower retention of girls at Secondary level. The most common problems are menstruation, rituals and restriction to stay for a longer period is also one of the reasons for low retention of girls at Secondary level.

Objectives:

- To explore the real scenario of girls education in India.
- To visualize the global scenario of women education.
- To explore the problems behind the women education in India
- To explore the benefits of women education towards nations growth

Research methodology:

Here the researcher is purely a descriptive research and the researchers collect secondary data from through different journals, newspaper, magazines and government report for concluding the research.

Theoretical Frame work on women education:

After India gained its independence, the ideology of females was meant for household change. Higher education for the girls was what came into action, and many went for the same. But when the education system became available for the women, then only the higher section of the society was able to avail the opportunity. Still, most of the females were not allowed or were not given a chance for the same. It was with the passage of time and the revolutionary acts that happened that the females got an opportunity to stand for themselves. The higher section of the society supported this revolt,

and many opposed it. But in the end, revolution for betterment always pays off on a good note. With the modification in the governmental policies, the democratic exercise of power became viral. Females then started going to schools to get a basic education. But as we see today's scenario, it totally varies from the one that existed previously. Women have now become part of all the frontline workers. They have revolutionized the education system. They have modified the gender-based biased roles into equally prevailing roles. They have come forward to achieve their goals, although after facing all the allegations and restrictions from a larger part of society. The holistic approach of the individuals towards an equal working environment makes them shine even in the crowd. As per the Census, the total literacy rate of India is around 74.04%, out of which 82.14% compose the male literacy, and the female literacy rate counts up to 65.46%. Although the female literacy rate has seen a rise in the percentage level, it has not accomplished the goal which was set to have been achieved.

The trend of Literacy rate of India:

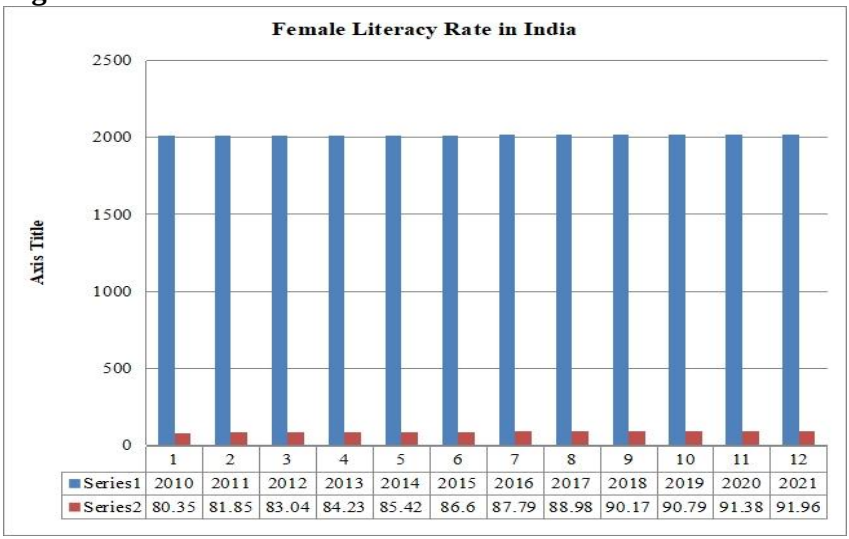
Table-1

Census Year	**Total Population (%)**	**Male (%)**	**Female (%)**
1951	18.3	27.2	8.9
1961	28.3	40.4	15.4
1971	34.5	46.0	22.0
1981	43.6	56.4	29.8
1991	52.2	64.1	39.8
2001	64.8	75.3	53.7
2011	74.00	80.9	64.6

Source: Census- 2011

Female Literacy Status in different Nations:

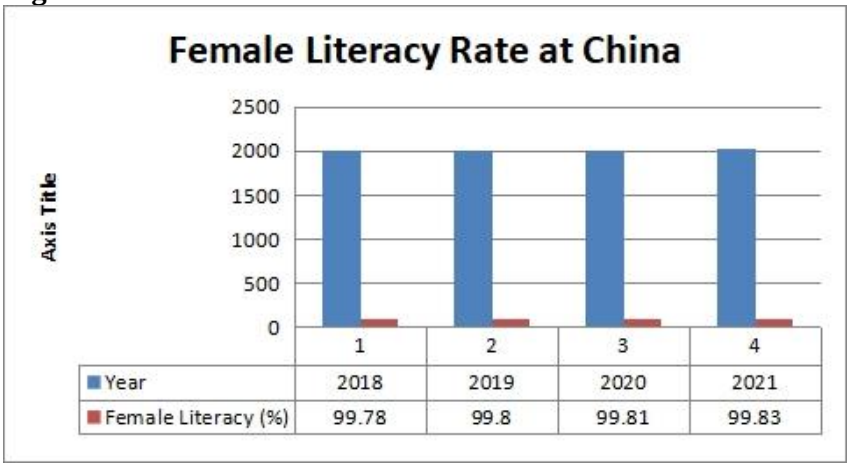
Fig-1



	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
Series1	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	2019	2020	2021
Series2	80.35	81.85	83.04	84.23	85.42	86.6	87.79	88.98	90.17	90.79	91.38	91.96

Source: Global data (Published – June -2022)

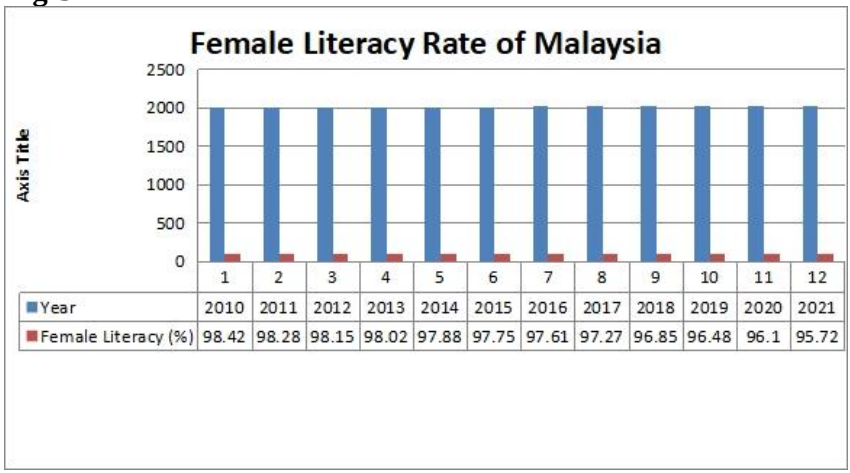
Fig-2



	1	2	3	4
Year	2018	2019	2020	2021
Female Literacy (%)	99.78	99.8	99.81	99.83

Source: Global data (Published – June -2022)

Fig-3



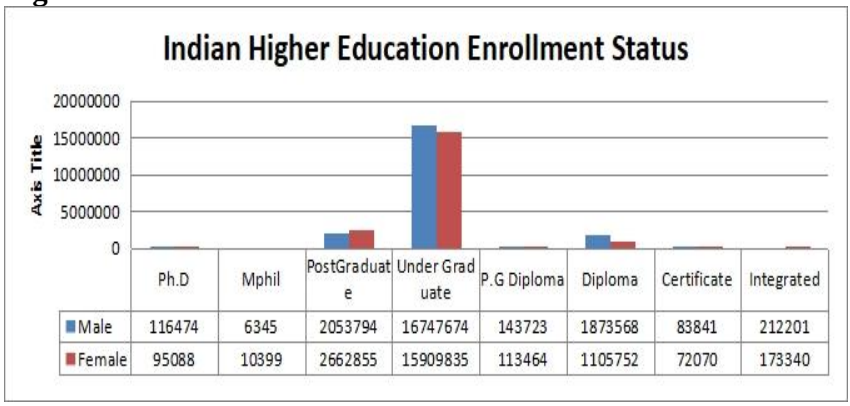
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
Year	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	2019	2020	2021
Female Literacy (%)	98.42	98.28	98.15	98.02	97.88	97.75	97.61	97.27	96.85	96.48	96.1	95.72

Source: Global data (Published – June -2022)

Trends of Female education in Higher Education in India:

The total estimated enrollment in higher education institution is 41380713 of which 9084095 are in universities and its constituent units, 29540392 is in college and 2266516 in standalone institute. Out of the total estimated enrollment the female enrollment rate is 20142803(48.67%) and the male enrollment is 21237910 (51.33%).

Fig-4



	Ph.D	Mphil	PostGraduate	Under Graduate	P.G Diploma	Diploma	Certificate	Integrated
Male	116474	6345	2053794	16747674	143723	1873568	83841	212201
Female	95088	10399	2662855	15909835	113464	1105752	72070	173340

Source: Aishe-2021

Problems behind Women Education in India:

Male dominated Family: Till in 21st century Indian families are treated as male dominated family because in most of the family

the decision makers are the male person as they are the earners for their family members. So as per the decision of male person the education of girl child continue.

Gender discrimination: Though India is going to be becomes the Biswa Guru within the world, but till now gender discrimination problems occur in rural areas of India. Most of the family dislikes birth a girl child and educating the girl child up to higher education. Till now India is facing the problem like female feticide.

Financial crunch in family: In India near about 70% of family are comes under below poverty line and they have very less income to maintain family. Under this type of family generally guardians' are not permitting their girl child for higher education.

Early age marriage: Till now child marriage system is continuing in different undeveloped areas of India. On that area most of the girls Childs are marry in the age of 14 to 17. So they have no scope for education.

Engaged in household work for financial family support: Most of the poor family are engaged their girl child in domestic work for financial support in the time of education. So they have not provided any scope to their girl child for education.

Illiterate guardian: Generally in India most of the Illiterate guardians' are hesitate to provide education to their girl child. They think education is no value for girls.

Women's education benefits towards nations development:

Fulfillment of Basic rights of Nation: Education is a basic right for everyone and when we say everyone we should not forget that women are also a part of this lot. Society has a large population of women and we cannot have such a large population as illiterate, it will be our huge loss. All girls and women, whether they are rich, poor, young, old, married, unmarried, widow or with any social status have their basic right of education. Education is not a privilege but a fundamental right.

Social Empowerment: when in a nation women's are educated, at that point, they are capable to take decision not only about her but also for their family and society. At that point they also feel that they are equal with a male in different social angle. It ultimately reduces the criminal activity and improves the social custom and tradition of a nation.

Economic Empowerment: women's education become fruitful when, they are capable for start earning independently through doing a job or starting a business. Ultimately it helps to their family in financial support as well as their family financial conditions become sound. It also improves the per-capita income of the nation.

Nations Economic Inclusive growth: when in a nation women's are become educated, more citizens are engaged in work and produce goods and services, and ultimately it improves the GDP of a nation. And it creates a scope for nation's economic inclusive growth.

Apart from above benefit others benefits also help to nation become developed in different angle. Those are:

- If women's of a nation educate themselves, the nation will be able to control population, and family planning would be the priority.
- Women's education would make them self-sufficient in the terms of decision taking capacity, financial soundness and the child age marriage system must be stopped, and women must be more independent of their needs and decisions.
- Women will be able to refrain from dramatic situations and look after themselves and their families.
- Women can take part in different fields of society.
- Women's education gives them to get a scope of power of justice.
- Many social discrepancies will be properly exclaimed, and nothing can be suppressed by influential personality.
- Women's education provides a scope to women to raise their voice for their own interest as well as social interest.

Different Schemes for development in women in India:

Beti Bachao, Beti Padhao:

The Beti Bachao, Beti Padhao social campaign was launched on 22nd January 2015 and is famous for women's empowerment. The scheme aims to exterminate female foeticide and access them with an appropriate education.

Working Women Hostels:

The Working Women Hostels scheme was established to provide a working environment that includes accommodation facilities where women may get more employment opportunities.

Support the Training and Employment Program (STEP):

These schemes provide adequate education and uplift women to be self-employed or bidding entrepreneurs in various sectors. This scheme is open to women above the age of 16.

Mahila- E- Haat :

The Mahila scheme was launched in 2016 by the Ministry of Women and Child Development. It provides a scope to women entrepreneurs or women with small-scale businesses display or sell their products and services.

SABLA:

Rajiv Gandhi Scheme for Employment of Adolescent Girls (RGSEAG), known as SABLA, was initiated on 1st April 2011 by the Government of India. Its prime objective is to provide food and nutritious ingredients.

Swadhar Greh:

The Swadhar Greh scheme was established in 2002 by the Union Ministry of Women and Child Development. The scheme provides the scope of shelter, food, care, and clothing to unaided women. Thus, women abandoned by their families and women who survived any disaster are aided with basic needs.

One-Stop Centre Scheme:

The One-stop Centre scheme was established with the 'Nirbhaya' fund on 1st April 2015 by the Ministry of Women and Child Development. The scheme provides counseling services, legal requirements, police aid, shelter and food to violence victims both in public and private.

Nari Shakti Puraskar:

Nari Shakti Puraskar initiative is taken by the Ministry of Women and Child Development to acknowledge women by

awarding them for their excellent contribution towards society and empowering women.

Findings:

After Independence, women were liberated from the custom of in-house traditions. Higher education came into practice as the constitution framed the Right to Education. The new India surpassed the myth and stereotype of what is preferable and non-preferable to women. Today, what we know about women's education is entirely different from the early stages. Women have already modified gender roles and eradicated some strong wrong beliefs from the minds of people. But now, women have started working towards achieving goals and being independent to make any situation favoring their interests. The holistic approach towards the working environment makes them dazzle even in the lame light. No doubt India is rapidly improving their women's educational status since independence but till now it is not remarkable for our nation's development as well as in front of other developed nation. Though government of India is lunching different schemes for betterment of women's education, but it seems to be not fully effective.

Conclusion:

Education for all is one of the major tasks being carried out by the Indian government but still, we have the lowest female literacy rate in Asia. India is working but the pace is slow as we haven't achieved what we should have been so far. Women's Education is critical to the country's entire development. A well-educated woman is capable of managing her personal and professional life.

REFERENCES

1. Amrhein, V., Trafimow, D., & Greenland, S. (2019). Inferential statistics as descriptive statistics: There is no replication crisis if we don't expect replication. The American Statistician, 73(sup1),262-270. https://doi.org/10.1080/00031305.2018.1543137
2. Bhat, R. A. (2015). Role of Education in the Empowerment of Women in India. *Journal of Education and Practice*, *6*(10), 188-191.
3. Devi, R., Gupta, S., &Verma, M. (2021). Awareness of

women regarding BetiBachao and BetiPadhao scheme. International Journal of Home Science, 7(2 181-183. Retrieved on: 12 Nov-2022.

ABOUT THE AUTHOR



DR. SAMIR KUMAR PANIGRAHI is obtained M.com from Fakir Mohan University, MBA in Finance and Marketing from Biju Pattnaik Technical University Odisha, M.phil in commerce from North Orissa university Baripada, He has been conferred with PhD in Commerce & Management from North Orissa University Baripada, Odisha. He has been conferred LLB degree from North Orissa University Baripada. He has been into academics about 9 years. Prior to his Teaching assignment, he had enriched experience of 6 years from finance industry. He has to his credit near about 35 number of research articles, chapter in edited books and one own reference book and one text book. And also attending a few number of international conference, workshop and faculty Development programs. He holds the life membership in Indian Commerce Association and also Orissa Commerce Association and The Indian Society for Technical education.

CHAPTER 11

ENVIRONMENT EDUCATION

Ms. Mahima Sharma
Assistant Professor, Department of Law
Maharaja Surajmal Institute, New Delhi
Email: mahimakaushik07@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.11

ABSTRACT

Environmental issues are becoming an increasingly pressing concern in today's world. Many countries, including India, are grappling with significant environmental degradation. Despite the presence of numerous policies and laws designed to address these issues, compliance often falls short unless individuals face the prospect of legal consequences. It is essential to recognize that our lives are intimately connected to the environment. To combat environmental degradation, pollution, diseases, and stress, it is crucial to understand their causes and implement remedial measures, starting from our own homes. Once we become aware of our responsibilities, it becomes our duty to raise awareness among those around us, promoting sustainable development. Most people desire a future in which their descendants can thrive in a healthy and peaceful environment, with access to all basic necessities of life. It is now imperative for us to understand both our rights and responsibilities. This understanding can be achieved through various means, such as informal discussions, non-formal awareness campaigns, and formal education systems. Environmental Education has been integrated into school and college curricula, but there is a need for greater specificity regarding environmental laws, their implementation, and potential improvements in the educational curriculum. This paper aims to underscore the importance of incorporating environmental education and legal awareness as a fundamental aspect of any course of study, whether it is a general curriculum or a specialized field of study. Such a comprehensive

approach should encompass not only the academic aspect but also the study of environmental laws. This approach not only enhances students' academic knowledge but also equips them with a deeper understanding of their rights and responsibilities. Access to this course of study should be considered a fundamental right for all individuals.

KEYWORDS: *Issues, degradation, sustainable, curriculum, responsibilities*

INTRODUCTION

These days, life can be really difficult. The phrases "survival of the fittest" and "the struggle for existence" are well-known to us from our early years, yet nobody seems to care about the difficult circumstances that other people go through in life—or rather, the difficult circumstances that we might not even are aware of. The once need-based society has given way to a greed-based one, and as a result, some segments of the population suffer because of the rest. We are becoming so self-obsessed that nothing except the idea of the "fittest" can come to pass. Without a doubt, the fundamental human nature is to battle for survival, which is derived from natural laws. Furthermore, because the harmonized Scholarly Research Journal is essential to this ecosystem, it is permitted Long-term survival is only feasible with mutual cooperation, fraternity, and solving each other's issues as if they were our own, as based on the work at the interconnectedness of all living and non-living organisms. We may not know when we have to confront that comparable circumstance. Respecting Mother Nature, appreciating her beauty, and carrying out our daily responsibilities will significantly reduce environmental concerns and improve the situation overall.

Health and Environmental Consciousness:

Without good health and a safe environment, human existence is impossible. To survive and to preserve the environment, one must prioritize their health and environmental awareness. Additionally, there is a close relationship between the environment and one's health. One cannot assume any responsibility for the environment if their health is poor, and when the environment is sick, their health is either directly or indirectly impacted. A sense of responsibility also

develops once consciousness does. This means that understanding environmental regulations and receiving environmental education are necessary. Even among highly educated people, there are situations when awareness of one's surroundings is lacking.

This demonstrates how important it is to have environmental legislation and education in order to raise enough awareness in the modern world. It should also be required of all citizens to be aware of the fundamental laws and regulations pertaining to the environment. The responsibilities placed on each individual to protect the environment make this clear.

Growing Need for Education and Awareness:

The environment is deteriorating at an alarming rate every day, which has resulted in an increasing demand for environmental education and awareness. In the twenty-first century, we must have highly developed minds in order to come up with solutions for conserving and preserving our environment. Threats to the environment constantly accompany development, which makes environmental awareness, education, and legislation necessary for environmental conservation. The declining state of the ecosystem is something we may learn about without having to read the media.It only takes a close look at our surroundings and surroundings to make us realize how precarious our lives are. First of all, there are a lot of impoverished, uneducated, and jobless people in our nation. The main causes are excessive population density and a lack of social and economic justice. Therefore, if the government does not provide for the needs that are fundamental to existence, then there is no way to address the bigger environmental issues. The field of environmental education is broad, spanning local to global issues and vice versa. Therefore, providing for millions of people's fundamental needs and then rising their awareness of their surroundings is not a simple task. It requires consistent, methodical preparation with the assistance of the authorities connected to the environmental preservation while keeping the general public's standard of living in mind. People are becoming more and more agitated in their quest for comfort, luxury, and fulfilment of their desires and this has made nature so competitive that it will eventually run out of resources. Sustainable growth is hampered by the modern world's demands and activities, which are detrimental to

the environment. Thus, this is the primary justification for the requirement of environmental awareness and education (EE).

Additionally, responsible citizens who are highly susceptible to the negative effects of environmental issues and who wish to preserve their own lives as well as the lives of their future generations as well as contribute to environmental conservation through observance of basic laws, regulations, and guidelines are beginning to recognize the need for this.

In the context of sustainable development:

As people's awareness and education about the environment rise in the twenty-first century, the government must likewise adapt to the people's increasing demands for environmental protection against pollution and deterioration. Laws and environmental education can support sustainable development to fulfil the demands of current and future generations. People can get an understanding of Sustainable Development—which encompasses not just the preservation of natural resources but also social equity and economic growth—through environmental education and legislation. Individuals have the power to alter both their personal and professional lives and pursuits. People these days are more likely to favour economic growth because it may preserve the environment and promote social life. People's attitudes can also be changed by avoiding getting conceited about their style of living and focusing on environmental issues, which entails viewing the world as a whole and prioritizing the environment before personal needs. Sustainable development can only result from needs-based decisions, not from unrelenting greed. Environmental laws aid businesses in surviving and securing better possibilities in the road. This legislation can protect workers' health from toxic chemicals, gasses, and emissions in many factories and industries. It can also protect farmers who use pesticides and fertilizers to improve crops and increase productivity.

Both accountability and right:

Environmental law and education ought to be combined in our nation and made both rights and obligations. Then, the right to information about environmental laws and issues will be a accountability since doing so will benefit the public and lead to their support for the environment. Everyone has the right to be informed

about environmental laws and education, and they all have the right to take an active part in environmental protection when needed. Persons In order to provide their clients with legal advice regarding environmental problems and find solutions that will protect both the environment and their welfare; those who aspire to become lawyers and legal professionals with a focus on environmental law should become well-informed about the environment and its concerns during their course of study, internship, and other field activities. Those working in the transportation, agricultural, biotechnology, real estate, medical, and other sectors should be well-versed in environmental laws and their obligations, as they are the ones responsible for ensuring the environment is protected.

Common Laws:

Although most people are somewhat aware of these common environmental laws, it is still necessary to list and recall them here for the convenience of those who, regardless of gender, caste, race, community, or age, are interested in actively protecting their environment. The policies and statutes/legislations enacted particularly with reference to India for environmental protection should be known to every Indian citizen such as the National Forest Policy, 1988, Policy Statement for Abatement of Pollution, 1992, National Conservation Strategy and Policy Statement on Environment and Development, 1992, the Water and Air Prevention and Control of Pollution Act, 1974 and 1981 respectively, the Environment Protection Act, 1986, the Forest Conservation Act, 1980, the Wildlife Protection Act, 1972, the Public Liability Insurance Act, 1991, the National Environment Tribunal Act,1995, the National Environment Appellate Authority Act, 1997 and the provisions in the Indian Penal Code (IPC) in dealing with punishing those who try to adversely affect the Public Health, their Safety and Convenience are some of the common laws. But due to the lack of severity in punishment and the lack of sincerity in implementing these in the right time at the right place, these may not be sufficient and effective in checking and controlling the environmental pollution.

As A Discipline:

In the educational system, environmental education is a required subject at all levels, starting from secondary to higher

secondary and continuing through higher education. If the subject matter is multidisciplinary and encompasses various disciplines like science, mathematics, geography, ecology, etc., then assigning additional coursework to the students becomes burdensome. Naturally, they'll grow bored with it. Due to its multidisciplinary nature, environmental education can remain the primary discipline rather than being combined with a multitude of other subjects, such as languages, history, mathematics, economics, and computer science, with the goal of enhancing environmental education (EE) through an understanding of all of these fields. Pupils will not only become interested in environmental issues, but they will also understand their rights and obligations much earlier.

Constitutional Rights demand Awareness:

The Fundamental Rights of the Indian Constitution is combined with the Directive Principles and Fundamental Duties. This makes us clear enough that whenever rights are given the duties will itself arise from that. Article 24-A of the Constitution talks about the right of every child to get assisted in their basic needs and to be protected from different kinds of exploitation, harm and neglect and also Article 30-C talks about the right to clean environment and safe drinking water and so on with addition of pollution control, ecology conservation and the right to a healthy and safe life with nature in harmony and protection of environment for present and future generations which in other words means Sustainable Development in Article 30-D. The Right to Education exists for school children in Article-45 but Right to Environmental Education should be soon incorporated in my opinion at all stages of education as a separate discipline especially in higher education for students of all streams (which exists to some extent) and also as a course of study. People should become aware of their new rights yet to be given and once if rights given duties will follow. That means this can be added to the already existing New Challenges to Education Policy.

Physical Health and Right to Life:

The Indian Constitution's Article 21 does not equate the right to health with the right to be healthy. A person's entitlement to health encompasses the use of health facilities and services, a certain amount of personal autonomy, safe working environments,

and preventive medications for all age groups. The right to life includes the internationally acknowledged rights to both healthy, pollution-free environments and environmental protection. The term "right to life" encompasses a wide range of rights granted to all individuals, while "physical health" refers to both mental and physiological well-being. Individual health is not deemed to be as important as the violation of the right to life. Although there may be direct effects on physical health, the right to life suggests that there may also be indirect effects, which may first affect the environment and subsequently people. The right to life is threatened by even minor inconveniences caused by pollution and environmental degradation, which may not happen right away. Therefore, it is crucial to understand environmental law and education in addition to these small distinctions.

CONCLUSION

By giving environmental education the same weight as laws, schools and colleges can add something new to their curricula, and by making it a required subject for all majors, the younger generation will be made far more conscious of their own rights, if not their obligations. The younger generation will be motivated to serve their country and environment if this field is prioritized as the major subject for degrees and diplomas offered through traditional and remote learning methods, research, and new job opportunities

REFERENCE

1. Environmental Law and Awareness of the Environment. Retrieved from https://www. lawteacher.net/
2. Environmental Laws of India. Retrieved from https:// www.environmentallawsofindia.com/
3. Environmental Rights and Responsibilities. Retrieved from https://www.legalline.ca/
4. Ravindran, D.J. Module 15: The Right to a Healthy Environment: Human Rights Library. Retrieved from https://www.hrlibrary.umn.edu/edumat/IHRIP/circle/modules/module15.htm/

ABOUT THE AUTHOR



MS. MAHIMA SHARMA is an academician with nine years of teaching in various universities. I had best education from the top institutes of India like GGSIPU, ILI Delhi, National law School of India, Bangalore. Having illustrious career with pedagogical Skills I am a recipient of 'Krishna Rao Memorial Gold Medal from Indian Society of International Law, New Delhi in the year 2019. Qualified UGC-NET in the year 2010 and presently pursuing Ph.D. from a NAAC A+ University. During my profession career I have enhanced my knowledge by pursuing a number of courses including;- 1) certified professional course on Cyber Security & Ethical Hacking from Ministry of micro, small and medium enterprises, Government of India, Institute for Design of Electrical Measuring Instruments,2) Two post graduate diplomas on Consumer Law and Practice & Cyber Law. I have conducted various workshops, FDPs and seminars. My dissertation on "Medical Negligence under Consumer Protection Act" was appreciated and selected as model dissertation for the students in 2013 by National Law School of India University, Bangalore.

CHAPTER 12

ADULT EDUCATION

Sandhya Yadav
Assistant Professor
MIMT College Greater Noida,
Mail Id.-sandhya28486@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.12

ABSTRACT
One of the biggest problems of our country today is that the rich are becoming richer and the poor are becoming poorer. The main reason for this problem is that the poor person is so busy in earning his living that he is not able to recognize the importance of education. Instead of sending his children to school, he is sending them to work so that he can arrange two meals a day for the family. Due to lack of education, when these children grow up, they are left with no option but to do small jobs. The only way to break this cycle was for the government to start a scheme like adult education. People who could not complete their education in childhood can now fulfill their dreams. They can improve their future by taking basic education or professional education through this scheme. It completely depends on the person whether he gives priority to basic or professional education.

In India, the Directorate of Adult Education under the National Fundamental Education Center was started in 1956. Since then, continuous efforts have been made by the Government of India to increase the importance of adult education. As a result, night classes were arranged and every possible effort was made so that maximum number of people could join it. The efforts of the Indian government did not go in vain and people started joining this scheme with great enthusiasm. As the number of people joining increased, the government also started paying attention to the quality of education. Now, when the number of people studying continues to increase and

people start getting better job opportunities after getting good education, women too are not left untouched by this. They also showed their desire to become participants in this scheme so that they can make the future of themselves and their children better and brighter.

Introduction-

After independence, the democratic system of governance has been accepted in our country. Democratic governance is such a special system for the success of which not only competent and dutiful politicians but also conscious and dutiful citizens are necessary. In the absence of educated and aware citizens, politicians get the opportunity for self-interest and exploitation and gradually they start moving towards autocracy, autocracy and dictatorship. Therefore, for the success of our democracy, it is necessary that arrangements should be made not only for free and compulsory education for the people in the age group of 6 to 14 but also for the education of the large uneducated adult population. Education is a lifelong process which is the most important means of improving human life. Through education a person finds solutions to his problems and gets knowledge of his rights and duties. Education plays an important role in the social, economic and cultural development of a person. Recognizing the importance of education and seeing the increasing number of illiterate adults in the country, our national government, educational organizers and educational bodies have started the Adult Literacy Campaign as a mass movement. There are crores of people in our country who currently manage their work using their thumbs, they have no knowledge of the outside world. Even after 45 years of independence, we could not remove the stigma of illiteracy. Due to increasing population the percentage of illiteracy has been increasing. In 1989, 38% of the total illiterate people in the world were in India. In 1951, there were 30 crore illiterate and 6 crore literate people in India. In 1981, there were 43 crore 70 lakh illiterate people in India and 14 crore 70 lakh literate people. Out of every 20 people in the world, 3 are Indians, of which 2 were illiterate and 5 out of 10 illiterate people in the world are Indians. In our country, 6 out of 10 people are illiterate and 3 out of 4 women are illiterate. Out of ten people, 9 tribals are illiterate and 8 scheduled caste people are illiterate. According to the 2011 census,

about 26% of people in India are illiterate. A study has shown that on an average an illiterate mother has 6 children and a mother with higher education has 2 children. Therefore, for the social and economic progress of the country, it is necessary for every person to be literate. Of. Yes. According to Syeden, “Adult education is a matter of life and death for us.” To keep this nation alive, first of all we will have to pay attention to adult education, social education and continuous education, only then we will be able to keep our democracy safe and move forward in the era of scientific and industrial competition.

Meaning and Definition of Adult education (Social Education) –

Before independence, teaching reading and writing to adults was called adult education, but after independence, adult education has been accepted in a broader sense.

Adult education is a program of the education system whose objective is to make adults more knowledgeable and capable of fulfilling responsibilities by giving them more knowledge and more work skills. Adult education means that education which helps adults to understand the environmental, social, economic, political, cultural and natural conditions around them. Makes them aware so that they can become efficient social members and meet the demands of the cultural environment. Education is a lifelong process. This is not limited to the walls of the school, those who have received higher school education also need further education, because information about the changes that are taking place as a result of social, economic, political and scientific events is necessary. That is why adult education in England is called advanced education. Mahatma Gandhi has told. "Literacy is neither the beginning nor the end of education. It is only a means of education. It also extends to other aspects of life." Adult education has been known by different names at different times. Such as social education, public education, lifelong, community education, public education program, labor education, Extension education, continuing education. l. According to Bison, “Adult education is education for every person on all occasions and in all circumstances.”

1. **According to Syeden,** "adult education also includes political, civic and moral education."

2. **According to the Ministry of Education, Government of India** - "Social education is actually adult education, in which maximum emphasis is given on its social efforts.
3. **According to Maulana Abul Kalam Azad** - "By social education (adult) we mean the education of a complete human being. It will provide literacy so that he can gain knowledge of the world. It will tell him how to adjust to his environment. and make the best use of the natural conditions in which he lives. It means teaching him improved arts, skills and methods of production so that he can achieve a better economic condition."
4. **Prof. According to Humayun Kabir** - "The aim of social education is to raise the consciousness of citizenship among the people and to improve the social coordination among them. It is not satisfied with spreading literacy among illiterate adults, but also aims at creating educated minds among the common people. It aims at it. As a natural aim it tries to inculcate the consciousness of the rights and duties of citizenship."
5. **S. N. According to Mukherjee-** "Adult education broadly includes all the formal education which is given to adults." Adult education in India has two aspects-
   (i) Adult literacy.
   (ii) Continuing education for literate adults.

Difference between Social Education and adult Education-

A. Social education is a developed form of adult education.
B. Under social education, we come out of the small scope of adult education and enter into the broader scope.
C. Under adult education, formal efforts are made to make people literate. In social education, informal organization of multifaceted development of the individual takes place.
D. At present the term adult education is used only in the form of social education.

Due to the multifaceted process of national development going on at present, there has been a significant change in the concept of adult education. Now the aim of adult education is no longer just to impart knowledge of alphabets. The increasing social and economic situation demands holistic development of human

power. Therefore, facilities are being expanded to make education universal for children up to the age of 14 years so that they can get the education which they have been deprived of till now. Can do and fully develop their potential. Thus, it is the resolve of the national government to eliminate illiteracy so that common people can actively contribute to social and cultural changes.

Non-formal education is being given priority to adults, especially in the age group of 15 to 35. This will have an immediate impact on the productivity level of the economy, vulnerable sections like women, Scheduled Castes, Scheduled Tribes, agricultural labor force and slum dwellers. Special attention will be given to people with Along with providing basic facilities for literacy, the objective of this work is to increase the functional efficiency of illiterate people and to awaken social consciousness among them. Thus, the broader form of adult education is social education, whose aim is to spread functional literacy.

Need and importance of social education in India-

Illiteracy is a social stigma. Illiteracy hinders the development of individual and society. The concept of social education (adult education) is to provide such education to the adult public so that they can improve their lives, establish a progressive society, save themselves from traditional stereotypes and imagine a bright future. At present, flood education is being given importance all over the world. Adult education has been included in the UNESCO programme. The need for adult education is more important in the specific circumstances of India. Here we are presenting some important points of need and importance of adult education in the context of India:-

(i) Adult education is a basic need of human being – Adult education has become a basic need of human being in an illiterate society. A person without education is like an animal. An illiterate person has no place in the society. Education is the birthright of a person, it is needed by everyone. Through education, a person can discriminate between good and bad, right and wrong, true and false and profit and loss. Education is an infallible means for the all-round development of a person. That is why the need for adult education was felt for illiterate adults. Adult education enables a

person to improve his standard of living and he gets the ability to take right decisions at the right time.

(ii) Adult education is necessary for family development- Adult education is necessary for family development. Compared to illiterate families, literate parents take better care of their families. Literate adults understand the importance of education and pay full attention to the education and development of their children. Literate families have been seen to be happier as compared to illiterate families. Educated mothers have fewer children and the mortality rate is also lower. Literate Proud people inculcate good values in their children. In this way, the importance and necessity of adult education is being realized for family prosperity and happiness.

(iii) Adult education is necessary from the social point of view- Today our society is suffering from many social evils. Some evils have been going on for hundreds of years and some have emerged in the last three-four decades. For example, purdah system, child marriage, dowry system and the idea of untouchability are prevalent in the society. Similarly, there are problems of casteism, regionalism, communalism, terrorism and population growth. Due to these problems the entire society has become disorganized.

Through adult education, the general public can be made aware of the ill effects of these evils and public opinion can be created against them.

(iv) Adult education is essential for the success of democracy – The success of democracy depends on capable and responsible politicians and aware and dutiful citizens. Citizens can choose their representatives correctly, understand the wrong policies of the government, understand the issues of national interest and understand the importance of their franchise. For this, it is necessary to spread adult literacy in the country. The success of democracy depends only on literate people.

(v) Adult education is necessary to eradicate illiteracy – There is widespread illiteracy in our country. Illiteracy is most prevalent in rural areas, tribal tribes, scheduled castes and women. Shri P.N. According to Chatterjee - "More than half of the total number of

illiterate adults in the world reside in India. The task of bringing them into the light of knowledge is huge." The only way to remove the darkness of widespread illiteracy is to spread adult education. From this point of view, adult education is necessary.

(vi) Adult education is necessary for political awareness and nationalism. It is necessary for the public to have political awareness to protect their freedom. Of. Yes. Syeden has said, "Unless the public is ready to pay the price of its political freedom in the form of constant vigilance, it cannot safeguard this freedom and for this vigilance, proper civic and adult education is necessary.

At present, a big challenge is to protect national unity and integrity. Educated adults and conscious citizens can play an important role in this great work with their wisdom and mutual understanding. Adult education will be helpful in awakening the feeling of mutual harmony, brotherhood and fraternity among the citizens of the country.

(vii) Adult education is necessary for the economic development of the country - In today's industrial era, more skilled and productive labor force is required for the economic development of the country. Cooperation of all functional countrymen is expected. An educated worker is more productive and efficient. Through literacy, adults can be made capable of helping in increasing national production. From this point of view, adult education is necessary.

(viii) Adult education is essential for community development programs – community in independent India Various development programs have been started such as - dissemination of improved methods for the progress of agriculture. Educational system in india health improvement, family welfare and environmental protection etc. Public cooperation is necessary for the success of these programs and this cooperation can be obtained by awakening social consciousness through adult education.

(ix) A person trapped in material complications wants to get rid of the complications for some time in order to utilize the moments of adult education, entertainment and leisure. He wants to utilize his time well through entertainment. Through adult education, the

general public is introduced to healthy means of entertainment so that they are able to make good use of their leisure moments and forget about their problems for some time.

Objectives of adult education-

The usefulness of adult education is from both personal and social point of view. Therefore, the objectives of adult education can be divided into two parts – (1) personal and (2) social) **Personal objectives –**

The personal objectives of adult education are as follows –

(i) To develop the mental development of adults.

(ii) To develop vocational abilities of adults through functional literacy.

(iii) The objective of adult education is to acquaint adults with the basic principles of health protection. They are given information about health education, cleanliness, infectious diseases and first aid, balanced diet and family welfare etc. through adult education.

(iv) The objective of adult education is the all-round development of adults.

(v) The objective of adult education is to enhance the social skills of adults.

(Vi) The purpose of adult education is recreational. Healthy traditions of adult education and entertainment Constructs. For example, folk songs, dances, skits and various proverbs etc. This leads to cultural development of adults.

Social Objectives The social objectives of adult education are as follows –

(i) The objective of adult education is to enable backward people and areas to keep pace with other sections of the society in the race of social progress.

(ii) The objective of adult education is to conserve, develop and utilize national resources like land, water, vegetation and wildlife and sources of energy.

(iii) The objective of adult education is to establish, organize and operate cooperative institutions.

(iv) The objective of adult education is to develop social ideals among adults which will develop the feeling of equality, brotherhood, cooperation and harmony in the society.

How can Adult Education Programs be Successful?

Adopting the following techniques for successfully implementing adult education programs will be-

1-Identification of Adult Psychology:

People associated with adult education programs will first have to know about the mental tendencies, interests, habits and expectations of adults. Adults have their own working style, ideologies and habits which need to be understood. Didactic language is not understood by adults. Dr. K. Yes. Syeden has mentioned the attitudes of adults as follows-

(i) Tendency to self-reinforcement.
(ii) Curiosity or inclination towards play or entertainment.
(iii) Reproductive instinct.
(iv) Tendency of organization and friendship.
(v) Fulfillment of daily needs and security
(vi) Desire for material happiness and entertainment.
(vii) Desire for spiritual life and peace.

2. Training of workers-

The success of adult education program depends largely on trained teachers. Depends on the workers. The work of spreading adult education will not be accomplished with the help of ordinary teachers and workers. Both full-time and part-time teachers should be appointed in this. Only those people who have the feeling of social service should be engaged in this work. Teachers and workers must be given training for at least three months. Summer and winter camps should be organized for training. Both theoretical and practical training should be given.

3. Stimulating material

Stimulating material are those tools through which new knowledge can be made elegant and easily understandable. Stimulation material for adults can be in the following forms:

(i) Study material
(ii) Audio-visual material

(ii) Other miscellaneous material

adults can be imparted greater knowledge in less time. Every adult education center should have illustrated books, information boards, pictures, diagrams, radio, TV and film projectors etc.

4. Useful courses:

Courses for mature adults are not just theoretical but are based on their Be related to practical life. Course subjects should be in regional language. writing and reading in curriculum And general knowledge along with simple mathematics, agricultural knowledge, fruit preservation, rural economics and Topics of citizenship should be included.

5. Literature for neo-literates –

A program to prepare literature for neo-literates has been started with the help of UNESCO. An encyclopedia named 'Gyan Sarovar' has been prepared for neo-literates by the Indian Adult Education Association. Three-tier literature has been prepared, which is as follows-

(i) First and second level literature will not use compound letters.
(ii) Third level literature – In this, compound letters will be partially used. Music, proverbs, conversation style etc.

6. Afternoon and evening seminars-

Adults do not have free time. They remain busy in their work all day long. Therefore, their education and guidance programs should be organized during mid-day break, knowledge of handicrafts, knowledge of banking system, knowledge of nutrition and health protection, general information time and evening. In these seminars, solutions to their problems and issues related to various industries etc. should be explained. For women, knowledge of subjects like fertility regulation, cuisine, sewing, embroidery and importance of education etc. should be imparted.The literature of the newly literate should be produced in various genres, such as stories, dramas.

7. Museum and Mobile Library Scheme –

Every adult education center should have a museum, reading room and mobile library. Mobile library is more useful for women

because they cannot go to the reading room. There should also be a museum at the adult education centre. Good seeds and grain storage in museum Samples, samples of agricultural and other equipment, literature of various schemes run by the government,There should be literature on various diseases and their treatment etc. Museums have a collective impact on adults.

8. Establishment of Adult Education Houses –

Adult Education Houses have a psychological importance in propagating adult education. Every adult education center should have its own 'Samaj Bhavan'. With the establishment of Adult Education Houses, an independent existence of Adult Education Program will emerge. During holidays, adults gather in these houses and discuss their problems. Stay up to date with new news, exercise and attend entertainment events. Every Gram Sabha must have such houses.

9. Adult Education As a combined effort-

the work of spreading adult education is not only the responsibility of the government, but voluntary organizations, educational institutions, municipal corporations, municipalities and gram panchayats should also contribute their full contribution in this work. The basis of its success will be combined efforts. This effort will be successful only if various unions of employees also work in this direction.

Conclusion-

Grown-up instruction is of most extreme significance. While the public authority of our nation has previously perceived its significance, countless individuals in our nation are yet to remember it. Various schools have been set up by the public authority to give grown-up instruction. Nonetheless, the job of the public authority doesn't end here. It necessities to sharpen the significance of instruction among the majority. Individuals should perceive the need to set taught up not entirely set in stone to enlist at grown-up training schools.

REFERENCES

1. Bask, M., & Bask, M. (2015). Cumulative (dis)advantage and the Matthew effect in life-course analysis. *PLoS One*, *10*, e0142447. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0142447.
2. Blossfeld, H.-P. (2003). Globalisation, social inequality and the role of country-specific institutions. In P. Conceição, M. V. Heitor, & B.-A. Lundvall (Eds.), *Innovation, competence building and social cohesion in Europe: Towards a learning society* (pp. 303–324). Cheltenham: Edward Elgar.
3. Blossfeld, H.-P., Kilpi-Jakonen, E., Vono de Vilhena, D., & Buchholz, S. (Eds.). (2014). *Adult learning in modern societies: An international comparison from a life-course perspective*. Cheltenham: Edward Elgar.
4. Blossfeld, H. P., Kilpi-Jakonen, E., & Vono de Vilhena, D. (2020). Is there a Matthew effect in adult learning? Results from a cross-national comparison. In J. Schrader, A. Ioannidou, & H.-P. Blossfeld (Eds.), *Monetäre und nicht monetäre Erträge von Weiterbildung [Monetary and non-monetary effects of adult education and training]* (7th ed., pp. 1–26). Wiesbaden: Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-658-25513-8_1.
5. Buchholz, S., Unfried, J., & Blossfeld, H.-P. (2014). Reinforcing social inequalities? Adult learning and returns to adult learning in Germany. In H.-P. Blossfeld, E. Kilpi-Jakonen, D. Vono de Vilhena, & S. Buchholz (Eds.), *Adult learning in modern societies: An international comparison from a life-course perspective* (pp. 242–263). Cheltenham: Edward Elgar.
6. Bukodi, E. (2016). *Cumulative inequalities over the life-course: Life-long learning and social mobility in Britain* (Working Paper No 16-02). Oxford: University of Oxford.
7. Cedefop. (2020). *Empowering adults through upskilling and reskilling pathways. Volume 1: Adult population with potential for upskilling and reskilling*. CEDEFOP reference series No 112, Publications Office of the European Union, Luxembourg. Retrieved from http://data.europa.eu/doi/10.2801/475393.

8. Coffield, F. (1999). Breaking the consensus: Lifelong learning as social control. *British Educational Research Journal, 25*(4), 479–499.
9. Crowther, J. (2004). 'In and against' lifelong learning: Flexibility and corrosion of character. *International Journal of Lifelong Education, 23*(2), 125–13

ABOUT THE AUTHOR



MS. SANDHYA YADAV is working as an Assistant Professor in the School of Education at Mangalmay Institute of Management and Technology, Greater Noida (Uttar Pradesh). She has been recognized with many awards and fellowships for her: Continuous eminence in academics. She has been pursuing her Ph.D. (Education) degree from J. S. University, Shikohabad. She has the first-class degrees of M.Phil., M.Ed., B. Ed., M.A. (Psychology, Education & Hindi). Earlier this, she has served as Head of Department and took responsibility of External Examiner, Flying Squad, examiner in B.Ed answer book in centre evaluation.She has published two books "Teacher in Emerging Indian Society" & "Philosophical Perspective of Education" Agarwal Publication. Making her academic profile more dynamic she has participated in numerous FDPs, workshops, and webinars across the globe to enhance her knowledge and merit.In addition to this she has handled and is holding significant responsibilities in university and the department like member of Student Grievance Committee, Cultural Committeel, Committee of Basic Facilities for Women, University Placement Cell, Student Enrichment Cell, etc.

CHAPTER 13

HEALTH AND PHYSICAL EDUCATION

Pallabi Banerjee
Assistant Professor, B.Ed. Department
Rajendra Academy for Teachers' Education, Durgapur, Paschim Bardhaman, West Bengal, India
Email: pallabibanerjee777@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.13

ABSTRACT

The paper delves into the intricate and diverse dimensions of the educational sphere, with a specific lens on the pivotal domain of health and physical education. The fundamental nature of education transcends the mere acquisition of scholastic knowledge. It embodies a holistic journey encompassing mental, physical, and emotional facets. This scholarly exploration endeavours to underline the critical role that health and physical education play in nurturing well-rounded individuals. In the pursuit of scholastic eminence, the importance of cultivating one's physical and mental welfare is frequently disregarded. However, this paper asserts that a robust foundation in health and physical education is instrumental in not only enhancing physical fitness but also in promoting cognitive development, emotional resilience, and overall holistic growth. Through this comprehensive analysis, the integration of health and physical education is emphasised into the academic curriculum as an essential catalyst for producing individuals who are not only academically proficient but also mentally and physically resilient. The multifaceted nature of education is unveiled, demonstrating that a harmonious fusion of cognitive and physical development is the key to producing well-rounded individuals who can thrive in a dynamic and challenging world. This inquiry thus underscores the imperative of redefining education, emphasising the coalescence of mental and physical development, as a fundamental cornerstone for the holistic advancement of learners and society as a whole.

KEYWORDS: *Health and Physical Education, Cognitive Development, Well-rounded Individuals, Holistic Development, Academic Excellence*

Introduction:

In the intricate tapestry of education, the pursuit of knowledge extends far beyond the confines of traditional classroom settings. It is a multidimensional realm, rich with diverse facets waiting to be uncovered and understood. Among these facets, health and physical education stand as integral components, often overlooked in the grand scheme of academia. This exposition embarks on a journey to illuminate the multifaceted world of education, shedding light on the often neglected but undeniably crucial domains of health and physical education. These disciplines, often relegated to mere extracurricular activities, are, in truth, essential for the holistic development of individuals. They instil not only physical well-being but also nurture vital life skills, promoting resilience, discipline, and a profound sense of self-awareness. Through this exploration, we delve into the intricacies of health and physical education, unveiling their significance in fostering a generation of individuals who are not only academically proficient but also physically fit and mentally resilient. The forthcoming pages will unfurl the rich tapestry of education, emphasising the role of health and physical education in shaping a well-rounded, empowered society.

A brief historical examination of Education, with a focus on the evolution of Health and Physical Education:

The historical evolution of education in India traces a remarkable journey from ancient times to the 20th century, where physical development played a pivotal role in the early stages of educational development. In antiquity, India boasted an erudite civilization where education, or "Vidya," was cherished as a sacred endeavour. The Vedas, the ancient scriptures, emphasised a comprehensive curriculum encompassing the physical, mental, and spiritual realms. Physical development through practices like yoga and martial arts was integral in nurturing a well-rounded individual. The Gurukul system epitomised this holistic approach, where students lived with their gurus, imbibing not only knowledge but also physical prowess and discipline. During the Maurya and Gupta

empires, the renowned institutions of Nalanda and Takshashila were centres of multidisciplinary education. Physical training in warfare, archery, and athletics remained an essential component, producing scholars and warriors of exceptional repute. However, with the colonial era, a shift occurred towards a more British-oriented system, focusing primarily on academic subjects. The physical aspect of education diminished during this period, culminating in the establishment of British-style schools.

It wasn't until the early 20th century that figures like Mahatma Gandhi advocated for a return to holistic education, emphasising physical development through activities like "Nai Talim". The emphasis on physical education was rekindled, setting the stage for its resurgence in the Indian educational landscape.

Present Educational Scenario in India with a Focus on Physical Education:

The current educational landscape in India is witnessing a paradigm shift, with a heightened awareness of the pivotal role that health and physical education play in shaping well-rounded individuals. Recent developments underscore the growing significance of these aspects within the Indian education system.

One notable example is the National Education Policy 2020, which places a strong emphasis on holistic education. It advocates for the integration of physical education from the foundational levels of schooling, recognizing its contribution not only to physical fitness but also to cognitive development, social skills, and emotional well-being. Furthermore, various state governments are actively promoting physical education. For instance, the 'Khel Mahakumbh' initiative in the state of Gujarat encourages sports and physical fitness as an integral part of school activities, fostering a culture of wellness and competition among students. Government as well as Private schools are incorporating innovative physical education programs. Schools have introduced initiatives that focus on yoga, mindfulness, and physical fitness, helping students manage stress and promoting overall health. In higher education, Universities have witnessed a surge in the enrollment of students pursuing undergraduate and postgraduate courses in physical education and sports sciences, reflecting a growing interest and recognition of these fields.

In recent years, Government initiatives like the "Fit India Movement" have been launched, emphasising the importance of physical fitness in schools across the nation. Under this Programme, schools are encouraged to incorporate physical activities and sports into their daily routines. "The Khelo India" initiative endeavours to enhance the sporting culture within India at the foundational level using systematic talent discovery, well-organised athletic competitions, and the advancement of sports-related infrastructure. The government's push to include yoga as part of the school curriculum is another prime example of this emphasis. The COVID-19 pandemic also heightened awareness about the importance of health and physical fitness. With lockdowns and restrictions impacting physical activity, there has been a growing focus on home-based fitness programmes and online resources for physical education. Besides, notable private initiatives, such as fitness apps and wellness programmes have gained popularity, aiding individuals in maintaining their health and well-being.

These examples highlight the evolving educational landscape in India, where health and physical education are no longer secondary concerns but integral components of a student's educational journey, fostering physical fitness, mental well-being, and character development. This transformative approach is indicative of a holistic vision for education in the country.

Nurturing Holistic Individuals: The Importance of Physical Well-being in Education:

Holistic education epitomises a comprehensive pedagogical methodology that takes into account the holistic advancement of the individual, embracing not only cognitive maturation but also emotional, social, physical, and ethical growth. It recognizes that education should go beyond mere academic knowledge and instead nurture well-rounded, capable, and empathetic individuals. Health and physical education play an integral role in holistic development. Firstly, they contribute to physical well-being by promoting physical fitness, healthy habits, and an active lifestyle. This, in turn, reduces the risk of various health issues and fosters an overall sense of well-being. Moreover, physical education instils values like discipline, teamwork, and perseverance through activities such as team sports. These values are not only essential for athletic success but also for success in various aspects of life. Additionally, health

and physical education address emotional development. Participation in physical activities can be a powerful stress reliever, aiding in emotional regulation and mental health. The development of physical skills and physical fitness can boost self-esteem and confidence, contributing to a positive self-image.

Socially, these disciplines encourage teamwork, cooperation, and healthy competition, enhancing interpersonal skills and the ability to work effectively in a group. Furthermore, they promote values of fair play, respect, and inclusivity, nurturing responsible and socially aware individuals.

In conclusion, health and physical education are essential components of holistic education. They contribute to the physical, emotional, social, and moral development of individuals, making them indispensable in the quest for producing well-rounded, capable, and compassionate individuals in our society.

Pedagogical Frameworks for Health and Physical Education: Shaping Well-rounded Individuals:

The curricular and pedagogical aspects of health and physical education have evolved significantly to address the multifaceted needs of students. In modern educational contexts, innovative teaching methods play a crucial role in enhancing the effectiveness of these subjects.

Curricular development in health and physical education encompasses a more holistic approach, focusing not only on physical fitness but also on the cognitive, emotional, and social dimensions. This broadened curriculum includes topics like nutrition, mental health, and interpersonal skills, providing students with a comprehensive understanding of well-being. Innovative teaching methods have revolutionised how these subjects are delivered. Technology, for instance, is used to monitor and analyse physical activity, enabling personalised fitness plans. Gamification, in the form of educational games and apps, makes learning engaging and fun, fostering a sustained interest in physical fitness. Experiential learning, such as outdoor activities and adventure sports, allows students to apply theoretical knowledge in real-world situations. In addition, collaborative and cooperative learning methods, often employed in team sports, help develop essential life skills such as teamwork, leadership, and conflict resolution. The effectiveness of these innovative methods is increasingly

recognized. They make health and physical education more relatable and enjoyable for students, resulting in improved engagement and knowledge retention. Moreover, these methods align with the broader goal of holistic education by nurturing not only physical health but also cognitive and socio-emotional development.

In conclusion, the contemporary curricular and pedagogical aspects of health and physical education have expanded to meet the diverse needs of students. Innovative teaching methods are instrumental in enhancing the effectiveness of these subjects, fostering well-rounded individuals who are not only physically fit but also intellectually and emotionally resilient.

The Impact and Significance of Health and Physical Education on the Current Educational Landscape:

Physical education holds a unique and significant role in the modern era, addressing the biological, sociological, and psychological needs of individuals. Swami Vivekananda once enunciated that,

"India's contemporary necessity extends beyond the mere possession of the Bhagwat Geeta to encompass the provision of areas dedicated to physical endeavours, such as football fields."

The Secondary Education Commission recognized the importance of physical education, emphasising that the well-being of the nation's youth should be a top priority, as any deviation from the standard of health during this crucial phase of life can have serious consequences. Humans are an inseparable blend of body, mind, and soul, and education must strive to strengthen this holistic understanding. Consequently, education should encompass all aspects of an individual, as even a slight deviation from this principle would undermine the very purpose of education. This pertains to the school curriculum, the duration of schooling, and the development of intellectual abilities. Given that humans are psycho-physical beings, no one can rely solely on one facet of life for their complete well-being. Montaigne eloquently summarised this concept by stating,

"We are nurturing a holistic individual, and we shouldn't separate them into distinct components of the soul and the body."

John Locke endorsed this perspective by asserting that **"A healthy mind within a healthy body"** succinctly describes a state of happiness in this world. This reinforces the idea that physical education is integral to the process of shaping individuals. Charles A. Butcher further affirmed this view, declaring physical education as an essential component of the overall education system. According to UNICEF, physical education, both within and outside of educational institutions, plays a crucial role in enabling young people to acquire and develop life skills. Key components of providing quality education include sports and opportunities for recreational activities, aligning with the child's right to optimal development. Thus, Health and physical education offer a myriad of physical and mental health benefits, while also significantly contributing to character development and life skill acquisition within today's education system.

Physical Health Benefits: Health and physical education promote physical well-being in several ways. Regular physical activity, be it through sports, exercise, or outdoor activities, enhances cardiovascular health, increases muscular strength, and improves overall fitness. This helps reduce the risk of lifestyle-related diseases, such as obesity and diabetes. Additionally, it fosters healthy habits that often persist into adulthood, encouraging a lifelong commitment to wellness.

Mental Health Benefits: Physical activities within these subjects stimulate the release of endorphins, the "feel-good" hormones, which can reduce stress and improve mood. Regular exercise has been linked to better cognitive function, including enhanced memory and problem-solving skills. Furthermore, physical education provides a healthy outlet for pent-up energy and emotions, aiding in emotional regulation. Students who engage in physical activities often report higher self-esteem and increased self-confidence.

Character Building: Health and physical education instil fundamental values and qualities that contribute to character development. Through sports and team activities, students learn about teamwork, cooperation, leadership, and communication. They understand the importance of fair play, sportsmanship, and ethical behaviour, nurturing respect for rules and opponents. These values translate into better citizenship and an understanding of the significance of integrity and honesty in all aspects of life.

Life Skills: The subjects also impart valuable life skills. Physical education teaches discipline, punctuality, time management, and the importance of setting and achieving goals. It equips students with stress management techniques and perseverance, valuable attributes in the modern world. Additionally, by engaging in physical activities, students develop skills in problem-solving and decision-making, transferable to various real-life situations.

Today's education system recognizes that a comprehensive approach to learning is essential. Health and physical education, with their focus on physical and mental well-being, character development, and life skills, contribute immensely to this holistic vision. These subjects not only foster healthy individuals but also empower students with essential life tools, preparing them for the challenges of the future. In this way, health and physical education are invaluable components of a well-rounded education that equips students for success in all aspects of life.

Challenges and Controversies in Implementing Health and Physical Education in Academic Settings:

Health and physical education, while recognized for their importance in promoting holistic development, face several challenges and controversies in educational settings, particularly in India.

- **Limited Curriculum Time:** One challenge is the limited time allocated to health and physical education within the curriculum. The overwhelming focus on academic subjects often sidelines these essential subjects, compromising students' physical fitness and well-being.
- **Infrastructure and Resources:** Many schools in India lack adequate sports facilities and trained physical education instructors. Insufficient resources hinder the effective implementation of physical education programs.
- **Cultural Barriers:** In a diverse country like India, cultural norms and societal expectations can hinder the participation of students, particularly girls, in physical activities. Surmounting these obstacles presents considerable difficulty.
- **Standardisation and Quality:** The quality and standardisation of health and physical education programs

vary widely across schools and regions. Ensuring a consistent and high-quality curriculum is a contentious issue.

- **Examinations and Pressure:** The competitive nature of examinations and the pressure to excel academically often discourage students from participating in physical education, considering it as a secondary concern.
- **Gender Disparities:** Gender disparities in access to and participation in physical education are a significant controversy. Promoting gender equality in these programs remains a challenge.
- **Assessment Methods:** Measuring the effectiveness of physical education programs and assessing students' progress beyond conventional exams are contentious issues. Creating suitable evaluation techniques poses a challenge.
- **Overemphasis on Competitive Sports:** While competitive sports have their merits, an overemphasis on them can be controversial. It can lead to an imbalanced focus on winning, rather than on physical fitness and character development.
- **Policy Implementation:** The successful implementation of policies advocating for health and physical education is often mired in bureaucratic challenges and a lack of accountability.
- **Digital Distractions:** The proliferation of digital devices and screen time has added a new layer of challenges, diverting students' attention away from physical activities.

To address these challenges and controversies, India needs comprehensive policies that emphasise the significance of health and physical education. This should include increased infrastructure investment, improved training for physical education instructors, and measures to promote inclusivity and gender equality. Striking a balance between academics and physical education, considering cultural sensitivities, and fostering a love for physical activity are crucial aspects of advancing this cause in Indian educational institutions.

Strategies for Assimilating Health and Physical Education into the Academic Programme:

Integrating health and physical education subjects effectively into the educational curriculum is paramount for nurturing well-

rounded individuals. To achieve this, schools and policymakers can implement the following strategies:

- **Clear Curriculum Guidelines:** Educational Policymakers should provide clear and comprehensive curriculum guidelines for health and physical education. These guidelines should outline age-appropriate learning objectives and expectations at different grade levels.
- **Specialised Training:** Ensure that physical education instructors are well-trained and qualified. Offer professional development opportunities to keep them updated with the latest teaching methods and health-related information.
- **Infrastructure Development:** Schools should invest in modern sports facilities and equipment, creating an environment conducive to physical activity. Ensuring schools have well-maintained playgrounds, tracks, and sports equipment is crucial.
- **Diverse Physical Activities:** Educators should encourage a variety of physical activities to cater to students with different interests and abilities. This may include traditional sports, yoga, dance, and outdoor activities.
- **Regular Assessment:** School authorities can implement a comprehensive assessment system in respect of health and Physical education that goes beyond the traditional exam system. They can evaluate their students based on their physical fitness, participation, and improvement in this field over time.
- **Incorporate Technology:** We can use technology to enhance physical education. Tools like fitness trackers, apps, and educational software can engage students and track their progress.
- **Awareness Programmes:** We should promote awareness about the importance of health and physical education among students, parents, and the community. We can also conduct various workshops, seminars, and health-related campaigns to underline the significance of these subjects.
- **Integration with Academic Subjects:** Everyone should explore various ways to integrate health and physical education with other academic subjects. For instance, biology classes could include lessons on human anatomy and exercise physiology.

- **Inclusivity:** Ensure that physical education programmes are inclusive, accommodating students with disabilities. Adapt the curriculum and provide necessary support to make physical activities accessible to all.
- **Policy Support:** Policymakers should incentivize schools that excel in health and physical education. This can be through grants, recognition, or special programs that promote these subjects.
- **Parental Involvement:** Encourage parental involvement in physical education by organising family fitness events and providing parents with resources to support their children's health and fitness at home.
- **Research and Evaluation:** Regularly assess the impact of health and physical education programmes. Educational institutions should use data to refine and improve the curriculum and teaching methods.

Incorporating these strategies requires a collaborative effort between schools, educators, policymakers, and the community. By emphasising the integration of health and physical education into the curriculum and offering support at various levels, a more holistic approach to education can be achieved, leading to healthier, well-educated, and more physically active individuals.

Envisioned Future Scenarios of Health and Physical Education in the Transforming Educational Landscape of India:

The future of health and physical education in India's educational landscape holds immense promise and potential. As the nation evolves and embraces a more holistic approach to education, there are several key directions that these subjects are likely to take, each underlined by examples illustrating their significance.

- **Comprehensive Curriculum Integration:** In the evolving educational landscape, health and physical education will be seamlessly integrated into the core curriculum. This integration aims to create a more well-rounded educational experience for students. For example, schools may include physical fitness assessments as part of their regular report cards, making physical education as essential as any academic subject.

- **Emphasis on Lifelong Health:** Health and physical education will extend beyond school years to foster lifelong health and well-being. Schools will encourage a culture of regular physical activity and wellness through extracurricular programmes and community involvement. This can be seen in initiatives like "**Fit India,"** a nationwide campaign launched by the Indian government to promote physical fitness among all age groups.
- **Technology-Enhanced Learning:** The integration of technology will continue to play a significant role. Virtual physical education classes and apps that track fitness progress will become more commonplace, making health and physical education accessible to students, regardless of their location. Platforms like **"Khelo India"** have already incorporated digital resources for promoting sports and fitness.
- **Skill Development:** Beyond just physical fitness, the emphasis will also shift towards skill development. Schools will offer a wider range of activities, including traditional sports, yoga, dance, and adventure sports. These activities will not only promote physical health but also build valuable life skills.
- **Inclusivity and Accessibility:** There will be a concerted effort to make health and physical education more inclusive and accessible to all students. Specialised programmes and facilities for students with disabilities will become more prevalent, exemplified by the **"Special Olympics Bharat"** movement, which focuses on sports for individuals with intellectual disabilities.
- **Cultural Relevance:** Recognizing India's diverse cultural traditions, health and physical education programs will embrace indigenous practices like yoga, Kalaripayattu, or traditional games like Kabaddi. This approach will ensure cultural relevance and inclusivity.
- **Community Involvement:** Schools will engage local communities in promoting health and physical education. Community sports clubs, fitness centres, and outdoor activity groups will collaborate with educational institutions to provide students with practical exposure. The **"Khel Mahakumbh"** initiative in Gujarat is an example of such community engagement in sports and physical fitness.

- **Career Opportunities:** As the fitness and sports industry in India expands, health and physical education will provide career opportunities beyond teaching. This includes roles in sports management, fitness training, and sports sciences, offering students diverse career prospects.

Hence, the future directions of health and physical education in India's evolving educational landscape are centred on comprehensive integration, emphasising lifelong health, embracing technology, skill development, inclusivity, cultural relevance, community involvement, and the creation of career opportunities. These directions aim to produce well-rounded individuals who are not only physically fit but also possess the skills and knowledge to lead healthy, active, and meaningful lives. The journey towards this future is already underway, with initiatives and programmes actively contributing to this transformative educational landscape.

Conclusion:

In the multifaceted world of education, the incorporation of health and physical education emerges as a beacon of holistic development, illuminating the path to producing well-rounded individuals in today's dynamic society. As we draw this exploration to a close, it is evident that the emphasis on health and physical education is not a mere pedagogical choice but a strategic imperative that encapsulates multifarious benefits that extend far beyond physical fitness. The journey through the historical roots, the contemporary landscape, and the future directions of health and physical education reveal its profound importance. It offers a nuanced understanding of how these subjects contribute to the development of individuals, not just in terms of physical well-being but also character, life skills, and overall quality of life. Health and physical education in India, as in other parts of the world, are experiencing a transformative resurgence. This transformation is powered by a growing awareness of the crucial role they play in creating individuals who are not only physically healthy but also mentally resilient, emotionally balanced, and socially aware. The significance of nurturing not just academically adept students but also those with strong bodies and minds is becoming increasingly evident. As students participate in physical activities, they learn the value of discipline, teamwork, perseverance, and sportsmanship. These attributes are instrumental in shaping their character and

enabling them to navigate life's challenges effectively. Moreover, the mental health benefits are profound, helping students manage stress, boost self-esteem, and enhance cognitive function. In today's ever-evolving educational landscape, health and physical education are poised to take on more prominent roles. The curriculum is broadening to encompass a comprehensive understanding of well-being, embracing topics such as mental health, nutrition, and interpersonal skills. Technology is enriching the learning experience, making fitness tracking and assessment more engaging. Inclusivity is gaining ground, with efforts to make physical education accessible to all, irrespective of physical abilities.

The holistic approach to health and physical education stands as a testament to the evolving goals of education - producing individuals who are not just academically proficient but also physically fit, emotionally balanced, and socially adept. The multifaceted world of education is evolving, and at its heart, health and physical education shine as catalysts to establish a community of individuals who possess the physical and mental strength to flourish in an ever-shifting and diverse world.

REFERENCES

1) Armstrong, N. and Welsman, J.R. (1997) Young People and Physical Activity, Oxford University Press, Oxford.
2) Biddle, S., Sallis, J.F. and Cavill, N. (eds) (1998) Young and Active? Young People and Health-Enhancing Physical Activity—Evidence and Implications. Health Education Authority, London.
3) Using physical education to promote out-of-school physical activity in lower secondary school students – a randomised controlled trial protocol: https://bmcpublichealth.biomedcentral.com/articles/10.1186/s12889-019-6478-x (Accessed on October, 2023)
4) Physical Education: https://ncert.nic.in/textbook/pdf/kehp101.pdf (Accessed on October, 2023)
5) The impact of PE and sport on education outcomes: Loughborough University https://www.icsspe.org/system/files/Stead%20and%20Neville%20-%20The%20Impact%20of%20Physical%20Education%20and%20Sport%20on%20Education%20Outcomes_0.pdf (Accessed on October, 2023)

6) Physical Education: At the Centre of Physical Activity Promotion in Schools https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC10252374/ (Accessed on October, 2023)
7) Physical Education | physical Activity | Healthy Schools https://www.cdc.gov/healthyschools/physicalactivity/physical-education.htm (Accessed on October, 2023)
8) What is PE? https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/13573322.2011.613924 (Accessed on October, 2023)
9) Need and importance of physical education for school students https://www.journalofsports.com/pdf/2021/vol6issue1/PartF/6-1-128-302.pdf (Accessed on October, 2023)
10) HISTORY, PRINCIPLES AND FOUNDATION Of PHYSICAL EDUCATION https://www.sssutms.co.in/cms/Areas/Website/Files/Link/EContent/Foundation_physical_edcation.pdf (Accessed on October, 2023)
11) Physical Education Makes You Fit in Healthy | Oxford Academic https://academic.oup.com/her/article/20/1/14/632614 (Accessed on October, 2023)
12) Define Physical Education its Aim and Objectives https://old.amu.ac.in/emp/studym/100002625.pdf (Accessed on October, 2023)
13) Department of Physical Education https://www.tnpesu.org/pdf/iqac/2.6_STUDENT_PERFORMANCE_AND_LEARNING_OUTCOMES.pdf (Accessed on October, 2023)
14) Special Objectives of PE with Relationships to Public Health https://ajph.aphapublications.org/doi/pdf/10.2105/AJPH.11.6.520 (Accessed on October, 2023)

ABOUT THE AUTHOR



PALLABI BANERJEE has earned a Postgraduate degree in English Literature and a Bachelor of Education (B.Ed). Additionally, she has pursued further academic excellence by

obtaining a Master of Arts (M.A.) in Education and a Master of Education (M.Ed.). Currently, she serves as an Assistant Professor at the esteemed Rajendra Academy for Teachers' Education, a NAAC-accredited institution located in the vibrant city of Durgapur, West Bengal. Pallabi Banerjee is an accomplished writer, contributing articles and chapters to books and journals. Her active participation in seminars, workshops, and other scholarly events demonstrates her commitment to professional growth and engagement in academic discourse.

CHAPTER 14

BLENDED EDUCATION

Pranay Pandey
Assistant Professor, School of Education, Adamas University, India
Research Scholar, Department of Education, Kazi Nazrul Univeristy, India
Email: pranaypandey20@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.14

ABSTRACT

The landscape of education has undergone a significant transformation in recent years, with the emergence of online learning platforms and technologies. This transformation has given rise to a pedagogical approach known as "Blended Education" which integrates elements of traditional face-to-face instruction with online learning environments. This abstract explores the concept of blended education as a bridge between traditional and online learning methods. Blended Education seeks to leverage the strengths of both traditional and online learning, providing a flexible and dynamic educational experience. In this model, students engage in a combination of in-person classroom activities and virtual learning, often through web-based platforms, to achieve educational objectives. This approach not only accommodates diverse learning styles but also promotes self-directed learning, collaboration, and critical thinking skills.

Blended education has gained popularity for its ability to address the limitations of traditional classroom settings, such as fixed schedules and physical constraints, while harnessing the advantages of online learning, such as accessibility, scalability, and personalization. It can be applied across various educational levels and disciplines, making it a versatile solution for modern education.

This abstract also discusses the challenges associated with implementing blended education, including the need for robust

technological infrastructure, instructor training, and ongoing evaluation of the effectiveness of the blended approach. Furthermore, it emphasizes the importance of ensuring equity and accessibility for all students, regardless of their socioeconomic background or digital literacy skills.

In conclusion, blended education is a promising pedagogical approach that bridges the gap between traditional and online learning methods. It offers the potential to enhance the quality of education by combining the best of both worlds. As education continues to evolve in an increasingly digital age, understanding and embracing the principles of blended education will be crucial for educators, institutions, and policymakers striving to meet the diverse needs of 21st-century learners.

KEYWORDS: *Online Learning, Transformation, Flexible, Critical Thinking Skills, Dynamic, Accessibility, Scalability, Digital Literacy Skills, Pedagogical Approach.*

INTRODUCTION

Blended Education is an educational approach that combines various instructional modalities to create a comprehensive and effective learning experience for students. It encompasses both traditional face-to-face instruction and online learning activities, blending the strengths of each to achieve educational objectives. This approach aims to optimize the learning process by leveraging the benefits of both in-person and digital learning. In blended learning, a range of tools and technologies are utilized, including online discussion forums, video conferencing, webinars, and interactive learning platforms. This diverse set of resources accommodates different learning styles, promotes engagement, and encourages collaboration among students. Blended Education is adaptable to various educational levels, from primary and secondary schools to higher education and professional training programs. One of the key advantages of Blended Education is its potential to enhance student engagement and motivation. By incorporating interactive and technology-driven elements, educators can create a more personalized and dynamic learning environment. This approach also has the potential to increase efficiency by reducing the need for physical classroom infrastructure and

minimizing instructional time. Additionally, Blended Education can be cost-effective, as it eliminates the necessity for expensive materials and technology. This cost efficiency makes it a viable option for educational institutions aiming to provide high-quality education within budget constraints. Moreover, Blended Education can benefit teachers by helping them manage their workload more effectively and deliver instruction that caters to individual student needs. In conclusion, Blended Education is a versatile and effective pedagogical strategy that combines traditional and online instruction to deliver a well-rounded learning experience. It adapts to the evolving educational landscape and offers advantages for both students and educators. As technology continues to shape the future of education, Blended Education is likely to play an increasingly prominent role in creating engaging and efficient learning environments.

CHALLENGES FACED BY INDIAN HIGHER EDUCATION

Indian higher education faces a range of challenges that impact its quality, accessibility, and effectiveness. These challenges are complex and multifaceted, and addressing them is crucial for the country's educational development and future workforce. Some of the key challenges include:

- **Quality of Education:** While India has a large number of higher education institutions, the overall quality of education varies significantly. Many universities and colleges suffer from outdated curriculum, inadequate infrastructure, and a lack of qualified faculty. This hampers the ability to provide students with a high-quality education.
- **Access and Equity:** Access to higher education remains a major issue in India, with significant disparities based on socio-economic status, geographic location, and gender. Many students from marginalized backgrounds struggle to access higher education due to financial constraints, inadequate schools at the primary and secondary levels, and a lack of affirmative action policies in some regions.
- **Overcrowding:** Some of the top-tier universities in India are often overcrowded, leading to issues related to infrastructure, faculty-student ratios, and overall learning environments. This overcrowding affects the quality of education and student experience.

- **Curriculum Relevance:** The curriculum in many Indian higher education institutions is often criticized for being outdated and not aligned with the needs of the job market. There is a need to make curricular revisions that prepare students for the demands of a rapidly changing global economy.
- **Faculty Shortage:** Many institutions struggle with a shortage of qualified faculty members. This can result in overworked faculty, less research output, and difficulties in providing students with a well-rounded education.
- **Funding Constraints:** Public universities in India often face financial constraints, leading to insufficient investment in research infrastructure, modernization of facilities, and overall improvement of the education system.
- **Lack of Research and Innovation:** India lags behind in terms of research output and innovation compared to countries with strong higher education systems. Encouraging research and innovation in universities is critical for economic development and competitiveness.
- **Employability:** Despite the large number of graduates in India, there is a gap between the skills graduates possess and the skills required by employers. Many students struggle with employability due to the disconnect between education and industry needs.
- **Regulatory Challenges:** The regulatory environment for higher education in India can be complex and bureaucratic, which can hinder the autonomy and flexibility of universities and colleges.
- **Digital Divide:** While there has been a push towards online education, the digital divide remains a challenge in India. Many students do not have access to the necessary technology or internet connectivity to participate effectively in online learning.

Addressing these challenges requires a comprehensive and multi-pronged approach, involving government policies, increased investment in education, curriculum reform, faculty development, and efforts to promote equity and inclusion in higher education. It also requires a close collaboration between academia, industry, and policymakers to ensure that graduates are well-prepared for the demands of the modern workforce.

CONCEPT OF BLENDED EDUCATION

The concept of blended education, often referred to as blended learning, represents a transformative pedagogical approach that has gained prominence in modern education. At its core, blended education seeks to strike a balance between traditional face-to-face instruction and the vast possibilities offered by digital technology and online resources. In this approach, students are provided with a diverse learning experience that combines the strengths of both in-person and virtual learning environments.

Blended education is characterized by its flexibility, adaptability, and customization. It allows educators to tailor instruction to the specific needs and learning styles of individual students. By integrating online components such as video lectures, discussion forums, interactive simulations, and multimedia resources with traditional classroom interactions, educators can create a rich and varied educational ecosystem. This approach not only empowers students to take more control over their learning but also encourages critical thinking, problem-solving, and collaborative skills essential for success in the digital age.

One of the significant advantages of blended education is its capacity to address some of the limitations associated with traditional education. It can accommodate diverse student populations, including those with varying schedules, geographical locations, and access to educational resources. Blended Education can be particularly beneficial in higher education, professional development, and vocational training, where it enables individuals to acquire new knowledge and skills without having to disrupt their existing commitments.

However, implementing blended education effectively comes with its own set of challenges. Educational institutions need robust infrastructure, technological resources, and faculty training to seamlessly integrate online and in-person components. Additionally, ensuring equitable access to technology and digital literacy skills is crucial to prevent further educational disparities.

The concept of blended education represents a dynamic and forward-thinking approach to learning. It capitalizes on the potential of technology to enhance education while preserving the valuable aspects of traditional classroom instruction. As education continues to evolve in response to the demands of the 21st century, blended education remains a compelling model that strives to create more

engaging, flexible, and effective learning experiences for students of all ages and backgrounds.

Blended Education has emerged as a practical and effective approach to address the challenges faced by educational institutions, particularly in the context of limited budgets and existing infrastructure constraints. This approach, as evidenced by studies such as Thorne (2003) and Valk, Seene, & Pilt (2001), offers a viable solution to deliver high-quality, up-to-date, and on-demand learning experiences. This is particularly relevant for developing countries like India, where increasing enrollment in higher education while managing budget limitations is a pressing concern.

Blended Education aligns well with India's cultural values, ethos, and collaborative social context. It allows for a gradual and sustainable transformation of the education system while preserving traditional values. The blend of online and face-to-face learning enables educational institutions to optimize their resources and provide students with flexible, engaging, and efficient instruction.

In a Blended Education Environment, diverse delivery modalities, including collaboration software, web-based courses, and knowledge management practices, are combined to create a holistic learning experience. This approach accommodates various learning styles and preferences, promoting active, self-directed learning opportunities while offering flexibility to students. Blended Education encourages interactions among students, faculty, and content, both in and outside the classroom.

The goal of Blended Education is to harness the strengths of in-class teaching and online learning to foster an educational environment that is conducive to effective student learning. This approach is often referred to as a hybrid model in higher education, emphasizing active learning and reducing classroom time through the integration of online components. When implemented successfully, Blended Education has the potential to enhance the quality of education, increase accessibility, and support the broader goals of education planners, all while preserving essential elements of traditional educational values.

FEATURES OF BLENDED EDUCATION

Blended education combines elements of traditional face-to-face instruction with online learning components. This approach offers a flexible and dynamic learning experience that leverages the

strengths of both in-person and digital education. Here are some key features of blended education:

- **Integration of In-Person and Online Components:** Blended education seamlessly combines traditional classroom instruction with online learning activities, creating a cohesive and holistic educational experience.
- **Flexibility in Learning:** Students have the flexibility to engage with course materials and activities at their own pace, allowing for a personalized learning experience. They can access resources and complete assignments online while still participating in face-to-face discussions and activities.
- **Varied Learning Resources:** Blended education incorporates a wide range of multimedia resources, including video lectures, interactive simulations, e-books, and online quizzes, to cater to diverse learning styles and preferences.
- **Student-Centered Approach:** Blended Education encourages active student participation and engagement. It often involves collaborative projects, group discussions, and peer-to-peer interactions, fostering a sense of community and shared learning experiences.
- **Adaptive Learning:** Some Blended Education models utilize adaptive technology and data analytics to tailor the learning experience to individual student needs. This can include personalized assignments, feedback, and recommendations.
- **Accessibility and Convenience:** Blended education can be more accessible to students who may have scheduling constraints, allowing them to balance their education with work or other responsibilities. It also eliminates geographical barriers, making education accessible to a wider audience.
- **Assessment and Feedback:** Assessment in blended education typically includes a mix of traditional exams, quizzes, and online assessments. Immediate feedback from online assessments can help students gauge their understanding and progress.
- **Faculty Guidance:** Instructors play a crucial role in blended education by guiding students through the learning process, facilitating discussions, and providing support. They may need training to effectively manage the blend of in-person and online components.

- **Continuous Improvement:** Blended education often involves data collection and analysis to measure student performance and the effectiveness of the course. This data-driven approach allows for continuous improvement and refinement of the curriculum.
- **Hybrid Models:** Some blended education models may involve a rotation schedule where students alternate between in-person and online sessions. Others may utilize a flipped classroom approach, where content delivery and lectures happen online, and classroom time is dedicated to discussions and application of knowledge.
- **Cost Efficiency:** Blended education can be more cost-effective than traditional classroom-based instruction as it reduces the need for physical infrastructure and can reach a larger number of students with fewer resources.
- **Scalability:** Blended education can be scaled up to accommodate a larger number of students without significantly increasing the need for physical space or additional faculty.

Blended education's flexibility and adaptability make it a valuable educational approach in today's digital age, catering to the diverse needs and preferences of students while maintaining the benefits of traditional face-to-face instruction.

BLENDED EDUCATION MODELS

Blended learning, also known as hybrid learning, is a flexible pedagogical approach that combines traditional face-to-face instruction with online learning components. There are several different models of blended learning, each with its own approach to blending these two modes of instruction. Here are some common Blended Education models:

(A) Flipped Model: In the flipped model, traditional classroom instruction is inverted. Learners first encounter the instructional content outside of class, typically through video lectures, readings, or online modules. Then, in-class time is dedicated to active learning activities, discussions, group projects, and exercises that reinforce and apply the pre-learned material. The flipped model allows for more personalized and interactive learning during face-to-face sessions and provides students with the flexibility to learn at their own pace.

(B) Face-to-Face Driver Model: The face-to-face driver Blended Education model is the closest to traditional classroom training, as most of the training takes place in a classroom setting under the guidance of an instructor. This approach offers individual, personalized support to learners who are struggling to grab the new concepts or are falling behind the training curriculum.

(C) Rotational Model: In the rotational model, learners rotate between different learning modalities, such as face-to-face instruction, online activities, small-group discussions, and independent study. These rotations can be on a fixed schedule (e.g., daily or weekly) or based on learners' progress. It offers flexibility and caters to various learning styles, allowing employees to work in the modality that best suits their needs at a particular time.

(D) Flex Model: The flex model provides learners with significant autonomy and control over their learning path. It combines online learning with in-person support as needed. Using an adaptive learning platform, learners have the flexibility to choose when and where they access online content and resources, making it suitable for self-paced learning. Instructors are available to assist learners when required, helping them navigate through the material and address any challenges.

(E) Enriched Virtual Model: The enriched virtual model is primarily an online learning experience with periodic face-to-face sessions. Most of the learning occurs in a virtual environment, but learners attend physical classes, or workshops at designated times for hands-on activities, assessments, or collaborative projects. This model combines the flexibility of online learning with the benefits of in-person interaction, ensuring learners receive both individualized instruction and opportunities for group engagement.

REDESIGNING PEDAGOGY: BLENDED EDUCATION STRATEGIES

Redesigning pedagogy to incorporate blended education strategies represents an innovative approach to teaching and learning that leverages the benefits of both traditional classroom instruction and online learning. This pedagogical shift requires thoughtful planning, adaptation, and a commitment to creating a dynamic and effective educational experience. Here are some strategies for redesigning pedagogy with a focus on blended education:

- **Clearly Define Learning Objectives:** Start by identifying clear learning objectives and outcomes for our course. What do we want your students to achieve? How can a blend of in-person and online components help you achieve these goals?
- **Select Appropriate Content for Online Delivery:** Determine which aspects of our course content can be effectively delivered online. This may include recorded lectures, reading materials, multimedia resources, or discussion forums. Choose content that aligns with your learning objectives.
- **Promote Active Learning:** Encourage active learning experiences in both in-person and online settings. In the classroom, facilitate discussions, group activities, and hands-on exercises. Online, use interactive modules, quizzes, and collaborative projects.
- **Provide Clear Guidelines and Expectations:** Communicate clear guidelines and expectations for participation, assignments, and assessments in both the in-person and online components. Ensure students understand how the two modes of instruction complement each other.
- **Foster Engagement and Interaction:** Create opportunities for student engagement and interaction. This can include discussion forums, peer-to-peer collaboration, virtual office hours, and real-time online discussions during in-person classes.
- **Offer Flexibility and Accessibility:** Recognize that blended learning can accommodate diverse student needs. Provide flexibility in accessing online materials, offer alternative methods for participation, and ensure accessibility for all learners.
- **Incorporate Formative Assessment:** Use formative assessments, such as quizzes and online assignments, to gauge student understanding throughout the course. Provide timely feedback to guide their progress.
- **Emphasize Critical Thinking and Problem-Solving:** Design activities and assignments that promote critical thinking and problem-solving skills. Encourage students to apply their knowledge in real-world scenarios, both in person and online.

- **Leverage Technology Effectively:** Explore various educational technologies and tools to enhance the online learning experience. Choose platforms that align with your course objectives and facilitate engagement.
- **Promote Self-Directed Learning:** Encourage students to take responsibility for their learning. Provide resources for self-directed study and guide them on how to make the most of online materials.
- **Monitor Progress and Adjust:** Continuously monitor student progress and engagement in both in-person and online components. Be prepared to make adjustments to your course design based on feedback and data analysis.
- **Faculty Development and Support:** Invest in faculty development and training to equip instructors with the skills and knowledge needed to effectively implement blended learning strategies. Provide ongoing support and resources.
- **Evaluate and Reflect:** After the course concludes, evaluate the effectiveness of your blended approach. Seek feedback from students and consider how the blend of in-person and online elements contributed to their learning outcomes.

Redesigning pedagogy to incorporate blended education strategies requires a thoughtful and student-centered approach. By combining the strengths of both traditional and online learning, educators can create a dynamic and engaging educational experience that meets the diverse needs of today's learners.

BENEFITS OF BLENDED EDUCATION ACCORDING TO NEP 2020

The National Education Policy (NEP) 2020 in India recognizes the potential benefits of blended education and emphasizes its importance in shaping the future of education in the country. According to the NEP 2020, some of the key benefits of blended education include:

- **Increased Access and Equity:** Blended education can address the issue of limited access to quality education, especially in remote and underserved areas. The combination of online and offline resources allows students from diverse backgrounds to access educational content, reducing geographical barriers.

- **Flexibility for Learners:** Blended education offers flexibility in terms of learning pace, place, and time. Learners have the freedom to choose when and where they engage with online resources, accommodating their individual schedules and preferences.
- **Personalized Learning:** NEP 2020 emphasizes the importance of personalized and adaptive learning. Blended education allows for the customization of learning experiences to meet the unique needs and learning styles of individual students. Online platforms can provide adaptive assessments and content recommendations to cater to each learner's progress.
- **Quality Enhancement:** The integration of technology in blended education can enhance the quality of teaching and learning. Access to multimedia resources, digital libraries, and interactive simulations can make learning more engaging and effective.
- **Teacher Empowerment:** Blended education can empower educators by providing them with tools and resources to improve their teaching methods. It enables teachers to adapt their instruction to the needs of their students, monitor progress, and offer timely feedback.
- **Reduced Infrastructure Costs:** NEP acknowledges that blended education can help optimize the use of physical infrastructure in educational institutions. By leveraging online resources, institutions can reduce the demand for additional infrastructure, potentially lowering costs.
- **Lifelong Learning Opportunities:** Blended education supports lifelong learning by making educational resources accessible to learners of all ages. It encourages individuals to continuously acquire new skills and knowledge throughout their lives.
- **Globalization of Education:** Blended education can facilitate international collaboration and exposure to global educational content. It enables students to connect with educators and peers from around the world, promoting a broader perspective on learning.
- **Skill Development:** Blended education aligns with the emphasis on skill development in the NEP 2020. It allows for

the integration of skill-based courses and vocational training programs, making learners more job-ready.

- **Data-Driven Decision Making:** Blended education generates data on student performance and engagement, which can be used for data-driven decision-making by educators and policymakers. This data can inform instructional improvements and resource allocation.
- **Scalability:** Blended education can be scaled up to reach a larger number of students without significant infrastructure investments. This scalability aligns with the NEP's goal of increasing Gross Enrollment Ratio (GER) in higher education.

NEP 2020 recognizes that blended education has the potential to revolutionize the Indian education system, making it more inclusive, flexible, and responsive to the evolving needs of learners. By harnessing the benefits of blended learning, India aims to create a more equitable and effective educational ecosystem that prepares students for the challenges of the 21st century.

CHALLENGES IN IMPLEMENTATION OF BLENDED LEARNING IN THE CONTEXTS OF NEP 2020

While the National Education Policy (NEP) 2020 in India promotes the integration of technology and blended learning, there are several challenges associated with its implementation in the Indian education context. These challenges include:

- **Digital Divide:** India faces a significant digital divide, with uneven access to technology and the internet across regions and socioeconomic groups. Many students in rural and underserved areas lack access to devices and reliable internet connectivity, which hinders their participation in online learning activities.
- **Infrastructure Constraints:** The availability of adequate infrastructure, such as computer labs and high-speed internet in educational institutions, remains a challenge. Many schools and colleges, especially in rural areas, lack the necessary technological infrastructure to support blended learning.
- **Teacher Preparedness:** While NEP acknowledges the importance of teacher training, there is a need for substantial professional development to equip educators with the skills and confidence to effectively integrate technology into their

teaching practices. Many teachers may not be proficient in using digital tools for instruction.

- **Content Localization:** Blended learning content should be contextually relevant and localized to cater to India's linguistic and cultural diversity. Developing and curating content in multiple regional languages and dialects is a significant challenge.
- **Cost Implications:** Implementing and sustaining blended learning can be costly, especially in terms of technology investments, software licenses, and maintenance. Budget constraints in many educational institutions may limit their ability to adopt and maintain these resources.
- **Assessment and Evaluation:** Ensuring fair and secure assessments in an online environment can be challenging. Maintaining academic integrity and preventing cheating during online assessments is a concern that needs to be addressed effectively.
- **Lack of Digital Literacy:** Both students and teachers may have varying levels of digital literacy. Students need to develop digital skills to navigate online learning platforms, while teachers require digital literacy to create and manage online content effectively.
- **Regulatory and Policy Frameworks:** NEP introduces the idea of online degree programs and credits, but there may be challenges in creating and implementing regulatory frameworks to govern online and blended education, including issues related to accreditation and quality assurance.
- **Student Engagement and Motivation:** Maintaining student engagement and motivation in online and blended learning environments can be challenging. The absence of face-to-face interactions and peer support may lead to decreased motivation and participation.
- **Data Security and Privacy:** Safeguarding student data and privacy in online learning environments is crucial. Institutions must adhere to data protection regulations and ensure that sensitive information is not compromised.
- **Content Quality:** Ensuring the quality and credibility of online learning resources can be a challenge. Institutions must curate and develop high-quality content to meet educational standards and objectives.

- **Inclusivity:** Blended learning should be inclusive and accessible to all learners, including those with disabilities. Ensuring that online content and platforms are accessible can be a technical and resource-intensive challenge.
- **Cultural and Pedagogical Considerations:** Adapting traditional pedagogical methods to fit the online and blended learning environment while respecting India's diverse cultural and educational contexts is a complex task.

Addressing these challenges requires a multi-faceted approach involving government support, investment in infrastructure and teacher training, policy development, and collaboration between educational institutions and technology providers. The successful implementation of blended learning in the context of NEP 2020 will require concerted efforts to bridge the digital divide, promote digital literacy, and ensure equitable access to high-quality education for all students.

CONCLUSION

Blended Education represents a dynamic and transformative approach to teaching and learning that combines the strengths of traditional face-to-face instruction with the flexibility and interactivity of online learning. This educational model has gained prominence for its ability to address the evolving needs of learners in an increasingly digital age. Blended education offers a range of advantages, including increased access to education, flexibility for students, opportunities for personalized learning, and enhanced engagement. However, the successful implementation of blended education comes with its own set of challenges, such as addressing the digital divide, ensuring infrastructure readiness, and providing adequate training for educators. Overcoming these challenges requires a collaborative effort among educational institutions, policymakers, teachers, and technology providers.

Blended education aligns well with the goals of modern education systems, as seen in initiatives like the National Education Policy (NEP) 2020 in India, which recognizes the potential of technology-enhanced learning. When designed thoughtfully and with a focus on pedagogical effectiveness, blended education can lead to improved learning outcomes and better-equipped graduates prepared to meet the demands of the 21st century.

As technology continues to advance and shape the educational landscape, the concept of blended education will likely play an increasingly significant role in providing diverse and accessible learning opportunities to learners of all ages and backgrounds. Its ability to adapt to changing needs and foster a culture of continuous learning positions blended education as a promising avenue for the future of education.

REFERENCES

1. Alvarez, A. (2020). Learning from the problems and challenges in blended learning: basis for faculty development and program enhancement. *Asian Journal of Distance Education, 15* (2), 112-132.
2. Bruggeman, B., Tondeur, J., Struyven, K., Pynoo, B., Garone, A. and Vanslambrouck, S. (2021). Experts speaking: crucial teacher attributes for implementing blended learning in higher education. *The Internet and Higher Education, 48.*
3. Central Board of Secondary Education. (2020). *Understanding the concept and implementation of blended learning.*
4. Garg, S., & Sharma, R. (2018). Blended Learning: A New Era in Education. In International Conference on Research in Education (pp. 19-21). Springer, Singapore.
5. Hege, I., Tolks, D. Adler, M. and Härtl, A. (2020). Blended learning: ten tips on how to implement it into a curriculum in healthcare education. *GMS Journal for Medical Education, 37* (5).
6. Henderson, M. & Pankake, A. (2020). Blended Learning. *In The Encyclopedia of Educational Technology.*
7. Mali, D. and Lim, H. (2021). How do students perceive face-to-face/blended learning as a result of the Covid-19 pandemic?. *The International Journal of Management Education, 19* (3).
8. Menashy, F. and Verger, A. (2019). Network analysis, education policy, and international development: An introduction. *International Journal of Educational Development, 64,* 58–61.
9. National Education Policy 2020: Key Takeaways. (2020). In National Portal of India. Retrieved from

https://www.india.gov.in/spotlight/national-education-policy-2020-key-takeaways

10. Pattermann, J., Pammer, M., Schlögl, S. and Gstrein, L. (2022). Perceptions of Digital Device Use and Accompanying Digital Interruptions in Blended Learning. *Education Sciences, 12* (3).
11. Rahim, M. (2019). The use of Blended Learning Approach in EFL Education. *International Journal of Engineering and Advanced Technology, 8* (5), 1165-1168.
12. Setyaningrum, W (2018). Blended learning: does it help students in understanding mathematical concepts?. *Jurnal Riset Pendidikan Matematika, 22* (5), 244-53.
13. Smith, K. & Hill, J. (2019). Defining the nature of blended learning through its depiction in current research. *Higher Education Research & Development, 38* (2), 383-97.
14. Thorne, K. (2003). *Blended Learning: how to integrate Online & Traditional Learning.* London: Ans Sterling. Kogan Page.
15. Valk, A., Seene, T., Pilt, L. (2001). Virtual Lifelong Learning in the University of Tartu Challenges for Teachers, Students and Managers. *ICDE Conference proceedings The Future of Learning – Learning for the Future: Shaping the Transition.* FernUniverstität Hagen
16. Wagiono, F., Shaddiq, S., and Junaidi, F. (2022). Implementation of Blended Learning During COVID-19 Pandemic on Civic Education Subjects in Millenial Generation Era. *Edunesia: Jurnal Ilmiah Pendidikan, 3* (1), 36-44.
17. Zimba, Z., Khosa, P. & Pillay, R. (2021). Using blended learning in South African social work education to facilitate student engagement. *Social Work Education, 40* (2), 263-78.

ABOUT THE AUTHOR



PRANAY PANDEY, a commendable writer and scholar in the field of education, is presently teaching as an Assistant Professor at School of Education, Adamas University. He has obtained B.Sc. in Computer Science from RKM Residential College, Narendrapur, under University of Calcutta and M.Sc. in Computer Science from APC College, New-Barrackpore under West Bengal State University. A First Class First (Gold Medal) in B.Ed. as well as M.Ed., both from RKM Sikshanamandira, Belur Math, he has stood First Class First (Gold Medal) in his M.Phil. in Education Programme from the same institution under University of Calcutta, lately. His pursuit of academic excellence continues with yet another First Class First in Post Graduate Diploma in Guidance and Counselling (PGDGC) course from RKM Sikshanamandira. He has also obtained MA in Education from NSOU with A+ Grade. Now, he is pursuing Ph.D. in Education from Kazi Nazrul University, West Bengal. He has written more than 60 books in the field of Education. He has published several Research Articles in both National and International level journals and also has participated and presented papers in various seminars and workshops. He is associated with various National & International level journals as Editorial Board Member and Reviewer. He has received various awards from National and International Arena. He has published more than 20 research articles and book chapters in various journals and edited books. He has also served as an Editor in different edited books published by National and International publishers. Till now, he has developed six Psychological Scales.

CHAPTER 15

ONLINE EDUCATION

Dr. Seema Yadav
Assistant Professor, Department of Education
The Bhopal School of Social Sciences, Bhopal
Email: seemayadav1edu@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.15

ABSTRACT

The advent of online education has ushered in a profound transformation in the realm of learning and teaching, offering unprecedented opportunities and challenges. This abstract explores the multifaceted impact of online education on both students and educators, highlighting its transformative power in reshaping the educational landscape. Online education's flexibility and accessibility have broken down geographical barriers, allowing individuals worldwide to access high-quality educational resources and programs. It provides a diverse array of courses, catering to various interests and career goals. Through multimedia resources and interactive tools, online education engages learners in dynamic and personalized learning experiences, fostering comprehension and retention. For educators, online teaching offers a global reach, encouraging diverse perspectives and innovative pedagogical approaches. The flexibility it provides enables a better work-life balance and opportunities for continuous improvement in teaching methods. Despite its advantages, online education presents challenges, including student engagement, technical issues, and maintaining assessment integrity. However, these challenges are not insurmountable and can be addressed through effective course design, communication, and support mechanisms. As we embrace the digital classroom, it is imperative to prioritize quality and accessibility, ensuring that online education remains inclusive and adaptable. It exemplifies the resilience of education, evolving and

thriving in the digital age, empowering individuals to pursue lifelong learning and unlocking a world of opportunities.

KEY-WORDS: *Online Education, Transformation, Flexibility, Accessibility, Engagement, Innovation*

INTRODUCTION TO ONLINE EDUCATION: EXPLORING THE DIGITAL REVOLUTION IN EDUCATION

The use of information and communication technology has significantly changed educational environments all over the world. The pandemic has expedited the transition from traditional physical classroom settings to those using information and communication technology and has played a significant role in this process (Ulum, 2022). The advent of online education represents a profound digital revolution in the realm of learning and academia. With the rapid advancement of technology and the widespread availability of high-speed internet, education has transcended the confines of physical classrooms and textbooks to become a dynamic, accessible, and highly flexible endeavor. Online education, also known as e-learning, harnesses the power of digital platforms and tools to deliver instructional content and facilitate learning experiences over the Internet. This transformation has democratized education, making it accessible to a global audience, regardless of geographical constraints or time zones. Students now have the freedom to pursue knowledge at their own pace, on their own terms, and from virtually anywhere with an internet connection.

The digital revolution in education has brought about an array of innovative approaches to teaching and learning. It encompasses synchronous learning, where real-time interactions through video conferencing and webinars mimic traditional classroom dynamics, and asynchronous learning, which allows students to access course materials, lectures, and assignments on their own schedules. Massive Open Online Courses (MOOCs), learning management systems, and multimedia resources have become integral components of this educational transformation. Online education caters to diverse learning styles, offering a wide spectrum of courses and programs that range from formal degree programs to short, skill-specific courses. Universities lacked the necessary infrastructure to support the developing shift to digital learning.

This revealed flaws in online education, including concerns with inequity, lack of access, and teacher shortages. While the majority of respondents expressed uncertainty about the safety, negative health effects, or efficacy of online learning, the shift to this format will actually make it possible to create higher-quality, more innovative education (Fernández-Batanero et al., 2022). Due to the convergence of cutting-edge technology, widespread Internet usage, and increasing demand for a workforce that is regularly prepared for the constantly changing digital economy, online education in all of its forms has been expanding rapidly on a global scale. By 2025, online education is expected to be widely used (Palvia et al., 2018). Yet, this digital revolution is not without its challenges. Students must navigate the intricacies of self-motivation and time management, as they no longer have the structured routine of physical classrooms. Technical hurdles, such as internet connectivity issues or software glitches, can disrupt the learning process. Moreover, the absence of face-to-face interactions can lead to a sense of isolation and disengagement for some learners. However, these challenges are met with innovative solutions, such as gamification, interactive multimedia, and robust support systems, designed to enhance the online learning experience. In conclusion, online education represents a transformative shift in the way knowledge is acquired and disseminated, revolutionizing the traditional education landscape. It offers unprecedented accessibility, flexibility, and adaptability to learners worldwide, harnessing the immense potential of digital technology to democratize education and pave the way for a new era of lifelong learning. The future of higher education is online learning. Institutions ought to increase their spending on online learning tools and enhance their programmes for faculty development (Fernández-Batanero et al., 2022). In order to prevent the spread of the virus in big crowds and gatherings during the COVID-19 pandemic, social education has moved from in-person to online instruction (Chen et al., 2020).

ONLINE LEARNING UNLEASHED: PATH TO EDUCATIONAL EXCELLENCE

Online education is a dynamic pathway to educational excellence. It empowers learners with flexibility and accessibility, enabling them to pursue knowledge at their own pace and

convenience. The diverse range of online courses and resources caters to individual interests and goals. Through engaging multimedia content and interactive tools, online education promotes personalized learning, enhancing comprehension and retention. It signifies a transformative shift in education, opening doors to excellence that transcend traditional boundaries and create a more inclusive and innovative educational landscape. Online education is primarily an extension of the traditional school curriculum that teachers implemented in their own classrooms throughout the pandemic (Ulum, 2022). For a very long time, online education was considered experimental. The COVID-19 epidemic gained widespread attention (Chakraborty et al., 2021). Online education, also known as e-learning, refers to the delivery of educational content and instruction via the Internet or digital technology. It has become increasingly popular in recent years due to advancements in technology and the widespread availability of high-speed internet access. There was an immediate need to switch to online education because of the pandemic. While taking advantage of the benefits offered by online education, difficulties were encountered in this process. The purpose of this study is to review the literature on online learning in higher education institutions during the pandemic and to emphasise the potential and difficulties that have been identified (Ozdamli & Karagozlu, 2022). Although educational institutions all over the world have utilised emergency remote teaching or online education in the past in reaction to various crisis and disaster scenarios, this is the first time that the educational industry has been alarmed owing to the pandemic's widespread impact (Iqbal et al., 2022). The accessibility of online education and the subsistence allowance system are mediated by the availability of utilities connected to online education, such as computers, smartphones, and Internet connectivity (Gu, 2021). Online education encompasses a wide range of learning formats and tools, including:

1. **Synchronous Learning:** In synchronous online education, students and instructors interact in real-time. This can involve live video lectures, webinars, or chat sessions. Students are expected to be present at specific times, similar to a traditional classroom setting.
2. **Asynchronous Learning:** Asynchronous learning allows students to access course materials and complete assignments

at their own pace. Instructors provide resources such as recorded lectures, readings, and discussion forums, and students can engage with these materials when it is convenient for them.

3. **Hybrid or Blended Learning:** Some educational programs combine online and in-person instruction. This approach allows for flexibility while also providing face-to-face interactions when necessary.
4. **Massive Open Online Courses (MOOCs):** MOOCs are online courses offered by universities and organizations to a large number of students worldwide. They often provide free access to course materials, with the option to pay for a certificate or credential.
5. **LMS (Learning Management System):** Online courses are often hosted on learning management systems like Moodle, Blackboard, or Canvas. These platforms facilitate course organization, content delivery, and student assessment.
6. **Video Lectures:** Many online courses use pre-recorded video lectures, which students can watch and review as needed.
7. **Discussion Forums and Social Learning:** Online courses often include discussion forums or social media groups where students can interact with each other and the instructor to ask questions, share insights, and collaborate on assignments.
8. **Assessment and Grading:** Online education utilizes various methods for assessing and grading students, such as quizzes, exams, essays, peer reviews, and projects.

Benefits of Online Education: Advantages for Students and Educators

Online education, often referred to as e-learning, offers a multitude of benefits and advantages for both students and educators, reshaping the landscape of modern education. For students, one of the foremost advantages is flexibility. Online education allows learners to tailor their study schedules to fit their individual needs and lifestyles, accommodating those who may be working full-time, juggling family responsibilities, or simply seeking to optimize their learning pace. This flexibility fosters accessibility, enabling a diverse range of students, including those with physical disabilities or living in remote areas, to access quality education that might otherwise be out of reach. Another significant

advantage is the wide variety of courses and programs available online. Students can choose from an extensive array of subjects and fields of study, regardless of their geographic location, as online platforms offer courses from universities and institutions around the world. This diversity allows students to pursue their passions, explore new interests, and gain specialized skills with ease.

Online education also encourages self-motivation and independent learning. Students must take responsibility for managing their time, completing assignments, and staying engaged with the course material. This fosters valuable skills such as time management, self-discipline, and self-motivation, which are not only essential for academic success but also highly transferable to professional life. Additionally, online education often incorporates interactive and multimedia resources, enhancing the learning experience. Video lectures, interactive simulations, virtual labs, and discussion forums enable students to engage with the content in diverse ways, catering to various learning styles. This dynamic environment can make learning more engaging and impactful. For educators, online education offers the opportunity to reach a broader audience. It transcends physical boundaries, allowing instructors to share their expertise with students from around the world. This global reach can lead to diverse perspectives and enriching discussions within the virtual classroom.

Furthermore, online education can provide educators with flexibility as well. They can design courses, create content, and interact with students from the comfort of their homes or offices, offering a work-life balance that may not always be achievable in traditional brick-and-mortar institutions. Online education also promotes innovation in teaching methods. Educators are encouraged to explore new pedagogical approaches, leveraging digital tools and technology to enhance their teaching. This drive for innovation can lead to the development of more engaging, effective, and personalized learning experiences for students. In conclusion, online education has revolutionized the educational landscape by offering flexibility, accessibility, a wide range of course options, and opportunities for both students and educators to develop critical skills and engage with innovative learning resources. As technology continues to advance, online education is likely to remain a vital and dynamic component of the modern educational ecosystem. With their online learning experiences, faculty members and students felt

overburdened. The flexibility, convenience, potential for professional and personal growth, and safety offered by online education were all deemed satisfactory by the participants (Kunaviktikul et al., 2022). Online education offers a plethora of benefits and advantages for both students and educators, reshaping the way we approach learning and teaching. Here are some of the key advantages:

Advantages for Students:

1. **Flexibility:** Perhaps the most significant advantage of online education for students is flexibility. They can access course materials and complete assignments at their own pace, accommodating work, family, and other commitments. This flexibility eliminates the need to commute to a physical campus and allows for a better work-life-study balance.
2. **Accessibility:** Online education breaks down geographical barriers. Students can access high-quality educational resources and programs from institutions worldwide without the need to relocate or travel. This opens up educational opportunities for people in remote areas or with limited access to traditional institutions.
3. **Variety of Courses:** Online platforms offer an extensive array of courses and programs. Whether students are pursuing a formal degree, seeking to acquire new skills, or exploring personal interests, they can find a course that fits their needs and goals.
4. **Personalized Learning:** Many online courses use adaptive learning technology, allowing students to progress at their own pace. This personalized approach can lead to more effective learning outcomes as students can focus on areas where they need more time and support.
5. **Diverse Learning Resources:** Online education often incorporates multimedia resources, including video lectures, interactive simulations, and virtual labs, making the learning experience more engaging and appealing to different learning styles.
6. **Cost-Effective:** Online education can be more cost-effective than traditional on-campus programs. Students save on commuting, housing, and textbooks, and many online courses offer free access to materials, reducing overall expenses.

7. **Improved Technical Skills:** As students engage with online learning platforms and digital tools, they develop technical skills that are increasingly valuable in today's technology-driven job market.

Advantages for Educators:

1. **Reach a Global Audience:** Educators can reach a broader and more diverse audience, transcending geographical limitations. This global reach can lead to richer classroom discussions and a broader exchange of ideas.
2. **Flexible Teaching Environment:** Online teaching provides educators with the flexibility to design courses, create content, and interact with students from virtually anywhere. This flexibility can lead to a better work-life balance and accommodate personal circumstances.
3. **Innovative Teaching Tools:** Online education encourages educators to explore innovative teaching methods and leverage a wide range of digital tools to enhance their teaching. These tools can include interactive simulations, multimedia presentations, and learning analytics to track student progress.
4. **Accessibility for All:** Online education allows educators to accommodate students with diverse needs, including those with disabilities. Digital materials can be easily adapted to meet various accessibility requirements.
5. **Continuous Improvement:** Online platforms often provide data and analytics on student performance, allowing educators to make data-driven decisions and continuously improve their teaching methods and course content.
6. **Professional Development:** Engaging with online education can also offer educators opportunities for their own professional development. They can stay updated with the latest trends in education and technology, enhancing their teaching skills and knowledge.

In summary, online education offers a flexible, accessible, and technology-driven approach to learning that benefits both students and educators. It expands educational opportunities, encourages innovation in teaching, and equips individuals with the skills and knowledge needed in today's digital world.

CREATING AN EFFECTIVE ONLINE LEARNING ENVIRONMENT

Creating an effective online learning environment is essential to ensure that students have a positive and productive educational experience. To achieve this, several key elements need to be carefully considered and implemented.

First and foremost, clear communication is paramount. Instructors should establish transparent expectations regarding the course structure, assignment deadlines, and communication protocols. Providing a detailed course syllabus outlining the curriculum, learning objectives, and assessment methods can help students understand what to expect and how to succeed in the online course. Interactivity plays a crucial role in engaging students in the online learning process. Instructors should incorporate various interactive elements such as discussion forums, group projects, live webinars, and virtual office hours to foster student engagement and promote peer-to-peer interaction. These opportunities for collaboration and discussion can help replicate the sense of community often found in traditional classrooms.

Content delivery should be dynamic and engaging, leveraging multimedia resources such as video lectures, interactive simulations, and quizzes. Well-organized and easily accessible course materials, including readings, videos, and supplementary resources, should be made available to students through a user-friendly learning management system (LMS). Additionally, providing opportunities for students to explore additional resources and pursue their interests can enhance the learning experience. Assessment and feedback mechanisms are critical for student progress. A mix of formative and summative assessments, such as quizzes, essays, projects, and peer evaluations, should be designed to evaluate students' understanding and encourage critical thinking. Prompt and constructive feedback on assignments, discussions, and assessments is essential to guide students' learning journeys. Instructors should also be accessible and approachable. Regular communication through email, discussion boards, and virtual office hours can help students feel supported and address any questions or concerns they may have. Being responsive to student inquiries and concerns is key to building a positive online learning community.

Lastly, ongoing evaluation and improvement of the online learning environment are crucial. Instructors should collect

feedback from students about the course structure, content, and overall experience to make necessary adjustments for future iterations. Continual professional development and staying updated on best practices in online education are essential for instructors to create effective online learning environments that meet the evolving needs of students in the digital age. Overall, an effective online learning environment combines clear communication, interactivity, engaging content, thoughtful assessment, accessibility, instructor support, and continuous improvement to ensure that students have a fulfilling and successful online learning experience. If the government and administrators of educational institutions take the appropriate action, online education has the potential to rule the educational landscape (Selvaraj et al., 2021).

ONLINE TEACHING STRATEGIES: BEST PRACTICES FOR EDUCATORS IN VIRTUAL SETTINGS

Effective online teaching requires educators to employ a variety of strategies to engage students, facilitate learning, and create a productive virtual learning environment. Here are some best practices for educators in virtual settings:

1. **Clear Communication:** Establish clear communication channels and expectations. Provide students with a detailed syllabus, course schedule, and guidelines for communication, assignments, and assessments. Regularly communicate updates and important information through announcements and email.
2. **Engaging Content:** Develop and curate engaging course content. Use multimedia elements like video lectures, interactive simulations, and multimedia presentations to make the material more dynamic and appealing to diverse learning styles.
3. **Structured Learning:** Organize your course materials in a structured and logical manner. Use a learning management system (LMS) to create a user-friendly interface where students can easily access resources, assignments, and assessments.
4. **Interactivity:** Foster student engagement through interactive activities. Incorporate discussion forums, group projects, collaborative assignments, and virtual discussions to encourage peer interaction and critical thinking.

5. **Feedback and Assessment:** Provide regular and timely feedback on assignments and assessments. Use a mix of formative and summative assessments to evaluate students' understanding and progress. Consider alternative assessment methods, such as project-based assessments and peer evaluations.
6. **Accessibility:** Ensure that course materials and assessments are accessible to all students, including those with disabilities. Use accessible formats, provide alternative text for multimedia content, and follow best practices for web accessibility.
7. **Technology Literacy:** Recognize that not all students may be tech-savvy. Offer technical support resources and tutorials to help students navigate the online learning environment effectively.
8. **Instructor Presence:** Be visible and available to students. Participate in online discussions, respond to emails and questions promptly, and hold virtual office hours. Your presence and support can enhance the sense of community in the online class.
9. **Flexibility:** Acknowledge that students may have different time zones, work schedules, and responsibilities. Provide flexibility in deadlines and asynchronous options for students to access course content at their convenience.
10. **Assessment Integrity:** Implement strategies to maintain assessment integrity in online settings. This may include proctoring software for exams, plagiarism detection tools, or alternative assessment methods that discourage cheating.
11. **Professional Development:** Continuously invest in your professional development as an online educator. Stay updated on best practices in online teaching, technology tools, and pedagogical approaches.
12. **Student Support:** Direct students to support services and resources available to them, such as academic advising, technical support, and counseling services. Encourage struggling students to seek assistance when needed.
13. **Reflection and Improvement:** Regularly reflect on your teaching methods and gather feedback from students. Use this feedback to make improvements to your course design and teaching strategies.

14. **Cultural Sensitivity:** Be sensitive to cultural and diversity considerations in your virtual classroom. Create an inclusive and respectful environment that values diverse perspectives and experiences.

By implementing these best practices, educators can create a vibrant and effective online learning experience that supports student success and engagement in virtual settings.

CHALLENGES IN ONLINE EDUCATION: ADDRESSING COMMON OBSTACLES AND SOLUTIONS

Online education offers numerous benefits, but it also comes with its share of challenges. Addressing these common obstacles is crucial to ensuring a successful online learning experience for both students and educators. Face-to-face engagement cannot be replaced by an online setting. There are techniques to improve engagement in online learning, including better course designs that encourage interactions between students and instructors as well as amongst students themselves. Compared to face-to-face education, online education requires a distinct strategy. The educational materials must have a stronger and clearer structure in order to better serve students in an online context (Edu et al., 2022). Here are some of the key challenges in online education and potential solutions:

1. Lack of Student Engagement:

- **Challenge:** Keeping students engaged in a virtual setting can be challenging due to the absence of face-to-face interactions.
- **Solution:** Incorporate interactive elements into the course, such as discussions, group projects, and virtual labs. Use multimedia content and gamification to make learning more engaging. Regularly communicate with students through announcements and emails to maintain their interest.

2. Technical Issues:

- **Challenge:** Students and instructors may face technical problems, including internet connectivity issues, software compatibility, and hardware limitations.
- **Solution:** Provide technical support resources and tutorials to help students troubleshoot common issues. Encourage students to have backup internet options and familiarize themselves with the technology tools used in the course.

3. Time Management and Self-Motivation:

- **Challenge:** Online learning requires students to manage their time effectively and stay motivated, which can be challenging for some.
- **Solution:** Offer time management tips and resources to help students plan their schedules. Set clear deadlines and provide a structured course schedule. Encourage peer accountability and self-assessment.

4. Assessment Integrity:

- **Challenge:** Maintaining assessment integrity and preventing cheating in online assessments can be a concern.
- **Solution:** Implement strategies such as online proctoring, randomized questions, open-book exams, and alternative assessment methods like project-based assessments or essays that require critical thinking and original work.

5. Access and Equity:

- **Challenge:** Not all students have equal access to technology and the internet, leading to disparities in their online learning experiences.
- **Solution:** Identify students with limited access and work with them to find solutions, such as providing offline materials or facilitating access to technology resources. Promote digital inclusion initiatives and advocate for improved internet access for all.

6. Instructor Presence:

- **Challenge:** Students may feel disconnected if instructors are not present and engaged in the online course.
- **Solution:** Be actively involved in the online course, participate in discussions, and provide timely feedback on assignments. Hold virtual office hours and encourage one-on-one interactions with students.

7. Course Design and Organization:

- **Challenge:** Poorly designed courses with disorganized content can confuse and frustrate students.
- **Solution:** Design courses with clear navigation, organized modules, and intuitive interfaces. Provide a course orientation

or tutorial to help students become familiar with the course structure and expectations.

8. Isolation and Loneliness:

- **Challenge:** Students may experience feelings of isolation and loneliness in online courses, missing the social interactions of traditional classrooms.
- **Solution:** Create opportunities for virtual social interactions, such as discussion forums, group projects, or virtual meet-ups. Encourage students to form study groups and engage in peer-to-peer communication.

9. Professional Development:

- **Challenge:** Educators may lack the necessary training and skills for effective online teaching.
- **Solution:** Invest in professional development opportunities for educators, including training in online pedagogy, technology tools, and best practices in online education.

Addressing these challenges through proactive strategies and ongoing support can contribute to a more positive and productive online learning experience for students and educators alike.

CONCLUSION: EMBRACING THE DIGITAL CLASSROOM: TRANSFORMATIVE POWER OF ONLINE EDUCATION

In conclusion, the transformative power of online education is undeniable and far-reaching. The advent of the digital classroom has ushered in a new era of learning, breaking down geographical barriers, and expanding access to education for individuals around the world. This digital revolution has not only made learning more accessible but has also enriched the educational experience in numerous ways. Online education offers flexibility, enabling students to pursue knowledge on their own terms, balancing their studies with work, family, and other responsibilities. It provides a vast array of courses and programs, catering to diverse interests and career aspirations. The use of multimedia resources and interactive tools engages students in dynamic and personalized learning experiences, enhancing comprehension and retention. Educators have likewise benefited from this transformation. They can reach a

global audience, fostering diverse perspectives and creating a more enriching learning environment. The flexibility of online teaching allows for a better work-life balance and opportunities for innovation in pedagogical approaches. Despite the advantages, online education does come with its own set of challenges, including maintaining student engagement, addressing technical issues, and ensuring assessment integrity. However, these challenges are not insurmountable and can be overcome through thoughtful course design, effective communication, and ongoing support for both students and educators. As we continue to embrace the digital classroom, it is crucial to remain committed to quality and accessibility. Online education must be inclusive, accommodating diverse learning styles and needs. It should also continue to evolve, leveraging emerging technologies and pedagogical research to provide an ever-improving educational experience. The transformative power of online education lies not only in its ability to democratize knowledge but also in its capacity to adapt and innovate. It is a testament to the resilience of education, showcasing its ability to evolve and thrive in the digital age. By harnessing the full potential of online education and addressing its challenges, we can truly empower individuals to pursue lifelong learning and unlock a world of opportunities.

REFERENCES

1. Chakraborty, P., Mittal, P., Gupta, M. S., Yadav, S., & Arora, A. (2021). Human Behav and Emerg Tech - 2020 - Chakraborty - Opinion of students on online education during the COVID-19 pandemic.pdf. *Hum Behav & Emerg Tech*, *3*, 357–365. https://doi.org/10.1002/hbe2.240
2. Chen, T., Peng, L., Jing, B., Wu, C., Yang, J., & Cong, G. (2020). The impact of the COVID-19 pandemic on user experience with online education platforms in China. *Sustainability (Switzerland)*, *12*(18), 1–31. https://doi.org/10.3390/SU12187329
3. Edu, T., Negricea, C., Zaharia, R., & Zaharia, R. M. (2022). Factors influencing student transition to online education in the COVID 19 pandemic lockdown: evidence from Romania. *Economic Research-Ekonomska Istrazivanja* , *35*(1), 3291–3304. https://doi.org/10.1080/1331677X.2021.1990782
4. Fernández-Batanero, J. M., Montenegro-Rueda, M.,

Fernández-Cerero, J., & Tadeu, P. (2022). Online education in higher education: emerging solutions in crisis times. *Heliyon*, *8*(8), 1–9. https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2022.e10139

5. Gu, J. (2021). Family conditions and the accessibility of online education: The digital divide and mediating factors. *Sustainability (Switzerland)*, *13*(15), 1–14. https://doi.org/10.3390/su13158590
6. Iqbal, S. A., Ashiq, M., Rehman, S. U., Rashid, S., & Tayyab, N. (2022). Students' Perceptions and Experiences of Online Education in Pakistani Universities and Higher Education Institutes during COVID-19. *Education Sciences*, *12*(3), 1–25. https://doi.org/10.3390/educsci12030166
7. Kunaviktikul, W., Ang, E., Baridwan, N. S., Bernal, A. B., Dones, L. B. P., Flores, J. L., Freedman-Doan, R., Klunklin, A., Lee, W. L., Lin, C. C., Luk, T. T., Nguyen, A. T. H., Nurumal, M. S., Setiawan, A., Sumaiyah Jamaluddin, T. S., Huy, T. Q., Tungpunkom, P., Wati, N. D. N. K., Xu, X., & Shorey, S. (2022). Nursing students' and faculty members' experiences of online education during COVID-19 across Southeast Asia: A Photovoice study. *Nurse Education Today*, *111*(November 2021), 1–7. https://doi.org/10.1016/j.nedt.2022.105307
8. Ozdamli, F., & Karagozlu, D. (2022). Online Education During the Pandemic: A Systematic Literature Review. *International Journal of Emerging Technologies in Learning*, *17*(16), 167–193. https://doi.org/10.3991/ijet.v17i16.32287
9. Palvia, S., Aeron, P., Gupta, P., Mahapatra, D., Parida, R., Rosner, R., & Sindhi, S. (2018). Online Education: Worldwide Status, Challenges, Trends, and Implications. *Journal of Global Information Technology Management*, *21*(4), 233–241. https://doi.org/10.1080/1097198X.2018.1542262
10. Selvaraj, A., Radhin, V., KA, N., Benson, N., & Mathew, A. J. (2021). Effect of pandemic based online education on teaching and learning system. *International Journal of Educational Development*, *85*(April), 1–11. https://doi.org/10.1016/j.ijedudev.2021.102444
11. Ulum, H. (2022). The effects of online education on academic success: A meta-analysis study. *Education and Information Technologies*, *27*(1), 429–450. https://doi.org/10.1007/s10639-021-10740-8

ABOUT THE AUTHOR



DR. SEEMA YADAV, having academic qualification of M. Sc. (Chemistry), M Ed (RIE), UGC-NET and PhD in Education. Presently she in working as Assistant Professor, in the Department of Education in The Bhopal School of Education, Bhopal. She has almost 18 years of teaching experience. Her area of specialization is educational psychology, environmental education and curriculum development. She has recorded online videos for the E-content cell of her institute. She has presented several research papers and articles in international and national seminars.

CHAPTER 16

MORAL EDUCATION

Varsha Madhulika
Guest Lecturer
St George College of Management, Science, and Nursing
Banaswadi, Bangalore.
Email: madhvarsha@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.16

ABSTRACT
The morning news we hear is full of crimes. Some of us have even witnessed school shootings and fatalities. These all things have made us stand in a state of moral crisis. With the rise of this crisis a need was felt to explore moral education. Character education is a national movement creating schools that foster ethical, responsible and caring young people by modelling and teaching good character through emphasis on universal values that we all share (Pala, 2011). Hence, rich exploration of philosophy of education and theories of morality has helped us to understand the concept of moral education. This led us to develop a curriculum to deliver moral education to our coming generations. In this chapter we have tried to organise our knowledge development about moral education and its implementation on creating a curriculum for the same.

KEYWORDS: *Education, holistic education, character education, moral education, teaching moral education*

INTRODUCTION

That moral standards are not what they were and that something urgent needs to be done has ever been the complaint of the older generation against the young and there have certainly been some who have doubted that we have cause for moral panic or, indeed, whether we can even know whether we are currently suffering a moral decline (Wringe C. 2006). We all know

that the real enemy of understanding is not the lack of understanding but the pebbles of misunderstanding. a major mistake in respect of moral education is to define the subject too broadly and loosely, as if it covered everything from cultivating good manners to producing saints, from inculcating the habit of punctuality to instilling the courage of the martyr (Barrow R., 2007).So a felt need is there to define moral education. So our journey towards exploration or moral education begins with these two questions: what are the characteristics of a morally educated person? What does a morally educated person look like? Moving on further, we try to understand moral education using various theories. It all begins with developmental theories which were inadequate approaches to moral education, then we have psychological developmental theory which brings about maturational levels of development. It also studies moral education as distinct from levels of ability or achievement but as a result of environmental factors including teaching. Durkheim's moral sociology was not much appreciated, even the conflict theory showed elements of "conservatism" and phenomenologists were stuck up with "structuralist" elements in his thinking. Despite all these pitfalls, he raised a fundamental issue about the need for an ethical balance in the relationship between individual and society, just cannot be denied.

Philosophical perspectives were explored so that a clearer and concrete understanding of moral education can be laid down. This is essential because when we know what we are searching for, our directions becomes more defined and this was what was needed to formulate moral education.

Piaget started the journey of explaining morality with authority and autonomy. Many more have also expressed their views of morality in terms of following a set of rules or having an autonomy to choose. Kolberg gave an extensive understanding of the development of morality in an individual.

Having understood these all foundational elements of moral education we are now in a good position to formulate a structure of imparting moral education. So this chapter explores the foundational measures of moral education and applying them to prepare a curriculum to deliver a good moral education to the coming generations.

WHAT MORAL EDUCATION MEANS?

Moral education in simple terms means helping children and young people to acquire a set of beliefs and values about what is right and wrong. Ingrained in these beliefs are the intentions, attitudes, and behaviours towards their environment and others people around. With a strong base in these beliefs and values, one reflects on their proposed behaviour and friend circle. We will also find many people associating these moral education to religious beliefs but two different things.

Moral education is one of the main concerns in philosophy of education. People have used various terminologies to explain it as "moral education", "Value education", "ethics and education", and "character education." Whatever the presentation, they all have one quest to answer, "How education makes us moral and good human beings?"

Further, from the perspective of developmental theory, in order to act morally we must have a moral reason for that; for example, I want to help poor people because I feel satisfaction and good when I meet their needs. I will also draw your attention towards directing our moral action by means of moral reasons and not to avoid punishment, or gain pleasure, or emulate a powerful model, or please an authority.

Moral competency also emphasises on the knowledge of carrying out the actions that are guided by one's internal moral values. Not only this, they should also have the stamina or determination to carry out these moral ways even in the face of obstacles (Lapsley & Narvaez, 2005; Narvaez, 2003; see Narvaez [2006]).

Studying this moral education also brought forward the concept of warm, nurturing, and trusting teacher-child relationship. Watson(2006) quotes two comments from high school students indicating that many classrooms lack warm, nurturing, trusting teachers–child relationships.

Tara: It's like nobody's really pushing us to do our best. If you don't understand…they'll think that you're not understanding on purpose.

Cindy: …most teachers nowadays they just…they don't make relationships with their students. Its, "One year to be here and you're off. As long as you pass my class."

These findings introduced us to some hard truths that it is easy to teach teachers humane techniques for controlling students rather than teaching them mechanisms to build warm, nurturing, trusting relationships. There is a substantial body of research supporting the view that children's moral development is positively related to warm, nurturing, and autonomy supportive parenting styles (Solomon et al., 2001).

Hence to sum up my discussion on moral education for this section I pick up Avijit Pathak's perspective of understanding moral questions in education which is enlightening. He gives three insights to explore this field: a) the relationship between the individual and the society; b) a man's own inner struggles resulting from the dialectic of power and love, egotism and altruism, and desire and austerity; and c) the mode of human engagement with nature.

PHILOSOPHY

Philosophy of education talks about the systemic processes we employ in order to unfold the key concepts of educational practices. Let us not be too bookish but become more realistic in understanding things. Philosophy is formed of two Greek words *philo* which means love and *sophia* i.e., wisdom. So is literally defined as "the love of wisdom". So, in short, philosophy fills us with everything that makes us wise(marked by deep understanding, keen discernment, and a capacity for sound judgement). For this systematic approach we take help from various branches of philosophy, i.e., Metaphysics explores the reality, existence and nature of being(What is it?); Epistemology tries to answer how we came to know about it. How it makes sense to us; logic helps in differentiating good and bad reasoning, it leads us to construct a valid argument; ethics is the study of morality; and aesthetics which deals with beauty, art and good taste.

Now, the field of philosophy also has an organisational structure so as to help professionals and people in the practical spheres of life like medicine, law and architecture etc. It is in this field of philosophy where we interact with philosophy of education. Now the question arises why do we need to study philosophy? Rene Descartes, 17th-century philosopher, says that it is rooted in the very nature of being human. He argued, "*cogito ergo sum*, I think therefore I am." As I was exploring this topic, this notion finds a soft niche in this discussion. When the glass is full there is no room

for more but when we empty ourselves new insights awaits our call. A child learns many things because he is empty, but the same thing is questioned by an adult who finds it difficult to accept. The 19-century poet William Wordsworth says, " the child is the father of man."(Wordsworth, 2018). It is the child who questions, "why is the aeroplane in the sky? What makes the sea look green?" If we develop a child-like attitude our philosophical journey becomes easier.

PHILOSOPHY OF EDUCATION

The journey of exploring teaching philosophy indifferently falls under these two categories. First category focuses on the presentation and comparisons of diverse philosophies of education that developed over the ages(Chazan B., 2022). Many theorists have contributed —Socrates, Plato, Aristotle, Saint Augustine, John Locke, Jean-Jacques Rousseau, William James, John Dewey, Maria Montessori, Nel Noddings (Reed and Jackson 2000). Their rich contribution helped us to develop diverse educational philosophies into distinctive categories (e.g., perennialism, essentialism; utilitarianism; constructivism; progressivism; existentialism). This helps us to develop our diverse viewpoints about the theory and practice of teaching.

The second category focuses on instructors presenting an integrated normative philosophy which they regard as reasonable, intelligent, and worthwhile for the practice of education(Chazan B., 2022). Dewey formulated it that can be used by every teacher in the field.

The third category is analytical philosophy. It assumes that (1) words matter and precision in the use of words in educational discourse matters a lot; (2) much of the discussion of "education" is confused and unclear because there is no agreement over core educational terms such as "teaching", "learning", and "knowing". (3) It is necessary to clarify and analyse diverse types of educational terms like stipulative, programmatic, and descriptive definitions in order to understand what the speaker's intention is in using the words he or she uses(Chazan B., 2022). In short, the analytical philosophers tries to clearly define the words so that confusion is reduced.

HISTORY OF MORAL EDUCATION

The character education movement in the United States gained momentum in the early 1990s(Appleyard, J.A., 1991). In order to bring about character education nationwide five White House Congressional Congresses on Character, hundreds of thousands of federal grant monies awarded to states and school districts around the country, and five years of a National Schools of Character Awards Program etc. were done. In the UK too the government felt the need for character education and took initiatives to set a new "education with character" agenda. James Arthur's (2002) book, *Education With Character*, portrays a compelling case for character education and also provides an interdisciplinary perspective to solve it. In his book he shows the befallen children world and a utter need of character education

"...increased violence, evidenced by brutal hazings and school shootings, chronic depression and growing incidences of suicide, high rates of alcohol and drug abuse, as well as bullying and sexual harassment at school. These patterns of behaviour have raised a groundswell of concern among parents and educators in school communities around the world."

We all are well aware of such incidents. One example is Reuters (2023, September 1) reports that a North Carolina graduate student was charged with a fatal shooting of a professor at the school's Chapel Hill Campus on monday. Likewise as in United States so in Britain it was found that certain

social evils - violence, drug and alcohol abuse, marital infidelity, vandalism, teenage pregnancy, poor time-keeping and work performance and the failure of good citizenship are because of the failure of schools to instil these values or desirable character traits (Lickona, loc.cit, as cited in Wringe C. 2006).

As far as moral education is concerned, India and Britain share contrasting contexts. In Britain, the need for moral education arose out of the quarrelsome nature of religious education. Now India is a secular state. Our country has diverse religious practices across the nation. Religious education in state-run schools were never favoured in our country. The Constitution of India (Art 28, (1)) clearly forbids provision of religious instruction in any educational institution wholly maintained out of state funds(Seshadri, 1981).

The demand for moral education in our country was felt with the realisation that provision of religious education to such a complexity of the society with a heterogeneous population belonging to diverse religions, castes and creeds at state schools was difficult. So as an alternative method and *moral* education was introduced (Seshadri, 1981).

THEORY OF MORAL EDUCATION

Morality has always drawn the attention of the human race. Over the ages many people have tried to explain our moral action. This section throws light over the development of the theory of moral education. Field of psychology of morals is not new. The study of contemporary moral psychology i.e., the study of human thoughts and behaviours in ethical contexts is interdisciplinary. Psychologists use philosophical theories to structure their empirical research while philosophers use psychological bases to formulate their theories of morality.

Piaget's concept of moral education

Jean Piaget, a Swiss psychologist, is known for the cognitive development theory of children that brought about a clear distinction between conventional morality and rational moral code. By 'conventional morality', he refers to doing what is being asked. In other words, to do the things that have previously been unquestioned. When a person is questioning why you did this? They can readily answer this as I was asked to follow the particular rule, attributing it to an authority figure or they can simply say that what others do or say is right. In the 'rational moral code' the individual knows there are many ways to approach the problem, but reflectively choses the one he considers most correct. Even Kant also held similar views of heteronomy and autonomy of will.

Piaget studied the attitude of children to the rules of both marbles and morality and found a correlation between them(Piaget J., 1932; as cited in Peters R S, 2015) . He says that in the 'transcendental stage' the rule appears to be external and unalterable, and oftentimes sacred. While on the other hand at the autonomous stage it is seen to be changeable. This change is possible out of mutual respect and with the cooperation of others. So the element of constraint is replaced by reciprocity and cooperation. So, now lies are no longer a naughty thing which an

adult disapproves but the child, out of his own reasoning, choses the rule to tell the truth. In short, Piaget's contribution are as follows:

i) Like Kant, Piaget to believed on morality proper which was different from custom and authoritative regulation.

(ii) He also assumed that some process of maturation takes place over time. It is a gradual transition from one mental structure to another.

(iii) He assumes that this development in the child's attitude to rules is paralleled by his cognitive development in other spheres -e.g. the grasp of logical relations, and of causal connections.

J. F. Morris and D. MacRae criticised Piaget's concept of autonomy. Further, people expressed their inquisition towards the transition phase of morality, is that just a matter of maturation or something else? Havighurst and Taba also studied the moral attitudes of adolescents in a midWest town and of children in six American Indian tribes and tried to relate them to methods of training, cultural factors, etc., but they were inconclusive. Hence, Piaget's work provided a useful framework for research.

Studying various propositions of moral education the general look of theory of morality looks like

Stage 1 (transmission approach to values) begins at birth, extends through childhood, and focuses upon socialisation within the contexts of home, school, and society. and **Stage 2** (developmental approach to values) is first readily and fully accessible around adolescence, extends into adulthood, and focuses upon cognition and individuation.

Freud's theory of moral development

Piaget presented explicit qualities -conventional morality and rational moral code while Freud used implicit qualities which he named as Freud's ethic of honesty and his uncompromising egoism. Now, Philip Rieff suggested that Freud believed in the generalisation of the frankness that is a necessary procedural requirement for psycho-analysis. Freud says that a man must admit his nature, be quick to detect dishonesty and sham in himself and in others. He must accept his natural needs and have a deep suspicion of 'moral aspirations'.

His classic study on structure of mind gives much insight on moral development. At first, Freud viewed a human mind to consist

of two parts- the conscious mind and the unconscious mind. By 1920, he said that this simple model of mind is not answering various questions arising in his mind. This led him to propose a three-part model of mind. He named it as the ego, the id, and the superego.

i) **The 'id' mind**: "Id" is a latin word meaning "it". It is the oldest and the most primitive part of mind. It is this part of the mind we all are born with. It is a seething group of wholly selfish desires and the impulses directed towards immediate and complete gratification of those desires. It is this driving force which Freud called the "pleasure principle." As we grow older we should leave this id and its instant gratifications and conform them to the real world and other people in it.

ii) The 'ego' mind: the word ego is again borrowed from latin meaning 'I'. This is the rational part of the mind. It is this part of the mind which reacts to the outside world and allows an individual to adapt to reality. To this segment Freud called it the "reality principle".It is this ego part that fills the individual with the sense of self and makes him/her watch over their instinctual demands of the id. It is the ego that then decides whether, when and how they can be gratified. This is regarded as the conscious part.

iii) **The superego mind**: Now, as the child grows and so the ego also matures, there develops another segment of mind called the superego. This superego leads ego towards perfection. This superego is filled with the rules and guidelines of the parents, carers and the society. To this part Freud named it as "moral principles." This is the unconscious part of our mind which provides us all with our conscience, our sense of what is right and what is wrong. It is this part which demands us to behave in a socially acceptable way rather than to our own individual urges.

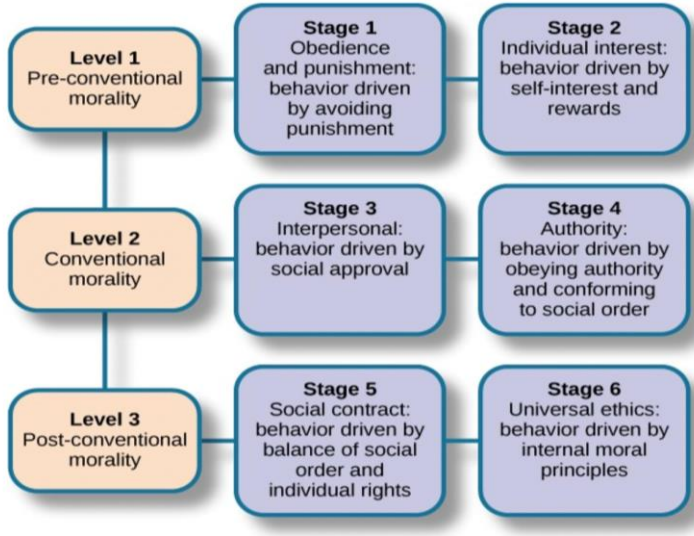
In a grown up, mature, and mentally healthy individual, the id, ego, and the superego work in complete harmony and balance. Freud showed that these three components of mind can create anxiety and guilt in us. For example, real, potentially threatening events that may be perceived as dangerous by the ego and can be anxiety-provoking. Similarly, the nagging conscience to achieve some target, of the superego, can cause anxiety when we fall short of its demands. Lastly, a thwarted instinctual demand of the id can create neurotic anxiety, which cannot be assessed in our conscious level.

A closer look to Freud's theory leaves us with this empirical question of how rules were, in fact, passed on. He was more focused on defence mechanisms and sexual orientations. His theory failed to explain the mechanism of exporting the traditions of a society into the child.

Another explanation of moral development by Freud was given in his theory of character traits.

Kolberg's theory of moral education

Like Piaget, Kolberg was also interested in moral reasoning. Kohlberg (1964) expanded upon Piagetian notions of moral development. He says that moral reasoning does not mean that we will see moral behaviour also. He argues that if a person hold a particular belief, it's just a thought in their head. Unless and until they work on their thoughts, it will never become a behaviour. In order to analyse this theory, Kolberg posed moral dilemmas to people of all ages. Then he analysed their answers to find evidence of their particular stage of moral development. Based on his study Kohlberg developed the theory of moral development. He says that an individual progresses from the capacity for pre-conventional morality (before age 9) to the capacity for conventional morality (early adolescence), and toward attaining post-conventional morality (once formal operational thought is attained), which only a few fully achieve(Theories of Moral Development, n.d.).



Kolberg identified three levels of moral reasoning[Online Image](n.d.)

a) **Preconventional Level**: Obedience and mutual advantage

This happens in the preschool period of life. The child is still self-centred and they still don't understand the moral effects of their actions on others. So in this stage we see a short-sighted view towards morality. In stage 1, the child adopts the **rule of obedience and punishment** —with the hope of keeping out of trouble. They cannot differentiate between right and wrong but operates on the concept of whether the actions are rewarded or punished by authority figures like parents or teachers.

In stage 2, the child learns the concept of fairness. Here those actions which are favoured are considered good.

b) **Conventional Level:** Conformity to peers and society

By now the children have moved to schools. Now their beliefs are based on what the larger group of people agree on. Stage 3 they trust their peer groups' opinions. In stage 4 they accept the opinions of the bigger society.

c) **Postconventional Level**: Social contract and universal principles.

At this level, the children are grown to be adolescents and can think abstractly. In stage 5 the belief or practice is good only if it is done by fair means. In stage 6 the beliefs or practices are good if they match the personally held principles.

Kolberg simplified his moral theory with Heizn's case study.

In Europe, a woman was near death from a special kind of cancer. There was one drug that the doctors thought might save her. It was a form of radium that a druggist in the same town had recently discovered. The drug was expensive to make, but the druggist was charging ten times what the drug cost him to make. He paid $200 for the radium and charged $2,000 for a small dose of the drug. The sick woman's husband, Heinz, went to everyone he knew to borrow the money, but he could only get together about $1,000, which is half of what it cost. He told the druggist that his wife was dying and asked him to sell it cheaper or let him pay later. But the druggist said: "No, I discovered the drug and I'm going to make money from it." So Heinz got desperate and broke into the man's store to steal the drug for his wife. Should the husband have done that? (Kohlberg, 1969, p. 379)

BEHIND THE CURTAINS OF REASON AND HABIT: ANTIMONY OF MORAL EDUCATION

Merriam Webster dictionary defines virtue as a conformity to a standard of right: morality. It has been a long debate- Is it possible to teach this virtue? If yes, then how? Socrates answers this saying, it depends on how you define virtue? Does that mean the 'correct opinion' and conventional behaviour of well-brought-up people ? Or are you looking for a conduct based on a grasp of fundamental principles? Similar contrasting thoughts about two forms of moral life is being brought about by professor Oakeshott. He says that one form of moral life is based on a habit of affection and behaviour, characteristic of the gentleman. It emphasises on habit, tradition and being properly brought up. On the other hand, the second form is reflective application of the moral criterion. It stresses on intellectual training focussing on the development of critical thinking and decision making.

These two divergent thoughts of morality are not completely incompatible. Aristotle tried to bring both reason and habit elements together but was caught up in the paradox of the roles each of them play. Peter R S(2015) has tried to minimise this gap. I too realise that both aspects of moral education are essential and necessary. So, I will also try to incorporate both of them in the moral education segment.

I also go along with the idea of Socrates and Peter R S(2015) to first define the meaning of virtue I am looking for. We all have faced these dialogues: When we talk about sex and selfishness we use 'morals' whereas we use 'unethical' conduct to describe the wrongs on part of doctors, business men and advertisers? Does this mean that we use "unethical" for the more cultured type of man who

misses the mark slightly and "immoral" for brutalish actions. Unfolding his thoughts, Peters R S(2015) says that 'Morality', too, can cover the crude rigorous code of the Puritan as well as the more rational intelligent code of the scientific humanist.

These all churns of thought lead to the discovery of distinctive forms of discourse to answer these distinctive forms of questions. This led to the birth of a new branch of philosophy called "Practical discourse." It covers what ought to be done and the commands which do not have "ought", "good", or "right and wrong" concept, rather they are the ways of getting people to do things using speech. For example, when we say, "shut the door" or "shut up" we mean

"You ought to shut the door" or "You need to shut up." Similarly, when we utter, "silence is a good thing" it is guiding us to be silent because something good comes out of it. This brings us to the conclusion that "ought" and "good" guide our behaviour with a suggestion to the reason for doing them. These words do not give reasons for reactions. If we do not use these words, and still want the people to do, we would have to use force, or hypnotism, or maybe develop a new vocabulary of words.

Now, linguists argue that it is not about the use of words "ought" or "good" or maybe "moral" or "ethical". Here plays the role of discourse or our thoughts begin to differentiate. We try to look behind these verbal distinctions and grasp the activities it will lead us to, if we pick them. So we now have reached a point where morality seeks for the reason for doing or not doing, a reason for bringing it to existence or removing it from existence. We know that there could be many reasons for doing things, which reason to choose for morality matters a lot. Consider for example this statement, "You ought not to slash people with a knife." So according to this argument we should have a reason for not doing this, right? One reason could be that people bleed because of slashing and blood is red in colour so we should not do it. Red means what? Does it cause any harm? Or is the redness of the world so much that we need to minimise it. Let us present another reason for the same scenario. Suppose we give reason as "it hurts" our all senses will say don't do. Why? This is because hurt is associated with pain and we consider the principle of pain to be minimised rather than the principle of redness to be minimised. Thus, Peters, R. S(2015) say that our moral principles might be picked out as those which are for us fundamental or overriding in such a structure of rules backed by reasons.

So on such a structure of rules we can either justify, revise, or adapt them to the changing circumstances. We can either choose to lead our lives by a group of rules which seem to us self-evident, or which might follow the path of the general principle that we ought to do what others do or tigh it to the stump that we ought to do what X say, who is in an authority figure in our lives, or we can choose to the rational and thought-out code. We are bound to habits and traditions to varying degrees. On the other hand, we might be intelligent enough to apply rules to particular cases. This is the field of judgement where some people are capable enough to use fine

discrimination while the other stick to thumb rules. Above all, we can do what we are capable of doing mechanically and not with an overwhelmed heart like reluctant housewives peeling potatoes, Or we could choose to do what has more spontaneity because we genuinely care about it and hence we are doing it. In short, the legislative, judicial and executive aspects of our moral life can be more or less rationally, intelligently and spontaneously conducted (Peters R S, 2015).

TEACHING STRATEGIES FOR MORAL EDUCATION

Just community approach

School is children's second home. Many parts of school life show constitutive elements of moral education. The teachers and the school environment become the student's moral role models, thus, helping them in their moral development. Power C., 1988; Power et. al., 2008, as cited in Schuitema, J., Dam, G. ten, & Veugelers, W. (2008) talks about Kolberg's "just community approach" to moral education. In the process of developing "just community" Kolberg proposed discussion of moral dilemmas as an effective method of moral education(Blatt & Kolberg, 1975, as cited in Power C., 1988). Later on in 1980 Kolberg criticised this approach labelling it as a "psychologist's fallacy" because he has developed an educational practice based on psychological research. Thus, although the moral discussion approach rested on strong psychological foundations, it was not constructed with input from educators(Power C., 1988). Application of this method while carrying out their teaching responsibilities seemed too challenging. Secondly, asking for a moral discussion in an unjust institution is pointless.

Moral atmosphere and role-taking

In Kolberg's quest of just community approach he discovered two kinds of role-taking: Institutional and peer. In institutional role-taking demands one to become a moral authority figure like the legislator, judge or policeman in making moral decisions(Power C, 1988). The peer role-taking helps in developing moral developments emphasising Piaget's peer interaction in developing moral autonomy. Besides school culture, teachers as moral exemplars and the interaction between teachers and students have a significant influence on students (Hansen 2001, Oser 1994, Pring 2001).

In this section we will discuss curriculum-based moral education and look forward towards improving student's prosocial and moral development. Since we're talking about curriculum based hence we will mainly focus on teaching strategies and instructional designs. Student culture and peer role-taking have been contributing in moral education but this curriculum-based approach was less studied.

Objectives of moral development

Curriculum remains an integral element in education. In curriculum-based moral education, we first focus on the personal development and welfare of students. This education must guide students to become resourceful towards adulthood and help them in their identity development. Secondly, moral education is important from a societal point of view too. Working on prosocial and moral development, we actually prepare a more responsible and reliable generation thus, improving the quality of society.

Lopez and Lopez (1998) in particular have stressed on the importance of the cognitive element of moral development. Kohlberg's theory is based on the ability to apply the moral principles of justice to moral dilemmas. Further, Gilligan (1993) came up with a theory of moral reasoning based on relationships and care. Many authors considered this 'care orientation' to moral understanding as the affective and relational aspects of moral development (Basourakos 1999, Fallona 2000, Noddings 1995). In addition to this, Bouchard (2002) brought a narrative perspective on moral development based on the cultural-historical approach of Tappan (1998). The aim of moral development is therefore not moral autonomy but the moral authority of individuals in their relations with others(Schuitema, J., Dam, G. ten, & Veugelers, W. (2008). Further, for many years the focus was on development of skills but later on content too was felt important.

Curricula for moral education

Now the curricula focus on both the teaching elements and teaching methods for an effective moral education. One by one we will discuss each of them.

A) ***Teaching elements***

a) **Problem-based learning-** In this approach, students can make their own choices about the curriculum thus,

contributing to an open and democratic classroom climate. This open and democratic classroom climate involves students in the decision-making process which has been supported by many authors.

b) **Work in small groups**- Now, working in small groups involves cooperative learning. This learning stimulates critical-thinking skills and perspective-taking skills in a student. Working together leads to the development of emotional intelligence in students.

c) **Classroom discussion or discussion in small groups-** We all know discussion opens up avenues for new knowledge. This is what socratic questions have been doing all the time. Kolberg's discussion on moral dilemmas have initiated many studies in this field. Now, this discussion leads to conflict resolution by taking into consideration other's perspectives. This brings about cognitive moral development. These classroom discussions provides a platform to practise communication skills (e.g. Parker 1997, Preskill 1997). Thus we see that it develops attitudes of tolerance, respect, 'open-mindedness', and autonomy (Grant 1996, Saye 1998).

d) **Using subject topics with moral dimensions-** Consider for example using readings, films, and literature about history can help in portraying holocausts. This topic prompts questions on attitudes of prejudice, moral choices and respect, and tolerance(see also Brown and Davies 1998, Carrington and Short 1997). This as pointed out by Saye (1998) that using historical topics like the Vietnam war, Indian rebellion of 1847, or Jaliawala bagh massacre, can stimulate student's critical-thinking skills and thereby develop their cognitive moral perspective.

e) **Using issues and problems that students actually encounter or will encounter**- Introducing issues such as environmental pollution and distribution of wealth enhances student's knowledge and understanding about the world around them and thereafter about a democratic way of life. They help in developing insights necessary for critical thinking and developing a sense of community and responsibility for the society. Further, in order to develop a supportive attitude towards the rights of others, the children should be taught about their own rights.

B) ***Teaching methods***

a) Classroom discussion

We all have witnessed the success of classroom discussion over disseminating knowledge. Everyone proposes classroom discussions but no one speaks about specific teaching strategies employed for the same. So here we will focus on specific teaching strategies we can use to bring about moral development.

i) **Direct approach**

a) **Dialogue**- Discussion can take the form of a dialogue or a debate. Grant (1996) says a dialogue aims at the critical evaluation of different opinions in order to reach consensus. cf. Preskill (1997) finds a debate as a means of persuading an audience. Thus, a dialogue initiates critical thinking and independence of thoughts leading to tolerance, respect, and responsibility.

b) Socratic method- In the socratic method we ask a series of focused, open-ended questions that encourage reflection (Clark & Egan, 2015). In this way of questioning we are able to surface out knowledge which was not in our awareness. Thus, we develop insightful perspectives and help us to pick up positive outcomes.

Socratic method steps

1. It all begins with understanding the belief. Here we ask the student to state clearly their belief/argument.
2. Paraphrase the student's argument. Paraphrase and summarise their argument to clarify your understanding of their position.
3. Ask them to cite evidence. Here the teacher asks open-ended questions to discover further knowledge. These open-ended questions also uncover assumptions, misconceptions, inconsistencies, and contradictions.
   Upon what assumption you hold your belief? What evidence do you have to support this argument?
4. Now we challenge their assumptions. If we find contradictions, inconsistencies, exceptions, or counterexamples, then we ask the student to either disregard the belief or restate it more precisely.

5. Repeat the process again, if required. This chain of questioning continues till both parties accept the restated belief.

iii) **Indirect approach**- This method was suggested by Saye (1998) and Tredway (1995). This method focuses on fostering skills and attitudes without committing oneself to a specific conclusion. In this method, the teacher asks questions and provokes students to evaluate available options, thus, drawing them to a deeper meaning of the idea and its thoughtful conclusion. In this way, student's critical and independent thinking develops leading to respectful, tactful and kinder attitudes and behaviour.

b) Drama and literature

Oftentimes it is found that literature and drama provide a stimulating context for students in which they can think and reason about moral dilemmas. One of the examplies I will cite is about the creative endeavour of a teacher in teaching *paradise lost* to her students. She has so beautifully used the very questions the character of paradise lost asks to make the minds of the students rumble with questions that they are to deal with in their present lives.

When Adam stands before the Son at the opening of Book 10, he attempts to excuse himself by the very logic that my students use: "it was her fault"; "I couldn't help myself"; "you should have stopped me." When I teach Paradise Lost to college sophomores I focus on the way the poem addresses directly the issues of self-determination and personal responsibility that they face in their lives: peer pressure, sexual desire, the pursuit of happiness, the choice of life work.

Here we see, the teacher has so nicely used this literature work to the moral questions like peer pressure, sexual desires, the pursuit of happiness and the choice of life work. Students can identify with the moral agents in the story and internalise the emotional content of complex, 'real life', moral dilemmas(Schuitema, J., Dam, G. ten, & Veugelers, W. (2008). The capacity of dramatic narratives to heighten the moral experience is assumed to be much stronger than that of written narratives (Winston 1999). The best example is the movies we watch and cry.

After watching dramatics, pre-performance and post-performance discussions are necessary for reflection on the moral dilemmas the characters encounter.

c) Service learning

Service learning means to learn by actively participating in society. In short, it means to learn something by doing it which follows Dewey's pedagogical discourse. What does service learning mean? Here it means community service that is linked to the academic curriculum. Structural time for reflection on the service experience is, in particular, considered to be a key element in service learning (Billig 2000, McLellan and Youniss 2003). The service-learning programme calls for the identification of the problems, by the students, in their own community thereafter, exploring the various means of dealing with them. In doing so, they develop their problem-solving and communication skills. In order to achieve these learning outcomes, Clark et al. (1997) suggested the following moves: guided discussions, simulations and roleplaying, interview assignments with local residents, and presentations by students. Good example for these is community service focus: mentoring low socioeconomic status students etc. Environmental focus: Fundraising for growing trees in the community or planting trees for deforestation in barren lands etc.

d) **Social group differences**

One of the objectives of moral education is to cope with cultural diversity. Now when we have a diverse crowd of students, their needs and expectations of moral education also become different. We forget about this. The teachers need to be aware of all cultures so that she could prepare culturally responsive lesson plans. Hence, much focus needs to be put on differential educational goals in order to cater the social groups.

CONCLUSION

Character education is a national movement creating schools that foster ethical, responsible and caring young people by modelling and teaching good character through emphasis on universal values that we all share(Pala, 2011). Earlier education was under the influence of religion but because of its quarrelsome nature education and religion were separated. This separation led to the

quest of defining and formulating moral education. Many theorists and philosophers joined hands to build a rich literature on moral education.

Once the concept was formulated, the need for its implication was questioned. A good character is not formed automatically; it is developed over time through a sustained process of teaching, exemplifying, learning and practising(Pala, 2011). So finally, we have tried to develop a curriculum to train our children to develop good moral values.

REFERENCES

1. Appleyard, J.A. (1991) Becoming a Reader: The Experience of Fiction from Childhood to Adulthood, Cambridge: Cambridge University Press.
2. Barrow, R. (2007). *An introduction to moral philosophy and moral education*. Routledge.
3. Barton Tara (2020, March 6). Ten creative service learning projects to inspire your students. *Serve learn. https://servelearn.co/blog/10-creative-service-learning-projects-to-inspire-your-students/*
4. Chazan, B. (2022). *Principles and pedagogies in Jewish education* (p. 97). Springer Nature.
5. Clark, G.I., & Egan, S.J. (2015). The socratic method in cognitive behavioural therapy: A narrative review. *Cognitive Therapy and Research, 39(*6), 863-879. Retrived from
6. DeVries, R., & Zan, B. (1994). *Moral classrooms, moral children: Creating a constructivist atmosphere in early education* (Vol. 47). Teachers College Press.
7. Doris, John, Stephen Stich, Jonathan Phillips, and Lachlan Walmsley, "Moral Psychology: Empirical Approaches", *The Stanford Encyclopedia of Philosophy* (Spring 2020 Edition), Edward N. Zalta (ed.), URL = <https://plato.stanford.edu/archives/spr2020/entries/moral-psych-emp/>
8. Hansen, D. T. (2001) Teaching as a moral activity. In V. Richardson (ed.), *Handbook of Research on Teaching* (Washington, DC: American Educational Research Association), 566–603.
9. Herman, W. E. (2005). Values Acquisition and Moral Development: An Integration of Freudian, Eriksonian, Kohlbergian and Gilliganian Viewpoints. *Online Submission*.

10. Ishartiwi, I., Handoyo, R. R., Mahabbati, A., & Purwanta, E. (2022). Strategies for Teaching Moral Values to Children with Intellectual Disability. *Cypriot Journal of Educational Sciences*, *17*(4), 1320-1332.
11. Jaap Schuitema , Geert ten Dam & Wiel Veugelers (2008) Teaching strategies for moral education: a review. *Journal of Curriculum Studies*, *40*(1), 69-89,
12. Kolberg identified three levels of moral reasoning[Online image](n.d.). Theories of moral development. https://courses.lumenlearning.com/adolescent/chapter/theories-moral-development/
13. Kohlberg, L. (1964). Development of moral character and moral ideology. *Review of child development research*, *1*, 383-431.
14. Levin, D. M. (1982). Moral Education: The Body's Felt Sense of Value. Teachers College Record, 84(2), 283-300. https://doi.org/10.1177/016146818208400205
15. Mark, J. J. (2020, October 16). Philosophy. *World History Encyclopedia*. Retrieved from https://www.worldhistory.org/philosophy/
16. Mohanty, A. (2011). Avijit Pathak (2009) Recalling the Forgotten: Education and Moral Quest. New Delhi: Aakar Books. 204 pages. ISBN (Hardbound): 978-81-89833-71-8. *Asian Journal of Social Science*, *39*(1), 100-101.
17. Mahmoudi, S., Jafari, E., Nasrabadi, H. A., & Liaghatdar, M. J. (2012). Holistic education: An approach for 21 century. *International Education Studies*, *5*(2), 178-186.
18. Oser, F. K. (1994) Moral perspectives on teaching. In L. Darling-Hammond (ed.), *Review of Research in Education*, Vol. 20 (Washington, DC: American Educational Research Association), 57–127.
19. Pala, A. (2011). The need for character education. *International journal of social sciences and humanity studies*, *3*(2), 23-32.
20. Peters, R. S. (2015). *Moral development and moral education (Routledge revivals)*. Routledge.
21. Power, C. (1988). The just community approach to moral education. *Journal of Moral Education*, *17*(3), 195-208.
22. Power, F. C., & Higgins-D'Alessandro, A. (2008). The just community approach to moral education and the moral

atmosphere of the school. In the *Handbook of moral and character education* (pp. 246-263). Routledge.
23. Pring, R. (2001) Education as a moral practice. *Journal of Moral Education, 30(*2), 101–112
24. Pujanes K. M.(2020). Philosophy 101: The six branches of philosophy. Retrieved from https://thebadbread.com/2020 /04/08/philosophy-101-the-six-branches-of-philosophy/
25. Reed, R. and Jackson, T., editors. 2000. Philosophical Documents in Education. (Longman).
26. Rennison, N. (2015). *Freud and psychoanalysis: Everything you need to know about id, ego, super-ego and more*. Oldcastle books.
27. Rieff, P. (1979). *Freud: The mind of the moralist*. University of Chicago Press.
28. Reuters(2023, September, 1). Student charged in fatal shooting of North Carolina professor. *Ndtv world. https://www.ndtv.com/world-news/student-charged-in-fatal-shooting-of-north-carolina-professor-4341579*
29. Seshadri, C. (1981). The Concept of Moral Education: Indian and Western—a comparative study. *Comparative Education*, *17*(3), 293-310.
30. Sutton J. (2020, Jan 19). *Socratic questioning in psychology: Examples and techniques.* Positivepsychology.com. Retrieved frohttps://positivepsychology.com/socratic-questioning/#:~: text=What%20is%20meant%20by%20socratic,meaning%2C %20and%20reveal%20underlying%20principles.
31. Thickstun, M. (2007). *Milton's Paradise Lost: Moral Education*. Springer.
32. "Virtue." Merriam-Webster.com Dictionary, Merriam-Webster, https://www.merriam-webster.com/dictionary/virtue Accessed 30 Oct. 2023.
33. Watson, M. (2008). Developmental discipline and moral education. *Handbook of moral and character education*, 175-203.
34. "Wise." Merriam-Webster.com Dictionary, Merriam-Webster, https://www.merriam-webster.com/dictionary/wise Accessed 28 Oct. 2023.
35. Wringe, C. (2006). *Moral education: Beyond the teaching of right and wrong* (Vol. 14). Springer Science & Business Media.

ABOUT THE AUTHOR



MS. VARSHA MADHULIKA has been passionate about teaching and has started her teaching journey as a guest lecturer in psychology at St George College of Nursing. She is also associated as a volunteer teacher with evidyaloka, a Bangalore-based NGO, to train low socioeconomic status children in governmental schools of Madhya Pradesh. She has been a 2005-batch commissioned nursing officer of Indian armed forces. She pursued her passion for teaching and counselling after taking release from armed forces. She completed her MSc in counselling psychology from Rajiv Gandhi National Institute of Youth Development, Sriperumbudur in 2021. She is on the verge of completing her MEd from IGNOU this year. She has also done certification courses in qualitative and quantitative research from University of Amsterdam(through coursera) and IIT madras(Through NPTEL portal) and IIT Kharagpur(through NPTEL portal). Presently, she is doing a short-term course on applied psychometrics from Rabindrik psychotherapy research institute trust, Kolkata under the guidance of Dr. Debdulal Dutta Roy. She is comfortable working on softwares SPSS and is learning R too. She has her unpublished masters dissertation and has presented her research papers in two conferences. She has published her poetry and blogs on various online platforms. Her one essay was published in Competition Success Review magazine in Nov., 2013. Her debate argument for the topic was also published in Pratiyogita Darpan in Feb., 2014. She is a member of National positive psychology association and an affiliate member of American psychological association.

CHAPTER 17

शांति शिक्षा

डॉ. नेहा गोस्वामी
अस्सिस्टेंट प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ईमेल: nehagoswami06@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.17

सारांश

वर्तमान समय में विश्व शांति पर दो पक्षों पर विचार किया जा रहा है। एक, राजनैतिक विश्व शांति जिसमें राष्ट्रों के मध्य शांति स्थापित करने का प्रयास निहित है दूसरी, आध्यात्मिक विश्व शांति जो कि मनुष्य के चेतना के स्तर पर स्थापित होती है अशान्ति पदार्थ स्वयं नहीं फैलाते, बल्कि मनुष्य ही असंयमित तथा अनियंत्रित होकर पदार्थो का दुरुपयोग करता है तथा विश्व को अशान्त करता है। विश्वशांति एक अलग व्यापक विषय है जो राजनैतिक विज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है, किन्तु आध्यात्मिक शान्ति वह विषय है जो मनुष्य के चैतन्य के स्तर से सम्बन्धित है। निश्चित रूप से राजनैतिक विश्व शान्ति के मूल में भी इस चैतन्य केन्द्रित शान्ति का सिद्धान्त समाया हुआ है। इन सभी बातों का सार यह है कि मानवीय शान्ति से रहित विश्वशान्ति की कल्पना दुर्लभ है। इसी प्रकार विश्व शान्ति के बिना मनुष्य का अस्तित्व संकट में है। मनुष्य का अस्तित्व बना रहे यह विश्व शान्ति की अवधारणा का पहला लक्ष्य है और मनुष्य अपने अस्तित्व के साथ-साथ सह अस्तित्व की भावना को जीवित रखे तथा स्वयं सुखी व शान्त रहे- यह विश्व शान्ति की अवधारणा का दूसरा लक्ष्य है। विश्व एक समग्र है और मनुष्य उसकी एक ईकाई है, अत: प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य बनता है कि वह स्वयं नैतिक एवं आध्यात्मिक बने और इस पहल करने में स्वयं आगे आये तभी विश्व की शान्ति संभव है। शान्तिपूर्ण जीवन का अस्तित्व हर मनुष्य का अधिकार है और उसके लिए वैसा वातावरण बनाकर रखना समाज एवं राष्ट्र का उत्तरदायित्व है। शांति शिक्षा का महत्व आज के समय में बढ़ रहा है क्योंकि विश्व भर में विभिन्न प्रकार के संघर्ष, आतंकवाद, और आपसी विवाद हो रहे हैं। शांति शिक्षा के माध्यम से लोगों को आपसी समरसता, सहमति, और सहयोग की महत्वपूर्ण बातें सिखाई जा रही हैं। शांति शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रक्रिया है जो

शांति, सहमति, समरसता, और सामंजस्य की महत्वपूर्ण मूल बातों को सिखाती है। यह शिक्षा प्रक्रिया व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर शांति को बढ़ावा देने का प्रयास करती है, जिससे समृद्धि और विकास हो सके। इस आलेख में, हम शांति शिक्षा के महत्व, उद्देश्य, तत्व, और इसके लाभों के साथ इसकी महत्वपूर्ण बातों पर विचार करेंगे।

मुख्य शब्द- शांति शिक्षा, सहिष्णुता, प्रेम, सहकारिता, समरसता, सकारात्मक दृष्टिकोण**,** अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा भ्रातृत्व, धार्मिक सहिष्णुता, उदार मस्तिष्क, विवेकपूर्ण चिन्तन।

प्रस्तावना

वर्तमान समय की आवश्यकता है कि शांति शिक्षा के द्वारा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन को आत्मसात् करते हुए अंतर-सांस्कृतिक समझ को विकसित कर सकें, जो आज के वैश्विक युग में, सांस्कृतिक टकराहट भरे वातावरण में शांति व सौहार्दपूर्ण अस्तित्व के लिए अभीष्ट है। शांति शिक्षा छात्र-छात्राओं को श्रेष्ठ, सर्वांगपूर्ण, राष्ट्रभक्त एवं वैश्विक नागरिक तैयार करने के लिए तत्पर होनी चाहिए, जो स्थानीय स्तर से लेकर वैश्विक स्तर पर अपनी सार्थक भूमिका निभा सके। भारतीय शिक्षाविद व दार्शनिक प्रारंभ से ही शांति शिक्षा का प्रतिपादन करते आए हैं। उनके विचारों में अध्यात्म, समाजवाद, मानवतावाद ,शांति, सहिष्णुता, प्रेम, सहकारिता आदि मूल्यों की गूँज है। शांति शिक्षा समाजिक व्यवस्था को विवाद से बचाने में सहायता प्रदान करती है। यह समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में मदद करती है। यह उन सभी प्रयासों का समूह है जो समाज विरोधी गतिविधियों को समाप्त करते हैं। यह समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, असमानता, विवाद आदि को समाप्त कर शान्ति स्थापना में मदद करती है। शांति शिक्षा स्वयं, दूसरों और प्राकृतिक वातावरण के साथ सद्भाव में रहने के लिए मूल्यों, ज्ञान, दृष्टिकोण, कौशल और व्यवहार प्राप्त करने की प्रक्रिया है। शांति शिक्षा को लोगों को उनके विश्वदृष्टिकोण की जांच करने और बदलने में सहायता के माध्यम से मानव चेतना के स्वस्थ विकास और परिपक्वता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। वियना घोषणा और कार्रवाई का कार्यक्रम - मानवाधिकार पर विश्व सम्मेलन , भाग 2, पैराग्राफ 78-82, शांति शिक्षा को मानवाधिकार शिक्षा के हिस्से के रूप में पहचानता है, और इस शिक्षा को विश्व शांति के लिए महत्वपूर्ण मानता है।

शांति शिक्षा के तत्व :

सहमति और आपसी समरसता के मूल अधिकार को समझाना।

संघर्ष प्रबंधन कौशल का विकास करना।
भाषा कौशल और सुनने के कौशल को सुधारना।
गैर-हिंसक संधि और बातचीत कौशल का अभ्यास कराना।

शान्ति शिक्षा का अर्थ (Meaning of Peace Education)

शान्ति शिक्षा वह है, जो मानव की मौलिक आवश्यकताओं तथा समाज की यथार्थ प्रकृति या स्वरूप का अध्ययन करती है, जिसमें इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यह शिक्षा या विज्ञान लोगों को मानव अधिकारों के विषय में जागरूक बनाती है। शान्ति शिक्षा वह शिक्षा है, जो अशोषित, अहिंसक तथा न्यायप्रिय समाज का निर्माण करती है।

शांति शिक्षा की अवधारणा, **शांति के लिये शिक्षा की वर्तमान आवश्यकता** से संबंधित है। शांति शिक्षा में जीवन मूल्य, शान्ति कौशल, शान्ति अभिवृतियां सम्मिलित होती हैं। शांति शिक्षा के माध्यम से छात्रों को परिवार, देश तथा विश्व में शान्ति बनाए रखने में उनकी भूमिका के प्रति सजग किया जाता है। छात्रों में विभिन्न समुदायों और जातियों के बीच समरसता और भातृत्व की भावना विकसित कर उन्हें शांति प्रिय जीवन जीने की कला सिखायी जाती है।

शांति शिक्षा की परिभाषा-

1) **श्रीमती आर. के. शर्मा के अनुसार,** "शान्ति शिक्षा का आशय एक प्रभावी आचार संहिता से है जो कि प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय एवं आध्यात्मिक आचरण का आदर्श रूप दिखाती है, जिसके आधार पर व्यक्ति मानसिक शान्ति प्राप्त करता है: तथा दूसरे लोगों की देखभाल करने में सक्षम होता है।

2) **जेम्स पेज के अनुसार,** "शान्ति शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति विशेष का शान्ति के समर्थकों के मध्य आत्म- विश्वास उत्पन्न किया जाता है, जो कि छात्रों को युद्ध एवं सामाजिक न्याय के प्रभाव, शान्ति के मूल्यों एवं सामाजिक संरचना के आदर्श, स्वरूप का ज्ञान, सम्पूर्ण विश्व के प्रति प्रेम, शान्तिपूर्ण भविष्य का निर्माण तथा स्वयं एवं अन्य लोगों की देखभाल सम्बन्धी गतिविधियों एवं सूचनाओं को प्रदान करते हैं।

3) **इयान हैरिस एवं जॉन साइनोट के अनुसार,** " शान्ति शिक्षा का आशय शिक्षण के उन सभी प्रयासों से है जो शान्ति की इच्छा की पूर्ति करते हैं, संघर्षों को समाप्त करने के लिये अहिंसक उपाय बताते हैं तथा असमानता एवं अन्याय को उत्पन्न होने से रोकने के लिये मानव में विभिन्न कौशलों का विकास करते हैं । "

4) **प्रो. एस. के. दुबे के अनुसार,** "शान्ति शिक्षा का आशय उस प्रक्रिया से है, जिसमें ज्ञान की प्राप्ति, मूल्यों, अभिवृत्तियों, कौशलों, पर्यावरणीय सन्तुलन एवं सामाजिक शान्ति का विकास सम्भव होता है जो कि एक आदर्श एवं आध्यात्मिक समाज के निर्माण का आधार होती है। यह समाज विभिन्न कलह एवं विवादों से पूर्णत: मुक्त होता है।"

5) **के. एस. बासवराज के अनुसार-** "शान्ति शिक्षा एक कार्यक्रम एवं प्रक्रिया है, जिससे लोगों (नवयुवक तथा प्रौढ़ों) में शान्ति के मूल्य की सराहना तथा समझदारी की भावना का विकास किया जाता है। यह वह तैयारी है जिससे सामुदायिक जीवन को न्यायप्रिय, व्यवस्थित तथा सामंजस्यपूर्ण बनाया जाता है।"

6) **डॉ. मर्सी अब्राहम के अनुसार-** "शान्ति-शिक्षा शान्तिप्रिय लोगों के लिए शिक्षा है, जो इस पृथ्वी पर शान्ति बनाये रखने के योग्य होंगे।यह विशेषतः भावात्मक शिक्षा है। यह धार्मिक शिक्षा है। साथ ही यह स्वयं में शिक्षा है।"

शान्ति-शिक्षा के उद्देश्य

शांति शिक्षा का उद्देश्य लोगों के बीच समरसता और सहमति को बढ़ावा देना है, वर्तमान समय में दो विकल्प मानवता के सम्मुख हैं- एक तरफ तो हिंसायुक्त वीभत्स विनाश है, तो दूसरी ओर समग्र, समुन्नत भविष्य है। एक तरफ की संभावना विनाश की, विध्वंस की, विप्लव की संभावना है तो दूसरी तरफ की संभावना शांति की, सुख की, शुभ की, मंगल की, कल्याण की संभावना है और यह समय उसी संभावना के चयन का है, जिसमें शांति शिक्षा सही विकल्प के चयन में सहायक है। शांति प्रिय समाज बनाने के लिए शिक्षा में शांति मूल्यों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है, अतएव शांति शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं-

1. छात्रों में विश्व शांति की अनिवार्यता एवं सहयोग के अवबोध का विकास करना।
2. छात्रों को घृणा, दुर्भावना, कलह, हिंसा आदि के दुष्प्रभावों से अवगत कराना।
3. छात्रों में शांति के महत्व (व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व एवं पर्यावरण के संदर्भ में) की समझ का विकास करना।
4. छात्रों के बीच सहमति और समरसता को प्रोत्साहित करना।
5. छात्रों में संघर्षों को न्यायपूर्ण और अधिकारिक तरीके से हल करने की योग्यता विकसित करना।
6. छात्रों में विभिन्न समुदायों और जातियों के बीच समरसता और मेलजोल को बढ़ावा देना।
7. छात्रों को शांतिप्रिय जीवन जीने की कला सिखाना।

8. छात्रों में सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का विकास करना।
9. छात्रों में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना का विकास करना।
10. छात्रों को परिवार, देश तथा विश्व में शान्ति कायम रखने में उनकी भूमिका के प्रति जागरूक बनाना।

डॉ. पी. वी. नायर ने शान्ति-शिक्षा के निम्नलिखित तीन उद्देश्यों पर बल दिया है-

- छात्रों में उदार मस्तिष्क, विवेकपूर्ण चिन्तन तथा विश्वव्यापी ज्ञान की खोज के लिए रुचि विकसित करना।
- छात्रों को धार्मिक सहिष्णुता, अन्य प्रजातियों का आदर तथा धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों को आदर की दृष्टि से देखने के योग्य बनाना।
- छात्रों में सह-अस्तित्व की भावना का विकास करना।

प्रो. के. एस. बासवराज ने शान्ति शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों पर बल दिया है-

- नवयुवकों में शान्ति के आध्यात्मिक मूल्य को विकसित करना, जिससे उनमें आन्तरिक शान्ति अर्थात मन की शान्ति प्राप्त हो सके।
- शान्तिप्रिय मानव के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना।
- मानव-जीवन में शान्ति के मूल्य को समझने तथा उसकी सराहना करने के लिए छात्रों को तत्पर बनाना।
- छात्रों में उपयुक्त एवं अनुपयुक्त, न्याय एवं अन्याय के विषय में जागरूकता विकसित करना ।
- छात्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा भ्रातृत्व का विकास करना।
- छात्रों को युद्ध, हिंसा, संघर्ष आदि के परिणामों से अवगत कराना, जिससे वे उनसे बचने के लिए कदम उठाने में समर्थ हो सकें।

शान्ति-शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum of Peace Education)

20वीं सदी की शुरुआत से, दुनिया भर में "शांति शिक्षा" के पाठ्यक्रम में अनेक प्रमुख विषयों को प्रतिनिधित्व दिया गया है, जिनमें परमाणु-विरोधी, अंतर्राष्ट्रीय समझ, पर्यावरणीय जिम्मेदारी, संचार कौशल, अहिंसा, संघर्ष समाधान तकनीक, लोकतंत्र, मानवाधिकार जागरूकता, सहिष्णुता, विविधता, सहअस्तित्व और लैंगिक समानता आदि सम्मिलित हैं।

प्रो. के. एम. साइमन ने विद्यालय के विभिन्न स्तरों के लिए शान्ति-शिक्षा के पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित किया है-

प्राथमिक स्तर

- जीवन के नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित कहानियाँ, कविताएँ तथा नाटक।
- विभिन्न धर्मों, क्षेत्रों तथा संस्कृतियों से सम्बन्धित कहानियाँ ।

जूनियर स्तर

- महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, विनोबा भावे, अब्राहम लिंकन, मार्टिन लूथर किंग, कार्ल मार्क्स, नेल्सन मण्डेला, मदर टेरेसा, जीसस क्राइस्ट, गौतम बुद्ध की जीवनियाँ तथा शान्ति स्थापना में उनके कार्य ।
- ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म तथा बुद्ध धर्म की विश्वशान्ति की स्थापना में भूमिका।

हाईस्कूल स्तर

- शान्ति की अवधारणा।
- शान्ति की आवश्यकता एवं महत्त्व
- परिवार, समाज तथा विश्व में शान्ति कायम करने के साधन ।
- संयुक्त राष्ट्रसंघ, यूनेस्को, रेडक्रॉस, स्काउट एवं गाइड आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ विश्व शान्ति में विभिन्न दर्शनों की भूमिका।
- युद्ध एवं हिंसा के कारण एवं उनके परिणामों की समालोचना।

सारांश में कह सकते हैं कि शांति शिक्षा के पाठ्यक्रम को भातृत्व, सहिष्णुता, समरसता, सहमति, और शांति की मूल बातों को समझाने और बढ़ावा देने के लिए संरचित किया जाता है। यह पाठ्यक्रम विभिन्न शिक्षा स्तरों पर निम्नलिखित तत्वों पर आधारित हो सकता है:

1. **समरसता और सहमति की भावना:** छात्रों को यह सिखाना चाहिए कि हम सभी धर्म, जाति, रंग, रूप के आधार पर अलग-अलग होते हैं, लेकिन एक दूसरे के विचार, संस्कृति, समाज के बारे में ज्यादा जानकर हम समरसता और सहमति की भावना बढ़ा सकते हैं।
2. **संघर्ष प्रबंधन:** छात्रों को यह सिखाना चाहिए कि संघर्ष हो सकते हैं, लेकिन उनका व्यावसायिक और अधिकारिक तरीके से समाधान किया जा सकता है।
3. **भाषा कौशल:** सफल शांति शिक्षा के लिए, छात्रों में अच्छी तरह से बोलने और सुनने के कौशल का विकास करना चाहिए।
4. **अहिंसक संधि और बातचीत कौशल:** यह पाठ्यक्रम छात्रों की समस्याओं को बिना हिंसा के हल करने के लिए सहायक होता है और उन्हें सभी के साथ श्रेष्ठ तरीके से बातचीत करने के कौशल प्रदान करता है।

5. **सामाजिक और नैतिक मूल्यों का महत्व:** छात्रों को सामाजिक और नैतिक मूल्यों के प्रति समझाया जाना चाहिए, ताकि वे समय के साथ इन मूल्यों के प्रति सजग रहें और उन्हें अपने व्यवहार में अपनाएं।
6. **अंतराष्ट्रीय और व्यापारिक सहयोग:** शांति शिक्षा के अंदर अंतराष्ट्रीय सहयोग और व्यापारिक सहयोग के माध्यम से विश्व भर में शांति और सहमति की बढ़ावा देने के लिए छात्रों को तैयार किया जा सकता है।
7. **शांति शिक्षा के माध्यम से सामाजिक समरसता और अधिक सजग समाज का निर्माण:** इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समरसता और शांति को बढ़ावा देना है जिससे हम सभी एक बेहतर और शांतिपूर्ण समाज का अंग बन सकें तथा एक-दूसरे के प्रति भातृत्व की भावना रख सकें।

शांति शिक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षा के हर स्तर पर समरसता और शांति की महत्वपूर्ण बातों की शिक्षा देता है और छात्रों को समय के साथ सद्गुणों की ओर अग्रसर करता है।

शांति शिक्षा का महत्व:

1. सामाजिक समरसता और अच्छे संघर्ष प्रबंधन कौशल का विकास करने में सहायक।
2. अधिकारिक तरीके से संघर्षों को हल करने में सहायक होना।
3. समाज में अधिक सामंजस्य और शांति बनाए रखने में सहायक।
4. आत्म-समर्पण और अधिक जागरूक समाज का निर्माण करने में सहायक।
5. आनंदपूर्ण व शांतिप्रिय जीवन जीने की कला के विकास में सहायक।

शांति स्थापना के उपाय

शांति स्थापना के लिए सामान्यतः वे सब उपाय काम में लाये जाते हैं जिनसे व्यक्तिगत व अन्तर्राष्ट्रीय तनाव दूर होते हैं। Psychological Bulletin में प्रकाशित आलपोर्ट के प्रसिद्ध निबन्ध "Human Nature and Peace" में अमेरिकन समाचार पत्रों में दस सिद्धान्तों के एक वक्तव्य का उल्लेख किया गया है जिसमें द्वितीय महायुद्ध के समय दो हजार से अधिक अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों ने हस्ताक्षर किये थे। इस वक्तव्य के सिद्धान्तों का सारांश निम्नलिखित है- **(1) युद्ध अनिवार्य नहीं है-** युद्ध से बचा जा सकता है क्योंकि वह जन्मजात नहीं होता। कोई भी प्रजाति, राष्ट्र या सामाजिक समूह अनिवार्य रूप से युद्ध-प्रेमी नहीं होता। युद्धों के मूल में कुछ हताशायें और स्वार्थों के संघर्ष होते हैं। शिक्षा और **सामाजिक** दशाओं के सुधार से युद्ध के कारणों को दूर किया जा सकता है।

(2) शान्ति की योजना में भावी पीढ़ी का महत्त्व- शान्ति की योजना भावी पीढ़ी पर आधारित होनी चाहिए क्योंकि उसका स्वभाव नमनीय होता है। बालक सरलता से एकता के सिद्धान्तों को समझ सकते हैं और ऐसा व्यवहार अपना सकते हैं जिसमें साम्राज्यवाद, पक्षपात, असुरक्षा और अज्ञानता के दुर्गुण कम-से-कम हों।

(3) घृणा और पक्षपात पर नियन्त्रण- शिक्षा और अनुभवों के द्वारा मनुष्यों के राष्ट्रीय और सामूहिक पूर्वाग्रहों और घृणा को नियन्त्रित किया जा सकता है। मनुष्य यह जान सकते हैं कि सभी प्रजातियों, राष्ट्रों और समूहों के सदस्य एक से होते हैं और उनमें एक-सी ही आशायें, आकांक्षायें और आवश्यकताएँ भी होती हैं। इस बात को जानने से लोगों में पूर्वाग्रह दूर हो सकते हैं।

(4) समानता का प्रचार- युद्ध को रोकने और स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए हर प्रकार का भेदभाव दूर किया जाना चाहिए। धर्म, प्रजाति, राष्ट्र अथवा किसी भी अन्य भेद पर आधारित पृथक्करण की नीति से तनाव बढ़ते हैं।

(5) स्वशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप का प्रभाव- शान्ति के लिये यह आवश्यक है। कि विभिन्न राष्ट्र के लोगों को स्वशासन का अधिकार दिया जाये और साथ ही उसमें अन्य देशों की ओर से कम हस्तक्षेप हो। ऐसा न होने पर जनता के अन्दर – अन्दर विद्रोह की आग सुलगती रहती है जो स्थायी शान्ति के लिये भारी खतरा है।

(6) उचित दण्ड और पुरस्कार- युद्ध में हारे हुए और युद्ध में जीते हुए व्यक्तियों को दण्ड और पुरस्कार देने में बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लेने की जरूरत है जिससे केवल दोषी व्यक्तियों को ही दण्ड मिले और निर्दोष व्यक्ति के साथ सख्ती न हो।

(7) आत्म-सम्मान बनाए रखते हुए पुनर्वास- युद्ध के दोषी राष्ट्र अथवा समूहों के समर्पण करने के बाद उनका पुनर्वास किया जाना चाहिए और उनके आत्म-सम्मान को चोट नहीं लगनी चाहिए। आत्म-सम्मान को चोट लगने पर भी कभी-न-कभी उनके विद्रोह का खतरा उपस्थित हो जाता है। आत्म-सम्मान से आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास उत्पन्न होता है, जो सहयोग के लिये बड़े आवश्यक हैं। कोई भी सहायता भीख या रिश्वत के रूप में नहीं दी जानी चाहिए और न किसी प्रकार से आत्म-सम्मान को चोट पहुँचनी चाहिए।

(8) साधारण व्यक्ति का ध्यान और सम्मान- स्थायी शान्ति जनता पर आधारित है, इसलिए उसकी योजना में सर्वसाधारण लोगों की इच्छाओं को सन्तुष्ट करने का ध्यान रखना जरूरी है।

(9) सामूहिक सुरक्षा के लिए बड़ी-बड़ी इकाइयाँ- मानव सम्बन्धों का दायरा जितना ही अधिक विस्तृत होगा विश्व शान्ति उतनी ही अधिक स्थायी हो सकती है। यदि राष्ट्रों की सीमाओं के ऊपर क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना हो सके तो इससे सामूहिक सुरक्षा अधिक सम्भव हो सकेगी।

(10) वायदों पर अमल – युद्ध के बाद की प्रतिक्रियाओं को सही दिशा में मोड़ने के – लिये यह आवश्यक है कि युद्ध के दिनों में जो वायदे किए जायें उन पर बाद में अमल किया जाये। यदि ऐसा नहीं होता तो अविश्वास बढ़ता है और फिर से युद्ध छिड़ने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।

विश्व शांति के लिए अन्य सुझाव

स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये उपरोक्त सुझावों के अलावा इस सम्बन्ध में कुछ अन्य बातों का ध्यान रखना भी जरूरी है। ये बातें निम्नलिखित हैं-

(1) शान्ति की शिक्षा- जिस तरह मनुष्य युद्ध करना सीखता है उसी तरह वह शान्ति से रहना भी सीख सकता है। इसके लिए जनता को, विशेषतया नई पीढ़ी के युवक-युवतियों को शान्ति की शिक्षा देनी होगी जिससे कि वे अपने को विश्व का नागरिक समझें और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में कार्य करें।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास- युद्ध के मूल में उपस्थित पूर्वाग्रहों, रूढ़ियुक्तियों आदि को दूर करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अधिक-से-अधिक विकास किया जाना चाहिए। इसके लिये प्रत्येक क्षेत्र में अधिक-से-अधिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में कार्य करें।

(3) सामाजिक और आर्थिक कल्याण- संसार में युद्ध को स्थायी रूप से हटाने के लिये यह जरूरी है कि दुनिया में कहीं भी सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ, गरीबी, असुरक्षा, हताशायें आदि न रहे। संसार के हर राष्ट्र में लोगों का सामाजिक और आर्थिक कल्याण किया जाना चाहिए।

उपसंहार-

शांति शिक्षा अथार्त मानवता की शिक्षा प्रदान करने वाली शिक्षा जिससे सभी लोग विभिन्न वर्गों समाज देशों के लोग आपस में परस्पर शांति से रहे इसके द्वारा बढ़ती हिंसा, तनाव और आत्महत्या आदि को नियंत्रित किया जा सकता है। शांति शिक्षा सकारात्मक सोच की तरफ एक सुखद कदम है, जिससे शांतिमय जीवन को जीने की कला को सीखा जा सकता है । विगत कुछ दशकों से अस्तित्व में आई शांति शिक्षा वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में उभरी है,

क्योंकि शांति शिक्षा ही विश्व शांति, स्थिरता, सहिष्णुता, सुदृढ़ और नियोजित भविष्य तथा मानव जाति के निरंतर विकास का एकमात्र साधन है।

संदर्भ-

1. https://en-m-wikipedia-org.translate.goog/wiki/Peace_education
2. https://hinditecharea.com/2023/01
3. https://en.wikipedia.org/peace_education. Retrieved from 21sept 2023
4. https://ncert in " शांति के लिए शिक्षा' राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र
5. पाण्डेय, एस. शांति शिक्षा की अवधारणा एवं आवश्यकता (वैश्वीकरण के संदर्भ में) Innovation The Research Concept अंक-4' भाग-1. February .1SSN: 2456-5474RNI No. UP B12/2016/68367
6. प्रसाद.आर. शांति के लिए शिक्षा.International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) www.crt.org.pp581-589.
7. सरकार .एस.'शांति शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व'Retrived from Vedantu.com.blog 3 August, 2022

लेखक परिचय



डॉ. नेहा गोस्वामी ने डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्विद्यालय से संस्कृत और हिंदी में स्नातकोत्तर की उपाधि तथा दयालबाग शिक्षण संस्थान (डीम्ड विश्विद्यालय) से शिक्षा शास्त्र में एम.एड. तथा पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। इन्होंने यू.जी. सी. द्वारा आयोजित नेट परीक्षा शिक्षाशास्त्र व हिंदी विषय में उत्तीर्ण की है। वे आगरा के स्ववित्तपोषित पीताम्बर डिग्री कॉलेज में 12 वर्षों तक अस्सिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्य कर चुकी हैं। वर्तमान में वह शिक्षा मंत्रालय के अधीन केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के अध्यापक शिक्षा विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के

पद पर कार्यरत हैं। इन्होंने डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्विद्यालय के स्नातक(प्रथम वर्ष, प्रथम सेमेस्टर) के लिए हिंदी काव्य विषय पर पाठ्यक्रम पुस्तक लिखी है, तथा 8 शोध पत्र विभिन्न पीयर रिव्यूड व यूजीसी केअर जर्नल में प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही इनके द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय सेमिनार व कार्यशालाओं में समय-समय पर प्रतिभागिता की जाती रही है।

CHAPTER 18

विशिष्ट शिक्षा

डॉ अमिता जैन
सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं (राजस्थान)
amitajainjuly1@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.18

सारांश

कक्षा में विभिन्न तरह के बच्चे होते हैं जिनकी अपनी-अपनी आवश्यकताएँ हो सकती हैं। जैसे - कुछ बच्चे अक्षरों को उल्टा लिखते हैं, कुछ की श्रवण शक्ति कम होती है, कुछ मंद बुद्धि वाले होते हैं। सभी बच्चे सामान्य गति से नहीं सीख पाते हैं। कुछ बच्चों का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता है जिसके कारण इन बच्चों का विकास एवं दैनिक कार्यशीलता प्रभावित होती है। इन्हीं भिन्नताओं के कारण इन बच्चों के पालन-पोषण में कुछ भिन्न या विशिष्ट तरीके अपनाने की आवश्यकता होती है। उनकी शिक्षा के लिए विशेष योजना बनानी पड़ती है, यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि उनके अनुकूलतम विकास को बढ़ावा मिले। अभिभावकों और शिक्षकों को इन बच्चों को बोलना सिखाने, चलने-फिरने, मित्र बनाने और वे कौशल और संकल्पनाएँ, जो सामान्य बच्चे विकास के दौरान सहज रूप से प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें अर्जित करने और सिखाने के लिए विशेष प्रयास करने होते हैं। इन बच्चों की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ हैं जो अधिकांश बच्चों की जरूरतों से भिन्न होती हैं, अर्थात् उनकी कुछ विशेष जरूरतें होती हैं।

मूल शब्द- क्षति युक्त, विशिष्ट बालक, मानसिक, संवेगात्मक

प्रस्तावना

क्षति युक्त और विशिष्ट बालकों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने की अपेक्षा उनके विषय में सोचना समावेशन का ध्येय है। इस प्रकार समावेशित शिक्षा शारीरिक और मानसिक रूप से क्षतिग्रस्त बच्चों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा ग्रहण करने पर जोर देती है और विशिष्ट बालकों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुमोदन करती हैं| 1994 में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को ने SEN (Special Education Need) द्वारा कहा कि "विशिष्ट

बालकों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है।" विशिष्ट का क्षेत्र सार्वभौमिक है| यह किसी भी वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय व राष्ट्र के व्यक्तियों में पाई जा सकती है। इतिहास में हमें विभिन्न विशिष्टताओं वाले व्यक्तियों के उदाहरण देखने को मिलते हैं जैसे- महान कवि सूरदास जन्मांध थे। अमेरिका राष्ट्रपति रूजवेल्ट स्वयं पोलियो के शिकार थे फिर भी वे अपने-अपने क्षेत्रों में महान बने हैं। विशिष्ट आवश्यकताओं वाले अधिगमकर्ता वे सीखने वाले छात्र होते हैं जिनकी आवश्यकताएं सामान्य अधिगमकर्ता से भिन्न होती है। यह भिन्नता कम अथवा बहुत अधिक भी हो सकती है। भिन्नता के आयाम भी बहुत हो सकते हैं जैसे- शारीरिक भिन्नता और मानसिक भिन्नता आदि। जब भिन्नता की मात्रा तथा स्वरूप बहुत होता है तो ऐसे अधिगमकर्ताओं की शिक्षा सामान्य अधिगमकर्ताओं के साथ सामान्य स्कूलों में नहीं की जा सकती है। ऐसे बच्चों के लिए विशेष प्रकार के वातावरण की आवश्यकता पड़ती है और उनके लिए विशेष सुविधाओं वाले विशेष शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की जाती है। वर्तमान में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि विशिष्ट अधिगम आवश्यकताओं वाले बच्चों की शिक्षा भी सामान्य शैक्षिक संस्थानों में प्रदान की जाए, ताकि ऐसे बच्चों को वास्तविक वातावरण के रहने के अवसर मिल सकें। शिक्षा संबंधी विशेष प्रावधानों के साथ ऐसे बच्चों को मुख्य शिक्षा धारा के साथ जोड़ने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस प्रणाली को समेकित शिक्षा प्रणाली कहा जाता है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को अपवादी बच्चे भी कहा जाता है। सामान्यतः विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे उन बच्चों को कहा जाता है जो अपनी क्षमताओं, योग्यताओं, व्यवहार, व्यक्तित्व आदि से अपनी आयु के अन्य बच्चों से अलग होते हैं। यह भिन्नता इसके उच्चता के कारण भी हो सकती है और निम्नता के कारण भी। अर्थात् इस प्रकार के बच्चों का विकास या तो इतना तीव्र या ज्यादा होता है कि वह अन्य बच्चों से आगे निकल जाते हैं या इतना कम विकास होता है कि वे बच्चे अन्य बच्चों से पिछड़ जाते हैं। इन दोनों ही प्रकार के बच्चों को शिक्षा अलग से प्रदान की जाती है। इन बच्चों के लिए अध्यापकों की नियुक्ति भी अलग से होती है। प्रत्येक बच्चा एक दूसरे से भिन्न होता है। यह भिन्नता शारीरिक, मानसिक व अन्य प्रकार से हो सकती है। प्रत्येक बच्चे की कार्य करने की क्षमता, रुचि, योग्यता, व्यवहार, व्यक्तित्व किसी दूसरे बच्चे से अलग होती है। कुछ बच्चे कार्य करने में इतने कुशल व तीव्र होते हैं कि वे अन्य बच्चों से आगे निकल जाते हैं, कुछ इतने ढीले होते हैं कि वे पिछड़ जाते हैं। विशिष्ट बालकों का स्पष्टीकरण विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं से और अधिक स्पष्ट हो जाएगा। ये परिभाषाएं इस प्रकार है-

- **क्रो तथा क्रो-** "विशिष्ट शब्द किसी एक ऐसे गुण को धारण करने वाले व्यक्ति के लिए तब प्रयोग किया जाता है जब उस गुण को धारण करने वाले अन्य व्यक्तियों की तुलना में वह इतना अधिक असामान्य प्रतीत हो कि उस

गुण विशेष के कारण अपने साथियों के विशिष्ट ध्यान की मांग करें या उसे प्राप्त करें और साथ ही उसके व्यवहार की क्रियाएं तथा अनुक्रियाएं भी प्रभावित हो।"

- **जे.ई. विलियम**- "प्राथमिक स्कूल के बच्चों के एक विशिष्ट समूह में जो बच्चे निम्न, मध्यम तथा उत्कृष्ट आर्थिक तथा सामाजिक स्तर वाले वातावरण से आते हैं, वे विशिष्ट शैक्षिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक विलक्षणतया या शारीरिक परिस्थितियों के कारण विशेष समायोजनों की आवश्यकताओं का अनुभव करते हैं। अतः हम उन्हें विशिष्ट बच्चों की संज्ञा प्रदान करते हैं।"
- **हेक-** "विशिष्ट अथवा असाधारण बच्चे वे हैं जो शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक दृष्टि से बाधित हैं| साथ ही वे बच्चे भी इस श्रेणी में शामिल हैं जो मानसिक मापन में किसी भी क्षेत्र में प्रतिभाशाली होते हैं|"

➢ **विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य-**

- विशिष्ट शिक्षा का मुख्य उद्देश्य दिव्यांग (Handicapped) बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना है |
- बच्चों में व्यक्तिगत, सामाजिक एवं भावी रोजगार की दक्षता व क्षमता का विकास करना |
- जो दिव्यांग बच्चे मुख्यधारा से पिछड़ गए हैं उन्हें मुख्यधारा में जोड़ना |
- दिव्यांग बच्चों को मुख्यधारा की कक्षा में दाखिले के लिए योजना एवं कार्यक्रम का निर्माण करना |
- दिव्यांग स्कूली बच्चों की शक्तियों (Powers) एवं कमजोरियों (Weaknesses) की पहचान करना |
- सामान्य कक्षाओं (Common Classes) में भी दिव्यांग बच्चों के लिए पढ़ने लिखने की व्यवस्था करना |
- सामान्य कक्षाओं के शिक्षकों और छात्रों को दिव्यांग बच्चों की देखभाल के लिए मानसिक तौर पर तैयार करना |
- प्रत्येक दिव्यांग बच्चे की वर्तमान क्रियाकलापों का आकलन करना |
- दिव्यांग बच्चों के लक्ष्य का निर्धारण करना |
- बच्चों के लक्ष्य निर्धारण में माता-पिता की भागीदारी सुनिश्चित करना|
- दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षण अधिगम सामग्री (Teaching learning material) का निर्माण करना|

➢ **विशेष आवश्यकता वाले छात्रों की पहचान-** सामान्य रूप से कार्य करने के लिए छः क्षेत्र निर्णायक हैं, ये हैं- **दृष्टि, श्रवण शक्ति, गतिशीलता, सम्प्रेषण, सामाजिक-भावनात्मक सम्बन्ध, बुद्धिमत्ता**। इसके अतिरिक्त आर्थिक रूप से

सुविधावंचित बच्चे भी विशेष हैं क्योंकि गरीबी के कारण वे जीवन के कई अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। वे स्कूल नहीं जा सकते क्योंकि उन्हें बचपन से ही काम शुरू करना पड़ता है, ताकि वे परिवार की आय बढ़ा सकें। लड़कियों को अक्सर घर पर ही रोक लिया जाता है ताकि वे छोटे भाई-बहनों (बच्चों) का ध्यान रख सकें और घर के कामकाज कर सकें। कोई बच्चा अथवा व्यक्ति जो इन क्षेत्रों में से एक या उससे अधिक क्षेत्रों में कोई कठिनाई महसूस करता है वह **विशिष्ट बच्चा /व्यक्ति** कहलाता है। उपरोक्त में से किसी एक क्षेत्र में भी कठिनाई व्यक्ति के लिए बाधा उत्पन्न कर सकती है और व्यक्ति को इस असमर्थता से निपटने के लिए **अतिरिक्त प्रयास** की आवश्यकता होती है।

विशिष्ट और सामान्य बालक में अंतर

विशिष्ट बालक	**सामान्य बालक**
➢ विशिष्ट बालकों को अपने निजी व साथियों के साथ समायोजन करना कठिन होता है|	➢ भली भांति समायोजन कर लेते हैं|
➢ कक्षा में बताई जाने वाली बातों को या तो अतिशीघ्र सीख लेते हैं या फिर बार बार समझाने पर भी नहीं समझ पाते|	➢ कक्षा में बताई जाने वाली बातों को भली भांति सीख लेते हैं|
➢ घर, विद्यालय या समाज में अच्छा समायोजन नहीं कर पाते|	➢ घर,विद्यालय या समाज में अच्छा समायोजन स्थापित कर लेते हैं|
➢ शैक्षिक उपलब्धि के कारण प्राय: असफलता का सामना करते हैं|	➢ शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होती है जिसके कारण असफलता का सामना नहीं करना पड़ता है|
➢ विशिष्ट बालक प्राय: अंतर्मुखी (Introvert) होते हैं और अपने में ही खोये रहते हैं|	➢ सामान्य बालक उभयमुखी(Extrovert) होते हैं जिसके कारण एक दूसरे से मेल जोल बढ़ने में माहिर होते हैं|
➢ विशिष्ट बालकों का संवेगों पर नियंत्रण नहीं होता है|	➢ सामान्य बालकों का संवेगों पर नियंत्रण होता है|
➢ विशिष्ट बालक अति महत्त्वाकांक्षी स्वभाव के होते हैं|	➢ सामान्य बालक अति महत्त्वाकांक्षी

➢ अन्तर्निहित क्षमताओं को प्रस्फुटित करने के लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है|	नहीं होते बल्कि मध्य सोच रखते हैं|
➢ विशिष्ट बालकों की शिक्षा महंगी व खर्चीली होती है|	➢ अन्तर्निहित क्षमताओं को प्रस्फुटित करने के लिए सामान्य शिक्षा की आवश्यकता होती है|
➢ विशिष्ट बालक शारीरिक रूप से अस्वस्थ होते हैं|	➢ सामान्य बालकों की शिक्षा कम खर्चीली होती है|
➢ विशिष्ट बालकों की बुद्धिलब्धि 140 से ज्यादा या फिर 90 से कम होती है|	➢ सामान्य बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं|
➢ विशिष्ट बालकों के मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होते हैं|	➢ सामान्य बालकों की बुद्धिलब्धि 90 से 110 के बीच होती है|
➢ विशिष्ट बालक अति आशावादी / घोर निराशावादी होते हैं|	➢ सामान्य बालकों का मस्तिष्क रोगमुक्त होता है|
	➢ सामान्य बालक आशावादी होते हैं|

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के प्रकार

			
शारीरिक रूप से विशिष्ट	मानसिक रूप से विशिष्ट	शैक्षिक रूप से विशिष्ट	सामाजिक रूप से विशिष्ट

1. **शारीरिक रूप से विशिष्ट-** शारीरिक विकलांगता के तहत विकलांग बच्चे, अंधे, बहरे और किसी भी लंबे समय तक पीड़ित बच्चे हैं, जो शारीरिक रूप से सक्षम नहीं हैं लेकिन अक्सर 20% से 60% विकलांग हैं। इन बालकों को मानसिक रूप से विकलांग नहीं माना जा सकता क्योंकि इनमें शारीरिक क्षमता होती है, लेकिन मानसिक रूप से भी कुछ क्षमता होती है और इनके लिए अलग से शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए| शारीरिक विकलांगता के भी दो प्रकार होते हैं, जैसे- **पहले** प्रकार में लंगड़े लूले या पोलियो ग्रस्त मानसिक रूप से सक्षम होते हैं परंतु इनमें हीन भावना केवल अपनी शारीरिक कमी के कारण होती है बाकी सारी विशेषताएं इनमें सामान्य व्यक्तियों के समान होती है| **दूसरे** प्रकार में गूंगे, बहरे, अंधे, वाणी से अक्षम बच्चे होते हैं जो शारीरिक रूप से कम दोषपूर्ण दिखते हैं लेकिन मानसिक रूप से पूर्णत: सक्षम नहीं हो पाते| उनमें संकेत, भाषा या चिन्हों के द्वारा ज्ञान का संवर्धन होता है, अतः शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति उचित शिक्षा के मार्गदर्शन के द्वारा सामान्य व्यक्ति के समान हो सकता है| शारीरिक विकलांगता में शरीर से जुड़ी परेशानियां होती हैं यह बचपन से जुड़ी कोई परेशानी के कारण हो सकता है जैसे एक्सीडेंट या पोलियो जैसी समस्या इससे मानसिक स्वास्थ्य और सोचने की क्षमता प्रभावित होती है| शारीरिक विकलांग बालकों के प्रकार- 1. अस्थि बाधित बालक 2 श्रवण बाधित बालक 3 दृष्टि बाधित बालक 4 वाणी बाधित बालक|

2. **मानसिक रूप से विशिष्ट**- मानसिक मंदित औसत से निम्न मानसिक कार्यक्षमता का उल्लेख करती है। इसलिए मानसिक मंदिता से अभिप्राय मानसिक वृद्धि एवं विकास की गति की न्यूनता से है। मानसिक मंदिता वाले बच्चों की बुद्धिलब्धि, साधारण बालकों की बुद्धिलब्धि से कम होती है। अत: मानसिक रूप से विकलांग बच्चों से अभिप्राय उन बालकों से है जिनमें औसत से कम बुद्धिलब्धि की उपस्थिति के अतिरिक्त समायोजित व्यवहार संबंधी अक्षमतायें भी इस स्तर की होती हैं कि उन्हें उनके समायोजन, विकास तथा कल्याण हेतु विशेष देखभाल तथा शिक्षा की जरूरत पढ़ती हैं| प्राचीन समय में मानसिक मंदित बच्चों के लिए मूर्ख, मन्दबुद्धि आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था जो अब अप्रचलित हो गये हैं। **एल्फ्रेड बिने** (Alfred Binet, 1908) ने "मानिसक आयु" प्रत्यय का प्रतिपादन किया। मानसिक आयु से अभिप्राय एक निश्चित आयु स्तर पर बच्चे के ज्ञान से है। यदि कुछ बच्चे सामान्य योग्यताओं में सामान्य बच्चों की तुलना में बहुत अधिक न्यून व अविकसित होते हैं तो वे मंदता के शिकार होते है। उदाहरण **यदि 10 साल का बच्चा वह कार्य करता है जो 06 साल के बच्चे को करना चाहिए तो हम उसकी मानसिक आयु 06 साल मानेंगे।** मानसिक रूप से विशिष्ट बालकों के प्रकार- 1 प्रतिभाशाली 2 सृजनात्मक 3 मानसिक मंद 4 अधिगम अक्षम्य|

3. **शैक्षिक रूप से विशिष्ट-** शैक्षिक रूप से विशिष्ट वे बालक होते हैं जिनमें अधिगम या सीखने की दृष्टि से बहुत अधिक बाधिता होती है| शैक्षिक रूप से विशिष्ट से अभिप्राय बालक के सुनने, बोलने, समझने, पढ़ने, लिखने संबंधी अपूर्ण योग्यता होना है| ये अयोग्यताएं प्राथमिक रूप से दृष्टिबाधिता, श्रवण बाधिता और मानसिक मंदता आदि दोषों के कारण नहीं होती, बल्कि ये दोष भाषा के प्रयोग करने व समझने में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण होते हैं| शैक्षिक रूप से विशिष्टता से अभिप्राय उन मनोवैज्ञानिक तथ्यों से है जिसमें व्यक्ति का मस्तिष्क सुचारू रूप से कार्य करने में अक्षम होता है| साथ ही बोलने व लिखने में भी असमर्थ होता है| इस प्रकार की बालक को होने वाली परेशानी को ही शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक कहते हैं| शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालकों के प्रकार- 1 शैक्षिक रूप से पिछड़े 2 शैक्षिक रूप से तीव्र|

4. **सामाजिक रूप से विशिष्ट-** इस श्रेणी में वे बालक आते हैं जो अपने विशिष्ट व्यवहार के कारण समाज के सामान्य सदस्यों से समायोजन स्थापित नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के बालकों में प्रायः अपराधी बालक, समस्यात्मक बालक, शरारती व उद्यमी बालक, दुष्ट प्रकृति वाले बालक तथा नशे व ड्रग आदि के व्यसनी आदि बालकों को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक रूप से विशिष्ट बालकों के प्रकार-1 समस्यात्मक 2 बाल अपराधी|

5. **संवेगात्मक रूप से विशिष्ट-** ऐसे बालकों को शिक्षण संस्थाओं में सामान्य समस्या बालकों के रूप में समझा जाता है| संवेगात्मक रूप से विशिष्ट बालक में कुछ आंतरिक तनाव होता है जो बालक के मन में घुटन, भय, चिंता, व्यग्रता, व्याकुलता आदि पैदा करता है जिसके कारण बालक का व्यवहार उत्तेजित रहता है| ऐसे बालकों की प्रवृत्ति तथा व्यवहार में उत्तेजना दिखाई देती है| एक संवेगात्मक विशिष्ट बालक असामान्य व्यवहार के द्वारा अपनी उत्सुकता को दूर करने की कोशिश करता है| ऐसे बालकों को प्रेम, सुरक्षा, सहयोग, पहचान, उपस्थिति आदि की स्कूल, घर तथा समाज में आवश्यकता होती है| ऐसे बालकों में यह भावना नहीं पनपने देनी चाहिए कि वे बहिष्कृत हैं तथा समाज उनके बारे में भावनात्मकता का व्यवहार नहीं रखता है|

निष्कर्ष-

विशिष्ट शिक्षा विशेष तौर पर डिजाइन किया गया शैक्षिक अनुदेशन है जिसमें विशिष्ट कक्षाएं अथवा विशिष्ट बालकों के शैक्षिक सामर्थ्य विकसित करने वाली सेवाएँ, मसलन विद्यालय कमेटी द्वारा बच्चों के शैक्षिक स्थापन, लोक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, मानसिक मंद एवं युवा विभाग एव शैक्षिक बोर्ड द्वारा

बनाया गया अधिनयम आदि शामिल है। इसके अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को विशिष्ट विद्यालय में, विशिष्ट शिक्षक के माध्यम से, विशिष्ट पाठ्यचर्चा के अनुरूप शिक्षा दी जाती है। इस पाठ के अंतर्गत विशिष्ट शिक्षा के अर्थ, इसकी आवश्यकता, विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के प्रकार, विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य, इनके सिद्धांत का अध्ययन किया। इसके अलावा विशिष्ट शिक्षा के कार्य-क्षेत्र, लाभों का भी विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ठाकुर, यतीन्द्र (2018)। समग्री शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. शर्मा, आर.के. (2015). समावेशी शिक्षा, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।
3. उदय, दीपक, उदय, आहा (2015)। समावेशी विद्यालय संरचना, अलका प्रकाशन, अजमेर।
4. भार्गव, महेश (2012)। प्रतिष्ठित बच्चे: शिक्षा और रैंकिंग, एच.एस. पी. गर्ग बुक हाउस, आगरा।
5. प्री-स्कूल शिक्षा पाठ्यचर्या अध्ययन (2012)। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार।

लेखक परिचय



DR. AMITA JAIN has completed her Shastri from M.D.S. University Ajmer and Acharya in Sanskrit Sahitya from M.D.S. University Ajmer, M.A. in Hindi and Science of living from Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun. She has done her M.Ed. from Rajasthan University Jaipur and done her Ph.D. in Education from Rajasthan University Jaipur. She has more than 17 years of teaching experience in B.Ed. She has also appointed as B.Ed.

practical Examiner in Various Universities. Presently she is working as Assistant Professor in Department of Education Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun, Rajasthan. She has published research papers, articles in national and international journals and presented research papers at national and international seminars and workshops. Apart of this she has participated in many seminars and workshops online and offline mode.

CHAPTER 19

मूल्य शिक्षा

डॉ. दीपशिखा अग्रवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0 एड0 डिपार्टमेन्ट
कृष्णा कॉलेज ऑफ साइंस एण्ड इन्फोरमेशन टैक्नोलोजी, बिजनौर
Email: deepshikhaagrwal1@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-606-3 | **DOI**: 10.25215/9358796065.19

सारांश

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत मूल्यों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। मूल्यें के द्वारा ही मानव जीवन आध्यात्मिक, शान्तिपूर्ण, कल्पनात्मक अभिव्यक्ति व स्थायित्व से परिपूर्ण रहता है। मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण समूह है जिसे अपने संस्कारों व पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है एवं अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की धारणायें, विश्वास, मनोवृत्तियां, आस्था एवं आदर्श समेकित होते हैं। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अंतकरण द्वारा तथा दूसरी ओर परिवेश द्वारा परिपोषित होते हैं।

बालक को प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में मिलती है, वह अपने परिवार से आदर, संस्कार,प्रेम, सहिष्णुता, सदाचार की शिक्षा प्राप्त करता है जो उसके जीवन को मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण बनाती है। परिवार का मुख्य कार्य बालक को मूल्यों की शिक्षा व संस्कारों को प्रदान करना है। इसके पश्चात बालक को मूल्य शिक्षा प्रदान करने के कार्य को विद्यालय व शिक्षक पूर्णरूप से करता है वह बालक में अनेकों मूल्यों जैसे नैतिक मूल्य, शैक्षिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, संस्कृतिक मूल्यों आदि का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मानव जीवन में मूल्य शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। यदि बालकों को प्रारम्भ से ही मूल्यों की शिक्षा न दी जाये तो आने वाले समय में समाज मूल्य विहीन हो जायेगा। जिसके अनेकों दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होगें। वैज्ञानिकता, व्यावसायिकता, प्रतियोगिता व भौतिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य केवल एक यंत्र

बनकर रह जायेगा। मानव हृदय की कोमलता, लोक कल्याण, सुशिक्षित व चरित्रवान नागरिक, पुरूषार्थ की स्थापना, नैतिकता, मानवीय मूल्य, तथा जनहित की अवधारणा को केवल मूल्य आधारित शिक्षा के द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है। विद्यार्थियों को मूल्य शिक्षा समझाने के उददेश्य से प्रस्तुत पाठ में मूल्य शिक्षा की अवधारणा, मूल्य शिक्षा की आवश्यकता, मूल्य शिक्षा के स्रोत, मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया तथा परिवार, समुदाय, और विद्यालय में मूल्य शिक्षा से सम्बन्धित विषय-वस्तु को प्रस्तुत किया गया है। जिससे छात्र मूल्यों की महत्ता को जानकर अपने जीवन, समाज व राष्ट्र को संस्कारवान बना सकें।

मुख्य बिन्दू- मूल्य शिक्षा, विषय-वस्तु, परिवार, समुदाय, विद्यालय, शिक्षक की भूमिका ।

प्रस्तावना

मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है। यह एक न होकर अनेक होते हैं। हमारे व्यवहार को नियन्त्रित करने में मूल्यों को भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इनका संबंध मनुष्य के भावात्मक पक्ष से होता है। मूल्यों से मानव जीवन शान्तिपूर्ण, स्थायित्व, आध्यात्मिक व कल्पनात्मक अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत होता है। मूल्य, अभिवृत्तियां तथा आदर्श मानव व्यवहार को निर्देशित व नियंत्रित करते हैं। मूल्यों से अभिप्रेरणा को दिशा व शक्ति प्राप्त होती है, इनके द्वारा ही आवश्यकताओं के स्वरूप को निर्धारित किया जाता है तथा उददेश्यों की प्राप्ति के साधनों केा चयनित करने में निर्णायक की भूमिका भी मूल्य ही निभाते हैं। मूल्यों के द्वारा ही मनुष्य के स्थायी भाव व मूल प्रवृत्तियों का निर्धारण किया जाता है। मानव द्वारा किये गये कार्य केवल विचारों द्वारा ही नहीं बल्कि उसके मूल्यों द्वारा भी प्रभावित होते हैं। वास्तव में ये मूल्य किसी भी व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने, संतुलित करने तथा व्यवस्थित करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। अतः मूल्यों का व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन मूल्यों के अतिरिक्त भी कुछ और मूल्य अन्य विद्वानों द्वारा बतलाये गये हैं जैसे-धार्मिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य, पर्यावरणीय मूल्य, साधन मूल्य, भौतिक मूल्य, अंतर्राष्ट्रीय मूल्य आदि। उपरोक्त दिये गये सभी मूल्य व्यक्ति को चरित्रवान, संस्कारवान व उपयोगी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। मूल्यों के विषय में जानने के पश्चात् अब प्रश्न यह उठता है कि जब बालक परिवार,माता-पिता व समाज के द्वारा अनौपचारिक रूप से इनकी शिक्षा ग्रहण करता है तो फिर क्या आवश्यकता महसूस की गई कि इन मूल्यों की शिक्षा औपचारिक रूप से दी जानी चाहिये। किन मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए? मूल्यों की शिक्षा कैसे दी जाये? इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने के लिये

हमें मूल्य शिक्षा के अर्थ, स्वरूप, विषयवस्तु, आवश्यकता, महत्व तथा इसकी शिक्षण विधि पर विचार करना होगा।

मूल्य शिक्षा का अर्थ-

प्राचीनकाल से ही भारतीय संतो ने समाज को शिक्षित करने व मूल्यों को देने का कार्य किया है। उनके पद, रचनाएँ, कविताएँ, सूक्तियाँ, उनका आचरण सभी मूल्यपरक शिक्षा के प्रतिमान हैं, आदर्श हैं तथा अनुकरणीय हैं। मूल्य शिक्षा का अर्थ है "ऐसे मूल्यों का विकास करना जो जीवन को अर्थपूर्ण व सार्थक बनाये।" इस शिक्षा के माध्यम से बालक स्वयं, परिवार, समाज व प्रकृति के मध्य स्थित अर्न्तसम्बन्धों से तार्किक रूप से परिचय प्राप्त करता है। बालक के प्रत्येक पक्ष-ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक का विकास करते हुए यह शिक्षा व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। मूल्य शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषायें निम्न हैं-

सी0वी0 गुड के अनुसार-"मूल्य शिक्षा उन सभी प्रक्रियाओं का समुच्चय है जिसके द्वारा एक व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसमें सकारात्मक मूल्यों की योग्यता, दृष्टिकोण और व्यवहार के अन्य रूपों का विकास करता है।"

सुकरात के अनुसार-"मूल्यों की शिक्षा देकर व्यक्ति को उत्तम बनाया जा सकता है।"

अतः हम कह सकते हैं कि मूल्य शिक्षा वह है जो बालक को नैतिक मूल्यों, संस्कृति, समाज सेवा, सामाजिक जिम्म्ेदारियाँ तथा सही-गलत का ज्ञान कराती है। उन्हें समाज में उपयोगी राह दिखकर एक सभ्य व आदर्श नागरिक बनने में सहायक होती है।

मूल्य शिक्षा की विशेषताएँ- (Charactrstics of Value Education) मूल्य शिक्षा की विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं:-

1. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिये प्रशिक्षित करती है।
2. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को नैतिकता व ईमानदारी की महत्वपूर्णता सिखाते हुए नैतिक जीवन की ओर प्रवृत्त करती है।
3. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध कराते हुए सामाजिक सेवा में योगदान देने के लिये प्रेरित करती है।
4. मूल्य शिक्षा समाज में आदर्श व प्रतिमान विकसित करके सहयोग व समरसता की भावना को विकसित करती है।
5. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान की भावना जागृत करती है तथा आत्म-निर्भर होने के लिये प्रेरित करती है।

6. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में पूर्णता, विकास और सामाजिक सहायता करने की योग्यता व क्षमता विकसित करती है।
7. मूल्य शिक्षा श्रम-गरिमा के महत्व को व श्रम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है।
8. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में समाज द्वारा स्वीकृत अवधारणाओं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की योग्यता उत्पन्न करती है।
9. मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में विभेदीकरण की क्षमता विकसित करती है।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता .

वर्तमान समय में मूल्यों के गिरते हुए स्तर को देखते हुए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से हो गयी है। आज समाज में लोगों के द्वारा जिस प्रकार के व्यवहार का प्रकटीकरण हो रहा है उससे आभास होता है कि समाज को मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है। जिसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा रहा है-

1. वर्तमान युग में मनुष्य दिशाहीन व दिग्भ्रमित है। उसके आचार-विचार को सही दिशा देने तथा व्यवहार को निश्चित व नियमित करने के लिये मूल्य शिक्षा आवश्यक है।
2. वर्तमान में केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे संसार में मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मूल्यों में ह्रास का अर्थ है मनुष्य कल्याणकारी, सुखकारी, मूल्यों का पालन त्याग कर केवल अपने भौतिक सुख के लिये ही कार्य कर रहा है।
3. समाज द्वारा स्वीकृत आदर्श व सिद्धांतों को आत्मसात न करके आचरण न करके केवल व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि मानना, मनुष्य का एक मात्र उददेश्य हो गया है। जिसके कारण मूल्य शिक्षा अति आवश्यक हो गई है।
4. मूल्यानुसार व्यवहार करने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक हो जाता है कि मनुष्य को उन मूल्यों को ज्ञान हो। आज के समय में हमें उन मूल्यों का ज्ञान तो है परन्तु व्यवहार में लाने के लिये उनका भावों से जुड़ना अति आवश्यक होता है। आज आवश्यकता उन मूल्यों को व्यवहार में उतारकर आचरण का आधार बनाने की है।
5. वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का पतन दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। जिस कारण मनुष्यों में अनेकों दुर्गुण बढ़ गये हैं, अपराधिक प्रवृत्ति बढ़ गई है। चोरी, हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार, शोषण की घटनाएँ मूल्य शिक्षा की आवश्यकता की उद्घोषणा उच्च स्वर से कर रही हैं।
6. ऐनीबेसन्ट मूल्य शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए कहती हैं, ''धार्मिक व नैतिक शिक्षा की हमें उतनी ही आवश्यकता है, जितनी शारीरिक व मानसिक शिक्षा की।''

7. मानव सभ्यता व संस्कृति के उत्थान के लिये मूल्य शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी समाज की संस्कृति का निर्माण उसके विश्वासों, व्यवहारों तथा मूल्यों का योग होता है।
8. विभिन्न आयोग व शिक्षा समितियों ने मूल्यों को आवश्यकता पर बल देते हुए मूल्य शिक्षा का समर्थन किया है जैसे:-

- कोठारी आयोग (1964-66) ने अपने प्रतिवेदन में मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने की बात कही थी।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, में कहा गया है कि विद्यालयों को विद्यार्थियों में उचित मूल्यों के निर्माण की शिक्षा दी जानी चाहिए।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पहचानते हुए मूल्य शिक्षा को शिक्षा का एक अभिन्न अंग बना दिया गया है।

इस प्रकार मूल्य शिक्षा की आवश्यकता को पहचानते हुए सभी एकमत हैं और इस दिशा में कार्यान्वयन करते हुए विद्यालयों को अहम भूमिका निभानी होगी।

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु

अब यह प्रश्न उठता है कि भारत में विद्यार्थियों को किन मूल्यों की शिक्षा दी जाये अथवा मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु क्या हो?

विभिन्न-विभिन्न विषयों के विद्वान विभिन्न-विभिन्न मूल्यों को मूल्य शिक्षा की विषयवस्तु के रूप में स्वीकृत करते हैं। मानवशास्त्र मानवीय मूल्यों, धर्मशास्त्री धार्मिक मूल्यों व आध्यात्मिक मूल्यों, समाजशास्त्री सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्येां, नीतिशास्त्री नैतिक मूल्यों को मूल्य-शिक्षा की विषयवस्तु के पक्षधर हैं। कुछ विद्वान भारत में भारतीय मूल्यों की तो कुछ सार्वभौमिक मूल्यों की शिक्षा की बात करते हैं जो भारतीय और मानवीय भी हो। कुछ विद्वान सत्य को सार्वभौमिक मूल्य मानते हैं कुछ सत्यम, शिवम्, सुंदरम को सार्वभौमिक मूल्य मानते हैं।

यदि इन सभी मूल्यों को सूचीबद्ध किया जाये तो ये निम्न प्रकार होंगे-

A **भारतीय मूल्य-**भारतीय मूल्य के अन्तर्गत निम्न मूल्य आते हैं-

i चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
ii चार मार्ग-ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग
iii पाँच महाव्रत-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य
iv चार आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संयास

B **सार्वभौमिक मूल्य-**सार्वभौमिक मूल्य के अन्तर्गत निम्न मूल्य आते हैं।

1.	सत्यम	2.	शिवम
3.	सुंदरम	4.	प्रेम
5.	अहिंसा	6.	शांति
7.	ईमानदारी	8.	सद्व्यवहार

C मानवीय मूल्य-मानवीय मूल्य के अन्तर्गत निम्न मूल्य आते हैं-

1.	प्रेम	2.	सहानुभूति
3.	सहयोग	4.	भ्रातृत्व
5.	शांति	6.	समानता
7.	स्वतंत्रता	8.	सह-अस्तित्व

D धार्मिक मूल्य-प्रत्येक धर्म के धार्मिक मूल्य मूल रूप से एकसमान ही है जैसे-

1. सनातन धर्म में ''भक्ति''
2. जैन धर्म में ''अहिंसा''
3. बौद्ध धर्म में ''करूणा''
4. सिक्ख धर्म में ''गुरू भक्ति''
5. इस्लाम धर्म में ''समानता व भाईचारा''
6. ईसाई धर्म में ''प्रेम व सेवा भाव''
7. पारसी धर्म में ''दया व पवित्रता''

E नैतिक मूल्य- नैतिक मूल्य के अन्तर्गत निम्न मूल्य पर सबसे अधिक बल दिया जाना चाहिये-

1. कर्त्तव्य परायणता 2. सत्यता 3. ईमानदारी

F सामाजिक मूल्य-सामाजिक मूल्यों में प्रमुख रूप से निम्न मूल्य आते हैं-

1.	प्रेम	2.	सहानुभूति
3.	सहयोग	4.	सहकारिता
5.	सहिष्णुता	6.	अनुकूलन व समायोजन

G लोकतांत्रिक मूल्य-लोकतांत्रिक मूल्य के अन्तर्गत निम्न मूल्य आते हैं-

1.	न्याय	2.	समाजवाद
3.	स्वतंत्रता	4.	समानता
5.	भ्रातृत्व	6.	सर्वधर्म समभाव

H सांस्कृतिक मूल्य-ये मूल्य प्रत्येक संस्कृति में अलग-अलग होते हैं। भारतीय संस्कृति में ये मूल्य निम्न हैं-

1. अतिथि सत्कार
2. बड़ों का आदर
3. सेवाभाव

उपरोक्त दिये गये मूल्यों के अतिरिक्त राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद ने अनेक स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ के आयोजन के उपरांत 83 मूल्यों की एक लंबी सूची प्रकाशित की थी। वे मूल्य निम्न हैं-

(1) दूसरों के सांस्कृतिक मूल्यों की सराहना (2) छुआ-छूत का विरोध (3) नगरिकता (4) दूसरों की चिंता (5) दूसरों का ख्याल रखना (6) सहयोग (7) सामान्य अच्छाई (8) लोकतांत्रिक निर्णय लेना (9) व्यक्ति की महत्ता (10) शारीरिक कार्य का सम्मान (11) साथी भावना (12) अच्छा आचरण (13) आज्ञा पालन (14) राष्ट्रीय समाकलन (15) समय का सदुपयोग (16) ज्ञान की खोज (17) करूणा (18) संयम रखना (19) सामान्य लक्ष्य (20) भक्ति करना (21) शिष्टाचार का पालन करना (22) स्वास्थ्य कर जीवन (23) अखण्डता (24) निष्कपटता (25) शुचिता (26) साधन सम्पन्नता (27) अपने ऊपर नियंत्रण (28) नियमितता (29) दूसरों का सम्मान (30) सादा जीवन (31) वृद्धावस्था का सम्मान (32) स्वानुशासन (33) सामाजिक न्याय (34) आत्मविश्वास (35) आत्मसम्मान (36) स्वसहायता (37) स्वाध्याय (38) स्वसमर्थन (39)समाज सेवा (40) अच्छे-बुरे में विभेद (41) मानवजाति की एकात्मकता (42) सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना (43) स्वच्छता (44) साहस (45) धर्म (46) जिज्ञासा (47) समानता (48) सहनशीलता (49) भिन्नता (50) वफादारी (51) दूरदर्शिता (52) समानता (53) सहनशीलता (54) सत्यता (55) प्रेम (56) राष्ट्रीय सम्पत्ति का महत्व (57) पहल (58) दयालुता (59) जीवों के प्रति दया (60) धर्म परायणता (61) नेतृत्व (62) मानवतावाद (63) न्याय (64) सहायता (65) सज्जनता (66) कृतज्ञता (67) निष्ठा (68) ईमानदारी (69) कर्त्तव्यपरायणता (70) राष्ट्रीय एकता (71) राष्ट्रीयचेतना (76)अहिंसा (73) शांति (74) देशप्रेम (75) समाजवाद (76) सहानुभूति (77) सहिष्णुता (78) धर्मनिरपेक्षता (79) पृच्छा का भाव (80) दल भावना (81) समयनिष्ठा (82) दल कार्य (83) आत्मानुशासन।

अनेकों विद्वानों ने; NCERT द्वारा दी गयी सूची की आलोचना की क्योंकि इससूची में न तो कोई क्रम है न ही कोई आधार। अतः गहन अध्ययन व मंथन के पश्चात विद्यालयी शिक्षा के लिये ''पंच मूल्य सूत्र'' तैयार किया गया। ये पांच मूल्य हैं-सफाई, सच्चाई, श्रम, समानता और सहयोग।

परन्तु कहां तो 83 मूल्यों की लंबी सूची और कहां ये सिर्फ 5 मूल्यों की अत्यन्त सीमित सूची, कुछ वैध व विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है अतः वस्तुनिष्ठ

रूप से विचार करने पर ज्ञात होता है कि भारत में अनेक धर्म, संस्कृति व समाज के लोग रहते हैं। इनके अपने आदर्श, मानदण्ड, अवधारणायें व मान्यतायें हैं इन सभी के मूल्यों को समावेशित करते हुए निम्न मूल्यों की शिक्षा दी जा सकती है जैसे-प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सत्यता, ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, सांस्कृतिक सहिष्णुता। हमारे देश में लोकतंत्र है जिसके छः मूल सिद्धांत हैं-स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय। इन सभी मूल्यों को देश के नागरिकों में विकसित करना राजनैतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इसके साथ-साथ नागरिकों में राष्ट्र समर्पण की शिक्षा श्रम की शिक्षा दी जानी अति आवश्यक है। इन सभी मूल्यों की शिक्षा से ही एक दिन भारत की सम्पूर्ण जनता "भारतीय समाज" के रूप में बंध-गुथ जाएगी।

मूल्य शिक्षा के शैक्षणिक सिद्धांत

मूल्य शिक्षा के शैक्षणिक सिद्धांत निम्न हैं-

1. मूल्य शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्यों में सम्मिलित होती है।
2. मूल्य शिक्षा, शिक्षा प्रक्रिया के अनुसार ही संचालित है।
3. मूल्य शिक्षा, संपूर्ण विद्यालय तंत्र में समावेशित होनी चाहिए।
4. मूल्य शिक्षा में मूल्यों का स्रोत पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें व पाठ्य सहगामी क्रियाएँ होती हैं।
5. मूल्य शिक्षा, बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से सम्बन्धित होती है।
6. मूल्य शिक्षा, शिक्षा के तीनों पक्षों-संज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक से जुड़ी होती है।
7. मूल्य शिक्षा, समाज की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में क्रियान्वित होती है।
8. मूल्य शिक्षा में शिक्षक की भूमिका अहम् होती है।
9. मूल्य शिक्षा का शिक्षण मानवीय पहलुओं का ध्यान में रखकर किया जाता है।
10. मूल्य शिक्षा में शैक्षणिक विधियों व युक्तियों क प्रयोग विभिन्न विषयों व आयु-वर्ग कक्षाओं के अनुरूप होती है।

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया

बालक में मूल्यों का निर्माण कैसे होता है? इस प्रश्न का उत्तर मनोवैज्ञानिकों, मानवशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों ने अलग-अलग रूपों में दिया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया में तीन पद होते हैं-प्रथम संज्ञानात्मक, द्वितीय भावात्मक व तृतीय क्रियात्मक। सर्वप्रथम बालक परिवार वे समाज के व्यवहार, आदर्श, मानदण्ड, सिद्धान्तों व नैतिक नियमों को यथावत

स्वीकार करता है परन्तु जैसे-जैसे उसमें सोचने-समझने की शक्ति तथा विवेक शाक्ति का विकास होने लगता है तो वह बालक उन्हें अपने अर्न्तमन में स्थान व महत्व देने लगता है। जब ये उसकी भावना से जुड़कर अपना अन्तर्गमन में स्थान बना लेते हैं और उसके व्यवहार को निर्देशित व नियन्त्रित करने लगते हैं, मूल्य कहलाते हैं।

मानवशास्त्री मूल्यों को सांस्कृतिक लक्षणों के रूप में स्वीकृति प्रदान करते हैं। उनके अनुसार, स्वसंस्कृति ग्रहण प्रक्रिया के द्वारा मूल्यों का निर्माण होता है अर्थात बालक का जन्म जिस समाज में होता है वह उसी की संस्कृति को ग्रहण करता है तथा उसी के प्रति विश्वास व आस्था उसके हृदय में उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार को निर्देशित व नियन्त्रित करने लगते हैं, मूल्य कहलाते हैं।

समाजशास्त्रियों के अनुसार, मूल्यों का निर्माण समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान होता है। बालक अपने समाज की क्रियाओं में भाग लेकर, व्यावहारिक मानदण्ड अपनाकर, समाज में समायोजन करता है। धीरे-धीरे ये ही भाव स्थायित्व अपनाकर उसके व्यवहार को निर्देशित व नियंत्रित करने लगते हैं, मूल्य कहलाते हैं।

सामान्य रूप से बालकों में मूल्य निर्माण की प्रक्रिया शिक्षा के अनौपचारिक व औपचारिक दोनों साधनों से होती है। अनौपचारिक रूप से परिवार व समुदाय में तथा औपचारिक रूप से विद्यालय में होती है। शिक्षा के इन साधनों को हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर रहे हैं-

परिवार और मूल्य शिक्षा-

बालक की प्रथम पाठशाला परिवार व प्रथम शिक्षिका उसकी माँ होती है। यह शिक्षा देने का वह अनौपचारिक साधन है जो बालक को भाषा, आचरण-व्यवहार, नैतिकता, संस्कृति, परम्परायें, रीति-रिवाज, सामाजिकता जैसे गुणों को ग्रहण कराता है। परिवार ही बालक में मूल्यों की नींव का निर्माण करता है। सर्वप्रथम बालक परिवार के सदस्यों की भाषा का अनुकरण करके आचरण की विधियाँ सीखता है तत्पश्चात् वह अपने कार्यों के प्रति दूसरों की अनुक्रिया देखकर उनमें से सही का चुनाव करके गलत कृत्यों को त्यागता है। धीरे-धीरे सही-गलत, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय का विभेद करने पर मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। परिवार द्वारा बालकों में उचित मूल्यों के निर्माण हेतु निम्न कार्य करने चाहिए-

1. मूल्य आधारित आचरण-परिवार के सभी सदस्य बालकों के समक्ष मर्यादित व्यवहार करें क्योंकि बालक सर्वप्रथम अनुकरण विधि के माध्यम से ही सीखता है। तो जो व्यवहार, आचरण उसके समक्ष होगा, वह उसका ही अनुपालन करेगा।बालक को कोरे उपदेश न देकर, परिवार के बड़े उसके सामने एक आदर्श के

रूप में उपस्थित हो तथा मूल्य आधारित आचरण करें, मूल्य आधारित जीवन जीयें। प्रारम्भ से ही बालक के साथ घटित होने वाली घटनाओं पर नजर रखें व उन्हें उचित व्यवहार करने की शिक्षा दें,अनुचित व्यवहार के प्रति सचेत रहें।

2. कहानी कथन-बालकों की कहानियों में नैसर्गिक रूचि होती है। वे कहानी सुनकर उसके पात्रों में स्वयं की कल्पना करने लगते हैं। अतः बालकों को मूल्यों से परिपूर्ण कहानियाँ सुनाई जायें जिससे उनमें मानवीय गुणों व मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया का संचालन हो सके। हमारे भारतीय परिवारों में प्रारम्भ से ही दादी-नानी की कहानियेां का चलन रहा है परन्तु आज आधुनिकता की इस दौड़ में मोबाइल और कम्प्यूटर में लुप्त सी हो गई हैं। जिसे एक बार पुनः जीवंत किया जाना अति आवश्यक है अतः बालकों को सरल, रोचक, मनोरंजन व मूल्यों से भरपूर कहानियाँ सुनानी चाहिए।

3. टेलीविजन, मोबाइल व कम्प्यूटर कार्यक्रम विश्लेषण-आजकल परिवारों में मोबाइल, टेलीविजन, कम्प्यूटर आदि का चलन बढ़ गया है इन पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं जैसे-कार्टून, फिल्म, नाटक आदि। इन सभी के प्रयोग के समय अति सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि कुछ कार्यक्रम नकारात्मक मूल्यों को भी जन्म दे सकते हैं अतः प्रतिकूल व अनुकूल परिस्थितियों, व्यवहारों में विभेद करके मूल्य आधारित आचरण का व्यवहार की प्रेरणा देनी चाहिये। इसी प्रकार के कार्यक्रमों को बालकों को दिखाना चाहिये जो उनमें मूल्यों का निर्माण करें।

4. समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार की पुष्टि-परिवार के यह कर्त्तव्य है कि वह बालक को समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार, सामाजिक नियम, सिद्धान्तों से अवगत कराये। उसे अच्छी-बुरी सामाजिक क्रियाओं व गतिविधियों का ज्ञान दे। समाज सम्मत आचरण करने की शिक्षा बालक परिवार के सदस्यों के आचरण से सीखता है अतः उसके समक्ष समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार करें।

5. विद्यालयों के मूल्य शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों में सहयोग-परिवार के सहयोग के बिना अच्छे से अच्छा विद्यालय अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता है। जब तक परिवार विद्यालय द्वारा कराई जाने वाली क्रियाओं के महत्व को जानकर सहयोग नहीं करते हैं। तब तक विद्यालय अपने उददेश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं अतः परिवार को विद्यालय में संचालित मूल्य सम्बन्ध कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर प्रतिभाग करना चाहिए।

6. पुरुस्कार व दण्ड-परिवार को बालक की उचित अनुक्रियाओं पर उसकी प्रशंसा करनी चाहिए जिससे वह उचित कार्य करने के लिये प्रेरित हो व समय-समय पर उसे पुरस्कार भी प्रदान करना चाहिये परन्तु गलत अनुक्रिया होने पर परिवार को बालक को सही दिशा दिखानी चाहिये। जिससे यदि दण्ड का भी

प्रयोग करना पड़े तो करें परन्तु शारीरिक दण्ड नहीं। क्योंकि शारीरिक दण्ड सदैव हानिकारक होता है। बालक से प्यार करें, मोह नहीं।

7. मानसिक रूप से स्वस्थता प्रदान करना-बालक को मानसिक रूप से भी स्वस्थता प्रदान करना आवश्यक होता है। बालक को कष्ट सहन करने के लिये भी मानसिक रूप से तैयार करना भी परिवार का प्रमुख दायित्व है उसे श्रीराम के वनवास, राजा हरिश्चन्द्र के सत्य व त्याग, महाराणा प्रताप जैसे महापुरूषों के विषय में बताकर मूल्यों को जीवित रखने व कष्ट भोगने के विषय में विस्तार रूप से बतायें। जिससे आने वाले समय में वह अपने मूल्यों की रक्षा कर सकें।

समुदाय और मूल्य शिक्षा-

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होता है। व्यक्तियों से समाज का और समाज व्यक्तियों का निर्माण करता है। मूल्य शिक्षा में सर्वाधिक महत्व समुदाय का होता है। बालक जिन मूल्यों को परिवार में सीखता है उनका दृढ़ीकरण समुदाय में होता है। इन मूल्यों के विकास के लिये सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक पर्यावरण की आवश्यकता होती है जो केवल समुदाय में ही प्राप्त होता है। इन सभी मूल्यों के विकास व निर्माण के लिए समुदाय को निम्न कार्य करने चाहिए-

1. मूल्य आधारित आचरण-आज समाज मूल्यविहीन होता जा रहा है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ने चारों ओर अपने पैर फैला लिये हैं। आज लोगों की कथनी और करनी में अन्तर हो गया है। धर्मनिरपेक्षता, न्याय, समानता जैसे मूल्यों में विरोधाभास प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। यदि हम जल्दी सावधान न हुए तो सामाजिक पतन के साथ सभ्यता व संस्कृति का भी पतन हो जायेगा। अतः बालकों में सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों, धार्मिक मूल्यों, आर्थिक मूल्यों व राजनैतिक मूल्यों का समावेश कर, उन्हें मूल्य आधारित जीवन जीने की ओर अग्रसर करें। आज भी समाज में ऐसे अनेक लोग हैं जो स्वयं के लिये नहीं बल्कि दूसरों के लिये जीते हैं। सामाजिक मूल्यों व आचरण का पालन करते हैं जिनकी कथनी व करनी एक समान होती है। उन्हें बालकों के समक्ष एक प्रतिमान व आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर, बालकों को मूल्य आधारित आचरण की शिक्षा देनी चाहिए।

2. जनसंचार के साधनों का प्रयोग-जनसंचार के साधनों में प्रमुख रूप से पत्र-पत्रिकायें, फिल्म, सिनेमा, रेडियो, टी0वी0 आदि आते हैं। इन सभी का प्रयोग बालकों को मूल्यों की शिक्षा देने के लिये किया जाये। पत्रिकायें-समाचार पत्र सर्वसुलभ व सबसे सस्ता साधन है जिसके द्वारा बालकों में मूल्यों के प्रति जागरूकता व सचेतता प्रसारित की जा सकती है। इन साधनों के द्वारा ऐसे कार्यक्रम ही प्रसारित किये जाने चाहिये जो मूल्यों पर आधारित हों।

3. मूल्य-प्रधान नाटकों का मंचन-समुदाय में मूल्य शिक्षा प्रसरित करने के लिये मूल्य प्रधान नाटकों का मंचन किया जाना चाहिए जैसे-रामलीला, कृष्ण लीला, राजा हरिश्चन्द्र, नाटक, स्वांग आदि। इनके माध्यम से सबल व मनोरंजक तरीके से बालकों को मूल्य आधारित जीवन जीने की शिक्षा दी जा सकती है।

4. समाज सेवा कार्य-बालकों को प्रारम्भ से ही समाज सेवा के कार्य से जोड़ना चाहिये जिससे उनमें सेवा की भावना, परोपकार, दया, सहानुभूति जैसे मूल्य जागृत हों। समाज मंे ऐसे अनेकों संगठन विभिन्न उददेश्यों की पूर्ति के लिये अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर रहे है। बालकों को इन संगठनों से जुड़ने के लिये प्रेरित करना चाहिए।

5. धार्मिक व नैतिक शिक्षा-सभी धर्मों के अपने-अपने मूल्य होते हैं। बालकों में सर्वधर्म समभाव की भावना समुदाय में रहकर ही उत्पन्न की जा सकती है तथा नैतिक गुणों की आवश्यकता सबसे अधिक सामाजिक व्यवहार के लिये ही आवश्यक होती है। अतः बालकों को नैतिक शिक्ष व धार्मिक उदारता के मूल्यों के विषय में समाज में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन होते हैं।

6. पुरस्कार एवं दण्ड-मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में प्रशंसा पाकर अच्छे कार्यों के लिये प्रेरित होता है व गलत कार्य करके दण्ड का भागी बनता है। अतः आवश्यक है कि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करता हो उसकी समाज में विभिन्न अवसरों पर प्रशंसा की जाये व सभी के समक्ष पुरस्कार प्रदान किया जाये। जिससे अन्य व्यक्ति भी उसके मूल्यपरक जीवन से शिक्षा लेकर एक आदर्श मार्ग पर चल सकें। समुदाय में मूल्यविहीन जीवन जीने वाले को दण्डित भी किया जाना चाहिये।

विद्यालय और मूल्य शिक्षा

विद्यालय एक ऐसा स्थान, जहाँ ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानता के अंधकार को दूर किया जाता है तथा बालक रूपी पुष्पों की सुगंध को चारों ओर फैलाया जाता है। जिसके अनुशासित वातावरण में बालक शिक्षा के साथ-साथ सहयोग, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्यनिष्ठा जैसे मूल्यों को अपनाकर एक चरित्रवान नागरिक के रूप में देश के विकास में अपना योगदान सुनिश्चित करता है। विद्यालय का उददेश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। बालक में मूल्यों के विकास हेतू विद्यालय में पाठ्यचर्या के साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं को कराना चाहिए। हमारी दृष्टि में मूल्य-विकास के लिये विद्यालय को निम्न कार्य करने चाहिए-

1. मूल्य-आधारित वातावरण- विद्यालय का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण मूल्य-प्रधान होना चाहिए। इसमें सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार,समान अधिकार, समान न्याय किया जाना चाहिये। विद्यालयों की कार्यप्रणाली विद्यार्थियों में उच्च मूल्यों के विकास में सहायक हो, उच्च आदर्श

अपनाने वाली होनी चाहिये क्योंकि बालक विद्यालयों में प्रवेश से पूर्व विभिन्न-विभिन्न परिवारांे व समुदायों से आते हैं जो भिन्न-भिन्न आचार-विचार, विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त व व्यवहार मानदण्ड रखते है। अतः विद्यालय का कर्त्तव्य है कि सभी विद्यार्थियों को उचित मार्ग दर्शन करना चाहिये व ऐसे मूल्य विकसित किये जाये जो विद्यार्थियों में उच्च आदर्श व मूल्य विकसित हो सकें।

2. विद्यालयी विषयों के शिक्षण के साथ मूल्य शिक्षा-विद्यालय में जिन विषयों का शिक्षण किया जाता है उन सभी के साथ मूल्यों का विकास किया जा सकता है जो निम्न है-

1. **भाषा शिक्षण और मूल्य शिक्षा**-भाषा शिक्षण के अन्तर्गत मूल्यों को प्रकाशित करने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं। पाठ्य पुस्तकों में नीति सम्बन्धी अनेक लेख कविताएँ, कहानियाँ, महापुरूषों की जीविनी, वीर्य और शौर्य के प्रसंग आदि संकलित होते है। इनमें समाज के समस्त सिद्धान्तों, विश्वासों, आदर्श व संस्कृति का समावेश होता है।जिनका प्रभाव बालक के मन-मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह इन सिद्धान्तों व आदर्शों को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करे, अनुकूल अनुक्रिया की प्रशंसा व अनुचित आचरण की निंदा करे। समस्त कार्यों में छात्रों की सक्रिय भागीदारी लेनी चाहिए। इससे विद्यार्थी स्वयं उचित मूल्यों के प्रति आस्था व अनुचित मूल्यों के प्रति अनास्था का भाव रखेंगे। इस प्रकार उनका विवेक जागृत होगा। जिससे वे समाज सम्मत व्यवहार कर सकने में समर्थ होगें।

2. इतिहास शिक्षण और मूल्य शिक्षा-इतिहास विषय एक ऐसा विषय है जो किसी भी राष्ट्र की सभ्यता व संस्कृति को दर्शाता है। इसमें केवल राजा-महाराजा की कहानी ही नहीं बल्कि इसमें जाति,समाज व मूल्यों का दिग्दर्शन होता है अनेक ऐतिहासिक घटनायें जो जीवन जीने की प्रेरणा देती है व अनेको मूल्यों को परिभाषित करती है जैसे-श्रीराम का पिता की आज्ञा का पालन, लक्ष्मण-भरत का भ्रातप्रेम, महाभारत-एक धर्म युद्ध, महाराणा प्रताप व शिवाजी का युद्ध कौशल, महारानी लक्ष्मीबाई का बलिदान, भगत सिंह, गोखले, सावरकर पर किये गये अंग्रेजों के अत्याचार, गाँधी का सत्याग्रह आदि। इतिहास के पन्नों पर अनेकों ऐसी मूल्य प्रधान कहानियाँ, घटनाएँ अंकित हैं जिनसे बालक स्वाभाविक रूप से प्रभावित होते हैं। अतः इतिहास विषय का शिक्षण करते समय शिक्षक को चाहिये कि वह इस प्रभाव का लाभ उठाये और विद्यार्थियों को विषय-वस्तु इस प्रकार से प्रस्तुत करें कि उनमें मूल्य प्रधान आचरण उत्पन्न हो।

3. भूगोल शिक्षण और मूल्य शिक्षा-भूगोल विषय के अन्तर्गत विद्यार्थियों को प्राकृतिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति का ज्ञान कराया जाता है। इसमें प्रकृति के साथ मानव के सम्बन्ध, विश्व की विभिन्न जीवन शैलियों का ज्ञान तथा देश-विदेश की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान कराया जाता है। शिक्षक अपने शिक्षण के

माध्यम से विद्यार्थियों में विश्व बंधुत्व की भावना का विकास, विश्व में एक-दूसरे के सहयोग की आवश्यकता का ज्ञान तथा पर्यावरण रक्षा का ज्ञान करा सकता है। इसप्रकार बालक के मन-मस्तिष्क में मानव-कल्याण के मूल्यों के प्रति सम्मान का भाव जागृत कर सकते हैं।

4. नागरिक शास्त्र शिक्षण और मूल्य शिक्षा-नागरिक शास्त्र विषय राज्य द्वारा निश्चित व्यक्ति एवं समूह की आचार संहिता होता है। इसके शिक्षण द्वारा आदर्श नागरिकों का निर्माण, राजनैतिक मूल्यों का विकास तथा व्यक्ति के अधिकार व कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया जाता है। शिक्षक अपने शिक्षण के माध्यम से राष्ट्र हित सर्वोपरि अर्थात राष्ट्रीय मूल्यों का विकास आसानी से कर सकता है। विद्यार्थियों के हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना के साथ विश्व बंधुत्व की भावना का विकास कर "वसुधैव कुटुम्बकम" के मूलमंत्र का ज्ञान दिया जा सकता है।

5. अर्थशास्त्र शिक्षण और मूल्य शिक्षा-अर्थशास्त्र विषय में अर्थ के स्रोतों और साधनों की चर्चा की जाती है। भौतिक जीवन हेतू अर्थ के महत्व को समझाते हुए विद्यार्थियों में श्रम व उत्पादन के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस विषय के अन्तर्गत शिक्षक विद्यार्थियों को आर्थिक मूल्यों का ज्ञान दे सकता है। जोखिम, उद्यमशीलता, सहयोग, साहस आदि ऐसे मूल्य हैं जिनके बिना आर्थिक प्रगति संभव नहीं है।

6. विज्ञान शिक्षण और मूल्य शिक्षा-विज्ञान विषय सदैव अपने प्रयोगों के माध्यम से सत्य की खोज में अग्रसर रहता है। वैज्ञानिक तथ्यों व सत्यों की खोज सभी आपस में मिलकर सहयोग करके करते है। जिसमें वह धैर्य, साहस व अनुशासन जैसे मूल्यों का प्रयोग करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने के साथ-साथ इस विषय के माध्यम से इन मूल्यों को भी विकसित करें। जीव विज्ञान शिक्षण के माध्यम से प्रकृति अथवा पर्यावरण शिक्षा दी जाये। उनमें प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न कर प्राकृतिक मूल्यों का विकास किया जाये। उन्हें इन तथ्यों से अवगत कराया जाये कि वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग सही कार्यों के लिये किया जाना चाहिये तथा गलत कार्यों में प्रयोग किये जाने पर विज्ञान विषय अथवा वैज्ञानिक किसी भी रूप से जिम्मेदार नहीं होते हैं। विद्यार्थियों के मस्तिष्क में विज्ञान विषय के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करना शिक्षक का कर्त्तव्य है।

7. गणित शिक्षण और मूल्य शिक्षा-गणित विषय का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। गणित विषय बालक के व्यक्तित्व निर्माण में अत्यन्त सहायक होता है। इसके द्वारा ही चिन्तन, तर्क, निर्णय व समस्या समाधान जैसे क्षमताओं का विकास किया जाता है। यहजीवन में आने वाली कठिनाइयों को धैर्य से सामना करना सिखाता है। यह विषय ही बालक को समाज में रहने योग्य बनाता है। अतः

शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह बालक इस विषय के माध्यम से धैर्य, अनुशासन, साहस, आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण, स्वाध्याय जैसे मूल्यों का विकास करें।

3- पाठ्य-सहगामी क्रियायें और मूल्य शिक्षा-वर्तमान समय में बालक के विकास में पाठ्यचर्या के साथ-साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं का भी समान रूप से महत्व होता है। विद्यालय में विषय शिक्षण के अतिरिक्त जो भी क्रियायें विद्यार्थियों को करायी जाती है वह सब पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत आती हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता है तथा ये क्रियायें बालक के सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक, संवेगात्मक विकास करने में सहायक होती हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में अनेकों मूल्यों का विकास किया जा सकता है जो निम्न प्रकार हैं-

1. प्रातःकालीन सभा और मूल्य शिक्षा-प्रातःकालीन सभा का आयोजन प्रायः सभी विद्यालयों में किया जाता है। इस सभा में सभी धर्मों, वर्गों, जातियों, सम्प्रदाय के विद्यार्थी एक साथ ईश्वर की प्रार्थना करते हैं जिससे उनमें सर्वधर्म सद्भाव की भावना उत्पन्न होती है जो उन्हें सद्मार्ग की ओर चलने को प्रेरित करती है। यदि शिक्षक इस सभा को महत्व दें तो इस सभा के माध्यम से अनेकों मूल्यों को विद्यार्थियों में जागृत किया जा सकता है जैसे प्रतिदिन राष्ट्रगान व देशभक्ति गीत के माध्यम से राष्ट्रीय मूल्य, प्रतिदिन सुविचार के माध्यम से नैतिक मूल्य, प्रतिदिन मंच पर किसी विषय पर चर्चा के माध्यम से आत्मविश्वास, धैर्य, साहस जैसे मूल्यों को विद्यार्थियों में विकसित कर सकते हैं। शिक्षक इस समय यदि स्वयं अनुशासित रहे, एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत हों अथवा व्यवहार करें तो विद्यार्थी उनका अनुसरण कर स्वयं भी अनुशासित हो जायेंगे। इस सभा के माध्यम से शिक्षक सभी विद्यार्थियों को एक साथ किसी भी विषय पर व्याख्यान अथवा संदेश दे सकते हैं, प्रेरक प्रसंग, कहानी, कविता सुना सकते हैं।

2. राष्ट्रीय उत्सव और मूल्य शिक्षा-हमारे देश में 15 अगस्त, 26 जनवरी व 2 अक्टूबर को राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाया जाता है। शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को इन दिवसों की महत्ता को विस्तार रूप में बताया जाना चाहिये। स्वतंत्रता संग्राम, स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान व स्वतंत्रता सेनानियों के संबंध में बताकर अपना रचनात्मक माध्यम से उन्हें अवगत करा कर विद्यार्थियों में राष्ट्रीय मूल्यों का विकास, राष्ट्र प्रेम की भावना का संचार तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना का विकास किया जा सकता है।

3. साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम और मूल्य शिक्षा-साहित्यिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत वाद-विवाद, भाषण, गोष्ठियाँ,सम्मेलन, दरबार आदि कार्यक्रम आते हैं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत नाटक, गायन, वादन, लोकनृत्य, झाँकियां, लोकगीत आदि कार्यक्रम आते हैं। इन कार्यक्रमों के द्वारा विद्यार्थी अनेकों संस्कृतियों का ज्ञान, साहित्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। शिक्षक का

कर्त्तव्य है कि इन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न सभ्यता-संस्कृति के दर्शन कराये तथा उनमें सहयोग, प्रेम, सहकारिता, सद्भावना, श्रम जैसे मूल्यों का विकास करे। यदि संभव होतो इन कार्यक्रमों के आयोजन का उत्तरदायित्व भी विद्यार्थियों को दे। जिससे उनमें उत्तरदायित्व निर्वाह की क्षमता उत्पन्न हो। उनमें आत्मविश्वास, कर्त्तव्यपरायण व निष्ठा जैसे मूल्यों का विकास हो सके।

4. महापुरूषों के जन्मोत्सव और मूल्य शिक्षा-विद्यालय में महापुरूषों के जन्मोत्सव मनाये जाने चाहिये। न कि अवकाश किया जाना चाहिये। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों को उन महापुरूषों के चरित्र के विषय में बताये, उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाले, उनके जीवन से जुड़े प्रेरक प्रसंग विद्यार्थियों को सुनाये जाये जिससे छात्र उन महापुरूषों के जीवन-चरित्र से शिक्षा प्राप्त कर उन मूल्यों को अपने जीवन में उतार सकें। उनसे संबंधित मूल्यों को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारकर आत्मसात कर सकें।

5. खेलकूद और मूल्य शिक्षा-खेल का मैदान एक ऐसा स्थान है जहाँ बालक सर्वाधिक आनंद की अनुभूति करता है। अतः शिक्षक बहत सरलता से खेल के मैदान या स्थान पर विभिन्न मूल्यों की शिक्षा दे सकता है। खेल दो प्रकार के होते हैं-एक वैयक्तिक, दूसरे सामूहिक। खेलों के माध्यम से बालकों में उत्तम स्वास्थ्य के प्रति भावना जागृत की जा सकती है। अनुशासन, धैर्य, सहयोग, स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना, साहस, आज्ञा पालन, साथी भावना, समय का सदुपयोग, नियमितता, संयम, शिष्टाचार जैसे अनेकों मूल्य को विकसित किया जा सकता है। खेलों के द्वारा ही शिक्षक हार व जीत के प्रत्यय को आसानी से समझा सकता है।

6. समाज सेवा कार्य और मूल्य शिक्षा-विद्यालयों में अनेक ऐसे सेवा संगठन होते हैं जो विद्यार्थियों में सेवा की भावना जागृत करते हैं जैसे-रेडक्रास, स्काउट-गाइड, एन0एस0एस0, एन0सी0सी0 आदि। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक छात्र को समाज सेवा कार्यों व संगठनों से जुड़ने के लिये प्रेरित करें। उन्हें समाज सेवा के महत्व के विषय में ज्ञान दे, श्रमदान के महत्व से परिचय कराये, निःशुल्क सेवा करने के लिये प्रोत्साहित करें, आपदा के समय किस प्रकार जनता की सेवा-सहायता करनी चाहिये, विद्यार्थियों में इन मूल्यों का विकास करे। शिक्षक स्वयं प्राथमिक रूप से मूल्य आधारित आचरण करे तभी विद्यार्थी शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, उसे अपना आदर्श मानकर, उसका अनुसरण करेंगें।

मूल्य पोषण में शिक्षक की भूमिका

मूल्यों के विकास के लिये NCERT द्वारा निर्मित विद्यालयी योजना में शिक्षकों की भूमिका का स्पष्ट प्रस्तुतीकरण है। इस सन्दर्भ में शिक्षक के कर्त्तव्य के प्रमुख बिन्दू निम्नवत हैं-

1. विद्यालय में प्रेम, विश्वास व सुरक्षा के वातावरण का निर्माण करें।

2. बालक के विकास क्रम की विशेषताओं को समझकर व्यवहार करें।
3. विद्यार्थियों को अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर दें।
4. मूल्यों की शिक्षा निरन्तर व उद्देश्यपूर्ण रूप से प्रदान करें।
5. उपदेश के स्थान पर मूल्यों को प्रत्यक्ष परिस्थितियों से जोड़कर प्रस्तुत करें।
6. मूल्यों की शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से, जीवन से जोड़कर प्रदान करें।
7. छात्रों को विषय ज्ञान के सम्पूर्णता में प्रदान करें।
8. छात्र को विषय से संबंधित जानकारी, तार्किक संरचना, विधियाँ और मानसिक प्रवृत्तियों का ज्ञान दिया जाये।
9. छात्रों में स्वाध्याय व चिंतन क्षमता की आदत का विकास करें।
10. शिक्षक का व्यवहार एक आदर्श के रूप में होना चाहिए।

अंत में निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान समय में व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को मूल्य शिक्षा की अति आवश्यकता है। मूल्य शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को उन मूल्यों का ज्ञान कराया जाता है जो उसके जीवन में आवश्यक व अनिवार्य है। इसमें जीवन को आदर्शमय अथवा जीवन मूल्यों से ओत-प्रोत बनाने वाले तत्वों का समावेश है। मूल्य शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति पाश्विक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर दैवीय जीवन जीने के लिये अग्रसर होता है। ऐसे व्यक्ति ही एक सभ्य व सुसंस्कृत समाज का निर्माण करते हैं। वही समाज राष्ट्र को उन्नति के शिखर तक पहुँचाने का कार्य करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, डा0 रामशक्ल (2000): ''मूल्य शिक्षा के परिपेक्ष्य'' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. लाला, प्रो0 रमन बिहारी (2017-18) 'शिक्षा के दार्शनिक आधार'' आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. शर्मा, डा0 आर0ए0, (2017): ''शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार'', आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. सिंहा, डा0 प्रीति, (2017): ''शांति एवं मूल्य शिक्षा'', नालंदा खुला विश्वविद्यालय, पत्र चौदहवां।
5. चुरू, राज (2016): नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का महत्व, ISSn-2250-1991, Vlume : 5, Issue : 10.
6. सूजा, एम: समाज, संस्कृति, धर्म और पारिवारिक मूल्य।
7. असवाल, भरत सिंह, (2017): मूल्य शिक्षा का जीवन में महत्व एवं आवश्यकता, ISSN No. : 2321-290X, Volume : 4, Issue-10

8. ढाका,डा0 अमीता: मूल्यपरक शिक्षा एवं योग, शोध मंथन, UGC No. 40908, ISSN : 0976-5255
9. राय, अजीत कुमार, राय, मनोज कुमार: मूल्य एवं मूल्यपरक शिक्षा: प्राथमिक शिक्षा एवं शिक्षक के सन्दर्भ में।
10 https :// en.wikipedia.org.
11 https :// sarkariguider.in
12 https :// www.nou.ac.in
13 https :// hindisamay.com
14 https :// drishtias.com
15 https :// uou.ac.in

लेखक परिचय



DR DEEPSHIKHA AGARWAL has been a motivator, councillor and inspiring teacher for 18 years. She has inspired over thousand of teacher in career. She has been teaching D.El.Ed, B.Ed and M.Ed students with full dedication. She had taught B.Ed students of IGNOU as a resource person. She had also taught NIOS D.El.Ed students as a resource person. She has been teaching B.Ed (Distance Learning Program) students of Jamia Miliya Islamiya Central University New Delhi. Now she is the head of Department of Education at Krishna college of science and information technology. She is working as a cultural committee convenor since 2014 to till now. She has done her B.Ed from C.C.S University Meerut in 2006. She has completed her masters in Commerce, Education and Economics subject. She has also done M.Ed in 2011 from C.C.S University Meerut.

She qualified UGC NET in 2017. She has done her P.HD in Education in 2019 . She has published her 08 Research paper. She has conducted 05 workshops for different school teachers. She has authored 01 book and contributed chapter in 04 other book on Education and Evaluation. Apart from being a teacher, Dr Deepshikha Agarwal is also a nature lover. She is a social worker also. She was awarded " SHIKSHAK GAURAV AWARD " by Rotary club Bijnor in 2019 and "DAINIK JAGARAN ACHIEVERS AWARD " by Dainik jagaran news paper in 2023 also. She is a good anchor of High level program.

ABOUT THE EDITOR



Dr. Harish Kumar Yadav is working an Assistant Professor in the department of B.Ed. RCU Govt. PG. College Uttarkashi, Uttarakhand. He is Post Graduate in Education, Economics and Hindi. He is UGC –NET qualified in Education and more than Ten years of Teaching and Learning experience in Teacher Education. He has published research papers, articles, and book chapters in national and international journals and books and also presented research paper at national symposiums. His research field covers inclusive education, special education, yoga education and philosophy etc.

He can be contacted at yadavh101@gmail.com

ABOUT THE BOOK

This edited book is a compilation of the contributions of professors, assistant professors, teachers, and researchers working in the fields of education, management, psychology, Hindi, etc. The edited book "Education: Diverse Dimensions" contains chapters on various aspects of education, such as: Value Education, Yoga Education, Sex Education, School Education, Higher Education, Inclusive Education, Special Education, Integrated Education, Vocational Education, Women Education, Environment education, adult education, health and physical education, blended learning, online education, moral education, peace education, special education and value education, etc. This book has been edited with the special aim of providing information to the students of B.Ed., M.Ed., and pedagogy. The author's effort has been to shed light on the diverse dimensions of education so that teachers, researchers, and students can get maximum benefit from the book in solving the problems of learning and teaching-learning. All those educationists, professors, and publishers who have played a constructive role in preparing this book deserve thanks.

₹ 700/-

eBook

ISBN 978-93-5879-606-3

9 789358 796063

red'shine PUBLICATION INDIA

RED'SHINE PUBLICATION PVT. LTD.
88-90 REDMAC, Navamuvada,
Lunawada, India - 389230
Website: www.redshine.co.in
Email: info@redshine.in
Helpline: 0-76988 26988

श्रीमद्बलरामस्वामिन्यायाचार्यप्रणीतः

परमाणुवादः

प्रबन्ध सम्पादक
एम. एल. गर्ग
डीआईजी, बीएसएफ

प्रधान सम्पादक
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी
संचालक एवं उपाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

अनुवादक
डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (वेदविज्ञान विभाग)
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
जयपुर (राजस्थान)

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
समन्वयक
वैदिक हेरिटेज एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान,
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

प्रकाशक :

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
(जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्तिनगर, श्यामनगर, सोढाला, जयपुर

प्रकाशक : **विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान**
(ज़गद्गुरुरामानन्दार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्तिनगर, श्यामनगर, सोढाला, जयपुर

संस्करण : 2021

ISBN : 978-81-945744-39

मूल्य : 250/-

कॉपीराइट : सर्वाधिकार सुरक्षित

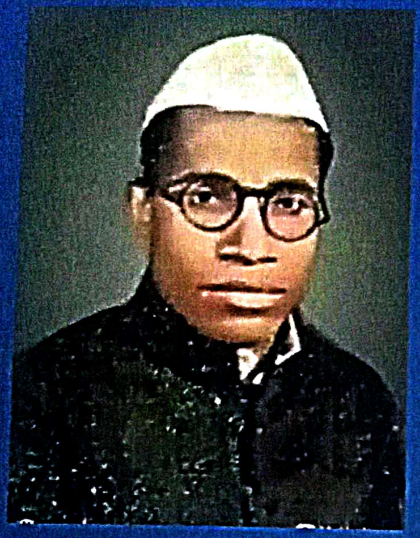
मुद्रक : कन्ट्रोल पी, जयपुर

ग्रन्थ के समलोच्य विषय निम्न रहे हैं-

1. परमाणुत्व किस पदार्थ की संज्ञा है?
2. परमाणु की सत्ता में क्या प्रमाण है ?
3. अणुत्व एवं महत्व में क्या प्रमाण है ?
4. परमाणु किसे कहते हैं ?
5. कौन से द्रव्य परमाणु रूप वाले होते हैं ?
6. परमाणु नित्य हैं या अनित्य ?
7. परमाणु में एकगुणत्व होता है या अनेकगुणत्व ?
8. परमाणुगुण नित्य हैं या अनित्य ?
9. परमाणुओं का क्या कार्य है ?
10. परमाणुओं से जगदुत्पत्ति कैसे सम्भव है ?
11. स्थूल द्रव्य परमाणुपुंजों से भिन्न होता है या अभिन्न ?

ग्रन्थप्रणेता: संक्षिप्त परिचय

श्रीमद् बलराम स्वामी न्यायाचार्य



जन्म	–	फाल्गुन शुक्ल अष्टमी संवत् १९८०
जन्म स्थान	–	मण्डा (फुलेरा), जयपुर
शिक्षा	–	वेदान्तशास्त्री, न्यायाचार्य (बनारस विश्वविद्यालय) मीमांसाशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य (महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर)
उपाधि	–	कथावाचस्पति, मण्डलेश्वर
गुरु	–	श्री बालूराम मण्डलेश्वर
सेवाकाल	–	प्राचार्य (सन् १९७१-७४) श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय दादूपंथ के साहित्य का प्रकाशन (जीवनपर्यन्त)

रचनायें

''वैयाकरणपद्यावली''	दादूवाणी (संस्कृतानुवाद)
परमाणुवाद:	विचारसागर (संस्कृत पद्यानुवाद)
प्रौढ़ दार्शनिक ग्रन्थ: पारिमाण्डल्यपरिच्छित्ति:	द्वादशपञ्जरिकासञ्चय:
दादूस्तोत्र (दादूपंथ विविध साहित्य)	श्री हयग्रीवकवचम्
''संस्कृतसाहित्य में राजनीति''	स्वरव्यंजनज्योतिषम्
प्राणोपनिषद् भाष्य	हिरण्यगर्भसूक्त व्याख्या

प्रकाशक :

ISBN : 978-81-945744-3-9

9 788194 574439

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

(जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : www.vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org



Many such vital issues are addressed in this book by Dr. Amit Singh Rathore, an eminent scholar and educationist in his own rights. He has already written immensely popular. (Time Management Practices in Private Industrial Sector, Business Eathics, A Role of Management Concepts in Indian Economy (Edited Book) and The Stress Determental Factors and Combating Strategies) books to his credit. He has an integrative grasp of the complex challenges inherent in these never- before- experienced set of circumstances by us in the world, and offers ways of meeting them on value based platform.

He holds a Ph.D, M Phill, MBA, MSW, LLB, PGDLL & DISM. He is also Director and Professor at Om Kothari Group of Educational Institutes, Kota.He is deeply involved in several socially relevant movements as well. He is presently the Secretary of the Chambal Sansad, Executive and Life Member of ISTD, Kota Chapter, KotaGyan Dwar, Society, Eye Bank Society Govt of Rajasthan, Kota Chapter.

We highly recommend this book for students and for others to have an overview of the currently difficult situation and what we must all undertake to do as members of humanity for the sake of our future generations.



Dr. Abha singh (Assistant professor)
Department of Education
Jain Vishva Bharti Institute, Ladnun
Rajasthan

Dr. Abha Singh is working as Assistant Professor in Education Department, Jain Vishwa Bharati institute ladnun. Your book titled Guidance and Counseling in Education has been published in the past also. About 21 of your research papers have been published in national and international research journals and 8 book chapters published. She has presented his papers in about 52 national and international seminars. You are making your mark as a loyal conscientious teacher. You are a personality full of positive energy who is constantly striving for the development of his students.

गंगा प्रकाशन

ब्रांच ऑफिस : एल-9ए, गली नं. 42, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली - 110094
हेड ऑफिस : मकान नं. 43, बल्दिहॉ, सैदाबाद, प्रयागराज, उ.प्र. - 221508
मोबाइल : 8750728055, 8368613868 E-mail : prakashanganga@gmail.com

₹ 1000

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और आत्मनिर्भर भारत के उभरते प्रतिमान

Dr. Amit Singh Rathore
Dr. Abha Singh

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और आत्मनिर्भर भारत के उभरते प्रतिमान

Dr. Amit Singh Rathore Dr. Abha Singh



Special Volume May 2024

CHHAVI

National Journal of Higher Education
ISSN No. : 2319-9679
Refereed
May, 2024

NATIONAL SEMINAR

Sponsored by : ICSSR, New Delhi

NATIONAL EDUCATION POLICY : 2020

INDIAN KNOWLEDGE LEGACY & MODERN EDUCATION

Indian Council of Social Science Research

23-24 May, 2024



Editor
Dr. Rakesh Kumar

Co-Editor
Dr. Rakesh Kumar Badasara

Assistant Editor
Miss. Anamika Yadav

Chief Editor : Prof. (Dr.) Rajendra Kumar Shrimali

Published By :
Shubham Education and Information Center
O/S Jassusar Gate, B/H Karni Mata Temple, Bikaner 334001, Raj.
Email : dr.rajendrashrimali@yahoo.in, Mob. : 94147-42973

Scanned with OKEN Scanner

S. No.		Topic	Page No.
25	 अनामिका यादव	भारतीय ज्ञान परंपरा की संकल्पना एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020	87-90
26	 अनिता शर्मा	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक शिक्षा	91-93
27	 Dr. Arvind Kumar	भारतीय ज्ञान परम्परा (आई के एस) संस्कृति एवं भारतीय मूल्य	94-96
28	 डॉ.अमिता जैन  प्रो.बी.एल.जैन	भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक शिक्षा	97-99
29	 डॉ. अनिल कुमार	भारतीय ज्ञान परंपरा (आईकेएस) समाज और व्यक्तित्व विकास	100-102
30	 डॉ. ममता पारीक	भारतीय ज्ञान परंपरा (आईकेएस) एवं शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम	103-105
31	 डॉ. रमेश कुमार	भारतीय ज्ञान परंपरा (आईकेएस) और आधुनिक शिक्षा	106-109
32	 डॉ. सुभाष चन्द्र सैनी	भारतीय ज्ञान परम्परा और भारतीय शिक्षा नीति-2020	110-112

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक शिक्षा



डॉ.अमिता जैन
सहायक प्रोफेसर,शिक्षा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान,लाडनूं



प्रो.बी.एल.जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान,लाडनूं

सारांश – भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक शिक्षा दोनों ही विषय बहुत उपयोगी हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा विशेषतः वेद, उपनिषद, पुराण, धर्मग्रंथ आदि के माध्यम से संस्कृति, दर्शन और विज्ञान के बारे में शिक्षा प्रदान करती है। यह ज्ञान परम्परा विश्वभर में अपनी अद्वितीयता और गहनता के लिए प्रसिद्ध है। यह एक व्यापक अनुभव है जो भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और तत्त्वशास्त्र के मूल्यों, विश्वासों और आदर्शों को समाविष्ट करता है। भारतीय जीवन–दर्शन के अंतर्गत विविध धार्मिक और दार्शनिक परंपराएं शामिल हैं, जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म और वेदांत दर्शन। आधुनिक शिक्षा से तात्पर्य विद्यार्थियों को विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और सामाजिक जागरूकता के साथ–साथ उनके विकास को समर्थित करना होता है। यह शिक्षा विभिन्न विषयों के अध्ययन, प्रयोग और अनुसंधान के माध्यम से विद्यार्थियों को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने समय के साथ अपनी गहराई और विस्तार को बनाये रखा है और आज भी विश्व भर में इसका महत्व और प्रभाव अद्भुत है। आधुनिक शिक्षण विधि शिक्षा को अधिक सकारात्मक, संबोधनशील और समर्थ बनाने के लिए हैं।

शब्दावली – संस्कृति, दर्शन, विज्ञान, प्रणाली, आश्रम व्यवस्था, ग्रंथ, शास्त्राध्ययन, पाठ्यक्रम, विधि, साहित्य, संयुक्त परिवारद्य

प्रस्तावना– ज्ञान परम्परा एक बहुत महत्वपूर्ण और प्राचीन विचार है, जो भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व रखता है। इसका अर्थ है 'ज्ञान की परंपरा' या 'ज्ञान की विरासत'। यह एक विशेष प्रकार की शिक्षा और ज्ञान के पारंपरिक प्रणाली को संकेत करता है, जो गुरु–शिष्य प्रणाली के माध्यम से प्रसारित होती है। इस परंपरा में ज्ञान का अनुशासन, समर्पण और गहरा संबंध होता है। गुरु–शिष्य के बीच एक पवित्र बंधन होता है, जिसमें शिष्य गुरु के ज्ञान, अनुभव और मार्गदर्शन का आदर्शन करता है। इस परंपरा में ज्ञान और विवेक के माध्यम से अनंतता की ओर प्राप्ति की जाती है। ज्ञान की पारंपरिक प्रणाली भारतीय संस्कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह प्रणाली समय के साथ विभिन्न शैक्षिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और तकनीकी ज्ञान को संजीवनी देती आई है। संस्कृति, दर्शन और विज्ञान सभी महत्वपूर्ण विषय हैं जो हमारे समाज, विचार और विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा एक बहुत विशाल और गहरी परंपरा है जो भारतीय सभ्यता, धर्म, विज्ञान, कला, साहित्य और दर्शन को समृद्ध करती है। इस परंपरा की शुरुआत समयानुसार बहुत पहले हुई और इसका अनुभव और विकास सभी क्षेत्रों में हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक विशेषता यह है कि इसने वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक तत्त्व और मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को सम्मिलित किया है। यहां परंपरागत ज्ञान का प्रसार गुरु–शिष्य परंपरा, ग्रंथों के माध्यम से और मौन ध्यान जैसे धार्मिक अभ्यासों के माध्यम से होता आया है।

संस्कृति (Culture): संस्कृति हमारे समाज की आत्मा होती है। यह हमारे विचारों, आदतों और सामाजिक संबंधों का मूल रूप से संकेत है। संस्कृति हमें हमारी भूमिका और जीवन के मूल्यों के बारे में सिखाती है।

दर्शन (Philosophy): दर्शन हमारे विचारों और

Scanned with OKEN Scanner

धारणाओं का मध्यस्थ है। यह हमें मनुष्य के अस्तित्व, ज्ञान, धर्म और जीवन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में सोचने और समझने की क्षमता प्रदान करता है।

विज्ञान (Science): विज्ञान हमारी संविदा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवीनतम गतिविधियों का अध्ययन करता है। यह हमें प्राकृतिक और सामाजिक विषयों के विकास में सहायक होता है और हमारे जीवन को आसान और उत्तम बनाने में मदद करता है।

इन तीनों के बारे में शिक्षा हमें ज्ञानवर्धन, समृद्धि और सहजता की दिशा में ले जाती है। यह न केवल हमारे व्यक्तिगत विकास में सहायक होती है, बल्कि समाज के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारतीय पारम्परिक प्रणालियाँ

1. गुरु–शिष्य परंपरा	2. श्रुति और स्मृति
3. वेदाध्ययन	4. आश्रम व्यवस्था
5. ग्रंथों का संग्रह	6. शास्त्राध्ययन
7. व्याख्या और संवाद	8. प्रायोगिक शिक्षा
9. गाथा एवं कथा	10.आध्यात्मिक साधना
11.दर्शन	12. योग और ध्यान
13. आयुर्वेद	14. विज्ञान और गणित
15.साहित्य	16. संस्कृति और इतिहास
17.संयुक्त परिवार	

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत, विवेकानंद के उपनिषद, वाणी, ग्रंथ आदि महत्वपूर्ण काव्य और ग्रंथ हैं। ये सभी काव्य और ग्रंथ भारतीय जीवन–दर्शन, नैतिकता, धर्म और जीवन के उद्दीपक हैं। इस परंपरा में आयुर्वेद, योग,. ध्यान, तांत्रिक विज्ञान, ज्योतिष, गणित, वास्तुशास्त्र आदि भी शामिल हैं, जो भारतीय समाज और जीवन के विभिन्न पहलुओं को समृद्ध करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा ने समय के साथ अपनी गहराई और विस्तार को बनाये रखा है और आज भी विश्व भर में इसका महत्व और प्रभाव अद्भुत है। भारतीय ज्ञान परंपरा में भारतीय जीवन–दर्शन का विशेष महत्त्व हैद्य भारतीय संस्कृति और दार्शनिक विचारों का समावेश किया जाता है। यह एक व्यापक अनुभव है जो भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और तत्त्वशास्त्र के मूल्यों, विश्वासों और आदर्शों को समाविष्ट करता है। भारतीय जीवन–दर्शन के अंतर्गत विविध धार्मिक और दार्शनिक परंपराएं शामिल हैं, जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म और वेदांत दर्शन। भारतीय जीवन–दर्शन की मुख्य विशेषताओं में जीवन के उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जैसे कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें जीवन की आध्यात्मिकता, सामाजिक संबंध, परिवार, समाज और प्रकृति के साथ संवाद का महत्व होता है। यहाँ तक कि भारतीय जीवन–दर्शन में आत्मा का परमात्मा के साथ योगदान की भावना भी है। सम्पूर्ण जीवन–दर्शन का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से समृद्ध है। इसमें अनेक धार्मिक और दार्शनिक संगम है जो मनुष्य को सही और उचित जीवन दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। भारतीय ज्ञान शिक्षण की विधियां अत्यंत विविधता और परि के साथ उपस्थित हैं। इस परंपरा में शिक्षा विभिन्न उपाय हैं, जो अध्यात्म, दर्शन, विज्ञान, सामाजिक विज्ञानों को समाहित करते हैं। विधियां भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न पहलू समाहित करती हैं और शिक्षा को समृद्ध महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय ज्ञान बहुत विशाल और उदार है, जिसमें विभिन्न विविधता और समृद्धि है। यहां कुछ मुख्य क्षेत्र भारतीय ज्ञान का पाठ्यक्रम हैद्य वेदों और उप अत्यधिक गहराई और ज्ञान का स्रोत है। यहां और ध्यान के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। ये कुछ मुख्य जिनमें भारतीय ज्ञान परम्परा का पाठ्यक्रम परंपरा अनंत समृद्धि और ज्ञान की गहराई को और विभिन्न विचारधाराओं और धाराओं को करती है।

आधुनिक शिक्षा – वह शिक्षा है जो आधुनिक जरूरतों, सामाजिक परिवर्तनों, तकनीकी उन्न विज्ञान के प्रगति के साथ चलते हुए शिक्षा प्रणाल आधुनिक बनाती है। आधुनिक शिक्षा से तात्प को जीवन की समस्याओं का सामना करने तैयार करना होता है, इसके साथ ही उन्हें सद्भावना, नैतिकता और व्यक्तिगत विकास को समझाने का मौका देती है। आधुनिक शिक्षा तकनीक, वैज्ञानिक गणना, सामाजिक अध्ययन विद्यार्थियों के स्वयं निर्धारित अध्ययन को करती है। आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छा स्वतंत्र, सोचने की क्षमता, नवाचार समस्या–समाधान कौशल प्राप्त कराना है। शिक्षा प्रणालियाँ आधुनिकता को बढ़ावा आधुनिक शिक्षा प्रणालियाँ छात्रों को नवीनतम और विचारात्मक साधनों का उपयोग करने प्रदान करती हैं। इससे छात्रों की सोचने समस्याओं का समाधान करने की क्षमता, स्वाध्याय समर्थता में सुधार करती है। इससे शिक्षा को अपने आसपास के वातावरण से और अधिक सक्रिय रूप से सीख सकते हैं। शिक्षा पाठ्यक्रम विभिन्न विषयों और क्षेत्रों को आधुनिक तकनीकों, विज्ञान, सामाजिक भूगोल, इतिहास

छवि : नेशनल जर्नल ऑफ हायर

साथ–साथ विचारशीलता, समाजसेवा और नैतिकता के मूल्यों को भी पाठ्यक्रम के माध्यम से सिखाते हैं। इन पाठ्यक्रमों में समृद्ध सामग्री, प्रैक्टिकल एप्रोच और समृद्ध अध्ययन सामग्री होती है। ये पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को जीवकोपार्जन, रोजगार, नौकरियो के लिए तैयार करने की दृष्टि से रखे जाते हैं। आधुनिक पाठ्यक्रम प्रैक्टिकल ज्ञान, नवीनतम तकनीकी, उपकरणों का उपयोग, समस्या–समाधान कौशल और अन्य आधुनिक शैलियों को सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। विद्यार्थियों को सामाजिक, व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशलों का विकास करते हैं। कई स्थानों पर आधुनिक पाठ्यक्रम इंटरडिस्प्लिनरी होते हैं अर्थात् विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों के संयोजन के माध्यम से व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया जाता है। इससे उनकी सोच और समस्या समाधान क्षमता में वृद्धि होती है और वे विभिन्न क्षेत्रों में समर्थ बनते हैं। आधुनिक शिक्षण विधि शिक्षा को अधिक सकारात्मक, संबोधनशील और समर्थ बनाने के लिए हैं। कुछ आधुनिक शिक्षण विधियों की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं:

अनुभवाधारित शिक्षण (Experiential Learning): इस विधि में छात्रों को अनुभवों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का मौका दिया जाता है। इसमें वास्तविक जीवन के अनुभव, प्रक्रियाओं का अध्ययन और अभ्यास शामिल होता है।

सहयोगी शिक्षण (Collaborative Learning): इस विधि में छात्र एक–दूसरे के साथ सहयोग करते हैंद्य साझा उद्देश्यों को हासिल करने के लिए समृद्ध साझेदारी और सामर्थ्य विकसित करते हैं।

संवादात्मक शिक्षण (Dialogic Learning): इस विधि में शिक्षक और छात्रों के बीच संवाद को महत्वपूर्ण माना जाता हैद्य जिससे छात्रों की सोचने की क्षमता, सामर्थ्य विकसित होती है।

प्रौद्योगिकी संचार माध्यम (Technology & Mediated Learning): आधुनिक शिक्षा में तकनीक का प्रयोग शिक्षा को रोचक, संवेदनशील और प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण होता है। इसमें इंटरनेट, डिजिटल साधनों, स्मार्ट कक्षा सामग्री आदि शामिल हो सकते हैं।

निर्देशित स्वयं सीखना (Guided Self & Learning): इस विधि में छात्रों को स्वयं सीखने के लिए मार्गदर्शन और समर्थन प्रदान किया जाता है, जिससे उन्हें अपनी शिक्षा को स्वतंत्रता से निर्माण करने का अवसर मिलता है।

ये विधियाँ शिक्षा को संबोधनशील, रोचक और प्रभावी बनाने में मदद करती हैं, जिससे छात्र अधिक सकारात्मक और सामर्थ्यवान बन सकते हैं।

गुरु–शिष्य संबंध: यह संबंध विभिन्न क्षेत्रों में संदेहरहित और विशेषज्ञता प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है। गुरु की मेंटरशिप और शिष्य का समर्थन आधुनिक समय में भी जीवन को मार्गदर्शन, प्रेरणा और सहयोग प्रदान करता है। विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कि व्यवसाय, विज्ञान, कला, साहित्य आदि में गुरु–शिष्य संबंध अभिवृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हैं। एक अच्छा गुरु शिष्य को अपने क्षेत्र में सफलता के मार्ग पर ले जाने में मदद करता है, जबकि शिष्य गुरु के अनुभव, ज्ञान और दिशा में विश्वास रखता है। आधुनिक समय में इंटरनेट और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स की मदद से गुरु–शिष्य संबंध भी बदल रहे हैं। वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, ऑनलाइन कक्षाएं और डिजिटल शिक्षा के माध्यम से भी गुरु–शिष्य संबंध विकसित किए जा रहे हैं। यह आधुनिकता गुरु–शिष्य संबंध को व्यापक और सुगम बनाती है, खासकर उन लोगों के लिए जो भौतिक अलगाव के कारण संपर्क में नहीं हो सकते। इसी तरह आधुनिक समय में गुरु–शिष्य संबंध न केवल शिक्षा और व्यावसायिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये धार्मिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक संबंधों में भी आधारभूत भूमिका निभाते हैं। एक सजीव और संवेदनशील गुरु–शिष्य संबंध समाज की सामर्थ्य, एकता और सामर्थिकता को बढ़ावा देते हैं।

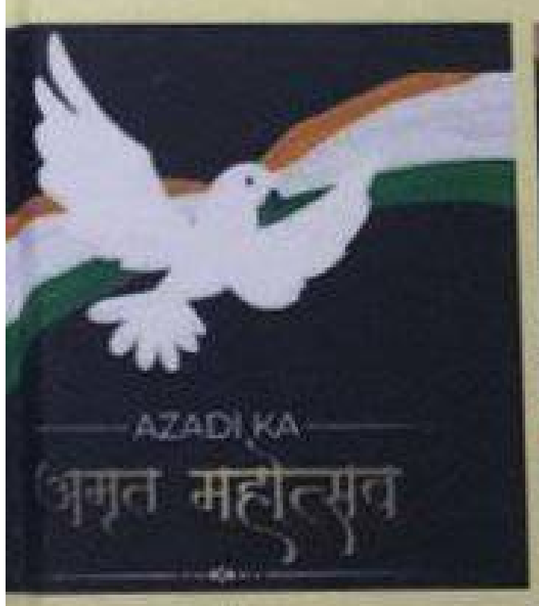
निष्कर्ष– भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक शिक्षा का संघर्ष बहुत सम्पन्न और गहरा है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में हमें गुरु–शिष्य परंपरा का महत्व देखने को मिलता है, जहां गुरु शिष्य को ज्ञान के आदान–प्रदान के माध्यम से नहीं सिखाते हैं बल्कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सशक्त बनाने का प्रयास करते हैं। इसमें ध्यान, तपस्या और आध्यात्मिकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का उपयोग, शैक्षिक प्रौद्योगिकियों का विकास और ग्लोबल संवाद में शामिल होने की क्षमता का संवर्धन किया जाता है। आधुनिक शिक्षा तकनीकी, वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति पर आधारित है। यह विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अनुसंधान और उत्पादन को बढ़ावा देता है। इसमें परीक्षाओं, प्रोजेक्ट्स और अन्य मानकों के माध्यम से छात्रों को मापा जाता है, जिससे उनकी प्रगति को निरंतर ट्रैक किया जा सकता है। विद्यार्थी अपने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत का सम्मान करते हुए वे आधुनिकता और विज्ञान के क्षेत्र में भी सशक्त बन सकते हैं। दोनों प्रणालियों में संगठित और उत्कृष्टता की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि और आधुनिक शिक्षा की विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अनुसंधान में महत्वपूर्ण योगदान को जोड़कर, हम एक समृद्ध और समावेशी शिक्षा प्रणाली को विकसित कर सकते हैं जो छात्रों को समृद्ध अनुभव, विचारशीलता और नैतिकता से युक्त करेगी। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक शिक्षा को संगठित रूप में मिलाकर, हम विश्व के शिक्षा क्षेत्र में एक सुगम संधि स्थापित कर सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

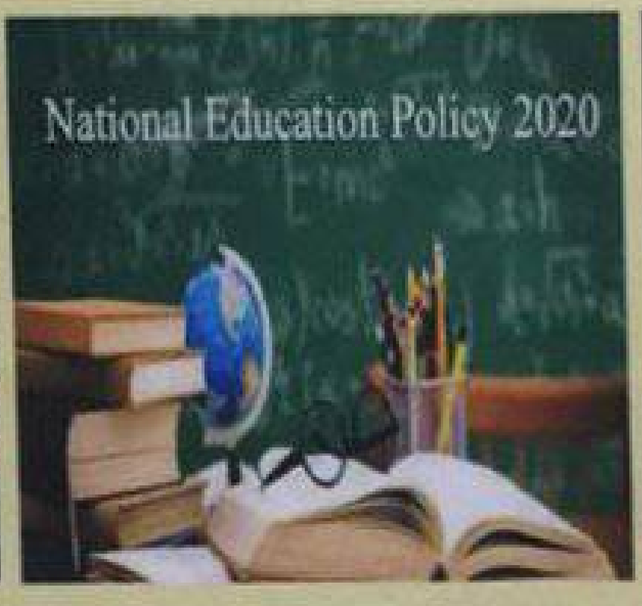
PUBLIC ADMINISTRATION

at the 75th Year of Independence Changes and Challenges

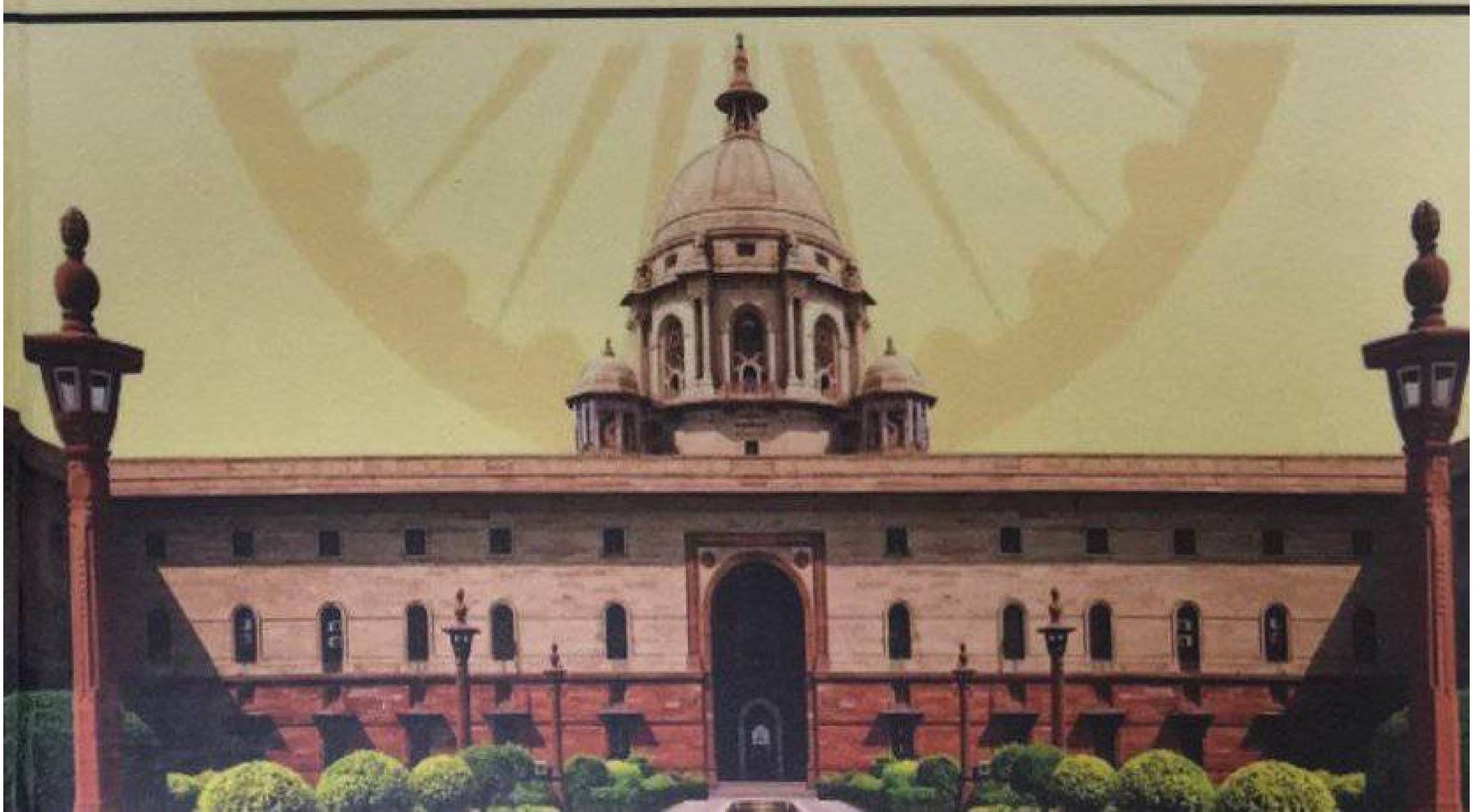
Prof. Janak Singh Meena
Dr. Avanika Gupta











The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusions reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of the author(s). Neither the publisher nor the editors will be responsible for them whatever.

ISBN : 978-81-19708-05-5

Copyright : Editors
Edition : 2024

Published by

ABS Books
Publisher and Exporter
B-21, Ved and Shiv Colony, Budh Vihar
Phase-2, Delhi - 110086
✆ : +919999868875, +919999862475
✉ : absbooksindia@gmail.com
Website : www.absbooksindia.com

PRINTED AT
Trident Enterprise, Noida (UP)

Overseas Branches

ABS Books
Publisher and Exporter
Yucai Garden, Yuhua Yuxiu Community, Chenggong District, Kunming City, Yunnan Province -650500 China

ABS Books
Publisher and Exporter
Microregion Alamedin-1
59-10 Bishek, Kyrgyz Republic- 720083
kyrgyzstan

All rights reserved. Unauthorized reproduction, distribution, or transmission of any part of this publication, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording, or otherwise, is strictly prohibited without prior written permission from the copyright holder. Requests for permission should be addressed to the Editor. We strongly discourage involvement in piracy or infringement of copyrighted materials, as it undermines the author's rights. Please support the protection of intellectual property by only obtaining authorized editions.

Public Administration at the 75th Year of Independence Changes and Challenges

By : *Prof. Janak Singh Meena & Dr. Avanika Gupta*

Contents

Preface

1. **Introduction** 1

   Prof. (Dr.) Janak Singh Meena & Dr. Avanika Gupta

2. **Indian Civil Services: Challenges and Lessons From Covid-19 Pandemic** 6

   Amit Patel & Dr. S. Kandasamy

3. **An Analysis of Different Administrative Dimensions of Chola Empire** 12

   Anjali Bhadana

4. **Understanding Administrative Culture in the Discourse of An Administration-in-Exile: Central Tibetan Administration (CTA), Dharamshala** 21

   Anshuman Ankit

5. **Deaf Education in India: Perspective Change for Making Education Inclusive in True Sense** 37

   Avanika Gupta

6. **Brief Analysis of Vertical Hierarchization by Dissecting the Barefoot College Model** 49

   Ayushi Nimawat & Kshipra Hada

7. **Public Service Delivery in Primary Health Care of Haryana** 60

   Bhupender Singh & Mahender Singh

8. **Public Service Delivery: An Assessment of the Public Distribution System in the Kalahandi District of Odisha** 74
Bijaya Ku. Behera

9. **Citizen Engagement in Public Service Delivery in Jammu and Kashmir: An Assessment of its Work and Limitations** 89
Bilal Ahmad Bhat

10. **Implications of Changing Relations Between Civil Servants and Politicians in India** 99
Dr. Babasaheb Mundhe

11. **E-Governance in India: Opportunities and Challenges**
Dr. Jyoti Arora 110

12. **Impact of E- Governance on Public Services Delivery in Haryana: A Critical Study**
Dr. Jyoti 122

13. **Examining National Education Policy 2020 in Infusing Human Values Apropos Transparent Civil Society**
Dr. Lipi Jain 140

14. **Administrative Reforms in India: A Contextual Analysis of Sixth Report of Second ARC**
Dr. Sushil Kamble 154

15. **Democratic Decentralisation and Good Governance in the Context of Indian Urban Local Bodies: The Present Status**
Dr. Neelima Deshmukh 160

16. **Role of Local Authority in Public Administration**
Dr. Vidya Shaktawat 168

17. **Role of Indian Local Bodies in Public Administration**
Sakshi Kalyanwat 177



Prof. Janak Singh Meena is presently Professor and Head, Department of Gandhian Thought and Peace Studies, Central University of Gujarat since April 2023. Before that, Prof. Meena has served in the Department of Political Science, Jai Narain Vyas University, Jodhpur, Rajasthan. He has earned a gold medal in Journalism (Bachelor of Journalism) from VMOU, Kota.

He did M.A. (Political Science, Public Administration, Sociology & Journalism), NET-JRF, Ph. D. from University of Rajasthan and D.Litt. from JNV University Jodhpur. Prof. Meena has 15 years teaching and research experience. He has published 34 books, more than 150 papers and articles in international and national journals, magazines and newspapers. He has been awarded more than a dozen National and International awards. Presently, he is President of New Public Administration Society of India (NEPASI). In addition, he has served as Director, Aadiwasi Study Centre; Proctor, K.N. College for Women; Coordinator, IQAC, Institute of Evening Studies JNVU Jodhpur.



Dr. Avanika Gupta has Ph.D. in Disability Studies from National Law University, Nagpur. She did her M.A. in Political Science from Rashtrasant Tukdoji Maharaj Nagpur University. She was awarded UGC Junior Research Fellowship (JRF) and received gold medal in subjects History and Political Science from RTM Nagpur University. She was also recipient of University's Best Student Award. Dr. Gupta has teaching experience of around two years at post-graduate and graduate level. She was recipient of the Best Presentation Award in the 4th World Disability and Rehabilitation Conference (WDRC) at Bangkok, Thailand in November 2019. She has published research papers in various international and national journals. Her passion lies in the realm of research as she wants to make a difference in the field of Deaf Education by promoting Indian Sign Language (ISL) and making our society more inclusive and supportive.

ABS Books

Education is Most Powerful Weapon

Delhi (India), China, Kyrgyzstan

₹ 1195

ISBN 978-81-19708-05-5

$ 49

www.abcbooksindia.com





भारतीय लोकतंत्र एवं राजनीति

डॉ. लिपि जैन

भारतीय लोकतंत्र एवं राजनीति

लेखक : डॉ. लिपि जैन

कॉपीराइट : जैन विश्वभारती संस्थान

प्रथम संस्करण: 2023

ISBN : : 978-93-83634-82-8

मूल्य : 250/–

प्रकाशक : जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूँ – 341306 (राजस्थान)

मुद्रक : के.के. पब्लिशर्स, दिल्ली

वर्तमान विश्व व्यवस्थाओं में भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक व्यवस्था वाला राष्ट्र माना जाता है साथ ही भारतीय लोकतंत्र आठवें दशक में भी प्रवेश कर चुका है। राष्ट्रीय आंदोलन के परिणाम स्वरूप भारत दासता से मुक्ति पाकर लोकतंत्र के रूप में उभरा और शासन सत्ता में भारतीयों की सहभागिता में अभिवृद्धि हुई । 1950 के दशक के पश्चात से लेकर वर्तमान तक भारत की लोकतांत्रिक पद्धति के स्वरूप में कुछ बदलाव आए हैं जिनका विवेचन इस पुस्तक में करने का प्रयास किया गया है । राष्ट्रीय आंदोलन की भारत में लोकतंत्र के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका रही है अतः राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न विकास क्रम को स्पष्ट करते हुए लोकतंत्र के दार्शनिक आधार एवं विविध आयाम भी पुस्तक की विषय वस्तु में समाहित किए गए हैं।

यह पुस्तक भारत के संविधान और विकास के साथ-साथ लोकतंत्र के विषय में है, जिसमें भारत की अनूठी और समृद्धि की ओर बढ़ती यात्रा को जानने का प्रयास किया गया है। यहां लोकतंत्र का महत्व और इसका इतिहास, साथ ही भारतीय समाज के विकास के साथ जुड़े मुद्दे और चुनौतियों का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। साथ ही, भारतीय संस्कृति और विविधता को बढ़ावा देने वाले कदमों की चर्चा भी की गई है, ताकि पाठक एक समृद्ध और सामरिक भारत की ओर बढ़ सकें। इस पुस्तक के माध्यम से हम भारत के समृद्धि और लोकतंत्र के अनगिनत पहलुओं को जानने का सुअवसर प्राप्त करेंगे जो इस अद्वितीय देश को विश्व समुद्र में अग्रणी बना रहा है।



डॉ. लिपि जैन

भारतीय दार्शनिक अवबोध को आत्मसात कर अपनी अनुसंधानपरक निष्पत्तियों की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में भावात्मक समीक्षा करने की सफल अभ्यासी, डॉ. लिपि जैन, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यायालय), लाडनूँ की सहायक आचार्या हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की नेट, जे. आर. एफ परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनंतर, अहिंसा के समग्र चिंतन की अध्येता एवं शोधार्थिनी के रूप में डॉ. जैन ने कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में अपने शोध पत्रों की सफल प्रस्तुति की है तथा पच्चीस शोध-आलेख एवं तीन पुस्तकें आप के नाम से प्रकाशित हैं। वर्ष 2019 में ज्ञानसागर साइंस फाउंडेशन द्वारा जैनिज्मः साइनंटिफिक फाउंडेशंस विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत आपके शोध पत्र की अकादमिक जगत में व्यापक सराहना हुई है। सम्प्रति अहिंसा प्रशिक्षण, शांतिपूर्ण संघर्ष निग्रह एवं सापेक्ष अर्थशास्त्र विषयों पर आपकी प्रस्तुतियाँ नवोन्मेषी चिंतन को प्रशस्त कर रही हैं।

Jain Vishva Bharati Institute
(Deemed to be University)
Ladnun-341306, Rajasthan
www.jvbi.ac.in
jvbladnun@gmail.com

978-93-83634-82-8



CONFLICT RESOLUTION AND PEACE TECHNOLOGY

Dr. Lipi Jain

Conflict Resolution and Peace Technology

Author	:	Dr. Lipi Jain
Publisher	:	Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun - 341 306 (Rajasthan)

Copyright	:	Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun - 341 306 (Rajasthan)

ISBN	:	978-93-83634-81-1
Edition	:	2023
Rs.	:	250/-
Printed by	:	KK Publications 4806/24, Bharat Ram Road Daryaganj, New Delhi- 110 002

The book by Dr. Lipi Jain covers almost every possible dimension of conflict resolution and peace in theoretical framework and encapsulates the practical and applied aspects also. The book discusses the philosophical foundations, global viability, contemporary movements and current perspective of peace. The book by Dr. Lipi Jain enriches the list of Must Read works on conflicts, disputes, movements, security and peace. The author has done commendable academic work in this area. She needs to be congratulated for this very useful, highly insightful, greatly analytical, and profusely enlightening research publication.

Prof. Sanjeev Kumar Sharma
Former Vice-Chancellor
Central University of Bihar, Motihari

An interesting and comprehensive text ... covering major aspects of conflict resolution, opening new vistas of research. A useful contribution in the field of peace studies.

Prof. Naresh Dadhich
Former Vice-Chancellor
VMOU, Kota, Rajasthan



Dr. Lipi Jain, a successful practitioner of assimilating Indian philosophical thoughts and critically reviewing her research findings in the theoretical background, is an Assistant Professor in the Department of Non-violence and Peace, Jain Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun. She, after passing the University Grants Commission's NET, J. R. F Exam, established herself as a scholar and researcher of holistic thinking of non-violence. Dr. Jain has successfully presented her research papers in many national and international seminars. Twenty-five research articles and three books have been published in her name. Her research paper presented in the International Seminar on Jainism: Scientific Foundations organized by Gyansagar Science Foundation in the year 2019 has been widely appreciated in the academic world. Her presentations on the topics of Training of non-violence, peaceful conflict resolution and relative economics are paving the way for innovative thinking.

Jain Vishva Bharati Institute
(Deemed to be University)
Ladnun-341306, Rajasthan
www.jvbi.ac.in
jvbladnun@gmail.com

978-93-83634-81-1

ISBN No. : 978-93-83240

राष्ट्रीय संगोष्ठी

7-8 अक्टूबर 2023

21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, सम्भावनाएँ एवं चुनौतियाँ



आयोजक :

मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज

लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

एन.सी.टी.ई. द्वारा मान्यता प्राप्त एवं पं. दी. उपा. शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर से सम्बद्धता प्राप्त

गोयनका शिक्षा शोध संस्थान

सीकर-लक्ष्मणगढ़ रोड़, नेशनल हाईवे 52, घरस्सू, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) 332315

फोन नं. : 01573- 232863, 8233096507

● Email : bedcollege@goenka.ac.in ● Web. : www.goenka.ac.in





Divine Couple

प्रेरणा स्रोत, प्रातः स्मरणीय पूज्यनीय माँ

श्रीमती मोहिनी देवी एवं सेठ श्री लाल जी गोयनका

ISBN No. : 978-93-83240 Smarika Goyanka College-2024

राष्ट्रीय संगोष्ठी

7-8 अक्टूबर 2023

21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, सम्भावनाएं एवं चुनौतियाँ

आयोजक

मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज

लक्ष्मणगढ़ (सीकर)



सत्यमेव जयते

Kalraj Mishra
Governor, Rajasthan

कलराज मिश्र
राज्यपाल, राजस्थान

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज द्वारा '21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, संभावनाएं एवं चुनौतियां' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की जा रही है।

शिक्षा जीवन को गढती है। बालिका शिक्षा से ही समाजोत्थान को सही मायने में गति दी जा सकती है। सुखद है शिक्षा के भारतीकरण के आलोक में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएं हैं।

कलराज मिश्र
(कलराज मिश्र)

राज भवन, सिविल लाइन्स, जयपुर–302006
Raj Bhawan, Civil Lines, Jaipur-302006
दूरभाष : 0141–2228716–19, 2228611–12, 2228722

आचार्य (डॉ.) अनिल कुमार राय
कुलपति

Professor (Dr.) Anil Kumar Rai
Vice-Chancellor

पंडित दीनदयाल उपाध्याय
शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.)
Pandit Deendayal Upadhyaya
Shekhawati University, Sikar (Raj.)
वेबसाईट : http://www.shekhauni.ac.in/
ई-मेल : vc.shekhauni@gmail.com
दूरभाष नं. : +91-92573-87478, 01572-232411



मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपके महाविद्यालय में दिनांक 07 व 08 अक्टूबर 2023 को "21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, सम्भावनाएं एवं चुनौतियाँ" जैसे महत्वपूर्ण विषय पर राष्ट्रीय संगोष्टी का आयोजन किया जा रहा है। मुझे आशा है कि इस संगोष्टी में विषय के सभी पक्षों पर श्रेष्ठ संवाद होगा।

मैं इस संगोष्टी की सफलता की कामना करता हूँ।

23/01/2024

आचार्य (डॉ0) अनिल कुमार राय
कुलपति
पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी
विश्वविद्यालय सीकर (राजस्थान)

ISBN No. : 978-93-83240 Smarika Goyanka College-2024

शुभकामना संदेश



एस. एस. गोयनका
चेयरमैन
गोयनका शोध एवं शिक्षा संस्थान,
लक्ष्मणगढ़

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मोहिनीदेवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज घस्सू, लक्ष्मणगढ, सीकर में दिनांक 07 व 08 अक्टूबर 2023 को "21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, संभावनाएं एवं चुनौतियां" विषय पर राष्ट्रीय संगोष्टी का आयोजन किया जा रहा है। मुझे आशा है कि इस संगोष्टी में विषय के सभी पक्षों पर श्रेष्ठ संवाद होगा।

(एस.एस. गोयनका)

शुभकामना संदेश



डॉ. राकेश कुमार
प्राचार्य
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स कॉलेज
बी.एड. कॉलेज, लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

आपको सूचित करते हुए परम हर्ष हो रहा है कि हमारे महाविद्यालय में दिनांक 07 व 08 अक्टूबर 2023 को "21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकता, संभावनाएं एवं चुनौतियाँ", जैसे महत्वपूर्ण विषय पर राष्ट्रीय संगोष्टी का आयोजन किया जा रहा है। इस प्रकार की संगोष्टियों से देश में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श का अवसर मिलता है। मुझे आशा है कि इस संगोष्टी में विषय के सभी पक्षों पर श्रेष्ठ संवाद होगा।

मैं संगोष्टी की सफलता की कामना करता हूँ।



(डॉ. राकेश कुमार)

INDEX

Research Paper

S. No	Name of Cadidate	Title	Pg No.
1	Anita	शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिपेक्ष्य एवं विकल्प	1-6
2	Dr. Deepak Parashar	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाए	7-10
3	Dr. Harpreet Kaur	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता।	11-16
4	Dr. Indira Kumari	शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम	17-21
5	Dr. Madhu Gadhwal	शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु गुणवतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी	22-29
6	Dr.Mamta Pareek /Dr. Mosam Pareek	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं	30-34
7	Dr. Narendra Singh	शिक्षण व्यवसाय में दक्षता और गुणवत्ता	35-37
8	Dr. Narendra Singh Shekhawat / Dr. Archana Mendirata	भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवनदृश्टि	38-42
9	Dr. Parveen Sharma	उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन	43-49
10	Dr. Rakesh Kumar	शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम एवं भारतीय संदर्भ	50-55
11	Dr. Ramawatar Godara	कुशल प्रतिबद्ध एवं भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से जुड़े शिक्षकों की तैयारी सुनिश्चित करना	56-60
12	Dr. Sahab Ram	21वीं सदी में अध्यापक के समक्ष 21 चुनौतिया	61-64
13	Dr. Rakesh Kumar Badasara	शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा का कालक्रमिक विकास	65-67
14	Dr. Satyveer Singh	शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम	68-70
15	Dr. Shikha Paliwal/Dr. Nikita Tiwari	शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण	71-75
16	Dr. Subhash chandra Saini	भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि	76-81
17	Dr. Sunita Sharma	शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृश्टिकोण	82-86
18	Dr. B.L. Jain / Dr. Amita Jain	21 **वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता एवं संभावनाएँ**	87-91
19	Dr. Bhuvendra Singh	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एव शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता	92-96
20	Dr. Gajendra Singh Shekhawat	शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण	97-100
21	Kalyan Singh	21वीं शताब्दी में शिक्षा की चुनौतियां	101-105
22	Rachna	''माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा, कैरियर संबंधी निर्णय और समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन''	106-114
23	Kartar Singh/ Vikas Kumar	''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''	115-119
24	Dr. J.P Karwasara / Mrs. Bablesh	प्राचीन भारतीय शिक्षा और वर्तमान शिक्षा : एक दृष्टि एवं सुझाव	120-123
25	lalita Rani	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोग।	124-128
26	Mrs. Mamta Sharma	शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम	129-133
27	Manisha Joshi	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाए	134-138
28	Menka Jhakar	नई शिक्षा नीति 2020 : एक शैक्षणिक नवाचार	139-142
29	Mukesh Sharma / Dr. Alpana Sharma	शिक्षक शिक्षा में संपूर्ण गुणात्मक प्रबंध	143-146

30	Miss. Neetu Shekhawat	भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन दृष्टि	147-152
31	Neha Sharma	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता	153-157
32	Preeti Kumari	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता	158-161
33	Rachna Tailor / Dr. Yashwanti Gour	भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवनदृश्टि	162-167
34	Rajesh Kumar Sharma	भारतीय मनोविज्ञान के सदंर्भ में	168-172
35	Dr. Santosh Dhaka / Dr. Kripashankar Sharma	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	173-176
36	Saroj Yogi/Dr. Chandan Saharan	भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवन दृष्टि एवं स्त्री शिक्षा	177-181
37	Shakuntala Jangir/ Dr.Poonam	शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम	182-185
38	Sharda Kumari/Dr. Suraj Sharma	शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं विकल्प	186-191
39	Shiv Kumar Saran	भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि	192-195
40	Sumitra Sharma	''शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियॉ एवं संभावनाऐं''	196-199
41	Surendra Pareek	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता	205-208
42	Sushila Khyaliya	कुशल, प्रतिबद्ध एवं भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से जुड़े शिक्षकों की तैयारी सुनिश्चित करना	209-213
43	Dr.Anjana Agarwal	Changing context of teacher education in the Indian scenario	214-218
44	Dr. Rajendra Shrimali/Dr. Priyanka Shrimali	National Education Policy 2020 & Teacher Education (Implementation, Problems and Solutions)	219-223
45	Dr. Ruchika Singla/Anchal Jangu	A Study of main Factors related to Existentialism in the Novel's of Anita Desai	224-228
46	Dr. Tara Saini	शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम	229-233
47	Mrs. Kamla	अध्यापक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु विशिष्टतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी	234-241
48	Dr. Ekta Pareek	Indian Concept of Educational Psychology and usefullness of Teacher Education	242-246
49	Dr. Manish Saini	Basis of Indian Education – Indian way of Life	247-249

Abstract

1	Dr. Kashmir Singh	The Barriers for Early Childhood Care And Education in the implementation of National Education Policy 2020	250
2	Dr. Prahlad Soni	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ	251-255
3	Dr. Gayatri Kumari	शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम	256-258
4	Dr. B.L Saini	शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं	259
5	Dr. Himanshu gangwar/ Mithilesh	आधुनिकीकरण में शिक्षक शिक्षा : समस्यायें एवं समाधान	260-264
6	Dr. Karni ram Bijarania	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा मे उपयोगिता	265-266
7	Dr.Mahendra Singh	21वीं सदी में भावी शिक्षकों से अपेक्षाएँ	267-268
8	Dr. Naveen Kumar	शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण	269-271
9	Dr. Pushplata Sharma	भारत में शिक्षक शिक्षा की चुनौतियां व सम्भावनाएं	272-273
10	Dr. Rita Jhajhria	शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवम ् शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता	274-277
11	Mrs. Indra Kumari	शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया और भारतीय दृष्टिकोण	278
12	kapil Upadhaya/Dr. Bindu Kumari	बी एड प्रशिक्षणार्थियों की कार्य शैली का उनकी शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना	279-281
13	Dr. Mahesh Kumar Sharma	परम्परा एवं परिवर्तन के परिपेक्ष्य में सीखने की प्रक्रिया का अध्यापन एवं अधिगम में स्थानान्तरण	282-283
14	Meenakshi Sulodia	भारतीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में एन ई.पी.2020 का क्रियान्वयन	284-286
15	Mrs. Nisha Siyag	स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक दर्शन की वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रद्धति में उपयोगिता :– एक अध्ययन	287-291
16	Dr. Rajendra Kumar bagaria	भारतीय शिक्षा का आधार –भारतीय जीवनदृश्टि	292-293
17	Dr. Himakshi Vedi	**शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं उपयोगिता**	294-295
18	Rajneesh Swami	अध्यापक शिक्षा की अवधारणा एवं वर्तमान स्वरूप	296-299
19	Rajani Joshi	भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि	300-301
20	Rakesh Regar/Dr. Bindu Kumari	राजकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन	302-304
21	Dr. Shipra Gupta	**शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण**	305-310
22	Vijay Kumar Meena	भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि	311-313
23	Virendra Kumar Tripathi	शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण	314
24	Yogendra Rawal/Dr. Bindu Kumari	उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के समायोजन एवं मानसिक स्वास्थ्य में सह संबंध का अध्ययन करना	315-317
25	Prakash Ram	शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृश्टिकोण	318-319
26	Dr. Suman Sharma	भारतीय जीवन दृष्टि	320-321
27	Dr. Anoop Sharma	भारतीय शिक्षा का अधिकार – भारतीय जीवन दृष्टि	322-325
28	Dr. Kalpana	21वीं सदी में भावी शिक्षकों से अपेक्षाएं	326-327
29	Dr. Rekha Sharma	''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''	328
30	Dr. Sanjay/ Satyveer Singh	शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु गुणवतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी	329-340
31	Sudhira Choudhary/Dr. Sushma Singh	शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिपेक्ष्य एवं विकल्प	341-344
32	Dr. Sushila mahria	भारतीय शिक्षाका आधार : भारतीय जीवनदृश्टि	345

शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिपेक्ष्य एवं विकल्प

अनिता (शोधार्थी)
महर्षि दयानन्द सरस्वती
विश्वविद्यालय, अजमेर
मेल आईडी –nainkwalanita23@gmail.com

सार

शिक्षा में लगातार हो रहे नवाचारों ने शिक्षकों की शिक्षा व्यवस्था में भूमिका को बदल कर रख दिया है। शिक्षकों की चिरपरिचित "गुरु" की पहचान धूमिल सी होती जा रही है। गुरु से वेतन भोगी शिक्षक और अब सुविधाप्रदाता, सहजकर्ता, फैसिलिटेटर और ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में सहयोगी जैसी शब्दावलियां प्रचलित हो गयी है। एक शिक्षक होने के नाते यह बदलाव अकसर हमारे लिए चिंता का विषय बन जाता है। सवाल यह है कि हमें क्या करना चाहिए? क्या इन बदलावों को बिना सोचे समझे ऐसे ही स्वीकार कर लिया जाये? क्या इन बदलावों को किसी खास वर्ग/राष्ट्र की साजिश मानते हुए इसका कठोर प्रतिकार किया जाये? या इन बदलावों के पीछे के वैज्ञानिक/मनोवैज्ञानिक/सामाजिक/दार्शनिक आधारों को समझते हुए स्वयं को नयी भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाये?

मानव सभ्यता के विकास के विभिन्न काल खंडों में सीखना–सिखाना किसी न किसी रुप में होता रहा है यह शिक्षा के सायास प्रयास के रुप में कब तब्दील हुआ इसका कोई ठीक–ठीक प्रमाण नही मिलता। ऐतिहासिक काल खंडों पर नजर दौडायेतो पता चलता है कि शिक्षा का कर्म और उसके उद्देश्य हमेशा एक जैसे नही रहे हैं। हमेशा से ही तात्कालिक समाज की आश्यकताओं एवं प्रारुपों ने शिक्षा और उसकी जरुरतों को अपने अनुरुप गढने की कोशिश की है। प्राचीन भारत में शिक्षा के अवसर सीमित थे। यह कुछ खास वर्गों/परिवारों तक ही उपलब्ध थी। इस शिक्षा का उद्देश्य भी अत्यन्त संकुचित था। नीतिशास्त्र (राज्य संचालन हेतु आवश्यक), युद्ध कौशल, अर्थशास्त्र की शिक्षा प्रमुख रुप से दी जानती थी। विभिन्न समुदायों के परम्परागत व्यवसाय/कला और कौशलों को अगली पीढी में हस्तान्तरित करने की व्यवस्था समुदाय/परिवार स्वयं करता था। शिक्षा की प्रक्रिया में किताबों का स्थान नगण्य था। शिक्षा मौखिक विधा पर आधारित थी। गुरु जो कुछ भी बोलता था शिष्य को वह वैसे ही कंठस्थ करना पडता था। मंत्रों आदि के बार–बार रटने पर जोर दिया जाता था। किताबों का मुद्रण और उपलब्धता न होने की वजह से ज्ञान के लिए गुरु ही एक मात्र सहारा (ज्ञान का श्रोत) था। राज्य गुरुओं के भरण पोषण की जिम्मेवारी उठाता था लेकिन विद्यार्थीयों को क्या सिखाना है, कैसे सिखाना है, कितने समय में सिखाना है आदि विषयों में राज्य का कोई सीधा हस्तक्षेप नही होता था। शिक्षक/गुरु राज्य का वेतनभोगी कर्मचारी न होकर ज्ञान के साधक के रुप में कार्य करता था। गुरु का जीवन अत्यन्त ही सामान्य एवं भौतिक सुख सुविधाओं से परे था।

मध्यकाल आते–आते शिक्षा समुदाय आधारित कर्म न रहकर धर्म आधारित कर्म बन गयी। शिक्षा के मुख्य केन्द्र चर्च, मठ, आश्रम आदि हो गये। धर्म का प्रचार प्रसार एवं धर्मिक मूल्यों के जरिये सामाजिक क्रियाशीलता को बनाये रखना शिक्षा के केन्द्र में दिखने लगा। मोक्ष की प्राप्ति विद्याध्ययन का मुख्य उद्देश्य बन गया। शिक्षा ग्रहण करने के लिए जिन कठोर नियमों और व्यवहारों की पालना करनी पडती थी उसने एक बडे वर्ग को इस दौर में भी शिक्षा से दूर रखा। धार्मिक अनुष्ठानों, कर्मकांडों आदि की शिक्षा प्रमुखता से प्रदान की जाती थी। कुछ संस्थानों की स्थापना उच्च शिक्षा केन्द्रों के रुप में हुई जिसमें धर्म दर्शन एवं राजनीतिशास्त्र जैसे विषय भी शामिल किये गये। यहाँ भी शिक्षकों/गुरुओं का जीवन अत्यन्त साधरण एवं कठोर धार्मिक प्रतिबद्धताओं को पालन करने वाला होता था। गुरु स्वाध्याय एवं कठोर तप द्वारा ज्ञान का अर्जन करता था। गुरुओं को राज्यों का संरक्षण अवश्य प्राप्त था परन्तु राज्य का कोई औपचारिक हस्तक्षेप शिक्षा की प्रक्रियाओं में नही दिखता है।

भारत के ब्रिटिश उपनिवेश बनने से पहले यदि शिक्षा के उद्देश्यों, प्रक्रियाओं एवं शिक्षा के तौर तरीको को देखें तो पता चलता है कि शिक्षा और शिक्षण का कर्म अपने विभिन्न स्वरुपों में मौजूद तो था परन्तु उसका कोई व्यवस्थित सर्वसुलभ औपचारिक ढांचा नही दिखता है। ब्रिटिश पूर्व शिक्षा के बारे कुछ सामान्य बातें कहीं जा सकती हैं–

- ❖ शिक्षा भले ही सबके लिए उपलब्ध रही हो लेकिन उस तक सभी की पहुँच नही थी न ही उसे सभी तक पहुँचाने का कोई सायास प्रयास राज्य या समुदाय द्वारा किया गया था।
- ❖ शिक्षण व्यवस्था में गुरु ही ज्ञान का श्रोत होता था, पुस्तको की भूमिका नगण्य थी।
- ❖ विद्याध्ययन का लक्ष्य प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी न होकर जीवन की तैयारी/मोक्ष की प्राप्ति था।
- ❖ शिक्षण प्रक्रिया में रटने और बार–बार अभ्यास करने को महत्व दिया जाता था। गुरु ज्ञान प्रदाता और शिष्य अर्जक होता था।
- ❖ गुरु राज्य का वेतन भोगी कार्मिक न होकर स्वैच्छिक ज्ञान दाता के रुप में समाज सेवा के उद्देश्य से शिक्षण कर्म करता था।

ब्रिटिश औपनिवेश की जडें जैसे–जैसे भारत में फैलती गयी वैसे–वैसे शासक वर्ग ने कार्य संचालन की नयी आश्यकताओं को जन्म दिया। ब्रिटिश कम्पनी के अधीन भारत में औपचारिक और लिखित कानूनों का आना, अदालतों एवं पुलिस की व्यवस्था, समाज में विभिन्न प्रकार के कामों का उदय, अलग तरह की कर प्रणाली और उसको लागू करने के लिए ढांचों का विकास आदि ऐसी प्रक्रियाऐं थीं जिसने एक खास तरह के कार्मिकों की मांग पैदा की। यह मांग ऐसे आज्ञाकारी नागरिक तैयार करने की थी जो ब्रिटिश कानूनों और प्रक्रियाओं के प्रति वफादार हो, जो कम्पनी के कामों और उसके आदेशों को शिद्दत से लागू करने में अपनी भूमिका निभा सके और शासन संचालन में सहयोगी हों। इस आश्यकता ने शिक्षा का नियोजन भी इन्ही उद्देश्यों के इर्द गिर्द किया। इस काल ख ड में पहली बार राज्य द्वारा शिक्षा के लिए सायास और संगठित प्रयास शुरु किये गये शिक्षा के लिए वित्त का निर्धारण, संस्थानों की स्थापना, शिक्षकों की नियुक्तियां आदि के साथ ही साथ भारतीयों को कैसी और किस माध्यम से शिक्षा दी जाय इसकी बहस शुरु हुई। राज्य का दखल शिक्षा में औपचारिक एवं संस्थागत रुप से बढ गया। ऐसे में शिक्षक समाज से ज्यादा राज्य के प्रति उत्तरदायी हो गया। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कठोर और समयबद्ध परीक्षा प्रणाली, फेल–पास जैसी व्यवस्था, कालांश, निरीक्षण एवं अनुश्रवण की व्यवस्था बहुत कुछ इसी समय की देन है।

आजादी के बाद जब भारतीय संविधान लागू हुआ तो उसमें एक खास तरह के समाज को बनाने और और उसके लिए नागरिकों को तैयार करने की संकल्पना रखी गयी। यह संकल्पना न्याय, समता, पंथनिरपेक्षता, भाइचारा जैसे संवैधानिक मूल्यों वाले समाज की थी। शिक्षा का उद्देश्य ऐसे विचारवान नागरिक (Critical Thinker) तैयार करना हो गया जो इस तरह के समाज में सक्रिय भूमिका (Active Citizen) का निर्वहन कर सके। भारतीय संविधान ने आगे चलकर देश के सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया तथा सरकार को वैधानिक रुप से 6 से 14 वर्ष के बालकों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए बाध्य किया। आजादी के बाद भले ही एक लम्बा समय इस बात को कानूनी मान्यता प्रदान करने में लग गया लेकिन इस निर्णय ने हमारे स्कूलों की तस्वीर को बदल के रख दिया। ऐसा नही है कि इसके पहले सभी वर्गों के बच्चे स्कूल नही आ रहे थे लेकिन इस वैधानिक अनिवार्यता के चलते इस बात के सायास और गम्भीर प्रयास किये जाने लगे कि वंचित तबके के बच्चों को स्कूलों से जोडा जाय। इन प्रयासों से हमारे कक्षा–कक्ष में विविध जाति वर्ग के बच्चों की भरमार हो गयी। इसमें से अधिसंख्य बच्चे ऐसे हैं जिनकी पहली पीढी स्कूल आ रही है या जिनके माता–पिता पहली दूसरी कक्षा तक ही पढे लिखे हैं। वर्तमान में हमारी कक्षाओं का ये स्वरुप यह सवाल खड़ा करती हैं कि–

- ❖ एक ऐसी कक्षा जहाँ विभिन्न धर्मों, जातियों और आयवर्ग से आने वाले बच्चे हो एक शिक्षक से किस प्रकार के आचार व्यवहार की मांग करती है ?
- ❖ एक ऐसी कक्षा में शिक्षकों की क्या भूमिका हो जहाँ ऐसे परिवार से बच्चे आते हों जिन परिवारों की प्राथमिकता शिक्षा के बजाये जीविका चलाना हो ?
- ❖ ऐसी कक्षा जिसमें ऐसे बच्चे शामिल हों जिनके परिवार आजिविका के लिए एक जगह से दूसरी जगह हमेशा या थोडे समय के लिए पलायन करते हैं, किस तरह की शैक्षणिक प्रक्रिया और ढांचे की मांग करती है ?

- ❖ क्या इन परिस्थितियों में वैसे ही शिक्षकों की आवश्यकता है जैसे प्राचीनकाल, मध्यकाल या आजादी से पूर्व थी ? उपरोक्त सवालों से ज्यादा मौजूं सवाल यह है कि एक शिक्षक होने के नाते हम पहले से भिन्न इस परिस्थिति में कार्य करने के लिए स्वयं में बदलाव लाने को तैयार हैं या नही ? यदि नहीं तो इस सरकारी व्यवस्था में हमारे होने का मतलब क्या है ?

अब जरा अपने कक्षा के बच्चों की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से इतर नजर उनके बचपन पर डालते हैं। पिछले कुछ वर्षों में न जाने कहाँ से हमारे दिमाग में इस बात ने पैठ बना ली है कि यदि बच्चों का भविष्य बेहतर बनाना है तो छोटी उम्र से ही उनको कठिन परिश्रम के लिए तैयार किया जाना चाहिए। मध्यम वर्गीय और निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों में इस समझ का ठीकरा बच्चों के उपर फूटता है 3 वर्ष तक होते होते बच्चा किसी न किसी स्कूल का हिस्सा हो जाता है। सरकारी स्कूलों में भले ही आयु की निर्धारित सीमा 6 वर्ष हो लेकिन वहां भी छोटे बच्चे विद्यालय में दिख ही जाते हैं। जिन स्कूलो में आंगनबाड़ी है वहां छोटे बच्चों का होना लाजमी है। बच्चों का कम उम्र में स्कूल में धकेल दिये जाने का एक प्रमुख कारण संयुक्त परिवार का विघटन भी है जिन परिवारों में पति पत्नी दोनों ही काम पर जाते हैं (नौकरी या मजदूरी) वे छोटे बच्चों को इस आशय से भी स्कूल छोड आते है या बडे बच्चों के साथ भेज देते हैं कि कम से कम वहां उनकी देख भाल हो जायेगी। वैसे भी अगर अपनी एक पीढी उपर के बारे में तुलनात्मक रुप से देखें तो पता चलता है कि पहले की तुलना में कम उम्र के बच्चे स्कूल आ रहे हैं, खेलने और बचपन जीने की उम्र में बच्चों को स्कूल में ढकेल दिया जा रहा है। सवाल ये है कि क्या शिक्षण की ऐसी प्रक्रियायें जो तुलनात्मक रुप से थोडी ज्यादा उम्र और थोडा ज्यादा परिपक्व दिमाग वाले बच्चों के लिए इस्तेमाल की जाती थी वही इन छोटी उम्र और सामाजिक रुप से कम परिपक्व बच्चों के साथ की जा सकती हैं? उदाहरण के तौर पर स्कूल में पढाई के घंटे, बैठक व्यवस्था, कठोर अनुशासन, पहले ही दिन से ही वर्णों और गिनतियों को लिखना पढना, अच्छे बच्चे की तरह व्यवहार (अच्छे बच्चे की परिभाषा या तो अस्पष्ट होती है या उसका मतलब ऐसे व्यहार से होता है जैसा वयस्क करते हैं) की अपेक्षा आदि।

संयुक्त परिवारों के विघटन ने एक और चुनौती को जन्म दिया है। जो बच्चे परिवार के सदस्यों (दादा–दादी, अन्य छोटे बडे भाई बहनों आदि) की देखभाल में बडे होते थे उनका भावनात्मक और संवेगात्मक पक्ष स्कूल आने से पहले तुलनात्मक रुप से अधिक परिपक्व होता था। अपने साथ के दूसरे बच्चों के साथ खेलने, उनके साथ अपनी बातों को साझा करने के अवसर अब सीमित हुए हैं जिसके चलते बच्चों के बचपन में एकाकीपन, कुंठायें पनप रही हैं। ऐसे में स्कूल बच्चों के लिए जरुरत से ज्यादा मजबूरी बनता जा रहा है। क्या ऐसा महसूस नही होता कि एकल परिवारों से आने वाले इन बच्चों के प्रति पहले के बच्चों की तुलना में ज्यादा संवेदनशील और लचीला होने की आवश्यकता है?

यदि हम अपने बचपन को याद करते हुए आज के बच्चों के बचपन से उसकी तुलना करें तो यह समझ में आता है कि आज का बचपन वैसा नही रहा जैसा हमारा बचपन था। पिछले कुछ वर्षों में आधुनिकता और तकनीकी ने अपना विस्तार किया है और गाँव तक विभिन्न रुपों में उसकी पहुँच बनी है। बाजार खुद चलकर गाँवों तक पहुँच रहा है। बिजली, टेलीविजन और मोबाइल की घरों के अन्दर पहुँच ने बच्चों के बचपन में आमूलचूल परिवर्तन किया है। आधुनिक खिलौनों और संचार यंत्रों ने बच्चों के संज्ञानात्मक स्वरुप को बदल दिया है। अब वो देश दुनिया के बारे में, भाषाई अनुभव के बारे में, कुछ खास तरह के कौशलों के बारें में पहले के बच्चों से भिन्न समझ के साथ स्कूल पहुँच रहे हैं। यहाँ सवाल यह उठता है कि यदि हमारे और हमारे बच्चों (हमारे स्कूल के बच्चे) के बचपन, उनकी परवरिश, उनके लिए उपलब्ध अवसरो (ज्ञान और दुनिया से जुडने) में इतनी सारी भिन्नतायें हैं तो उनको पढाने वाले शिक्षकों के कार्य व्यवहार में किस प्रकार के बदलाव की जरुरत है ?

हम में से अधिकांश शिक्षक अब इस बात से सहमत दिखते हैं कि बच्चें खाली घड़ा नही होते। बच्चें जब स्कूल आते हैं तो उनके पास अपने अनुभवों की एक दुनिया होती है। इस अनुभव में भाषा, गणित, विज्ञान सबके लक्षण विद्यमान होते हैं। बच्चों के बारे में हमारी समझ में आया यह बदलाव बहुत पुराना नही है। अभी भी समाज में बच्चों को अबोध, अज्ञानी, नासमझ, कच्चा घडा, कोरी स्लेट, सादा कागज जैसा समझा जाता है। हमारी समझ में आये इस बदलाव ने सीखने की तमाम पारम्परिक विधाओं को बदलने पर जोर देना शुरु किया है। मसलन बच्चों के साथ भाषा शिक्षण की शुरुआत वर्णों

से न करके सार्थक संदर्भों के साथ की जाये, गिनती गिनना 1, 2, 3 के बजाय ठोस वस्तुओ के साथ शुरु हो, रटने के बजाय समझने पर जोर दिया जाय..... आदि आदि।

आइये थोडा इस बात को समझने का प्रयास करते हैं कि हमारे शिक्षण के तौर तरीको में बदलाव की इतनी जोर जुगत क्यो की जा रही है ? आखिर जिन तरीको से हमने सीखा था या जिन तरीको से हमारे गुरुजी ने हमें सिखाया था उन्हें अब क्यों बदल देना चाहिए ? हम सभी यह जानते हैं कि समाज विकास के क्रम में विज्ञान और मनोविज्ञान ने आज काफी प्रगति कर ली है। वैज्ञानिक लगातार मानव मष्तिष्क की कार्य प्रणाली को समझने का प्रयास करते आ रहे है। इन वैज्ञानिक/मनोवैज्ञानिक खोजों ने सीखने के बारे में हमारी मान्यताओं को भी बदलने का प्रयास किया है। एक समय में मनोवैज्ञानिकों का एक खास समूह यह मानता था कि बच्चों का मस्तिष्क कोरी स्लेट (Tabula Rasa) की तरह होता है और शिक्षक जैसे चाहे वैसे ज्ञान की इबारत इस पर लिखकर बच्चे के व्यवहार में वांक्षित परिवर्तन कर सकता हैं। बच्चों के बारे में इस तरह की मान्यता के चलते शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षकों की भूमिका दाता और छात्रों की भूमिका ग्राही के रुप में होती थी। दंड, भय, पुरस्कार आदि इस प्रक्रिया में मददगार की भूमिका निभाते प्रतीत होते थे जिनके प्रयोग से शिक्षक एक नियंत्रित वातावरण में पूर्व निर्धारित प्रक्रियाओं द्वारा बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन लाता था। चूँकि मान्यता ही यही थी कि बच्चे अनुभवहीन होते हैं अतः उनके ज्ञान/पूर्व अनुभवों को शिक्षण में कोई विशेष स्थान नही था। इस मान्यता पर आधारित शिक्षण प्रक्रिया रटन्त और बार–बार अभ्यास पर निर्भर थी।

बच्चे के मस्तिष्क और सीखने सिखाने की प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने उपरोक्त मान्यता का खंडन करते हुए दो प्रमुख बातों की तरफ लोगों का ध्यान खींचा। इन मनोवैज्ञानिकों का मत था कि बच्चे केवल निरपेक्ष ग्राही ही नही होते बल्कि वे संज्ञानात्मक रुप से सक्रिय होते है। कहने का तात्पर्य यह था कि बच्चों को जब कोई ज्ञान शिक्षक देता है तो उसे वैसा ही ग्रहण नही करते बल्कि उसे अपने पूर्व के अनुभवों के आधार पर जोडते तोडते हुए नये ज्ञान का उत्पादन करते है या यूँ कहें कि अपनी समझ बना रहे होते हैं। यहाँ बच्चों का संज्ञानात्मक रुप से सक्रिय होना तथा सीखने में उसके पूर्व के ज्ञान की भूमिका को महत्व दिया गया। बच्चों और सीखने के बारे में इस मान्यता ने सीखने सिखाने की प्रक्रिया में मूर्तता–अमूर्तता, ज्ञात–अज्ञात, सामाजिक परिवेश आदि कारकों को चिन्हित किया। यही वो मान्यता थी जिसने वर्णों से शिक्षण कराने के बजाय परिवेश के ज्ञात अर्थपूर्ण शब्दों के जरिये भाषा शिक्षण पर जोर देना शुरु किया।

सीखने के बारे में यह मान्यता और परिष्कृत हुई और मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के जन्मजात क्षमताओं तथा उपलब्ध सूचनाओं एवं अनुभवों के आधार पर ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया पर बात करनी शुरु की। विशेषकर भाषा सीखने के बारे में मनोवैज्ञानिकों ने समझा कि भाषा सीखी नही बल्कि अर्जित की जाती है। अर्थात बच्चा जिस भी भाषाई परिवेश में होता है उस भाषा को स्वतः ही अर्जित कर लेता है। यहाँ पुनः सीखने की प्रक्रिया में सामाजिक परिवेश, जन्मजात क्षमताओं एवं अनुभवों के आधार पर ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को देखा जाने लगा।

बच्चों और सीखने की प्रक्रिया के बारे में मनोवैज्ञानिक खोजों ने हमारी मान्यताओं में जो परिवर्तन किया उसकी झलक हमारे कक्षा–कक्ष की प्रक्रियाओ, पाठ्यपुस्तको, आदि में दिखनी शुरु हो गयी। राजस्थान राज्य की पिछली तीन पाठ्य पुस्तकों आनन्द पोथी, रुन्झुन और वर्तमान पाठ्य पुस्तक में इस अन्तर को और बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। उपरोक्त खोजों के अतरिक्त मनोस्नायुविज्ञान ने मानव मस्तिष्क पर किये गये अध्ययनों ने प्रमाणित किया है कि दंड, भय, प्रलोभन आदि का सीखने सिखाने की प्रक्रिया में नकारात्मक प्रभाव पडता है। सीखने के सैद्धान्तिक समझ में बदलाव का उपरोक्त इतिहास ही शिक्षकों की भूमिका में परिवर्तन का असल कारण जान पडता है।

केवल बच्चों के बचपन, व्यवहार और सीखने के बारे में ही हमारी समझ में परिवर्तन नही आया है बल्कि ज्ञान और इसके निर्माण की प्रक्रिया के बारे में मान्यतायें पिछले कुछ वर्षों में बदली हैं। अब ज्ञान सूचनाओं का संग्रहण और उसके आधार पर कुछ तथ्यों को गढ लेना भर नही है। आइये इसको एक उदाहरण के जरिये समझते हैं। विभिन्न स्कूलों में जब कोई बाहरी व्यक्ति/अधिकारी आते हैं (बहुत समय आन्तरिक जाँच में भी) तो बच्चों को पहाडे सुनाने, गिनती सुनाने, जिलों के नाम बताने, राज्यों की राजधानियों के नाम बताने आदि जैसे प्रश्न पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के ठीक उत्तर दे देने पर यह मान

लिया जाता है कि बच्चों का स्तर ठीक है। सामान्य तौर पर इतिहास शिक्षण में तिथियों और घटनाओं के पात्रों का नाम रट लेने को ही इतिहासबोध समझ लिया जाता है। अधिकांश स्कूली और प्रतियोगी परिक्षाओं के प्रश्नपत्र भी ऐसे ही बनाये जाते थे कि बच्चे रटी गयी सूचनाओं को बता सकें। ऐसा नही है कि सूचनाओं, तथ्यों का ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में कोई भूमिका नही है लेकिन सूचनाओं और तथ्यों का भंडार ही ज्ञान नही है। ज्ञान के बारे में यह समझ है कि उसका सत्य होना, विश्वास होना और उसके पीछे के तर्क और औचित्य को समझ पाना ज्ञान के तीन मूल तत्व हैं। इन तीनों Truth, Justified, Belief) में से किसी एक के अभाव में कोई चीज तथ्य हो सकती है, सत्य भी हो सकती है, वो विश्वास योग्य भी हो सकती है लेकिन ज्ञान नही हो सकती। अब यदि ज्ञान के इस स्वरुप को देखें तो पता चलता है कि यह वो ज्ञान नही है जो गुरु द्वारा दे देने और शिष्य द्वारा अर्जित कर लेना भर हो। ज्ञान का यह स्वरुप साथ मिलकर उसके निर्माण की मांग करता है। ज्ञान निर्माण की यह प्रक्रिया तथ्यों को रटने, सूचनाओं को संग्रहीत कर कुछ निष्कर्ष निकाल लेने के परे जानकारियों को अपने पूर्व के अनुभवों पर परखने, कारणों को खोजने, प्रमाणों को जुटाने, सवाल करने, जो ज्ञात है उसे लागू करके देखने आदि पर निर्भर करती है। ज्ञान और ज्ञान निर्माण की इस प्रक्रिया में न तो गुरु ज्ञान का दाता है न ही शिष्य ज्ञान का ग्रहण कर्ता, न तो गुरु सर्वज्ञानी है न ही शिष्य मूढ, न तो गुरु अनुदेशक/उपदेशक है न ही शिष्य अनुदेशों का पालक यहाँ ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया एक साझा कर्म है जिसे गुरु और शिष्य मिलकर करते हैं और गुरु की भूमिका अधिक अनुभव होने के कारण सहयोगी, सुगमकर्ता या फेसिलिटेटर के रुप में होती है।

समस्या

- मुख्य समस्या शासन की गुणवत्ता में कमी मानी गई है।
- शिक्षा प्रणाली "समावेशी" नहीं है।
- शिक्षक प्रबंधन, शिक्षक की शिक्षा और प्रशिक्षण, स्कूल प्रशासन और प्रबंधन के स्तर पर कमी।
- पाठ्यक्रमों में व्यावहारिकता की कमी।
- स्कूल स्तर के आँकड़ों की अविश्वसनीयता।
- आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिये किये गए प्रावधानों को लागू न किया जाना।
- शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE) को जमीनी स्तर पर लागू न किया जाना इत्यादि।
- अवसंरचना का अभाव।
- शिक्षा संस्थानों की खराब वैश्विक रैंकिंग।
- प्रदान की गई शिक्षा और उद्योग के लिये आवश्यक शिक्षा के बीच अंतर।
- महंगी उच्च शिक्षा।
- लैंगिक मुद्दे।
- भारतीय बच्चों के लिये आधारभूत सुविधाओं की कमी।

विकल्प

- शिक्षा क्षेत्र में प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना।
- शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- सरकारी खर्च को बढ़ाना।
- समावेशी शिक्षा प्रणाली पर ज़ोर देना।
- गुणवत्ता की शिक्षा को बढ़ावा देना।
- शिक्षा क्षेत्र में ढाँचागत विकास हेतु 'पीपीपी मॉडल' को अपनाना।
- समावेशी शिक्षा नीति का निर्माण करना।

सरकार द्वारा उठाये जा रहे कदम

•सरकार द्वारा शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने हेतु 'टी.आर. सुब्रह्मण्यम समिति' का गठन किया गया थाद्य समिति ने शिक्षा क्षेत्र के लिये एक नया सिविल सर्विस कैडर बनाने, यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन (UGC) का उन्मूलन, कक्षा–V तक निरोधक नीति (no–detention policy) जारी रखना और प्राथमिक विद्यालय स्तर पर अंग्रेज़ी की शिक्षा देने जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। इस समिति के प्रावधानों को सरकार द्वारा अभी तक लागू नहीं किया गया है।

•सरकार ने हाल ही में भारतीय शिक्षा नीति को तैयार करने के लिये 'के. कस्तूरीरंगन समिति' (K-Kasturirangan) का गठन कियाद्य इस समिति का प्रमुख कार्य भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समकालीन बनाने, उसकी गुणवत्ता में सुधार करने, शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीयकरण तथा विदेशी विश्वविद्यालयों के भारत में प्रवेश जैसे कई महत्त्वपूर्ण प्रावधानों पर रोडमैप तैयार करना है।

निष्कर्ष

बच्चों के भविष्य को सही राह दिखाने एवं देश में समावेशी विकास को बढ़ावा देने हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षा व्यवस्था को चुस्त–दुरुस्त किया जाए। अतः हमें अन्य सुधारों के साथ–साथ उचित प्रशासन मानकों, सरकार द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन और चेक और बैलेंस की नीति अपनाने की ज़रूरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा सर्व शिक्षा अभियान अतंर्गत प्रकाशित निर्देश एवं पाठ्य सामग्री
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग) भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सामग्री
- जनशिक्षा अधिनियम 2002 और जनशिक्षा नियम 2003
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज प्राथमिक शिक्षक एन.सी. ई.आर.टी. नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
- एन.सी.टी.ई./एन.सी.ई.आर.टी. एवं एन.यू.ई.पी.ए. नई दिल्ली द्वारा प्रारंभिक शिक्षा संबंधी प्रकाशन
- शिक्षा के सिद्धांत – पाठक एवं त्यागी
- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत – रमन बिहारी लाल
- सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा – उमराव सिंह चौधरी
- शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार – एस.पी.चौबे
- शिक्षा का समाज शास्त्र – चन्द्रा एवं वर्मा
- भारतीय समाज में शिक्षा – राजस्थान हिन्दी अकादमी द्वारा प्रकाशित

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं

DR. DEEPAK PARASHAR
(PRINCIPAL)
MODERN T. T. COLLEGE
MUKUNDGARH MANDI,
JHUNJHUNU (Raj.)
DEEPAK85PARASHAR @GMAIL.COM

सार

भारत में शिक्षा प्रणाली में पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। सीखने और ज्ञान के अपने लंबे इतिहास के बावजूद, भारतीय शिक्षा प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, जिसमें शिक्षा तक असमान पहुंच, पुराना पाठ्यक्रम और अपर्याप्त धन शामिल है। हालाँकि, इन चुनौतियों के बावजूद, भारत में शिक्षा प्रणाली ने हाल के वर्षों में काफी प्रगति की है, और देश अब बड़ी संख्या में प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों और कॉलेजों का घर है।भारत में शिक्षा प्रणाली के सामने मुख्य चुनौतियों में से एक शिक्षा तक असमान पहुंच है। देश की तीव्र आर्थिक वृद्धि और बढ़ती समृद्धि के बावजूद, कई ग्रामीण और वंचित समुदायों में अभी भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच का अभाव है। यह असमानता इन क्षेत्रों में कम साक्षरता दर के साथ–साथ इन समुदायों के छात्रों की उच्च स्कूल छोड़ने की दर में परिलक्षित होती है।भारत में शिक्षा प्रणाली के सामने एक और चुनौती पुराना पाठ्यक्रम है। कई मामलों में, स्कूलों और कॉलेजों में उपयोग किए जाने वाले पाठ्यक्रम प्रौद्योगिकी और समाज में नवीनतम विकास के अनुरूप नहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप छात्र आधुनिक कार्यस्थल की मांगों के लिए तैयार नहीं हो सकते हैं और उनके भविष्य के कैरियर की संभावनाएं सीमित हो सकती हैं।

इन चुनौतियों के अलावा, भारत में शिक्षा प्रणाली को धन की कमी का भी सामना करना पड़ता है। शिक्षा के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता के बावजूद, कई स्कूलों और कॉलेजों में अभी भी अपने छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी है। इसमें कक्षाओं और पुस्तकालयों जैसी बुनियादी सुविधाओं के लिए धन, साथ ही नए पाठ्यक्रम के विकास और शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए धन शामिल है।

हालाँकि, इन चुनौतियों के बावजूद, भारत में शिक्षा प्रणाली ने हाल के वर्षों में काफी प्रगति की है। कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों ने आधुनिक कार्यबल की जरूरतों को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करने के लिए अपने पाठ्यक्रमों को आधुनिक बनाया है, और सरकार ने शिक्षा के लिए अपनी फंडिंग में वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त, सभी भारतीय नागरिकों के लिए शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसी नई पहल शुरू की गई है, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या आय कुछ भी हो।

1. छात्राध्यापकों के प्रवेश की समस्या :–अध्यापक शिक्षा मे प्रवेश की समस्या एक विकट रूप मे शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेश के लिये जो छात्र आते है, वे शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से हीन होते है एवं उन्हें रोजगार नही मिल पाता है। इससे शिक्षा का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेश संबंधी नियम कड़े किये जायें तथा बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि के द्वारा चयन कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

2. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम :–अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यंत संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रशिक्षण की अवधि मे सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों, दृष्टिकोणों, कल्यना शक्ति, सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी कोई ध्यान नही रहता है। पाठयोजना की घिसी–पिटी परिपाटी अपनाई जाती है एवं उसके अक्षरतसः पालन करने की अपेक्षा की जाती है। प्रशिक्षण में अर्जित ज्ञान अध्यापकगण वास्तविक परिस्थितियों मे प्रयोग नही लाते है। इससे प्रशिक्षण की उपयोगिता ही संदिग्ध हो जाती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है। जिससे प्रशिक्षण काल मे प्राप्त ज्ञान का अध्यापक गण वास्तविक जीवन मे प्रयोग करें एवं अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनायें।

3. सुयोग्य एवं अनुभवी अध्यापकों का अभाव :–हमारे शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यता, रूचि व अभिवृति तथा अनुभव की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसके फलस्वरूप अध्यापक शिक्षा

संबंधी कार्यों को सुचारू रूप से संपन्न नही किया जाता है एवं सिर्फ उनकी खाना–पूर्ति ही की जाती है। अतः इस समस्या का निराकरण करना जरूरी है।

4. अच्छे शोध कार्य का अभाव :–वैसे तो अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भारत मे किये गये अनुसंधान कार्यों की विशाल श्रृंखला है। लेकिन अच्छे अनुसंधान कार्य का अभाव सा प्रतीत होता है। भारतवर्ष मे अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी अपनी शैशवावस्था मे प्रतीत होता है। विदेशों विशेषकर ब्रिटेन एवं अमेरिका मे किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं का प्रिय विषय रहा है। नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में अभाव रहा है। खेद का विषय है कि शिक्षा की स्नातकोत्तर व अनुसंधान उपाधियों से युक्त तथाकथित महान प्रोफेसरगण शिक्षा को कोई नितांत मौलिक बात नही दे पाये है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेश को ध्यान मे रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे मौलिक अनुसंधान किये जायें ताकि सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।

5. मानवीय मूल्यों की अवहेलना :–प्रशिक्षण मे केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्राध्यापक अपने विचारों, मूल्यों आदि पर ध्यान नही देते। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इसी कारण वह अपनी छोटी–छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते है। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

6. सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल :–प्रशिक्षण की अवधि मे सिद्धांत को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ शिक्षा विभागों व प्रशिक्षण संस्थाओं मे तो शिक्षणाभ्यास केवल दो सप्ताह में पूरा कर दिया जाता है और इसको सिर्फ औपचारिक क्रिया मात्र समझा जाता है। अतः शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की पूर्णरूप से अवहेलना की जाती है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षा विभागों के अध्यापक भी इस समस्या की तरफ ध्यान नही देते है।

7. स्वतंत्र वातावरण का अभाव :–शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों मे आज भी छात्राध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नही किया जाता है। छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते है तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हें डराते रहते है। यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है।

8. पृथकता की समस्या :–यह समस्या अध्यापक शिक्षा मे तीन रूपों मे व्याप्त है। प्रथम विश्वविद्यालय एवं कालिज के अन्य विभागों में पृथकता, दूसरे शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों से अलगाव, तीसरा प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों मे परस्पर सहयोग का अभाव पाया जाता है। इससे एक विभाग के अध्यापक दूसरे स्तर के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने लगते है। यह अध्यापक शिक्षा हेतु बहुत अहितकर है। कोठारी आयोग ने इस समस्या को हल करने हेतु जोरदार सिफारिश की है।

9. व्यावसायिक प्रशिक्षण मे सुधार की समस्या :–शिक्षा विभागों के शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता मे कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। साथ ही साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता है। वे अत्यंत परम्परागत एवं रूढिबद्ध हैं। अतः व्यावसायिक शिक्षण को सजीव बनाना जरूरी है।

10. प्रदर्शनात्मक विद्यालयों का अभाव :–शिक्षा विभाग की मान्यता का आधार विभाग से सम्बद्ध प्रदर्शनात्मक विद्यालय की सुविधा होनी चाहिए। जिन विभागों के पास अपना शिक्षण विद्यालय नही है उन्हें मान्यता ही न दी जाये क्योंकि दिन–प्रतिदिन के शैक्षिक प्रयोगों तथा अध्यापन के कार्यों मे कठिनाई होगी। बहुत कम शिक्षा विभाग ऐसे है जिनके पास अपना प्रदर्शनात्मक विद्यालय है। जिस प्रकार विज्ञान विषय प्रयोगशाल के बिना नही पढ़ाया जा सकता ठीक इसी प्रकार अध्यापक शिक्षा के लिए प्रदर्शनात्मक विद्यालय है।

11. दोषपूर्ण अध्यापन विधि :–शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रायः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। वह परम्परागत है। भाषण निरर्थक होते है। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रूप में बैठे रहते है। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नही होता। अच्छा अध्यापक विचारों से पूर्ण होना चाहिए। उसे आवश्यकतानुसार गतिशील अध्यापन विधियों का उपयोग करना चाहिए। अतः सामूहिक वाद–विवाद, विचार–विमर्श, विचार–गोष्ठी, सम्मेलन, वर्कशॉप तथा प्रश्नोत्तर विधि आदि का समय–समय पर आयोजन आवश्यक है। मेरठ विश्वविद्यालय ने इस संबंध मे महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। महाविद्यालयों

में प्रत्येक कलांश 60 मिनट का कर दिया गया है। उद्देश्य यही है कि अध्यापक द्वारा भाषण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श संभव हो और छात्र उनमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें। छात्रों के मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है।

12. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली :–अध्यापक शिक्षा की परिक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषयनिष्ठ है तथा ज्ञान की सही परिक्षा नही करती। शिक्षण में प्रारूप छात्राध्यापकों को छोटी–छोटी बातों पर धमकी दी जाती है। कहीं–कहीं अध्यापकों में बदले की भावना पाई जाती है। विभागों में अध्यापक स्वयं भी आपस मे लड़ते–झगड़ते है। इसका बुरा प्रभाव छात्राध्यापकों पर भी पड़ता है। उनमें सहयोग, समूह–भावना तथा एकता का सर्वथा अभाव है। वास्तव मे शिक्षा विभाग आदर्श होने चाहिए। छात्राध्यापकों का मूल्यांकन पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। उसमें सिफारिश अथवा द्वेष आदि का कोई स्थान न हो। निष्पक्ष भाव से प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाये। सम्पूर्ण मूल्यांकन के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालना चाहिए।

13. अनुपयुक्त पाठ्य–पुस्तकें :–अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे अच्छी पाठ्य–पुस्तकों का अभाव है। बाजार प्रश्नोत्तर, सस्ते नोट्स, गाइड से भरा पड़ा है। वे प्रायः निम्न स्तर के अध्यापकों द्वारा लिखी जाती है। अच्छे अनुभवी अध्यापक इसमें रूचि नही लेते। कुछ पुस्तकें क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों द्वारा भी लिखी जाती है। इससे शिक्षा–स्तर में बहुत गिरावट आ गई है। विश्वविद्यालय तथा अध्यापकों को इस कार्य में छात्राध्यापकों का मार्गदर्शन करना चाहिए। सस्ते नोट्स व प्रश्नोत्तर पुस्तकों पर रोक लगाई जाये। छात्रो को मौलिक शिक्षा ग्रंथ पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उनमे स्वतंत्र अध्ययन की आदत डाली जाये। अध्यापक इसमे बहुत सहायक हो सकता है।

14. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव :–बहुत कम विभाग इस प्रकार की क्रियाओं को संगठित करने मे रूचि लेते है। अधिकतर स्थानों पर पाठ्यक्रम की खानापूरी करना ही सब कुछ है। पाठ्यक्रम मे निर्धारित शारिरिक शिक्षा, स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों से स्कूलों मे विभिन्न क्रियाओं को संगठित करने की क्या आशा की जा सकती है। अतः इसमे सुधार की आवश्यकता है।

15. विषयों के चयन मे कठिनाई :–शिक्षा विभागों मे छात्राध्यापकों को अध्यापन के विषयों का चयन सावधानी से करना चाहिए। प्रवेश के समय ही इस ओर ध्यान दिया जाये। कभी–कभी कुछ ऐसे विद्यार्थी प्रवेश पा जाते है, जिनके स्नातक स्तर के विषय विद्यालयों मे नही होते। विवश होकर उन्हें ऐसे विषय दिलाने पड़ते है जिन्हें उन्होंने कभी नही पढ़ा है और न ही उनके प्रति उन्हें रूचि है। अतः विषयों के उचित चुनाव की ओर ध्यान दिया जायें।

16. आदर्श पाठों का अभाव :–प्रायः अध्यापक आदर्श पाठों का आयोजन करने मे रूचि नही लेते। वे अपने को इस कार्य मे दक्ष नही पाते। वास्तव में शिक्षा विभाग के अध्यापकों को कुछ समय अनिवार्य रूप से विद्यालयों मे अध्यापन कार्य करना चाहिए। इसमें हम विद्यालय के अन्य अनुभवी अध्यापकों की सहायता ले सकते है। प्रत्यन होना चाहिए कि समय–समय पर आदर्श अध्यापन छात्राध्यापकों के सम्मुख उपस्थित किया जाये। यह कार्य विद्यालयों मे अध्यापन कार्य प्रारंभ करने से पहले अथवा बीच मे भी संगठित किया जा सकता है। आर्दश पाठों का प्रशिक्षण में अपना स्थान तथा महत्व है। इसमें नवीन रीति का अनुसरण किया जाये।

17. कक्षा शिक्षण में लापरवाही :–विद्यालयों में शिक्षण कार्य को सावधानी से संगठित किया जाये। प्रायः छात्राध्यापकों इसमें लापरवाही करते है। वे खानापूरी करते है। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनायें बड़ी पुरानी व परम्परागत होती हैं। कुछ पाठों को बिना पढ़ाये विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। ऐसा करना बड़ा घातक है। हम ऐसे अध्यापकों से क्या आशा कर सकते हैं? उनका दृष्टिकोण कुछ सीखने का होना चाहिए। यदि थोड़ी सी सावधानी से कार्य करें तो उनके अध्यापन कार्य में काफी सुधार हो सकता है। निरीक्षक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

18. सहयोग व समन्वय का अभाव :–विद्यालयों तथा शिक्षा विभागों में परस्पर संपर्क की भारी कमी है। उनमे कोई साम्य नही है। वे एक दूसरे की न परवाह करते और न ध्यान देते है। दृष्टिकोण मे भी बड़ा अंतर पाया जाता है। इससे बड़ी हानि हो रही है। शिक्षा–विभागों द्वारा अपनाई गई विधियाँ, प्रविधियाँ तथा सहायक सामग्री शिक्षा विभाग तक ही सीमित रह जाती है, वे विद्यालयों तक नही पहुंच पातीं। विद्यालयों में मुख्यतः पुरानी परम्परागत पुस्तक–पाठन विधि का ही प्रचलन है। हमारे छात्राध्यापक

विद्यालयों के अध्यापकों की इस कार्य मे कोई रूचि न लेने की शिकायत करते है। राज्य के शिक्षा विभाग भी इसमें कोई रूचि नही दिखाते। अतः वे तीनों मे परस्पर सहयोग तथा संपर्क स्थापित करना जरूरी है। प्रत्येक दशा में यह पृथकता समाप्त होनी चाहिए। सब सहयोग व रूचि से मिलजुल कर कार्य करें। सिद्धांत व व्यवहार में अंतर नही रहना चाहिए।

19. रूढ़िवादिता :–अध्यापन कार्य में प्रायः शिक्षा विभागों के अध्यापक अपनी रूढिवादी व परम्परागत विधि का अनुसरण करते हैं। वे नवीन विचारों अध्यापन विधियों तथा प्रविधियों से सर्वथा अभिन्न है। उन्हें स्वतंत्र अध्ययन की आदत नही है। आजकल ज्ञान का विकास तीव्र गति से हो रहा है। अध्यापक को अपना ज्ञान निरन्तर नया तथा पूर्ण रखना चाहिए। इसके लिए शैक्षिक पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। समय–समय पर आयोजित विचार–गोष्ठी, वर्कशॉप तथा शैक्षिक सम्मेलनों मे उन्हें भाग लेना चाहिए। कक्षा अध्यापन में नवीन विधियों को प्रयोग करने की क्षमता उनमें चाहिए।

20. अस्वस्थ वातावरण :–शिक्षा विभागों में वातावरण में प्रायः बनावट व कृत्रिमता पाई जाती है। अध्यापक तथा छात्र का संबंध केवल ऊपरी दिखावे का रहता है। इस संबंध मे छात्रों का दृष्टिकोण जानना आवश्यक है। वे प्रायः एक अध्यापक के सामने उसकी तारीफ व चापलूसी तथा दूसरे अध्यापकों की बुराई करते है। कुछ अध्यापक इससे प्रसन्न होते है। शिक्षा विभागों के लिए यह दुर्भाग्य की बात है। हमें विभागों का वातावरण अधिक प्रकृतिक, वास्तविक तथा ठोस बनाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और छात्र व अध्यापक संबंध घनिष्ठता तथा निकटता को स्थापित करना चाहिए।

21. उचित निरीक्षण का अभाव :–छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते है। इसमे प्रायः लापरवाही बरती जाती है। खानापूरी अधिक रहती है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। निरीक्षण पूर्ण हो। वह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। सुझाव वास्तविक तथा ठोस हों और उनके द्वारा छात्राध्यापक के अध्यापन में उन्नति संभव हो। वास्तव में अध्यापन में सुधार अच्छे निरीक्षण पर निर्भर करता है। निरीक्षकों का दृष्टिकोण स्वस्थ होना चाहिए और वे छात्रों को नवीन विधियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करें।

निष्कर्षत :– भारत में शिक्षा प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें शिक्षा तक असमान पहुंच, पुराना पाठ्यक्रम और अपर्याप्त धन शामिल है। हालाँकि, इन चुनौतियों के बावजूद, देश में अच्छी तरह से सम्मानित विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की संख्या बढ़ रही है, और सरकार ने शिक्षा प्रणाली के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है। शिक्षा में निरंतर निवेश के साथ, भारत में सीखने और ज्ञान का एक अग्रणी केंद्र बनने और अपने सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की क्षमता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा सर्व शिक्षा अभियान अतंर्गत प्रकाशित निर्देश एवं पाठ्य सामग्री
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग) भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सामग्री
- जनशिक्षा अधिनियम 2002 और जनशिक्षा नियम 2003
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज प्राथमिक शिक्षक एन.सी. ई.आर.टी. नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
- एन.सी.टी.ई./एन.सी.ई.आर.टी. एवं एन.यू.ई.पी.ए. नई दिल्ली द्वारा प्रारंभिक शिक्षा संबंधी प्रकाशन
- शिक्षा के सिद्धांत – पाठक एवं त्यागी
- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत – रमन बिहारी लाल
- सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा – उमराव सिंह चौधरी
- शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार – एस.पी.चौबे
- शिक्षा का समाज शास्त्र – चन्द्रा एवं वर्मा
- भारतीय समाज में शिक्षा – राजस्थान हिन्दी अकादमी द्वारा प्रकाशित

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता

डॉ हरप्रीत कौर ,सहायक आचार्य
harpreetkaur2011@gmail.com
परिष्कार इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, जयपुर

सारांश

भारतीय मनोविज्ञान का उद्भव भारतीय संस्कृति के प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक विचारों से हुआ है। इसका उद्देश्य मानव मन, चित्त, और आत्मा के गहरे रहस्यों को समझना और प्रशासन करना है। वेदों, उपनिषदों, और पुराणों में मानव मन और आत्मा के अध्ययन का वर्णन मिलता है, जो जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के रूप में काम आता है।पतंजलि के "योगसूत्र" नामक ग्रंथ ने मनोविज्ञान और योग के सिद्धांतों कोसंकलितकिया और उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया। यह ग्रंथ मन और आत्मा के विकास के लिए योग प्राकृतिक और वैज्ञानिक उपायों को प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना

भारतीय मनोविज्ञान ने मानव मन के अध्ययन को गहराई से अन्वेषण किया है और योग, विचार, और आध्यात्मिक धारणाओं के माध्यम से मानव स्वभाव के रहस्यों को सुलझाने का काम किया है। इस प्रकार, भारतीय मनोविज्ञान का उद्भव एक गंभीर और आध्यात्मिक अध्ययन के रूप में हुआ है और आज भी मानव मन के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।भारतीय मनोविज्ञान का अर्थ होता है भारतीय संस्कृति और दार्शनिक परंपरा के अनुसार मानव मन, चित्त, और आत्मा के अध्ययन का शास्त्रीय और दार्शनिक उपयोग करने का अध्ययन या अनुसंधान। यह अध्ययन मानव मानसिकता, भावनाओं, विचारों, और आत्मा के स्वरूप के बारे में गहरा और तात्त्विक ज्ञान प्रदान करता है।इसके अलावा, यह धार्मिक और आध्यात्मिक धारणाओं के प्रति समर्पित रहता है और मानव मन के अध्ययन को मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से निरूपित करता है।सांख्य दर्शन भारतीय मनोविज्ञान के महत्वपूर्ण हिस्से को स्पष्ट करने वाला एक प्रमुख दार्शनिक प्रणाली है। इसमें मानव मन, चित्त, और आत्मा के अध्ययन को महत्वपूर्ण रूप से विकसित किया गया है।सांख्य दर्शन के अनुसार, जगत का निर्माण प्रकृति (प्रकृति) और पुरुष (आत्मा) के अधीन होता है। यह दर्शाता है कि मानव मन और चित्त प्रकृति से अलग होते हैं, और आत्मा का अध्ययन करके मन को नियंत्रित किया जा सकता है।सांख्य दर्शन में मनोविज्ञान के लिए आत्मज्ञान और समाधि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह दर्शाता है कि मन को विचारों की भवना से दूर करके, आत्मा के अंतरात्मा में स्थित होने का अभ्यास किया जा सकता है।सांख्य दर्शन मानव चित्त के विकास और चिंतन को बढ़ावा देने के लिए भी महत्वपूर्ण है, और यह ध्यान

और साधना के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में मदद कर सकता है।इस तरह, सांख्य दर्शन भारतीय मनोविज्ञान के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और मानव मन और आत्मा के अध्ययन को महत्वपूर्ण सिद्धांतों के साथ संयोजित करता है।
उपनिषदों में मानव मन, चित्त, और आत्मा के बारे में गहरी चिंतन और दार्शनिक विचार किए गए हैं। ये ग्रंथ भारतीय दार्शनिक धारा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं और मानव मन की स्वाभाविकता, चित्त की स्थिति, और आत्मा के स्वरूप के संदर्भ में अनमोल विचार प्रस्तुत करते हैं।

1. **आत्मा:** उपनिषदों में आत्मा के स्वरूप और महत्व के बारे में चर्चा होती है। इन्हें अजर, अमर, और अविकारी माना जाता है।

2. **चित्त (चेतना):** चित्त के मानसिक प्रक्रियाओं, विचारों, और भावनाओं के पहलु का अध्ययन किया जाता है। उपनिषदों में चित्त को ब्रह्म के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है।

3. **योग (ध्यान):** उपनिषदों में योग और ध्यान के माध्यम से मन के नियंत्रण और आत्मा के प्राप्ति के तरीके प्रस्तुत किए गए हैं।

4. **ब्रह्म (ब्रह्मन):** उपनिषदों में ब्रह्म, यानी अद्वैत ब्रह्म, के स्वरूप और मानव आत्मा के साथ का संबंध महत्वपूर्ण रूप से बताया गया है।

उपनिषदों के द्वारा मानव मन और आत्मा के परमाणु रूप में जांचने का प्रयास किया गया है, और ये ग्रंथ भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक जीवन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का स्रोत हैं।

शिक्षा और भारतीय मनोविज्ञान

भारतीय मनोविज्ञान शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह मानव मानसिकता और आत्मा के अध्ययन पर केंद्रित होता है, और शिक्षा के क्षेत्र में गहरी ज्ञान का प्रयोग करता है।

भारतीय मनोविज्ञान का प्रयोग छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक समरसता, और आत्मा के विकास में किया जाता है। यह छात्रों को मन के नियंत्रण, स्वयं से समझ, और आत्मा की खोज में मदद करता है।

भारतीय मनोविज्ञान के अध्ययन से छात्रों की आत्म-संवाद, स्वाध्याय, और सामाजिक साझेदारी में सुधार होता है। यह छात्रों को स्वयं के साथ और दूसरों के साथ सहयोग करने की क्षमता विकसित करता है, जो उनके व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में महत्वपूर्ण है।

इसके अलावा, यह शिक्षा में दार्शनिक और आध्यात्मिक दिशाओं को प्रोत्साहित करता है, जो छात्रों को जीवन के मूल सवालों का सामाधान खोजने में मदद करता है। इस तरीके से, भारतीय मनोविज्ञान शिक्षा को समृद्धि, सामाजिक समरसता, और आध्यात्मिक विकास का माध्यम बनाता है।भारतीय मनोविज्ञान शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह मानव मानसिकता और आत्मा के अध्ययन पर केंद्रित होता है, और शिक्षा के क्षेत्र में गहरी ज्ञान का प्रयोग करता है।भारतीय मनोविज्ञान का प्रयोग छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक समरसता, और आत्मा के विकास में किया जाता है। यह छात्रों को मन के नियंत्रण, स्वयं से समझ, और आत्मा की खोज में मदद करता है।भारतीय मनोविज्ञान के अध्ययन से छात्रों की आत्म-संवाद, स्वाध्याय, और सामाजिक साझेदारी में सुधार होता है। यह छात्रों को स्वयं के साथ और दूसरों के साथ सहयोग करने की क्षमता विकसित करता है, जो उनके व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में महत्वपूर्ण है।इसके अलावा, यह शिक्षा में दार्शनिक और आध्यात्मिक दिशाओं को प्रोत्साहित करता है, जो छात्रों को जीवन के मूल सवालों का सामाधान खोजने में मदद करता है। इस तरीके से, भारतीय मनोविज्ञान शिक्षा को समृद्धि, सामाजिक समरसता, और आध्यात्मिक विकास का माध्यम बनाता है।

भारतीय मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं:

1. **आत्म-समझ और आत्म-ज्ञान:** शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों को उनकी आत्मा को समझने और उसके अंदर की गहराइयों को खोजने में मदद करना है। यह आत्म-ज्ञान के माध्यम से जीवन का मार्ग ढूँढने में मदद करता है।
2. **ज्ञान का प्राप्ति:** शिक्षा के अंतर्गत ज्ञान का प्राप्ति एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, जिसमें विज्ञान, गणित, साहित्य, कला, और अन्य क्षेत्रों का अध्ययन शामिल होता है।
3. **आध्यात्मिक विकास**: शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को आध्यात्मिक विकास के माध्यम से आत्मा के साथ संवाद और आध्यात्मिक जागरूकता का विकास करना है।
4. **समाज में सहयोगी भूमिका**: शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को समाज में सहयोगी भूमिका निभाने के लिए तैयार करना है, जिसमें उन्हें समाज के उत्थान और कल्याण में योगदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
5. **मानवीय गुणों का विकास:** शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में मानवीय गुणों का विकास करना है, जैसे कि सदगुण, समरसता, सहानुभूति, और नैतिकता।
6. **मानव समाज के सुधार और विकास:** शिक्षा का उद्देश्य मानव समाज के सुधार और विकास में योगदान करने के लिए छात्रों को प्रेरित करना है, ताकि वे समाज के समृद्धि और प्रगति में सहयोगी बन सकें।

इन उद्देश्यों के माध्यम से, भारतीय मनोविज्ञान का दृष्टिकोण शिक्षा को ज्ञान के साथ-साथ आत्मा के साथ संवाद, आध्यात्मिक जागरूकता, और मानव समाज के समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के रूप में देखता है।

भारतीय मनोविज्ञान की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सुधारने में कई महत्वपूर्ण भूमिकाएं हैं:

1. **मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिकता:** शिक्षा प्रणाली में मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिकता देना महत्वपूर्ण है। मनोविज्ञान के अध्ययन से छात्रों के मानसिक रूप से स्वस्थ रहने और स्थानीय समृद्धि में मदद मिलती है।
2. **सामाजिक और शैक्षिक समरसता:** मनोविज्ञान के अध्ययन से छात्रों के बीच सामाजिक समरसता, सहयोग, और अच्छे संबंधों को प्रोत्साहित करने के उपायों की समझ आती है।
3. **शिक्षक प्रशिक्षण:** शिक्षकों को मनोविज्ञान के सिद्धांतों का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे छात्रों के मानसिक विकास को समझ सकें और उनकी मानसिक स्वास्थ्य को सहायता प्रदान कर सकें।
4. **व्यक्तिगत विकास का समर्थन:** मनोविज्ञान के अध्ययन से हर छात्र के व्यक्तिगत विकास को समर्थन मिलता है, जिससे उनके आत्मविश्वास, उत्साह, और स्वावलंबन में सुधार होता है।
5. **विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल:** शिक्षा प्रणाली में मनोविज्ञान के अध्ययन से विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की समझ और उनकी देखभाल का महत्व समझा जा सकता है।

इन तरीकों से, मनोविज्ञान शिक्षा प्रणाली में छात्रों के मानसिक और आत्मिक विकास को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और एक समृद्ध और सामाजिक समरसता भरपूर शिक्षा प्रणाली का निर्माण कर सकता है।

सांख्य दर्शन का अध्ययन भारतीय मनोविज्ञान के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में कई प्रकार से उपयोगी हो सकता है:

1. **मानसिक स्वास्थ्य के साथ काम करना:** सांख्य दर्शन के अध्ययन से शिक्षक अपने छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को समझ सकते हैं और उन्हें मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के तरीके सिखा सकते हैं।
2. **सामाजिक और आत्मिक विकास की समझ:** सांख्य दर्शन के अध्ययन से शिक्षक समाजिक और आत्मिक विकास के प्रति अधिक सहयोगी और समझदार हो सकते हैं और छात्रों को इस दिशा में मार्गदर्शन कर सकते हैं।
3. **मानव प्रकृति के सिद्धांत:** सांख्य दर्शन छात्रों को मानव प्रकृति के विभिन्न पहलुओं के विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जैसे कि गुण, कर्म, और आत्मा के सिद्धांत।

4. **मानव मन के अध्ययन:** सांख्य दर्शन छात्रों को मानव मन के गहरे अध्ययन के लिए उपयोगी मानसिक संरचनाओं को समझने में मदद करता है।
5. **ध्यान और साधना:** सांख्य दर्शन में ध्यान और साधना के माध्यम से मानसिक शांति और स्वास्थ्य के लिए सिद्धांत होते हैं, जो छात्रों को तंत्र और योग के माध्यम से आत्मा की खोज में मदद कर सकते हैं।

इस तरह, सांख्य दर्शन के सिद्धांत और अध्ययन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंश के रूप में शामिल किए जा सकते हैं, जो शिक्षकों को छात्रों के मानसिक और आत्मिक विकास को समझने और समर्थन प्रदान करने में मदद कर सकते हैं।
उपनिषदभारतीय मनोविज्ञान के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का अध्ययन कराते हैं, और भारतीय मनोविज्ञान के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में निम्नलिखित तरीकों से उपयोगी हो सकते हैं:

1. **आत्मज्ञान की प्रोत्साहना:** उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के अध्ययन के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। इससे शिक्षकों को छात्रों को आत्मज्ञान की ओर प्रोत्साहित करने में मदद मिल सकती है.
2. **ध्यान और मन की निगरानी:** उपनिषदों में मन की निगरानी और ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति के सिद्धांत होते हैं, जो शिक्षकों को छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को समझने में मदद कर सकते हैं।
3. **आध्यात्मिक शिक्षा:** उपनिषदों में आध्यात्मिक अध्ययन के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। इससे शिक्षकों को आध्यात्मिक शिक्षा के तरीके सिखाने में मदद मिल सकती है.
4. **व्यक्तिगत विकास के सिद्धांत:** उपनिषदों में व्यक्तिगत विकास के महत्वपूर्ण सिद्धांत होते हैं, जिनका अध्ययन छात्रों के स्वयं की विकास को समझने में मदद कर सकता है.
5. **आध्यात्मिक शिक्षा को बढ़ावा**उपनिषदों के सिद्धांतों का अध्ययन छात्रों को आध्यात्मिक शिक्षा के महत्व को समझाने में मदद कर सकता है, जिसका आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव हो सकता है।

इस तरह, उपनिषदों में वर्णित भारतीय मनोविज्ञान के दार्शनिक सिद्धांतों का अध्ययन शिक्षकों को छात्रों के मानसिक और आत्मिक विकास के समर्थन में मदद कर सकता है और उन्हें आध्यात्मिक शिक्षा का विकास करने में मदद कर सकता है।
सांख्य मनोविज्ञान और उपनिषद मनोविज्ञान के अनुसार, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में शिक्षक शिक्षा के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हो सकते हैं, जिनका ज्ञान भावी शिक्षकों को दिया जाना आवश्यक हो:

1. **योग और ध्यान**: सांख्य मनोविज्ञान और उपनिषद मनोविज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में ध्यान और योग के महत्वपूर्ण आयामों का ज्ञान दिया जा सकता है, जिससे शिक्षक अपने छात्रों को मानसिक शांति और सामंजस्य कैसे प्रदान करें, इसके बारे में समझ सकते हैं।

2. **आध्यात्मिक विकास**: उपनिषद मनोविज्ञान के अंतर्गत, आध्यात्मिक विकास के अद्वितीय पहलुओं का ज्ञान दिया जा सकता है, जिससे शिक्षक छात्रों के आध्यात्मिक विकास को समझ सकते हैं और उनकी आत्मा के पहलु को समझ सकते हैं।

3. **मनोविज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य**: दूसरी ओर, सांख्य मनोविज्ञान में मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन और मानसिक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण तरीकों का ज्ञान दिया जा सकता है, जिससे शिक्षक छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को समझ सकते हैं और उनके मानसिक विकास को समर्थन कर सकते हैं।

4. **नैतिक शिक्षा**: उपनिषद मनोविज्ञान के आयाम में नैतिक शिक्षा के महत्वपूर्ण पहलुओं का ज्ञान दिया जा सकता है, जिससे शिक्षक छात्रों को नैतिक मूल्यों का समझ सकते हैं और उन्हें नैतिक दिशा में मार्गदर्शन कर सकते हैं।

ये आयाम शिक्षकों को छात्रों के मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान कर सकते हैं और उन्हें अपने छात्रों के पूर्णता की ओर मार्गदर्शन करने में मदद कर सकते हैं।

संदर्भ –

1. Bharatiya Manovigyan : Dr Lakshmi ShuklaISBN:9788178541464PUBLISHER: EASTERN BOOK LINKERSEDITION:2009
2. Bharatiya Shiksha Manovigyan : Avadharana Evam Vyaktitv Dr Vibha Dutt Madhya Pradesh Hindi Granth Academy(2010)
3. Concept of personality:Indian psychologyhttps://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3830173/
4. Indiginisation of psychology in India-Ajit K Dalal https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ959023.pdf
5. Indian indigenius, concept and perspective: development and future possibilities-S K Kiran Kumar https://www.ipi.org.in/texts/kirankumar/kk-indian-indigenous-concepts.pdf

शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम

डॉ. इंदिरा कुमारी
(सह आचार्या)
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज,
लक्ष्मणगढ़, सीकर
email id: irkbudania@gmail.com
Mobile no. 9461058681

सारांशः–
प्रतिमान शिक्षण सिद्धान्तों के प्रतिपादन में आधार का कार्य करते हैं। अर्थात् शिक्षण सिद्धान्त के लिये प्रतिमान परिकल्पना का कार्य करते हैं। शिक्षण प्रतिमान को एक विस्तृत रूप में देखा जाता है जिसमें उसमें पाठ्यक्रम, स्त्रोत, शिक्षण तथा अधिगम को प्रभावशाली ढंग से वर्णित किया जाता है आधुनिक जीवनशैली के परिणाम स्वरूप ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय और अभारतीय ऐसे दो भाग हो गए हैं। आज भारतीय ज्ञानधारा के समक्ष अनेक प्रश्न खड़े हो गए हैं, और दोनों का मिश्रण हो गया है। चारों ओर भ्रम फैला हुआ है, उचित–अनुचित, सही–गलत और करणीय–अकरणीय का विवेक लुप्त हो गया है। धर्म और ज्ञान से मार्गदर्शन प्राप्त करना भूलकर सरकार से सहायता की कामना कर रहे हैं। इस परिस्थिति में शुद्ध भारतीय ज्ञान को आज की शिक्षा में पुनर्प्रतिष्ठित करना हमारा दायित्व है। व्यक्ति के विकास का भारतीय प्रतिमान "समग्र विकास प्रतिमान" है। इसके दो आयाम हैं– पंच कोशीय विकास और परमेष्ठीगत विकास। जहां पंच कोशीय विकास व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है, वहीं परमेष्ठीगत विकास उसका समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास है।शिक्षक शिक्षा स्तरीय–विशिष्ट है। इसका मतलब है कि शिक्षक शिक्षा पर कार्यक्रम पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक माध्यमिक, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की जरूरतों के अनुसार भिन्न होता है। विभिन्न स्तरों पर कक्षा लेनदेन के लिए विशिष्ट तरीके और रणनीतियाँ हैं। शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम शिक्षा–व्यवस्था की जरूरतों के अनुसार शिक्षकों को निरंतर प्रशिक्षित करने का कार्य है।

1.प्रस्तावनाः–

शिक्षा का व्यक्ति जीवन में विशिष्ट स्थान है। शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास संभव है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन एवं परिष्करण किया जाता है। लेकिन आज विद्वज्जन क्या, आमजन भी शिक्षा से संतुष्ट नहीं हैं। क्योंकि आज की शिक्षा व्यक्तिगत जीवन और राष्ट्र की समस्याएँ दूर करने के स्थान पर बढ़ाती जा रही है। राष्ट्रीय शिक्षा का विचार करने वाले शिक्षाविदों की तो यह मान्यता है कि गत दो सौ वर्षों से भारत की शिक्षा उल्टी पटरी पर चल रही है। शिक्षा राष्ट्र की संस्कृति और जीवनशैली को सुदृढ़ करने का काम करती है। शिक्षा यह काम तभी कर पाती है, जब वह राष्ट्र की जीवनशैली पर आधारित होती है। आज की शिक्षा का भारतीय जीवनशैली से सम्बन्ध बिखर गया है। शिक्षा हमारी जीवनशैली में, विचारशैली में ऐसे–ऐसे परिवर्तन कर रही है कि हम अपनी ही जीवनशैली से दूर हटते जा रहे हैं और उसके प्रति हीनता बोध से ग्रस्त हो गये हैं, और पाश्चात्य जीवनशैली को अपनाते जा रहे हैं। हमारा जीवन दो विपरीत धाराओं में बह रहा है, फलतः समाज जीवन में सांस्कृतिक और भौतिक संकट निर्माण हो रहे हैं।

शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्रों में व्यवहारगत परिवर्तन लाना है। व्यवहारगत परिवर्तन हेतु यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम निर्माता तथा अध्यापक दोनों ही विद्यालय तथा कक्षा का ऐसा वातावरण बनाने में सहयोग दें, जो सीखने के कार्य में सहायक सिद्ध हो। अधिगम अथवा सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है, जो शिक्षण के बिना भी चलती रहती है तथा शिक्षण उस अधिगमित व्यवहार को दिशा प्रदान करता है। आजयह अनुभव किया गया है कि अधिगम सिद्धान्त कक्षा शिक्षण की समस्याओं तथा शैक्षिक वातावरण की समस्याओं के समाधान में असफल रहे हैं। अतः शिक्षण सिद्धान्तों के आधार पर अधिक बल दिया जा

रहा है।शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विभिन्न विधियों, प्रविधियों, योजनाओं तथा स्वरूपों को प्रयोग में लाया जाता है, जिन्हें 'शिक्षण का प्रतिमान' कहते है।

2. शिक्षा का भारतीय प्रतिमानः–

प्रतिमान शिक्षण सिद्धान्तों के प्रतिपादन में आधार का कार्य करते हैं। अर्थात् शिक्षण सिद्धान्त के लिये प्रतिमान परिकल्पना का कार्य करते हैं। शिक्षण प्रतिमान को एक विस्तृत रूप में देखा जाता है जिसमें उसमें पाठ्यक्रम, स्त्रोत, शिक्षण तथा अधिगम को प्रभावशाली ढंग से वर्णित किया जाता है, इसको इस सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है– शिक्षण प्रतिमान = पाठ्यक्रम + साधन + शिक्षण + सीखना। अतः शिक्षण प्रतिमान में उसके पाठ्यक्रम,स्त्रोत, शिक्षण तथा अधिगम को कलात्मक एवं विस्तृत रूप प्रदान किया जाता है।भारतीय शिक्षा की मूल भावना के सम्बन्ध में विष्णु पुराण में कहा गया है ''असतो मा सद् –गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय'' अर्थात् असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली शिक्षा ही शिक्षा कहलाती है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा की समृद्ध शिक्षा व्यवस्था रही है। शिक्षा का अंग्रेजी प्रतिमान अंग्रेजी काल में चार्ल्स ग्रांट, विल्वर फोर्स या फिर मैकाले ही रहे।

महात्मा गाँधी ने जो बुनियादी शिक्षा का मॉडल खड़ा किया उसमें भारत, भारतीय समाज और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर उसका गठन किया। यह मॉडल रोजगारपरक होने के साथ–साथ उसमें धर्म व अन्यान्य चीजें भी थी। कला–कौशल के सम्बन्ध में भी चिंता की गई थी। महाऋषि अरविंद ने पॉन्डिचेरी में एक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन का एक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया।लोकमान्य तिलक ने जो स्वदेशी आंदोलन चलाया जिसमें सत्याग्रह और स्वदेशी के मुद्दे थे उनमें से ही राष्ट्रीय विद्यालय की अवधारणा भी आई।भारत की शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिये, इसी कल्पना के साथ राष्ट्रीय विद्यालय खड़े हुए। आर्य समाज ने गुरूकुल परंपरा के रूप में विद्यालय चलाये। स्वामी श्रद्धानंद द्वारा स्थापित गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थिति इतनी बढ़िया थी कि उस में से निकले व्यक्तित्व भारत के प्रमुख स्थानों पर शासन करते थे।

आधुनिक जीवनशैली के परिणाम स्वरूप ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय और अभारतीय ऐसे दो भाग हो गए हैं। आज भारतीय ज्ञानधारा के समक्ष अनेक प्रश्न खड़े हो गए हैं, और दोनों का मिश्रण हो गया है। चारों ओर भ्रम फैला हुआ है, उचित–अनुचित, सही–गलत और करणीय–अकरणीय का विवेक लुप्त हो गया है। धर्म और ज्ञान से मार्गदर्शन प्राप्त करना भूलकर सरकार से सहायता की कामना कर रहे हैं। इस परिस्थिति में शुद्ध भारतीय ज्ञान को आज की शिक्षा में पुनर्प्रतिष्ठित करना हमारा दायित्व है। **व्यक्ति के विकास का भारतीय प्रतिमान "समग्र विकास प्रतिमान" है। इसके दो आयाम हैं– पंच कोशीय विकास और परमेष्ठीगत विकास।** जहां पंच कोशीय विकास व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है, वहीं परमेष्ठीगत विकास उसका समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास है।

पंचकोशीय विकासः पंचकोशीय विकास का अर्थ है, पांच कोशों का विकास करना। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार व्यक्ति का व्यक्तित्व पांच कोशों से निर्मित है, १. अन्नमय कोश २. प्राणमय कोश ३. मनोमय कोश ४. विज्ञानमय कोश ५. आनन्दमय कोश। व्यक्तित्व की पंचकोणीय अवधारणा में कोश का अर्थ है आवरण, कोश का अर्थ है स्तर। उपनिषद् बताते हैं कि हमारी आत्मा के ऊपर पांच आवरण हैं या हमारी आत्मा के पांच स्तर हैं। भीतर से बाहर के क्रम में बताना हो तो आत्मा के ठीक ऊपर आनन्दमय कोश, उसके ऊपर विज्ञानमय कोश, विज्ञानमय के ऊपर मनोमय कोश, मनोमय के ऊपर प्राणायम कोश और प्राणायम के ऊपर बाहरी आवरण है अन्नमय कोश। अन्नमय कोश स्थूल है और बाहर है, इसलिए हमें दिखाई देता है। शेष चारों कोश अन्नमय कोश(शरीर) के भीतर हैं और सूक्ष्म हैं, इसलिए हमें दिखाई नहीं देते।अन्नमय कोश का अर्थ है शरीर, प्राणायम कोश का अर्थ है प्राण, मनोमय कोश का अर्थ है मन, विज्ञानमय कोश का अर्थ है बुद्धि और आनन्दमय कोश का अर्थ है चित्त। अर्थात् शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और चित्त का विकास करना ही सर्वांगीण विकास है। व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही पंचकोशीय विकास है।

परमेष्ठीगत विकासःपरमेष्ठीगत विकास के चार चरण हैं, १. व्यष्टि २. समष्टि ३. सृष्टि ४. परमेष्ठी। व्यष्टि अर्थात् व्यक्ति, समष्टि अर्थात् समुदाय, सृष्टि अर्थात् प्रकृति और परमेष्ठी अर्थात् परमात्मा। समष्टि में चार इकाइयां आती हैं, १. परिवार २. समाज ३. देश ४. परमेष्ठीगत विकास से

तात्पर्य है व्यक्ति का व्यक्ति के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना, व्यक्ति का समुदाय के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना, व्यक्ति का सृष्टि के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना और व्यक्ति का परमात्मा के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना ही परमेष्ठीगत विकास कहलाता है।
यहां प्रश्न खड़ा होता है कि व्यष्टि का समष्टि, सृष्टि और परमेष्ठी के साथ सामंजस्य बैठाना क्यों आवश्यक है? हमारे पूर्वजों ने लाखों वर्षों के अनुभवों के बाद जीवन जीने के अनमोल सूत्र बताएं हैं। उनमें से एक सूत्र है, "सर्वं खलु इदं ब्रह्म"। इस जगत में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह सब ब्रह्म ही है। अर्थात् सबमें उस परमात्मा को देखना। परमात्मा की इस सृष्टि में व्यक्ति सबसे श्रेष्ठ है, परन्तु वह अपनी हर छोटी–बड़ी आवश्यकता की पूर्ति अन्यों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। भूमि से उसकी अन्न–जल, कपड़ा, आवास आदि आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। सम्पूर्ण वनस्पति भूमि से ही मिलती है। पंचमहाभूतों के बिना जीवन असंभव है। इन सबके बिना उसका जीवन नहीं चल सकता, सबके सहयोग से ही जीवन चलता है। इसलिए इन सबके साथ सामंजस्य बैठाना व्यक्ति की परम आवश्यकता है।

शिक्षा का भारतीय प्रतिमान विद्यार्थी को केवल व्यवसायोंन्मुखी या आजीविका कमाने के लिए तैयार नहीं करता, अपितु यह तो उसके शरीर, प्राण, मन, बुद्धि एवं चित्त का विकास करता है। यह प्रतिमान उसे अहं से त्वम्, त्वम् से वयं और वयं से सर्वं तक ले जाता है। यह उसे केवल मैं और मेरा परिवार तक संकुचित न रखकर उसे "वसुधैव कुटुंबकम्" का पाठ पढ़ाता है। यह प्रतिमान व्यक्ति को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य परमेष्ठी तक पहुँचता है। इस प्रतिमान की मुख्य विशेषता है कि यह भारतीय जड़ों से जुड़ा हुआ है और भारतीयता से जोड़ने वाला है।

3. शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमः–

शिक्षक शिक्षा स्तरीय–विशिष्ट है। इसका मतलब है कि शिक्षक शिक्षा पर कार्यक्रम पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक माध्यमिक, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की जरूरतों के अनुसार भिन्न होता है। विभिन्न स्तरों पर कक्षा लेनदेन के लिए विशिष्ट तरीके और रणनीतियाँ हैं। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में देश में एकरूपता नहीं है। कार्यक्रम व्यापक रूप से एक राज्य से दूसरे राज्य में सामग्री और प्रक्रिया में भिन्न होते हैं।हालाँकि, मुख्य रूप से पाँच प्रकार के शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम या संस्थान हैंः–

1. पूर्व–प्राथमिक शिक्षक शिक्षा
2. प्राथमिक शिक्षक शिक्षा
3. माध्यमिक शिक्षक शिक्षा
4. उच्च शिक्षा कार्यक्रम
5. व्यावसायिक शिक्षक प्रशिक्षण

1. **पूर्व–प्राथमिक शिक्षक शिक्षा**:मोंटेसरी, बालवाड़ी, नर्सरी, प्री–बेसिक आदि कई प्रकार के पूर्व–प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम हैं, इस पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता उच्च माध्यमिक है और पाठ्यक्रम की अवधि एक वर्ष है। कई संस्थान दो साल तक प्रशिक्षण देते हैं।यह प्रशिक्षण राज्य सरकार द्वारा सामान्य रूप से संचालित एक प्रमाण पत्र या डिप्लोमा पाठ्यक्रम है। ''पूर्व–स्कूल शिक्षा में डिप्लोमा'' के लिए अग्रणी दो वर्षीय पाठ्यक्रम विकसित किया गया है। सरकार द्वारा कई संस्थानों को मान्यता दी जा रही है। इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम को चलाने के लिए। यह पाठ्यक्रम एनपीई 1986 के संदर्भ में तैयार किया गया है।

2. प्राथमिक शिक्षक शिक्षा:पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान ऐसे प्रशिक्षण स्कूलों का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है, सामान्य तौर पर, पाठ्यक्रम दो साल तक रहता है और प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता मैट्रिक है। वर्तमान प्रवृत्ति उच्च माध्यमिक को प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता के रूप में निर्धारित करना है।प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए पहलेप्राथमिक प्रशिक्षण (ईटी) स्कूल पूर्व–सेवा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे थे। पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए आवश्यक बुनियादी योग्यता उच्च माध्यमिक परीक्षा पास है और अवधि दो वर्ष की है।

3. माध्यमिक शिक्षक शिक्षा:प्रशिक्षण कॉलेज, माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए स्नातक शिक्षक तैयार करते हैं। यह आम तौर पर B.Ed, डिग्री के लिए शिक्षक के सिद्धांतों और कार्यप्रणाली पर जोर देने के साथ दो वर्ष का पाठ्यक्रम है। प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक है।

4. उच्च शिक्षा:शिक्षा के उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम चार प्रकार के होते हैंः

1. दो वर्षीय एम.एड. कोर्स।
2. शिक्षा में दो वर्षीय एम.ए.।
3. तीन वर्षीय पीएच.डी., एम.एड./एम.ए (शिक्षा) के बाद पाठ्यक्रम।
4. शिक्षा के कुछ पहलुओं में स्नातकोत्तर डिप्लोमा के बाद बी.एड.।

दो वर्षीय एम.एड. कोर्सः– यह पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए खुला है, जिन्होंने बी.एड., परीक्षा उत्तीर्ण की है। उम्मीदवारों को कला या विज्ञान में मास्टर डिग्री के साथ एमएड। प्रशिक्षण स्कूलों और कॉलेजों में व्याख्याताओं की नियुक्ति के लिए योग्यता के साथ–साथ एससीईआरटी, एनआईई और एनसीईआरटी के विभिन्न प्रशासनिक पदों के लिए योग्य माना जाता है।

दो वर्षीय एमए इन एजुकेशनः– यह पाठ्यक्रम स्नातकों के लिए खुला है और कई मायनों में एम.एड. के समकक्ष माना जाता है। यह इस तथ्य की मान्यता है कि अब 'शिक्षा' को अर्थशास्त्र या इतिहास जैसे ज्ञान के अनुशासन के रूप में विकसित किया गया है। एम.एड. को शिक्षा के पक्ष में लागू माना जाता है, जबकि एमए (शिक्षा) को शिक्षा के मूल या शुद्ध पक्ष के रूप में लिया जा रहा है।

5. व्यावसायिक शिक्षक–प्रशिक्षणः– तकनीकी विषयों में प्रशिक्षण शिक्षक के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। विशिष्ट शिक्षकों को तैयार करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम और संस्थान हैं। ये इस प्रकार हैंः

- फिजिकल एजुकेशन (डीपीई) में एक वर्षीय डिप्लोमा।
- संगीत, नृत्य, चित्रकारी और ललित कला के शिक्षकों को तैयार करने के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम।
- होम साइंस के लिए शिक्षकों को तैयार करने के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम।
- कला और शिल्प में सर्टिफिकेट कोर्स।
- अंग्रेजी, हिंदी और भूगोल आदि के शिक्षण में विषेशज्ञ तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम।

4. निष्कर्षः–

शिक्षा किसी राष्ट्र के नव निर्माण एवं प्रगति की आधारशिला होती है। जिसके द्वारा देश की समृद्ध प्रतिभा एवं संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिये किया जाता है।इसके लिए आवश्यक है कि भारी–भरकम परीक्षाओं पर जोर देने के बजाय मूल्यांकन के तंत्र को बुनियादी तौर पर बदल दिया जाए ताकि विद्यार्थियों के व्यवहार में व्यापक परिवर्तन लाया जा सके। शिक्षा के इन व्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपेक्षित उपायों को समन्वित करने के उद्देश्य से माता–पिता, विद्यार्थियों, स्कूली स्तर के प्रशासकों और निजी संगठनों आदि हितधारकों के बीच नई साझेदारी विकसित की जाए। भारत की शिक्षा प्रणाली मानक और महत्वाकांक्षी पाठ्यक्रम पर केंद्रित रहनी चाहिए और विद्यार्थियों का वर्गीकरण शिक्षा के स्तर और बोर्ड की भारी–भरकम परीक्षाओं के बजाय विद्यार्थियों की आयु पर आधारित होना चाहिए। परंपरागत तौर पर सारी दुनिया में शिक्षा प्रणाली में प्राथमिकता का सीधा–सा तर्क अपना लिया गया है। इसके अनुसार स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या को बढ़ाना चाहिए, मूल अकादमिक विषयों की गुणवत्ता को बढ़ाना चाहिए और अंततः दुनिया में तरक्की करने के लिए आवश्यक कौशलों को विकसित करना चाहिए। "परिणामों पर तो जोर देना ही होगा", लेकिन सर्वसमावेशी मानव पूँजी की रणनीति को अपनाकर इसे और अधिक आगे बढ़ाना होगा।शिक्षा के आधार पर चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास ही शिक्षा के भारतीय प्रतिमान में प्रतिबिंबित होना चाहिये। शिक्षा देश की संस्कृति के अनुरूप, जीवन के लक्ष्यों का बोध करवाने वाली और उस के अनुरूप सामर्थ्य उत्पन्न करने वाली होनी चाहिये। शिक्षा धर्मनिष्ठ होने के साथ साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा चुनौतियों का सामना करने वाली होनी चाहिये।भारतीय शिक्षा के वर्तमान प्रतिमान इन सब बातों को ध्यान में रख कर ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण करें जो भारत को आत्मनिर्भर,सक्षम और समर्थ बनाते हुए परम वैभव के लक्ष्य को खुली आंखों से देख सके।

संदर्भ–ग्रंथ सूचीः–

- अधिगम एवं शिक्षण (2017), हल्द्वानीः शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उतराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
- पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा (2009), नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (5 प्रकार),https://hi.triangleinnovationhub.com/teacher-education-programmes
- शिक्षा के भारतीय प्रतिमान (09 सित. 2020),https://www.newsbharati.com/Encyc/2020/9/9/ancient-Indian-education-system-.html
- प्रजापति, वी., (2021), भारतीय शिक्षा–ज्ञान की बात–27 (भारतीय शिक्षा का प्रतिमान : समग्र विकास),https://rashtriyashiksha.com/bharatiya-education-gyan-ki-baat-27-model-of-bharatiya-education-holistic-development/

शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु गुणवतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी

डॉ. मधु गढ़वाल (प्राचार्या)
संबल कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
नवलगढ़ रोड़, शिवसिंह पुरा, सीकर (राज.)

सार

शिक्षण सामग्री वे सामग्रियां हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपने शिक्षण को सरल बनाने के लिए करते हैं। इनमें दृश्य और श्रव्य–दृश्य दोनों सहायता शामिल हैं और ये ठोस या गैर–ठोस हो सकते हैं। ये अनुदेशात्मक सामग्रियां छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करके सीखने में जान डालती हैं। सहायक सामग्री पुनर्बलन और प्रतिपुष्टि प्रदान कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अपने उद्देश्यों में सफल बनाते हैं। विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री (रेडियो, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि) के प्रयोग से बालकों को नए–नए शब्दों का अनुभव होता है, उनके शब्द भंडार में वृद्धि होती है। सहायक सामग्री बालकों की कल्पना–शक्ति का विकास करती है। शिक्षा एक ऐसा गुण है जो जीवन भर व्यक्ति के साथ रहता है। शिक्षित जनता थिंक टैंक, विकास चालक और साथ ही किसी भी राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में योगदानकर्ता होती है। 2020 तक शिक्षा का मतलब था कि एक छात्र कितनी सामग्री सीख सकता है और उसे परीक्षा में दोबारा पेश कर सकता है। यह प्रणाली नवीन विचारों, रचनात्मकता, आलोचनात्मक विश्लेषण आदि के विरुद्ध थी। कॉलेज में दाखिले के लिए उच्च कट–ऑफ अंक और बोर्ड परीक्षाओं में छात्रों का स्कोर लगभग परफेक्ट होना शिक्षा प्रणाली में गंभीर खामियों को दर्शाता है। जैसा कि सोनम वांगचुक ने कहा, "95% अंक वाले छात्रों को असफल होने का एहसास क्यों कराया जाता है"।

हालाँकि, शिक्षा में गुणवत्ता का न केवल आर्थिक विकास यानी सकल घरेलू उत्पाद या जीवन स्तर, गरीबी में कमी, बल्कि सामाजिक विकास यानी भेदभाव में कमी, जाति चेतना में कमी, लिंग अंतर और लिंग पूर्वाग्रह में कमी आदि और नैतिक मानक पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। नागरिक, नवाचार, रहने योग्यता।

गुणात्मक शिक्षा का क्या अर्थ है :–सरल शब्दों में, गुणात्मक शिक्षा का अर्थ शिक्षा का वह स्तर है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति समाज में योगदानकर्ता बन सकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वे परिणाम प्रदान करती है जो व्यक्तियों, समुदायों और समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में न केवल साक्षरता और संख्यात्मकता बल्कि व्यापक जीवन कौशल भी शामिल होना चाहिए जो उन्हें नेता और परिवर्तन–निर्माता बनने के लिए सशक्त बनाए ।

एसोसिएशन फॉर सुपरविजन एंड करिकुलम डेवलपमेंट के अनुसार, "एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वह है जो लिंग, जाति, जातीयता, सामाजिक आर्थिक स्थिति या भौगोलिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक छात्र के संपूर्ण बच्चे यानी सामाजिक, भावनात्मक, मानसिक, शारीरिक और संज्ञानात्मक विकास पर ध्यान केंद्रित करती है।" जगह। यह बच्चे को जीवन के लिए तैयार करता है, न कि केवल परीक्षण (परीक्षा) के लिए।"

शिक्षा को गुणात्मक बनाने के लिए, उसे न केवल "छात्रों को पढ़ाने" पर बल्कि "क्या पढ़ाया जा रहा है (पाठ्यक्रम) और "कैसे पढ़ाया जा रहा है" (शिक्षाशास्त्र) पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। स्कूली शिक्षा हमेशा सीखने की ओर नहीं ले जाती। दुनिया भर में, स्कूल के बाहर की तुलना में स्कूल में गैर–सीखने वालों की संख्या अधिक है।

इस प्रकार गुणात्मक शिक्षा "सीखने के परिणामों" या सीखने के परिणामों, जीवन कौशल सीखने, अमूर्त अवधारणाओं को सरल तरीके से समझाने की क्षमता (फेनमैन तकनीक) पर केंद्रित है। इसके लिए याद रखने और रटने से लेकर वास्तविक जीवन में समझने, विश्लेषण और अनुप्रयोग की ओर बदलाव की आवश्यकता है – इसमें अनुभव के माध्यम से सीखना शामिल है।

पहले शिक्षा का ध्यान, विशेष रूप से भारत में, मुख्य रूप से "प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच", "सीखने की अवधारण" और "प्राथमिक शिक्षा की प्रतिस्पर्धा" पर था। इस प्रकार, शैक्षिक परिणामों के बजाय, बड़ी संख्या में बच्चों द्वारा बुनियादी शिक्षा तक पहुंच और छात्र एक विशेष कक्षा में कितना ज्ञान रट सकते हैं, इस पर ध्यान केंद्रित किया गया था। पहले सोच यह थी कि सामग्री याद रखने से बच्चे शिक्षित होंगे। सामग्री की मात्रा को कम से कम भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मानक माना जाता था।

एसडीजी इस बात की मान्यता है कि शिक्षा का यह विचार अपर्याप्त और पुराना है। शिक्षा केवल परीक्षा में सामग्री वितरण प्रणाली नहीं है। इसे सभी बच्चों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुंचने और पूर्ण और उत्पादक नागरिकों के रूप में समाज में प्रवेश करने में मदद करने वाली एक प्रणाली के रूप में देखा जाना चाहिए।

गुणात्मक शिक्षा के प्रमुख तत्व –

सुरक्षित और सहायक शिक्षण वातावरण : –सार्थक शिक्षण के लिए, वातावरण ऐसी शिक्षा के लिए अनुकूल होना चाहिए। यहां पर्यावरण का अर्थ भौतिक वातावरण, प्रारंभिक बचपन का अनुभव और माता–पिता, शिक्षकों, सरकारों आदि से समर्थन है। प्रारंभिक बचपन के दौरान स्वस्थ विकास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह एक स्वस्थ जीवन और सफल औपचारिक स्कूल अनुभव की नींव बनाता है। व्यवहार संबंधी समस्याओं वाले बच्चों को आमतौर पर बचपन के दौरान "वंचित या बेकार परिवारों" का अनुभव होता है।

प्रारंभिक जीवन में एक बच्चे के विकास की गुणवत्ता उसके पूरे जीवन में विकास क्षमता और मुकाबला कौशल को प्रभावित करती है।

सुरक्षित और समावेशी शिक्षण वातावरण के बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं हो सकती। लड़कियों और हाशिए पर रहने वाले वर्ग यानी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए सुरक्षित वातावरण को जाति, जातीयता, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव का सामना नहीं करना चाहिए, साथ ही बेहतर सीखने के परिणामों के लिए भी आवश्यक है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षक :–ज्ञान प्रदान करने के लिए शिक्षक पाठ्यक्रम के साथ–साथ गुणात्मक शिक्षा का आधार हैं। छात्रों को सीखने में मदद करने के लिए शिक्षकों के लिए पेशेवर शिक्षा होनी चाहिए। शिक्षकों को अपने विषय के साथ–साथ शिक्षाशास्त्र पर भी महारत हासिल होनी चाहिए। एक शिक्षक की योग्यता महत्वपूर्ण है क्योंकि बुनियादी कौशल से परे छात्रों की उपलब्धि काफी हद तक विषय पर शिक्षक की पकड़ पर निर्भर करती है, उदाहरण के लिए। माध्यमिक शिक्षा संस्थानों और उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षक, अधिक जानकारी के लिए

आधारभूत संरचना :–इसमें सुरक्षित भौतिक संरचनाएं (जैसे शौचालय, कक्षाएँ), ऐसे वातावरण की स्थापना शामिल है जो सीखने की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है, कर्मचारियों को एक छात्र की आवाज़ को प्रोत्साहित करती है, और सामाजिक और भावनात्मक विकास को बढ़ावा देती है। इसमें स्कूलों की उपलब्धता और शिक्षा तक पहुँचने की प्रक्रिया कितनी सुरक्षित है, यह भी शामिल है। स्कूलों के माध्यम से . यदि लड़कियों को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में शारीरिक और यौन उत्पीड़न का अनुभव होता है तो भारत की तरह स्कूलों की यात्रा असुरक्षित है। सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण वातावरण के लिए बुनियादी ढांचे की उपलब्धता महत्वपूर्ण है।

पाठ्यक्रम :–किसी बच्चे का पाठ्यक्रम से परिचित होना उसकी उपलब्धियों और स्कूल में बच्चे के बने रहने की संभावनाओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। भारत और अफ़्रीका जैसे देशों में स्कूल छोड़ने की उच्च दर बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

गुणवत्तापूर्ण सामग्री :– यूनिसेफ के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे विषय की गहरी समझ हो सके। इसे प्रासंगिक अध्ययन यानी वास्तविक दुनिया के संदर्भ में सैद्धांतिक ज्ञान को लागू करके समस्याओं को समझने और हल करने में सक्षम होना चाहिए। प्रासंगिक शिक्षण का अर्थ है सीखने के दौरान सिखाई जाने वाली सैद्धांतिक संरचनाओं को व्यावहारिक, वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ना।

प्रिन्ट–सामग्री – पाठ्यपुस्तकें,पम्पलेट,हैंडा–आउट,अध्ययन–मार्गदर्शिकाएँ, मैनुअल

श्रव्य सामग्री– यूएसबी ड्राइव, कैसेट, माइक्रोफोन,

दृश्य सामग्री– चार्ट, वास्तविक वस्तुएँ, फोटोग्राफ, ट्रान्सपैरेन्सी

श्रव्य–दृष्य सामग्री–स्लाइड, टेप, फिल्में, टेलीविजन, मल्टिमिडिया, यू–ट्यूब

इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ–संगणक, ग्राफ दर्शाने वाले कैलकुलेटर, टैबलेट, स्मार्ट फोन

गुणात्मक शिक्षा का महत्व :–"शिक्षा को लोगों को अधिक न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और सहिष्णु समाज बनाने में मदद करने में पूरी तरह से अपनी केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए।" (बान की मून, संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव)

1. सतत विकास लक्ष्यों का लक्ष्य–4 "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" पर केंद्रित है। एसडीजी–4 के अनुसार, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सतत विकास की नींव है, और इसलिए सतत विकास लक्ष्यों की नींव है। 2030 तक शिक्षा के वैश्विक लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रत्येक बच्चे को समावेशी, गुणवत्तापूर्ण पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने और उसे पूरा करने में सक्षम होना चाहिए।
2. शिक्षा पीढ़ियों से चली आ रही गरीबी और भुखमरी को कम करती है और विशेष रूप से माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य परिणामों में सुधार करती है। इस प्रकार यह राष्ट्रों के सामाजिक–आर्थिक संकेतकों के लिए महत्वपूर्ण है।
3. शिक्षा राष्ट्रों के आर्थिक स्वास्थ्य में सुधार करती है, नागरिक भागीदारी बढ़ाती है और संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान की संभावना बढ़ाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को यूं ही नहीं छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि यह वह आधार है जिस पर देश अपनी आबादी के समग्र स्वास्थ्य, कल्याण और आर्थिक जीवन शक्ति में सुधार के लिए भरोसा करते हैं।
4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा यह भी सुनिश्चित करती है कि मनुष्य प्रकृति के साथ सद्भाव में रहें और प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग करें। दुनिया भर के लोगों को एक स्थायी भविष्य के निर्माण के लिए ज्ञान और कौशल विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए।
5. प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, अपर्याप्त शिक्षण सामग्री, अस्थायी कक्षाएं और खराब स्वच्छता सुविधाएं कई बच्चों के लिए सीखना कठिन बना देती हैं। यूनिसेफ इसे "सीखने का संकट" के रूप में वर्णित करता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव बच्चों और किशोरों को जीवन, कार्य और सक्रिय नागरिकता के लिए तैयार करने में सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती है।
6. यूनिसेफ के अनुसार खराब गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच बिल्कुल भी शिक्षा न होने के बराबर है। गुणवत्ता न केवल कक्षाओं में क्या होता है, बल्कि कक्षाओं के बाहर क्या होता है, उससे भी प्रभावित होती है।

गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारतीय मानक :–भारत में गुणात्मक शिक्षा को विशेष रूप से परिभाषित नहीं किया गया है, बल्कि इसे विभिन्न संकेतकों या गुणों से समझा जाता है जो एक व्यक्ति या बच्चे के जीवन के एक निश्चित चरण में होने चाहिए। जैसे आलोचनात्मक विश्लेषण करने की क्षमता, योग्यता, रोजगार योग्यता, किसी कार्य को करने में दक्षता आदि।

प्राथमिक स्तर :–प्राथमिक स्तर पर, गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) को गुणात्मक शिक्षा के रूप में समझा जाता है। यूनेस्को के अनुसार ईसीसीई केवल प्राथमिक विद्यालय शिक्षा की तैयारी से कहीं अधिक है। यह आजीवन सीखने और कल्याण के लिए एक ठोस आधार बनाने के लिए बच्चे की सामाजिक, भावनात्मक, संज्ञानात्मक और शारीरिक आवश्यकताओं का समग्र विकास है।

प्राथमिक स्तर पर सीखने के परिणाम :–एक बच्चे के सीखने के परिणामों की निगरानी के लिए, कक्षा 3 , 5 और 8 के छात्रों का राष्ट्रीय मूल्यांकन सर्वेक्षण (एनएएस) आयोजित किया गया । इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य इस बात की समग्र तस्वीर प्राप्त करना था कि विशिष्ट कक्षा के छात्र क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं और इन निष्कर्षों का उपयोग कमियों की पहचान करने, उन क्षेत्रों का निदान करने के लिए करना था जिनमें सुधार की आवश्यकता है। इस डेटा के माध्यम से डेटा एनालिटिक्स ने छात्रों के सीखने में सुधार के लिए नीतियां और हस्तक्षेप तैयार करने में मदद की।

2017 में एनसीईआरटी ने प्रारंभिक चरण में सीखने के परिणाम शीर्षक से दस्तावेज़ जारी किया। इसने पहली बार स्कूलों के लिए सीखने के परिणामों पर एक बेंचमार्क प्रदान किया। यह विस्तार से प्रदान करता है कि कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों को अंग्रेजी, गणित, पर्यावरण अध्ययन और विज्ञान में समस्या–समाधान क्षमताओं को प्राप्त करने सहित क्या समझने और करने में सक्षम होना चाहिए। कई विशेषज्ञों ने इसका स्वागत किया है क्योंकि इसने पहली बार स्कूलों द्वारा सीखने के परिणामों के रूप में प्राप्त किए जाने वाले संस्थागत लक्ष्य बनाए हैं जो आमतौर पर छात्रों के पास होने चाहिए।

स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक :–नीति आयोग ने स्कूली शिक्षा में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (UT) के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए SEQI विकसित किया है। नीति आयोग के लिए यह सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद को आगे बढ़ाने का एक तरीका है। यह सूचकांक भारत में स्कूली शिक्षा परिदृश्य की विविधता और जटिलता को दर्शाता है। यह राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को डेटा–संचालित निर्णय

लेने के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है, जिसमें गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हस्तक्षेपों का बेहतर लक्ष्यीकरण भी शामिल है।

SEQI का लक्ष्य सीखने के स्तर, पहुंच, समानता और बुनियादी ढांचे और शासन प्रक्रिया में सुधार करके "शिक्षा परिणामों" में सुधार करना है।

सीखने के परिणाम को इस रूप में दिखाया जाता है कि बच्चे कक्षा 3, कक्षा 5 और कक्षा 8 में भाषा और गणित में कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 4 के अनुसार, यदि किसी बच्चे को सीधे प्रवेश दिया जाता है एक कक्षा में जो उसकी उम्र के लिए उपयुक्त है, तो उस बच्चे को दूसरों के बराबर होने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। इसके अलावा धारा 4 में कहा गया है कि प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश पाने वाला बच्चा चौदह वर्ष के बाद भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक मुफ्त शिक्षा का हकदार होगा । पहुंच परिणाम को नामांकन अनुपात का विश्लेषण करके मापा जाता है यानी कितने नए छात्र स्कूल में शामिल होते हैं और संक्रमण दर से यानी कितने छात्र प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक जाते हैं। इस संबंध में। निःशुल्क और अनिवार्य बच्चों की शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत मॉडल नियमों की धारा 4 ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह स्कूलों तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए राज्य पर कर्तव्य थोपती है।

नियम 4(1) के अनुसार, राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह कक्षा 1 से 5 वीं (प्राथमिक विद्यालय) के बच्चों के लिए पड़ोस के 1 किमी की पैदल दूरी के भीतर एक स्कूल स्थापित करे और 3 की दूरी के भीतर भी एक स्कूल स्थापित करे। कक्षा 6 वीं से 8 वीं तक के लिए पड़ोस का किमी .

इसके अलावा नियम 4(7) के तहत विकलांग बच्चों के लिए जो उन्हें स्कूल तक पहुंचने से रोकते हैं, राज्य सरकार/स्थानीय प्राधिकरण को उनके लिए स्कूल जाने और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए उचित और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करनी चाहिए। नियम 5(1) के अनुसार विकलांग बच्चों को निःशुल्क विशेष शिक्षण एवं सहायता सामग्री उपलब्ध करायी जायेगी।

इक्विटी परिणाम सामान्य श्रेणी के छात्रों की तुलना में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के प्रदर्शन (सीखने के परिणाम) को मापता है। इससे यह पता चलता है कि सीखने की प्राप्ति और परिणाम के बीच कितनी असमानता है। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के छात्रों और लड़कों और लड़कियों के बीच सीखने के परिणामों में अंतर को भी मापता है।

गुणात्मक शिक्षा के लिए सूचकांक महत्वपूर्ण है क्योंकि बचपन के प्रारंभिक वर्ष (विश्व स्तर पर 0–8 वर्ष) मानव जीवन चक्र में संज्ञानात्मक, मोटर, सामाजिक और भावनात्मक विकास का सबसे महत्वपूर्ण चरण है।ैम्फप् 2019 के अनुसार, प्रारंभिक बचपन में सबसे महान और सबसे शक्तिशाली तुल्यकारक होने की क्षमता है।

भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बाधाएँ और एनईपी–2020 से सुधारों का सुझाव दिया गया :–

ब्रिटिश भारत में शिक्षा प्रणाली अभिजात्यवादी थी, हालाँकि साक्षरता दर 16% थी, जिसमें महिला साक्षरता दर मात्र 8.9% थी। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद ध्यान स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों के नामांकन को सुनिश्चित करने, शैक्षणिक संस्थानों के विस्तार, समानता यानी जाति, धर्म, क्षेत्र, रीति–रिवाजों आदि के कारण शिक्षा प्रणाली से बहिष्कृत लोगों को शामिल करने पर था। यह 6 दशकों तक चला। वर्तमान शिक्षा प्रणाली यंत्रवत है, जो बच्चों को ऐंठने वाली मशीन समझती है। यह रचनात्मक सोच, मूल्यों, व्यवहार आदि को दबाता था, यह रटने और परीक्षाओं के लिए सीखने (रिटेंशन) पर अधिक ध्यान केंद्रित करता था।

राष्ट्रीय शैक्षिक नीति 2020 (एनईपी 2020) ने भारत में शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदल दिया है। यह पहले के एनईपी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर विचारों से एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है।

शुरुआत में, एनईपी 2020 के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मतलब न केवल "बुनियादी संख्यात्मकता और साक्षरता कौशल" प्राप्त करना है, बल्कि भारत की समृद्ध और विविध, प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों, नैतिकता, सहानुभूति, सम्मान जैसे संवैधानिक मूल्यों को समझना भी है। अन्य, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के प्रति सम्मान, वैज्ञानिक स्वभाव, स्वतंत्रता, बहुलवाद, समानता और न्याय। यह शिक्षण और सीखने में

बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति को भी पहचानता है। एनईपी 2020 का लक्ष्य नव सुधारित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से नागरिकों में इन गुणों को विकसित करना है।

शिक्षकों की अनुपस्थिति :–सरकारी स्कूल में शिक्षकों की अनुपस्थिति, विशेषकर ग्रामीण और अर्ध–शहरी स्कूलों में। "शिक्षक अनुपस्थिति" का अर्थ है जब शिक्षक के पास अपनी अनुपस्थिति का कोई वैध कारण नहीं होता है। यह "शिक्षक अनुपस्थिति" से भिन्न है, जो शिक्षक या शिक्षक के अधिकृत अवकाश पर न होने या शिक्षक द्वारा अन्य विभागीय कार्य करने के कारण हो सकता है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की रिपोर्ट के अनुसार, आमतौर पर शिक्षकों की अनुपस्थिति 2–5% की सीमा में होती है, जबकि कुल शिक्षक अनुपस्थिति 20% की सीमा में होती है। वास्तव में कक्षाओं में पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं होने के कारण, छात्र शायद ही कभी स्कूल आने के लिए प्रेरित होते हैं, घर पर रहना और पारिवारिक व्यवसायों में मदद करना पसंद करते हैं ।

एनईपी–2020 शिक्षक–से–छात्र अनुपात 30:1 का प्रावधान करता है यानी प्रत्येक 30 छात्रों के लिए 1 शिक्षक और जिन स्कूलों में बड़ी संख्या में छात्र सामाजिक और शैक्षणिक रूप से वंचित वर्ग से हैं, वहां शिक्षक–से–छात्र अनुपात 25 होगा। :1.

समाधान :– इससे निपटने के लिए, राज्य सरकारों ने सरकारी स्कूलों से शिक्षकों की अनुपस्थिति को रोकने के लिए बायोमेट्रिक मशीनें लगाने को कहा।

ख़राब सीखने के परिणाम :–एएसईआर 2018 के अनुसार , कक्षा 5 के सभी छात्रों में से केवल आधे (50.3%) ही कक्षा 2 का पाठ पढ़ सकते हैं। इसके अलावा, 14–18 आयु वर्ग में, केवल 43% ही सरल विभाजन सही ढंग से करने में सक्षम थे, जबकि 14 में से 47% वर्षों पुराना सरल अंग्रेजी वाक्य नहीं पढ़ सका। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहले शिक्षा नीतियों और योजनाओं का ध्यान मुख्य रूप से केवल स्कूलों तक पहुंच पर था और प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पर ज्यादा नहीं था। भले ही प्राथमिक शिक्षा का चक्र पूरा हो जाए लेकिन यदि शिक्षा पाठ्यक्रम खराब गुणवत्ता का है तो मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल खराब होंगे। मात्रा–गुणवत्ता के व्यापार–परिणामों को "सीखने के संकट" के रूप में परिभाषित किया गया है, जहां प्राथमिक विद्यालय में छात्रों के एक बड़े हिस्से ने मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल प्राप्त नहीं किया है। इससे धरातल पर शिक्षा की गुणवत्ता का पता चलता है।

समाधान :– भारत का जनसांख्यिकीय लाभांश छात्रों की कमाई के स्तर पर निर्भर करता है, इसका सीधा असर अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। एएसईआर रिपोर्ट के अनुसार, विषय या सामग्री सीखने के बजाय संज्ञानात्मक कौशल पर ध्यान केंद्रित करके इसे हल किया जा सकता है। यह स्मृति निर्माण करने वाली खेल–आधारित गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करने का सुझाव देता है। तर्क और समस्या–समाधान की क्षमताएं केवल सामग्री ज्ञान की तुलना में अधिक उत्पादक हैं।

एनईपी–2020 का लक्ष्य 5+3+3+4 के नए पाठ्यक्रम के माध्यम से इससे निपटना है। इस नए ढांचे के तहत 3–6 साल की उम्र के बच्चे अब "बुनियादी चरण" के रूप में औपचारिक स्कूली शिक्षा प्रणाली का हिस्सा हैं। इसका लक्ष्य एक छात्र के कक्षा 3 तक पहुंचने तक सभी छात्रों द्वारा मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है। 2020 की नीति "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा" (ईसीसीई) पर जोर देती है। स्वस्थ मस्तिष्क के विकास के लिए प्रारंभिक वर्षों में उचित मस्तिष्क उत्तेजना आवश्यक है। अच्छा ईसीसीई छोटे बच्चों को जीवन भर शिक्षा में आगे बढ़ने में सक्षम बनाता है। एनईपी2020 के अनुसार "ईसीसीई तक सार्वभौमिक पहुंच की कमी के कारण, बच्चों का बड़ा हिस्सा ग्रेड 1 के पहले कुछ हफ्तों के भीतर ही पिछड़ गया। एनईपी–2020 का लक्ष्य 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है।" यह पहलू इतना महत्वपूर्ण है कि यह कहता है कि बाकी नीति छात्रों के लिए तभी प्रासंगिक होगी जब यह सबसे बुनियादी आवश्यकता यानी पढ़ना, लिखना और अंकगणित कौशल का मूलभूत स्तर हासिल किया जाएगा। इसने एक प्रशिक्षित शिक्षक की देखरेख में छात्रों के लिए एक स्वैच्छिक और आनंददायक गतिविधि के रूप में एक–पर–एक सहकर्मी को पढ़ाने का भी प्रावधान किया। इससे उन बच्चों पर ध्यान दिया जा सकेगा जिन्हें इसकी आवश्यकता है।

छोड़ने वालों की दर :–डॉ. शशि थरूर का कहना है कि पहले जब बच्चे स्कूल से बाहर थे तो यह माता–पिता की गलती थी, लेकिन अगर अब वे स्कूल से बाहर हैं, तो यह सिस्टम की गलती है, सरकारी स्कूलों में, खासकर ग्रामीण इलाकों में कई बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि वे कक्षा में क्या

पढ़ाया जा रहा है यह समझने में असमर्थ होना। सामग्री (पाठ्यचर्या) की गुणवत्ता और शिक्षण के तरीके (शिक्षाशास्त्र) की कमी इस पहलू के लिए महत्वपूर्ण है। आगे शिक्षक शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एनईपी–2020 में कहा गया है कि ग्रेड 6–8 के लिए सकल नामांकन अनुपात 90.9% था, जबकि ग्रेड 9–10 और 11–12 के लिए यह क्रमशः 79.3% और 56.5% था, जो दर्शाता है कि नामांकित छात्रों का एक महत्वपूर्ण अनुपात ग्रेड के बाद पढ़ाई छोड़ देता है। 5 और विशेषकर ग्रेड 8 के बाद।

इसके अलावा काउंसिल फॉर सोशल डेवलपमेंट की एक रिपोर्ट के अनुसार, नई दिल्ली 71वें एनएसएसओ के आधार पर 6–14 आयु वर्ग के 4.5 करोड़ से अधिक बच्चे स्कूल से बाहर थे। यह एक गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत भी, जो मुफ्त अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है, ड्रॉप–आउट दर अधिक है। इसका कारण यह है कि स्कूल छोड़ने वाले अधिकांश छात्र कम आय वाले परिवारों, भूमिहीन या सीमांत परिवारों से होते हैं, जिससे परिवारों को अस्तित्व और शिक्षा की दुविधा का सामना करना पड़ता है। लड़कों के स्कूल छोड़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण परिवार की कमाई को पूरा करना था और लड़कियों के लिए घरेलू काम में भाग लेने की मजबूरी थी। हालाँकि, इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत नियमों का खराब कार्यान्वयन था। इसमें 1 किमी के भीतर प्राथमिक विद्यालय और 3 किमी के भीतर उच्च प्राथमिक विद्यालय की उपलब्धता का प्रावधान है। यदि इन्हें लागू किया गया तो ड्रॉप–आउट का एक कारण अर्थात्

समाधान :– जब तक आवश्यक शिक्षक और बुनियादी ढांचे वाले स्कूलों की निर्धारित संख्या उपलब्ध नहीं हो जाती, तब तक स्कूल तक यात्रा के लिए रियायती साधन उपलब्ध कराना आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम में संशोधन करके गरीब परिवारों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए वित्तीय सहायता शामिल की गई है। शिक्षा प्रदान करने में गुणवत्ता सुनिश्चित करना छात्रों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है ताकि वे (विशेष रूप से, अन्य सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों की लड़कियां और छात्र) स्कूल जाने में रुचि न खोएं।

एनईपी–2020 में परिकल्पित खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा पर आगे ध्यान केंद्रित करने से छात्रों को अमूर्त अवधारणाओं को समझने में मदद मिलेगी। अनुभव और सीख के माध्यम से शिक्षा देना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि रटना स्पष्ट रूप से विफल हो गया है। शिक्षा ज्ञात से अज्ञात की ओर होनी चाहिए। ड्रॉप–आउट दरों को रोकने के लिए प्रारंभिक और मध्य विद्यालय में पढ़ने, लिखने, बोलने, अंकगणित और गणितीय सोच के अलावा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता पर सुधारित पाठ्यक्रम और बढ़ते फोकस की आवश्यकता है।

एक पुराना पाठ्यक्रम जो याद रखने पर केंद्रित है :–अब तक शिक्षा नीतियों का फोकस छात्रों को अधिक सामग्री सीखाना था ताकि वे परीक्षाओं में बेहतर स्कोर कर सकें। शिक्षा एक "अनुष्ठान" नहीं होनी चाहिए जिसके सामने एक पाठ्यपुस्तक हो और उसकी विषय–वस्तु को दोहरा दिया जाए। यह हाल सिर्फ स्कूली शिक्षा का ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा का भी है। पुराने पाठ अभी भी बच्चों और कॉलेज के छात्रों द्वारा उपयोग किए जा रहे हैं, जिनमें ज्ञान के व्यावहारिक और वास्तविक दुनिया के पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। बचपन के प्रारंभिक स्तर पर, रटने की यह पद्धति हानिकारक है और सीखने को अरुचिकर बना देती है। पाठ्यक्रम प्रासंगिक शिक्षा पर आधारित होना चाहिए, जब छात्र किताबों में सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ सकते हैं, तो वे इसे बनाए रखने में सक्षम होंगे और अवधारणा को पूरी तरह से आत्मसात करने में मदद करेंगे।

समाधान :– सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों पर जोर देने के साथ, सभी छात्रों के लिए सीखने को सुनिश्चित करने के लिए, एनईपी–2020 स्कूली शिक्षा के दायरे को व्यापक बनाने के लिए सीखने के कई रास्ते प्रदान करता है जिसमें औपचारिक यानी कक्षा के भीतर और शिक्षा के गैर–औपचारिक दोनों तरीके शामिल हैं। बच्चों को बाहरी यात्राएँ करना, घटनाओं को देखकर सीखना या दिन–प्रतिदिन की सरल प्रक्रिया में सिद्धांत का अनुप्रयोग पसंद है। भारत में उन युवाओं की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) और राज्य मुक्त विद्यालयों द्वारा प्रस्तावित मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) कार्यक्रमों का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया जाएगा, जो शारीरिक स्कूल में भाग लेने में सक्षम नहीं हैं।

एनसीईआरटी को 8 वर्ष तक के बच्चों के लिए "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढांचा (एनसीपीएफईसीसीई)" विकसित करने का भी दायित्व सौंपा गया

है। मूलभूत स्तर (3–8 वर्ष) पर प्रारंभिक शिक्षा का विकास "खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा" पर आधारित होगा।

स्कूली शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा, एनसीएफएसई 2020–21, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों के आधार पर एनसीईआरटी द्वारा तैयार किया जाएगा। यह नया पाठ्यक्रम भारतीय जनता के लिए गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करेगा।

आगे नीति गणितीय कौशल और सोच विकसित करने के महत्व को पहचानती है, इस प्रकार, गणित और कम्प्यूटेशनल सोच में पूरे स्कूल के वर्षों में सुधार किया जाएगा, मूलभूत स्तर से शुरू करके और पहेलियों और खेलों के नियमित उपयोग जैसे नवीन तरीकों के माध्यम से जो गणितीय सोच को और अधिक मनोरंजक बनाते हैं, कोडिंग से जुड़ी गतिविधियाँ मध्य चरण में शुरू की जाएंगी।

आईसीटी के आगे उपयोग से स्कूल और उच्च शिक्षा संस्थान में भी सीखने के स्तर में सुधार होगा। आईसीटी सीखने को सहज और रोचक बनाने में मदद करता है। जब सीखना उबाऊ या समझने में मुश्किल नहीं होगा तो ड्रॉप–आउट दरें भी कम हो जाएंगी। इससे गुणात्मक सामग्री की कमी के कारण शहरी और ग्रामीण छात्रों के बीच शिक्षा का विभाजन भी कम हो जाएगा। हालाँकि, आईसीटी उपकरण केवल कंप्यूटर लैब उपलब्ध कराने से कहीं अधिक हैं। आज इसका मतलब चौथी औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करना है जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट–ऑफ–थिंग्स, बिग–डेटा एनालिटिक्स के उपकरण शामिल हैं। स्कूलों में आईसीटी उपकरणों के शुरुआती प्रदर्शन से बच्चों को साइबर–धमकाने और साइबर–अपराधों का शिकार नहीं बनने में भी मदद मिलेगी।

शिक्षक की शिक्षा :–एक शिक्षक में निवेश करना भविष्य में निवेश करना है। न्यायमूर्ति वर्मा आयोग के अनुसार , 2012 की टूटी हुई शिक्षक शिक्षा प्रणाली 370 मिलियन से अधिक शिक्षकों को खतरे में डाल रही है। इसमें कहा गया है कि 85% से अधिक शिक्षक केंद्रीय–शिक्षक पात्रता परीक्षा (सी–टीईटी) में असफल हो जाते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षक गुणात्मक शिक्षा प्रणाली के केंद्र में हैं। शिक्षक शिक्षा, भर्ती, सेवा शर्तों और शिक्षकों के सशक्तिकरण की गुणवत्ता वह नहीं है जहाँ होनी चाहिए, और इस प्रकार शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रेरणा वांछित मानकों तक नहीं पहुँच पाती है।

समाधान :– ईसीसीई के लिए, 2020 नीति ईसीसीई की सामग्री और शिक्षाशास्त्र में विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों और श्रमिकों की भर्ती का प्रावधान करती है। ईसीसीई के लिए यह विशेष ईसीसीई प्रशिक्षकों की भूमिका पर जोर देता है। एनसीईआरटी को उच्च गुणवत्ता वाले ईसीसीई शिक्षकों के प्रारंभिक कैडर के लिए एक प्रणाली विकसित करने का आदेश दिया गया है और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को भी ईसीसीई में प्रशिक्षित किया जाएगा। यह "प्रारंभिक साक्षरता और संख्यात्मक कौशल" विकसित करने में सक्षम होगा। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री दीक्षा– ज्ञान साझा करने के लिए डिजिटल बुनियादी ढांचे पर उपलब्ध कराई जाएगी।

बुनियादी स्तर से आगे के सभी पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र को फिर से डिजाइन किया जाएगा और यह भारत की संस्कृति, परंपराओं, विरासत, दर्शन, भूगोल, वैज्ञानिक आवश्यकताओं सहित भारतीय और स्थानीय संदर्भ पर आधारित होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा प्रासंगिक, प्रासंगिक, दिलचस्प और हमारे छात्रों के लिए प्रभावी।

नई नीति में शिक्षक शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार 4–वर्षीय बीएड पाठ्यक्रम की शुरूआत है। सामग्री और शिक्षाशास्त्र दोनों के संदर्भ में बेहतर परीक्षण सामग्री तैयार करने के लिए शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) में सुधार किया जाएगा। टीईटी को स्कूली शिक्षा के सभी चरणों (बुनियादी, प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक) के शिक्षकों को शामिल करने के लिए भी बढ़ाया जाएगा।

शिक्षकों को स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं के साथ–साथ ऑनलाइन शिक्षक विकास मॉड्यूल के माध्यम से अपने पेशेवर क्षेत्र में नवीनतम नवाचारों और प्रगति को सीखने के लिए आत्म–सुधार के अवसर दिए जाएंगे। इस प्रकार नीति सतत व्यावसायिक विकास पर केंद्रित है।

शिक्षा कानून के शासन को कैसे मजबूत कर सकती है?

कानून के शासन और कानून की संस्कृति को बढ़ावा देने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। कानून का शासन समाज के सभी पहलुओं, सार्वजनिक और निजी, दोनों के लिए मौलिक है, जो व्यक्तियों के एक–दूसरे के साथ और समाज के सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक संस्थानों के साथ बातचीत करने के तरीके को आकार देता है – विश्वास और पारस्परिक जवाबदेही के रिश्ते बनाता है। यही

कारण है कि कानून के शासन और कानून की संस्कृति (सीओएल) को बढ़ावा देने वाली शिक्षा इतनी महत्वपूर्ण है।

सार्वजनिक हित के रूप में, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालियों की कानून के शासन के सिद्धांतों को बनाए रखने और आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी है; जिसमें कानून की सर्वोच्चता, कानून के समक्ष समानता, कानून के प्रति जवाबदेही, कानून के अनुप्रयोग में निष्पक्षता, शक्तियों का पृथक्करण, निर्णय लेने में भागीदारी, कानूनी निश्चितता, मनमानी से बचाव और प्रक्रियात्मक और कानूनी पारदर्शिता शामिल है।

शिक्षा भविष्य की पीढ़ियों को राज्य संस्थानों को जवाबदेह बनाने के लिए तैयार कर सकती है और शिक्षार्थियों को ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस कर सकती है जो न्याय और मानवाधिकारों का समर्थन करने वाले नैतिक रूप से जिम्मेदार निर्णय लेने के लिए आवश्यक हैं। चूंकि लोकतंत्र के जीवित रहने के लिए कानून का शासन महत्वपूर्ण है, इस सिद्धांत पर जनता को शिक्षित करने से लोकतंत्र को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

कानून के शासन को बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों द्वारा एसडीजी 16 के तहत लक्ष्यों में से एक के रूप में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है "स्थायी विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समाजों को बढ़ावा देना, सभी के लिए न्याय तक पहुंच प्रदान करना और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेह और समावेशी संस्थानों का निर्माण करना।" "। आगे लक्ष्य 16.3 स्पष्ट रूप से कहता है 'राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानून के शासन को बढ़ावा देना और सभी के लिए न्याय तक समान पहुंच सुनिश्चित करना।

शिक्षा उन व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों को सक्षम बनाती है जो कानून के शासन को बढ़ावा देने और बनाए रखने के लिए आवश्यक है :–

1. प्रमुख ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार के विकास और अधिग्रहण को सुनिश्चित करना।
2. शिक्षार्थियों को अपने दैनिक जीवन में कानून के शासन के सिद्धांतों को महत्व देने और लागू करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. शिक्षार्थियों को उनके लिए आवश्यक उचित ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस करना।
4. समाज में इसके निरंतर सुधार और पुनर्जनन में अधिक व्यापक रूप से योगदान देना।

निष्कर्ष :–शिक्षा एक मानवाधिकार और सार्वजनिक भलाई है जो दुनिया के स्वास्थ्य और भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को प्रत्येक बच्चे का बुनियादी अधिकार माना जाना चाहिए (एनईपी–2020)।एनईपी–2020 ने यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न दिशानिर्देश और भविष्य की संभावनाएं निर्धारित की हैं कि "विज़न 2030" में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके और भारत 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को पूरा कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत में शिक्षा : छात्र असफल हो रहे हैं या व्यवस्था? सोनम वांगचुक
- मस्तिष्क विकास, बाल विकास – वयस्क स्वास्थ्य और कल्याण और बाल चिकित्सा, जे फ्रेजर मस्टर्ड, कैनेडियन इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड रिसर्च, टोरंटो, ओंटारियो
- 2030 सतत विकास लक्ष्य और सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का लक्ष्यः एजुकेशनइंटरनेशनल और एएससीडी से समर्थन का एक बयान
- शिक्षा में गुणवत्ता को परिभाषित करना, यूनिसेफ, शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कार्य समूह फ्लोरेंस, इटली जून 2000
- लड़कियों के दृष्टिकोण से, सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, यूनिसेफ, अप्रैल 2002
- शिक्षक अनुपस्थिति अध्ययनः शिक्षा में क्षेत्रीय अध्ययन मार्च 2017, अज़ीन प्रेमजी विश्वविद्यालय।
- एक सुशिक्षित दिमाग बनाम एक सुगठित दिमागः 2013 में डॉ. शशि थरूर

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं

डॉ. मौसम पारीक
(सहायक आचार्य)
संजय टी.टी. कॉलेज,
जयपुर
email id: mosam.pareek@gmail.com

डॉ. ममता पारीक
(सहायक आचार्य)
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज,
लक्ष्मणगढ़, सीकर
email id: mamtapareek2012@gmail.com

सारांशः–
शिक्षक शिक्षा, शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रम में उन युवाओं हेतु एक व्यावसायिक तैयारी है, जो शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करना चाहते हैं।हम एक समृद्ध संस्कृति का हिस्सा हैं और अगर शिक्षा हमें उससे दूर करती है, तो यह गंभीर रूप से गलत है। जब हम कहते हैं कि हमें शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने की आवश्यकता है, तो हमारा मतलब है कि हमें ऐसी सामग्री बनाने और पेश करने की आवश्यकता है जो भारतीय लोकाचार, मानसिकता, प्रथाओं और विरासत का प्रतिनिधित्व करती हो।राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षक की एक आदर्श अवधारणा प्रस्तुत की गई है, जो प्राचीन भारतीय शिक्षकों की तरह विद्वता, नैतिक आचरण, कर्तव्य परायणता और विश्व के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील शिक्षक की कार्यप्रणाली की याद दिलाती है।शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम मे जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कुछ चुनौतियाँ इस प्रकार हैंःअनुपयुक्त पाठ्यक्रम, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा, अपर्याप्त संसाधन, योग्य प्रशिक्षकों की कमी, अच्छे शोध कार्य का अभाव, मानवीय मूल्यों की अवहेलना, दोषपूर्ण अध्यापन विधि, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव आदि। शिक्षक शिक्षा के बदलाव से जुड़े प्रश्नों के केन्द्र में उच्चशिक्षा में शिक्षक शिक्षा के स्थान, गुणवत्ता, पाठ्यचर्या की पुनःसंरचना और उसके क्रियान्वयन के पक्षों को मजबूत करने की राह तथा शिक्षा और उदीयमान सामाजिक सरोकारों के मध्य संवाद सेतु की स्थापना की संभावना की जानी चाहिए कक्षा–कक्षों के अध्यापन को जीवन्तता प्रदान कर बदलते समाज की आवश्यकताओं पर अवलम्बित रोजगारपरक अपेक्षित कौशल आधारित एवं उच्च नैतिक–सामाजिक–आध्यात्मिक–भावात्मक मूल्यों से अंलकृत शिक्षा में गुणवत्ता की वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य पुस्तकों में बदलाव लाने होंगें तथा शिक्षक शिक्षा के प्लेटफॉर्म पर शिक्षकों में आत्मविश्वास, विषयगत प्रभावी जानकारी, शिक्षण कौशलों का विकास एवं आधुनिक सूचना तकनीकी एवं सम्प्रेषण प्रविधियों से सुसज्जित करने हेतु प्रयास करना होगा। धन, समय व दूरी की सीमाओं को लांघकर विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दस्तक देनी होगी।

1.प्रस्तावनाः–

प्राचीन काल में भारत शिक्षा का सर्वोच्च केन्द्र रहा है। तक्षशिला, नालंदा आदि ऐसे स्थान थे जहाँ पर भारत केविभिन्न राज्यों से ही नहीं वरन् विदेशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इसका कारण भारत की शिक्षा व्यवस्था का उत्कृष्ट व शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों का सुव्यवस्थित होना था। यद्यपि प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तरह शिक्षक प्रशिक्षण का कोई विधिवत् विधान नहीं था। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय अध्यापक को तैयार या प्रशिक्षित नहीं किया जाता था बल्कि वह अपने जीवन के अनुभवों से सीख कर ही अध्यापक बनता था और अपने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के अनुभवों से ही वह वास्वितक प्रशिक्षण प्राप्त करता था।

अध्यापक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धूरी है। अतः अध्यापकोंके निर्माण के लिए उचित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता है।बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। किसी भी देश के बच्चों की स्थिति व विकास को देख कर उस देश केवर्तमान तथा उसके भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। किसी भी देश का भविष्य उस देश के अध्यापकों के हाथ में होता है क्योंकि किसी भी देश का भविष्य उस

देश के बच्चे होते हैं और इन बच्चों या विद्यार्थियों का सही आकार देने का कार्य एक शिक्षक का ही होता है। अगर यह शिक्षकसही ढंग से प्रशिक्षित होगा तभी देश के भावी भविष्य का निर्माण कर पाएगा। कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर सेउपर नहीं उठ सकता। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी कहा गया है कि किसी भी समाज की संस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि कापता उस समाज में अध्यापकों के स्तर से पता चलता है। ऐसी ही दृष्टिकोण रखते हुए कोठारी कमीशन ने कहा है कि देश काभविष्य कक्षा–कक्ष में आकार ले रहा है। देश के इस भविष्य को आकार देने का कार्य शिक्षक का है। यदि शिक्षक स्वयंसुशिक्षित व प्रशिक्षित है तो वह देश के भविष्य को सही आकार दे पाएगा अन्यथा वही उसे विकृत कर देगा। शिक्षक के महत्वपूर्ण स्थान को देखते हुएविभिन्न आयोगों, समितियों आदि ने शिक्षक के प्रशिक्षण पर बल दिया।

2. शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम में भारतीयकरण की चुनौतियांः–

हम एक समृद्ध संस्कृति का हिस्सा हैं और अगर शिक्षा हमें उससे दूर करती है, तो यह गंभीर रूप से गलत है। जब हम कहते हैं कि हमें शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने की आवश्यकता है, तो हमारा मतलब है कि हमें ऐसी सामग्री बनाने और पेश करने की आवश्यकता है जो भारतीय लोकाचार, मानसिकता, प्रथाओं और विरासत का प्रतिनिधित्व करती हो। इस तरह, हम अपने समाज की समस्याओं के लिए जो समाधान विकसित करेंगे, वे हमारी भूमि के लिए अधिक उपयुक्त होंगे। हम अपने ही लोगों के लिए बाहरी नहीं होंगे, मातृभूमि के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने वाली शिक्षा समय की मांग है।शिक्षक शिक्षा, शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रम में उन युवाओं हेतु एक व्यावसायिक तैयारी है, जो शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करना चाहते हैं। यह व्यावसायिक तैयारी अनेक प्रकार की हो सकती है– परंपरागत अथवा वस्तुनिष्ठता से युक्त एवं आबद्ध, जिसका लक्ष्य है– विद्वता एवं खुलेपन के लिए समर्पित प्रगतिशील शिक्षक वर्ग की उपलब्धि, जो विद्यार्थियों की व्यक्तिपरकता अथवा आत्मनिष्ठा के प्रति अभिमुख हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षक की एक आदर्श अवधारणा प्रस्तुत की गई है, जो प्राचीन भारतीय शिक्षकों की तरह विद्वता, नैतिक आचरण, कर्तव्य परायणता और विश्व के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील शिक्षक की कार्यप्रणाली की याद दिलाती है। इसके साथ ही यह नीति मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, सूचना–संचार की तकनीकों और अत्याधुनिक उपकरणों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने में समर्थ तथा आधुनिक नवाचारों एवं ज्ञान–विज्ञान में दक्ष शिक्षकों की अवधारणा प्रस्तुत करती है। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम मे जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कुछ चुनौतियाँ इस प्रकार हैंः–

- **प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को आकर्षित करने की चुनौतीः** प्रतिभाशाली या उच्च श्रेणी प्राप्त करने वाले विद्यार्थी–शिक्षक बनने के प्रति आकर्षित हों। वर्तमान में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो किसी व्यक्ति को (केवल सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों में मिलने वाले वेतनमान को छोड़कर) शिक्षक बनने के लिए प्रेरित करता हो।
- **अध्यापक शिक्षा के प्रति आकर्षण का अभावः**– वर्तमान में छात्रों का अध्यापक शिक्षा के प्रतिआकर्षण कम हो रहा है। क्योंकि इसे पूरा करने के पश्चात् सरकारी क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएं बहुत कम हैं तथा निजि क्षेत्र में अध्यापन कार्य केलिए वेतन बहुत कम दिया जाता है। निजीसंस्थाओं में अध्यापकों का शोषण हो रहा है तथा उन्हें नाममात्र की ही सुविधाएंमिलती हैं।
- **योग्य अध्यापकों का अभाव** :– वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है। जिसके कारण अध्यापक शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है।
- **निजी महाविद्यालयों में बढ़ता भ्रष्टाचार** :– अधिकांश निजि महाविद्यालयों में योग्य व उचित मात्रा में स्टाफ नहीं रखा जाता है क्योंकि इसके लिए उन्हें अधिक वेतन देना होता है। इससे बचने के लिए वह कागजी स्टाफ रखते हैं और अध्यापन के लिए अयोग्य व कम वेतन के अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ निजी महाविद्यालयों में छात्र–अध्यापकों को कक्षा में न बैठने की सुविधा भी दी जाती है। इसके लिए लिए उनसे अतिरिक्त शुल्क वसूला जाता है। इस शुल्क को देने के पश्चात् छात्र–अध्यापकों घर में ही बैठ कर पढ़ाई करते

हैं। ऐसे छात्र–अध्यापकों के कारण अध्यापन शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है जो चिन्ता का विषय है।

- **अस्थिरता संबंधित चुनौतीः** पिछले 10 वर्षों में, शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में इतने प्रयोग हुए हैं, जितने पूरी शिक्षा प्रणाली में नहीं हुए। एकवर्षीय बी.एड. कार्यक्रम को परिवर्तित कर दो वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम बना दिया गया। अभी इस योजना पर अमल हो ही रहा था कि अब इस नीति के माध्यम से चार वर्षीय एकीकृत शिक्षक शिक्षा की बात लागू कर दी गई है। इस क्षेत्र में इन लगातार बदलावों का पूरी शिक्षक शिक्षा पर गहरा नकारात्मक असर पड़ा है।
- **प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भौतिक व अन्य सुविधाएं** :– अध्यापक शिक्षा के अंतर्गत शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाएं, वैज्ञानिक उपकरण उन्नत पुस्तकालय का होना आवश्यक है। परन्तु अधिकांश महाविद्यालयों में अध्यापक शिक्षा से संबधिंत इस सुविधाओं का अभाव दिखाई देता है। इस कारण ऐसे महाविद्यालय एक योग्य व कुशल अध्यापक बनाने में विफल रहते हैं। ऐसे अध्यापकों मे ं व्यवहारिक ज्ञान की भी कमी होती है।
- **संसाधनों की कमीः** प्रत्येक संगठन को सुविधाओं के मामले में एक आदर्श संगठन के रूप में विकसित किया जाना है। शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता शिक्षण प्रक्रिया को आसान, सुविधाजनक और प्रभावी बनाती है। बच्चों के चहुँमुखी, समन्वित और पूर्ण विकास के लिए व्यक्तित्व के हर पहलू का विकास आवश्यक है। भावी शिक्षक के मानसिक विकास के लिए कक्षा, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, गतिविधि कक्ष एवं समिति कक्ष के साथ–साथ शारीरिक विकास के लिए एक खेल का मैदान और व्यायामशाला की आवश्यकता होगी। वर्तमान परिदृश्य में, अधिकांश सरकारी और निजी संस्थानों में इन सुविधाओं का अभाव है।
- **अनुपयुक्त पाठ्यक्रम एवं नए पाठ्यक्रम को तैयार करने की चुनौतीः**– अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यंत संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रशिक्षण की अवधि मे सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों, दृष्टिकोणों, कल्यना शक्ति, सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी कोई ध्यान नहीं रहता है।शिक्षक की भूमिका में एक बड़ी तब्दीली आई है, उसे अब तक ज्ञान के स्रोत के केंद्र रूप में स्थान मिलता रहा है और वही समूची सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का संरक्षक एवं प्रबंधक रहा है। अब उसकी भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी, जो सूचना का ज्ञान अथवा बोध में बदलने की में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करे।
- **मानवीय मूल्यों की अवहेलनाः–** प्रशिक्षण मे केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्राध्यापक अपने विचारों, मूल्यों आदि पर ध्यान नही देते। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इसी कारण वह अपनी छोटी–छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते है। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।
- **पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभावः–**पाठ्यक्रम मे निर्धारित शारिरिक शिक्षा, स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है।
- **अच्छे शोध कार्य का अभावः** भारतवर्ष मे अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी अपनी शैशवावस्था मे प्रतीत होता है। विदेशों विशेषकर ब्रिटेन एवं अमेरिका मे किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं का प्रिय विषय रहा है। नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में अभाव रहा है।
- **दोषपूर्ण अध्यापन विधिः** शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रायः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रूप में बैठे रहते है। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नही होता।
- **दोषपूर्ण परीक्षा प्रणालीः** अध्यापक शिक्षा की परिक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषयनिष्ठ है तथा ज्ञान की सही परिक्षा नही करती।

- **आदर्श पाठों का अभाव एवं कक्षा शिक्षण में लापरवाहीः** प्रायः अध्यापक आदर्श पाठों का आयोजन करने मे रूचि नही लेते। वे अपने को इस कार्य मे दक्ष नही पाते। प्रायः छात्राध्यापकों इसमें लापरवाही करते है। वे खानापूरी करते है। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनायें बड़ी पुरानी व परम्परागत होती हैं। कुछ पाठों को बिना पढ़ाये विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिये जाते है।
- **उचित निरीक्षण का अभावः** छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते है। इसमे प्रायः लापरवाही बरती जाती है और खानापूर्ति अधिक रहती है।

3. शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में भारतीयकरण की संभावनाएंः–

उक्त परिप्रेक्ष्य में एक व्यापक, गतिशील, मूल्यों पर आधारित संवेदनशील, उत्तरदायी, समावेशी, अभिनव और सतत वैश्वीकरण पर आधारित, खाइयों को पाटने वाली, प्रभावी सेतुओं की निर्माणक सामर्थ्य रखने वाली शिक्षक शिक्षा को विकसित करना हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। शिक्षा किसी राष्ट्र के नव निर्माण एवं प्रगति की आधारशिला होती है। जिसके द्वारा देश की समृद्ध प्रतिभा एवं संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिये किया जाता है।बदलाव के परिप्रेक्ष्य में हमें शिक्षक के गुणवत्तापूर्ण परिदृश्य पर भी दृष्टि केन्द्रित करना है। जिसके तीन आयाम है– आधारभूत पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां एवं व्यावहारिक ज्ञान। लेकिन हमारी शिक्षा समाज की आंकाक्षाओं एवं आवश्यकताओं पर अवलम्बित नहीं है। साथ ही इसमें जीवन कौशलों एवं मूल्यों के संवर्धन का भी अभाव है। इसमें भारतीय संस्कृति की पहचान बनी उक्ति– 'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' को सुदृढ़ बनाने की सामर्थ्य संचित नहीं हो पा रही है। अतः शिक्षक शिक्षा की एक ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करनी होगी जो भारत की संस्कृति, मूल्य, एकता एवं विविधता पर आधारित होने के साथ ही सामाजिक बदलाव एंव निरन्तरता की शाश्वत धारा के अनुरूप हो।

भारतीय समाज में सदैव ही शिक्षा के प्रति एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठापूर्ण दृष्टिकोण रहा है। हम सतत रूप से ज्ञानपरक समाज की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के कार्य में शिक्षकों की भूमिका निःसन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। कक्षा–कक्षों के अध्यापन को जीवन्तता प्रदान कर बदलते समाज की आवश्यकताओं पर अवलम्बित रोजगारपरक अपेक्षित कौशल आधारित एवं उच्च नैतिक–सामाजिक– आध्यात्मिक–भावात्मक मूल्यों से अंलकृत शिक्षा में गुणवत्ता की वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य पुस्तकों में बदलाव लाने होंगें तथा शिक्षक शिक्षा के प्लेटफॉर्म पर शिक्षकों में आत्मविश्वास, विषयगत प्रभावी जानकारी, शिक्षण कौशलों का विकास एवं आधुनिक सूचना तकनीकी एवं सम्प्रेषण प्रविधियों से सुसज्जित करने हेतु प्रयास करना होगा। धन, समय व दूरी की सीमाओं को लांघकर विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दस्तक देनी होगी। शिक्षक शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है जो भावीशिक्षक को उत्तरदायित्वों का कुशल निर्वहन करने योग्य प्रभावशाली एवं सफल शिक्षक बनने में योगदान देती है। वर्तमान युग में जहाँ सम्पूर्ण विश्व ज्ञान विस्फोट एवं जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण संरक्षण जैसी चुनौतियों से रूबरू हो रहा है, ऐसी स्थिति में शिक्षक शिक्षा का कार्य और भी चुनौतीपूर्ण हो गया है।

कहीं ज्ञान एवं सही दिशा निर्देशन का अभाव तो कहीं साधन का अभाव है। नित्य प्रतिदिन के बदलावों ने पाठ्यक्रम, गुणवत्ता, मूल्यांकन, माध्यम, खोज–शोध जैसे क्षेत्रों को व्यापक तो बना दिया है। मगर आवश्यकता के अनुरूप कौशल या प्रवीणता नहीं है। अतः विचारों की लेखन अभिव्यक्ति का मुख्य उद्देश्य यही है कि बदलाव की दहलीज पर शिक्षक शिक्षा का व्यक्तिगत, सामाजिक, व्यावसायिक मूल्यों एवं सामाजिक स्वास्थ्य का विकास कर उन्हें शिक्षकों के उत्तरदायित्वों का प्रभावशाली तरीके से निर्वहन करने योग्य बनाना है। इसके लिए शिक्षक शिक्षा के ढाँचे में वर्तमान जीवनशैली–कार्यशैली की प्रासंगिकता को चरितार्थ करना होगा। क्योंकि शिक्षक शिक्षा का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है। जैसे तकनीकी के कारण छात्रों में ध्यान केन्द्रीयकरण की समस्या देखने को मिल रही है।

शिक्षक शिक्षा के बदलाव से जुड़े प्रश्नों के केन्द्र में उच्चशिक्षा में शिक्षक शिक्षा के स्थान, गुणवत्ता, पाठ्यचर्या की पुनःसंरचना और उसके क्रियान्वयन के पक्षों को मजबूत करने की राह तथा शिक्षा और उदीयमान सामाजिक सरोकारों के मध्य संवाद सेतु की स्थापना की संभावना की जानी है। इस प्रकार के सकारात्मक प्रयास की पहल के द्वारा भावी प्रभावशाली शिक्षक की भूमिका समझ सकते हैं, जो छात्रों की चेतनता के अंकुरन, जिज्ञासा पिपासाओं की शान्ति का माध्यम एवं उनकी सृजनात्मक

एवं सामाजिक स्वस्थता तथा सीखने की इच्छा का पोषण कर सके। व्यावहारिक क्रियाओं को सशक्त व क्रियाशील होने का अवसर दिये जाने हेतू संपर्क, संवाद और सृजनशीलता की आवश्यकता है।

4. निष्कर्षः–

विगत दशकों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर शैक्षिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भों में तेजी से बदलाव आने के परिणामस्वरूप विशेष रूप से शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं शिक्षणमाध्यमों में आमूलचूल परिवर्तन लाने ही होगें। पाठ्यक्रमों को ज्ञान के नये क्षितिज, नवीन कौशलों, अभिवृत्तियों तथा जीवन मूल्यों पर आधारित करने एवं जीवनोपयोगी सामर्थ्यता से परिपूर्ण बनाने की संस्तुति शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर करनी होगी। जिससे कि शिक्षित–प्रशिक्षित जनशक्ति आधुनिकीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना कर सकें तथा जो विकास प्रक्रिया के साथ अग्रसर हो सके। जिसमें सभी स्तरों पर गुणवत्ता लाने का प्रयास समाहित हो। एक ऐसी शिक्षा प्रणाली जिसमें श्रम के महत्व को स्वीकारोक्ति मिलें। जिससे सामाजिक राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना में वृद्धि हो सके। जिसमें आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ विश्व–बन्धुत्वता का भाव निहित हो। जो सभी को आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव की अनुभूति कराती हो तथा समाज के सर्वोत्कृष्ट उत्थान में सशक्त भूमिका का निर्वहन करती हो। क्योंकि शिक्षक के बगैर आप सभ्य और समृद्ध समाज की कल्पना नहीं कर सकते। सफलता से बड़ा कोई शिक्षक नहीं क्योंकि रचनात्मक अभिव्यक्ति और ज्ञान में प्रसन्नता जगाना शिक्षक की सर्वोच्च कला है।

संदर्भ–ग्रंथ सूचीः–

- मीणा, के. (2021), 'अध्यापक/शिक्षक शिक्षा की चुनौतियाँ/समस्याएं' https://www.kailasheducation.com/2021/08/adhyapak%20shiksha-ki-samasya.html
- शर्मा, डॉ. प्रवीण, वर्तमानकालीन अध्यापक शिक्षा के सशक्त पहलू व उसके समक्ष चुनौतियाँ, https://ijcrt.org/papers/IJCRT1703074.pdf
- भारतीय आधुनिक शिक्षा, ISSN 0972-5636, Vol. 3, Jan 2021 https://ncert.nic.in/pdf/publication/journalsandperiodicals/bhartiyaadhunikshiksha/BAS_January_2021.pdf
- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.

  पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा (2009), नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

शिक्षण व्यवसाय में दक्षता और गुणवत्ता



डॉ. नरेन्द्र सिंह (प्राचार्य)
ज्ञानोदय टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज
बिसाऊ झुंझुनू (राजस्थान)

सारांशः–
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यक शर्त दक्षतापूर्ण शिक्षण कार्य है, शिक्षक की दक्षता का प्रभाव सम्पूर्ण समाज के निर्माण में निर्मायक होता है। राष्ट्र निर्माण में गुणात्मक उच्च शिक्षा अपनी प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है। अतएव उच्च शिक्षा में शिक्षण दक्षता के द्वारा ही गुणवत्ता के मानकों को संगठित किया जा सकता है। अतः राष्ट्रहित के सन्दर्भ में शैक्षिक गुणात्मक उन्नयन हेतु उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षकों की शिक्षण दक्षता की वर्तमान स्थिति का अवलोकन समीचीन प्रतीत होता है। शिक्षा अध्ययन विषय के साथ विकास की प्रक्रिया भी है। अध्ययन विषय तथा विकास की प्रक्रिया के क्षेत्र शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुदेशन क्रियाओं को समझना तथा कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त करना है। परन्तु अभी भी शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा दर्शन, शिक्षा का समाजशास्त्र, शिक्षा का इतिहास तथा शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन एवं अध्यापन किया जा रहा है जिसका कक्षा शिक्षण में सीधा उपयोग नहीं है। प्रशिक्षण में विद्यार्थियों को शिक्षण तथा अनुदेशन का ज्ञान तथा बोध कराया जाए तथा अभ्यास का अवसर दिया जाए तभी प्रभावशाली शिक्षक तैयार किए जा सकते हैं। अध्यापन के प्रदर्शन को बेहतर और प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि शैक्षिक समस्याओं का समाधान किया जाए ताकि भावी शिक्षक शिक्षण कला में निपुण हो सके तभी जाकर वह विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विकास कर सकेंगे।

शिक्षा व शिक्षक की आवश्यकता और महत्त्व सर्वविदित है क्योंकि कोई भी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकती शिक्षण यदि वृत्ति है तो उस व्यवसाय की उपयुक्त दक्षताओं एवं कौशलों को प्रशिक्षण के द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है। इसलिए शिक्षण वृत्ति को सम सामयिक एवं प्रभावशाली अर्थात् मूल्यपरक बनाए रखने के लिए सेवा पूर्व सेवाकालीन और एक कदम बढ़कर यह भी कहा जा सकता है कि सेवा उपरान्त भी शिक्षक–प्रशिक्षण लेते रहना चाहिए। उपर्युक्त आवश्यकता परक कथन आज के युग में तो और भी खूबी के साथ लागू होता है, क्योंकि आज ज्ञान के आधार और तकनीकी में जो अति द्रुतगामी परिवर्तन हो रहे हैं, उनके साथ सामंजस्य बनाए रखना जरूरी होते हुए भी यह कठिनाई का विषय बन गया है।शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। साथ–साथ इससे लगे हुए जितने अंग अथवा अवयव हैं वे सभी एक दूसरे से जुड़े हुए एवं एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसमें शिक्षक ऐसी कड़ी है जो हमेशा प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा एवं शिक्षण को प्रभावित करती है। जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो शिक्षक की बात तत्काल आ जाती है। इस प्रकार से शिक्षक की भूमिका एवं उसमें आ रहे परिवर्तन और विकास में भी निरन्तर परिवर्तन आया है। साथ–साथ उसके सामाजिक स्तर की दृष्टि से भी परिवर्तन होता जा रहा है। आज जब तकनीक एवं वैज्ञानिक प्रविधियों का विस्फोट हो रहा है तो शिक्षक की भूमिका तथा उसमें सुधार का परिमार्जन करना आवश्यक है। यह विकास गुणात्मक अपेक्षित है क्योंकि समाज की गति अत्यन्त तेजी से परिवर्तित हो रही है। अध्यापन के प्रदर्शन को बेहतर और प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यकता होती है प्रशिक्षण की जो कि शिक्षा महाविद्यालयों में प्रदान किया जाता है।

वर्तमान समय में शिक्षा में परिवर्तन हो रहे है या कहा जाए कि किए जा रहे हैं। जाहिर है कि हर क्षेत्र की तरह शिक्षा में परिवर्तन भी अवश्यंभावी है और आवश्यक भी। शिक्षा में परिवर्तन सही दिशा में होना इसलिए भी अपेक्षित है कि इसका प्रभाव मानवीय कार्यकलाप के हर क्षेत्र पर पड़ेगा। यदि शैक्षिक परिवर्तन में देरी होगी या इसमें कमियाँ होगी तो विकास की प्रक्रिया हर अवयव में प्रभावित

होगी। यह उचित ही है कि परिवर्तन के विभिन्न आयामों पर चर्चा हो रही है और भारत में शिक्षा जगत से जुड़े हुए लोग रुचि ले रहे हैं।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शैक्षिक परिवर्तनों पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो विगत वर्षों में बनी विभिन्न समितियाँ व शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के आधार पर बनी शिक्षा नीति सबसे पहले सामने उभरती है। आज भी अनेक शिक्षाविद मानते हैं कि यदि ईमानदारी से कोठारी आयोग की रिपोर्ट को क्रियान्वयन किया जाता तो आज शैक्षिक परिदृश्य पूरी तरह अलग होता। स्कूलों, कॉलेजों तथा अब विश्वविद्यालयों द्वारा जो वर्ग–भेद आर्थिक संपन्नता और विपन्नता के कारण पैदा हो रहा है वह इतना विषाक्त रूप नहीं लेता। कुल मिलाकर केन्द्र बिंदु शिक्षा की गुणवत्ता, उसमें व्यावसायिक कौशलों का समावेश, उद्योग जगत से शिक्षा से जुड़ाव आदि के आसपास ही निहित है। इन पर ध्यान न देकर अनेक समस्याओं को जन्म दिया गया है। यदि कोठारी आयोग की कॉमन स्कूल व्यवस्था, मातृभाषा में शिक्षा कार्य अनुभव और व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार वाली सँस्तुतियों की निष्ठापूर्वक क्रियान्वित की गई होती तो आज अन्य समिति व आयोग बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।भारतीय समाज में गुरु का सर्वोच्च स्थान है, क्योंकि यह शिक्षा के माध्यम से समाज को विकासोन्मुख बनाता है। शिक्षक के ऊपर ही यह निर्भर करता है कि यह किस प्रकार के नागरिक तैयार करता है। 20वीं शताब्दी के अन्तिम दो दशक विश्व के विकास में अपना विशेष स्थान रखते हैं। ज्ञान के विस्फोट के साथ आज शिक्षक व्यवहार की प्रक्रिया को, उसकी रुचि, कार्यकुशलता, योग्यता आदि के साथ आबद्ध कर उसका वैज्ञानिक रूप में अध्ययन किया जाने लगा है।

आज शिक्षक के व्यक्तित्व के समायोजन का प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता है तथा समाज का एक अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायी नागरिक है। विद्यार्थियों को शिक्षक से बड़ी–बड़ी आशाएँ होती हैं। विद्यार्थियों के जीवन में आने वाली अनेक समस्याओं का समाधान उसे करना पड़ता है तथा विद्यार्थी के आचरण व क्रियाकलापों पर शिक्षक के मन मस्तिष्क की गहरी छाप पड़ती है। बालक के व्यक्तित्व के विकास में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है तथा इसी कारण समाज में सर्वाधिक सम्मान शिक्षक को दिया जाता है।इन दिनों शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में जिस शब्द का काफी इस्तेमाल हो रहा है वह है गुणवत्ता युक्त शिक्षा परन्तु गुणवत्ता युक्त शिक्षा के लिए गुणवत्ता युक्त शिक्षकों का होना अनिवार्य है, परन्तु विगत एक दशक से शिक्षक प्रशिक्षण एवं शैक्षिक योजनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिकांश शिक्षकों में गुणवत्ता का स्तर दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। यह कटु सत्य है, इसमें शिक्षकों के प्रति आक्षेप, आरोप अथवा अपमान की भावना लेशमात्र भी नहीं है। गुणवत्ता की समस्या नए–पुराने, महिला–पुरुष तथा शहर ग्रामीण शिक्षकों में कमोवेश समान रूप से विद्यमान है। ऐसा नहीं है कि योग्य शिक्षकों की नितांत कमी है पर समग्र रूप से तुलना करने पर इनका अनुपात बहुत कम है। गुणवत्ता स्तर पर कमी का एक दूसरा पहलू भी है। प्रायः सभी शिक्षकों में दक्ष शिक्षकों की बेहद कमी है जिनकी प्राथमिक स्तर पर विशेष आवश्यकता है। योग्य शिक्षकों में भी अधिकांश शिक्षक किसी एक विषय में ही पारंगत होते हैं। विषयगत योग्यताओं के अलावा अन्य क्रिया कलापों जैसे खेल–कूद, साहित्य, कला, संगीत आदि सृजनात्मक क्षेत्रों में भी रुचि रखने वाले शिक्षकों की काफी कमी है। प्रारंभिक शिक्षा में खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों में पायी जाने वाली चारित्रिक विकृतियाँ, धूम्रपान, मद्यपान, समाज विरोधी व्यवहार, यौन अपराध अधिक दोषी हैं।"गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से तात्पर्य वैसी शिक्षा से है जो हर बच्चे के काम आए साथ ही उनकी क्षमताओं के सम्पूर्ण विकास में समान रूप से उपयोगी हो। "यानि ऐसी शिक्षा जो हर बच्चे की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान रखने वाली होगी। "शिक्षण कौशल, वह शिक्षक – शस्त्र है जिसका प्रयोग करके शिक्षक अपने कक्षा– शिक्षण को प्रभावशाली तथा सक्रिय बनाता है तथा कक्षा की अन्तः– प्रक्रिया में सुधार लाने का प्रयास करता है।" गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में विद्यालय के योगदान को स्पष्ट करते हुए बालकृष्ण जोशी ने कहा है कि "किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्माण विधानसभाओं, न्यायालयों और कारखानों में नहीं वरन् विद्यालयों में होता है। "विद्यालय की भूमिका निर्भर करती है छात्रों के लिए उपलब्ध कराए गए आदर्श स्थिति पर जिनमें उनके मानसिक विकास एवं उपयोग हेतु सर्वोत्तम स्थिति उपलब्ध हो सके। मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी विद्यालय के दायित्वों को कम करके नही आँकना चाहिए। क्योंकि स्कूली शिक्षा अवधि में छात्रा–छात्रा उस वयः सन्धिसे गुजर रहे होते हैं जहाँ उनके सामर्थ्य के संबंध में मालूम नहीं होता है। ऐसे में एक कुशल एवं दक्ष शिक्षक छात्र के स्वरूप में उनके दायित्व का आमूल–चूल परिवर्तन कर सकता है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विकास बिना दक्ष शिक्षक के संभव नहीं है। दक्ष शिक्षकही शिक्षण कार्य कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। वर्ग में विभिन्न तरह के छात्र रहते हैं। उन छात्रों को समझने की क्षमता अलग–अलग होती है। कुछ छात्र बहुत जल्दी समझ लेते हैं, कुछ छात्र देरी से समझते हैं। दक्ष शिक्षक कुशलतापूर्वक सभी छात्रों में विषय वस्तु के प्रति रुचि उत्पन्न करते हैं तथा उनकी समझ को बढ़ाते हैं।

शिक्षक पढ़ाने के विभिन्न तरीकों को शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय में सीखते हैं अतः गुणवतापूर्ण शिक्षा के विकास में शिक्षकों की शिक्षण दक्षता आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।ऐसे शिक्षक जिनके ऊपर भारत का अतीत निर्भर रहा है और आगे भी जिनके ऊपर भारत का भविष्य निर्भर है, जो भारत के भविष्य के कर्णधारों के निर्माता है, समाज को जिनसे बहुत सारी अपेक्षाएं हैं, ऐसे शिक्षकों की गरिमा, मान–सम्मान और आदर समाज में बना रहे इसके लिए समाज तथा सरकार को विद्यालयों में उन्हीं शिक्षकों का चयन करना होगा जो बहुत ही विद्वान, कर्मठ, उच्च शिक्षण अभियोग्यता, सृजनात्मकता, आत्मप्रत्यय तथा सकारात्मक अभिवृत्ति वाले हो।शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का उपयोग विद्यालयों में योग्य शिक्षकों की पूर्ति हेतु किया जाता है। शिक्षकों में शिक्षण कौशलों एवं क्षमताओं का विकास एक प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है। इस रूप में अध्यापक शिक्षा एक प्रक्रिया के रूप में कार्य करती है, इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पाद के रूप में एक कुशल एवं प्रभावी शिक्षक को तैयार करने का प्रयास किया जाता है जो समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके। इस दृष्टि से यह माना जा सकता है कि शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शिक्षक एक सिक्के के दो पहलू है जिसमें अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को एक प्रक्रिया के रूप में तथा शिक्षक को उसके उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है।

वर्तमान में शिक्षकों की शिक्षण दक्षता कार्यक्रम में प्रशिक्षु छात्रों में जो भी दक्षता विकसित करने की बात की जाती है उसे वर्तमान विद्यालयी एवं गुणवतापूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर किया जाता है। विभिन्न विद्यालयी एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर किया जाता है। विभिन्न विद्यालयी एवं गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक द्वारा अपनी भूमिका का निर्वाह प्रभावी ढंग से करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों की शिक्षण दक्षता के उद्देश्य इस प्रकार के हो कि शिक्षक अपने कार्य प्रभावी ढंग से कर सके सफल शिक्षक वही है जो अपने दायित्वों का भली–भाँति निर्वाह करते हुए विद्यालय में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विकास कर सके और ऐसे शिक्षकों को तैयार करने का उत्तरदायित्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का है। स्पष्ट है कि शिक्षा की गुणवत्ता सीधे तौर पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की गुणवत्ता से जुड़ी हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अस्थाना, बी., एवं अस्थाना, एस. (2005). – मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन. आगराः विनोद पुस्तक मंदिर.
- अरोडा, आर., एवं मारवाह, एस. (2005). – मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी. जयपुरः शिक्षा प्रकाशन.
- बैस, एन., एवं. आरोड़ा, पी., (2006). – शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार जयपुरः पदमा जैन प्रकाशक.
- भटनागर, ए.बी., एवं भटनागर, एम. (2007). – मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन. मेरठः आर. लाल बुक डिपों.
- भटनागर, सुरेश (2008) – शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठः आर. लाल बुक डिपो.
- भटनागर, बी. भटनागर, एम. (2003) – शैक्षिक एवं मानसिक मापन, मेरठः आर. लाल बुक डिपो.
- गुप्ता, कु. रक्षा जुलाई–सितम्बर (2002). शिक्षा चिन्तनः उच्च शिक्षा और भारतीय मूल्य. कानुपरः त्रिमूर्ति संस्थान पृ. स. 33.
- सिंह, कुलदीप नवम्बर (2021). शिविरा पत्रिकाः बच्चों को परिवार में शिष्टाचार की शिक्षा. बीकानेरः राजस्थान शिक्षा विभाग. पेज न.15
- विद्या भारती प्रदीपिका. नई दिल्लीः त्रैमासिक. अप्रैल–जून 2022. शिक्षा से संस्कार. पृ. स.– 17.
- विद्या, मेघ दिसम्बर (2022). किशोरावस्था में पारिवारिक सम्बन्धों की भूमिका. मेरठः विद्या प्रकाशन मंदिर लि. पृ. सं. 12–13.

भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवनदृष्टि

डॉ. अर्चना मेन्दीरता
(सहायक आचार्य)
संजय टी.टी. कॉलेज,
जयपुर
email id: mosam.pareek@gmail.com

डॉ. नरेन्द्र सिंह शेखावत
(सहायक आचार्य)
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज,
लक्ष्मणगढ़, सीकर
email id: mamtapareek2012@gmail.com

सारांशः–
भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है। भारतीय शैक्षिक चिन्तन मानवीय मूल्यों को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। शिक्षा के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है।वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी। गुरूकुल में अध्यापक व छात्रों के बीच मधुर व आध्यात्मिक संबंध होते थे।आत्मा के अविनाशी होने के कारण प्राचीन भारत में शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्त्व जाता था। वैदिक काल में नारी शिक्षा अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में थी। भारतीय शिक्षा का आधार चारों वेद है। प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ। संक्रमण काल में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के राज्य के शासन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो यह सम्भावना थी कि क्षेत्रीयता, जातीयता या धर्म के आधार पर लोगों में भेदभाव इस सीमा तक बढ़ जाए कि देश की एकता को ही खतरा बन जाए। इसके लिये राष्ट्रीय भावना के सुदृढीकरण, सामाजिक न्याय और समानता, बुनियादी शिक्षा को भी आधार बनाया गया तथा यह माना गया था कि देश में समानता, लोकतंत्र, राष्ट्रीय भावना तथा आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए सार्वभौमिक शिक्षा अति आवश्यक है।भारतीय शिक्षा के मुख्य चारआधार हैः (1) आदर्शवाद, (2) प्रकृतिवाद, (3) प्रयोजनवाद तथा (4) यथार्थवाद। आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को आध्यात्मिक जगत के लिए तैयार करती है। प्रकृतिवादियों के मतानुसार भारतीय चिंतन में शिक्षा की अंतिम परिणति प्रकृति कोसंस्कृति की ओर ले जाना है विकृति की ओर नहीं। संस्कृति की ओर जो ले जाए वही शिक्षा है। यथार्थवादी और प्रयोजनवादियों के अनुसार समाज की भौतिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण करते है, जिससे बालक यथार्थ जगत को जानने योग्य बनकर अपने व्यावहारिक जगत की अनेक समस्याओं को सुलझाकर सुखी, संपन्न तथा प्रसन्न जीवन व्यतीत कर सके।

1. प्रस्तावनाः–

प्राचीन भारतीय शिक्षा आदर्शवादी शिक्षा थी। शिक्षा में मानवीय एवं परम्परागत मूल्यों को अतीव महत्त्व दिया जाता था। शिक्षा में धर्म एवं दर्शन का सन्निवेश अनिवार्य था। वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी। गुरुकुल सदैव नगर से कुछ दूरी पर प्रकृति के शान्त एवं एकान्त वातावरण में बनाये जाते थे। गुरुकुल तपोवनसदृश स्थान होता था, जहाँ का वातावरण प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक होता था क्योंकि आध्यात्मिकता की दृष्टि से प्रकृति का सान्निध्य अनिवार्य माना जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मुख्य स्थान है। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा संस्था में पारिवारिक स्थितियों में सीखने का अवसर प्रदान करती है। गुरुकुल में पढने वाले छात्रों में समायोजन का गुण सहज में विकसित हो जाता था। आत्मा को अनश्वर मानने के कारण प्राचीन भारत में शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्त्व जाता था। आत्मशुद्धि के लिए जप, तप एवं योग पर अत्यन्त बल दिया जाता था। मन की विकारात्मक वृत्तियों के उपशमन के लिए अष्टांग योग का प्रशिक्षण दिया जाता था तथा सभी छात्र यम और नियमपूर्वक जीवन जीते हुए यथासमय अन्य अंगों का अभ्यास करते थे। वैदिक शिक्षा निःशुल्क हुआ करती थी। अतः धन की न्यूनता के कारण किसी भी छात्र को शिक्षा से वंचित नहीं होना पड़ता था। वैदिक काल में शिक्षा पर सभी का जन्मसिद्ध अधिकार था। धनवान एवं निर्धन, स्त्री

एवं पुरुष, शक्तिशाली और निर्बल इत्यादि किसी भी प्रकार का भेद किसी को भी शिक्षा से वंचित नहीं कर सकता था।इस चिन्तन के परिणामस्वरूप एक सुसंगठित शिक्षा प्रणाली का अभ्युदय हुआ, जिसे हम आज 'प्राचीन भारतीय शिक्षा' अथवा 'वैदिक शिक्षा प्रणाली' के रूप में जानते हैं। प्राचीन काल में शिक्षा को न तो पुस्तकीय ज्ञान के रूप में माना जाता था और न ही जीविकोपार्जन के साधन के रूप में। उस कालखण्ड में शिक्षा को जीवन–दर्शन के निर्माण के लिए आधारभूत सिद्धान्त के रूप में माना जाता था। समस्त शैक्षिक तन्त्र ज्ञान को अनुभूति का विषय बनाने के लिए आयोजित किया जाता था।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। बादशाहों और अन्य शासकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रारंभिक शिक्षा के केंद्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के। राजकुमारों के लिए महलों के भीतर शिक्षा का प्रबंध था। राज्यव्यवस्था, सैनिक संगठन, युद्धसंचालन, साहित्य, इतिहास, व्याकरण, कानून आदि का ज्ञान गृहशिक्षक से प्राप्त होता था। मुसलमान शासकों के संरक्षण के अभाव में भी संस्कृत काव्य, नाटक, व्याकरण, दर्शन ग्रंथों की रचना और उनका पठन–पाठन बराबर होता रहा।

भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली रचनावादी दृष्टिकोण और करके सीखने, सार्थक और बिना बोझ के अधिगम पर आधारित है।इसका मुख्य उद्देश्य छात्रोंको हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, समतावाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की मुख्यविशेषताओं के बारे में सूचित करना है।भारत में शैक्षणिक संस्थान, अधिगम की सुविधा के लिए उन्नत तकनीकों को अपना रहेहैं और उसी पुराने कक्षा शिक्षण में क्रांतिकारी बदलाव ला रहे है। आज भारतीय शिक्षा काआधार विद्यार्थियों को बाहरी दुनिया के साथ वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने और अंतर्राष्ट्रीय अवसरों की तलाश करने के लिए तैयार करना है।

2. भारतीय शिक्षा का आधारः–

भारतीय शैक्षिक चिन्तन में सम्पूर्ण जीवन शिक्षा के लिए एवं शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन के लिए माना गया है।वैदिक काल में सम्पूर्ण जीवन के लिए शिक्षा की प्रतिष्ठा की जाती थी। बालक की शिक्षा के लिए परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व सभी का दायित्व माना गया है क्योंकि कालान्तर में बालक को शिक्षा प्राप्त कर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए एक सन्नागरिक के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह करना आवश्यक है।प्राचीन भारत में शिक्षा का व्यापक अर्थ स्वीकृत था जिसमें यह माना जाता था कि व्यवहार में सार्थक परिवर्तन ही शिक्षा है। शिक्षा के प्रति भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक एवं सूक्ष्म रहा है। भारतीय शैक्षिक चिन्तन मानवीय मूल्यों को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। शिक्षा के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। इसके लिए भारतीय शैक्षिक परम्परा में आश्रम व्यवस्था की अनिवार्यता सुनिश्चित की गई। भारतीय ऋषियों द्वाराप्रतिपादित आश्रम व्यवस्था में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम को शिक्षा को ही समर्पित किया है। इसी आश्रम में विद्यार्थी को जीवन के अन्य आश्रमों यथा गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम के कर्तव्यों के परिपालन के लिए भी दक्ष बना दिया जाता था। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। गुरुकुल एवं मठ प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र के रूप में संस्थापित थे। इस प्रकार प्राचीन भारत में शिक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक एवं सुचारु व्यवस्था प्रतिष्ठित थी।

ब्रिटिश अधीनता से पूर्व भारत की शिक्षा व्यवस्था लंबे समय से गुरु–शिष्यपरंपरा पर आधारितथी। आधुनिक विद्यालयों के विपरीत उस समय छोटी–छोटी पाठशालाएँ होती थीं जहाँ स्थानीयया गुरुद्वाराबच्चों को संस्कृत, व्याकरण,प्रायोगिक गणित, महाजनी खाता आदि के बारे में पढ़ाया जाता था। भारत की प्राचीन शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधारित थी। शिक्षा, मुक्ति एवं आत्म बोध के साधन के रूप में थी।यह व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि धर्म के लिए थी। भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है। **डॉ. अल्टेकर के अनुसार** "वैदिक युग से लेकरसे लेकर अब तक भारतवासियों के लिये शिक्षा का अभिप्राय यह रहा है किशिक्षा प्रकाश का स्त्रोत हैतथा जीवनके विभिन्नकार्यों में यह हमारा मार्ग आलोकित करतीहै।"

प्राचीन काल में शिक्षा को अत्याधिक महत्व दिया जाता था। भारत विश्व गुरू कहलाता था। अतीत काल से ही हमारे समाज में शिक्षक को आदर्श प्रतिमूर्ति माना जाता रहा है। शास्त्रों में शिक्षक को ब्रह्मा, विष्णु, महेश सदृश्य पूज्य भी माना गया है। शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है। शिक्षक पाठ्यक्रम स्वरूप पथ पर अपने शिक्षार्थी को आगे बढ़ने के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य भी करता था। भारतीय

शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। वेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम तथा दुर्लभतम ग्रन्थ स्वीकार किये जाते है। वेद का अर्थ है– ज्ञान। वेद चार है– ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अर्थववेद। भारतीय शिक्षा का आधार यही चारों वेद है जिसमें संस्कारों का विकास करना, आत्मा की पवित्रता का विकास करना, व्यक्तित्व का विकास करना, सामाजिकता व नागरिकता का ज्ञान प्रदान करना, संस्कृति का संरक्षण व प्रसार करना तथा जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना है।

वैदिक कालीन शिक्षा में उपनयन संस्कार का उल्लेख है जिसमें शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। उपनयन संस्कार के समय बालक की आयु सामान्यतः आठ वर्ष से बारह वर्ष के बीच रहती थी। उपनयन न कराने वाले का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। इस प्रकार से शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था। **शिक्षण संस्थाऐं**: यद्यपि प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही दी जाती थी, तथापि औपचारिक शिक्षा आश्रमों अथवा गुरूकुलों में दी जाती थी। छात्र गुरूकुल में ही रहते थे तथा ब्रह्मचारी कहलाते थे। **छात्रगुणः** सदाचार तथा योग्यता के आधार पर छात्रों को गुरूकुल में प्रवेश मिलता था। **वेशभूषाः** अध्ययन के दौरान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों के बालकों के लिए भिन्न– भिन्न वेशभूषा निर्धारित रहती थी। **दिनचर्याः** जंगल से लकड़ी चुनना, भिक्षा लाना, गाय चराना, कृषि करना तथा वेदों का अध्ययन करना छात्रों की दिनचर्या के आवश्यक अंग थे। **पाठ्यक्रमः** वेद तथा उनकी समीक्षाओं को पाठ्यक्रम में मुख्य स्थान प्राप्त था। इसके अतिरिक्त इतिहास, ज्योतिष, गणित, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, भूगर्भ विद्या, तर्कशास्त्र आदि का अध्ययन कराया जाता था। शिक्षा संस्कृत भाषा के माध्यम से दी जाती थी। **शिक्षण विधिः** शिक्षण विधि मौखिक, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, वाद–विवाद, क्रियात्कम आदि विधियों का प्रयोग किया जाता था। छात्रों को योग्यता के अनुसार ज्ञान प्रदान किया जाता था। गुरू शिष्य संबंधः गुरूकुल में अध्यापक व छात्रों के बीच मधुर व आध्यात्मिक संबंध होते थे। छात्र गुरू की सेवा को अपना परम सौभाग्य मानते थे। **नारी शिक्षाः** वैदिक काल में नारी शिक्षा अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में थी। **दंड व्यवस्थाः** शारीरिक दंड निषेध था, आवश्यकता पड़ने पर छात्रों की शुद्धि के लिए उद्दालक व्रत का पालन करना दंड के रूप में दिया जाता था।

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ। विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चाहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। 1850 तक भारत में गुरुकुल की प्रथा चलती आ रही थी परन्तु मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ और भारत में कई गुरुकुल बंद हुए और उनके स्थान पर कॉन्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के राज्य के शासन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। इसके अलावा पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति आकर्षण पैदा करना भी मैकाले का लक्ष्य था।

आजादी के बाद भारत में शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार बनाया जाना उचित था कि वह इस नवगठित राष्ट्र को विकास की राह पर आगे बढ़ा सके। लेकिन सामन्तवादी विरासत और जातिगत भेदभाव, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक वैमनस्यता, भाषाई विभेद और गरीबी जैसी विकराल समस्याओं से निपटना एक विकट चुनौती थी। इन समस्याओं से उबरते हुए देश के जनतांत्रिक नागरिकों का विकास करना और सभी नागरिकों को राष्ट्रीय एकात्मता के सूत्र में पिरोना था। इस राष्ट्रीय कार्य के लिए संविधान में यथायोग्य प्रावधान करना और शिक्षा का एक व्यापक ढाँचा भी बनाना था।

जब भारत स्वतंत्र हुआ तो यह सम्भावना थी कि क्षेत्रीयता, जातीयता या धर्म के आधार पर लोगों में भेदभाव इस सीमा तक बढ़ जाए कि देश की एकता को ही खतरा बन जाए। इसके लिये राष्ट्रीय भावना के सुदृढीकरण को शिक्षा का आधार बनाया गया क्योंकिबचपन से ही ऐसी भावनाओं को कायम करने के लिए शिक्षा के अलावा और कोई माध्यम कारगर नहीं हो सकता है। सामाजिक न्याय और समानता के आधार पर भी शिक्षा व्यवस्था की गई। अल्पसंख्यक समुदायों के शैक्षणिक व सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान संविधान में हैं। साथ ही यह प्रावधान भी किया गया कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोग अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए शैक्षिक संस्थाएँ चला सकते हैं। बुनियादी शिक्षा को भी आधार बनाया गया जिसमें पाठ्यपुस्तकों पर आधारितपुरानी शिक्षण पद्धति की जगह गतिविधि शारीरिक श्रम, सामुदायिक काम आदि के महत्व को शिक्षा में स्वीकार किया जाने लगा। यह

माना गया था कि देश में समानता, लोकतंत्र, राष्ट्रीय भावना तथा आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए सार्वभौमिक शिक्षा अति आवश्यक है।आज शिक्षा में प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका से अध्ययन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है, बेहतर संचार छात्रों को कौशल और ज्ञान की सुविधा प्रदान की है। इसके अलावा, ई–लर्निंग प्रौद्योगिकी उपकरणों के साथ, छात्र किसी भी भौगोलिक क्षेत्र से अध्ययन सामग्री तक पहुंच सकते है।वर्तमान में समावेशी शिक्षा प्रणाली पर जोर दिया जाता है।गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आधुनिक समाज की मांग हैं और चाहे कोई भी क्षेत्र हो गुणवत्ता की मांग हर जगह होती हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से आशय शिक्षा में गुणों का विकास करना या गुणों का समावेश करना हैं जिससे छात्रों एवं शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति भली–भांति हो सकें।

भारतीय शिक्षा के मुख्य चारआधार हैः (1) आदर्शवाद (2) प्रकृतिवाद (3) प्रयोजनवाद (4) यथार्थवाद। आदर्शवादी दर्शन के अनुसार अंतिम सत्ता आध्यात्मिक है तथा प्रकृतिवाद दर्शन का बिल्कुलउल्टा है। अतः आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को आध्यात्मिक जगत के लिए तैयार करती है। आदर्शवादियों के अनुसार भौतिक तत्व नाशवान है। अतः वे भौतिक तत्वों की अपेक्षा विचार के महत्व को स्वीकार करते है उनका अखण्ड विश्वास है कि आत्मा तथा परमात्मा का मिलन केवल विचारों के द्वारा ही हो सकता है। इस दृष्टि से आदर्शवाद सत्यं शिवं तथा सुदंरम् जैसे मूल्यों को प्रतिपादित करता है। मूल्य अपरिवर्तनशील है, इनका पूर्ण ज्ञान होने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त हो सकता है। भारतीय चिंतन में शिक्षा की अंतिम परिणति प्रकृति कोसंस्कृति की ओर ले जाना है विकृति की ओर नहीं। संस्कृति की ओर जो ले जाए वही शिक्षा है।भारतीय शिक्षा के प्रकृतिवादी समर्थकस्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकृति को ब्रह्मा और जीव के समान ही सत्य मानते थे और वैदिक युग की शिक्षा के आधार पर आधुनिक शिक्षा का निर्माण करना चाहते थे।वैदिक काल में आम लोगप्रकृतिकी उपासना करते थे और प्रकृति केअत्याधिक निकट रहने थे।स्वामीदयानन्दके आदर्शों पर चलने वाले गुरूकुलों में प्रकृति की ओर लौटो के नारे को व्यवहृत रूप में देखा जा सकता हैं। एक प्रकृतिवादी के समान स्वामी विवेकानन्द नेपुस्तकीय ज्ञान बहुत बड़ा विरोध किया है।

यथार्थवादी और प्रयोजनवादी दोनों विचारधारायें आदर्शवादी दर्शन का विरोध करती हैं। प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुसार सत्य सदैव बदलता रहता है, इसलिए शिक्षा के उद्देश्य भी देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते है। यथार्थवादी भी प्रयोजनवादियों की भाँति समाज की भौतिक परिस्थितियों (जीवन दर्शन, राजनीतिक प्रगति, प्रौद्योगिक उन्नति, सामाजिक तथा आर्थिक दशाएँ) को आधार मानते हुए शिक्षा के लचीले, अनुकूलन योग्य तथा परिवर्तनशील विशिष्ट उद्देश्यों का निर्माण करते है। जिससे बालक यथार्थ जगत को जानने योग्य बनकर अपने व्यावहारिक जगत की अनेक समस्याओं को सुलझाकर सुखी, संपन्न तथा प्रसन्न जीवन व्यतीत कर सके।

3. निष्कर्षः–

वैदिक शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। सच बात तो यह कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। प्राचीन शिक्षा प्रणाली में मुख्य हैं– निःशुल्क शिक्षा, व्यापक उद्देश्य, व्यापक पाठ्यचर्या, गुरू–शिष्यों का अनुशासित जीवन, गुरू–शिष्यों के बीच मधुर सम्बन्ध और शिक्षण संस्थाओं की संस्कारप्रधान पद्धिति। प्राचीन भारतीय शिक्षा में भौतिक उन्नति के स्थान पर आध्यात्मिक उन्नति को महत्व दिया गया था। प्राचीन भारत में शिक्षा का बीजारोपण वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक कालीन शिक्षा तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन पर आधारित थी। इस चिन्तन में जीव और ब्रह्म जीवन और मृत्यु लोक और परलोक इत्यादि विषयों की प्रधानता थी, इन सभी विषयों में व्यक्ति को प्रमुख स्थान दिया जाता था। भारतीय मनीषियों ने वर्तमान समय से कहीं अधिक उन्नति कर ली थी। ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वे आज से कहीं आगे थे। वैदिक शिक्षा अथवा प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को केन्द्र में रखकर प्रदान की जाती थी।आधुनिक शिक्षा आज की आवश्यकता है परंतु केवल भौतिक उन्नति ही जीवन का सार नहीं है, इसके साथ आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है।बिना आध्यात्मिकता के कोरी भौतिकता सर्वनाश की ओर ले जाती है।अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा में आधुनिकता को तो अपनाया जाएं लेकिन अपने प्राचीन शिक्षा के आधारों को भी यथोचित स्थान दिया जाना चाहिए।

संदर्भ–ग्रंथ सूची–

- शर्मा, के. (2021), प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली (इकाई–24), नई दिल्लीः इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयhttps://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/71644
- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
- पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा (2009), नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- भारतीय शिक्षा अतीत और वर्तमान, (16 अगस्त 2020)https://thehindipage.com/indian-education/bhartiya-shiksha-ka-itihaas-aur-vartamaan/
- सिंह, डॉ. कर्ण. "भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास", 4/230, कचहरी घाटी, आगराः एच.पी. भार्गव बुक हाऊस

उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

Dr. PRAVEEN SHARMA, Assistant Professor,
Department of Education,
Institute of Advanced Studies In Education
(Deemed To Be University), Gandhi Vidya Mandir,
Sardar Shahar.

प्रस्तावना :

वर्तमान समय में शिक्षा का स्तर को सुधारने में शिक्षक का एक महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान परिस्थितियों में औपचारिक षिक्षा के महत्व के साथ–साथ षिक्षक का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। यह तो सर्वविदित है कि अध्यापक जितना अधिक सक्षम एवं योग्य होगा उतना ही अधिक षैक्षिक विकास सम्भव हो सकेगा। अध्यापक अपने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव के माध्यम से बालक को समाज का उपयोगी नागरिक बनाता है। वर्तमान समय में अध्यापकों में अपने व्यवसाय के प्रति असंतोष की प्रवृति बढ़ती जा रही है। असन्तुष्ट अध्यापक अपने को भंवर में डूबता महसूस करता है। जिसका सीधा असर उसके मानस पर पड़ता है और उसी अव्यवस्थित मस्तिष्क के साथ वह बालकों के साथ षिक्षा का आदान–प्रदान करता है तो वह उनकी शैक्षिक निष्पत्ति को भी प्रभावित करता है। अपने व्यवसाय के प्रति असन्तुष्ट होने के कारण अध्यापक पलायन की ओर उन्मुख होते हैं।

मुख्य शब्दावली– उच्च प्राथमिक विद्यालय, व्यावसायिक सन्तुष्टि।

अध्ययन के उद्देष्य –

1. सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ –

1. सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

3. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

परिसीमन– प्रस्तुत अनुसंधान में चूरू जिले के कुल 200 उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का चयन किया गया है।

न्यादर्ष का चयन–

सरकारी विद्यालय के अध्यापक – 50
गैर–सरकारी विद्यालय के अध्यापक – 50
ग्रामीण सरकारी विद्यालय के अध्याक – 50
ग्रामीण गैर–सरकारी विद्यालय के अध्यापक – 50

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी –

1. मध्यमान (Mean)
2. मानक विचलन (Standard Deviation)
3. क्रान्तिक अनुपात मान (C. R. Vaalue)

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण –व्यावसायिक सन्तुष्टि मापनी – प्रमोद कुमार तथा मूथा समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण–

सारणी – 01

सरकारी तथा गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की तुलना

विद्यालय का प्रकार	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	ज – मान	सार्थकता स्तर
सरकारी विद्यालय के पुरूष अध्यापक	25	22.32	2.84	0.02	.05 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं है।
गैर–सरकारी विद्यालय के पुरूष अध्यापक	25	20.44	2.57		

(df = $N_1 + N_2 - 2$ = 25+25-2 = 48)

विश्लेषण –उपर्युक्त तालिका संख्या – 01 में सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 25 तथा गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 25 पुरूष अध्यापकों के गणना द्वारा मध्यमान क्रमशः 22.32 तथा 20.44 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.84 तथा 2.57 प्राप्त हुए हैं। कि स्वतन्त्रता के अंश 48 पर .05 सार्थकता स्तर पर ज – मान 2.00 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त ज– मान 0.02 प्राप्त हुआ है जो तालिका मान से कम है अतः यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि सरकारी तथा गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं है।

सरकारी अध्यापक समूह का मध्यमान, गैर–सरकारी शिक्षक समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों में गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।

सारणी – 02

सरकारी तथा गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की तुलना

विद्यालय का प्रकार	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	ज – मान	सार्थकता स्तर
सरकारी विद्यालय की महिला अध्यापक	25	23.76	2.63	0.03	.05 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं है।
गैर–सरकारी विद्यालय के महिला अध्यापक	25	22.08	2.55		

(df = $N_1 + N_2 - 2$ = 25+25-2 = 48)

विष्लेषण– उपर्युक्त तालिका संख्या – 02 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की 25 महिला सरकारी अध्यापक तथा 25 गैर–सरकारी महिला अध्यापकों के गणना द्वारा प्राप्त मध्यमान क्रमशः 23.76 तथा 22.08 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.63 तथा 2.55 प्राप्त हुए हैं। कि स्वतन्त्रता के अंश 48 पर .05 सार्थकता स्तर पर ज– मान तालिका में मान 2.00 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त ज– मान 0.03 प्राप्त हुआ है जो तालिका मान से कम है, अतः यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि सरकारी तथा गैर–सरकारी महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं है।

सरकारी महिला अध्यापकों के समूह का मध्यमान, गैर–सरकारी महिला अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सरकारी महिला अध्यापकों में गैर–सरकारी महिला अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।

सारणी – 03

ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की तुलना

विद्यालय का प्रकार	संख्या ;छद्ध	मध्यमान ;डमंदद्ध	मानक विचलन ;ैण्क्ण्द्ध	ज –मान	सार्थकता स्तर
ग्रामीण सरकारी विद्यालय के पुरूष अध्यापक	25	23.04	2.89	0.87	.05 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं है।
शहरी सरकारी विद्यालय के पुरूष अध्यापक	25	23.20	2.53		

(df = N_1 + N_2 – 2 = 25+25-2 = 48)

विष्लेषण– उपर्युक्त तालिका संख्या – 03 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 25 ग्रामीण तथा 25 शहरी सरकारी पुरूष अध्यापकों के गणना द्वारा प्राप्त मध्यमान क्रमशः 23.04 तथा 23. 20 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.89 तथा 2.53 प्राप्त हुए हैं। कि स्वतन्त्रता के अंश 48 पर .05 सार्थकता स्तर पर ज– मान तालिका में मान 2.00 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त ज– मान 0.87 प्राप्त हुआ है जो तालिका मान से कम है, अतः यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण तथा शहरी सरकारी पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं है।

ग्रामीण सरकारी पुरूष अध्यापकों के समूह का मध्यमान, शहरी सरकारी पुरूष अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण सरकारी पुरूष अध्यापकों में शहरी सरकारी अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।

सारणी – 04

ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की तुलना

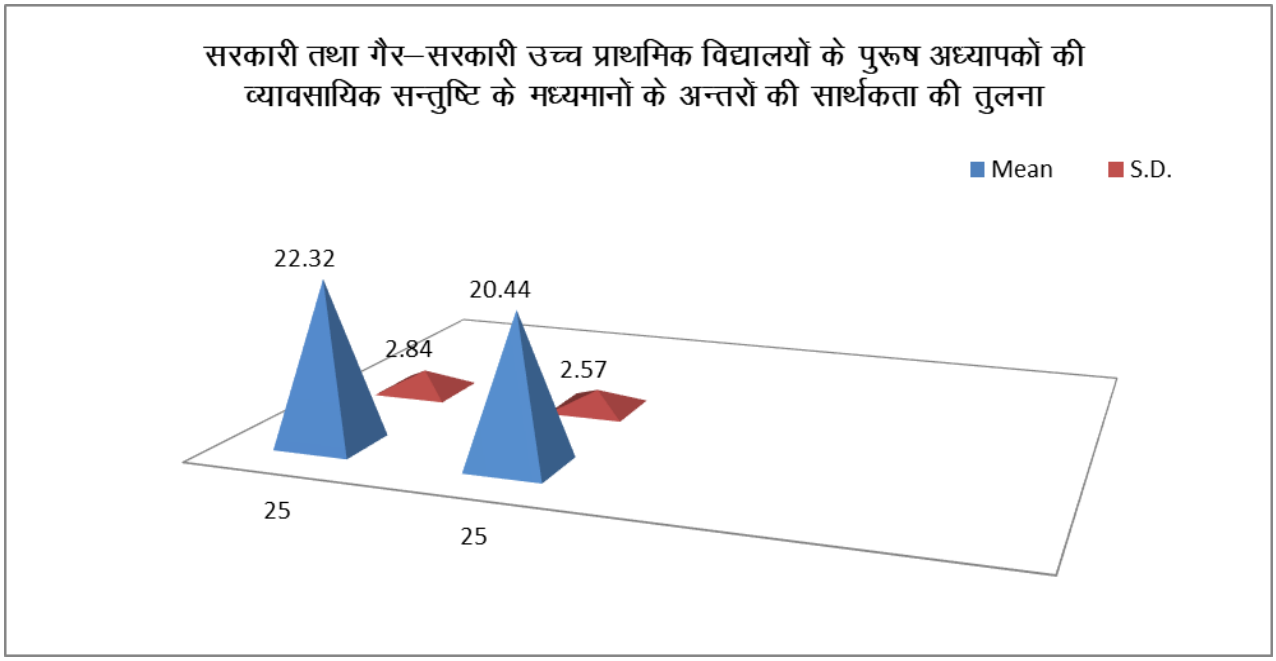
विद्यालय का प्रकार	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	ज – मान	सार्थकता स्तर
ग्रामीण सरकारी विद्यालय की महिला अध्यापक	25	21.91	4.75	1.03	.05 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं है।
शहरी सरकारी विद्यालय की महिला अध्यापक	25	20.77	4.62		

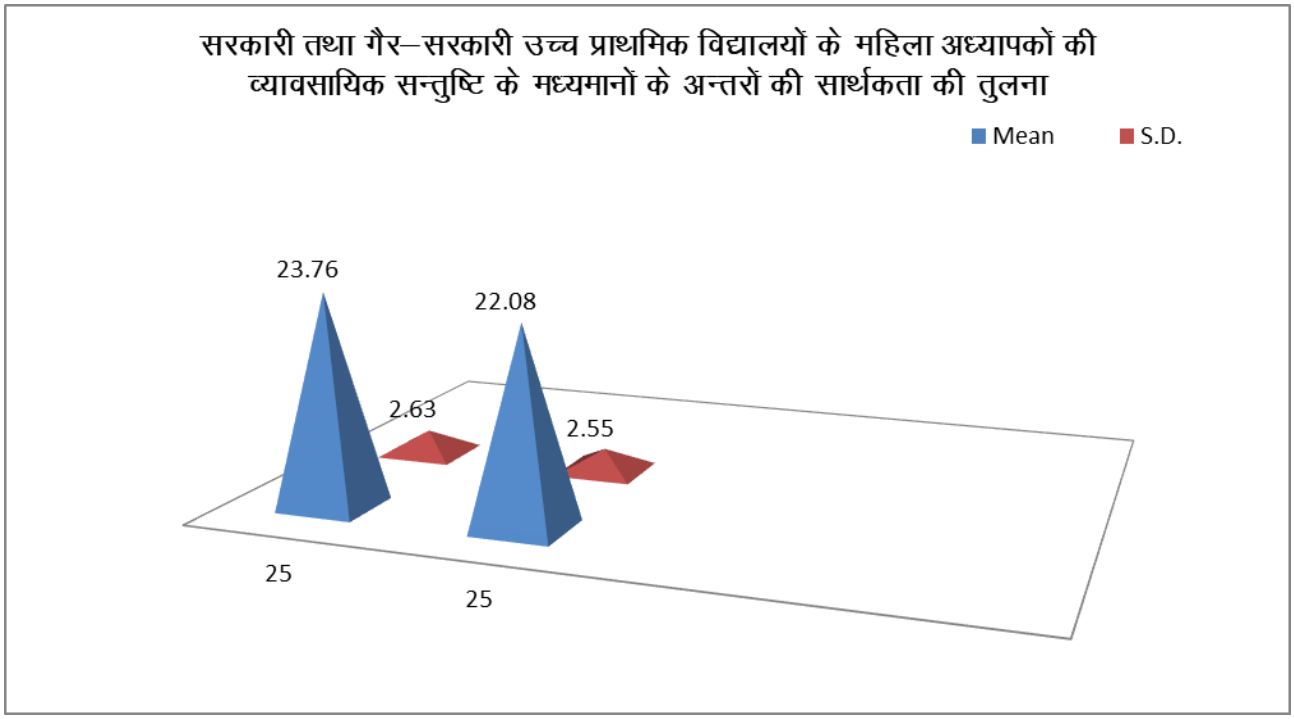
(df = N_1 + N_2 – 2 = 25+25-2 = 48)

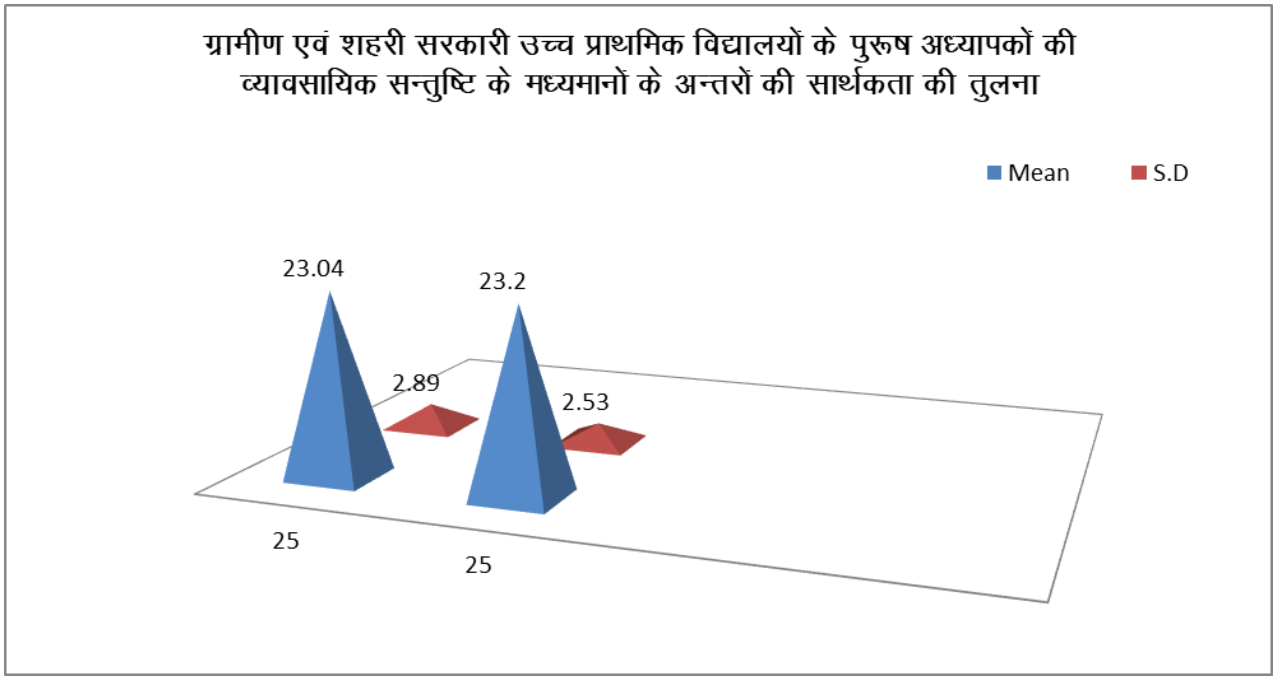
विष्लेषण– उपर्युक्त तालिका संख्या – 04 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 25 ग्रामीण तथा 25 शहरी सरकारी महिला अध्यापकों के गणना द्वारा प्राप्त मध्यमान क्रमशः 21.91 तथा 20. 77 तथा मानक विचलन क्रमशः 4.75 तथा 4.62 प्राप्त हुए हैं। कि स्वतन्त्रता के अंश 48 पर

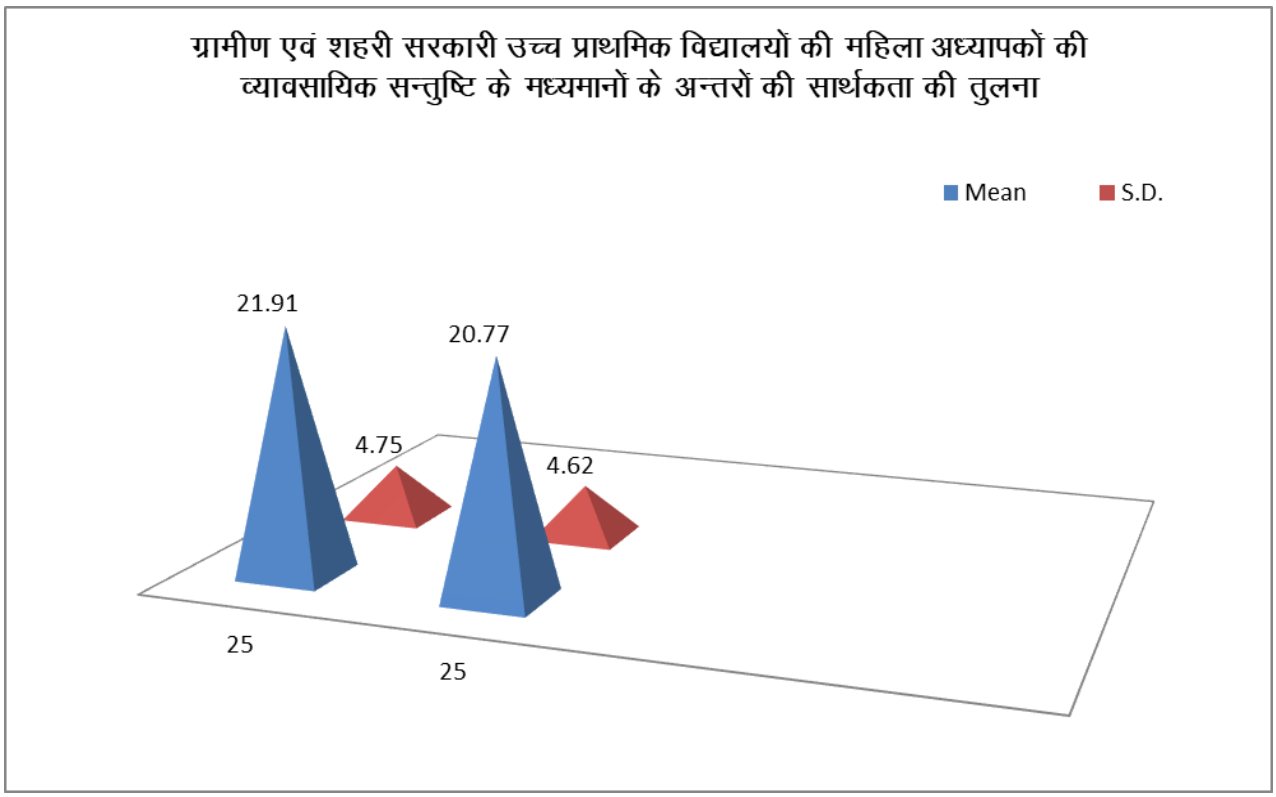
.05 सार्थकता स्तर पर ज– मान तालिका में मान 2.00 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त ज– मान 1.03 प्राप्त हुआ है जो तालिका मान से कम है, अतः यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण तथा शहरी सरकारी महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं है।

ग्रामीण सरकारी महिला अध्यापकों के समूह का मध्यमान, शहरी सरकारी महिला अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण सरकारी महिला अध्यापकों में शहरी सरकारी महिला अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।









सम्प्राप्तियाँ –

परिकल्पना संख्या – 01 *सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।* इस परिकल्पना के सन्दर्भ में *सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों* का विष्लेषण करने पर मध्यमानों का अन्तर 0.02 है, जो

निर्धारित सार्थक स्तर 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या – 02 *सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।* इस परिकल्पना के सन्दर्भ में *सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालयों के* महिला *अध्यापकों* का विष्लेषण करने पर मध्यमानों का अन्तर 0.03 है, जो निर्धारित सार्थक स्तर 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः सरकारी एवं गैर–सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या – 03 ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इस परिकल्पना के सन्दर्भ में *ग्रामीण सरकारी एवं शहरी सरकारी विद्यालयों के* पुरूष *अध्यापकों* का विष्लेषण करने पर मध्यमानों का अन्तर 0.87 है, जो निर्धारित सार्थक स्तर 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः सरकारी एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या – 04 *ग्रामीण एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।* इस परिकल्पना के सन्दर्भ में ग्रामीण सरकारी एवं शहरी सरकारी विद्यालयों के महिला अध्यापकों का विष्लेषण करने पर मध्यमानों का अन्तर 1.03 है, जो निर्धारित सार्थक स्तर 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः सरकारी एवं शहरी सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. सरकारी अध्यापक समूह का मध्यमान, गैर–सरकारी शिक्षक समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सरकारी विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों में गैर–सरकारी विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।
2. सरकारी महिला अध्यापकों के समूह का मध्यमान, गैर–सरकारी महिला अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सरकारी महिला अध्यापकों में गैर–सरकारी अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।
3. ग्रामीण सरकारी पुरूष अध्यापकों के समूह का मध्यमान, शहरी सरकारी पुरूष अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण सरकारी पुरूष अध्यापकों में शहरी सरकारी अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।
4. ग्रामीण सरकारी महिला अध्यापकों के समूह का मध्यमान, शहरी सरकारी महिला अध्यापकों के समूह से अधिक है। इस आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण सरकारी महिला अध्यापकों में शहरी सरकारी महिला अध्यापकों के समूह की तुलना में व्यावसायिक सन्तुष्टि अधिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. गुप्ता, एस. पी. व अलका. सांख्कीय विधियाँ. प्रयागराज : शारदा पुस्तक भवन.
2. श्रीवास्तव, डी.एन. मापन एवं सांख्यिकी. आगरा : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर.
3. माथुर, एस.एस. षिक्षा मनोविज्ञान. आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स.

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम एवं भारतीय संदर्भ

डॉ. राकेश कुमार (प्राचार्य)
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी. एड. कॉलेज
लक्ष्मणगढ़, सीकर
e-mail id: rkbudania@gmail.com
Mobile no.9414540868

सारांशः–

शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम के विभिन्न आयाम है, षिक्षकः शिक्षक को अपने आपको ऐस पेशेवर के रूप में देखने की आवश्यकता है जिसमें उपयुक्त क्षमता, लगन, उत्साह, नए तरीके अपनाने की लगन और चिंतशीलता है। उसमें संवेदशीलता भी है, न केवल विद्यार्थियों और संस्था के लिए बल्कि वृहत् सामाजिक संदर्भ में जिसमें व्यक्ति कार्य करता है, की उभरती चिंताओं के प्रतिभी। छात्रः छात्र को व्यक्ति विशिष्ट के रूप में उसके अपने सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में देखा जाना चाहिए तथा यह मानना चाहिए कि इसमें अद्भुतक्षमता है। इस अर्थ में, विद्यार्थी केवल एक मनोवैज्ञानिक इकाई मात्र नहीं होता, वह जीवंत सहभागी होता है। वह अधिगम प्रक्रिया में भाग लेना चाहता है और उसके सुधार की दिशा में काम भी करना चाहता है। अनुशासनः शिक्षण में अनुशासन का तात्पर्य शिक्षानुकूल वातावरण तैयार करने से है, न कि शिक्षा को अध्यापक केंद्रित बनाने से। एक ऐसा माहौल जिसमे शिक्षार्थी अपना विकास कर सके। विद्यालय का अनुशासन बालक के ब्यवहार और अभिवृत्तियो को महत्वपूर्ण ढंगसे प्रभावित करता है। विद्यालयः विद्यालय एक लघु समाज या समुदाय है जिसकी स्थापना विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। इसमें उन सामूहिक क्रियाओं को स्थान दिया जाता है जिनमें भाग लेकर बालक स्वयं को सामाजिक रूप से समाज का कुशल सदस्य बना सकें।अधिगम सामान्य अर्थों में अधिगम को व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में स्वीकार किया जाता है। सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन अधिगम की परिधि में नहीं आते है।मनावैज्ञानिकों ने केवल अभ्यास, अनुभूति, प्रशिक्षण, शिक्षण, आदि के फलस्वरूप व्यवहार हुए परिवर्तनों को ही अधिगम माना है।

शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में आधुनिक भारतीय समाज के मुख्य मुद्दों जैसे समाज का बहुलतावादी स्वभाव और अस्मिता के मुद्दे, जेंडर, समानता और गरीबी को महत्त्व दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को शिक्षा को संदर्भित करने में सुगमता होगी और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की गहरी समझ और समाज से उसके संबंधों का बोध भी हो सकेगा। अगली पीढ़ी को आकार देन वाले शिक्षकों के निर्माण में शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसे प्रक्रिया है, जिसके लिये बहुविषयक दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता है।

1.प्रस्तावनाः–

शिक्षा किसी राष्ट्र के नवनिर्माण एवं प्रगति की आधार शिला होती है। शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास संभव है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की अन्तनिहित शक्तियों का विकास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन एवं परिष्करण किया जाता है जिसके द्वारा देश की समृद्ध प्रतिभा एवं संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्दधन व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिये किया जाता है। हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है, इसके द्वारा बच्चों पर लादा गया बोझ। यह बोझ पाठ्यचर्या की असंबद्ध संरचना का परिणाम तो है ही जिसे बच्चों के जीवन और उनकी संस्कृति से कोई मतलब नहीं होता, परंतु साथ ही यह शिक्षक की अपर्याप्त तैयारी का भी परिणाम है। वे बच्चों से ठीक से नहीं जुड पाते हैं और नही बच्चों की जरूरत के अनुसार अपनी तरफ से रचनात्मक एवं जरूरी पहल करते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में जहाँ बच्चे को पर्याप्त जगह देने की बात स्वीकार की जा रही है, वहीं शिक्षकों को अभी भी उचित जगह नहीं दी जा रही है। उन्हें ज्ञान उत्पन्न करने और सोचने वाले पेशेवर के रूप में देखा जाना जरूरी है।उनका सबलीकरण इस हद तक तो जरूरी है कि वे बच्चे के द्वारा घर व परिवेश में सीखे गए अनुभवों को पहचान तथा महत्त्व दे सकें और तदनुसार उसे खोजने, सीखने व विकसित होने का अवसर प्रदान कर सकें।इसलिये शिक्षक शिक्षा में गुणवत्ता सुधार लाने हेतु

द्वि–वर्षीय एवं चार वर्षीय एकीकृत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरूआत की गयी है। इनके माध्यम से उच्चस्तर की तार्किक एवं नैदानिक क्षमताओं का विकास किया जायेगा। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा गुणवता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने एवं जीवन पर्यन्त शिक्षा को बढ़ावा दिया जाने का लक्ष्य है। साथ ही रोजगार के अवसरों को प्राप्त करने का लक्ष्य है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य अच्छे शिक्षक विकसित करना है, जो तर्क संगत विचार एवं चिन्तन के शैक्षिक स्तम्भ हो।जिसमें करुणा, सहानुभुति, साहस, सम्प्रेषण, लचीलापन, वैज्ञानिक चिन्तन, कल्पनाशक्ति, नवाचारी और नैतिक मूल्य अर्न्तनिहित हो, साथ ही शिक्षक संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहर तरीके से योगदान कर सके।

2.शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम के विभिन्न आयामः–

शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में बुनियादी बदलावों द्वारा हमें एक दमनयी दिशा में जाने की आवश्यकता है।जिसके लिए हमें आवश्यक सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें तय करनी चाहिए। इसके पश्चात् प्रचलित ज्ञान और व्यवहार करने को उचित रूप से शामिल करने के लिए परिवर्तन के लिए या फिर उन्हें छोड़ने के लिए उन्हें जाँचा परखा जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि शिक्षक–शिक्षा के इस नए उपागम में बहुतसारे पहलुओं पर विशिष्ट अवधारणात्मक और व्यावहारिक फोकस होना चाहिए। उनमें से कुछ प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैंः

2.1 शिक्षकः

शिक्षक वह होता है जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं की पहचान कराए, उनके व्यक्तिगत तथा विशिष्ट अनुभवों कोइ सतरी के से सामने रखे कि वे राष्ट्र के संदर्भ में स्वीकृत हों। शिक्षक को यह समझना चाहिए कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी केंद्रित सीखने की प्रक्रिया के संदर्भ में विकसित होती है, वह पहले से तय नहीं हो सकती; शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा सीखे जाने की प्रक्रिया में सहयोग मात्र के लिए ही तैयार किया जाता है। लेकिन प्रत्येक अधिगम परिस्थिति संचित रूप से शिक्षक को बच्चों की जरूरतों को पहचानने के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। ऐसी कोई एक पद्धति नहीं है जो सभी विद्यार्थियों को एक ही ढंग से सिखा सके। हर शिक्षक को बोधगम्य अभ्यास द्वारा अलग–अलग विद्यार्थियों में सीखने के तरीके पहचान ने होंगलेकिन इस तथ्य को स्वीकार करते हुए किस भी विद्यार्थी अपने–अपने ढंग से सीखते हैं।शिक्षण विधि की प्रभाविता और उपयुक्तता जाँचने के दो पहलू हैं।पहला है शिक्षक की अपनी शैली जिसमें वह विधिया विधियों का उपयोगकरता है। इसका संबंध उसकी अपनी जरूरत से होता है। दूसरा है विद्यार्थियों के सीखने का अपना ढंग। अनोखे ढंग की सहभागिता, सीखने या जानने की प्रक्रिया में शिक्षक तथा विद्यार्थी की भूमिका स्पष्ट रू॰ से सामने लाती है। जब इसमें दोनों ज्ञान की प्रक्रिया में भाग लेते हैं तो लाभान्वित होते हैं। विद्यार्थी के लिए अधिगम ग्रहण करना शैक्षिक परिस्थितियों का एक बड़ा सरोकार है। इस दृष्टि में तकनीकी रूप से दोनों ही सीखने वाले हैं। शिक्षक को अपने आपको ऐसे पेशेवर के रू॰ में देखने की आवश्यकता है जिसमें उपयुक्त क्षमता, लगन, उत्साह, नए तरीके अपनाने की लगन और चिंतनशीलता है। उसमें सेंवदनशीलता भी है, न केवल विद्यार्थियों और संस्था के लिए बल्कि वहृत् सामाजिक संदर्भ में जिसमें व्यक्ति कार्य करता है, की उभरती चिंताओं के प्रति भी। शिक्षक को क्रिया–आधारित शिक्षण की प्रकृति और गतिशीलता को समझना चाहिए। यह समझ चीजों को जैसे का तैसा संज्ञानात्मक रू॰ से स्वीकार करने के बदले खुद करने के लिए प्रेरित करेगी। और यह ध्यान दिलाएगी कि 'क्या काम करता है क्या नहीं' इसके साथ ही यह क्रिया का आलोचनात्मक विश्लेषण, चिंतन तथा आत्म सात् करने में मदद करेगी। इसलिए शिक्षक–शिक्षा व्यक्ति को स्वतंत्ररू॰ से कार्य करने के लिए तैयार करती है। शिक्षक प्रशिक्षक को न केवल पैराडाइम बदलाव की समझ हो बल्कि वे इसके वाहक भी बनें।इसके लिए बेहतर अभिमुखीकरण कार्यक्रमों की आवश्यकता है जिसमें वे अपनी बदली हुई भूमिका को समझ सकें और उन परिस्थितियों के लिए तैयार हो सकें जिनमें सीखने वाले ही प्रभावी हों। हमारे देश में अलग–अलग विशिष्टताओं वाली विविध स्कूली व्यवस्थाएँ हैं, फिर भी वे राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न चरणों की स्कूली शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों में हिस्सेदारी निभाती हैं। शिक्षक कोइ न विविधताओं और इनकी अपेक्षाओं का अंदाजा होना चाहिए। इससे शिक्षक को किसी भी स्कूल व्यवस्था में समायोजन करने में और ठीक से काम करने में मदद मिल सकती है।

2.2 विद्यार्थीः

शिक्षक की भूमि का विद्यार्थी और ज्ञान के संदर्भ में आवश्यक मानी जाती है इसलिए शिक्षक–शिक्षा का मुख्य फोकस विद्यार्थी औरसीखने पर होना चाहिए। विद्यार्थी को व्यक्ति विशिष्ट के रू॰ में उसके अपने सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में देखा जाना चाहिए तथा यह मानना चाहिए कि इसमें अद्भुतक्षमता है। इस अर्थ में, विद्यार्थी केवल एक मनोवैज्ञानिक इकाई मात्र नहीं होता, वह जीवंत सहभागी होता है। वह अधिगम प्रक्रिया में भाग लेना चाहता है और उसके सुधार की दिशा में काम भी करना चाहता है। विद्यार्थी अपने सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों के आधार पर चीजों को समझते हैं, अपनी अभिवृत्ति का विकास करते हैं, और अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अपने तरीके से चीजों की व्याख्या करते हैं। सीखने के तरीके और गति के आधार पर विद्यार्थियों में भिन्नता पाई जाती है। एक ही अवस्था में वे अलग–अलग ढंग से सीखते हैं। यह प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक से कहीं अधिक हाते ी है। शिक्षकों को विद्यार्थियों में सीखने की वास्तविक क्षमता की पहचान करने और विद्यार्थियों के' सीखने के रास्ते को प्रतिबंधित किए बिना या बिना किसी आदेश आगे ले जाने के सरलतरी के ढूँढ़ने की जरूरत है। शिक्षक–शिक्षा कोशिक्षकों को इस दिशा में सक्षम बनाने वाला होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों की विविधताओं का सम्मान कर सके और यह भी समझ सके कि यह एक गतिशील प्रक्रिया है।

इस प्रकार विद्यार्थी सक्रिय और सहयोगी बनेंगे और अपने उद्देश्यों, रणनीतियों तथा परिस्थितियों के प्रति

सजग होंग और साथ ही जिम्मेदार भी होंगे। यहाँ सीखने वालों की क्षमता को स्थायी नहीं माना गया है. बल्कि यह माना गया है कि अनुभव के साथ उन का विकास होता है।

2.3 अनुसासनः

शिक्षण में अनुशासन का तात्पर्य शिक्षानुकूल वातावरण तैयार करने से है, न कि शिक्षा को अध्यापक केंद्रित बनाने से। एक ऐसा माहौल जिसमे शिक्षार्थी अपना विकास कर सके। विद्यालय का अनुशासन बालक के ब्यवहार और अभिवृत्तियो को महत्व पूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। अनुशासन का प्रजाता तान्त्रिक होना जरूरी है इससे बालको में प्रसन्नता, सहयोग, आत्म महत्व और विश्वास की योग्यता आदि व्यतिव विशेषतायें उत्पन्न होते हैं।

> अतः शिक्षण में अनुशासनऐ सा होना चाहिए जिससे बालक में सकारात्मक परिवर्तन हो सके। यदि अनुशासनात्मक कठोरता से बालकों में नकारात्मक विचार, भय, हीन भावना आदि आती है तो इसे विद्यालयी अनुशासन की संज्ञा नही दी जा सकती।

2.4 विद्यालयः

अधिकांशतः विद्यालय को वह स्थान माना जाता है जहाँ पर सूचना विक्रेताओं या शिक्षकों द्वारा छात्रों को कुछविषयों की सूचनायें दी जाती है। आज भी हमारे देश मे यह अवधारणा प्रचलित है। विद्यालय की इस अवधारण को पेस्टालॉजी ने इन शब्दों मे व्यक्त किया है,'' ये विद्यालय अमनोवैज्ञानिक है जो बालक को उसके स्वाभाविक जीवन से दूरकर देते है, उसकी स्वतंत्रता को निरंकुशता से रोक देतहै और उसे अनाकर्षक बातों को याद करने के लिए भेड़ों के समान हाँ करते है और घण्टों, दिनों, सप्ता हों, महीनों तथा वर्षों तक दर्द नकजीरों से बाँध देते है। ''परन्तु नवीन शैक्षिक विचारों तथा प्रयोग ने उक्त अवधारण मे परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।फ्रॉबेलने विद्यालय को 'बच्चों का उद्यान' कहा है। जिस तरह से बाग मे माली पेड़–पौधों की खुराई, निराई तथा सिंच ाई करके उनको उत्तम फल–फूल देने के लिए तैयार करता है उसी तरह से शिक्षक को बच्चों के सर्वांगीण–शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक आदि के विकास के लिए उनका पालन–पोषण करना चाहिए।

विद्यालय की परिवर्तनशील अवधारण मे उसे स्वयं मे एकल घुराज्य माना जाता है जिसमें उसके सुसंचालन के लिये उपयुक्त नियमों तथा विनियमों की व्यवस्था होती है। ये नियम बच्चों, माता–पिता, शिक्षक आदि की सद्भावना पर आधारित होते है। विद्यालय एक लघु समाज या समुद ाय है जिसकी स्थापना विशिष्ट उद्देश यों की पूर्ति के लिए की जाती है। इसमें उन सामूहिक क्रियाओं को स्थान दिया जाता है जिनमें भाग लेकर बालक स्वयं को सामाजिक रूप से समाज का कुशल सदस्य बना सकें। दूसरे शब्दों में वे उत्तम नागरिकता के गुणों को सीख सकें औरभावी समाज को उन्नत एवं प्रगतिशील बना सकें।विद्यालय एक उपचार केन्द्र है। आज के समाज मे युवको को व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श की अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि आज समाज संक्रमण काल से होकर गुजर रहा है। अतः इसेमे विद्यालय को एक उपचार–केन्द्र के रूप मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए।

2.5 अधिगम (सीखना):

अधिगम या सीखना शिक्षा के सभी स्वरूपों में केन्द्र बिन्दु माना जाता है। अधिगम की प्रक्रिया सभी जीवों में होती है किन्तु उनकी विशिष्टताएं अलग–अलग होती है अधिगम को मानवीय संदर्भ में एक जीवन पर्यन्तचलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। यह प्रक्रिया मानव शिशु के इस यथार्थ जगत में जन्म से ही प्रारंभ नहीं मानी जाती है अपितु गर्भावस्था में ही इस प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाता है।इस तथ्य का प्रमाण न केवल पौराणिक ग्रंथों में मिलता है अपितु विभिन्न वैज्ञानिक अनुसा धनों में भी इसको सत्यापित किया गया है। मानव अपने प्रारंभिक विकास क्रम में पराश्रित या असहाय जीव के रूप अधिगम करता है किन्तु धीरे–धीरे वह आत्मनिर्भर, स्वतन्त्र एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में अधिगम करता है। सामान्य अर्थों में अधिगम को व्यवहार में अपेक्षाकृ त स्थायीपरिवर्तनके रूप में स्वीकार किया जाता है। सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन अधिगम की परिधि में नहीं आते है। मनौवज्ञानिको ने केवल अभ्यास, अनुभूति, प्रशिक्षण, शिक्षण, आदि के फलस्वरूप व्यवहार हुए परिवतर्न ों को ही अधिगम माना है। अधिगम एक अपसारी (भिन्न दिशाओं में जाने वाली) प्रक्रिया है जो कई माध्यमों से होती है न कि पूर्व निर्धारित शिक्षक द्वारा केवल एक

माध्यम से यह आवश्यक रूप से सहभागिता आधारित प्रक्रिया होती है जिसमें विद्यार्थी अपना ज्ञान अपने तरीके से बनाता है जिसे यह ग्रहण,पारस्परिक बातचीत, अवलोकन और चिंतन के माध्यम से निर्मित करता है।इस प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थी के अधिगम में उतार–चढ़ाव होता रहता है। इसलिए यह प्रक्रिया रेखीय न होकर टेढ़ी–मेढ़ी और जटिल होती है। अधिगम कोई आसान और सीधी प्रक्रिया नहीं होती। यह जटिल, बहुआयामी और गतिशील प्रक्रिया है।

3.भारतीय संदर्भः–

शिक्षा पर उस परिवेश का बड़ा प्रभाव होता है जिससे शिक्षक और विद्यार्थी आते हैं।स्कूल और कक्षा के सामाजिक संदर्भ का सीखने की प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसे देखते हुए विद्यार्थी के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की जगह उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृति क संदर्भों पर अधिक जोरदिया जाना चाहिए। संदर्भ बदल ने पर सीखने की प्रक्रिया में भी अंतर आता है। स्कूलशिक्षा और सीखना दोनों बाहर के बड़े सामाजिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं तथा बढ़ते हैं।शिक्षा केवल एक संस्थान के अंदर अवकल्पित उद्देश्य तक सीमित नहीं होती। बाहर के ज्ञान को स्कूल के भीतर के ज्ञान से जोड़ा जाए तो वह बहुत मूल्यवान हो सकती है। ऐसी शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए जो सामाजिक और रोजमर्रा के संदर्भों से जुड़ी हो। साधारणतः शैक्षिक चिंत कों जैसे गांधी, टैगोर गिजूभाई, डिवी एवं अन्य द्वारा व्यक्त कई विचारों को उन के सामाजिक,ऐतिहासिक संदर्भों को समझे बिना जिसमें वे विकसित होत हैं, पढ़ा जाता है।

शिक्षक–शिक्षा कार्यक्र म में आधुनिक भारतीय समाज के मुख्य मुद्दों जैसे समाज का बहुल ता वादी स्वभाव और अस्मिता के मुद्दे, जेंडर, समानता और गरीबी को महत्त्व दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को शिक्षाको संदर्भित करने में सुगमता होगी और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की गहरी समझ और समाज से उसके संबधों का बोध भी हो सकेगा। अगली पीढ़ी को आकार देनेवाले शिक्षकों के निर्माण में शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है,जिसके लिये बहुविषयक दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता है। साथ ही बेहत रीनमेंटरों के निर्देशन में मान्यताओं और मूल्य का निर्माण किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षकों में भारतीय मूल्यों, भाषाओं का ज्ञान और लोक तन्त्र परम्पराओं के प्रति जागरूक किया जाता है। शिक्षक शिक्षा के अंतर्गत व्यवसायिक शिक्षा के प्रसार में तेजी लाने की आवश्यकता है, भविष्य में प्रशिक्षणार्थी उन के महत्व एवं कौशल से परिचित हो सके एवं अपने भावी शिक्षकों को अलग ढंग से प्रशिक्षित करने की जरूरत को रेखांकित करता है, ताकि वेसमताव सामाजिक परिवर्तन के प्रश्नों पर उचित पहल कदमी कर सकें।

4.निष्कर्षः–

भारत में शिक्षा ने बहुतें के लिए सामाजिक बहिष्करण के उपकरण के रूप में काम किया है ,समता मूल समाज के संवैधानिक लक्ष्यों से उन्हें और अधिक दूर करते हुए। अतः स्कूली शिक्षा का प्रयास ऐसी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करने के संदर्भ में स्थित होना चाहिए जो भारतीय समाज की संवैधानिक दृ ष्टि के अनुकूल केंद्रिक मूल्यों और रूपांतरण करने वाले लक्ष्यों पर आधारित हो। 1990 के दशक में बहुत से नवाचारों और शैक्षिक सुधारों का फोकस बच्चे की प्रकृतिको महत्त्व देन की आवश्यकता पर था। यही नहीं उसके सीखने की गति और उसे शिक्षा में उपयुक्त स्थान देने की बात काफी पुरजोरतरीके से कही जाती थी। लेकिन भारत में विद्यालीय शिक्षा को पुनर्जीवित करने की आशा चाहे वह आदर्शवादीप्रयासों के द्वारा होया सैद्धांतिक प्रयासों के द्वारा बहुतकम सफलत मिलीगा अगर शिक्षक की केंद्री य भूमिका न पहचानी गई। इसके साथ उन विविध बाधाओं को भी पहचाना जाना चाहिए जिसका सामना एक औसत शिक्षक करता है सामाजिक ,सांस्कृति क, कौशल तथा जंडेर आधारित शिक्षक की दक्षताओं, कौशलों, ज्ञान और दृष्टिकोण में रूपांतर ण तथा स्कूल के वातावरण में बदलाव एक प्रबुद्ध पाठ्यचर्या के आदान–प्रदान के लिए पहली शर्त है नकि इसके विपरीत जैसा कि आज माना जाता है।इस तरह के अभ्यास को साकार करना बहुतआसान नहीं होगा जैस कि शिक्षक–शिक्षा को रूपांतरणीय पेशे के रूप में बदलने की अधूरी कोशिश में देखा गया है।इसके लिए बड़े पैमाने पर संरचनात्मक तथा प्रक्रियात्मक बदलावों की आवश्यकता है जिन्हें इस शोध पत्र में
रेखांकित किया गया है।

संदर्भ–ग्रंथसूचीः–

☐अधिगम एवं शिक्षण (2017),हल्द्वानीः शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षा शास्त्र विद्या शाखा, उतराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
☐आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021),रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
☐पाठ्यचर्या नवीनी करण के लिए शिक्षक–शिक्षा(2009),नईदिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिशद्
☐ रेगर, के, शिक्षा का अर्थ, अवधारणा, दृष्टिकोण, लक्ष्य एवं उद्देय https://www.kkreducation.com/2022/07/shiksha-ka-arth.html

कुशल प्रतिबद्ध एवं भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से जुड़े शिक्षकों की तैयारी सुनिश्चित करना

डॉ. रामावतार गोदारा
शिक्षा संकाय
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
गाँधी विद्या मन्दिर,सरदारशहर
Mobile No 9351046606
Email Id- ramawatargodara@gmail.com

भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता है। इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी माना जाता है। जीवन–कला, विज्ञानया राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ–साथ नष्ट होती रही हैं परन्तु भारतीय संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर–अमर बनी हुई है।

संस्कृति शब्द का अर्थ–

संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, आदि का निर्धारण करता है। अतः संस्कृति का साधारण अर्थ होता है–संस्कार, सुधार, परिष्कार, शुद्धि, सजावट आदि। वर्तमान समय में सभ्यता और संस्कृति को एक–दूसरे का पर्याय समझा जाने लगा है जिसके फलस्वरूप संस्कृति के सन्दर्भ में अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं। लेकिन वास्तव में संस्कृति और सभ्यता दोनों अलग–अलग होती है।सभ्यता का संबंध हमारे बाहरी जीवन के ढंग से होता है जैसे– खान–पान, रहन–सहन, बोलचाल आदि। जबकि संस्कृति का सम्बन्ध हमारी सोच, चिन्तन और विचारधारा से होता है।संस्कृति का क्षेत्र सभ्यता से अधिक व्यापक और गहन होता है। सभ्यता का अनुकरण किया जा सकता है परन्तु संस्कृति का अनुकरण नहीं किया जा सकता है ।

उपर्युक्तअन्तर से स्पष्ट है कि दोनों के क्रियाकलाप अलग–अलग हैं और दोनों परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए भी हैं। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व दृश्य कला रूपों का प्रदर्शन होता है जो जीवन को सुखमय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।जबकि संस्कृति में कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव जीवन की उच्चत्तर उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं। अतः यही कहा जा सकता है कि सभ्यता वह है जो हम बनाते हैं तथा संस्कृति वह है जो हम हैं।

भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूप–

भारतीय संस्कृति विष्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। कई भारतीय विद्वान तो भारतीय संस्कृति को विष्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति मानते हैं।

वसुधैव कुटुंबकम–

भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वैदिक युग में प्राप्त होता है। वेद विष्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवन्त रही हैं, जिसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय पाया जाता है।

भारतीय विचारक आदिकाल से ही सम्पूर्ण विष्व को एक परिवार के रूप में मानते रहे हैं इसका कारण उनका उदार दृष्टिकोण है।हमारे विचारकों की 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम' के सिद्धान्त में गहरी आस्था रही है। वस्तुतः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति की कसौटी है। इस कसौटी पर भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से सही उतरती है।प्राचीन भारत में शारीरिक विकास के लिये व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन, ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट किया जाता था।

आश्रम व्यवस्था–

आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। प्राचीन भारत के धर्म, दर्शन, शास्त्र, विद्या, कला, साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र इत्यादि में भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरुप को देखा जा सकता है।

मानव संस्कृति–

यह संस्कृति ऐसे सिद्धान्तों पर आश्रित है जो प्राचीन होते हुए भी नये हैं। ये सिद्धान्त किसी देश या जाति के लिये नहीं अपितु समस्त मानव जाति के कल्याण के लिये हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति को सच्चे अर्थ में मानव संस्कृति कहा जा सकता है।मानवता के सिद्धान्तों पर स्थित होने के कारण ही तमाम आघातों के बावजूद भी यह संस्कृति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकी है।यूनानी, पार्शियन, शक आदि विदेशी जातियों के हमले, मुगलों और अंग्रेजी साम्राज्यों के आघातों के बीच भी यह संस्कृति नष्ट नहीं हुई। अपितु प्राणशीलता के अपने स्वभावगत गुण के कारण और अधिक पुष्ट एवं समृद्ध हुई।

भारतीय संस्कृति का वर्तमान स्वरूप –

भारतीय संस्कृति का नूतन आयाम ब्रिटिश साम्राज्य की नींव के साथ प्रारंभ हुआ। इस काल में सभ्यता ने संस्कृति को दबाने की चेष्टा की, अतः संस्कृति का यथार्थ स्वरूप उभर नहीं सका।इस युग में सामाजिक आचार–विचार पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ा। संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के स्थान पर परिवारों का पृथक्करण होने लगा।धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त ने धर्म को पीछे धकेल दिया। विज्ञान ने ज्ञान के अपेक्षित स्वरूप की अपेक्षा कर दी, भौतिकवाद उभरकर सामने आया और भारतीयों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण अपने मूल लक्ष्य से भटक गया।आधुनिकतावाद की अवधारणा का समाज में आना सरल हो गया।

वैष्वीकरण और आधुनिकरण के मध्य में गहरा संबंध है। जब भारतीय संस्कृति का स्वरूप आधुनिक हो गया तब निश्चित दिशा में होने वाले परिवर्तन भी दिखाई देने लगे।बुद्धिवाद, विवेकीकरण और उपयोगितावाद आदि दर्शन का उदय संस्कृति का नया स्वरूप बन गया जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का गुण होता है।आधुनिकता की जड़ें यूरोपीय पुनर्जागरण से जुड़ी हैं। यूरोपीय पुनर्जागरण में नए–नए अन्वेषण और अविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण सामने आया।कला और विज्ञान के नवीन साधना का श्रीगणेश हुआ, राजनीतिक तथा समाज व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। अतः इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप एवं एशिया में एक नवीन चेतना का संचार हुआ।प्रौद्योगिकी विकास, विवेकीकरण द्वारा सभी क्षेत्रों में बुनियादी परिवर्तन हुए जिसके परिणामस्वरूप समाज की एक विशिष्ट स्थिति को प्रदर्शित करने वाली अवधारणा बनी।

महिलाओं को उचित स्थान मिला। अर्थात् बदली हुई संस्कृति में महिलाओं सशक्तिकरण की ओर ले जाने के प्रयास किये जाने लगे। कई आंदोलन व चर्चाओं का सहारा लिया गया। इस प्रकार सांस्कृतिक, मानववादी व व्यक्तिवादी स्वरूप देखने को मिला।मानव के विकासशील एवं सृजनात्मक स्वभाव पर बल देते हुए धर्म एवं तर्क, विज्ञान एवं धर्म का ही नहीं, वरन् प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास किया गया।संस्कृति के नए स्वरूप में गाँवों की संस्कृति को छोड़कर शहरीकरण देखा गया। इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। शहरीकरण से पलायन भी देखा गया। इस प्रकार लोग पुरानी संस्कृति को छोड़कर आधुनिक संस्कृति को अपनाने लगे।

उपर्युक्त सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मानवीय जीवन में जटिलताऐं बढ़ने लगी। भौतिकवाद की दौड़ में समाज से मावनीय मूल्यों का पतन होने लगा। मूल्यों के इस पतन के कारण सभी क्षेत्रों में इसके दुष्परिणाम प्रकट होने लगे। सभ्यता और संस्कृति की इस अवन्नति से शिक्षा के क्षेत्र में भी गुणवत्ता में गिरावट होने लगी। समाज में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यपरक पाठ्यक्रम के समावेश की महत्ती आवष्यकता अनुभव की जाने लगी। शिक्षा प्रणाली में सुधार के माध्यम से ही भारत की प्राचीन गौरवशाली परम्पराओं को पुनः जीवन्त किया जा सकता है।

भारत में कोई उपयुक्त पद्धति अध्यापकीय शिक्षा बनाने के लिये या वर्तमान पद्धति में सुधार लाने के लिये कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है। हमारे देश में अध्यापकीय–शिक्षा कार्यक्रम को सही दिशा देने के लिये न तो सरकार की कोई नीति है न ही कोई व्यावसायिक संस्थान है।

यद्यपि अध्यापकीय–शिक्षा के संदर्भ में कोठारी आयोग ने कई सुधार सुझाए हैं, परन्तु कोई भी समुचित सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया है। इसलिये अध्यापकीय–शिक्षा का सुधार बिना किसी सिद्धान्त के पारित करना केवल काम चलाना ही होगा।सबसे प्रमुख समस्या यह है कि इन दिनों जो शिक्षक बन रहे हैं उनके स्तर सन्देहपूर्ण तथा गिरते हुए हैं। ऐसा शायद बी.एड. कार्यक्रम के मौलिक उद्देश्य पर जनसाधारण की असहमति, अध्यापक की सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य माँगों के सन्दर्भ में है। पिछले 20 वर्षों में आधुनिक भारत के सामाजिक उद्देश्य, साधारणतः से सामान्य शिक्षा में काफी बदलाव आया है । इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि आज हमारे अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम आधुनिक जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। आवश्यक जानकारी एवं कौशल प्राप्त करने के अतिरिक्त शिक्षक को यह जानना आवश्यक है कि वह किस सामाजिक परिपेक्ष्य में रहा है तथा जिसके लिये उसे भावी पीढ़ियों को तैयार करना है। इसलिये इसका व्यापक उत्तरदायित्व प्रशिक्षण कॉलेजों पर जाता है कि वे इस देश के लक्ष्य निर्धारण में नेतृत्व करें।

एच.बी. मजूमदार के अनुसार– "वर्तमान समय से हमारी प्रवृत्ति 'अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़ अध्यापक–शिक्षा की ओर बढ़ी है जिसके फलस्वरूप प्रशिक्षण संस्थाओं में हम शिक्षकों को शिक्षण का अधिक ज्ञान एवं कौशल देने से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस विचारधारा में जो परिवर्तन आया है कि शिक्षक एक पूरी तरह शिक्षित तथा पूर्ण विकसित मनुष्य हो, योग्य नागरिक हो और साथ ही व्यावसायिक हो, को प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रम में जोड़ा जा रहा है, साथ ही अध्यापकीय–शिक्षा के क्षेत्र में जो अत्यधिक ज्ञान का विस्तार हुआ है उसकी भी अधिक माँग बढ़ रही है। इसलिये अवयव विधि की अवस्था अध्यापकीय शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम लायी है।"

शिक्षण की अवधारणा भी बदलती जा रही है। आज शिक्षा केवल ज्ञान देने तथा सूचना प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है। शिक्षा सीखने वालों की इस तरह सहायता कर रही है कि वे स्वयं ही बदलते हुए समाज में अपना कौशल विकसित कर सकें।अध्यापक की भागीदारी की अवधारणाओं में भी परिवर्तन हुआ है। अगर अधिगम की सफलता अधिगम से व्यवहार में जो परिवर्तन आ रहा है उसके परिणाम का मूल्यांकन किया गया तो आज के शिक्षक को कल का आचार्य बनना पड़ेगा। शिक्षक की एक भुलायी प्रतिमा है। एक शिक्षक केवल ज्ञान प्रदान करने वाला नहीं है, उसे अधिगम का निर्देशक भी बनना है, तथा संस्कृति का प्रचारक भी बनना है।

शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति है जो कि उस प्रकार का व्यवहार करता है जैसा कि वह अपने शिष्यों से चाहता है। यदि शिक्षा को आज एक शक्तिशाली उपकार के रूप में समाज परिवर्तक बनना है तो शिक्षक को इस परिवर्तन का कार्यकर्ता, सामाजिक अभियन्ता तथा भविष्य के समाज का शिल्पी बनना पड़ेगा। इसलिये शिक्षक का कार्य केवल कक्षा तथा विषय तक ही सीमित नहीं है, उसे सम्पूर्ण समाज तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का मार्गदर्शक बनना पड़ेगा।विद्यालय की अवधारणायें प्रतिदिन बदलती हैं। इसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अपने तथा आम समुदाय के बीच अन्तःप्रक्रिया जारी रखनी होगी ताकि आस–पास के वातावरण तथा स्थिति में परिवर्तन कर सके।

इस सम्पूर्ण आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव अध्यापकीय पाठ्यक्रम पर स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित होता है। अध्यापक–शिक्षण कार्यक्रम पारित करते समय निम्नलिखित सभी बातों पर विशेष ध्यान देना होगा–

1. मूलभूत परिज्ञान को विकसित किये बिना और बिना समझे शिक्षक अपनी कक्षा कार्य को शुरू नहीं कर सकता।
2. आगे वाले शिक्षक में विकास प्रक्रिया को समझने की क्षमता का विकास करना तथा किसी आयु वर्ग की व्यवहार को समझने में जो कठिनाई आती है, उसको समझना है।
3. आरम्भिक शिक्षक में मूलभूत कौशल तथा प्रवृत्तियों का विकास करना है।
4. आरम्भिक शिक्षक में शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रथम संस्कार तथा उनमें इस शिक्षण सेवा के प्रति अपनत्व की भावना विकसित अध्यापक नहीं बर सकता है।
5. अध्यापक की प्रतियोगी भावनाओं का विकास जो कि पाठ्यक्रम के अनुसार व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप है।
6. कम से कम कुछ शिक्षकों में वैज्ञानिक भावनाओं का विकास किया जाये ताकि शिक्षण में परीक्षण एवं नयापन लाया जा सके।

7. मुक्त समाज में सभ्य नागरिक बनने की अभिवृत्तियों का विकास करना है।

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम इतना लचीला हो कि वह साधारण तथा सृजनात्मक शिक्षकों, दोनों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। वास्तव में हम अपने सभी शिक्षकों से कक्षा में सृजनात्मक कार्य करने की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं। हमारी कक्षाओं में आज भीड़ बढ़ती जा रही है; जैसे–जैसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर अधिक से अधिक बच्चों तक पहुँच रहा है। इसलिये हमें समाज के विभिन्न स्तरों से बहुआयामी योग्यता वाले शिक्षकों की खोज निकालना होगा। यह विविधता हमें अपने अध्ययन शिक्षण–कार्यक्रमों में भी जानी होगी। अभिवृत्तियों तथा कौशलों के विकास पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये, क्योंकि इनके विकास में केन्द्रित तथा उद्देश्यपूर्ण अभ्यास की जरूरत है। हमारे प्रशिक्षण कॉलेजों के कार्यक्रम में बहुत अधिक भीड़ है, इसलिये तथ्यों का एकीभूत होना मुश्किल हो जाता है । तथ्यों के एकीभूत होने में तथा केन्द्रित होने में समय लगता है । सोचने में, आलोचनात्मक परीक्षण में, तथा सैद्धान्तिकरण में समय लगता है। ये सभी क्रियाकलाप बहुत अधिक समय लेते हैं। जैसा कि मैकनायर कमेटी रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रशिक्षण में जो छात्राध्यापक हैं, उन्हें अपने कार्यक्रम समाप्त करने की जल्दी नहीं होनी चाहिये, बल्कि वे उसमें आत्मसात हो जायें। शिक्षा आयोग (1964–66) की रिपोर्ट के प्रकाशन से शिक्षक के गुणों पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा है।

वर्तमान शताब्दी विशेषकर स्वतन्त्रता के बाद अध्यापकों की शिक्षा में अधिक परिवर्तन आया है। हमारे कार्यक्रमों में शिक्षा मनोविज्ञान का अब पूर्ण प्रभाव है। शिक्षक के कार्य कक्षा के अन्दर तथा कक्षा के बाहर तथा विद्यालय के बाहर सभी पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। द्वितीय, शिक्षा के प्रसार तय बच्चों की चिन्ता के कारण, गुणात्मक सुधार जरूरी हो गया है। भारत में जनतंत्र होने के कारण शिक्षकों की तैयारी में नये आयाम जुड़ गये हैं। हम बहुभाषीय तथा बहुधर्मी समाज में रहते हैं। इस विद्यालयों में धर्म को शिक्षा से दूर रखना अनिवार्य हो जाता है और किसी भी अवस्था में सभी बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य न किया जाये। दूसरी ओर जनता के इस संकीर्ण मानसिकता से लड़ते हुए राष्ट्रीय शक्तियों को बलशाली बनाना होगा, जिससे कि हम एक धर्मनिरपेक्ष जनतन्त्र का निर्माण कर सकें, जिसमें व्यक्ति का गुण ही उसके प्रति एवं विकास का आधार बन सके। इन कारणों से अध्यापक शिक्षण कार्यक्रम को सुदृढ़ करना आवश्यक हो जाता है, विशेषकर दर्शनशास्त्र समाजशास्त्र तथा शिक्षा की समस्याओं के क्षेत्र में।

अनेक संस्थायें अध्यापक–शिक्षा कार्यक्रम को पूर्ण करने में लगी हैं। भारतीय अध्यापक शिक्षक संघ, इसकी मूल संस्थायें तथा प्रमुख विश्वविद्यालय इस क्षेत्र में मुख्य रूप से काम कर रहे हैं। शिक्षा आयोग की कार्यसमिति भी इस काम में लगी हुई है। फिर भी अधिकांशतः का है यह मानना है कि यह कार्यक्रम अपना कार्य पूरी तरह से नहीं कर पा रहा है। इसलिये राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अध्यापक शिक्षा संघ ने विष्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के साथ मिलकर इस कार्य को करने की कोशिश की है। राष्ट्रीय शैक्षक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का यह विष्वास है कि यह उचित समय है, जबकि विष्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कार्यक्रम शोध द्वारा एकत्रित तथ्यों पर आधारित हो। ऐसा क्यों? क्योंकि समस्याओं और कार्यक्रम की कमियों को स्पष्ट तौर पर पहचाना नहीं गया है तथा इसका समाधान भी स्पष्ट नहीं है। अध्यापक–शिक्षा के चयन प्रक्रिया और मूल्यांकन के सभी तथ्यों को सुधारा जाये।

एक सफल अध्यापक के गुण– अध्यापक की सफलता के क्या कार्य हो सकते हैं ? इस बात पर अधिक शोध–कार्य किया गया है और भारत में भी कुछ प्रयास किये गये हैं। कई शिक्षक अपने कार्य में पूरी तरह संलग्न हैं, और यही महत्त्वपूर्ण कारण है कि भविष्य की पीढ़ियाँ प्रगति कर रही हैं यद्यपि शिक्षक के कार्य को अब तक बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। ये शिक्षक अपने अपेक्षित कार्य में पूरी तरह जुटे हुए हैं, परन्तु कई बार वे यह नहीं समझ पाते हैं कि क्या अपेक्षित है? वे लोगों की अर्थहीन आलोचना के प्रति बहुत ही भावुक हैं और अपने शिष्यों के व्यवहार से चकित हैं।छात्र उन शिक्षकों को पसन्द करते हैं जिन्हें अपने विषय पर स्वामित्व के साथ विषयों की भी समझ हो, विचार स्पष्ट हों, अपने कार्य में कुशल हों, तथा छात्रों को सही तरह से दिशा–निर्देश दे सकें, तथा जो छात्रों में रुचि लें उनकी व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान निकालने में उनका सहयोग दें तथा मैत्रीपूर्ण स्वभाव होने के साथ–साथ कुछ सीमा तक कठोर भी हों तथा अपने कार्य को पूरे व्यावसायिक रूप से करें।

एक सफल शिक्षक के लक्षण, सामान्य ज्ञान, कौशल तथा स्वभाव का अध्ययन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे–

1. अच्छी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।
2. व्यावसायिक अभ्यास और तकनीकी का अच्छा ज्ञान हो।
3. मानव विकास तथा अधिगम का अच्छा ज्ञान हो।
4. स्पष्ट भाषा बोलने तथा लिखने में निपुण हो।
5. शोध तथा शिक्षा की समस्याओं का समाधान निकालने में कुशल हो।
6. विषय और शिक्षण में रुचि लेता हो।
7. विद्यालय तथा समुदाय में रुचि हो।
8. व्यावसायिक कार्यों एवं व्यावसायिक उत्थान में रुचि लेता हो।

शिक्षकों के लिए नैतिकता और मूल्य –

1. पेशे में विष्वास बनाए रखें–शिक्षकों को अपने छात्रों, सहकर्मियों और समुदाय के साथ विश्वास बनाने और बनाए रखने को प्राथमिकता देनी चाहिए। उन्हें विष्वसनीय और विश्वसनीय तरीके से कार्य करना चाहिए, वादों को निभाना चाहिए और अपने कार्यों और निर्णयों में पारदर्शी होना चाहिए।

2. छात्रों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखें–शिक्षकों को अपने छात्रों के साथ सकारात्मक और सम्मानजनक संबंध बनाने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें सुलभ होना चाहिए, सक्रिय रूप से सुनना चाहिए और छात्रों को शैक्षणिक और भावनात्मक रूप से सहायता प्रदान करनी चाहिए।

3. छात्रों की विशिष्टता और विविधता का सम्मान करें –शिक्षकों को अपने छात्रों के बीच उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, क्षमताओं और सीखने की शैलियों सहित व्यक्तिगत अंतरों को पहचानना और उनकी सराहना करनी चाहिए। उन्हें एक समावेशी कक्षा वातावरण बनाना चाहिए जो विविधता का जश्न मनाए और सभी छात्रों के साथ निष्पक्षता और सम्मान के साथ व्यवहार करे।

4. सहकर्मियों, माता–पिता और अभिभावकों के साथ सहयोगात्मक तरीके से काम करें–शिक्षकों को अपने साथी शिक्षकों के साथ सक्रिय रूप से सहयोग और संलग्न होना चाहिए, साथ ही अपने छात्रों की शिक्षा में माता–पिता और अभिभावकों को भी शामिल करना चाहिए। उन्हें संचार की खुली लाइनें बनाए रखनी चाहिए और छात्रों की शिक्षा और भलाई में सहायता के लिए मिलकर काम करना चाहिए।

5. ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के साथ कार्य करें –शिक्षकों को अपने पेशेवर आचरण में ईमानदारी, निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा का प्रदर्शन करते हुए उच्च नैतिक मानकों को बनाए रखना चाहिए। उन्हें पेशेवर आचार संहिता का पालन करना चाहिए और अपने छात्रों के बीच शैक्षणिक अखंडता की संस्कृति को बढ़ावा देना चाहिए।

6. अपने पेशेवर ज्ञान और अभ्यास को अद्यतन रखें –शिक्षकों को नवीनतम अनुसंधान, कार्यप्रणाली और शैक्षिक प्रौद्योगिकियों के बारे में सूचित रहते हुए लगातार पेशेवर विकास में संलग्न रहना चाहिए। उन्हें अपनी शिक्षण प्रथाओं पर विचार करना चाहिए और अपने छात्रों को सर्वोत्तम संभव शिक्षा प्रदान करने के लिए निरंतर सुधार का प्रयास करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची–

1. शर्मा डॉ. आर. ए. व चतुर्वेदी डॉ. शिखा, अध्यापक शिक्षा, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
2. सिंह डॉ. कर्ण, भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
3. भट्टाचार्य, डॉ. जी. सी.अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा
4. मदान, पनूम, भारत में शिक्षा–व्यवस्था का विकास तथा समस्यायें, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा
5. पाठक, पी. डी., भारतीय शिक्षा और इसकी समस्यायें, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा

सक्सेना, एन. आर., मिश्रा, बी. के. मोहन्ती, आर. के., अध्यापक शिक्षा, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ

21वीं सदी में अध्यापक के समक्ष 21 चुनौतियाँ

डॉ. साहब राम
प्रोफेसर व प्राचार्य
एम.डी. कॉलेज, पल्लू
Email: anjna1234@gmail.com
मो. 8198961131

प्रस्तावना :–

कोविड–19 महामारी के संक्रमण के प्रकोप के चलते छात्रों के व्यक्तित्व के समग्र विकास हेतु चलने वाली सांस्कृतिक, साहित्यिक और खेलकूद, कला–कौशल सम्बन्धित गतिविधियाँ एवं कार्यक्रम सभी बाधित हुए हैं। लेकिन कोरोना के कारण जहाँ चुनौतियाँ उभर कर आई हैं वहीं कुछ नये अवसरों ने भी द्वार पर दस्तक दी है। क्योंकि जहाँ समस्यायें होती हैं। वहाँ उनके समाधान भी होते हैं। अतः जीवन में आये अवसरों को हमें साहस एवं ज्ञान के द्वारा समझना होगा। कोरोना संकट ने शिक्षा के क्षेत्र में जिन चुनौतियों को जन्म दिया है। उनमें सबसे बड़ा बदलाव कक्षा शिक्षण का ऑनलाईन शिक्षा में बदल जाना है। इस अनुकूलता में शिक्षक और शिक्षार्थी के साथ–साथ पाठयक्रम, मूल्यांकन और सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को नये बदलाव में प्रभावशील बनाना होगा। जिसके लिए स्थानीय स्तर से केन्द्र स्तर तक विशेष तैयारियों की आवश्यकता है। विकास के चरणों को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को अपने अन्दर आमूलचूल बदलावों को स्वीकृति देनी ही होगी जिससे कि शिक्षक समता एवं बदलाव के प्रश्नों पर उचित पहल कर सकें। शिक्षकों से आशा की जाती है कि वे शिक्षण कार्य में क्रान्ति लाएंगें तो वह क्रान्ति सर्वप्रथम शिक्षक शिक्षा के कॉलिजों में होनी चाहिए।शिक्षा में राष्ट्र के भाग्य को बदलने की शक्ति होती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 29 जुलाई 2023 को कहा है कि देश 21 वीं सदी में जिन लक्ष्यों को हासिल करना चाहता है उन्हें अर्जित करने में शिक्षा प्रणाली की बहुत बड़ी भूमिका है।उन्होंने संदेश में कहा, ''21वीं सदी का भारत जिन लक्ष्यों के साथ आगे बढ़ रहा है, उन्हें अर्जित करने में हमारी शिक्षा प्रणाली की बहुत बड़ी भूमिका है।'' अखिल भारतीय शिक्षा समागम के महत्व पर जोर देते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि शिक्षा के लिए चर्चा और संवाद महत्वपूर्ण है। वर्तमान में 21वीं सदी की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य विद्यार्थी को केवल ज्ञान देना नहीं बल्कि उसमे ऐसी अभिक्षमताओं को विकसित करना है जिनके द्वारा वह आज के युग में होने वाले पूर्वानुमानित या अप्रत्याशित परिवर्तनों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना कर सके व एक कुशल नागरिक बन अपने समाज को दिशा देने में सहायक हो सकें। हम विचार करें तो क्या शिक्षा प्रदान करने जैसा आदर्श व्यवसाय इतना आसान कार्य जितना वर्तमान में समझा जाता है। मैं अपने अनुभवों से यह कह सकता हूँ कि जैसा माना जाता है उतना आसान कार्य नहीं है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन पत्र में देश 21 वीं सदी में जिन लक्ष्यों को हासिल करना उनके समक्ष चुनौतियों पर विस्तार से प्रकाश डाला जा रहा है।

अध्यापक के समक्ष चुनौतियों का वर्गीकरण :–

भारतीय समाज में सदैव ही शिक्षा के प्रति एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठापूर्ण दृष्टिकोण रहा है। हम सतत रूप से ज्ञानपरक समाज की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के कार्य में शिक्षकों की भूमिका निःसन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। कक्षा–कक्षों के अध्यापन को जीवन्तता प्रदान कर, बदलते समाज की आवश्यकताओं पर अवलम्बित रोजगारपरक अपेक्षित कौशल आधारित एवं उच्च नैतिक–सामाजिक– आध्यात्मिक–भावात्मक मूल्यों से अंलकृत शिक्षा में गुणवत्ता की वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य पुस्तकों में बदलाव लाने होगें तथा शिक्षक शिक्षा के प्लेटफॉर्म पर शिक्षकों में आत्मविश्वास, विषयगत प्रभावी जानकारी, शिक्षण कौशलों का विकास एवं आधुनिक सूचना तकनीकी एवं सम्प्रेषण प्रविधियों से सुसज्जित करने हेतु प्रयास करना होगा। धन, समय व दूरी की सीमाओं को लांघकर विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दस्तक देनी होगी। शिक्षक शिक्षा में 21वीं सदी में शिक्षक और शिक्षालय को ज्ञानार्थी, प्रतिपादक, संचारक, संगठक, समन्वयक प्रवर्तक, समस्या निवारक की बहुआयामी भूमिकाएं निभानी पड़ेगी। इसके लिए बहुत प्रयास एवं

प्रयत्न, अभियान एवं आंदोलन करना पड़ेगा, समुदाय की सहभागिता, सहयोग, सहकार प्राप्त करना पड़ेगा । स्कूलों को चार दिवारी से बाहर आना पड़ेगा। जब अध्यापक का दायरा बढ़ेगा तो उसके समक्ष चुनौतियाँ का आवरण भी अधिक होता जायेगा। इसलिए अध्यापक के समक्ष चुनौतियों को निम्नप्रकार समझा जा सकता है।

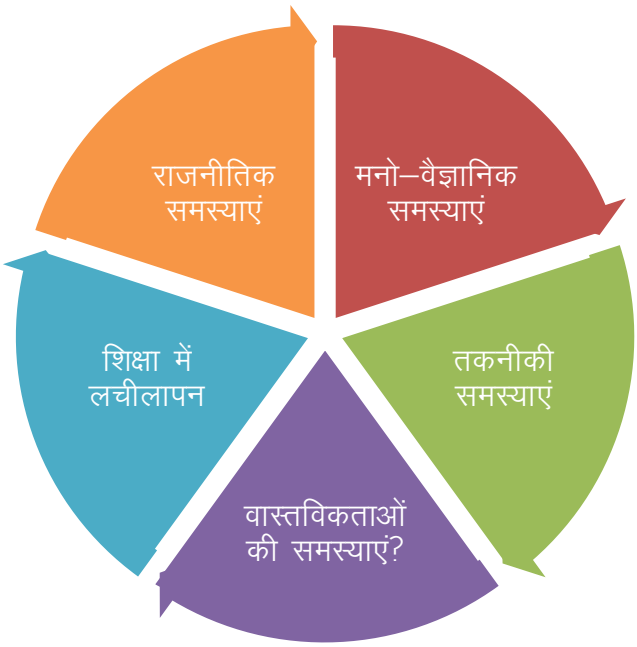


Figure 1 types of challenges in Teacher Education

1 राजनीतिक समस्याएं

प्रत्येक राज्य की राजनीतिक व्यवस्था तथा रहन–सहन, संस्कृति तथा सभ्यता, व्यवसाय तथा उद्योग आवश्यकताओं तथा समस्यायें एक–दूसरे से अलग–अलग होती है। जिस राज्य में जैसी राजनीति व्यवस्था तथा रहन–सहन, संस्कृति तथा सभ्यता, व्यवसाय तथा उधोग एवं आवश्यकतायें तथा समस्यायें होती हैं, वहाँ की शिक्षा को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है। शिक्षा के उद्देश्यों पर राज्य की आवश्यकताओं तथा समस्याओं का गहरा प्रभाव पड़ता है।जो राज्य आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं उन्हें आर्थिक आवश्यकतायें और समस्यायें सदैव बादल की भांति घेरे रहती है।अतः उन राज्यों में सर्वप्रथम शिक्षा के व्यावसायिक उद्देश्य पर बल दिया जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों पर राज्य की आवश्यकताओं तथा समस्याओं, संस्कृति तथा सभ्यता, राजनीतिक व्यवस्था तथा रहन–सहन एवं आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार शिक्षा का पाठ्यक्रम भी इन सबसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। लॉक, मिल तथा बेन्थम आदि व्यक्तिवादियों का अखण्ड विश्वास है कि राज्य का कार्य केवल नागरिकों की रक्षा करना है।उनका मत है कि राज्य को शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप अथवा नियंत्रण नहीं करना चाहिये।

a) समुदाय :

समुदाय के विचारों एवं लक्ष्यों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप बहुत बदलाव आये हैं। हम शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों को लोकतांत्रिक एवं समुदायजन्य रखकर ही शिक्षण कार्य कर सकते हैं। अन्यथा समुदाय एवं शिक्षा व शिक्षकों के मध्य हमेशा द्वन्द्व होता रहेगा। समुदाय की अभियोग्यता, अभिवृत्ति, एवं सामाजिक धारणा का प्रभाव आज अध्यापकों एवं विद्यालयों में देखने को मिल रहा है। विद्यार्थियों की उपस्थिति, अधिगम में रूचि, प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रति अधिक झुकाव आदि।

b) सभ्यता

सिंधु घाटी सभ्यता सं लेकर टैगोर तथा गांधी के युग में आज बहुत बदलाव आया है। वहीं शिक्षा के आधुनिकीकरण व तकनीकीकरण से शिक्षा के स्वरूप में बदलाव आना लाजमी था। तो अध्यापक को भी वर्तमान सभ्यता में विद्यालयों, विश्वविद्यालय, कक्षाओं के प्रबधंन में समस्याएं अनुभव कर रहा है।

c) राष्ट्रीयता/राष्ट्र

विश्व में जब से उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा नीजिकरण का दौर आया है तब से देशप्रेम की परिभाशा में बदलाव आया है। हजारों की संख्या में भारतीय विदेशी नागरिकता ग्रहण कर चूके हैं। जिससे ब्रेन ड्रेन की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

d) धर्म/धार्मिकता

विद्यालय ज्ञान के लिये हैं न कि धार्मिक उन्माद फैलाने के लिये, कर्नाटक जैसे अनेकों राज्यों के विद्यालयों में हिज़ाब/ जैसे अनेकों प्रतिकों को पहनने की ज़िद करके वहाँ धार्मिक उन्माद फ़ैलाने का जो प्रयास किया जा रहा है, वो अनुचित है। विद्यालय के अपने ड्रेसकोड पर भी प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है और उसका कड़ाई से पालन होना चाहिये।

e) प्रवसन

भारत और अंतर्देशीय प्रवासनरू भारत सबसे बड़ा प्रवासी देश है और कई देशों में अत्यधिक कुशल श्रमशक्ति की आपूर्ति करता रहा है। वर्ष 2018 तक भारत से प्रवासी लगभग 193 देशों में गए। भारत के बाहर प्रवासी भारतीयों को सबसे जीवंत माना जाता है।

2. मनो–वैज्ञानिक समस्याएं

एक अध्यापकों प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली व्यवहारगत समस्याओं के कारणों को समझना जरूरी है, अन्यथा वह विद्यार्थियों के साथ ऐसे तरीके से व्यवहार कर सकता है जिसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त अध्यापकों में प्रायः अत्यधिक कुंठित करने वाली (Frustrating) समस्याएं या लाभदायक (rewarding) चुनौतियाँ खड़ी कर देते हैं।कार्य की सूरक्षा :शिक्षक की नौकरी की अवधि, अन्य कारकों जैसे विद्यालय की प्रकृति, नियम और शिक्षा विभाग के निर्देशों का पालन करना आदि प्रमुख होता है। निजी विद्यालयों अक्सर शिक्षक की नौकरी तब तक चलती है जब तक प्रबधन से वैचाारिक भेद नहीं हो जाता है वहीं सरकारी नियमों के अनुसार पेंशन मिलती है। आमतौर पर, एक शिक्षक अपनी नौकरी को साठ से अधिक वर्षों तक कर सकता है, लेकिन इसमें भी कई वास्तविकताओं के प्रावधान हो सकते हैं। वेतन : सरकारी एवं निजी विद्यालयों के अध्यापकों में वेतन विसंगतियाँ एं बहुत बड़ी चुनौति है। वही कार्य भार अध्यापकों के लिए चुनौति बनी हुई है। राजनीतिक रसूख के अध्यापक कार्यभार से प्रायः मुक्त रहते हैं। शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति सकारात्मक अभिवृति वाले शिक्षक बहुत कम ही इस व्यवसाय में है। ज्यातार अध्यापक केवल शिक्षण को नौकरी पाने एवं मौज करने का साधन मात्र मानते हैं। जिसकी वजह से अधिकांश अध्यापक अन्य नौकरी की तैयारी में लगे हुए है। इसके अलावा शिक्षकों को कई मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सामना करना पड़ता है। जैसे मानसिक स्वास्थ्य, दबाव तथा नकारात्मक नेतृत्वशैली आदि।

3. तकनीकी समस्याएंः–

आज की शिक्षा टेक्नोलॉजी में जरूर एडवांस हो गई है परंतु अब बच्चों में संस्कार की कमी हो चली है। टेक्नोलॉजी के चलते बच्चों का खेल और पढ़ाई के प्रति नजरिया बदल गया है। वे अब सारे दिन मोबाइल पर ही गेम्स खेलने और अदर वीडियो देखने में लगे रहते हैं। उनकी सोशल लाइफ पर इसका असर हो रहा है। अब वह फिजिकल गेम्स में उतना पार्टिसिपेट नहीं करता जिसके चलते उसकी सेहत पर भी इसका असर होने लगा है। जिससे शारीरिक श्रम तथा अनुशासन जैसे समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। श्यामपट्ट का बदलता स्वरूप व तकनीकी शिक्षा, ज्ञान और अनुभव से परिपूर्ण प्रशिक्षित प्रतिभा का सृजन करने का एक स्वच्छंद, स्थिर एवं अपरंपरागत माध्यम है। यह प्रसन्नता का संकेत है कि सरकार इस समस्या को लेकर गंभीर हैं। स्वतंत्रता से लेकर अब तक हजारों तकनीकी शिक्षण संस्थान खोले जा चुके हैं। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति कुशल लोगों के हाथों पर निर्भर करती है। राष्ट्र की समृद्धि के उत्थान के लिए हर देश को तकनीकी शिक्षा पर उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। देश में बढ़ती बेरोजगारी, युवाओं में जन्मती दुष्प्रवृत्तियाँ तथा उनका

असामाजिक कृत्यों की ओर झुकाव देश को अराजकता की ओर भधकेल रहा है। इसलिए अनिवार्य है कि हमारी शिक्षा का तकनीकी के साथ सामंजस्य हो, संतुलन हो।

4. वास्तविकता की समस्याएंः–

अत्याधिक बढ़ती सूचना तंत्र एवं मीडिया का बेलगाम प्रयोग आज की वास्तविक समस्याओ के रूप में नकारना अध्यापकों के लिए बेमानी होगी। प्रत्येक विद्यार्थी आज सुचना के बम्बविस्फोट पर बठा हुआ है। उसके पास समस्त सुचना है परन्तु अध्यापक यदि इस बात से अनभिज्ञ है। वहीं मीडिया ने समाज एवं लोगों के सोचने के तरीकों में बदलाव किया है। वहीं गेम्स् व ऑनलाईन सटटा बाजार आज की वास्तविक समस्याओं में गिना जा सकता है।

5. शिक्षा में लचीलापन :

अनुशासन की परिभाशा में बदलाव, शिक्षा के स्वरूप में बदलाव, शिक्षा तंत्रों का एकत्रीकरण, शिक्षा समूहों का निर्माण, कोचिंग प्रथा की चरम सीमा, ज्ञान की परिभाशा में बदलाव, अध्यापकों का विमुखीकरण तथा शिक्षा में सरकारी प्रयोगों की प्रयोगशाला होना शिक्षा व्यवस्था कों लचीलेपन दे रहा है।

निष्कर्श :

विगत दशकों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर शैक्षिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भों में तेजी से बदलाव आने के परिणामस्वरूप विशेष रूप से शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं शिक्षणमाध्यमों में आमूलचूल परिवर्तन लाने ही होगें। पाठ्यक्रमों को ज्ञान के नये क्षितिज, नवीन कौशलों, अभिवृत्तियों तथा जीवन मूल्यों पर आधारित करने एवं जीवनोपयोगी सामर्थ्यता से परिपूर्ण बनाने की संस्तुति शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर करनी होगी। जिससे कि शिक्षित–प्रशिक्षित जनशक्ति आधुनिकीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना कर सकें तथा जो विकास प्रक्रिया के साथ अग्रसर हो सके। जिसमें सभी स्तरों पर गुणवत्ता लाने का प्रयास समाहित हो। एक ऐसी शिक्षा प्रणाली जिसमें श्रम के महत्व को स्वीकारोक्ति मिलें। जिससे सामाजिक राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना में वृद्धि हो सके। जिसमें आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ विश्व–बन्धुत्वता का भाव निहित हो। जो सभी को आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव की अनुभूति कराती हो तथा समाज के सर्वोत्कृष्ट उत्थान में सशक्त भूमिका का निर्वहन करती हो। क्योंकि शिक्षक के बगैर आप सभ्य और समृद्ध समाज की कल्पना नहीं कर सकते। सफलता से बड़ा कोई शिक्षक नहीं क्योंकि रचनात्मक अभिव्यक्ति और ज्ञान में प्रसन्नता जगाना शिक्षक की सर्वोच्च कला है। अशिक्षा की जागरूकता का अभाव, अज्ञानता, न्याय का अभाव तथा संसाधनों का अभाव आज की वास्तविक समस्याएं नहीं है। अध्यापकों के समक्ष आज शिक्षा के स्वरूप, तकनीकी मनो–वैज्ञानिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उनके बारे में सोचना अनिवार्य कार्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. Loewenberg Ball, D., & Forzani, F. M. (2009). The work of teaching and the challenge for teacher education. *Journal of teacher education*, *60*(5), 497-511.
2. Ravitch, D. (2007). Challenges to teacher education. *Journal of Teacher Education*, *58*(4), 269-273.
3. Seabright, P. (2019). Yuval Noah Harari: 21 LESSONS FOR THE 21ST CENTURY. *TLS. Times Literary Supplement*, (6049), 30-32.
4. गर्ग, किरन (2017), अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता, पंखुण्डी एन. इन्टरडिसिप्नरी जर्नल, बागपत उ.प्र.
   गुप्ता, एस.एस.पी. अलका (2013), शिक्षा की समस्यायें, शिक्षा ज्ञान कोश श्रृंखला, इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन.

शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा का कालक्रमिक विकास

डॉ.राकेश कुमार बडासरा
सहायक आचार्य
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड.कॉलेज,
लक्ष्मणगढ (सीकर)
ईमेलः–rakeshbadasara@gmail.com

प्रस्तावना :–

शिक्षा ही वह ज्योति पूँज है जो मानव मस्तिष्क के अंहकार को दूर करके ज्ञान रूपी प्रकाश को आलोकित करती है, शिक्षा मानव को मुक्ति का मार्ग दिखलाती है ''शिक्षा मनुष्य की समस्त जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक सन्तुलित एवं प्रगतिशील विकास है'' पेस्टॉलॉजी नामक शिक्षा शास्त्री के सम्बन्ध में ये विचार निश्चित ही शिक्षा को एक व्यापक तथा महत्वपूर्ण स्थान देते है। अतः शिक्षा व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक पक्षों के संतुलित विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है। शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तनों को अति अंधविश्वास,रूढ़िवादिता तथा संकीर्णता का प्रभाव इतना अधिक हो सकता है कि समाज धीर–धीरे पतन की ओर अग्रसर होकर गर्त में पहुँच सकता है। जहाँ शिक्षा हमारे जीवन को विकास की ओर निरन्तर उन्मुख करने वाली एक प्रक्रिया है, वहीं शिक्षा अपने विभिन्न रूपों के माध्यम से प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से समाज का मार्गदर्शन कर विकास को गति प्रदान करने वाली क्रिया भी है।

शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को सही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है तथा उसे समाज के विकास में योगदान देने योग्य बनाती है। सीखना तथा नया ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य की आदिकाल से ही स्वाभाविक प्रवृति रही है, उसकी जिज्ञासु प्रवृति ही उसे अन्य जन्तुओं से श्रेष्ठ घोषित करती है। आदिकाल में मनुष्य गुफाओं में रहता था, धीरे–धीरे उसने समूहों में रहना शुरू किया तथा समूहों में समाज रूपी व्यवस्था का सुत्रपात किया। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी सम्पूर्ण दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में रहकर आसानी से पूरी करता है। समाज के सम्पर्क में आकर ही व्यक्ति अपनी विभिन्न शक्तियों का विकास कर पाता है।

शिक्षा ही जीवन में सामाजिक तथा सांस्कृतिक तथा अन्य दायित्वों के लिए मनुष्य को तैयार करती है शिक्षा उसके मस्तिष्क को प्रशिक्षित करती है। शिक्षा भय से घृणा से अनैतिकता से दूर करती है और उसमें विकसित करती है– अनुशासन और निष्ठा। किसी भी देश या समाज का विकास स्त्री–पुरूष दोनों के व्यक्तित्व के विकास पर निर्भर है, उसके लिए आवश्यक है, दोनों की शिक्षा। शिक्षा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सजाती है, संवारती है और व्यक्ति के श्रेष्ठतम अंश का भिन्न व्यक्तियों से सम्पर्क कराती है।

बालक अनेक प्रकार की सम्भावनाएं लेकर दुनिया में आता है और उसके विकास की सीमायें बहुत विस्तृत और विशाल होती है। उचित और अनुकूल सुविधाऐं मिलने पर व्यक्ति ऊँचे से ऊँचे विकास तक पहूँच सकता है। वर्तमान में शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक रूप को विशेष रूप से देखा जाता है। अनौपचारिक शिक्षा व्यक्ति या बालक जाने अनजाने एवं संयोगवश की प्राप्त करता है। मानव सभ्यता के विकास में एक बहुत बड़ा योगदान अनौपचारिक शिक्षा का है।

आज वर्तमान में औपचारिक शिक्षा केन्द्रों के रूप में विद्यालय, महाविद्यालय तथा अनेक शैक्षिक संस्थाऐं पदार्पित हो चुकी है।

शेखावाटी क्षेत्र जिसमें सीकर, झुन्झुनूं एवं चुरू जिले का भू–भाग सम्मिलित है इसमे शिक्षा का प्रारम्भिक विकास तब से माना जाता है जब यहाँ अंग्रेजों का आगमन हुआ, स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान शिक्षा ही सबसे सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर सामने आई शिक्षा के विकास के कारण ही लोगों में जागरूकता आई, अंग्रेजी सेना में यहाँ के लोगों के भर्ती होने के कारण उनका राजस्थान तथा

राजस्थान से बाहर जाने के कारण उन्होंने शिक्षा के महत्व को बहुत करीब से महसूस किया तथा यहां के धनी वर्ग ने शिक्षा को प्रोत्साहन दिया तथा बाहर से शिक्षकों को शेखावाटी क्षेत्र में बुलाया जाने लगा और इसी के साथ शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक प्रशिक्षण की औपचारिक शुरूआत हो गई। बाहर से बुलाये गये शिक्षकों को यहाँ की भाषा एवं सामाजिक रीति रिवाजों को समझने के लिए उन शिक्षकों को एक अभिनवन कार्यक्रम (Orination Programme) करवाया जाने लगा इस प्रकार से प्रशिक्षण की शुरूआत होने लगी और धीरे–धीरे शिक्षक–प्रशिक्षण की औपचारिक शुरूआत हो गई।

शोध का महत्वः–

शेखावाटी क्षेत्र में राजस्थान के उत्तर–पूर्व के सीकर–झुन्झुनूं एवं चुरू जिले का कुछ भू–भाग सम्मिलित है, भौगोलिक रूप से रेगिस्तानी, जलाभाव तथा औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ क्षेत्र था, जिसके कारण यहाँ के लोग धनार्जन के लिए बाहर जाने लगे, मुगल काल से ही यहाँ के लोग सेना में जाने लगे तत्पश्चात् मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद भारत में अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ, ब्रिटिश साम्राज्य के कारण यहाँ के लोगों ने शिक्षा के महत्व को जाना। प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय सैनिक अंग्रेजी सेना की ओर से लड़ने के लिए विदेशों में भी गये, विदेशों में जाकर उन्होंने वहां की संस्कृति, शिक्षा, लोगों के रहन–सहन, खान–पान आदि को निकटता से देखने पर यह निष्कर्ष निकाला कि–'शिक्षा के द्वारा ही व्यक्तित्व को निखारा जा सकता है।'

वर्तमान समय सम्पूर्ण राजस्थान में सबसे अधिक शैक्षणिक संस्थाएं शेखावाटी क्षेत्र में है तथा प्राचीन शैक्षणिक संस्थाएं जिन्होंने उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, संस्कृत शिक्षा में अग्रणी तथा महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

समस्या कथन :–

शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा का कालक्रमिक विकास

शोध के उद्देश्य :–

1 शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा के प्रचार–प्रसार को कालक्रमिक रूप से प्रस्तुत करना।
2 शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा के विकास के स्त्रोतों एवं महत्वपूर्ण योगदानकर्ताओं का अध्ययन करना।
3 शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।
4 शेखावाटी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशासनिक एवं संगठनात्मक स्वरूप का अध्ययन करना।

न्यादर्श :–

प्रस्तुत शोध में शेखावाटी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को न्यादर्श के रुप में लिया जायेगा

शोध का परिसीमन :–

यह शोध अध्ययन निम्न सीमाओं में रहकर पूर्ण किया जायेगा।

1 न्यादर्श का आकार शेखावाटी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं तक सीमित रखा जायेगा।
2 न्यादर्श का क्षेत्र शेखावाटी के सीकर, झुन्झुनूं एक चुरू जिले तक सीमित रखा जायेगा।
3 इस शोध अध्ययन के लिए शेखावाटी क्षेत्र के अनुदानित एवं निजी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को सम्मिलित किया जायेगा।

शोध विधि :– प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक एवं सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

सरीन एण्ड सरीन– शैक्षिक अनुसंधान की विधियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1998
पाण्डेय रामशकल– शिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो,मेरठ 2009
चौबे और चौबे– शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाज शास्त्रीय आधार, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस,मेरठ
भटनागर, सुरेश– शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1980
सिंह,अरूण कुमार– मनोविज्ञान, समाज शास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2010
शर्मा, आर.ए– शिक्षा अनुसंधान, आर. लाल बुक डिपो,मेरठ 1991
आहुजा, मुकेश– भारतीय समाजिक व्यवस्था, वर्धमान महावीर कोटा विश्वविद्यालय 2008
NCERT - ifth Survey of Educational Research

शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम

डॉ. सत्यवीर (सहायक आचार्य)
संबल कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
नवलगढ़ रोड़, शिवसिंह पुरा, सीकर (राज.)

सार

शिक्षा का एक प्रतिमान शिक्षा के उद्देश्य, सीखने के अर्थ और शिक्षकों और छात्रों की भूमिकाओं के बारे में सोचने के तरीके को संदर्भित करता है। शिक्षा के प्रतिमान इस बात पर प्रभाव डालते हैं कि छात्रों को कैसे पढ़ाया और मूल्यांकन किया जाता है और पाठ्यक्रम में क्या महत्व दिया जाता है और क्या शामिल किया जाता है।

शिक्षक– शिक्षा कार्यक्रम एक ऐसी शिक्षा–व्यवस्था की जरूरतों के अनुसार शिक्षकों को निरंतर प्रशिक्षित करने का कार्य करते रहे हैं जिसमें शिक्षा को मात्र सूचना के हस्तातरण की प्रक्रिया में देखा जाता है और सीखने का अर्थ पाठ्यपुस्तकों से रटकर जैसे का तैसा बोलना और लिख लेना लगाया पाता है।

भारतीय शिक्षा की मूल भावना के सम्बन्ध में विष्णु पुराण में कहा गया है **"असतो मा सद् –गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय"** अर्थात असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली शिक्षा ही शिक्षा कहलाती है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा की समृद्ध शिक्षा व्यवस्था रही है। शिक्षा का अंग्रेजी प्रतिमान अंग्रेजी काल में चार्ल्स ग्रांट, विल्वर फोर्स या फिर मैकाले ही रहे।जब देश आजाद हुआ तो युगानुकूल परिवर्तन के माहौल में शिक्षा का अपना मॉडल अपनाया जा सकता था। देश आजाद होते ही 15 अगस्त 1947 को अंग्रेजी के विद्यालय बंद करने से हम एकाध वर्ष में उसको बदल कर अपनी व्यवस्था (मॉडल) बना सकते थे। परंतु उस समय पर यह ऐतिहासिक भूल हो गयी।अंग्रेजी शिक्षा तंत्र के लागू होते ही इसका विकल्प खोजने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। उसी में से शिक्षा के अनेक वैकल्पिक मॉडल विकसित होते चले गये।

महात्मा गांधी ने जो बुनियादी शिक्षा का मॉडल खड़ा किया उसमें भारत, भारतीय समाज और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर उसका गठन किया।यह मॉडल रोजगार परक होने के साथ–साथ उसमें धर्म व अन्यान्य चीजें भी थी। कला–कौशल के सम्बन्ध में भी चिंता की गई थी। महाऋषि अरविंद ने पॉन्डिचेरी में एक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन का एक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया।लोकमान्य तिलक ने जो स्वदेशी आंदोलन चलाया जिसमें सत्याग्रह और स्वदेशी के मुद्दे थे उन में से ही राष्ट्रीय विद्यालय की अवधारणा भी आई।भारत की शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिये, इसी कल्पना के साथ राष्ट्रीय विद्यालय खड़े हुए। आर्य समाज ने गुरूकुल परंपरा के रूप में विद्यालय चलाये। स्वामी श्रद्धानंद द्वारा स्थापित गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थिति इतनी बढ़िया थी कि उस में से निकले व्यक्तित्व भारत के प्रमुख स्थानों पर शासन करते थे। आजादी से पूर्व ही उत्तर देने के लिये संघर्ष चल रहा था लेकिन शासन व्यवस्था ब्रिटिशों के हाथ में थी। इस लिये प्रयोग ही हो सकते थे, पूर्ण परिवर्तन संभव नहीं था। आजादी के तुरंत बाद अंग्रेजी विद्यालय बंद कर दिये जाते तो शायद यह वैकल्पिक प्रतिमान चल सकते थे लेकिन दुर्भाग्यवश यह नहीं हो पाया और पुराना अंग्रेजी चक्र ही चलने के कारण हम आज भी घूम फिर के उसी व्यवस्था में से गुजरते हुए उस के परिणामों को देख रहे हैं।

इस का विकल्प देने के लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रेरणा से भारतीय चिंतन के आधार पर बहुत बड़े सांगठनिक प्रयास के रूप में विद्या भारती कार्यरत है।विद्या भारती विश्व का शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी गैर सरकारी संगठन है।

पंचकोषीय शिक्षा के आधार पर चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास ही शिक्षा के भारतीय प्रतिमान में प्रतिबिंबित होना चाहिये। शिक्षा देश की संस्कृति के अनुरूप, जीवन के लक्ष्यों का बोध करवाने वाली और उस के अनुरूप सामर्थ्य उत्पन्न करने वाली होनी चाहिये। शिक्षा धर्मनिष्ठ होने के साथ साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा चुनौतियों का सामना करने वाली होनी चाहिये। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह भैयाजी जोशी के शब्दों में "शिक्षा को व्यवसाय की बजाय मिशन के रूप में लेकर चलने वाले संस्थान होना समय की मांग हैं।" भारतीय शिक्षा के

वर्तमान प्रतिमान इन सब बातों को ध्यान में रख कर ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण करें जो भारत को आत्मनिर्भर,सक्षम और समर्थ बनाते हुए परम वैभव के लक्ष्य को खुली आंखों से देख सके।

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम :–शिक्षक शिक्षा स्तरीय–विशिष्ट है। इसका मतलब है कि शिक्षक शिक्षा पर कार्यक्रम पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक माध्यमिक, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की जरूरतों के अनुसार भिन्न होता है। विभिन्न स्तरों पर कक्षा लेनदेन के लिए विशिष्ट तरीके और रणनीतियाँ हैं। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में देश में एकरूपता नहीं है। कार्यक्रम व्यापक रूप से एक राज्य से दूसरे राज्य में सामग्री और प्रक्रिया में भिन्न होते हैं।

हालाँकि, मुख्य रूप से पाँच प्रकार के शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम या संस्थान हैं :–

1. पूर्व–प्राथमिक शिक्षक शिक्षा
2. प्राथमिक शिक्षक शिक्षा
3. माध्यमिक शिक्षक शिक्षा
4. उच्च शिक्षा कार्यक्रम
5. व्यावसायिक शिक्षक प्रशिक्षण

1. पूर्व–प्राथमिक शिक्षक शिक्षा :–मोंटेसरी, बालवाड़ी, नर्सरी, प्री–बेसिक आदि कई प्रकार के पूर्व–प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम हैं, इस पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता उच्चतर माध्यमिक है और पाठ्यक्रम की अवधि एक वर्ष है। कई संस्थान दो साल तक प्रशिक्षण देते हैं।

यह प्रशिक्षण राज्य सरकार द्वारा सामान्य रूप से संचालित एक प्रमाण पत्र या डिप्लोमा पाठ्यक्रम है। पंजाब और हरियाणा में कुछ साल पहले प्राथमिक स्कूलों के लिए शिक्षकों का उत्पादन करने के लिए "प्री–प्राइमरी और नर्सरी एजुकेशन में सर्टिफिकेट कोर्स" नाम से एक साल का कोर्स किया गया था। बाद में इसे बंद कर दिया गया था। 1987 में, हरियाणा सरकार। "पूर्व–स्कूल शिक्षा में डिप्लोमा" के लिए अग्रणी दो वर्षीय पाठ्यक्रम विकसित किया गया है। सरकार द्वारा कई संस्थानों को मान्यता दी जा रही है। इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम को चलाने के लिए। यह पाठ्यक्रम एनपीई 1986 के संदर्भ में तैयार किया गया है।

2. प्राथमिक शिक्षक शिक्षा :–पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान ऐसे प्रशिक्षण स्कूलों का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है, सामान्य तौर पर, पाठ्यक्रम दो साल तक रहता है और प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता मैट्रिक है। वर्तमान प्रवृत्ति उच्च माध्यमिक को प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता के रूप में निर्धारित करना है।

प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए पहले :–प्राथमिक प्रशिक्षण (ईटी) स्कूल पूर्व–सेवा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे थे। माध्यमिक प्रशिक्षण (एसटी) स्कूल प्राथमिक/एमई स्कूलों के संभावित या इन–सर्विस शिक्षकों के लिए पूर्व–सेवा प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए हैं। पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए आवश्यक बुनियादी योग्यता एचएससी परीक्षा पास है और अवधि दो वर्ष की है।

3. माध्यमिक शिक्षक शिक्षा :–प्रशिक्षण कॉलेज माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए स्नातक शिक्षक तैयार करते हैं। यह आम तौर पर B.Ed, डिग्री के लिए शिक्षक के सिद्धांतों और कार्यप्रणाली पर जोर देने के साथ एक वर्ष का पाठ्यक्रम है। प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक है।

4. उच्च शिक्षा :–शिक्षा के उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम चार प्रकार के होते हैं –

(i) एक वर्षीय एम.एड. कोर्स।

(ii) शिक्षा में दो वर्षीय एम.ए

(iii) दो वर्षीय पीएच.डी. एम.एड./एम.ए (शिक्षा) के बाद पाठ्यक्रम

(iv) शिक्षा के कुछ पहलुओं में स्नातकोत्तर डिप्लोमा के बाद बी.एड.

(i) एक वर्षीय एम.एड. कोर्स :–यह पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए खुला है, जिन्होंने बी.एड., परीक्षा उत्तीर्ण की है। उम्मीदवारों को कला या विज्ञान में मास्टर डिग्री के साथ एम.एड। प्रशिक्षण स्कूलों और कॉलेजों में व्याख्याताओं की नियुक्ति के लिए योग्यता के साथ–साथ एससीईआरटी, एनआईई और एनसीईआरटी के विभिन्न प्रशासनिक पदों के लिए योग्य माना जाता है।

(ii) दो वर्षीय एमए इन–एजुकेशन :–यह पाठ्यक्रम स्नातकों के लिए खुला है और कई मायनों में एम. एड के समकक्ष माना जाता है। यह इस तथ्य की मान्यता है कि अब 'शिक्षा' को अर्थशास्त्र या इतिहास

जैसे ज्ञान के अनुशासन के रूप में विकसित किया गया है। एम.एड. को शिक्षा के पक्ष में लागू माना जाता है, जबकि एम.ए (शिक्षा) को शिक्षा के मूल या शुद्ध पक्ष के रूप में लिया जा रहा है।

(iii) एम.एड./एम.ए. शिक्षा के बाद दो वर्षीय पीएचडी पाठ्यक्रम :–भारत में कई विश्वविद्यालयों में शिक्षा के क्षेत्र में पीएचडी की व्यवस्था है जो उन लोगों के लिए खुली है जो एम.एड. पास कर चुके हैं, या शिक्षा में एम.ए. द्वितीय श्रेणी में हैं। एम.एस. विश्वविद्यालय, बोरोड़ा शिक्षा के अपने उन्नत अध्ययन केंद्र के माध्यम से शिक्षा में पीएचडी की अग्रणी संख्या में अग्रणी है। इसके अलावा दो वर्षीय पीएच.डी. बेशक, एक वर्ष का अनुसंधान पाठ्यक्रम जो एम.फिल के लिए होता है, सामान्य कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में प्रदान किया गया है।

5. व्यावसायिक शिक्षक/प्रशिक्षण :–तकनीकी विषयों में प्रशिक्षण शिक्षक के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। विशिष्ट शिक्षकों को तैयार करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम और संस्थान हैं।

(1) फिजिकल एजुकेशन (डीपीई) में एक वर्षीय डिप्लोमा।
(2) संगीत, नृत्य, चित्रकारी और ललित कला के शिक्षकों को तैयार करने के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम।
(3) होम साइंस के लिए शिक्षकों को तैयार करने के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम।
(4) कला और शिल्प में सर्टिफिकेट कोर्स।
(5) अंग्रेजी, हिंदी और भूगोल आदि के शिक्षण में विशेषज्ञ तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम।

निष्कर्ष :– शिक्षा हमें यह निष्कर्ष निकालने में मदद करती है कि क्या सही है और क्या गलत? शिक्षा से मनुष्य के विचारों में संतुलन और स्थिरता आती है। शिक्षा से हमारा धैर्य, चिंतन–मनन और संकल्प की शक्ति बढ़ती है। शिक्षा से हम गरीबी और अज्ञानता को मिटा सकते हैं और शिक्षा से ही हम अपने आस–पास शांति और भाई–चारे का माहौल बना सकते हैं। शिक्षक हर बच्चे के जीवन में मार्गदर्शक सितारे होते हैं। शिक्षक छात्रों के शैक्षणिक, व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में अद्वितीय भूमिका निभाते हैं। वे यह सुनिश्चित करने के लिए अपना समय और प्रयास समर्पित करके छात्रों के भविष्य को आकार देने में मदद करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता तक पहुँच सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- •शर्मा (डा.) आर.ए. व चतुर्वेदी (डा.) शिक्षा, अध्यापक शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिसिंग हाउसः मेरठ, पृष्ठ 648–649
- अग्रवाल, जे. सी, 21वीं शताब्दी के संदर्भ में माध्यमिक शिक्षा पर दृष्टिकोण, अग्रवाल पब्लिकेशन्सः आगरा पृष्ठ 340–341
- सिंह (डा.) कर्ण, भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास, एच. पी. भार्गव बुक हाउसः आगरा, पृष्ठ 345–361
- भट्टाचार्य (डा.) जी. सी., अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्सः आगरा, पृष्ठ 326–347
- मंगल (डा.) के.पी., आधुनिक भारतीय शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्सः आगरा, पृष्ठ 83–84
- पाठक, पी.डी., भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, अग्रवाल पब्लिकेशन्सः आगरा पृष्ठ 336–337
- सक्सेना, एन.आर., मिश्रा, बी. के. व मोहन्ती, आर. के., अध्यापक शिक्षा, आर. लाल बुक डिपो मेरठ

शिक्षण - अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

डॉ. शिखा पालीवाल (प्राचार्य)
परिष्कार इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन
शिप्रा पथ, मानसरोवर, जयपुर
paliwalshikha2610@gmail.com
Mob. 9610756755

डॉ. निकीता तिवारी (स्कूल व्याख्याता)
रा.उ.मा.वि. किरण पथ
मानसरोवर, जयपुर

सारांश
शिक्षण की प्रक्रिया मानव व्यवहार को परिवर्तित करने की तकनीक है अर्थात् शिक्षण का उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन है। शिक्षण के बिना अधिगम असंभव है और अधिगम के बिना शिक्षण निरर्थक है परंतु विद्यार्थी के लिए दोनों परमावश्यक है, गाँधी जी ने क्रिया प्रधान और स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया उन्होंने बच्चों की क्रियाशीलता और खेल की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और इसी को आधार मानकर इसके परिमार्जन के साथ ही शिक्षण प्रदान करने की बात की और अपनी योजना को उद्योग केन्द्रित बनाया। विवेकानन्द ने भारत की उसी प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षण–पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिसमें गुरु और शिष्य के संबंध अत्यन्त घनिष्ठ रहते थे इन्होंने ज्ञान को व्याख्यान, तर्क, विचार–विमर्श, स्वानुभव तथा रचनात्मक कार्यों एवं उपदेशों द्वारा अर्जित करना, बालक को व्यक्तिगत निर्देशन तथा परामर्श द्वारा उचित मार्ग की ओर अग्रसर करना बताया। अरविन्द घोष ने शिक्षा का उद्देश्य शुद्धता के साथ बच्चे का शारीरिक तथा मानसिक विकास, आध्यात्मिकता का विकास बताया। शिक्षा का लक्ष्य भौतिक सफलता पाना नहीं है अपितु मानव को सच्चा मानव बनाना अर्थात् मानव चरित्र को सन्तुलित और सृजनात्मक बनाना है।

शिक्षण
शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है। शिक्षण शब्द शिक्षा से बना है जिसका अर्थ है 'शिक्षा प्रदान करना शिक्षण की प्रक्रिया मानव व्यवहार को परिवर्तित करने की तकनीक है, अर्थात् शिक्षण का उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन है। शिक्षण के बिना अधिगम असंभव है और अधिगम के बिना शिक्षण निरर्थक है परंतु विद्यार्थी के लिए दोनों परम आवश्यक है इनके द्वारा ही विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करता है, उसकी प्रतिभा तथा व्यक्तित्व का विकास होता है। अतः दोनों एक दूसरे के पूरक या एक–दूसरे से पूर्णतया संबंधित है।

शिक्षण की प्रकृतिः–

- शिक्षण एक प्रतिक्रियात्मक एवं विकासात्मक प्रक्रिया है।
- शिक्षण कला तथा विज्ञान दोनों है।
- शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है।
- शिक्षण उपचारात्मक प्रक्रिया भी है।
- शिक्षण को ऐसी व्यावसायिक क्रियाओं से संबंधित किया जाता है, जिनके द्वारा एक अध्यापक को अपने विद्यार्थियों की प्रगति और विकास में सहायता मिलती है इसलिए शिक्षण एक व्यवसायिक क्रिया है।
- सामाजिक वातावरण में उपयुक्त पाठ्य–सामग्री, पाठ्य–विधियों और शिक्षण साधनों के द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिर्तन लाया जा सके इसलिए शिक्षण विभिन्न प्रकार की क्रियाओं की एक संगठित प्रणाली है।
- शिक्षण का वैज्ञानिक ढंग से अवलोकन और विश्लेषण किया जा सकता है।
- ज्ञान, कर्म और भावनाओं का सफलतापूर्वक संप्रेषण करना एक अच्छे शिक्षण की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। अतः हम कह सकते है कि शिक्षण में संप्रेषण कौशल का आधिपत्य रहता है।
- शिक्षण एक पारस्परिक अन्तः प्रक्रिया है।

- शिक्षण विभिन्न शिक्षण कौशलों से युक्त एक विशिष्ट कार्य है।

अधिगम

- सीखना या अधिगम एक व्यापक सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलने वाली महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरांत ही सीखना प्रारम्भ कर देता है और जीवन भर कुछ ना कुछ सीखता रहता है। धीरे–धीरे वह अपने वातावरण से समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन कक दौरान वह अपने अनुभवों से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में सीखना कहते है। जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी अधिक शक्ति होती है उतना ही उसके जीवन का विकास होता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक क्रियाऐं करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है।

शिक्षण तथा अधिगम में संबंध

शिक्षण व अधिगम के संबंध को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते है।

ञ। शिक्षण किसी भी चीज का हो उसकी विषयवस्तु कोई भी हो तथा वह किसी भी स्तर का हो इसका एक ही उद्देश्य होता है प्रभावशाली अधिगम उत्पन्न करना।

ट। प्रभावशाली अधिगम होने पर ही शिक्षण प्रभावशाली मान जाता है।

ध। प्रत्येक शिक्षण प्रक्रिया का अंत अधिगम ही होता है।

ढ। शिक्षक छात्र के बीच शिक्षण द्वारा एक अंतःक्रिया होती है जिसका उद्देश्य अधिगम को प्राप्त करना होता है।

छ। शिक्षण बाह्म क्रिया है तथा अधिगम मानसिक क्रिया है।

ट। शिक्षण व अधिगम एक दूसरे के पूरक है शिक्षण सिद्धांत छात्रों की अधिगम गुणवत्ता बढ़ाने के लिये है।

ठ। शिक्षण के विभिन्न सूत्र, सिद्धांत, प्रतिमानों का प्रयोग अधिगम को सरल व स्थायी बनाने के लिए किया जाता है।

ड। शिक्षण एक कार्य व अधिगम एक उपलब्धि है।

ढ। शिक्षण एक माध्यम या साधन है जिससे सीखने के अनुभव प्राप्त किये जाते है अर्थात व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाया जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण

(महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद, अरविन्द घोष के संदर्भ में)

गाँधीजी के अनुसार

- बालक को किसी भी स्थानीय उद्योग के माध्यम से शिक्षा दी जाये जिससे उसके शरीर, मन तथा आत्मा का विकास हो सके और वह भविष्य में अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके। गाँधी जी ने अपनी शिक्षण पद्धति को क्रिया प्रधान और स्वानुभव द्वारा सीखने पर आधारित किया है। उन्होंने बच्चों की क्रियाशीलता और खेल की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और इसी को आधार मानकर इसके परिमार्जन के साथ ही शिक्षण प्रदान करने पर बल दिया है उन्होंने अपनी योजना को उद्योग केन्द्रित बनाया है।
- गाँधीजी ने स्वप्रयोग को न केवल उद्योग या हस्त कौशल की शिक्षा के लिए उपयोगी बताया है बल्कि उच्च गुणों की प्राप्ति के लिए भी इसे सबसे प्रभावी विधि माना है। गाँधीजी की मान्यता थी कि बच्चों को आधुनिक एवं व्यावसायिक शिक्षा दोनों जरूरी है कि वह अपने शेष समय का सदुपयोग भौतिक एवं रचनात्मक कार्यों में करें तथा जीवन के कुछ क्षण समाज सेवा और राष्ट्र सेवा में समर्पित करे।
- गाँधीजी की भावना थी कि यदि वर्तमान शिक्षा एक अच्छी भावी पीढी तैयार नहीं करती है तो वह केवल कृत्रिम बल्कि निरर्थक और अनुपयोगी ही है। ऐसी शिक्षा से कई प्रकार की त्रृटिया पैदा हो जायेगी। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति जीवन में आने वाली कठिन और विपरीत परिस्थितियों के साथ अनुकूलन और सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता और संभव है कि प्रतिकूल परिस्थितियों से घबराकर विघटन और विचलन का शिकार बन जाये। सही और सच्ची शिक्षा के अभाव में उसमें संघर्ष की शक्ति की कमी तो बढ़ेगी साथ ही उनमें

अनुशासन, समाज सेवा, सहयोग, सद्भावना नेतृत्व और शान्तियुक्त सद्गुणों का विकास भी नहीं हो पायेगा।

- गाँधी जी की शिक्षा के उद्देश्य भिन्न थे। प्रचलित शिक्षा विषय–प्रधान थी। गाँधी जी ने उस शिक्षण–पद्धति को दोषपूर्ण समझते हुए स्थानीय उद्योगों को शिक्षा का केंद्र बिंदु माना। वे चाहते थे कि बालक को किसी भी स्थानीय उद्योग के माध्यम से शिक्षा दी जाये। जिससे उसके शरीर, मन तथा आत्मा का विकास हो सके और वह भविष्य में अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सकें। इस दृष्टि से गाँधी जी की शिक्षण–पद्धति प्रचलित शिक्षण–पद्धतियों से भिन्न थी। उन्होंने अपनी शिक्षण–पद्धति में निम्नलिखित बातों को प्रमुख स्थान दिया।
- मस्तिष्क की शिक्षा के लिए शारीरिक अंगों का उचित प्रशिक्षण दिया जाये।
- लिखने से पहले पढ़ना सिखाया जाये।
- वर्णमाला के अक्षर सिखाने से पहले ड्राइंग सिखाई जाये।
- करके सीखने के अवसर प्रदान किये जायें।
- अनुभव के द्वारा सीखने को प्रोत्साहन दिया जाये।
- सीखने की प्रक्रिया में समन्वय स्थापित किया जाये।

स्वामी विवेकानन्द

- स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं सिखाता। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप स्वयं ही सीखता है। बाहरी शिक्षक तो केवल सुझाव ही प्रस्तुत करता है जिससे भीतरी शिक्षक को समझने और सीखने के लिए प्रेरणा मिल जाती है। इसी दृष्टि से स्वामीजी ने अपने समय की शिक्षा को निषेधात्मक बताया तथा लोगों से कहा– ''आप उस व्यक्ति को शिक्षित मानते है जिसने कुछ परीक्षाएँ पास कर ली तथा जो अच्छे भाषण दे सकता हो पर वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन–संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर सकती, जो चरित्र निर्माण नहीं कर सकती, समाज सेवा की भावना विकसित नहीं कर सकती, जो शेर जैसा साहस पैदा नहीं कर सकती, ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है।
- यह तकनीकी शिक्षा को भी महत्व देते थे। जिससे उद्योग–धंधे विकसित हो सके तथा देश पुनः धन–धान्य से परिपूर्ण हो जाये।
- यह सैद्धांतिक शिक्षा का खण्डन करते हुए व्यावहारिक शिक्षा पर बल देते थे।
- फ्रोबेल की भांति यह भी बालक को शिक्षा का केंद्र बिंदु मानते थे।
- इनके अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है पर इसका यह अर्थ नहीं कि इन्होंने लौकिक समृद्धि को कोई स्थान नहीं दिया। इन्होंने पाठ्यक्रम के अंतर्गत उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जिनके अध्ययन से आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ भौतिक उन्नति भी होती रहे।
- स्वामी विवेकानन्द ने भारत की उसी प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षण–पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिसमें गुरु और शिष्य के संबंध अत्यन्त घनिष्ठ रहते हो।
- स्वामी विवेकानंद ने मन को केन्द्रीयकरण विधि द्वारा विकसित करना, ज्ञान को व्याख्यान, तर्क, विचार–विमर्श, स्वानुभव तथा रचनात्मक कार्यों एवं उपदेशों द्वारा अर्जित करना, शिक्षक के गुणो तथा चरित्र का बुद्धि अनुकरण करना, बालक को व्यक्गित निर्देशन तथा परामर्श विधि द्वारा उचित मार्ग की ओर अग्रसर करना।

श्री अरविन्द घोष

- श्री अरविन्द शिक्षण की क्रमिक विधि के पक्ष में है। इस विधि में, जैसा कि आजकल है, बालक को एक समय में अनेक विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती है। इसके विपरीत, उसे केवल एक या दो विषयों की शिक्षा दी जाती है। जब यह इन विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब इसी प्रकार उसे अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती है।
- श्री अरविन्द ने शिक्षा को अति व्यापक और गतिशील रूप दिया है। उन्होंने इसकी व्याख्या प्राचीन भारतीय परम्पराओं के आधार पर की है। श्री अरविन्द का कहना है– ''शक्षा–मानव के

मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है। यह ज्ञान, चरित्र और संस्कृति का उत्कर्ष करती है।

- श्री अरविन्द के अनुसार– शिक्षा में अध्यापक को निर्देशक, पथ–प्रदर्शक और सहायक के रूप में कार्य करना चाहिए। वह मौन रूप से बालकों की अभिरूचियों का अध्ययन करके और उन अभिरूचियों के अनुसार बालकों के लिए शिक्षा की सामग्री का सकंलन तथा प्रस्तुतीकरण करें। उसे स्वयं बालक को ज्ञान देने का प्रयास नही करना चाहिए और न उन पर बाह्म ज्ञान को लादना चाहिए। उसे तो यह प्रयत्न करना चाहिए कि बालक अपनी अभिरूचियों के अनुसार ज्ञान का अर्जन करते हुए 'स्व–शिक्षा' के पथ पर अग्रसर हो। इस प्रकार श्री अरविन्द ने अध्यापक को गौंण स्थान दिया है।
- अरविन्द घोष के लिए ''वास्तविक शिक्षा वह है जो बच्चे को स्वतंत्र एवं सृजनशील वातावरण प्रदान करती है तथा उसकी रूचियों, सृजनशीलता, मानसिक, नैतिक तथा सौन्दर्य बोध का विकास करते हुए अंततः उसके आध्यात्मिक शक्ति के विकास को अग्रसरित करती है।
- अरविन्द घोष के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शुद्धता के साथ बच्चे का शारीरिक तथा मानसिक विकास, इन्द्रियों का विकास, आध्यात्मिकता का विकास होना चाहिए।
- शिक्षा बालकों को सभी मानसिक योग्यताओं तथा मनोविज्ञान के अनुरूप प्रदान की जानी चाहिए।
- पाठ्यचर्या में समाविष्ट विषय बच्चे की रूचि के अनुरूप होने चाहिए। उनके अनुसार पाठ्यचर्या को बच्चे के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक होना चाहिए। उन्होंने सुझाया कि पाठ्यचर्या रूचिकर होनी चाहिए तथा इसे बच्चे को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और शिक्षा का केंद्र बालक होना चाहिए।
- शिक्षा का मुख्य आधार–ब्रह्मचर्य और शिक्षा के विषय रोचक होने चाहिए।
- शिक्षा, बालक की मनोवृत्तियों और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुकूल होनी चाहिए।
- शिक्षा में धर्म को स्थान देना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।
- शिक्षा को व्यक्ति में निहित समस्त ज्ञान का उद्घाटन करना चाहिए।
- शिक्षा को बालक का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक और संवेगाात्मक विकास करके उसे पूर्ण मानव बनाना चाहिए।
- शिक्षा को व्यक्ति में निहित समस्त शक्तियों का इस प्रकार विकास करना चाहिए कि वह उनसे पूर्ण रूप से लाभान्वित हो।
- शिक्षा को बालक का मित्र और पथ–प्रदर्शक होना चाहिए और उसे बालक की शारीरिक शुद्धि की ओर से विशेष ध्यान देना चाहिए।
- श्री अरविन्द ने बालक के नैतिक भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करने के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के अलग–अलग विषय निर्धारित किये है। जैसे प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा, अंग्रेजी, सामाजिक अध्ययन की शिक्षा दी जानी चाहिए।
- माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर गणित, भौतिकशास्त्र, अंग्रेजी, जीव–विज्ञान आदि की तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, अंग्रेजी आदि की शिक्षा देनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. रूहेला प्रोफेसर एस.पी., सन् 2012, विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, अगरा।
2. सक्सेना एन.आर. स्वरूप, सन् 2010, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. त्यागी डॉ. गुरूसरन दास, नंद डॉ. विजय कुमार सन् 2008 उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

भारतीय शिक्षा का आधार - भारतीय जीवन दृष्टि

डॉ. सुभाष चन्द्र सैनी,
प्राचार्य, माँ भारती टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज,
डूण्डलोद, जिला झुन्झुनू, राजस्थान
ईमेल :–drscs31@gmail.com
मो. :– 9314277137

या सृष्टिः सष्टुराधा, वहति विधिहुतं या हविर्याचहोत्री,
ये द्वे कालं विधवः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्तभिरष्टां गिरीशः।।

भारतीय शिक्षा–

भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूप रेखा में शिक्षा की जगह और उसकी भूमिका को भी निरन्तर विकासशील पाते है। प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था। वह समकालीन शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी। लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ है। विदेशियों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को उस प्रकार विकसित नहीं किया, जिस प्रकार होनी चाहिए थी। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। आज भी यह चुनौतियां व समस्याएं सामने खड़ी है। जिनसे हमकों दो–दो हाथ करना है। 1950 तक भारत में गुरूकुल की प्रथा चली आ रही थी परन्तु मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा में संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ। फलस्वरूप भारत में कई गुरूकुल बन्द हुए और पब्लिक स्कूल खोले गये।

प्राचीन कालीन शिक्षा–

भारत की प्राचीन कालीन शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधारित थी। शिक्षा मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में थी। प्राचीन काल में शिक्षा व्यक्ति के लिए नहीं धर्म के लिए थी। भारतीय शिक्षा एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व के इतिहास में सबसे प्राचीन है। डॉ. अल्टेकर के अनुसार ''वैदिक युग से लेकर अब तक भारतीयों के अनुसार शिक्षा का अभिप्राय है कि ''शिक्षा प्रकाश का स्रोत है तथा जीवन के विभिन्न स्रोतों में यह हमारा मार्ग दर्शन करती है।

प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा व्यवसथा इतनी उन्नत और कल्याणकारी थी जिससे भारत विश्व गुरू कहलाता था। विद्वानों ने शिक्षा को अनेक उपमाओं से विभूषित किया है यथा तीसरा नेत्र, अन्तर्ज्योति, अन्तर्दृष्टि, ज्ञान चक्षु और प्रकाश का स्रोत।

भारतीय शिक्षा के प्रमुख आधार :–

दार्शनिक आधार :–

दर्शन ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करता हैं शिक्षा एक प्रायोगिक पक्ष है वहीं दर्शन उसका सैद्धान्ति पक्ष है। यथा दर्शन यथा शिक्षा जैसे दर्शन होगा वैसी ही शिक्षा व शिक्षा के उद्देश्य होगे। वैदिक काल में वेद व अन्य दर्शनों का ही महत्व था जो शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करने में तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण विधियों प्रविधियों पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, छात्र शिक्षक आदि के सम्बन्ध में निर्धारण का दायित्व निर्वाह करता था।

सांस्कृतिक आधार :–

शिक्षा उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले आधारो में सांस्कृतिक आधार प्रमुख है क्योंकि संस्कृति का किसी भी राष्ट्र के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है तथा संस्कृति व सभ्यता परस्पर अर्न्तनिहित होती है। शिक्षा उद्देश्यों के निर्धारण के दौरान राष्ट्र की संस्कृति को भी दृष्टिगत रखा जाता है क्योंकि अधिगमकर्ता विद्यार्थी अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को धरोंहर के रूप में संरक्षण व संवर्धित करते हुए उसका

पीढ़ी दर वाहक की महत्वपूर्ण कडी की भूमिका का निर्वहन भी करता हैं कोई भी राष्ट्र संस्कृति विहिन राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता है। संस्कृति का क्षय होना किसी भी राष्ट्रकी अवनति का एक कारण हो सकता हैं पश्चिमी देशों में भौतिक की चमक दमक ने वहां राष्ट्रों की स्थानीय संस्कृति को समाप्ति की प्रगति के सूचकांक शीर्ष पर हो सकते है परन्तु उन राष्ट्रों में मानवीय सवेंदनाएं निर्वात के सूचकांक की तरफ अग्रसर है जहां समाज की प्रथम व सर्वाधिक आधारभूत इकाई व संस्था जिसे परिवार के रूप में जाना जाता है।

समाजशास्त्रीय या सामाजिक आधार :–

मानव और समाज दोनों ही परस्पर एक–दूसरे का निर्माण करते है। शिक्षा के उद्देश्यों के निर्माण सामाजिक आधारों का प्रभाव स्वाभाविक हैं वस्तुतः समाज में विभिन्न वर्ग संसार के हर राष्ट्र की सभ्यता में रहें। यह सामाजिक वर्ग विभिन्नता विभिन्न वर्गो के शक्ति असंतुलन का परिचायक हैं समाज में शक्ति असंतुलन निश्चित ही किसी वर्ग विशेष द्वारा समाज पर पूर्ण आधिपत्य स्थापना की मानसिकता को प्रबल बनाती हैं शिक्षा समाज के प्रबल वर्ग द्वारा व संचालित हुयी है अतः समाज का शक्तिशाली वर्ग शिक्षा पर नियन्त्रण रखता आया है।

आर्थिक आधार :–

शिक्षा के उद्देश्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है जीवीकोपार्जन हेतु अधिगमकर्त्ता को तैयार करना। अतः निश्चित जीवीाकेपार्जन में धन उपार्जन एक महत्वपूर्ण आधार हैं प्राचीन शिक्षा पद्धति में जीवीकोपार्जन का जीवन ही महत्वपूर्ण था लेकिन तत्कालीन अपूंजीवाद सामाजिक व्यवस्था मात्र धनोपार्जन के शैक्षिक उद्देश्यों को भट्काकर मात्र अधिक से अधिक धनोपार्जन अभिवावकों द्वारा अपनी सन्तानों को शिक्षा हेतु विभिन्न शैक्षिक सांधनों में प्रवेश उस संस्था में उपलब्ध पाठ्यक्रमों से अधिक से अधिक धनोपार्जन की सम्भावना के आधार पर होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों में केन्द्रीय आधार मात्र अधिक से अधिक धनोपार्जन या वतेन ही विद्यमान रहात है।

राजनैतिक आधार :–

कोई भी कालखण्ड रहा हो राजनैतिक आधारो ने शिक्षा के उद्देश्यों को अपने अनुसार ही संचालित किया। समय के हर क्षेत्र में शिक्षा सम्बन्धित राष्ट्रकी शासन सत्ता में प्रभावित व संचालित रही है। यह कभी सम्भव नहीं हुआ कि राजनैनिक सत्ता शासन की विचारधारा के विपरीत उस राज्य या राष्ट्रमें शिक्षा के शैक्षिक उद्देश्य रहे हो। यह स्थिति चाहे राजतंत्र शासन व्यवस्था रही हो या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली रही हो शैक्षिक उद्देश्य कभी–भी शासन के विपरीत गमन नहीं किया है। **नैतिक आधार :–**

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का मानव के साथ में सर्वागीण विकास होता है। शिक्षा का स्वयं में मात्र अधिक विकास तक ही अधिक समझ में आता है। वर्तमान शिक्षा पाठ्यक्रम पूर्ण रूप से व्यवसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम है। आर्थिक विकास मानव जीवन के लिए अति आवश्यक है परन्तु यह मात्र एक ही आवश्यक शिक्षा उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि आर्थिक विकास का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन की भौतिक आवश्यकताओं से सहसम्बन्धित है लेकिन विद्यार्थी का नैतिक मूल्यों आधारित विकास होना भी अति आवश्यक या परम आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यवसायिक शिक्षा उपलब्ध कराने के दौरान नैतिकता की बाते अवश्य करते है परन्तु यह उतनी ही, खोखली होती है जितनी कि किसी झूठे आमी द्वारा कहा गया सत्य वचन जो कि मात्र शाब्दिक सत्य होता है। परन्तु उस सत्य को जीवन में उतारा नहीं जाता है।

धार्मिक आधार :–

सम्पूर्ण विश्व में मानव जीवन में धर्म का विशेष स्थान रहा है। धर्म की स्थापना का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र को जीवन के विभिन्न मानवीय नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ज्ञान वह करना होता हैं ताकि मानव स्वयं में अर्न्तनिहित शक्तियों से अपने जीवन और संसार में मानव मात्र के कल्याण हेतु प्रत्नशील रहे। धर्म किसी भी मानव की शक्ति भी होती है और यहीं धर्म किसी भी मानव की कमजोरी बन सकती हैं प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थीयों को धर्म व धर्म आधारित जीवन जीने का शैक्षिक उद्देश्य का स्थान प्रमुख था। धर्म वास्तव में मानवीय व नैतिकता से भरे जीवन का नाम है और धर्म आधारित जीवन जीने हेतु या इसका पालन करने वाले को संसार के विभिन्न भैतिक सुखों को त्यागना पडता है जो मानव को सच्चे अर्थों में धार्मिक बनाता है।

वैज्ञानिक व औद्योगिक आधार :–

शैक्षिक उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले आधारो के अध्ययन के क्रम में वैज्ञानिक व औद्योगिक आधार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है जिसका कालखण्ड 20 वीं और 21 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ माना जा सकता हैं वर्तमान में आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्राचीन शिक्षा पद्धति में यह एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभिन्नता स्तर चिन्हित होता है कि आधुनिक शिक्षा नीति पूर्णतया व्यवसायिक शिक्षा नीति में परिवर्तित हुयी है तो इसके पीछे मुख्य आज गत दो शताब्दीों में विज्ञान व औद्योगिकरण ने मानव जीवन व समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दबदबा स्थापित करना रहा हैं विज्ञान में अभूतपूर्व क्रान्ति ने मानव जीवन की दशा और दिशा में क्राान्तिकारी परिवर्तन का दौर प्रारम्भ किया जो वर्तमान समय तक अनवरत ही चलता आ रहा है।

भारतीय जीवन दृष्टि में शिक्षा :–

हमारी मनोवृति का निर्माण हमारे जीवन हमारे आचरण के अनुरूप ही होता है। हमारे जीवन तथा आचरण का मूल आधार है हमारी शिक्षा कहा गया है जैसा खावे अन्न वैसा बने मन। यहां पर अन्न का अर्थ भोजन है, जो शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का होता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि आजकल मानव समाज में जो तरह–तरह के छोटे बड़े दोष दिखलाई पड़ रहे हैं उनके मूल में हमारी शिक्षा ही है।

ज्ञान का अंतिम लक्ष्य चरित्र निर्माण ही होना चाहिये। इसलिए हमारी शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया जाना चाहिए शारीरिक, मानसिक शिक्षा और आध्यापिक शिक्षा। हम स्वस्थ हो, हमारे स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क हो और हमारा स्वस्थ मन जीवन के स्वास्थ्य पर विचार कर सकने में समर्थ हो। संक्षेप में हमारा आशय यही है कि शिक्षा के द्वारा हमारा समाज सचमुच स्वस्थ बने।

सारांश यही है कि हमारी शिक्षा केवल कामचलाऊ वस्तु न हो, हम केवल परीक्षा प्राप्त करने का माध्यम न हो, वरन् हमें भली प्रकार जीना सिखाये विद्या वही है जो हमें इस दुनिया की चिन्ता से मुक्त करके हमारी जीवन नैया को भवसागर से पार लगाने में समर्थ हो ''सा विद्या या विमुक्तये।''

प्राचीन और वर्तमान शिक्षा पद्धति और मानव मूल्य :–

शिक्षा का क्षेत्र हमेशा से ही बहुत व्यापक रहा है वर्तमान समय की शिक्षा में केवल परीक्षाओं और डिग्रियाँ दिये जाने का चलन है। संभव है आरम्भ में इससे कुछ लाभ हुआ हो पर आजकल तो इसका स्वरूप अत्यन्त विकृत तथा भ्रष्ट हो गया। छल, कपट, बेईमानी, रिश्वत आदि किसी भी साधन से परीक्षोतीर्ण होने का प्रमाणा पत्र प्राप्त कर लेना ही इस समय अधिकांश विद्यार्थियों का लक्ष्य दिखलाई पड़ता है। इससे शिक्षा का मूल्य घटता जाता है और बी. ए., एम. ए. पास व्यक्ति चपरासी तक की नौकरी करते दिखालाई पड़ते है। इस प्रकार की झूठी सनदों के बजाय प्राचीन काल के छात्र शिक्षा समाप्त कर लेने पर कोई महत्व काकार्य करके दिखलाते थे और उसके द्वारा अपनी योग्यता का प्रमाण देते थे।

आश्रमों में उन्हें कठिन अनुशासनपूर्ण जीवन बिताना पड़ता था। सभी विद्यार्थियों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता था। राजा के पुत्रों तथा सामान्य निर्धन बालकों के बीच गुरू किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरतते थे।

विद्यार्थियों को हर प्रकार के ऐशो आराम से दूर रहकर संयमपूर्ण जीबन बिताना पड़ता था।

आधुनिक युग में विद्यार्थी जीवन :–

आज का विद्यार्थी जीवन प्राचीनकाल के विद्यार्थी जीवन से एकदम भिन्न हैं आजकल साधारणतौर पर स्कूलों और कॉलेजो में शिक्षा दी जाती है। अध्यापकों को एक निश्चित धनराशि वेतन के रूप में सरकार अथवा स्कूल के प्रबन्धों की ओर से मिलती है। यदि आवश्यकता पड़े, तो विद्यार्थियों को छात्रावास में भेजा जाता है न कि गुरूओं के आश्रमों में आज का विद्यार्थी प्राचीनकाल के आदर्श आज्ञापालन और बड़े अनुशासन की बात भूल चुका है, जिन गुणों ने प्राचीन भारत को इतना गौरव प्रदान किया था। आजकल ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं किया जाता। स्कूलों और कॉलेजों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की जाती, जिनके सहारे ही विद्यार्थियों के चरित्र को उज्ज्वल बनाया जा सकता है।

नारियों के लिए पाठशालाएँ :–

वेदों में उल्लिखित कुछ मंत्र इस बात को रेखांकित करते हे कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण मानी जाती थी। स्त्रियों को लौलिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्राकर की शिक्षाएँ दी जाती थी। सहशिक्षा को बुरा नहीं समझा जाता था। गोभिल गृहसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। संगीत शिक्षा पर जोर दिया जाता था।

छात्रावासों का प्रबन्ध :–

प्राचीन भारत में गुरू के प्रत्यक्ष निरीक्षण में रहकर विद्योपार्जन श्रेष्ठ माना जाता था। अतएव अधिकांश विद्यार्थी गुरू कुलों में ही रहते थे। गुरू जन अपने घर पर ही विद्यार्थी के आवास निवास की व्यवस्था करते थे। भोजन का कार्य भिक्षा वृत्ति द्वारा चलता था अथवा अध्यापक के गृह में भी व्यवस्था हो जाती थी। उस समय एक गुरू के पास एक साथ प्रायः पन्द्रह से अधिक विद्यार्थी नहीं पढ़ते थे। कभी–कभी तो केवल चार विद्यार्थी ही एक गुरू के अधीन अध्ययन करते थे। अतएव उनके भोजन व निवास की व्यवस्था करना गुरू के लिए कोई कठिन कार्य नहीं होता था। किन्तु गुरू के विद्यार्थियों का प्रबन्ध करने में असमर्थ होने पर विद्यार्थी अपने रहने का प्रबन्ध स्वयं करते थे।

सह शिक्षा एवं पृथक शिक्षा विवेचनः–

प्रागैतिहासिक काल में साहित्यक तथा व्यावसायिक हर प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था परिवार में ही होती थी। ऐसी अवस्था में सम्भवतः सगे भाई–बहन तथा चचेरे भाई–बहन सम्मिलित होकर ही परिवार के शिक्षित अग्रजनों संरक्षण में विद्योपार्जन करते रहे होगे। किन्तु धीरे–धीरे विद्या के भण्डार में प्रचुर वृद्धि हो जाने से विशेषाध्ययन की ओर लोगों की रूचि बढ़ने लगी। अतएव विद्यार्थियों के लिए परिवार से दूरस्थ स्थानों पर जाकर प्रतिष्ठित विद्वानों के सरक्षण में वांछित विषयों का अध्ययन करना आवश्यक हो गया। प्रायः कन्याओं को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर के बाहर विद्वान् आचार्यों के पास जाना पड़ता था। किन्तु इस सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थों से बहुत कम संकेत प्राप्त होते है।

बाल केन्द्रित शिक्षा :–

- प्राचीनकाल में शिक्षा का उद्देश्य बालकों के मस्तिष्क में मात्र कुछ जानकारियाँ भरना होता था, किन्तु आधुनिक शिक्षा शास्त्र में बालकों के सर्वागीण विकास जोर दिया जाता है, जिसके लिए बाल मनोविज्ञान की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है।
- वर्तमान समय में बालकों के सर्वागीण विकास के महत्व को समझते हुए शिक्षकों लिए बाल मनोविज्ञान की पर्याप्त जानकारी आवश्यक होती है इस जानकारी के अभाव में शिक्षक ने तो शिक्षा को अधिक से अधिक आकर्षक ओर सुगम बना सकता है और न ही बालकों की विभिन्न प्रकार की समास्याओं का समाधान कर सकता है इस प्रकार बालक में मनोविज्ञान को समझने हुए उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था करने की आधुनिक शिक्षा प्रणाली वाले केन्द्रित शिक्षा कहलाती है।

शिक्षण विधि :–

- शिक्षा शास्त्र शिक्षक को यह बतलाता है कि बालकों को क्या पढ़ाया जाए? परन्तु असली समस्या यह कि कैसे पढ़ाया जाए? इस समस्या को सुलझाने में बाल मनोविज्ञान शिक्षक की सहायता करता है।
- बाल मनोविज्ञान सीखने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण कारकों, लाभदायक और हानिकारक दिशाओं, रूकावटों, सीखने का वक्र तथा प्रशिक्षण सक्रमण आदि विभिनन तत्वों से परिचित कराता है। इनके ज्ञान से शिक्षक बालकों को सीखने में सहायता कर सकता है।

व्यवस्थापन एवं अनुशासन :–

- बाल–केन्द्रित शिक्षा के अन्तर्गत कक्षा व विद्यालय में अनुशासन एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए बाल मनोविज्ञान का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए कभी–कभी कुछ शरारती बालकों में अच्छे समायोजक के लक्षण दिखाई देते है, ऐसी परिस्थिति में शिक्षकों को उन्हें दबाने के स्थान पर प्रोत्साहित करने के बारे में सोचना पड़ता है।

- बाल मनोविज्ञान ही शिक्षक को बतलाता है कि एक ही व्यवहार भिन्न–भिन्न व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न प्रेरणाओं के कारण हो सकता है। शिक्षक को उनके असली प्रेरक कारणों का पता लगाकर उनके अनुकूल व्यवहार करना होता है।

प्रयोग एवं अनुसंधान :–

- बाल–केन्द्रित शिक्षा में बालकों को प्रयोग एवं अनुसंधान की ओर उन्मुख करने के लिए भी बाल मनोविज्ञान का सहारा लिया जाता है।
- नई–नई परिस्थितियों में नई–नई समस्याओं को सुलझाने के लिए शिक्षक को स्वयं प्रयोग करते रहना चाहिए और उससे निकले निष्कर्षों का उपयोग करना चाहिए।

शिक्षण संस्थाओं की दृष्टि से उपयोगिता :–

कालिदास के शैक्षिक विचार शिक्षण संस्थाओं को समुन्नयन में सर्वथा उपादेय है। कालिदास ऐसे शिक्षार्थी को देखना चाहते है जो सकल शास्त्र निष्णात हो। कौत्स ने अपने गुरु से चौदह विद्याएं पढ़ी थी इसलिए वे गुरुदक्षिणा में चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएं मांगते है।

भारतीय शिक्षा की दृष्टि में शिक्षार्थी :–

भारतीय शिक्षा की दृष्टि में शिक्षार्थी में पात्रता की अपेक्षा करती है। उसमें गुण ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए। तभी शिक्षा की सार्थकता होगी।

भारतीय दृष्टि में नारी :–

भारतीय दृष्टि में नारी शिक्षा की पक्षधर हैं विद्या के केन्द्र आश्रम शासन द्वारा संरक्षित है, किन्तु व्यवसाय की दृष्टि से स्वतंत्र है। उन पर उनके कुलपतियों का आधिपत्य है और उनका ही नियंत्रण अनुशासन चलता हैं वृक्ष–सिंचन, अतिथि–सत्कार, संगीत, विद्या–अध्ययन एवं अन्यान्य विद्याओं–कलाओं का समुचित ज्ञान ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां स्वरूचियों और क्षमताओं के अनुसार प्राप्त करते है। ब्रह्मचर्य आश्रम में स्थित नवकुमार कुमारियों के श्रमपूर्ण दायित्व पालन से आश्रम की व्यवस्था चलती हैं द्वार–द्वार पर भटकते नहीं मिलते हैं। वे स्वावलम्बी हैं और ग्रहस्थ जीवन के लिए उपयोगी विद्याओं एवं कलाओं के साथ–साथ अपने वर्ण के लिए नियम कार्यों को भी सीखते है।

भारतीय दृष्टि में राष्ट्रीय एवं वैश्विक सद्भावना :–

भारतीय शिक्षा की दृष्टि में राष्ट्रमंगल के साथ ही लोक मंगल की पावन–भावना समाहित है तथा उनमें दिव्य जीवन सन्देश मुखरित है। इस महान राष्ट्र की उच्च संस्कृति उनके काव्य में मूर्तवती होकर जन जीवन को निरन्तर प्रेरित करती आ रही हैं वाल्मीकि व्यास आदि भारतीय ऋषियों द्वारा सुचिन्तित तथयों को कवि ने मनोभिराम शब्दों में जन जीवन के हृदय में उतारने का समीचीन प्रयास किया हैं उनकी कविता की रचना मानव–मन की चिरन्तन प्रवृत्तियों एवं भावों के आधार पर होने के कारण मर्मस्पर्शनी है, जिसमें मानव कल्याण के लिए मधुर शब्दों में मनोहर उपदेश एवं चिर नवीन सन्देश भी दिये गए है।

भारतीय शिक्षा की दृष्टि में पाठ्यक्रम :–

भारतीय शिक्षा की दृष्टि में पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के समावेश के पक्षधर है क्योंकि मानव जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता की आवश्यकता हैं हम अपने अंतःकरण को जितना पवित्र रखें उतनी ही व्यापकता के साथ हम नैतिकता को आत्मसात करेंगे। आज के आपाधापी युग में सामाजिक हितों को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति का आध्यात्मिक होा बहुत जरूरी हैं आध्यात्मिकता से ही मानवता का जन्म होता है, जो समाज को व्यवस्थित रखने के लिए अति आवश्यक है। अतः हमें पहला सुधार अपने से ही करना होगा, क्योंकि कहा भी जाता है कि मनुष्य जन्म से तो आध्यात्मिक होता ही है किन्तु ज्यों–ज्यों बड़ा होता जाता है अर्थात समझदार होता जाता है त्यों–त्यों उसकी आध्यात्मिकता घटती जाती है। उत्कृष्ट विचार और उत्कृष्ट चिंतन हमारे नैतिक मूल्यों को पोषित करते हैं। अतः इनकी डोर हमें मजबूती से पकड़े रहनी होगी।

सारांश :–

भारतीय शिक्षा की यह मान्यता थी कि जिस प्रकार अंधकार को दूर करने का साधन प्रकाश है, उसी प्रकार व्यक्ति के सब संशयों और भ्रमों को दूर करने का साधन शिक्षा है। प्राचीन काल में इस बात पर बल दिया गया कि शिक्षा व्यक्ति को जीवन का यथार्थ दर्शन कराती है तथा इस योग्य बनाती है

कि वह भवसागर की बाधाओं को पार करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सके जो कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

भारतीय शिक्षा में में आचार्य का स्थान बड़ा ही गौरव का था। उनका बड़ा आदर और सम्मान होता था। आचार्य पारंगत विद्वान, सदाचारी, क्रियावान, निःस्पृह, निरभिमान होते थे और विद्यार्थियों के कल्याण के लिए सदा कटिबद्ध रहते थे। अध्यापक, छात्रों का चरित्र निर्माण उनके लिए भोजन वस्त्र का प्रबंध रूग्ण छात्रों की चिकित्सा शुश्रूषा करते थे। कुल में सम्मिलित ब्रह्मचारी मात्र को आचार्य अपने परिवार का अंग मानते थे और उनसे वैसा ही व्यवहार रखते थे। आचार्य धर्मबुद्धि से निःशुल्क देते थे।

अतः हम कह सकते है कि भारतीय दृष्टि में शिक्षाा के अन्दर प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं वर्तमान शिक्षा पद्धति में सामन्जस्य की महत्पूर्ण आवश्यकता है। प्राचीन शिक्षा का अनुशासन, आध्यात्मिकता और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रति जिजीवषाव वर्तमान शिक्षा पद्धति की विधियों का समनव्य अत्यावश्यक है। तभी भारतीय शिक्षा प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, 1999 – अभिज्ञान–शाकुन्तलम्
2. डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, 2020 – रघुवंशम्
3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2016 – संस्कृत साहित्य–परिचय
4. https://rashtriyashiksha.com › philosophical-basis-of-bha.
5. https://www.samareducation.com
6. http://www.drishtilas.com

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

डॉ. सुनीता शर्मा
(सहायक आचार्य)
विद्याग्राम शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय
चौमूं, जयपुर
email id: drsunita3336@gmail.com
Mobile No. 9983883336

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम

भूमिका

शिक्षक शिक्षा के आयाम वास्तव में अध्यापक शिक्षा व्यवस्था की धुरी है। शिक्षा उद्देश्यों की प्राप्ति में उसकी महत्तवपूर्ण प्रमुख भूमिका रही है। शिक्षक समाज का वह अग्रदूत है जिसका उत्तरदायित्व है कि वह सरकारी नीतियों व सामाजिक जनमत तैयार करें। वर्तमान समय में भारतीय समाज में शिक्षक की भूमिका बदल गई है अब वह नये समाज के निर्माण का मार्ग दर्शक प्रशस्त करने वाला अग्रदूत है। शिक्षक ही समाज में नई चेतना का आधुनिक विकास कर सकता है और समाज में व्याप्त संकीर्णताओं, अंधविश्वासों, रूढियों तथा विघटनकारी शक्तियों का हटाकर कर नये समाज का निर्माण कर सकता है।

शिक्षक शिक्षा जगत का महत्वपूर्ण आधारभूत स्तम्भ होता है एक कहावत है, शिक्षक जन्मजात होते है, बनाये नहीं जाते। प्रशिक्षण में शिक्षक इस कौशल हेतु गुणात्मकता का विकास करता है। शिक्षा में गुणात्मक एवं स्तरीय विकास का उत्तरदायित्व शिक्षक के कंधों पर ही सर्वाधिक होता है।

अतः एक शिक्षक की शिक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों को निम्न प्रकार से बताया जा सकता है –

1. शिक्षक के विभिन्न आयाम –

शिक्षण रणनीति में सामान्यतया सीखना एवं अध्ययन कौशल के साथ ही उनका अर्थ निर्माण, गणितीय समस्याओं को समाधान और वैज्ञानिक ढंग से तर्कबुद्धि सोच के लिए शिक्षण करना शामिल होता है. शिक्षण के दौरान सम्पूर्ण रणनीति में कुछ सवाल बालको की जानकारी के सन्दर्भ में किया जा सकता है, जैसे कि कोई ज्ञान / समझ को बालक क्या जानते हैं? कैसे जानते हैं? तथा इस समझ या जानकारी को कब, कैसे और किन परिस्थितियों में उपयोग कर सकते हैं? इस प्रकार के प्रश्नों को केंद्र में रखकर शिक्षण की रणनीति को बनाया जा सकता है.

शिक्षण में छात्र के सीखने की प्रक्रिया और प्राकृतिक वातावरण को भी ध्यान में रखना होता है. जब हम कहते हैं कि बालक स्वयं सीखता है, अपने सहपाठी से सीखता है, छोटे समूहों में सीखता है तो इसे ब्व.वचमतंजपअम स्मंतदपदह के रूप में देखना होगा. इस प्रकार का Co-operativeLearning प्रभावशाली शिक्षण एवं सामाजिक अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करता है. यह बालक की अभिरूचि विषयगत मूल्य, एवं उनके सकारात्मक अभिवृत्ति (Attitude) को भी बढ़ाता है. यद्यपि ये बालक दर बालक अलग–अलग हो सकता है। Co-operativeLearning में चूंकि चर्चा शामिल होता है, जिससे उनमें संज्ञानात्मक एवं उनके Metacognative क्षमता को पालने–बढ़ने की पुरी गुंजाइश होती है।

परम्परागत शिक्षण प्रक्रिया इसमें कक्षा में सभी बालको को किसी एक ही प्रकरण / विषय में व्याख्यान में एक साथ एक ही स्तर का मानकर शिक्षण दिया जाता है साथ ही बच्चों को जो कार्य दिए जाते हैं उसे सभी बच्चे व्यक्तिगत रूप से करते हैं जिसे एक नियत समय में करना ही होता है. Co-operative Learning में भी कक्षा के साथ एक साथ ही काम होता है, लेकिन इसमें बालक का जोड़ी में कार्य करना, सहपाठी के साथ मिलकर कार्य करना, छोटे समूहों में भागीदारी करते हुए काम करना इसे

महत्त्वपूर्ण बना देते हैं। यह अधिगम को सार्थक बना देता है. जिसे सामाजिक मूल्यों के साथ भी जोड़ कर देखा जा सकता है।

सहयोगात्मक शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री का भी महत्वपूर्ण योगदान है. इसमें विशेषकर छोटे समूहों में कार्य करने का अवसर देना कक्षा में उपलब्ध शिक्षण सहायक सामग्री पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए बच्चों में 'ग्लोब' की समझ एवं पठन कौशल विकसित करने के लिए छोटे समूहों में सीखने का अवसर देना है तो कक्षा में एक ग्लोब से काम नहीं चलेगा।

लक्ष्य आधारित मूल्यांकन में अनेक औपचारिक व अनौपचारिक विशेषकर अनौपचारिक मूल्यांकन के तरीके को अपने शिक्षण प्रक्रिया में स्थान तथा मूल्यांकन चाहे जिस तरीके से हो वह लक्ष्य आधारित हो। यह भी सत्य है कि अच्छी तरह से विकसित पाठ्यक्रम में आकलन के घटक स्वमेव शामिल होता है। आंकलन के ये घटक पाठ्यक्रम के उद्देश्य, विषयवस्तु, सीखने की गतिविधि और परिणाम के साथ एकीकृत भी होते हैं। समझ आधारित आकलन करते समय यह देखा जाना चाहिए कि बच्चे प्रश्नों के उत्तर किस हद तक समझ के साथ दे रहा है, के साथ–साथ यह भी देखा जाना चाहिए कि उत्तर में 'तर्क' कितना शामिल है तथा क्या प्रक्रिया अपनाई गयी है. एक अच्छा शिक्षक बच्चों का आकलन केवल ग्रेड देने के लिए नहीं बल्कि बच्चों की उपलब्धि को समग्रता में देखता है। साथ ही वह शिक्षक सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के दौरान ही बच्चों की उपलब्धि व उन्हें सीखने में आने वाली कठिनाइयों का सतत अनुवीक्षण करते रहता है।

2. **छात्र के विभिन्न आयाम –**

विद्यालय लीडर के रूप में, आप यह सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार हैं कि सभी बालक को सीखने में भाग लेने के लिए अवसर और सहायता मिले। ऐसा तभी संभव होगा यदि संसाधनों का प्रबंधन प्रभावी ढंग से और सीखने की प्रक्रिया को सुधारने को स्पष्ट प्रयोजन के साथ किया जाय। अब तक का संबसे महत्वपूर्ण संसाधन जिसे विद्यालय नेता प्रबंधित करता है वह है मनुष्य आयाम। आपको लोगों के एक ऐसे समूह (शिक्षक, अन्य स्टाफ, छात्र, मातापिता और समुदाय के सदस्य) में पहचान प्राप्त है जो सीखने का समर्थन करने के लिए कौशलों और ज्ञान का योगदान कर सकते हैं। मानव संसाधन प्रबंधन के साथदृसाथ आप वित्तीय और भौतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए भी जिम्मेदार होंगे ताकि सुनिश्चति किया जा सके कि वे बालक की सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए उपयुक्त और सुविधा हैं और उनका उपयोग प्रभावी ढंग से देखा जा सकता है।

भारत में विद्यालयों के सन्दर्भ वृहत् रूप से अलग हैं, जो वातावरण और उनकी भौगोलिक स्थिति की जलवायु से लेकर उनके छात्रों की संस्कृतियों और भाषाओं तक विस्तृत हैं। कोई विद्यालय सचमुच छोटा सा हो सकता है जैसे किसी ग्रामीण क्षेत्र का एकमात्र शिक्षक वाला बहुदृश्रेणी विद्यालय, या किसी मैदानी क्षेत्र के बड़े शहर में हजारों की संख्या में छात्रों के लिए शिक्षको की बड़ी संख्या में देखा हो सकता है। छात्रों को विद्यालय के बाहर अलग अलग प्रकार के संसाधन सुलभ होंगे लेकिन सभी विद्यालयदृआधारित संसाधन सभी छात्रों को समान रूप से उपलब्ध होने चाहिए, ताकि उनकी सीखने की जरूरतें पूरी की जा सकें।

छात्राओं के अनुशासन की भूमिका

एक विद्यालय में बालको के विभिन्न प्रकार देखने को मिलते है और शिक्षकों को कक्षाओं में इन सभी प्रकार के छात्रों को समझने और संलग्न करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों की मिश्रण की आवश्यकता होती है। विद्यालय अनुशासन एक जटिल प्रक्रिया है. अनुशासन को बढ़ावा देने और इसके पाठ्यक्रम को बनाए रखने के लिए एक विशेष प्रकार की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कक्षाओं में अनुशासन मूल्यों को अच्छी तरह से शामिल करने की आवश्यकता है।

यदि कोई स्कूल अनुशासन के आवश्यक स्तर को बनाए रखने में विफल रहता है, तो कक्षा में छात्रों को प्रबंधित करने के संघर्ष के अलावा अधिक संख्या में निलंबन और निष्कासन होते हैं। यह गंभीर मुद्दा स्कूल की शिक्षा की गुणवत्ता को नीचे लाता है। और स्कूल का माहौल मेहनती छात्रों (पढ़ने के लिए) और शिक्षकों (पढ़ाने के लिए) के लिए अप्रिय हो जाता है।

3. अनुशासन के विभिन्न आयाम –

अनुशासन शब्द अंग्रेजी के शब्द Discipline का हिन्दी रूपान्तरण है। इस शब्द की व्युत्पत्ति Discipline शब्द से मानी जाती है। इसका अर्थ है शिष्य, छात्र या शिक्षक का अनुगामी। अनुशासन एक

महत्वपूर्ण साधन है। इससे आचरण तथा गुणों का विकास होता है तथा कुछ विद्ववानों ने अनुशासन की परिभाषाए देते हुए कहा है जैसे–

नन् के शब्दों में – ''अपनी भावनाओं और शक्तियों को नियंत्रण के अधीन करना जो अव्यवस्था को व्यवस्था प्रदान करता है''। इस कथन से स्पष्ट है कि अनुशासन के अंतर्गत व्यक्ति को अपनी मुक्त भावनाओं एवं शक्तियों को किसी निर्धारित नियन्ण द्वारा नियमित तथा नियंत्रित करना होता है। अनुशासन समाज में व्यवस्था बनाए रखने में सहायक है।

एच. मारटिन के अनुसार – ''अनुशासन का अर्थ है, व्यवहार के कुछ निश्चित नियमों का पालन करना, सीखना। आयाम का अनिवार्य गुण आज्ञाकारिता है अर्थात् नियमों एवं अधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता होनी चाहिए''।

अनुशासन के प्रकार

प्राकृतिक अनुशासन – प्राकृतिक अनुशासन के अंतर्गत किसी प्रकार के बाहरी दबाव अथवा नियन्त्रण को लागू नहीं किया जाता।

अधिकारिक अनुशासन – अधिकारिक अनुशासन में किसी प्रकार की आजादी नहीं दी जा सकती है। हर प्रकार से अपने बड़ों के नियन्त्रण तथा अधिकार में रहना होता है। स्वयं इच्छा से कोई भी कार्य करने की छूट नहीं होती। इस प्रकार के अनुशासन में बड़ों के आदर्शों एवं निर्देशों का सर्वाधिक महत्व होता है। परिवार अपने अभिभावकों का तथा विद्यालय में शिक्षकों का हर आदेश मानना चाहिये।

वैयक्तिक अनुशासन – इस प्रकार का नियन्त्रण व्यक्तियों के लिए होता है। जब आदमी में समुचित पूर्णस्थिर का विकास हो जाता है तब उसे स्वयं ही मालूम हो जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या नियम है और क्या अनियमित है। वह स्वयं ही उचित तथा नियमित का चुनाव करता है।

सामाजिक अनुशासन – अनुशासन का एक अन्य आकार ''सामाजिक अनुशासन'' है। इस अनुशासन का निर्धारण सामाजिक मान्यताओं द्वारा होता है। प्रत्येक समाज का यह नियम है कि सामाजिक मान्यताओं के अनुसार कार्य करने पर समाज व्यक्ति की प्रशंसा करता है और सामाजिक मान्यता के विपरीत निन्दा की जाती है। इसी व्यक्ति के आचरण प्रशंसा तथा निन्दा के माध्यम से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है। सामान्य रूप से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है।

4. विद्यालय के विभिन्न आयाम –

विद्यालय के विकास की चर्चा करते समय अनेक सवाल उठते हैं, जैसे विद्यालय में बनावट व उनकी गुणवत्ता कैसी है? मानव संसाधन और सीखने अधिगम शिक्षण की उपलब्धता कैसी है? विद्यालय में शिक्षण–अधिगम और मूल्यांकन की प्रक्रियायें कितनी प्रभावी हैं? विद्यार्थियों की उपस्थिति, सहभागिता और उपलब्धी का स्तर कैसा है? विद्यालय का नेतृत्व और प्रबंधन किस प्रकार का है? विद्यालय में सामाजिक परिवेश कैसा है? विद्यालय का समाज के साथ संबंध कितना लाभकारी है? इत्यादि। विद्यालय विकास की कार्य योजना इन्ही प्रश्नों/परिस्थितियों के संतोष जनक समाधान खोजने का प्रयास करती है। भविष्य के विद्यालय की कल्पना करते हुए, निम्नवत् चार प्रमुख आयामों को दृष्टिगत रखकर कार्ययोजना तैयार की जाना चाहिए।

विद्यालय के संबंधी आयाम

गुणात्मक शिक्षा के लिए कई महत्त्वपूर्ण उत्तरदायी होते हैं, जैसे विद्यालय में उपलब्ध भौतिक संसाधन, प्रशिक्षित शिक्षक, कक्षागत् प्रक्रियायें, शैक्षिक सहायक सामग्री की उपलब्धता, संस्था प्रधान की भूमिका एवं विद्यालय के विकास में समुदाय का सहयोग इत्यादि।

अस्तु इन्ही कारकों के स्तर में विकास हेतु क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिए। विद्यालय में अच्छे शैक्षिक वातावरण के लिए निम्नानुसार समुचित व्यवस्थायें होना चाहिए –

- विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षण कक्षों की व्यवस्था।
- विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षकों की व्यवस्था।
- विद्यालय में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की उचित बैठक व्यवस्था।
- अध्यापन कक्ष की साज–सज्जा एवं परिसर की स्वच्छता।

- विद्यालय में खेल एवं मनोरंजन आदि की सुविधायें।
- विद्यालय में शुद्ध पेयजल एवं स्वच्छ शौचालय की सुविधायें।

सीखने–सिखाने की क्रिया को प्रभावी बनाने हेतु ऐसी योजना बनाना आवश्यक है जिससे कि कक्षाओं में सीखनें–सिखानें का उत्कृष्ट वातावरण का निर्माण हो। प्रत्येक विद्यार्थी कक्षाओं में होने वाली विचार विमर्श व गतिविधियों में सहभागिता करे। सीखने सिखाने का रूचिपूर्वक वातावरण।

- सीखने सिखाने के भरपूर अवसरों की उपलब्धता।
- सीखने सिखाने के उपयुक्त तरीके।
- सीखने सिखाने का उचित आक्लन

गुणात्मक शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ती के लिए आवश्यक है कि स्थानीय समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति सजक रहे और सक्रिय रहकर विद्यालय की गतिविधियों में सहयोग करे इस हेतु विद्यालय से संबंधित विभिन्न पक्षों के आपसी संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए कार्ययोजना तैयार की जाना चाहिए।

- विद्यार्थी – विद्यार्थी संबंध
- विद्यार्थी – शिक्षक संबंध
- शिक्षक – पालक स ंबंध
- विद्यालय के संस्थागत आयामः
- सीखने की प्रक्रिया में विद्यालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है अतः विद्यालय को समूह से सहयोग प्राप्त कर खेलकूद,
- सांस्कृतिक एवं साहित्यक गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए।
- विद्यालय में विद्यार्थियों की उपस्थिति, दक्षता, एव ं उपलब्धियां सुनिष्चित करने हेतु समुचित प्रबंध करना चाहिए।

भारतीय संदर्भ

इस तथ्य को और स्पष्ट करने के लिए प्राथमिक स्कूल के शिक्षण व्यवसाय का उदाहरण दिया जा सकता है जिसे विश्व में सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय माना गया है क्योंकि प्राथमिक स्कूल के शिक्षक छोटे बच्चों को ज्ञान और जीवन के मूल्य उन्हें समझ आने लायक भाषा में प्रदान करते हैं ताकि इन छोटे बच्चों का भविष्य सुरक्षित और सुनहरा बन सके जब अच्छी शिक्षा देने की बात आती है तो विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले सभी शिक्षक इसके प्रणेता नजर आते हैं। शिक्षा, शिक्षक और शिष्य के आत्मीय और निकटतम सम्बन्ध को कभी तोड़ा नहीं जा सकता है।

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए एक सजग, उदात्त चरित्र, धार्मिक नैतिकता परिपूर्ण शिक्षक की आवश्यकता है ताकि हमारी आने वाली पीढ़ी को हम ऐसे भारतीय नागरिक बनाने में सफल हो सकें जो विश्व में भारत का नाम रोशन कर सकें और पुनः भारत को 'जगतगुरु'की उपाधि प्राप्त करवा सके। हम सब की भी यही अभिलाषा है।

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है। अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी है तो उस देश को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी नहीं होगी तो वहां की प्रतिभा दब कर रह जाएगी बेशक किसी भी राष्ट्र की शिक्षा नीति बेकार हो, लेकिन एक शिक्षक बेकार शिक्षा नीति को भी अच्छी शिक्षा नीति में बदलने में सक्षम होता है।

आज के समय में शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती है। पुराने समय में भारत में शिक्षा कभी व्यवसाय या धंधा नहीं थी। गुरु एवं शिक्षक ही वो हैं जो एक शिक्षार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करते हैं और सही मार्ग दिखाते हैं।

एक शिक्षार्थी को अपने शिक्षक या गुरु प्रति सदा आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। किसी भी राष्ट्र का भविष्य निर्माता कहे जाने वाले शिक्षक का महत्व यहीं समाप्त नहीं होता क्योंकि वह

ना सिर्फ हमको सही आदर्श मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सफल जीवन की नींव भी उन्हीं के हाथों द्वारा रखी जाती है।

वर्तमान युग है आधुनिकता का, वैज्ञानिकता का, व्यस्तता का, अस्थिरता का, जल्दबाजी का। आज का विद्यार्थी जीवन भी इन्ही समस्याओं से ग्रसित है। आज का विद्यार्थी जीवन पहले की तरह सहज, शांत और धैर्यवान नहीं ही रह गया है। क्योंकि आगे बढ़ना और तेजी से बढ़ना उसकी नियति, मजबूरी बन गई है। वह इसलिए कि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो ज़िंदगी की दौड़ में वह पीछे रह जायगा। तो यह वक्त का तकाजा है। ऐसे समय में विद्यार्थी जीवन को एक सही, उचित, कल्याणकारी एवं दूरदर्शी दिशा निर्देश देना एक शिक्षक का पावन कर्तव्य

वर्तमान समय में विद्यार्थियों के संदर्भ में एक शिक्षक की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। उसके अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे आज–कल विद्यार्थी बहुत ही सजग, कुशल, अद्यतन होने के साथ–साथ बहुत अस्थिर और अविश्वासी भी होते जा रहे हैं। इसके कारण चाहे जो कुछ भी हो परंतु एक शिक्षक को आज के ऐसे ही विद्यार्थियों को उचित प्रशिक्षण, सदुपयोगी शिक्षण और सटीक कल्याणकारी, दूरगामी मार्गदर्शन प्रदान करते हुए उन्हें भावी देश के कर्णधार, जिम्मेदार देशभक्त नागरिकों में परिणित करना है। एक शिक्षक की जिम्मेदारी बहुत अधिक होती है।

आदर्श शिक्षक का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक बात और कि जिस प्रकार शिक्षा एक अंतहीन प्रक्रिया है। उसी प्रकार शिक्षण भी अंतहीन प्रक्रिया है। क्योंकि कोई भी इंसान जैसे पूरी जिंदगी सीखता रहता है, सिखाता भी रहता है। विश्व स्तरीय शिक्षा के महत्व पर बढ़ती जागरूकता के साथ, कई भारतीय माता–पिता अब अपने बच्चों के लिए आईबी बोर्ड का विकल्प चुन रहे हैं। हालाँकि, भारतीय शिक्षा के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक प्रणाली की स्थिरता अभी भी संदिग्ध है। भारत में लोग पारंपरिक स्कूली शिक्षा प्रणाली के इतने आदी हैं कि शिक्षा प्रणाली पर किसी भी पश्चिमी प्रभाव का खुले दिल से स्वागत नहीं किया जाता है। इसलिए, सवाल उठता है कि क्या अंतर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कभी सीबीएसई और आईसीएसई जैसे स्थापित बोर्डों के समानांतर आएगा।

यदि हम सीखने की गुणवत्ता के मामले में भारतीय बोर्डों (सीबीएसई और आईसीएसई) की तुलना आईबी जैसे अंतरराष्ट्रीय बोर्डों से करते हैं, तो आईबी स्कूल संभवतः छात्रों के समग्र विकास पर जोर देने के साथ अधिक उन्नत पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्कूल कार्यक्रम भारत में नए हैं और ऐसे कार्यक्रमों को भारतीय स्कूल शिक्षा प्रणाली में अपनी सुरक्षित जगह बनाने में कई साल लगेंगे। आईबी स्कूल संख्या में कम हैं और ये स्कूल अधिकांश भारतीय परिवारों के लिए किफायती नहीं हैं। चूँकि पैसा शिक्षा विकल्पों का एक प्रमुख निर्धारक है, अधिकांश लोग अंतर्राष्ट्रीय बोर्डों के बजाय सीबीएसई, आईसीएसई या अन्य राज्य बोर्ड के स्कूलों को चुनते हैं।

21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता एवं संभावनाएं

डॉ. अमिता जैन
सहायक आचार्या
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

डॉ. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष (शिक्षा)
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

- शिक्षकशिक्षा कार्यक्रम का मतलब एक शिक्षक या शिक्षिका के लिए विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए या शिक्षकों के लिए शिक्षा प्रदान करने के लिए एक कार्यक्रम या प्रशिक्षण योजना का आयोजन करना।यह कार्यक्रम शिक्षकों को शिक्षा और पठनपाठन के क्षेत्र में नवाचार-, उन्नतिऔर पेशेवर विकास की ओर मोड़ने के लिए विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करना है। इसका उद्देश्य शिक्षकों को उनके कार्य को सुधारने, उनके छात्रों को बेहतर तरीके से पढ़ानेऔर उनके पेशेवर विकास को समर्थन करने में मदद करना है।इसके तहतशिक्षकों को नए शिक्षा प्रौद्योगिकी, पाठ्यक्रम विकास, पाठ योजनाऔर परीक्षा प्रणाली आदि के बारे में शिक्षा दी जाती है, जिससे वे अपने शैक्षिक कौशलों को सुधार सकते हैं और अपने छात्रों के शिक्षा क्षेत्र में प्रदर्शन को बेहतर बना सकते हैं।
- शिक्षकशिक्षा ,तकनीकी प्रगति ,गुणवत्ता,सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता
-

❖ द्वज

द्वज वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता बढ़ गई है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव और विकास के कई महत्वपूर्ण पहलुओं का सामना किया जा रहा है। निम्नलिखित कुछ कारण हैं जिनके बारे में विचार किया जा सकता है:

डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन शिक्षाऔर शिक्षा प्रौद्योगिकी के उपयोग में वृद्धि के साथ, शिक्षकों को नए शिक्षा और प्रौद्योगिकी कौशलों की आवश्यकता होती है। उन्हें ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफ़ॉर्म्स का उपयोग कैसे करना है और डिजिटल शिक्षा सामग्री कैसे तैयार करनी है, इसके लिए उन्हें प्रशिक्षण और उनके कौशलों को अपग्रेड करने की आवश्यकता है।तकनीकी प्रगति (**Technological Progress**) एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जो हमारे समय में गति से हो रहा है और हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गहरा प्रभाव डाल रहा है।

शिक्षकों को शिक्षा में गुणवत्ता को बेहतर बनाने और छात्रों के प्रतिस्पर्धी तैयार होने में मदद करने के लिए नए शिक्षा और मूल्यांकन प्रणालियों का सही तरीके से प्रयोग करने के लिए तैयार होना चाहिए।शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह समाज के सभी प्रत्याशाएं साकार करने में मदद करता है और व्यक्तिगत और सामाजिक विकास को प्रोत्साहित करता है।

शिक्षकों को विभिन्न आधारबद्ध और सामाजिक प्रतिस्पर्धा को समझने और छात्रों को इसका सही तरीके से समर्थन देने के लिए तैयार होना चाहिए।सामाजिक और आधारबद्ध शिक्षा (**Social and Inclusive Education**) एक शिक्षा प्रणाली है जिसका मुख्य उद्देश्य समाज में सामाजिक और आधारबद्ध समानता को प्रोत्साहित करना और सभी विद्यार्थियों को समान शिक्षा के अधिकार का लाभ दिलाना है। इस प्रकार की शिक्षा विभिन्न प्रकार की छात्रों की आवश्यकताओं को समझती है, जैसे कि विशेष शिक्षा की आवश्यकता रखने वाले छात्र, जनजाति के छात्र, आर्थिक रूप से कमजोर छात्रआदि।

शिक्षा के क्षेत्र में रोजगार की मांग बढ़ गई है, इसलिए शिक्षकों को नौकरी के लिए अधिक पेशेवर तरीके से तैयार होना चाहिए, जिसमें उनके शिक्षण और प्रशासनिक कौशल शामिल होते हैं।नौकरी के लिए तैयारी करना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने कौशल, ज्ञानऔर सामर्थ्य को बढ़ाकर और नौकरी प्राप्ति के लिए आवश्यक स्वाधीनता तैयार करता है।

❖ द्वज

द्वज वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की कई संभावनाएं हैं, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से बदलाव और विकास हो रहे हैं। निम्नलिखित कुछ संभावनाएं हो सकती हैं:

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में डिजिटल शिक्षा के लिए और तकनीकी प्रगति के लिए विशेष ध्यान दिया जा सकता है। इसमें ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफ़ॉर्म्स का उपयोग कैसे करें, शिक्षा सामग्री कैसे तैयार करेंऔर डिजिटल शिक्षा उपकरणों का उपयोगकैसे करें - इन सभी मामलों में प्रशिक्षण दिया जा सकता है।डिजिटल शिक्षा और तकनीकी प्रगति दोनों ही विश्वासनीय और महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जो शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शिक्षा कार्यक्रम भी सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता को समझने और सशक्त करने के लिए तैयारी प्रदान कर सकते हैं। यह शिक्षकों को विभिन्न समुदायों के छात्रों को समझने और समर्थन देने के लिए मदद कर सकता है।सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता एक समाज में विभिन्न समृद्धि वर्गों, जातियों, धर्मों, और सांस्कृतिक समृद्धियों के बीच सामंजस्य और सहमति की स्थिति को सूचित करती है। यह एक समाज में सभी वर्गों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करने का माध्यम होता है, जिससे समाज में असमानता और भेदभाव को कम किया जा सकता है।

शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को अनुसंधान कौशल और शिक्षा प्रशासन के कौशल विकसित करने के लिए तैयार कर सकता है। इसके तहत, उन्हें शिक्षा प्रशासन, पाठ्यक्रम विकासऔर शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में ताजगी और विशेषज्ञता प्राप्त करने का मौका मिल सकता है।अनुसंधान और शिक्षा प्रशासन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे शिक्षा प्रणाली को सुधारने और बेहतर शिक्षा प्रदान करने में मदद करते हैं।

शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों के पेशेवर विकास को बढ़ावा देने के लिए मदद कर सकता है। यह उन्हें उनके क्षेत्र में नवाचारी अद्यतन जानकारी और कौशल प्रदान कर सकता है, जिससे उनके कैरियर में विकास हो सकता है।शिक्षकों के पेशेवर विकास शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे शिक्षा प्रणाली के मूल स्तम्भ होते हैं और छात्रों के शिक्षा के अधिकारों की सुनिश्चिति करते हैं। यह उनके पेशेवर विकास को समर्थन देने के लिए कई माध्यमों और प्रक्रियाओं का संघटन करता है।

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षा की गुणवत्ता को मापने और सुनिश्चित करने के लिए मूल्यांकन के तरीकों का सही तरीके से उपयोग करने की तैयारी प्रदान कर सकता है।शिक्षा की गुणवत्ता का मूल्यांकन शिक्षा प्रणाली के सुधारने और उन्नति करने का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह मानव संसाधन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और शिक्षा के स्तर को मूल्यांकित करने के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग करता है।

❖ द्वज

द्वज वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के विकास और प्रदर्शन की कई चुनौतियां हैंये . चुनौतियां शिक्षकों के पेशेवर विकास, छात्रों के शैक्षिक उत्कृष्टि को बेहतर बनानेऔर शिक्षा क्षेत्र में सुधार को साधने के लिए हैं|जिनमें कुछ मुख्य चुनौतियां निम्नलिखित हैं-:

- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के संचालन में तकनीकी उन्नति तेजी से बढ़ रही है, और इसके साथ ही डिजिटल शिक्षा के तरीके और उपकरण भी बदल रहे हैं। शिक्षकों को इस नए परिदृश्य के साथ कैसे संपर्क करना हैऔर छात्रों को डिजिटल युग के लिए तैयार कैसे करें, इसमें चुनौतियां हैं।
- शिक्षकों के पास अक्सर समय की कमी होती हैऔर उन्हें अधिक शिक्षा प्रशिक्षण के लिए समय निकालना मुश्किल हो सकता है। इसका समाधान उनके समय को सही तरीके से प्रबंधित करने और ऑनलाइन या फ्लेक्सिबल प्रशिक्षण के लिए विकल्प प्रदान करने में है।
- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को संचालित करने के लिए पूंजीकरण की आवश्यकता होती हैऔर यह कार्यक्रम वित्तीय संसाधनों का संचयन और समर्थन प्राप्त करने के लिए चुनौती प्रदान कर सकता है।
- शिक्षकों के लिए शिक्षा कार्यक्रमों के रूप में उपलब्ध अवसरों की गुणवत्ता और पहुँच को सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि छात्रों कीउत्तराधिकारिता की चिंता भी हो सकती है।
- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को विभिन्न शिक्षा प्रणालियों, भाषाओंऔर संस्कृतियों के अनुसरण करने के लिए डिज़ाइन करना हो सकता है, जिससे भिन्नभिन्न शिक्षा प्राथमिकताओं को पूरा किया जा सकता है।-

- शिक्षा कार्यक्रम को उन शिक्षकों और प्रशिक्षकों के लिए विकसित करना होता है जो शिक्षा कौशल और गुरुत्वाक्षरण क्षमताओं को बढ़ावा देने में सक्षम हों।
- डिजिटल शिक्षा के साथ, शिक्षकों को इंटरनेट, विद्युत साधनऔर तकनीकी कौशल का सही तरीके से उपयोग करने के लिए प्रशिक्षण और समर्थन की आवश्यकता है यह एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि नए तकनीकी उपकरण और सॉफ़्टवेयर निरंतर विकसित हो रहे हैं|
- छात्रों के लिए समर्थक और सहयोगी शिक्षक बनने के लिए शिक्षकों को छात्रों के साथ खुले और साक्षरता दृष्टिकोण से संवाद करने का तरीका सीखना होता है।
- शिक्षकों को विभिन्न समाजिक, सांस्कृतिकऔर भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने की क्षमता का विकास करना होता हैताकि वे सभी छात्रों को समर्थन दे सकें|
- विभिन्न छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षकों को विशेष शिक्षा कौशल और उपकरणों का उपयोग करना सीखना होता है।
- शिक्षा प्रौद्योगिकी निरंतर बदल रही हैऔर शिक्षकों को नए तकनीकी उपकरणों और समर्थन के साथ अद्यतन रहने की आवश्यकता होती है|
- डेटा प्राप्ति और उसके सही तरीके से प्रयोग की ज़रूरत होती है ताकि छात्रों की प्रगति को मॉनिटर किया जा सके, लेकिन इसके साथ ही साक्षरता की समस्याओं का समाधान भी किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को अपने शिक्षा कौशल और प्रदर्शन को स्वीकार करने और सुधारने की क्षमता विकसित करने की आवश्यकता होती है, जिससे वे अपने छात्रों को बेहतर तरीके से सिखा सकें।

ये चुनौतियां हैं, लेकिन सही प्रशिक्षण, समर्थन, और सामग्री के साथ, शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को इन चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य प्रदान कर सकता है और उन्हें बेहतर शिक्षा प्रदान करने में मदद कर सकता है। ये चुनौतियां शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के विकासको प्रभावित कर सकती हैं, लेकिन सही योजना, प्रशिक्षणऔर संसाधनों के साथइन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है ताकि शिक्षकों को बेहतर तरीके से छात्रों को सिखाने में मदद मिल सके।

- यदि हम अपने कौशल और प्रौद्योगिकी को सुधारते हैं, साथ ही तैयारी के लिए मेहनत करते हैं, तो हमारे पास अधिक नौकरी प्राप्ति के मौके बढ़ जाते हैं।इसलिए द्वज्ञ वीं

सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को नवाचारी बनाने के लिए महत्वपूर्ण है ताकि वे छात्रों को बेहतर तरीके से सिखा सकें और उन्हें आगे के जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए तैयार कर सकें।शिक्षा की गुणवत्ता के मूल्यांकन के द्वाराशिक्षा प्रणाली को सुधारने और बेहतर बनाने के लिए मूलभूत जानकारी प्राप्त की जा सकती हैऔर छात्रों की शिक्षा में सुधार हो सकता है। विद्यालयों और शिक्षा प्रणालियों को उनके लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोगी नीतियों को अपनाने में मदद मिलती है।इन संभावनाओं के साथशिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को अपने छात्रों को बेहतर तरीके से पढ़ाने और उनके शैक्षिक उत्कृष्टि को प्रमोट करने में मदद कर सकता है, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हो सकता है। सही प्रशिक्षण, समर्थनऔर सामग्री के साथशिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को इन चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य प्रदान कर सकता है और उन्हें बेहतर शिक्षा प्रदान करने में मदद कर सकता है। ये चुनौतियां शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के विकासको प्रभावित कर सकती हैंलेकिन सही योजना, प्रशिक्षणऔर संसाधनों के साथइन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है ताकि शिक्षकों को बेहतर तरीके से छात्रों को सिखाने में मदद मिल सके।

- [illegible]

ज्ञ। राजस्थान पत्रिका ,द्यठ फरवरी द्य०द्यध|

द्व। द्विवेदी ,(2018) रोली ,ज्ञान एवं पाठ्यक्रम ,अग्रवाल पब्लिकेशन्स ,आगरा2-

ध्र। कोठारी,शिक्षा और संस्कार ,मानस (2016) गुलाब,पत्रिका प्रकाशन,जयपुर

ब्ध। सिंह, ममता राजस्थान ,दृश्य कला और लोक कला के मूल तत्त्व एवं सिद्धान्त .(2015) ग्रंथ अकादमी, जयपुर

छ। शर्मा, श्याम रिसर्च पब्लिकेशन ,वास्तुकला एवं मूर्तिकला-प्राचीन भारतीय कला .(2012), जयपुर

ट। परमार,अजय प्राचीन भारतीय प्रतिमा .(2011), कला एवं मंदिर ,वास्तुकला बुक डिपो , पोलिया बाजारत्रि,जयपुर

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता



डॉ. भूवेन्द्र सिंह (प्राचार्य)
श्री आर. के. बी. एड. कॉलेज,
बिसाऊ झुंझुनू (राजस्थान)
मेल आईडी –bs9414541267@gmail.com

साराश :–

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षण की प्रभावशाली तकनीकों को विकसित करना तथा अधिगमकर्ता की योग्यताओं एवं अभिरूचियों का आंकलन करना है। यह व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा है जो शिक्षण एवं सीखने की प्रकिया को सुधारने में प्रयासरत है। शिक्षा मनोविज्ञान की सहायता से अध्यापक अपने में निहित स्वभाव, बुद्धि स्तर व्यवहार, योग्यता आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान उसे शिक्षण कार्य में सफल बनने में सहायता देता है और इस प्रकार उसकी व्यावसायिक तैयारी में अत्यधिक योग देता है। **स्किनर के अनुसार**–"शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों की तैयारी की आधारशिला है।"

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ

शिक्षा को अंग्रेजी में Education कहते हैं जो लैटिन भाषा के Educatum का रूपान्तर है जिसका अर्थ है to bring up together हिन्दी में शिक्षा का अर्थ 'ज्ञान' से लगाया जाता है। गांधी जी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य "व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा के समुचित विकास से है।" अंग्रेजी का Psychology शब्द दो शब्दों 'Psyche' और 'सवहने' से मिलकर बना है। 'Psyche' का अर्थ है 'आत्मा' और 'logus' का अर्थ है 'विचार–विमर्श'। अर्थात आत्मा के बारे में विचार–विमर्श या अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान से तात्पर्य शिक्षण एवं सीखने की प्रकिया को सुधारने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने से है। शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा

- **स्किनर 1958 के अनुसार**– "शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षण एवं अधिगम से सम्बन्धित है।"
- **क्रो एवं क्रो 1973 के अनुसार**– "शिक्षा मनोविज्ञान जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के अधिगम अनुभवों का विवरण एवं व्याख्या देता है।"

इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक प्रकियाओं एवं अनुभवों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षण की प्रभावशाली तकनीकों को विकसित करना तथा अधिगमकर्ता की योग्यताओं एवं अभिरूचियों का आंकलन करना है। यह व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा है जो शिक्षण एवं सीखने की प्रकिया को सुधारने में प्रयासरत है।

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति

- शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। क्योंकि शैक्षिक वातावरण में अधिगमकर्ता के व्यवहार का वैज्ञानिक विधियों, नियमों तथा सिद्धांतों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है।
- यह विधायक और नियामक दोनों प्रकार का विज्ञान है। विधायक विज्ञान तथ्यों पर जबकि नियामक विज्ञान मुल्यांकन पर आधारित होता है।
- शिक्षा का स्वरूप संश्लेषणात्मक होता है, जबकि शिक्षा मनोविज्ञान का स्वरूप विश्लेषणात्मक होता है।
- शिक्षामनोविज्ञान एक वस्तुपरक विज्ञान है।

- शिक्षा मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान क्योंकि इसमें शैक्षणिक परिस्थिति के अंतर्गत बालक के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
- शैक्षणिक परिस्थितियों के अंतर्गत बालक के व्यवहार का अध्ययन करना ही शिक्षा मनोविज्ञान की विषय वस्तु है।
- शिक्षा मनोविज्ञान का सीधा संबंध शिक्षण में अधिगम क्रियाकलापों से है।

शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र :–

शिक्षा की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान में मनोविज्ञान मदद करता है और यही सब समस्याएं व उनका समाधान शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र बनते है –

(1) शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श— अध्यापक का एक पुनीत कार्य है। विद्यार्थी के विद्यालय तथा व्यक्तिगत जीवन में अनेक अवसर आते हैं जब उन्हें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। बहुत सी ऐसी व्यक्तिगत समस्याएं हैं जिनके संदर्भ में बालक को अध्यापकों की सहायता चाहिए होती है। शैक्षिक और वेबसाइट क्षेत्र में विद्यार्थियों को निर्देशित करना अध्यापकों का दायित्व है।कक्षा में समायोजन विद्यार्थियों को भी निर्देशन और मार्गदर्शन देना पड़ता है। निर्देशन और परामर्श के लिए विद्यार्थियों के वातावरण, अधिगम के स्तर, स्मृति, आदत, योग्यताओं, बुद्धि, व्यक्तिगत भिन्नता, मानसिक स्वास्थ्य आदि का अध्ययन करना आवश्यक है। यह सब मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र है।

(2) पाठ्यक्रम निर्माण— सभी छात्रों के लिए एक सा पाठ्यक्रम नहीं बनाया जा सकता। पाठ्यक्रम का निर्माण बालको की रुचियों, अभिरुचियों, आवश्यकताओं, आयु, बुद्धि, क्षमताओं के अनुसार किया जाना चाहिए क्योंकि सभी छात्रों में व्यक्तिगत विभिन्नता होती है।

(3) अध्ययन विधियां— शिक्षा मनोविज्ञान अभी विकास की प्रक्रिया में है। अब तक विद्यमान अनेक पद्धतियां अनेक स्थानों पर अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं बैठती हैं। अध्ययन की विभिन्न विधियों की खोज करना एवं प्रचलित विधियों में अपेक्षित सुधार करना भी इसके अंतर्गत आता है। शिक्षा मनोविज्ञान एक नया विज्ञान है इसके अंतर्गत निरंतर विकास हो रहा है लेकिन इसका विषय क्षेत्र सीमित नहीं है।

(4) सीखना— शिक्षा जगत की यह समस्या रहती है कि शिक्षक यह जाने की बालक कैसे सीखते हैं? उनके सीखने को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है? शिक्षा मनोविज्ञान में सीखने से संबंधित निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है– सीखने के नियम, सीखने के सिद्धांत, सीखने को प्रभावित करने वाले तत्व, शिक्षा का स्थानांतरण आदि।

(5) समूह मनोविज्ञान— अब किसी भी देश में बालकों को समूह रूप में पढ़ाया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के अध्ययन के साथ उसके समूह का अध्ययन भी किया जाता है। समूह में व्यक्ति का व्यवहार क्यों बदल जाता है और कैसे बदलता है इस सब का अध्ययन भी किया जाता है।

(6) मापन और मूल्यांकन— शिक्षा मनोविज्ञान में शैक्षिक उपलब्धि एवं विशेष योग्यता का मापन तथा बुद्धि, चरित्र, व्यक्तित्व संबंधी मापन के लिए विभिन्न साधनों विधियों परीक्षणों और सांख्यिकीय कार्यों का प्रयोग किया जाता है। सीखने की प्रक्रिया में अध्यापकों को बालक की बुद्धि, व्यक्तित्व तथा विभिन्न योग्यताओं का ज्ञान आवश्यक है इन सबका मापन शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है।

(7) अभिवृद्धि एवं विकास— शिक्षा मनोविज्ञान में मनुष्य की शारीरिक अभिवृद्धि और शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव अभिवृद्धि तथा विकास का अध्ययन चार कालो— शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था के क्रम में किया जाता है। इसमें मनुष्य के विकास में उसके वंशानुक्रम और पर्यावरण की भूमिका का अध्ययन भी किया जाता है।

(8) मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन— मनोविज्ञान ने स्पष्ट किया है कि बच्चों की शिक्षा एवं विकास में बच्चों एवं अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा उनके समायोजन की क्षमता की अहम भूमिका रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान में बालको और अध्यापकों के मानसिक विकास में बाधक एवं दुविधा पहुंचाने वाले तत्वों का अध्ययन किया जाता है। और साथ ही कुसमायोजन के कारणों और विधियों का भी अध्ययन किया जाता है।

मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान

1. बालक का महत्व।
2. बालकों की विभिन्न अवस्थाओं का महत्व।

3. बालकों की रूचियों व मूल प्रवृत्तियों का महत्व।
4. बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व।
5. पाठ्यक्रम में सुधार।
6. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं पर बल।
7. सीखने की प्रक्रिया में उन्नति।
8. मूल्यांकन की नई विधियां।
9. शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति व सफलता।
10. नये ज्ञान का आधारपूर्ण ज्ञान।

शिक्षक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता/आवश्यकता/महत्व

एक शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना बहुत ही जरूरी, उपयोगी और महत्वपूर्ण है। कक्षा–शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नही कर सकता है। अपने शिक्षण–कार्य को सफल बनाने तथा छात्रों के सीखने को लाभप्रद बनाने के लिये उसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिये। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुये, एलिस क्रो ने यह विचार व्यक्त किया कि," शिक्षकों को अपने शिक्षण मे उन मनौवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करने के लिये तैयार रहना चाहिए जो सफल शिक्षण और प्रभावशील अधिगम के लिए अनिवार्य हैं। शिक्षक के लिए मनोविज्ञान की उनयोगिता अथवा आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से हैं––

1.स्वयं को समझना :–एक शिक्षक के लिए यह जानने जरूरी है कि उसमे अपने दायित्व के अनुकूल योग्यताएं है या नही। स्वभाव, बुद्धि, स्तर, जीवन दर्शन, स्वयं के निर्धारित मूल्य, शिक्षकों एवं अभिभावकों से संबंध, शिक्षक एवं छात्रों से संबंध, व्यवहार, चारित्रिक गुण, शिक्षक योग्यता की समाज में क्या प्रक्रिया हैं? शिक्षक का क्या दायित्व हैं? शिक्षक की क्या आवश्यकता हैं? आदि सभी बातों की जानकारी शिक्षक को शिक्षा–मनोविज्ञान की सहायता से मिल जाती हैं।

2.विद्यार्थी को जानना :–एक शिक्षक को छात्र की समस्त शक्तियों एवं योग्यताओं की जानकारी होना जरूरी है। इसी के आधार पर वह अपने कार्य का संचालन करता है।

3.शिक्षण पद्धित :–शिक्षा–मनोविज्ञान मे सीखने के लिए ऐसे अनेक सिद्धांत है जिनकी मदद से शिक्षक अपनी शिक्षण की विधियों का चयन कर सकते है एवं शिक्षण को अधिक से अधिक प्रभावशाली बना सकतें हैं।

4. विद्यार्थियों के मार्गदर्शन मे सहायक :–उचित मार्गदर्शन के अभाव मे विद्यार्थी अपने पथ से भटक जाते हैं और उनके अध्ययन का उद्देश्य विफल हो जाता हैं। शिक्षा–मनोविज्ञान बालकों को समुचित दिशा प्रदान करता है जिससे वे अपनी क्षमताओं का समुचित ढंग से उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं।

5. शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक :–शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने मे विशेष सहायक होता है। इस संबंध में स्किनर ने ठीक ही लिखा हैं," शिक्षा–मनोविज्ञान आजकल शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर उसकी शिक्षण विधि को उन्नत कर उसे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता हैं।"

6.शिक्षण विधियों के चयन मे सहायक :–शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षकों को बालकों की आयु एवं स्तर तथा समय और परिस्थिति के अनुकूल शिक्षण विधि का चयन करने मे सहायता देता है क्योंकि प्रत्येक स्थिति और समय पर एक ही शिक्षण विधि को नही अपनाया जा सकता।

7.सीखने के लिए उचित परिस्थितियों एवं वातावरण का आयोजन करना :–

शिक्षण कार्य के समय वातावरण एवं परिस्थितियों का भी शिक्षण की प्रक्रिया में एक विशेष महत्व होता है। शिक्षा–मनोविज्ञान के माध्यम से यह ज्ञात होता हैं, कि किस समय व्यक्तिगत शिक्षा तथा किस समय सामूहिक शिक्षण की आवश्यकता है, सहायक सामग्री का उचित प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। उपयुक्त परिस्थितियों शिक्षार्थी को सीखने के लिए अधिक प्रेरित करती हैं।

8.बाल–स्वभाव एवं व्यवहार का समुचित ज्ञान :–शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षक को बालक के स्वभाव एवं व्यवहार से पूर्णतः अवगत कराता है। शिक्षक बालक की मूल प्रवृत्तियों और संवेग आदि की जानकारी भी प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञान उसके शैक्षणिक और अन्य कार्यक्रमों के आयोजन में सहायक रहता हैं।

9.मूल्यांकन :–बालकों के मूल्यांकन के लिए बुद्धि, रूचि, व्यक्तित्व, ज्ञान आदि के शिक्षा मनोविज्ञान में अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, नियमों एवं विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस मूल्यांकन कार्य में सबसे अधिक योगदान एक शिक्षक का होता है। इसलिए जरूरी है कि उसे शिक्षा–मनोविज्ञान की पूरी जानकारी हों।

10.मार्ग–निदर्शन मे सहायता :–शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को निर्देशन तथा परामर्श संबंधी सभी जरूरी तथ्यों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है। अतः शिक्षा–मनोविज्ञान विद्यार्थियों के उचित मार्गदर्शन में अध्यापक की सहायता करता हैं।

11.बालक द्वारा विषय–वस्तु चयन मे सहायक :–यह अध्यापक को ऐसी अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह बालक की मानसिक योग्यता, क्षमता, रूचि और रूझान के अनुसार विषय–वस्तु चयन करने एवं उन विषयों के शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होता हैं।

12.सामाजिक भावना के विकास मे सहायक :–शिक्षा–मनोविज्ञान अध्यापक को सामाजिक संबंधों के महत्व का ज्ञान कराता है। इसी ज्ञान के आधार पर अध्यापक सामाजिक गतिविधियों का आयोजन करता है जो बालकों मे सामाजिक भावनाओं के विकास मे सहायक होता हैं।

13.शिक्षक के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में सहायक :–शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षक/अध्यापक के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाता है जिसके फलस्वरूप वह शिक्षण–कार्य में आने वाली समस्याओं को सुलझाने एवं सही ढूँढने में सफल होता हैं।

14.शिक्षण पद्धितयों एवं तकनीकी से अवगत होना :–यह शिक्षक (अध्यापक) को ऐसी पद्धतियों और तकनीकी से अवगत कराता है जिनके द्वारा वह अपने और दूसरे के व्यवहार का विश्लेषण कर बालक के व्यक्तित्व के समायोजन में सहायता देता हैं।

15.शिक्षण व्यवस्था को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना :–शिक्षा–मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक को विद्यालय प्रबन्ध, नियोजन और शिक्षण व्यवस्था करने हेतु मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि :– शिक्षक को अपना शिक्षण प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षा–मनोविज्ञान का अध्ययन करता अत्यंत ही आवश्यक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरोडा, आर., एवं मारवाह, एस. (2005). – मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी. जयपुरः शिक्षा प्रकाशन.
- बैस, एन., एवं. आरोड़ा, पी., (2006). – शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार जयपुरः पदमा जैन प्रकाशक.
- भटनागर, ए.बी., एवं भटनागर, एम. (2007). – मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन. मेरठः आर. लाल बुक डिपों.
- भटनागर, सुरेश (2008) – शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठः आर. लाल बुक डिपो.
- भटनागर, बी. भटनागर, एम. (2003) – शैक्षिक एवं मानसिक मापन, मेरठः आर. लाल बुक डिपो.
- गुप्ता, कु. रक्षा जुलाई–सितम्बर (2002). शिक्षा चिन्तनः उच्च शिक्षा और भारतीय मूल्य. कानुपरः त्रिमूर्ति संस्थान पृ. स. 33.
- सिंह, कुलदीप नवम्बर (2021). शिविरा पत्रिकाः बच्चों को परिवार में शिष्टाचार की शिक्षा. बीकानेरः राजस्थान शिक्षा विभाग. पेज न.15
- विद्या भारती प्रदीपिका. नई दिल्लीः त्रैमासिक. अप्रैल–जून 2022. शिक्षा से संस्कार. पृ. स.– 17.

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

– ड़ॉ गजेन्द्र सिंह शेखावत
मो.नं.–9929873525
ई–मेल–gajendrasinghshekhawat835@gmail.com

षोध सारांष

मूल रूप से एक अच्छा विद्यार्थी शिक्षण के हर अवसर को एक अच्छा अवसर प्रदान करता है। सीखने की पूर्व धारा में विभिन्न विधियॉ या किसी प्रकार सीखने के बारे में कुछ मूल विचार प्रकट होते है। व्यक्तित्व, रूचि या अभिवृतियों मे आने वाले परिवर्तन सीखने के कतियय लक्ष्यों के परिणाम होते है। यह परिवर्तन एक सीखने के कतियय लक्ष्यों के परिणाम होते है। यह परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया के साथ होते है। सीखने में ,सीखने के साथ–साथ आपकी सीखने की क्षमता भी विकसित होती है, यदि आप प्रशिक्षित है तो आप एक बेहतर व्यक्ति, कार्यषैली में सिद्वान्त और सत्य का सराहने की निपुणता वाले बन जाते है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–सीखना चारों ओर के वातारण में समायोजन स्थापित करने में मदद करता है। किसी विशिष्ट सामाजिक सॉस्कृतिक परिवेष में कुछ समय रहने के पश्चात् हम उस समाज के नियमों को समझ पाते है तथा यही हमसे अपेक्षित भी होता है। हम परिवार,समाज और अपने कार्य क्षेत्र के जिम्मेदार नागरिक एवं सदस्य बन जाते है। यह सब सीखने के कारण ही सम्भवं है। हम विभिन्न प्रकार के कौषलों को अर्जित करने के लिए सीखने का ही उपयोग करते है।

भारतीय समाजषास्त्रियों, शिक्षाविदों एवं अधिगमकर्ताओं ने शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत समय–समय पर हमें प्रभावी शिक्षण से सिखाया और हमने अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से खूब सीखा। जिसके परिणामस्वरूप विश्वव्यापी महामारी कोरोना की वैंकसीन बनाकर विश्व में कीर्तिमान स्थापित किया और कोरोना को हराया। अभी हाल ही में चन्द्रयान –3 की ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की है। इसके पीछे भारतीय शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का ही सराहनीय सहयोग रहा है। भारत की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बढ़ते कदमों के कारण विश्व के अधिकांष देष लोहा मानते है। मिषन,2030 तक भारत अपने आप में एक विकसित राष्ट्र स्थापित होकर रहेगा।

शिक्षण से अभिप्राय है कि दूसरे को सीखने में मदद करने की प्रक्रिया को शिक्षण कहते है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे को ज्ञान, कौषल तथा अभिरूचियों को सीखने या प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ज्ञान प्रदान करना,कौषल का विकास करना, अनुदेषन देना, पाठ पढ़ाना तथा उन्हें प्रोत्साहित करना है। अतः हम कह सकते है कि शिक्षण श्सीखना–सिखाना, ज्ञान में वृद्वि करना, कौषल में सुधार लाना और व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन की क्षमताएं प्रदान करने से है।

अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। सीखने की प्रक्रिया तथा सीखने के परिणाम स्वरूप हुऐ व्यवहार परिवर्तन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अधिगम या व्यवहार में परिवर्तन अनुभव तथा प्रशिक्षण दोनों से होता है। अधिगम व्यक्ति के वातारण में विचरण के फलस्वरूप विभिन्न स्थितियों के प्रति अनुक्रिया करने से प्राप्त अनुभवों के आधार पर व्यवहार में होने वाला अपेक्षित परिवर्तन है। इसी प्रकार विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन होगा। शिक्षण और अधिगम एक दूसरे के पूरक है। शिक्षण तभी पूरा होता है, जब अधिगम हो जाये व अधिगम शिक्षण से होता है। अच्छा शिक्षण वही है जो अधिगम को सरल,सुगम व रूचि कर बनाता है। शिक्षण सूत्र, सिद्वान्त,विधियॉ आदि सभी–अधिगम के रूपों को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है। शिक्षण एवं अधिगम से विद्यार्थियों के व्यवहार में परिर्वतन लाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण व अधिगम में धनिष्ठ सम्बंध है। यह आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण तथा अधिगम सबसे प्रमुख है। शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है। शिक्षण की प्रक्रिया मानव व्यवहार को परिवर्तित करने की तकनीक है। व्यवहार परिवर्तन करना शिक्षण का उद्वेश्य है। अधिगम एक व्यापक सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलने वाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनके क्रियाऐं एवं उपक्रियायें करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है। शिक्षण का अर्थ सीखाना और अधिगम का अर्थ सीखना है। यही शिक्षण अधिगम का मूल उद्वेश्य होता है। छात्रों को ज्ञान, दक्षता, अनुभव और समझ प्राप्ति करवाना ताकि वे समाज और अपने जीवन में सफलता हासिल कर सकें। भारत में अधिगम प्रक्रिया के अनुकूल शिक्षण प्रदान करने के प्रयास किये जा रहे हैं। अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। आज कक्षाओं में प्रभावशाली शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों को व्यावहारिक कठिनाइयों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसका निराकरण सहजता से उदाहरण सहित किया जा रहा है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विकास करने के लिए विकास के विभिन्न आयामों, कारकों को फलीभूत किया जा रहा है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के विविध पक्षों पर विस्तृत प्रकाष डाला गया है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शैक्षिक नवाचारों,आयामों के सम्प्रत्ययों को शिक्षाक्रम एवं पाठ्यक्रम में समाहित किया गया है। भारत में शिक्षण अधिगम अधिक से अधिक कक्षाकक्ष में हो, उसके विभिन्न तरीकों, क्रियाकलापों, दक्षताओं आदि को ध्यान में रखा गया है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, प्रभावी शिक्षण अधिगम के स्त्रोत, शैक्षिक तकनीकी के नवाचारों के कारण शिक्षण अधिगम की नई प्रवृतिया का विस्तार से विवेचना की गई है।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का प्रत्यय शिक्षा के क्षेत्र में आई0के0डेवीज ने सर्वप्रथम किया था। शिक्षण के कार्यो व प्रक्रियाओं की योजना बनाना,उनका प्रबंध करना, उनका कार्यान्वयन करना साथ ही मूल्यांकन पर जोर देना–ये सभी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग हैं।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक शिक्षार्थी है क्योंकि सभी गतिविधिया और पूरी प्रक्रिया उसके ईद गिर्द केन्द्रित और नियोजित होती है। शिक्षार्थी केन्द्रित शिक्षा अधिगम प्रक्रिया पर केन्द्रित होती है। इसमें शिक्षार्थियों के साथ–साथ शिक्षक भी सह शिक्षार्थी होते है।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के भारतीय दृष्टिकोण का अर्थ–

- शिक्षण परिर्वतन के लिए खुला होना चाहिए।
- शिक्षण को छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षण को अधिगम की गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों की भागीदारी पर जोर देना।
- शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

भारत में शिक्षण अधिगम प्रणाली देष के आकार, सांस्कृतिक विविधता और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण जटिल और विविध है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारत में विभिन्न राज्यों क्षेत्रों में काफी अन्तर हो सकता है। भारत में शिक्षण अधिगम प्रणाली के सामान्य शिक्षण में शामिल है। भारत की शिक्षा प्रणाली कई स्तरों में विभाजित है। पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधिया विकसित हो रही है किन्तु पारम्परिक व्याख्यान एवं नोट लेने पर अधिक बल दिया जा रहा है। समालोचनात्मक सोच एवं समस्या समाधान को बढ़ावा देना, सक्रिय शिक्षण और अनुभवात्मक शिक्षण की ओर बदलाव बढ़ रहा है।

वर्तमान समय में प्रौद्योगिकी पर बल दिया जा रहा है। शिक्षण एवं अधिगम में तेजी लाने हेतु सभी तरह की तकनीकी का उपयोग बढ़ता जा रहा है। भारत में अधिगम एवं शिक्षण अपने बढ़ते स्वरूप की ओर अग्रसर है। इसी कारण भारत विश्व में 85 प्रतिषत देषों में आगे है तथा शीघ्र ही पुनः " विश्व गुरू " बनने वाला है।

शैक्षिक आयाम, अनुदेषन, शिक्षण, अधिगम व प्रशिक्षण में शैक्षिक प्रौद्योगिकी ने परिर्वतन किया है। उसे समझकर उपयोग में लिया जा रहा है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रशिक्षकों को अपने शिक्षण उद्वेश्यों को परिष्कृत करने,स्थापित करने और स्पष्ट करने की अनुमति देती है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन्हें जिम्मेदार व्यक्तियों में आकार देती है तथा उन्हें दुनिया का सामना करने हेतु तैयार करती है। भारतीय शैक्षिक दृष्टिकोण में प्राचीन शिक्षा के केन्द्र नालन्दा,मैसूर, तक्षशिला व विक्रमशिला का योगदान कम

नही रहा है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया प्राचीन काल से ही समयानुसार होती रही है। चाहे गुरूओं के आश्रमों में शिक्षण अधिगम हो या गुरूकलों वर्तमान में 21 वीं सदी तथा भारतीय नयी शिक्षा नीति, 2020 में पारम्परिक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से शिक्षण अधिगम में नवीनतम प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग होने लगा है। आवश्यकता के अनुसार मोबाईल, दूरदर्शन, कम्प्यूटर,ऑनलाईन, ई–लर्निंग, लेपटॉप के साथ आधुनिक संसाधनों से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विकास किया जा रहा है। तब जाकर भारत शिक्षा क्षेत्र में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा कर पा रहा है।

प्राचीन काल में तीर चलाना,तलवार चलाना,घुडदौड़ सीखना, तैरना सीखना,पेड़ पर चढ़ना सीखाना आदि अधिगम के तरीके थे। महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा भी उस समय के शिक्षण–अधिगम का एक प्रभावी रूप रहा है। भारत में समय–समय पर शिक्षा में बदलाव कर नई शिक्षा नीतियॉ लागू की गई। वैसे ही शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में भी बदलाव होता रहा है। सदैव शिक्षा व्यवस्था मे शिक्षण अधिगम जारी रहा है। जैसे–जैसे शिक्षा व्यवस्था समयानुसार बदलती रही है, ठीक वैसे ही शिक्षण व अधिगम के तौर–तरीके बदलते रहे हैं। शिक्षा के आयामों व प्रतिमानों की प्राप्ति में शिक्षण व अधिगम की प्रक्रिया में संषोधन व परिवर्तन होते रहे है।

आज के समय में भारतीय शिक्षक ज्ञानदाता के रूप में, सुविधादाता के रूप में व एक मार्गदर्शक के रूप में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को आगे बढ़ा रहे हैं। ज्ञान निर्माण के रूप में सृजनात्मक वादी भारतीय दृष्टिकोण माना जाता है। वातावरण भी अधिगम को सुदृढ़ बनाता है। कुछ सिखना प्रशिक्षण से ही सम्भव हो पाता है, जैसे–कम्प्यूटर सीखना,टाइप सीखना आदि।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार के प्रयास किये जा रहे है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 जैसी पहल का उद्वेश्य पाठ्यक्रम को आधुनिक बनाना, अनुभवात्मक शिक्षा को बढावा देना, कौषल विकास पर जोर देना और शिक्षा में प्रौद्योगिकी को एकीकृत करना है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं एन0सी0एफ0टी0ई, 2009 एवं एन0सी0ई0आर0टी0 की शिक्षक शिक्षा पाठ्यकम की रूपरेखा आदि में उल्लेखित विद्यार्थी में स्व अधिगम की आदत और स्वतंत्र चिंतन का विकास कक्षा शिक्षण में उनकी सक्रिय भागीदारी एवं सीखने के नवीन पहलुओं का विषेष ध्यान रखा गया है। शिक्षण अधिगम योजना की नवीन युक्तियों एवं सभी इकाइयों में वर्तमान परिप्रेक्ष्य व शिक्षा जगत में हो रहे बदलाव तथा ज्ञान एवं पाठ्यक्रम संबंधी नई पाठ्यवस्तु शिक्षण की नवीन युक्तियों व व्यूह रचनाओं तथा उपागमों का विषेष ध्यान रखा गया है। भारत में दूसरे देषों की नकल करने की प्रवृति भी शिक्षण–अधिगम का ही हिस्सा रही है किन्तु अब भारतीय दृष्टिकोण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आगे की पंक्ति में आ खड़ा हुआ है। दिनों दिन भारत सभी क्षेत्रों में अपनी अह्म भूमिका निभा रहा है। वर्तमान में इसी कारण भारत विश्व के 85 प्रतिषत देषों का नेतृत्व विभिन्न क्षेत्रों में कर रहा है।

जहॉ शिक्षण है, वहॉ अधिगम जरूर होगा। अधिगम के द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार में स्थाई अपेक्षित परिवर्तन किए जा सकते है। शिक्षण की उपलब्धि का आधार अधिगम ही है। शिक्षण व अधिगम से ही शैक्षिक एवं व्यावसायिक पथ प्रदर्शन देने में सहायता मिलती है। जहॉ शिक्षण विद्यार्थी के सर्वागीण विकास को सम्भंव बनता है। वहीं अधिगम विद्यार्थी के सर्वागीण विकास का अंग बनता है। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी ढ़ग से भारतीय शिक्षा क्षेत्र में फलीभूत हो रही है।

निष्कर्ष/षोध सारांषमूल रूप से एक अच्छा विद्यार्थी शिक्षण के हर अवसर को एक अच्छा अवसर प्रदान करता है। सीखने की पूर्व धारा में विभिन्न विधियॉ या किसी प्रकार सीखने के बारे में कुछ मूल विचार प्रकट होते है। व्यक्तित्व, रूचि या अभिवृतियों में आने वाले परिवर्तन सीखने के कतियय लक्ष्यों के परिणाम होते है। यह परिवर्तन एक सीखने के कतियय लक्ष्यों के परिणाम होते है। यह परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया के साथ होते है। सीखने में ,सीखने के साथ–साथ आपकी सीखने की क्षमता भी विकसित होती है, यदि आप प्रशिक्षित है तो आप एक बेहतर व्यक्ति, कार्यषैली में सिद्वान्त और सत्य का सराहने की निपुणता वाले बन जाते है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–सीखना चारों ओर के वातारण में समायोजन स्थापित करन में मदद करता है। किसी विशिष्ट सामाजिक सॉस्कृतिक परिवेष में कुछ समय रहने के पश्चात् हम उस समाज के नियमों को समझ पाते है तथा यही हमसे अपेक्षित भी होता है।

हम परिवार,समाज और अपने कार्य क्षेत्र के जिम्मेदार नागरिक एवं सदस्य बन जाते है। यह सब सीखने के कारण ही सम्भवं है। हम विभिन्न प्रकार के कौषलों को अर्जित करने के लिए सीखने का ही उपयोग करते है।

भारतीय समाजषास्त्रियों, शिक्षाविदों एवं अधिगमकर्ताओं ने शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत समय–समय पर हमें प्रभावी शिक्षण से सिखाया और हमने अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से खूब सीखा। जिसके परिणामस्वरूप विश्वव्यापी महामारी कोरोना की वैंकसीन बनाकर विश्व में कीर्तिमान स्थापित किया और कोरोना को हराया। अभी हाल ही में चन्द्रयान –3 की ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की है। इसके पीछे भारतीय शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का ही सराहनीय सहयोग रहा है। भारत की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बढ़ते कदमों के कारण विश्व के अधिकांष देष लोहा मानते है। मिषन,2030 तक भारत अपने आप में एक विकसित राष्ट्र स्थापित होकर रहेगा।

21वीं शताब्दी में शिक्षा की चुनौतियां

कल्याण सिंह(टेवाली)
कार्यक्रम अधिकारी
समग्र शिक्षा, पाली एवं शोधार्थी
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज0)
E-mail :rathore.kalyan84@gmail.com

सारांश

आजादी प्राप्ति के संघर्ष और उसके बाद हमने बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए कई प्रयास और पर्यटन प्रारंभ किये, संकल्प और सपने संजोए। प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बालकों को भारत के भविष्य का निर्माता कहा औरबाल दिवस आयोजन की शुरुआत हुई। भारतीय शिक्षा आयोगके अध्यक्ष डॉ. डी.एस. कोठारी ने ''भारत के भविष्य का निर्माण कक्षा कक्षों में हो रहा है ''प्रेरणासूत्र दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 21वीं सदी के लिए लंबी छलांग की बात कही। इस नीति की भूमिका में कहा गया'' बालक एक देश की मती संपदा है, अमूल्य संसाधन है। जरूर इस बात की है कि उसकी परवरिश गतिशील और संवेदनशील हो और सावधानी से की जाए।''

संयुक्त राष्ट्र संघ ने राष्ट्रों के समक्ष बच्चों के जीवनयापन, विकास और संरक्षण हेतु कुछ लक्ष्य प्रस्तुत किये। 18 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों के लिए 54 अधिनियम पारित किये। भारत ने 11 दिसंबर 1992 में इसका अनुमोदन किया।

बाल अधिकार–

''बच्चे मासूम, कोमल और बड़ों पर निर्भर हैं। वे जिज्ञासु, सक्रिय व आशा से भरे हैं। उनका समय आनंद व शांति का होना चाहिए–खेलने, सीखने और गाने का समय। उनके भविष्य का निर्माण अमन, चैन व शांति के माहौल में होना चाहिए। उनकी जिंदगियां परिपक्व होनी चाहिए।''

''हर बच्चे को अच्छे से अच्छा स्वास्थ्य, रहने को घर एवं पर्याप्त पोषण मिलना चाहिए। हर बच्चा खेल–कूद सके व निःशुल्क शिक्षा पाए। चाहे लड़का हो या लड़की, चाहे किसी भी धर्म का हो, किसी भी जाति का हो, कहीं भी जन्म लिया हो, उसे बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। हर एक को नाम व राष्ट्रीयता का हक, स्नेह, स्वतंत्र विचार, समझ और सुरक्षा का अधिकार, अवहेलना, क्रूरता और शोषण से हर बच्चे को सुरक्षा मिले'।

बलकों के ये अधिकार आज भी पूरे नहीं हुए हैं। 21वी सदी में जिस तरह जनसंख्या वृद्धि हो रही है, बच्चों की संख्या और बढ़गी। अभाव, अशिक्षा, भूख, रोगझुग्गी–झोपड़ियों का जीवन भी ज्यादा बढ़ेगा॥ शिक्षा से वंचित, बाल श्रमिक शहरों में चिंदियों, रद्दी व सड़कों पर कूड़ा करकट एकत्रित करने वाले बालकों को स्कूल में लाने, पूर्ण शिक्षा एवं अच्छे स्वास्थ्य के दायित्व को पूरा करने का दायित्व निभाना होगा। सब को शिक्षा, सबको स्वास्थ्य, सबको आवास, सब कोरोजगार और सब के साफ पीने का पानी क्या हम 21 वीं सदी में दिलाने का ठोस कार्य क्रम क्रियान्वित कर सकने में समर्थ हो सकेंग? इस के लिए हमें प्रति बद्धता, समर्पण एवं कर्तव्य परायणता से जूझना पड़ेगा॥ विशेषकर 'सबके लिए शिक्षा 'एवं संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए।

शिक्षा धीरे–धीरे एक बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। सरकारी शिक्षा, प्राइवेट शिक्षा,जैसे सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र। ves और Have'snot अमीर और गरीब के लिए अलग–अलग व्यवस्थाएं, फिर मध्यम वर्ग के लिए बीच की व्यवस्थाएं,जो भारी भरकम फीसदे सकते हैं वे बढ़िया से बढ़िया शिक्षा खरीद लेते हैं। वे बाकी के निःशुल्क सरकारी स्कूलों में राष्ट्रीय शिक्षा

क्रम की पूर्ति कर लेते हैं। कुछ मध्यम वर्ग के लोग अपनी कमाई से बचत कर नौ निहालों को शहरों के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में अच्छी शिक्षा करा देते हैं। बाकी सरकारी मेहरबानी से नवोदय विद्यालयों' आदर्श विद्यालयों' में अपना भाग्य आजमा लेते हैं।

सब बच्चे पब्लिक स्कूलों में नहीं पढ़ सकते। तीन चौथाई बालक–बालिकाओं के लिए व्यवस्था सरकारी स्कूल ही पूरी करते हैं।सरकारी स्कूलों में भवन पूरे नहीं,विज्ञान शिक्षक नहीं, समय पर पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाता, स्थानांतरण एवं पदोन्नति, वेतन श्रंखला हेतु ओरियन ,बजट की कमी,बजट का 6 प्रतिषत देन हीं पाए हैं अब तक हम।अच्छे पुस्तकालय औरप्रयोगशाला भी नहीं है।औरतो और अभी तक सभी स्कूलों में पीने का शुद्ध पानी, बालक–बालिकाओं के लिए स्वच्छ सुविधा गृहों का भी प्रबंध नहीं कर पाए हें । हम इन सुविधाओं की सबके लिए व्यवस्था करनी ही होगी। राजधानी दिल्ली तक में कई स्कूल 'टेंट्स' मेंचल रहे हैं और अन्य सुविधाओं की पूर्ति का तो सोना दिवास्वप्न ही होगा।

बुनियादीशिक्षा–कुछ उभरते प्रश्न–

गांधीजी ने जो विचार प्रतिपादित किये और व्यवहार में ढालें वे आज और मौजूद नजर आते हैं। सभी समितियों एवं नीतियों में उन्हें महत्व दिया गया है। लेकिन गुलामी एवं आजादी के समय भी लोगों ने गांधीजी के दर्शन एवं शिक्षा के व्यावहारिक सरल एवं स्वदेशी विचारों को शायद विवादास्पद विचार मानने जैसे–स्थानीय आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता पर भरोसा,इकलौत विकल्प पर निर्भर नहीं होने, पहल कदमी एवं स्वतंत्रता, हाथ से कार्य करने, स्थानीय समुदाय एवं परिवार को महत्व देने, परस्पर संवाद एवं प्रजातंत्र की आवश्यकता हेतु बुनियादी शिक्षा को अनिवार्य एवं अपरिहार्य माना जाना आदि को हम आस्था, निष्ठा एवं आत्मीयता से स्वीकार नहीं कर सके, यही सबसे बड़ी भूलसाबित हुई। आज भी सभी देशों में शिक्षा में परिवर्तन की लहर, नवाचार,सबको शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने में इन्हीं सिद्धांतों को स्वीकारा जा रहा है एवं इन्हें ही प्रतिपादित, प्रचारित किया जा रहा है।

बच्चों की शिक्षा का मॉडल–कुछ सिद्धांत–

- ☐ स्वीकृत ज्ञान की पुन: खोज में बच्चों का पर्यावरण एवं संसाधन होना चाहिए।
- ☐ बच्चों को यह छूट होनी चाहिए कि वे दुनिया के बारे में ज्ञान का अपना मॉडल बना सके।
- ☐ सीखने के दौरान बच्चों को शारीरिक रूप से सक्रिय रह पाने का अवसर मिले।
- ☐ बच्चों के घर व स्थानीय जीवन का प्रतिबिंब व विस्तार कक्षा की गतिविधियों में होना चाहिए।
- ☐ हस्तकला को स्कूल पाठ्यक्रम में एक संगठ कतत्व के रूप में रखा जाए–
  1. स्कूल और काम के बीच संबंध बनाना।
  2. पाठ्यक्रम में गतिविधि का पक्ष जोड़ना।
  3. आत्मनिर्भरता का अहसास देना।

काम के प्रति सम्मान–

गांधी जी के पूरे जीवन का मिशन था कि गुलाम बनाए गए लोगों में विकल्प चुने और पहल करने का साहस पैदा हो। प्रौढ़ों और उस पीढ़ी को तो उन्होंने उत्प्रेरित कर आजादी के आन्दोलन में खड़ा कर दिया लेकिन भावी पीढ़ी को 'बुनियादी तालीम' के जरिए स्वतंत्रत निर्णयले ने की क्षमता, निजी जिम्मेदारी उठाने की इच्छा एवं स्वायत्तता के लिए तैयार, प्रशिक्षित एवं समर्पित करने के लिए काम के प्रति सम्मान हेतु ही बुनियादी तालीम को महत्वपूर्ण माना।

आजकीजरूरत–

आज भी शिक्षा में लचीलापन एवं तरीकों की विविधता

जरूरीहै। ज्ञान व हुनर के विकास हेतु बच्चों के परिवेश को संसधन माना जाए। सारे विषय गतिविधियों के जरिए कर दिए जाएं। बच्चों को छोटे समूहों में काम करना सिखाया जाए। कक्षा की गतिविधियां बच्चों के घरेलू जीवन को भी विस्तार दें। कक्षा के बाहर काम करने का अवसर हो। कुछ विषय गहरी पड़ताल के लिए रखे जाएं। बच्चों को शिक्षक से स्वतंत्र होकर काम करने का अवसर हो। पाठ्यपुस्तकें फिर से लिखी जाएं। प्रो.यशपाल ने ठीक कहा है–''भारतीय पाठ्यपुस्त कें बच्चो ं की दिलचस्पी और भागीदारी को प्रोत्साहित नहीं कर पाती एवं करने की क्षमता भी नहीं रखती।'' ''हमारी पाठ्यपुस्त कें बच्चों को आस पास की दुनिया का अवलोक करने या स्वदेशी गतिविधियां करने को नहीं उकसाती।' ' ''दिलचस्पी – जिज्ञासा जगाने के लिहाज से आज की पाठ्यपुस्तक गांधीजी के जमाने से भी गई बीती है।' ' ''खामियां दूर की जा सकती है–यदि पाठ्यपुस्तकों को लिखने में शिक्षकों की भागीदारी से वथोड़ी सावधानी से लिखी जाए।'' गांधी जी को गंवाया या भुलाया–

हमने गांधीजी को गवा तो दिया ही था आज भुला भी दिया है और वापस याद करने में कतरा रहे हैं, शर्मा रहे हैं, हम संजीदा भी नहीं है।हालत तो यह है कि न हम टैगोर के रहे और न जाकिर हुसैन गांधी के काम के रहे,न टैगोर के हृदय के और न जाकिर हुसैन के जेहन के। इन 60 सालों के सफर को सिफर का सफर न भी कहे तो भी सबके लिए शिक्षा का स्वप्न तो अभी साकार होना शेष है।सार्वज नीकरण के लक्ष्य जो संविधान में लक्षित है वहां तक पहुंच ना आज की रफ्तार से तो कह सकतेहैं 50 वर्ष और चाहिए। कौन करेगा 50 वर्ष तक इंतजार,कुछ प्रश्न तो आज ही उत्तर और समाधान चाहते हैं। पंचायतीराज,सत्ता का विकेद्री करण किया और सुदृढ भी किया, संविधान का 73वां संशोधन भी किया, उच्च प्राथमिक शिक्षा को इन्हीं संस्थाओं को सौंपने का राजनीतिक निर्णय एवं इच्छा शक्ति भी प्रकट कर दी गई है। कुछ तूफान,भूंक प और आंधियां आंदोलन की तैयारी भी हो रही है, फिर क्या होगा''सबके लिए शिक्षा'' के स्वप्न का ?

इक्कीस वीं सदी में शिक्षा के आयाम–

कुछ आशा बंधी थी'लोक जुंबिश' की 1992 की शुरु आत से किचलो राजस्थान में हलचल, स्पंदन–आंदोलन का आगाज तो हुआ है। सार्वजनी करण,महिला समान ताकी और बढ़ते हुए, गुरु का गुरुत्व पुनः स्थापित होगा। खूब धूम मची सूक्ष्म नियोजन, सर्वेक्षण,ग्राम शिक्षा समितियों, प्रवेशोत्सव में लोक सहभागिता, गुणवत्ता और शिक्षा के स्तर में सुधार के साथ–साथ सहमति, साझेदारी, सहयोग, सजगता, संवेदनशीलता, पारदर्शिता एवं खुलेपन की खिड़कियां खुली भी और खुली ही रह गई न जाने यह क्या हो गया ? हम प्रयोग पर प्रयोग कर रहे हैं, अनुदान औरऋण के पीछे भाग दौड़ कर रहे हैं, कभी स्वैच्छिक संस्थाओं की तरह मिशन पद्धति पर तो कभी किसी नई धुरथि रकने के लिए घुंघरू बांध रहे हैं। जो ढोंच तैयार हुए वे चरमराने लग गए हैं, नये सांचे बनाए जा रहे हैं, गांव, गांव के बच्चे, गांके गुरु और अभिभावक आज फिर चौराहे पर खड़े हैं।

जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है अनुमान है कि 21 वीं सदी के प्रारंभ में ही हमें बहुत स्कूलों की जरूरत पड़ेगी। 12 लाख स्कूल जिनमें तीन चौथाई प्राथमिक स्तर के होंगतथा एक करोड़ मानवीय संसाधनों की आवश्यकता रहेगी। इस वृद्धि के लिए 10,000 करोड़ राशि का प्रावधान करना पड़गेा। यह तो केवल औपचारिक शिक्षा की जरूरतें हैं। 21वीं सदी में तो जीवन पर्यंत शिक्षा व्यवस्था, वैकल्पिक व्यवस्था, अनौपचारिक पार्ट टाइम, दूरस्थ शिक्षा, खुले विश्वविद्यालय, पत्राचार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर, इंटरनेट का सर्वाधिक उपयोग आदि कई तरह की समझ,

प्रशिक्षण एवं उपयोगकी व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए हमारे अपने विद्यालयों को भी बदलना पड़ेगा,शिक्षकों को बदलना रूपांतरित होना पड़ेगा। आज के स्कूल कल के' अधिगम केंद्र
' होंगे। आज के स्कूल शिक्षक को 'सुविधादाता' फैसीलीटेटर बनना पड़ेगा। पढ़ने के बजाय सीखने–सिखाने, अधिगम पर जारे देना पड़ेगा। स्कूलों को ही नहीं सारे समाज को अधिगम समाज के रूप में परिवर्तित होना पड़ेगा। 21वीं सदी में शिक्षक और शिक्षालय को ज्ञानार्थी, प्रतिपादक, संचारक, संगठक, समन्वयक, प्रवर्तक समस्या निवारक की बहुआयामी भूमिकाएं निभानी पड़ेगी। इस के लिए बहुत प्रयास एवं प्रयत्न, अभियान एवं आंदोलन करना पड़ेगा, समुदाय की सहभागिता,सहयोग सहकार प्राप्त करना पड़ेगा।

स्कूलों को चार दिवारी से बाहर आना पड़ेगा। लचीलापन, सहजता, सजगता, अनौपचारिकता और सही अर्थों में 'सामुदायिक स्कूल'(CommunitySchool)बनाना पड़ेगा। समाज को नेतृत्व, निकटता, नवीनता एवं नवाचार समर्पित करना होगा। अंत में बालक से भी अपेक्षाएं होगी कि वह चरित्रवान, अनुशासन प्रिय एवं परिश्रमी बने। वह जिज्ञासु, सजग, स्वावलंबी, सृजनशील, कौशलयुक्त, आत्मविश्वासी, उदार, मानवीय गरिमा मय चेतनशील एवं क्रियाशील बने। एक अच्छा भारतीय बने और अच्छा नागरिक बने। इन 50–60 वर्षों के सफर में हमने शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रयोग,परीक्षण, नवाचार और प्रतिमानों के हर स्तर पर कार्य किया है, अनुभव भी प्राप्त किए हैं, लेकिन आज भी हम सर्व सुलभ, सार्वजनीकरण के लक्ष्य के साथ इसे आत्मनिर्भरता एवं स्वावलंबन युक्त व्यक्तित्व निर्माण की तलाश में भटक ही रहे हैं।

आजादी के बाद शिक्षा के कई आयोग, समितियां और संगोष्टियां हुई। आज भी हो रही है, नीतियां बना रही है, बनेगी अभी भी हमें तलाश है, ललक है, लालसा है, अच्छी शिक्षा की सर्वांगीण एवं सार्वजनीन सबको शिक्षा की, परिवेश से जुड़े रहने की, जीवन की, हाथ से काम करने श्रम के प्रतिनिष्ठा की, प्रवृत्ति मूलक शिक्षा की, अधिगम, अनुभव एवं अपनतत्व की, यह तलाश जारी रहगे ी। इस संपूर्ण प्रक्रिया में अभिभावकों के चिंतन एवं व्यवहार में, नजरिये में भी बदलाव अपेक्षित है जैसा कि खलील जिब्रान की यह कविता आप और हम सब शिक्षा कर्मियों एवं कथित शिक्षा प्रशास कों एवं प्रबंधकों के लिए उपयोगी होगी।

''तुम्हारी संताने तुम्हारी नहीं,
''जीवन, की अपनी अभिलाषाओं की
संताने हैं, वे तुम्हारे माध्यम से आती
है, निमित्त से नहीं, और यद्यपि वे
तुम्हारे साथ है, लेकिन तुम्हारी नहीं,
तुम उन्हें अपना अनुराग दे सकते
हो, विचार नहीं, क्योंकि उनके पास
उनके विचार हैं।
तुम अपनी काया को आवास दे सकते हो, आत्माको नहीं,
क्योंकि उनकी आत्माएं भविष्य के भवन में निवास करती हैं।
जहां तुम पहुंच नहीं सकते, स्वप्न में
भी नहीं। तुम उनकी तरह होने का
प्रयास कर सकते हो, किंतु उनको
अपने जैसा बनाने का प्रयत्न मत
करना, क्योंकि जीवन पीछे नहीं
लौटता,
न तो अतीत के साथ ठहरता है।

तुम वह धनुष हो, जहां से तुम्हारी संताने सजीव बाणों की तरह आगे की ओर प्रेषित है.....

क्या किया जा सकता है?–

शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कई कारक है। दे के शिक्षा संबंधी

सभी अध्ययन और सर्वेक्षण इंगित करते है कि शिक्षा के साथ विद्यार्थियों का स्तर भी अपक्ेा से नीचे है। इसके लिये सीधे शिक्षकों को दोषी ठहरा दिया जाता है और इस वास्तविकता से आँखे मूँदली जाती हैं कि विद्यालयों/महाविद्यालयों का बुनियादी ढाँचा और शिाक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था बेहद कमजो रहै। देष में एक लाख से अधिक विद्यालय ऐस हैं, जहाँ केवल एक शिक्षक है। आजादी 72 वर्श बाद भी यदि देष में शिक्षा की यह दषा और दिषा है तो स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार सकारात्मक अभियान में सभी का सक्रिय सहयोग लेना आवश्यक होगा। इस अभियान में सरकार, नागरिक, समाज संगठन, विषेषज्ञों, माता–पिता,सामुदायिक सदस्यों और बच्चों सभी के प्रयासों की आवश्यकता होगी। यही समय है जब स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के इस मुद्दे पर एक टीम इंडिया का गठन किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष –

स्कूली शिक्षा में सुधार के लिये शिक्षण विधियों, प्रशिक्षण और परीक्षण की विधियों में भी सुधार करने की जरूरत है। अभी शिक्षण विधियाँ राज्य स्तर से तय की जाती हैं, जिनमें कक्षा गत शिक्षण कोषलों को यातोन कार दिया जाता है या उन्हें परिस्थिति न्यमान लिया जाता है। शिक्षकों के अच्छे प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण का दायित्व कर्त्तव्य निष्ठ, योग्य औरक्षमतावान प्रशिक्षकों को सौंपा जाना चाहिये। शिक्षकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने, शिक्षण में नवाचारी पद्धतियों का विकास करने सहित परीक्षण/मूल्यांकं न की व्यापक प्रविधियाँ तय कर उन्हें व्यावहारिक स्वरूप में लागू करने की दिषा में कारगर कदम उठाने चाहिये

संदर्भ–

1.शुक्ल डॉ., अरविन्द कुमार
2.शर्मा, डॉ. रिंकू
3.जलान, विमल
4.मिर्जा,नियाज बेग

– इक्कीस वीं सदी का भारत मुद्दें,चुनौतियाँ एवं संभावनाऐं – 21वीं सदी में भारत की सुरक्षा, चुनौतियाँ परंपरागत एवं अ परंपरागत

– भारत की अर्थ नीति– 21वीं सदी की ओर

– शिक्षा की चुनौतियाँ जुलाई–सितम्बर 1999

''माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा, कैरियर संबंधी निर्णय और समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन''

Rachna
Scholar
Education Deptt. Baba Mastnath University, Rohtak
Mail id- rachnadisu@gmail.com , 8683904525
Name Of Guide Renu kansal

सारांश

भारतीय संस्कृति की प्राचीन विशेषता यह थी कि मनुष्य प्रकृति को ही अपना पुजारी मानता था मनुष्य पूर्ण रूप से प्रकृति पर ही निर्भर था। परंतु आज विज्ञान और कंप्यूटर की क्रांति के कारण मनुष्य की सोचने और समझने, कार्य करने की शैली बिल्कुल बदल चुकी है। जिसके फल स्वरुप मनुष्य की शैक्षणिकआकांक्षाओं में काफी बदलाव आया है, विद्यार्थियों के सामने प्राचीन समय की तुलना में आज के समय अधिक जटिल समस्याएं शिक्षा क्षेत्र और व्यवसाय क्षेत्र में आ रही है। व्यवसाय और कैरियर के चुनाव के लिए विद्यार्थियों को आज के समय अधिक प्रयास कर रहा है। विद्यार्थियों की अध्यनरत आदत किस प्रकार से इन सभी प्रवृत्तियों में बदलाव ला रही हैं। इसकी समझ के लिए यह शोध कार्य संपन्न किया गया है जिसमें अध्ययन आदतों के साथ विभिन्न शैक्षणिक घटकों की तुलना एक क्रमबद्ध और वर्णनात्मक विधि के माध्यम से की गई है। सांख्यिकी आंकड़ों के विश्लेषण के उपरांत यह परिणाम सामने आए कि विद्यार्थियों की शैक्षणिकआकांक्षा, समस्या समाधान की योग्यता और कैरियर चुनाव पर अध्ययन आदतों का कोई भी प्रभाव स्पष्ट रूप से सामने नहीं आया है।

प्रस्तावनाः–

शिक्षा सांस्कृतिक, धार्मिक तथा अध्यात्मिक उन्नयन के लिए भी अनिवार्य हैं। शिक्षा समाज की संस्कृति को जीवित रखती है, संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करती है, संस्कृति का परिमार्जन करती है, धर्म में व्यापत अन्धविश्वास, आडम्बर तथा ढकोसलों को प्रकाश में लाकर धर्म को कल्याणकारी बनाती है। आध्यात्मिक उन्नति तथा मानसिक शान्ति के लिए भी शिक्षा अनिवार्य है।शक्षा मानव जीवन को सुखमय बनाती है, इससे भौतिक सुख–सुविधाएं भी प्राप्त होती है। आज मानव ने प्रकृति पर जो विजय प्राप्त की है, वह भी शिक्षा परिणाम है। वैज्ञानिक उन्नति तथा सुख–सुविधा के लिए विज्ञान द्वारा प्रदत्त उपकरण शिक्षा की ही देन है।

शैक्षणिक आकांक्षा

एक मनुष्य अपने जीवन में कुछ ना कुछ उद्देश्य या अभिलाषा लिए हुए होता है । मनुष्यो के द्वारा अपने जीवन में जो उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं वह पूरे होंगे या नहीं यह उस मनुष्य के द्वारा किए गए प्रयासों पर निर्भर करते हैं। आकांक्षा में उपलब्धि प्राप्त करने की इच्छा होती है। शैक्षणिक आकांक्षा में उपलब्धि की इच्छा निहित होती है । शैक्षणिक आकांक्षा केवल इस बात का बखान करती है कि विद्यार्थी क्या प्राप्त करना चाहता है उसका लक्ष्य क्या है। यह यह नहीं बताती कि विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में कितना सफल हुआ या सफल नहीं हुआ या कितना सफल होगा । षैक्षणिक आकांक्षा तो केवल लक्ष्य को बताती है कि विद्यार्थी का लक्ष्य क्या है और वह क्या प्राप्त करना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा होती है और प्रत्येक देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था केअनुरूप ही शिक्षा व्यवस्था है ।हमारे देश में धर्म जाति वर्ग एवं स्थान के भेदभाव के बिना ही शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा शिक्षा में समान अवसरों की समानता है। हर व्यक्ति

के अंदर कोई ना कोई अभिलाषा ,इच्छा या लालसा अवश्य होती है । जिसे वह प्राप्त करना चाहता है । यह आकांक्षा या अभिलाषा उच्च या निम्न स्तर किसी भी स्तर की हो सकती है। इसी के आधार पर व्यक्ति का वर्गीकरण दो श्रेणियों में किया जा सकता है निराशावादी व यथार्थवादी किसी व्यक्ति में कुछ बन दिखाने की या कुछ कर गुजरने की चाह विद्यमान अभिलाषा ही आकांक्षा कहलाती है।

समस्या समाधान

व्यक्तिगत विभिन्नता बालकों में पाई जाने वाली विभिन्नता कि सार्वभौमिक सत्यता है।प्रत्येक बालक किसी ने किसी दृष्टि से दूसरे बालक से भिन्न होता है ।इसकी जांच विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के द्वारा समय–समय पर अनुसंधान के माध्यम से की गई है। वंशानुक्रम वातावरण पर हुए अनुसंधान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि संसार में कोई भी बालक ऐसा नहीं जो दूसरे बालकों से बिल्कुल सम्मानता रखता हो ।इसी प्रकार समस्याओं का समाधान करने की भी सभी बालकों की अलग–अलग क्षमता होती हैं और यह क्षमता हर बालक की अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं के अनुसार अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग हो सकती हैं ।कोई बालक सामाजिक समस्याओं को तुरंत सुलझा देता है तो कोई देर से उन्हें सुलझा पाता है। उसी अनुरूप कोई बालक यांत्रिक समस्याओं को सुलझाने में निपुण होता है। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में बालक की समस्या समाधान की योग्यता को मापना बालक के विकास के लिए महत्वपूर्ण हो गया है।

कैरियर निर्णय

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ नया सोचता है तथा नयी खोज चाहता है ।वह कुछ नया पाने के लिए अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए स्वयं को ऊंचा उठाने के लिए अपने कैरियर संबंधी आयामों को बड़ी ही सजगता के साथ चुनता है। उस बालक के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण निर्णय उसके लिए उसके सही कैरियर को चुनना है। वह स्कूली जीवन से ही अपने कैरियर को ध्यान में रखकर शिक्षा विषयों का चुनाव करता है। प्रशिक्षण लेता है ,उन्ही लक्ष्यों को निर्धारित करके नौकरी कार्य आदि को ध्यान केंद्रित कर अपने कैरियर निर्माण में आगे बढ़ता है। कैरियर बालक के जीवन में उस निर्णय का परिणाम है। जो ैक्षणिकव्यावसायिक व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयासों को प्रभावित करते हैं। यह एक बालक की अभिविन्यास काम करने की प्रतिबद्धता और बढ़ने और विकसित होने की इच्छा को निर्धारित करता है।कैरियर सीखने और काम करने की एक यथोचित यात्रा है। जो अलग–अलग बालकों के लिए अलग–अलग है।

अध्ययन आदत

व्यक्ति या बालक जब दूसरों के अनुभवों को निरीक्षण चिंतन व मनन के द्वारा ग्रहण करता है तथा उसका भरपूर लाभ उठाता है तो यह प्रक्रिया अध्ययन कहलाती है ।

किसी भी समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए नवीन विषय सामग्री संबंधित ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न विषयों क्रियाओं और परिस्थितियों के संबंध में जानने के लिए उद्देश्य पूर्ण क्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिए छात्रों के द्वारा जो प्रयास किए जाते हैं वे अध्ययन कहलाते हैं ।अध्ययन को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने अनुसार परिभाषित किया है ।

ली के अनुसार

किसी बात को सीखने के लिए व्यक्ति द्वारा विशेष रूप से किया जाने वाला उपयोग अध्ययन है।

मार्गन वडीज के अनुसार

अध्ययन सीखने का एक संपूर्ण प्रयास है ।आदत एक सीखा हुआ कार्य या अर्जित व्यवहार है जो स्वत होता है।

आदत

जो कार्य हमें पहले जटिल ज्ञात होता है और बाद में उस कार्य को जब हम सीख लेते हैं तो यह सीखा हुआ कार्य बाद में सरल हो जाता है ।इस प्रकार जब हम उस कार्य को जितनी बार दोहराते हैं वह उतना ही सरल हो जाता है कुछ समय के बाद हम उस पर कार्य को बिना दोहराए बिना ध्यान दिए ,बिना प्रयास किए, जो का त्यो करने लगते हैं ।इस प्रकार किए गए कार्य को हम आदत कहते हैं।

मरसेल के अनुसार

आदत व्यवहार करने की और परिस्थितियों व समस्याओं का सामना करने की निश्चित विधियां हैं। गैरेट के अनुसार व्यवहार को दिया जाने वाला नाम है जो इतनी अधिक बार दोहराया जाता हैं।

उदेश्य

- माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षाओं पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन
- माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की कैरियर संबंधी निर्णय पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव का अध्ययन
- माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों का प्रभाव का अध्ययन

परिकल्पना

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षाओं पर अध्ययन आदतों के प्रभाव में कोई अन्तर नही है।

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की कैरियर संबंधी निर्णय पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव में कोई अन्तर नही है।

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों में कोई अन्तर नही है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

साहित्य की समीक्षा

साहित्य समीक्षा में दो शब्द हैं साहित्य और समीक्षा। साहित्य शब्द परंपरागत अर्थ प्रदान करता है। यह भाषा के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। जैसे हिंदी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य ,संस्कृत साहित्य आदि। साहित्य की विषय वस्तु के अंतर्गत गद्य, काव्य ,नाटक ,उपन्यास ,कहानियां आती है। अनुसंधान के क्षेत्र में साहित्य शब्द किसी विषय के अनुसंधान के विषय क्षेत्र के ज्ञान की ओर संकेत करता है। जिसके अंतर्गत सैद्धांतिक, व्यवहारिक और तथाआत्मक शोध आते हैं । समीक्षा शब्द का अर्थ शोध के विषय क्षेत्र के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके दिखाना है कि उसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान होगाऋ साहित्य की समीक्षा का कार्य अत्यंत सर्जनात्मक एवं थकाने वाला है क्योंकि शोधकर्ता को अपने अध्ययन को युक्ति पूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को अपने ढंग से एकत्र करना होता है। संबंधित साहित्य की परिभाषा विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने अनुसार दी है। गुड बार और स्केटस के अनुसार योग्य चिकित्सक को औषधि के क्षेत्र में हुए नवीनतम अन्वेषण के साथ चलना चाहिए स्पष्टतया शिक्षा शास्त्र के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को ैक्षणिकसूचनाओं के साधनों और उपयोगो तथा उनके स्थापन से परिचित होना चाहिए।

संबंधित साहित्य का अर्थ :–

संबंधित साहित्य से अभिप्राय उन पुस्तकों पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित शोध ग्रन्थ आदि से है जिसके अध्ययन के द्वारा शोधकर्ता अपनी समस्याओं का चयन, परिकल्पनाओं का निर्माण एवं अध्ययन की रूपरेखा निश्चित करता है। शोधकर्ता जिस क्षेत्र में अनुसंधान करता है उस क्षेत्र में पहले भी कई लोगों ने अनुसंधान किया होगा। इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता। यदि इस प्रकार का साहित्य उपलब्ध है तो उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। संबंधित साहित्य से पता चलता है कि पहले शोधकर्ता किन–किन उपकरणों का प्रयोग किया है। संबंधित साहित्य से यह भी पता चल जाता है कि समस्या के किन–किन पहलूओं पर अनुसंधान हो चुका है और किन–किन पहलूओं पर अनुसंधान किया जा सकता है।

शैक्षणिक आकांक्षा

1 कौर 2012 में अमृतसर जिले के सरकारी व निजी विद्यालयों के संदर्भ में बुद्धि के स्तर,लिंगऔर स्कूल के प्रकार के संबंध में छात्रों के जीवन में शैक्षणिक आकांक्षाओं के उद्देश्यों पर शोध किया शोधकर्ता ने अमृतसर जिले के 200 छात्रों पर शोध किया जिसमें से 100 छात्र सरकारी विद्यालयों से व100 छात्र निजी विद्यालयों से लिए गए शोधकत्री ने अपने शोधार्थ वर्णनात्मक सर्वेक्षण डिजाइन का अनुसरण किया एवं

परिणाम या निष्कर्ष हेतु मीन ,एस डी, टी वैल्यू जैसी विधियों का उपयोग किया। निष्कर्ष में पाया गया कि स्कूल के प्रकार और लिंग के संबंध में शैक्षणिक आकांक्षा में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है जबकि शैक्षणिक आकांक्षाओं और छात्रों की बुद्धि के स्तर के बीच महत्वपूर्ण अंतर है इससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न स्तरों का छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन की आदत

1 नंदिता और तनीमा (2004) ने शैक्षणिक उपलब्धि और अध्ययन की आदतों के विभिन्न आयामों के बीच संबंध का पता लगाने के उद्देश्यों के साथ शैक्षणिक उपलब्धि के संबंध में अध्ययन की आदतों व अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण पर शोध किया उन्होंने अध्ययन की आदतों एवं अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण के बीच संबंध जाने का भी प्रयास किया उन्होंने अपने शोध में पाया कि अध्यन आदतों के9 आयामों में से 5 आयामों में शैक्षणिक उपलब्धि के साथ सकारात्मक और अत्यंत महत्वपूर्ण संबंध है तथा बाकी 4 आयामों में यह संकेत दिया कि ैक्षणिकउपलब्धि के साथ कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं था आगे यह पाया गया कि अध्ययन की आदतों एवं पढ़ाई के प्रति दृष्टिकोण के मध्य संबंध का गुणांक 0.208 था इसने इंगित किया कि अध्ययन की आदतों और अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण के बीच एक सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध था यह पाया गया कि उनकी अधीन की आदतें एक निश्चित सीमा तक उनकी शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती हैं।

समस्या हल की योग्यता

1 भट्ट(2014) ने समस्या हल की योग्यता पर सीखने की शैलियों के प्रभाव का क्रमबद्ध रूप में अध्ययन किया परिणाम की शुद्धता के लिए बड़ा प्रतिदर्श के रूप में निम्न व उच्च विद्यालयों के 598 विद्यार्थियों का चयन किया अध्ययन की विधि के लिए वर्णनात्मक विधि का चुनाव किया गया परिणाम से स्पष्ट हुआ कि छात्रों की समस्या हल की क्षमता सीखने की शैली से प्रभावित है इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ जिन विद्यार्थियों के पास सीखने की शैलियों की ग्रहण दक्षता थी ऐसे विद्यार्थी अन्य से श्रेष्ठ थे।

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले एक सुव्यवस्थित योजना बनाना बहुत जरूरी है। योजना बनाना किसी भी कार्य का प्रथम अध्याय है योजना को किसी भी कार्य का प्रथम अध्याय इसलिए कहा जाता है क्योंकि किसी भी कार्य की सफलता योजना निर्माण और योजना के क्रियान्वयन पर आधारित है शोध कार्यों के गुणात्मक विकास के लिए यह सोपान सबसे महत्वपूर्ण है समस्या के चयन के पश्चात का कार्य, योजना पर ही आधारित होता हैं। एक शोधकर्ता अपने अनुसंधान को प्रारंभ करने से पूर्व उसके सभी अपक्षों से सम्बन्ध में पहले ही निर्णय लेकर नियोजन करता है शोध प्रारूप के अंतर्गत क्रमबद्ध रूप से प्रत्येक सोपान के संबंध में विवरण दिया जाता है जिसे शोध प्रक्रिया कहते हैं शोध प्रारूप में अनुसंधान के प्रमुख पक्षों के आधार पर ढांचा विकसित किया जाता है जिसके तार्किक क्रम को महत्व दिया जाता है शोध के उद्देश्यों तथा परिकल्पनाओं के आधार पर शोध का प्रारूप तैयार किया जाता है शोध प्रारूप के अधोलिखित अवयव को शामिल किया जाता है। अनुसंधान विधि इस अध्ययन में शोध के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान शोध कार्य के लिए शोधकर्ता ने बहुस्तरीय प्रतिदर्श विधि का प्रयोग किया है। जिसमें चयनात्मक इकाइयों के वर्ग निम्नलिखित है ।

क्रम	विद्यालय का नाम	छात्र	छात्रा	कुल छात्र

संख्या				
1	राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय भिवानी	100	0	100
2	राजकीय कन्या माध्यमिक विद्यालय भिवानी	0	100	100
3	राजकीय उच्च विद्यालय उमरावत भिवानी	50	50	100
4	राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कोट भिवानी	100	50	150
5	राजकीय उच्च विद्यालय वडाला भिवानी	0	50	50
6	राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कायला भिवानी	50	50	100
कुल		300	300	600

सांख्यिकी

शोध सांख्यिकी परिच्छेद के इस भाग में सांख्यिकी संबंधी शोध कार्य की जानकारी दी गई है प्रस्तुत शोध एक वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य है जिसमें व्याख्या तथा विवेचन के लिए सांख्यिकी संबंधी प्रविधियों का उपयोग करना महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है।सांख्यिकी एक वैज्ञानिक विधि है जिसका संबंध सर्वेक्षण एवं प्रयोगों के आधार पर प्राप्त आंकड़ों के संकलन, वर्गीकरण, विवेचन तथा विवरण से है। ैक्षणिकअनुसंधान में सांख्यिकी का मुख्य उद्देश्य एक न्यादर्श से बड़ी जनसंख्या के विषय में सामान्यीकरण का ज्ञान करना है। प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त की गई सांख्यिकी निम्न प्रकार से है।

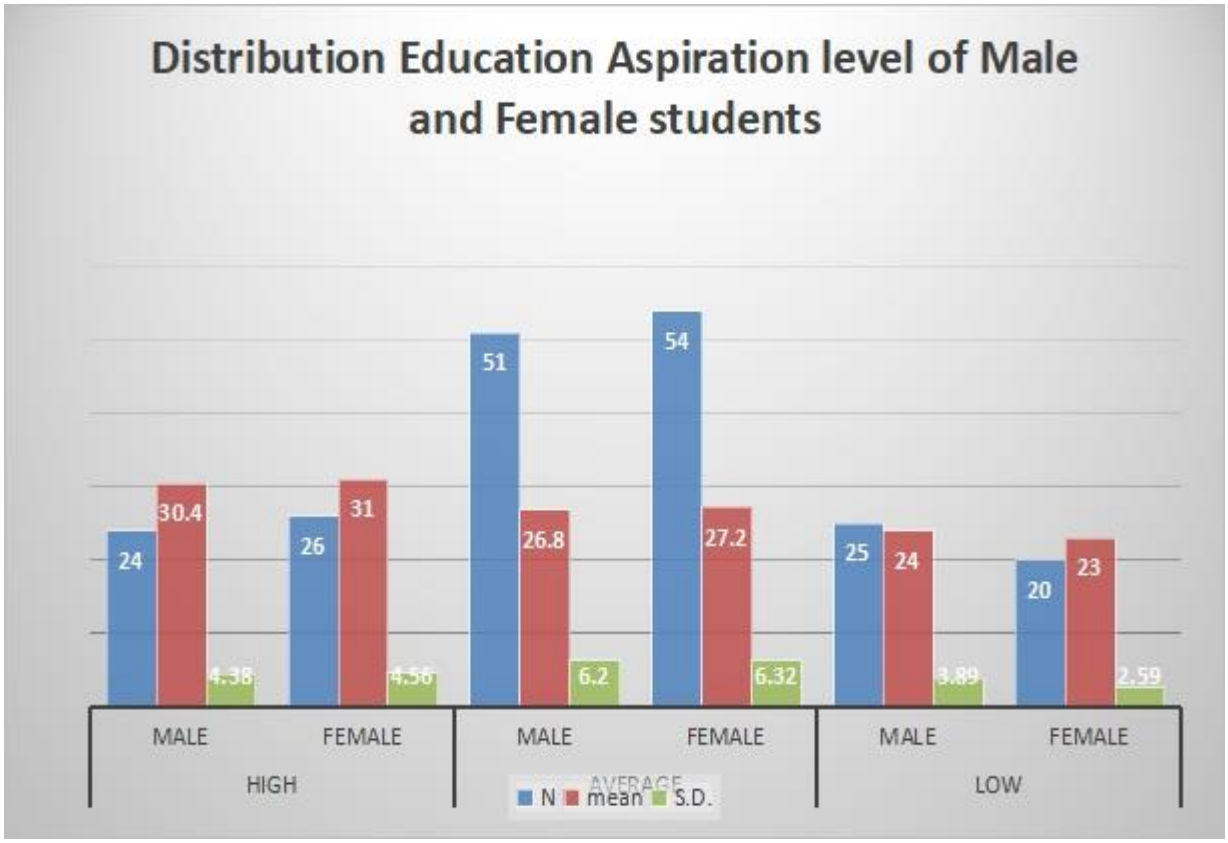
HO1

माध्यमिक विद्यालय के छात्रों व छात्राओं की षैक्षणिक आकांक्षाओं में कोई अंतर नहीं है।

माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्र व छात्राओं की 'षैक्षणिकआकांक्षाओं की तुलना करने के लिए, डॉ वी0 पी0 शर्मा और डॉक्टर अनुराधा गुप्ता दोबारा रचित शैक्षणिक आकांक्षा मापनी का प्रयोग करके आंकड़े प्राप्त किए गए जिनका सांख्यिकी विश्लेषण सांख्यिकी आकङो का प्रयोग करने के उपरांत टी टेस्ट के माध्यम से दोनों समूह के मध्य संबंध को जांचने के लिए सार्थकता स्तर 0.05 और 0.01 पर तुलना की गयी।

	Level education aspirtation	Group	N	mean	S.D.	t-test	Significant level 0.05	Significant level 0.001	Degree of freedom
1		Male	40	25.7	5.84				
2	High	Female	48	25.4	5.94	0.25	1.99	2.37	86
3		Male	96	24.5	7.1				
4	Average	Female	111	24.8	7.56	0.66	1.97	2.66	205
5	Low	Male	64	22.2	6.08	1.45	1.98	2.63	103

6		Female	41	20.2	5.9				



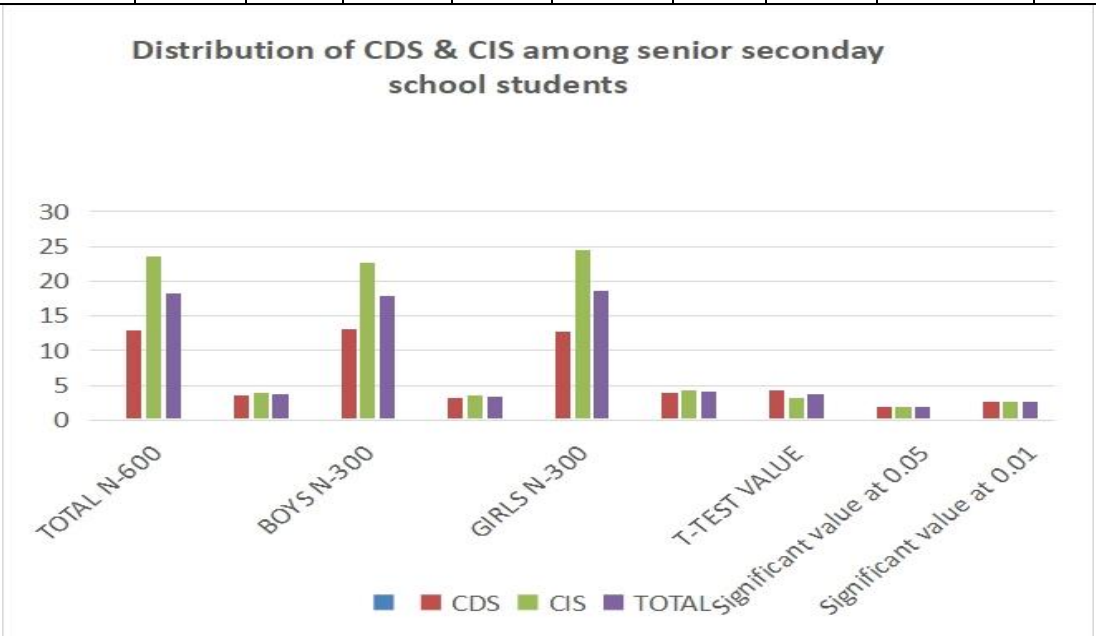
HO2

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों व छात्राओं की कैरियर के निर्णय लेने का अंतर नहीं है ।

•कैरियर निर्णय लेने में सक्षम और असक्षम माध्यमिक विद्यालयों के छात्र और छात्राओं का मापन डॉक्टर किरण दीप सिंह द्वारा रचित सीडीएमएसकेएस मापनी की सहायता से सारणी 4.28 में आंकड़ों को तीन श्रेणियां में निर्णय लेने में सक्षम,असक्षम और असमंजस्य की स्थिति में बांटा गया। इस परिकल्पना की सत्यता की जांच के लिए आंकड़ों का माध्य और शतांश मान की सहायता से दोनों समूह की तुलना की गई। मध्यमान में आय अंतर की जांच के लिए सार्थकता स्तर 0.05 और 0. 01 पर टी मान निकालकर तुलना की गई जो सारणी 4.28 में दर्शाई गई है।

सारणी 4.28

CAREER DECISION MAKING SCALE	TOTAL N-600		BOYS N-300		GIRLS N-300		T-TEST VALUE	Significant value at 0.05	Significant value at 0.01	DF
	MEAN	S.D.	MEAN	S.D.	MEAN	S.D				
CDS	12.93	3.58	13.1	3.27	12.76	3.86	4.2	1.96	2.59	598
CIS	23.6	3.95	22.7	3.54	24.5	4.36	3.2	1.96	2.59	598
TOTAL	18.265	3.765	17.9	3.405	18.63	4.11	3.7	1.96	2.59	598



माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों व छात्राओं की कैरियर के निर्णय के परिणाम

सारणी संख्या 4.28 में माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के करियर संबंधित निर्णय लेने की क्षमता में सक्षम, असमंजस्य और सक्षम स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत मापने के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने वाले छात्र और छात्राओं के कैरियर संबंधित निर्णय मापने से प्राप्त आंकड़ों का मध्य निर्णय क्षमता के लिए 13.1 और 12.76 है तथा मानक विचलन 3.58 और 3.86 है। और ए निर्णय संबंधित मापने में माध्यमिक विद्यालयों में अध्यनरत छात्र और छात्राओं का मध्य क्रम से 22.7 और 24.3 है तथा मानक विचलन 3.45 और 3.54 हैं।

मध्यमान के अंतर की सार्थकता जांच करने पर तिमान का मृत मूल्य 0.34 प्राप्त हुआ ज्योति के 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी मूल्य से कम है और 0.01 साक्षरता स्तर पर सारणी मूल्य से भी काम है दोनों ही स्तरों प्रकल्पित तिमान कम है जो दोनों ही सार्थकता स्तरों के मान से काफी कम है। फतेह हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्र व छात्राओं का कैरियर लेने की क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया इसलिए परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालय के छात्र और छात्राओं के कैरियर संबंधित निर्णय लेने की क्षमता में कोई भी अंतर नहीं है दोनों ही एक समान रूप से अपने भविष्य संबंधित निर्णय के लिए सजग है।

परिणाम ;

हरियाणा राज्य के भिवानी जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत सभी छात्र और छात्राओं की ौक्षणिकआकांक्षा, समस्या समाधान करने की क्षमता, कैरियर संबंधित निर्णय पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन से पता चला है कि इस स्तर पर अध्ययन आदतों का प्रभाव लगभग सभी शैक्षणिक कार्यों पर ने के बराबर है और समस्या समाधान करने की क्षमता पर भी इसका प्रभाव दृष्टि को चरण नहीं हुआ है जबकि करियर निर्णय में छात्र और छात्राओं में थोड़ा सा प्रभाव यहां पर दिखाई दिया है। शहरी छात्र , शहरी छात्राओं से और ग्रामीण ग्रामीण विद्यार्थियों से कैरियर संबंधित निर्णय लेने में अधिक सक्षम है। इसका करनी यह है कि शहरी क्षेत्र में रहने वाले छात्र अधिक व्यवसायों की जानकारी रखते हैं

''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्य क्रम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''

21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण की आवश्यकताएं, संभावनाएं एवं चुनौतियाँ

श्री करतार सिंह, मों. नं.9461583840
ई–मेल–kartarsingh81@yahoo.co.in
श्री विकास कुमार मों नं. 9529284328
ई–मेल :&mitharwalvikash1996@gmail.com
(सहायक आचार्य) रामकिशन जुगल किशोर बरासिया शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय सूरजगढ़,झुन्झुनू(राज.)

सारांशः–

वर्तमान समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त प्रकरण 21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में भारतीय करण की आवश्यकता, संभावनाए एवं चुनौतिया प्रासंगिक है क्योकि वर्तमान में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में अनेक ऐसी कमियां है जिनमें सुधार की अंत्यन्त आवश्यकता है। समय के साथ–साथ लचिले एवं रचनात्मक रवैये को अपनाते हुए ऐसी प्रकिया कापालन किया जाए जिस से न केवल वर्तमान अपितु विधार्थियोंके भविष्य को कैन्द्र बिन्दु मानकर उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाए। वर्तमान में हमें सोचना चाहीए की किस प्रकार एक भावी शिक्षक को शिक्षा प्रदान करे।जिससे उसमें रचनात्मकता के गुणों कोबढ़ाने के लिए हमें उसे संचार व तकनीकि के क्षेत्रों प्रदान कर सके क्योंकि जब तक एक शिक्षक स्वयं तकनीकि तथा संचार के क्षेत्रं निपूर्ण नही होता है तब तक वह वर्तमान परिप्रेक्ष्य के साथ–साथ भविश्य के उदेश्यों को भी प्राप्त करने में सफल नही हो सकता है।

वर्तमान प्रकरण को भारतीय परिपेक्ष में देष के वर्तमान यस्सवी प्रधानमंत्री ''श्रीमान नरेन्द्र मोदी''का कथन भी प्रमुख है।उन्होनें कहा कि''21वीं सदी का भारत जिन लक्ष्यों के साथ आगे बढ़ रहा है उन्है अर्जितकरने में हमारी शिक्षा प्रणाली की बहुत बड़ी भूमिका है।''
यह कथन प्रधानमंत्री जी ने अखिल भारतीय शिक्षा समागम के महत्व पर जोर देते हुए शिक्षा के लिए चर्चा एवं संवादको महत्वपूर्ण मानते हुए कहा था।

अतः अंत में यह कहना उचित होगा कि 21वीं सदी की शिक्षा प्रणाली का उदेश्य विधार्थी को न केवल किताबी ज्ञान देना है बल्की उसमें ऐसी अभिक्षमताओं का विकास करना भी है जिनके द्वारा वह आज के युग में होने वाले पूर्वानुमानित व अप्रत्याशित परिर्वतों से उत्पन्न चुनौतियों का समाना कर सके व एक कुषल नागरिक बन कर अपने समाज को एक सही दिषा देने में सहायता प्रदान कर सके।

परिचयः–

प्राचीन काल में भारत शिक्षा का सर्वोच्च केन्द्र रहा है। तक्ष शिला, नालन्दा आदि ऐसे स्थान थे जहां पर भारत के विभिन्न राज्यों के अलावा विदेशों से भी विधार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इसका कारण भारत की शिक्षा व्यवस्था का उत्कृष्ट व शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों का सुव्यस्थित होना था यद्यपि प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तरह अध्यापक प्रशिक्षण का कोंइ विधिवत विधान नही था लेकिन इसका अभिप्राय यह नही है कि कोंइभी व्यक्ति अध्यापन कार्य कर सकता था केवल वही व्यक्ति अध्यापक बन ताथा या उसेही शिक्षादेने का अधिकार दिया जाता था जिसे अपने विषय पर पुरा अधिकार हो तथा जो चारित्रिक व स्वभाव से ही शिक्षक होता था। उस समय अध्यापक को तैयार या प्रशिक्षित नही किया जाता था। इसका आशय यह है कि वह अपने जीवन के अनुभवों से सिखकर ही अध्यापक बनता था और अपने जीवन की वास्तविक परिस्थितयों के अनुभवों से ही वह वास्तविक प्रशिक्षण प्राप्त करता था।

आवश्यकताएँः–

किसी भी देश भविश्य उस देश के अध्यापकों के हाथ में होता है क्योंकि किसी देश का भविश्य उस देश के बच्चें होते है और इन बच्चों/विधार्थियों को सही आकार देने का कार्य एक शिक्षक का ही होता है। अगर यह शिक्षक सही ढंग से प्रशिक्षित होगा तभी देश के भावी भविश्य का निर्माण कर उपयेागा कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर से नही उठ सकता। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी इसके बारें में बताया गया है कि किसी भी समाज में सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि का पता उस समाज में अध्यापकों के स्तर से पता चलता है अध्यापक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धूरी है। अतः अध्यापकों के निर्माण के लिए उचित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता से पहले व स्वतंत्रता के पश्चात् अध्यापक शिक्षा को सही ढ़ग से लागू करने व उसे बेहतर बनाने के लिए अनको प्रयास हुए हैं। परंतु इतने प्रयासों के बाद व अनेक आयोगों की सिफारिशों के बाद भी अध्यापक शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है इस कारण आज शिक्षक शिक्षा में भारतीयता की आवश्यकता महसूस हो रही है। वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा को प्रभावी रूप प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि इसमें भावी अध्यापकों को भारतीय संस्कृती एवं इतिहास के बारें में पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाए ताकि छात्रों को भविष्य के लिए तैयार किया जा सकें।

छात्र किसी भी देश का भविश्य होत है किसी भी देष के बच्चों की स्थिति एवं विकास को देखकर उस देश के वर्तमान तथा उस के भविष्य की कल्पना की जा सकती है ऐसही दृष्टि काण रखते हुऐ एकोठारी आयोंग ने कहा कि देश का भविष्य कक्षा–कक्ष में तैयार हो रहा है तथा नई शिक्षा नीति 2020 में कक्षा–कक्ष की उपयोगिता को और अधिक प्रभावि बनाने पर बल दिया गया है देष के भविश्य को आकार देने का कार्य शिक्षक का है यदि शिक्ष कस्वयं सुशिक्षित एवं प्रशि षक्षित है तो वह देष के भविश्य को सही आकार दे पायेगा अन्यथा वही उसे विकृत कर देगा । इस प्रकार देखें तो बच्चें देश का भविश्य है और इस भविष्य का निर्माण कर्ता शिक्षक है। शिक्षक के महत्व पूर्ण स्थान को देखते हुए विभिन्न आयोंगा एवं समिति योंने शिक्षक के प्रशिक्षण पर बल दिया। योग्य व कुशल अध्याप कों के निर्माण के लिए ही अध्यापक–शिक्षा का प्रावधानकिया गया, जिसे शिक्षण महाविधालयों द्वारा दिया जाता है।

''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''

वर्तमान अध्यापक शिक्षा के प्रभावी प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक है की इसमें भारतीयता को समाहित किया जाए जो कि निम्न उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

अध्यापक शिक्षा में विधार्थियों को देष व समाज के विभिन्न दार्शनिक विचार धाराओं का ज्ञान करवाया जाता है। अध्यापक को अपना कार्य कुषलतापूर्वक करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह जिस समाज व देष में बच्चों को शिक्षा दे रहा है उसका दर्षान कैस है? क्योंकि किसी देष के समाज का दर्शन ही वहां के लागों के जीवन के उद्देय व उनकी आवश्यकताओं की प्राप्ति में सहायक होता है। जब अध्यापक समाज की विभिन्न विचारधाराओं से परिचित होता है तो शिक्षा द्वारा निर्धारित उदेश्यों को अधिक कुषलता के साथ प्राप्त कर सकता है।

अध्यापक को शिक्षण में कुषल बनाने के लिएः–

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में दौरान अध्यापक को शिक्षण में कुषलता प्राप्त कराने के उदेश्य से विभिन्न शिक्षण विधियों का ज्ञान करवाया जाता है इसके लिए छात्रध्यापाकों के द्वारा कक्षा में शिक्षण अभ्यास जिसे सुक्ष्म शिक्षण कहा जाता है व विद्यालयों में भी बच्चों को शिक्षण का अभ्यास करवाया जाता है छात्र–अध्यापक विभिन्न शिक्षण विधियों के अभ्यास के द्वारा अपने शिक्षण कार्य को कुषलबना सकता है। इसके अलावा अध्यापको को भारतीय संस्कृति एवं इतिहास की जानकारी होने पर छात्रों में अधिगम कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न की जा सकती है जो की उनके भविश्य निर्माण एवं व्यावहारिक पक्ष के विकास के लिए सहायक है। छात्रों को भी भारतीय संस्कृति का ज्ञान होगा जो कि उन्हें भविश्य में विकास करने के लिए सहायक होगा।

अनुदेषनात्मक सामग्री के ज्ञान के लिएः–

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के एक भाग में विधार्थियों को

अनुदेषात्मक सामग्री अर्थात जिस सामग्री का प्रयोग वह शिक्षण के दौरान कर सकता है उसका ज्ञान दिया जाता है। अनुदेशात्मक सामग्री के प्रयोग से अध्यापक अपने अध्यापन को कार्य पूर्ण एवं प्रभावशाली बना सकता है भारतीयता का समावेष होन पर अध्यापकों को अनुदेषन किया को पूर्ण करने में आसनी होगी। इसके अलावा अध्यापक सरलता से छात्रों का अधिगम कार्य पूर्ण करापायेगा। छात्र भी अपनी रूचि के अनुसार प्रकरणों के बारें में अनुदेषन प्राप्त कर सकेंगें।इसलिए आवश्यक है कि वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा प्रणाली में भारतीय परिवेष को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है ताकि अध्याप को एवं छात्रों को इस प्रकिया का उचित लाभ मिले।

21वीं सदी में शिक्षा की संभावनाएंः–

शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में भारतीय विचारधारा की सुदीर्घ परम्परा वैदिक काल से निरंतरता के साथ चली आ रही हैं वैदिक काल में जहां गुरूकुलशिक्षा पद्धति प्रचलित थी वहीं निरंतर शिक्षा के क्षेत्रमें परिर्वतनों का दौर जारी है। देष की आजादी से पहले देष की शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट व्यवहारिक व सर्वथा उपयोगी खाका खींचने का महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रपिता माहात्मा गाँधी जी ने किया गाँधी ने हिन्द स्वराज में लिखा ''अंग्रेजी बिल्कुल ही न पढ़ने से हमारा काम चले ऐस समय नही रहा अतः जो लोग अंग्रेजी पढ़ चुकहै वे इस शिक्षा का सदुपयोगकरे। जहां जरूरी मालूम हो वहां उसे काम में ले'' इस प्रकार गाँधीजी ने भी अंग्रेजी शिक्षा को कमतर नही आंका । ''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यकम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां'

21वीं सदी की भारतीय शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप इन्ही सब बदलावों को साथ लेकर बना है। सदी की शुरूआत ही बहुराष्ट्रीयकरण, आर्थिक उदारीकरण और इनके कारण आयी सूचनाकीतिके व्यापक प्रभावों को लेकर हुई। मैकाले के साथ बदली पंरम्परागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था को एक बार फिर बदलने का कार्य विश्व ग्राम संस्कृती नेकिया। विज्ञान, दर्षनऔर मानवी कि के विषयों की प्रांसगिता पर'? 'चिन्ह लगने लगे और अनेक नये विषयों, पाठ्यकमों, शिक्षण–प्रषिक्षण प्रविधियों और तकनिकों का आगमन शिक्षा व्यवस्था में हुआ।

प्रबंधन और तकनीकि उच्च शिक्षा हेतु स्थापित भारतीय संस्थान (IIM) व 09 भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान देष में ही नही अपितुविदेषों में भी भारतीय साखका ढ़का बजा रहे है। इन संस्थानों से पढ़ कर निकले छात्र अपने देष में नही अपितु विदेषों में भी उच्च पदो पर कार्यरत है।

21वीं सदी में भारतीय शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग के रूप में सूचना तकनीकि, संचार तथा प्रबंधन के अध्यन को व्यवस्थित रखने का प्रयास किया जाना चाहिए क्योंकि ये है जिनमें निरंतर भविश्य की संभावए है।

शिक्षक शिक्षा कार्यकम के भारतीय करण की चुनौतियाँः–

वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीय करण की निम्न चुनौतियाँ हो सकती है–

छात्राध्यापको के प्रवेष की समस्याः–

अध्यापक शिक्षा में प्रवेष की समस्या विकट रूप में शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेष के लिए जो छात्र आते है वे शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से ही न होते है एवं उन्हे रोजगार नही मिल पाता है। इसमें शिक्षा का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेष संबंधी नियम कड़े किये जाये तथा बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि के द्वारा चयन कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

अनुपयुक्त पाठ्सकमः–

अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यकम अत्यंत संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रषिक्षण की अवधि में सैद्धान्तिक पक्ष पर ज्यादा जोरदिया जामा है और अभयासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों, दृष्टि कोणों, कल्पना शिक्त, सजृन शीलता, नेतृत्व आदि को परिभर्जितकरने पर कोई ध्यान नही रहता है। पाठ्योजना की पुरानी परम्परा ही लागू है। प्रशिक्षण में

अर्जित ज्ञान अध्यापकगण वास्तिविक परिस्थितियों में प्रयोग ही जाते है। प्रषिक्षण पाठ्यक्रम में आमूलचुल परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है जिससे प्रशिक्षण काल में प्राप्त ज्ञान का अध्यापकगण वास्तविक जीवन में प्रयोगकरे एवं अपने शिक्षण को प्रभावषाली बनाये।

☐☐ अच्छे शोधकार्य का आभावः–

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्रमें भारत में किये गए अनुसंधान कार्यो की विषाल श्रृखंला है लेकिन अच्छे अनुसंधान कार्या का आभाव सा प्रतीत होता है भारत वर्ष में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्रमें किया जाने वाला शोधकार्य अभी भी अपनी शैषवा वस्था में प्रतीत होता है विदेषों में विषेष कर ब्रिटेनएवं अमेंरिका मे किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधान कर्ताओं का प्रिय विषय रहा है नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में आभाव ही रहा है खेदका विषय है कि शिक्षा की स्नात्कोतर व अनुसंधान

''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''

उपाधियों से तथा कथित महान प्रोफेसर शिक्षा को कोई मौलिक ज्ञान नही दे पाये आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेष को ध्यान में रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्रमें मौलिक अनुसंधान किये जाए जिससे सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनों की गुणवता बढ़ायी जा सके।

☐☐ मानवीय मूल्यों की अवहेलनाः–

प्रशिक्षण में केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्रा ध्यापक अपने विचारों मुल्यों आदि पर ध्यान नही देते है इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इस कारण वह अपनी छोटी–छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में मर्थर हते है। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

☐☐ अनुदेशनात्मकसामग्रीकेज्ञानकेलिएः–

प्रशिक्षण की अवधि में सिद्धान्त को ज्यादा महत्व दिया जाता है कुछ शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण संस्थाओं में तो शिक्षण अभ्यास के केवल दो सप्ता हमें पूरा कर दिया जाता है और इससे सिर्फ औचारिक किया मात्र समझा जाता है अतः शिक्षा के व्यवहारिक पक्ष की पूर्ण रूप से अवहेलना की जाती है यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षा विभागों के अध्यापक भी इस समस्या की तरफ ध्यान नही देते हें

स्वतंत्र वातावरण का आभावः–

शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों में आज भी छात्रा ध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नही किया जाता है छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते है तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हे डराते रहते है। यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है।

पृथकता की समस्याः–

यह समस्या अध्यापक शिक्षा में तीन रूपों में व्याप्त है प्रथम विश्वविद्यालय एवं कॉलेज के अन्य विभागों में पृथकता, दूसरें शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों से अलगाव, तीसरा प्रषिक्षण महाविद्यालयों में प्राथमिक व माध्यमिकस्तरों में परस्पर सहायोंगका आभाव पाया जाता इस से एक विभाग के अध्यापक दूसरें स्तर क अध्यापकों को हेयकी दृष्टि से देखने लगते है यह अध्यापक हेुत बहुतअहित कर है कोठारी आयोग इस समस्या को हल करने हेतु जोर दार सिफारिश की है।

व्यवसायिक प्रशिक्षण में सुधार की समस्याः–

शिक्षा विभागों के शिक्षकों में व्यवसायिक कुशलता में कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर कमजोर हो रहा है साथ ही साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोरदिया जाता है वे अत्यंत परम्परागत एवं कटिबद्ध है। अतः व्यवसायिक शिक्षण को सजीव बनाना जरूरी है।

''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं

चुनौतियां''

प्रदर्शनात्मक विद्यालयों का अभावः–

शिक्षा विभाग की मान्यता का आधार विभाग से संबंध प्रदर्षन ात्मक विद्यालय की सुविधा होनी चाहिए जिन विभागों के पास अपना शिक्षण विद्यालय नही है उन्है मान्यता हीन दी जाए क्योकि दिन–प्रतिदिन शैक्षिक प्रयोगों तथा अध्ययन के कार्य में कठनाई होगी बहुत कम शिक्षा विभाग ऐसे है जिनके पास अपना प्रदर्शन ात्मक विद्यालय है जिस प्राक्र विज्ञान विषय प्रयोंगशाला के बिना नही पढ़ाया जा सकता ठीक इसी प्रकार अध्यापक शिक्षा के लिए प्रदर्शनात्मक विद्यालय है।

दोषपूर्ण अध्यापन विधिः–

शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रारूः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। वह परम्परागत है। भाषण निरर्थक होते है। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रू‍प में बैठे रहते है। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नही होता। अच्छा अध्यापक विचारों से पूर्ण होना चाहिए। उसे आवश्यकतानुस ार गतिशील अध्यापन विधियों का उपयोगकरना चाहिए। अतःसामूहिक वाद–विवाद, विचार–विमर्श, विचार–गोष्ठी,सम्मेलन वश तथा प्रश्नोत्तर विधि आदि का समय पर आयोजन आवश्यक है। मेरठ विश्वविद्यालय ने इस संबंध में महत्वपूर्ण कदम उठाये है। महाविद्यालयों में प्रत्येक कालांष 60 मिनट का कर दिया गया है। उदेद्दय यही है कि अध्यापक द्वारा भाषण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श संभव हो और छात्र उसमें सक्रिय रूप से भग ले सके। छात्रों के मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है।

दोषपूर्ण परीक्षा प्रणालीः–

अध्यापक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषय निष्ठ है तथा ज्ञान की सही परीक्षा नही करती। शिक्षण में प्रारूप छात्राध्यापको को छोटी–छोट बातों पर धमकी दी जाती है। कहीं–कहीं अध्याप कों में बदले की भावना पायी जाती है। विभागों में अध्यापक स्वयं भी आपसमें लड़ते–झगड़ते है। इस का बुरा प्रभाव छात्राध्याप कों पर भी पड़ता है। उनमें सहयोग ,समूह भावना तथा एकता का सर्वधा अभाव है। वास्तव में शिक्षा विभाग आदर्श होने चाहिए। छात्राध्यापकों का मूल्यांकन पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। उसमें सिफारिषया द्वेष आदिका कोई भी स्थान न हो।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं काआभवः–

बहुत कम विभाग इस प्रकार की क्रियाआके संगठित करने में रूचि लेते है। अधिकतर स्थानों पर पाठ्यक्रम की खानापूर्ति करना ही सब कुछ है। पाठ्यक्रम में निर्धारित शारीरिक शिक्षा स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है इस प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापको से स्कूलों में विभिन्न क्रियाओं को संगठित करने की क्या आष की जा सकती है। अतः इसमें सुधार की आवश्यकता है।

''21वीं सदी में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीय करण की आवश्यकताएँ, सम्भावानाएं एवं चुनौतियां''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपूर,बीना एण्ड पाण्डे 1998, शिक्षा के दार्शनिक आधारः आगरा,विनोद पुस्तक मंदिर।
2. भट्टाचार्यडां. जी.सी (2012 अध्यापक शिक्षाःश्री विनोद पुस्तकमंदिर, आगराः
3 पाठकपी.डी. 2012 भारतीय समाज में शिक्षा व शिक्षक विनोद

पुस्तकमंदिर नई–दिल्ली।

4. वालिया जे.एस. 2012 शिक्षा के दार्शनिक आधार पालपब्लिकेषन, जालधंर।
5. सिंहएन.पी. 2003 शिक्षा के दार्शनिक आधार, आर.लाल.बुकडिपो,मेरठ।

प्राचीन भारतीय शिक्षा और वर्तमान शिक्षा : एक दृष्टि एवं सुझाव

डॉ. जगदीश प्रसाद कड़वासरा
(सहायक आचार्य) शिक्षा
ग्रामीण महिला महाविद्यालय, शिवसिंह पुरा सीकर
Email: ID jpgkarwasara@gmail.com

श्रीमती बबलेश
(सहायक आचार्य) शिक्षा
आदर्श शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय देउ (राज.)

शिक्षा ही वह साधन है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगत में रहने वाले जीव जन्तुओं से मनुष्य को अलग करता है। यदि शिक्षा न हो तो मनुष्य व जानवरों में कोई भेद ही नहीं रहेगा। शिक्षा का मूल केन्द्र ही भारतीय साहित्य जिनमें, वेद, उपनिषद को माना जा सकता है। वैदिक काल से ही शिक्ष का अविर्भाव होना और इसका आगे प्रचार–प्रसार करना शिक्षा के लिए एक महत्पूर्ण भाग है। चूंकि शिक्षा सतत् और प्रत्येक उम्र के साथ चलती रहती है तभी तो वह मनुष्य में वांछित व्यावहारिक परिवर्तन ला पाती है। अतः आज हमें प्राचीन भारतीय शिक्षा को पहचान कर वर्तमान शिक्षा पर दृष्टिपात करने की आवश्कता है। आवश्यकता इस बात की भी है कि हम यह ज्ञात करें कि भारतीय प्राचीन शिक्षा प्रणाली में वह कौनसे निहितार्थ थे जिन के माध्यम से भारत विश्व गुरु के शिखर तक पहुँच पाया और वर्तमान शिक्षा प्राणाली में वह कौनसे अवरोध आ गये हैं कि हमें पुनः उस शिखर तक पहुँचने के प्रयास करने पड़ रहे हैं? वर्तमान में यह भारत के लिए एक वैश्विक चुनौति है कि जिस शिक्षा ने भारत को विश्वगुरू बनाया आज वही भारत क्यों शैक्षिक दृष्टि से अपने आप को कमजोर समझने लगा है। आज भी वही वेद, पुराण उपनिषद भारत में उपलब्ध हैं, आज भी हमारे वैदिक साहित्य के बल पर विज्ञान की खोज की जा रही हैं। इसका ताजा उदाहरण इसरो प्रमुख द्वारा चन्द्रयान को चन्द्रमा की सतह पर पहुँचाने में वैदिक साहित्य का आधार मानना एवं यह स्वीकार करना ही होगा कि प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवहार भी उत्तम स्तर की रही है। यहाँ पर हमें इसी बात को लेकर आगे बढ़ना है कि किस प्रकार हम वर्तमान शिक्षा को पुनः सुदृढ़ बना सकें। सबसे पहले हम एक नजर भारतीय शिक्षा के अतीत पर डालते हैं और फिर वर्तमान शिक्षा पर पहुँचेंगे।

यह सत्य है कि विश्व की सबसे प्राचीन और विकसित सभ्यता भारतीय सम्यता को माना जाता है क्योंकि सबसे प्राचीन साहित्य वेद हैं जो कि ज्ञान का अथाह भण्डार हैं। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा का प्रचार–प्रसार अत्यन्त व्यापक था। वेदों के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्ति का अधिकार भारत के सभी वर्गों के लोगों को था। सभी को शिक्षा गुरूकुल पद्धति से दी जाती थी। विद्यार्थी अपने गुरू के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करते और शिक्षा पूर्ण होने पर ही अपने घर लौटते थे। यद्यपि शिक्षा की यह भारतीय प्राचीन पद्धति कठिन अवश्य थी तथापि इस अत्यन्त कठिन पद्धति से प्राप्त ज्ञान जीवन को बदलने वाला था। वर्तमान की भांति प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा उत्तीर्ण करवा कर उपाधियाँ बांटना नहीं था बल्कि सीखे हुए ज्ञान को जीवन में धारण करना तथा समय उसका प्रयोग किया जा सके, शिष्य को इस योग्य बनाया जाता था।

भारतीय शिक्षा का पुरातन और वर्तमान

भारत में आज से लगभग 2700 वर्ष पूर्व विश्व का पहला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया था जिसे तक्षशिला के नाम से जाना जाता है। इसके बाद 2300 वर्ष पूर्व नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापन की गई। यह दोनों ही विश्वविद्यालय वेद वेदांग के अतिरिक्त ज्ञान–विज्ञान, तकनीकी, गणित, खगोल, भौतिकी, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, व्याकरण आदि अनेक विषयों के लिए प्रसिद्ध थे।

इन्हीं विश्वविद्यालयों में प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों जैसे– चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, चाणक्य, पतंजलि आदि ने ज्ञान प्राप्त किया और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे – गणित, खगोल, विज्ञान, भौतिक, रसायन शास्त्र, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा इत्यादि में महत्पूर्ण योगदान दिया। यही नहीं सभी प्रकार के स्वास्थ्य और विज्ञान में भारतीयों का स्थान प्रथम हैं यथा आचार्य कणाद परमाणु संरचना पर सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले महापुरूष थे। कणाद का कहना था कि ''यदि किसी पदार्थ को बार–बार विभाजित किया जाए और उसका उस समय तक विभाजन होता रहे, जब तक वह आगे विभाजित न हो सके, तो इस सूक्ष्म कण को परमाणु कहते हैं। परमाणु स्वतन्त्र रूप से नहीं रह सकते। परमाणु का विनाश कर पाना भी सम्भव नहीं है।''

प्राचीन वैज्ञानिकों द्वारा किये गये सिद्धान्त

बौधायन भारत के प्राचीन गणितज्ञ और शुल्ब सूत्र तथा श्रोतसूत्र के रचयिता थे। उस समय प्राचीन भारत में रेखागणित या ज्यामिति को शुल्ब शास्त्र भी कहा जाता था। सुश्रुत प्राचीन भारत के महान चिकित्सा शास्त्री एवं शल्य चिकित्सक थे। उनको शल्य चिकित्सा का जनक कहा जाता है।

चरक एक महर्षि एवं आयुर्वेद विशारद के रूप में विख्यात हैं। वे कुषाण राज्य के राजवैध थे। इनके द्वारा रचित चरक संहिता एक प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ है।

जीवक कौमार भच्च प्राचीन भारत के प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य थे। अनेक बौद्ध ग्रन्थों में उनके चिकित्सा ज्ञान की व्यापक प्रशंसा मिलती है। वे बालरोग विशेषज्ञ थे।

आर्चभट्ट प्राचीन के एक महान ज्योतिषविद और गणितज्ञ थे। इन्होंने आर्य भट्टीय ग्रन्थ की रचना की जिसमें ज्योतिषशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।

वराहमिहिर ईसा की पांचवी–छठी शताब्दी के भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ थे। वरामिहिर ने ही अपने पंच सिद्धान्तिका में सबसे पहले बताया कियनांश का मान 50.32 सैकण्ड के बराबर है।

ब्रह्मगुप्त (598–668) प्रसिद्ध भारतीय गणित थे। वे तत्कालीन गुर्जर प्रदेश भीनमाल के अन्तर्गत आने वाले प्रख्यात शहर उज्जैन वर्तमान मध्य प्रदेश की अन्तरिक्ष प्रयोगशाला के प्रमुख थे और इस दौरान इन्होंने दो विशेष ग्रन्थ लिखे –ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त खण्डखाद्यक या खण्डखाद्य पद्धति में अच्छे वेद्यकर्ता थे। मध्यकालीन यात्री अल्बरूनी ने ब्रह्मगुप्त का उल्लेख किया है।

भास्कराचार्य या भास्कर द्वितीय (1114–1185) प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषी थे। इनके द्वारा रचित मुख्य ग्रन्थ सिद्धांत शिरोमणी है जिसमें लीलावती, बीज गणित, ग्रह गणित तथा गोलाध्याय नाम चार भाग है। ये चार भाग क्रमश अंकगणित, बीज गणित, ग्रहों की गति से सम्बन्धित गणित तथा गोले से सम्बन्धित है।

विदेशी आक्रान्तओं के साथ ही भारतीय शिक्षा पद्धति पर प्रभाव पड़ना शुरू हो गया। विदेशी आक्रान्ताओं ने न केवल भारतीय शिक्षा पद्धति का नाश ही किया बल्कि अनेक ग्रन्थो, विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों आदि को भी नष्ट कर दिया इसके बाद अंग्रेजी शासन काल में मैकाले द्वारा शुरू की गई शिक्षा पद्धति ने भारतीय शिक्षा की रीड की हड्डी ही तोड़ दी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार से भारती शिक्षा और ज्ञान अपना प्रभुत्व खोने लगे और उस पर एक नया स्वरूप लगा। जिसे पाश्चात्य शिक्षा कहा गया। कालान्तर में भारतीय विद्वानों ने भी इसी पाश्चात्य शिक्षा का अनुसरण किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक आयोग तथा समितियां गठित किए गए लेकिन उनमें से किसी ने भी भारतीय पुरातन शिक्षा पद्धति की तरफ ध्यान नहीं दिया। सभी ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से ही शिक्षा देने का समर्थन किया जो सम्भवतः समय की मांग भी थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा से संबंधित आयोग एवं समितियाँ

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधा कृष्ण आयोग) 1948

स्वतंत्र भारत का यह पहला शिक्षा आयोग था जो पूर्व राष्ट्रपति, शिक्षाविद् एवं दार्शनिक डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्ण की अध्यक्षता में गठित हुआ। इस आयोग द्वारा क्षेत्र, जाति, लैंगिक विषमता का भेदभाव किए बिना समाज के सभी वर्गों के लिए उच्च शिक्षा को उपलब्ध कराने की अनुशंषा की गई।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग) 1952

डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952 ने सम्पूर्ण भारत में शिक्षा का एक समान प्रारूप लागू करने, आउटकम की दक्षता में वृद्धि करने, मैट्रिक पाठ्यक्रमों का विविधिकरण, बुउद्देशीय मैट्रिक विद्यालयों तथा तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की।

भारतीय शिक्षा आयोग (कोठरी आयोग) 1964–66

डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में 1964 में भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग द्वारा (क) आन्तरिक परिवर्तन (ख) गुणात्मक सुधर (ग) शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार के आधार एक व्यापक पुनर्निर्माण के तीन मुख्य बिन्दुओं की अनुशंषा की गयी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

कोठारी आयोग की अनुशंषा के आधार पर 1968 में राष्ट्रीय शिक्षानीति का निर्माण किया गया। इस समिति में माध्यमिक विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं पर बलदेने, संविधान में प्रस्तावित 6–14 वर्ष आयु वर्गों के बालकों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करने, अंग्रेजी को विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाने, हिन्दी को रारष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने एवं संस्कृत भाषा के विकास को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने जैसी महत्त्वपूर्ण अनुशंसाएं की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 अद्यतन 1992

इसकी प्रमुख सिफारिशें है – समाज के सभी वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं को शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करना, निर्धनों के लिए छात्रवृति का प्रावधान, पौढ़ शिक्षा प्रदान करना, वंचित या पिछडे वर्गों से शिक्षकों की भर्ती करना और नए विद्यालयों व महाविद्यालयों का विकास करना, छात्रों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना, गांधीवादी दर्शन के साथ ग्रामीण लोगों को शिक्षा प्रदान करना, मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करना, शिक्ष में IT का प्रचार करना, तकनीकी शिक्षा क्षैत्र को प्रारम्भ करने के अतिरिक्त वृहद् स्तर पर निजी उद्यम को बढ़ावा देना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992)

1986 की राष्ट्रीय नीति के परिणामों की समीक्षा करने हेतु 1990 में आचार्य राम मूर्ति की अध्यक्षता में एक आयोग गठित हुआ, इसकी सिफारिशें थी–केन्द्र और राज्य सरकारों को सलाह देने के लिए उच्चतम सलाहकार निकाय के रूप में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का गठन, शिक्षा की गुणवता में वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करना, नैतिक मूल्यों व जीवन शिक्षा को आत्मसात करने पर बल देना।

टी. एस. आर. सुब्रमण्यम समिति की प्रमुख सिफारिशें

फेल नहीं करने की नीति पांचवीं कक्षा तक ही लागू होनी चाहिए। उच्च शिक्षा को गुणवत्ता बढ़ाने हेतु विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत आने की अनुमति दी जानी चाहिए, मानव संसाधन के अधीन एक 'भारतीय शिक्षा सेवा' (IES)का गठन किया जाए, निजी स्कूलों व सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के लिए लाइसेंसिग या प्रमाणीकरण को अनिवार्य बनाया जाए, 4–5 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों के लिए पूर्व–विद्यालय शिक्षा को अधिकार के रूप में घोषित किया जाये। मिड–डे मील योजना को माध्यमिक विद्यालय तक किया जाये। भारत में कैंपस खोलने हेतु विश्व के शीर्ष 200 विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमती दी जाए।

नई शिक्षा नीति 2020

कस्तूरीरंजन की अध्यक्षता में 2017 में नई शिक्षा नीति 2020 का गठन किया गया, जिसके सिफारिशे हैं– आंगनबाड़ी को प्री–प्राइमरी स्कूल में बदला जाए, RTE को 12 वीं कक्षा तक ले जावा जाए, कक्षा 6 से ICTप्रारम्भ होगी, विज्ञान गणित व अंग्रेजी का समान राष्ट्रीय पाठ्यक्रम होगा। राज्यों में शिक्षकों की भर्ती के लिए अलग से आयोग, सभी रिक्त शिक्षक पद भरे जाए, राष्ट्रीय स्तर पर 'टीचर एज्युकेशन विश्वविद्यालय' की स्थापना हो, GDPका 6%शिक्षा पर खर्च करने के लक्ष्य को पूरा किया जाए मिड डे मील का दायित्व शिक्षकों के ऊपर से हटाकर महिला स्वयं सहायता समूहों को दिया जाए।

निष्कर्ष एवं सुझाव

उपरोक्त शिक्षा के प्राचीन व वर्तमान स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह तो सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा में बार–बार परिवर्तन करने के प्रयास किए गए हैं, परन्तु पुरातन भारतीय शिक्षा प्रणाली की ओर बढ़ने की तरफ एक भी कदम नहीं बढ़ाया गया है। स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने कहा था। कि ''वेदों की ओर लौटो'' से उनका तात्पर्य था कि सम्पूर्ण वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान वेदों में है तो उन्हीं की शिक्षा परम्परा को अपनाया जाना चाहिए। आधुनिक शिक्षा आज की आवश्कता है, परन्तु भौतिक उन्नति ही केवल शिक्षा का सार नहीं इसके साथ आध्यात्मिक उन्नती भी आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में जितने भी आयोग और समितियां शिक्षा की उन्नती के लिए गठित किए गए, उन सभी के विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान का सदुपयोग किया जा सके ताकि वर्तमान भौतिकवादी सभ्यता को विकसित किया जाये। बिना आध्यात्मिक मुक्ति के कोरी भौतिकता सर्वनाश की ओर ले जाती है। प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान में भौतिक उन्नति के स्थान पर आध्यात्मिक व्यक्ति को महत्व दिया गया था, इसलिए उनका जीवन शांतिपूर्ण और सात्विक था। प्राचीन भारतीय मनिषियों ने वर्तमान समय से कहीं अधिक उन्नती कर ली थी। ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वह आज से कहीं, आगे थे। अतः यह स्पष्ट है कि आधुनिक अपनाया जाना गलत नहीं है, परन्तु अपने प्राचीन गौरव को नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

अतः शिक्षा के मूल सम्प्रत्यय को ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारतीय शिक्षा परम्परा एवं पद्धति का आधुनिक शिक्षा में समावेश किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

https://the.hindi.page
www.nctc.gov.in
www.serb.gov.in
https://new.education.policy.2020
https://www.education.in
https://timesofindia.indiatimes.com

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोग।

ललिता रानी, शोधार्थी
टाँटिया विश्वविद्याालय, श्रीगंगानगर (राज.)
E-mail- lalitaals25@gmail.com
Mobile no.-8949612241

सारांश

ज्ञान विज्ञान तथा सांस्कृतिक कार्यों की प्राचीनतम धरोहर भारत है। प्राचीनतम शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था का जन्म भारत में ही हुआ है। प्राचीन ग्रंथो में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्वों का वर्णन मिलता है। पुराने स्मृतियां दर्शन में मनोविज्ञान पर आधारित अनेक शिक्षण विधियां का उल्लेख है। मानव स्वभाव को अभिव्यक्त करने वाले संवेग तथा मूल प्रवृत्तियों का विस्तार से प्राचीन ग्रंथो में पूर्ण व्याख्या के साथ वर्णन किया है। सच है कि शिक्षा मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है।

मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप में रहा हो वह शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायक रहा है। शिक्षा मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान जब से माना जाता है तब से इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। शिक्षा के क्षेत्र में इसका महत्व सर्वाधिक शिक्षकों के लिए है। शिक्षण में अध्यापकों का सीधा संबंध छात्रों से होता हैं । वह छात्रों को प्रगति की राह दिखाने के लिए मार्ग प्रदर्शन कर रहा है। शिक्षा मनोविज्ञान में वैज्ञानिक विधियो से अपने विषय का ज्ञान छात्र तक पहुंचाता है तो निःसंदेह ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

बालक समाज में रहकर अपनी सामाजिक परिस्थितियों से सामंजस्य करते हुए सामाजिक दायित्वों को पूरा करता है और एक आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

प्रस्तावना

भारत में शिक्षा मनोविज्ञान के विकास के कारण शिक्षा क्षेत्र में बालको व शिक्षकों पर अधिगम एवं अध्यापन के कार्यों में आमूल चूल परिवर्तन हो रहे है। मानव व्यक्तित्व का ज्ञान मनोविज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार से भारत वर्ष में शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारंभ परम सत्य की दार्शनिक खोज से जुड़ा है। शिक्षा मनोविज्ञान एक बहुत पुरातन मनोवैज्ञानिक विषय है। इसमें शामिल वह मनोविज्ञान प्रकरण जो शिक्षा से संबंध रखते हैं वह लगभग 100 वर्ष पहले अपने मूल रूप में सामने आया।

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन हैं। भारतीय परंपरा में दर्शन मनोविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानांतरण की त्रिवेणी के रूप में बहती रही।

परंपरा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का जीवन के चेतन और अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टाएं है। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान केवल मनऔर व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्म तत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास समाहित किए हुए हैं। वेद उपनिषद आदि सभी ग्रंथ मनोविज्ञान के प्रमाणित तथ्य है। वेदों में इसे अध्यात्म विद्या भी कहा गया है। क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्या जीवन यापन का सशक्त साधन है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो कर्म वाद रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार का अध्ययन करना है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं तथा चिंतन भाव एवं घटनाओं से उनका संबंध जोड़कर अध्ययन करना है

शिक्षा और मनोविज्ञान का अर्थ

शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के योग से बना है "शिक्षा और मनोविज्ञान"।
आता है इसका शाब्दिक अर्थ है – शिक्षा संबंधी मनोविज्ञान।

दूसरे शब्दों में यह मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है और शिक्षा की प्रक्रिया में मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

अतः स्किनर के शब्दों में कह सकते हैं – "शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा से जो सामाजिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान से है जो व्यवहार संबंधी विज्ञान है जो ग्रहण करता हैं" से है।

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ का विश्लेषण करने के लिए स्केनर ने निम्नलिखित तत्वों की ओर संकेत किया है :–

1. शिक्षा मनोविज्ञान का केंद्र मानव व्यवहार हैं ।
2. शिक्षा मनोविज्ञान खोज और निरीक्षण से प्राप्त किए गए तथ्यों का संग्रह है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांत और पद्धतियां शैक्षिक सिद्धांतों को आधार प्रदान करते हैं।
4. शिक्षा मनोविज्ञान में संग्रहित ज्ञान को सिद्धांतों का रूप प्रदान किया जा सकता है।
5. कक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए अपनी स्वयं की पद्धतियों का प्रतिपादन किया है।

क्रो एंड क्रो के अनुसार – शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करना है।

आवश्यकता :–

कैली के अनुसार – कैली ने शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता को अनुसार बताया हैः–

1. बालक के वृद्धि और विकास हेतु ।
2. बालक के स्वभाव का ज्ञान प्रदान करने हेतु।
3. बालक को अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने के लिए।
4. शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों और प्रयोजनों से परिचित कराना ।
5. सीखने और सीखने के सिद्धांत और विधियों से अवगत कराना।
6. सेंविंदगो के नियंत्रण और शैक्षिक महत्व का अध्ययन।
7. चरित्र निर्माण की विधियों और सिद्धांतों से अवगत कराना।
8. विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों में छात्र की योग्यताओं का माप करने की विधियों में प्रशिक्षण देना।
9. शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों की जानकारी के लिए प्रयोग की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना।

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्रः–

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोविज्ञान एक नया तथा पनपता विज्ञान है। इसके क्षेत्र और निश्चित है और धारणाएं गुप्त हैं। इसके क्षेत्र में अभी बहुत सी खोज हो रही है और संभव है कि शिक्षा मनोविज्ञान की नई धारणाएं नियम और सिद्धांत प्राप्त हो जाये। इसका भाव यह है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्या अनिश्चित तथा परिवर्तनशील है। चाहे कुछ भी हो निम्नलिखित क्षेत्रीय समस्याओं को शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है।

क्रो एंड क्रो :– "शिक्षा मनोविज्ञान की विषय सामग्री का संबंध सीखने को प्रभावित करने वाली दशाओं से है।"

1. व्यवहार की समस्या।
2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्याओं।
3. विकास की अवस्थाएं ।
4. बच्चों का अध्ययन।
5. सीखने की क्रियो का अध्ययन।

6. व्यक्तित्व तथा बुद्धि ।
7. नाप तथा मूल्यांकन।
8. निर्देश तथा परामर्श।

विधियां:–

शिक्षा मनोविज्ञान में अध्ययन और अनुसंधान के लिए सामान्य रूप से जिन विधियों का प्रयोग किया जाता हैं उनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ।
चार्ट रूप में प्रस्तुत

शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां

आत्मनिष्ठ विधियां	वस्तुनिष्ठ विधियां
1. आत्मनिरीक्षण विधि।	1. प्रयोगात्मक विधि
2. गाथा वर्णन विधि	2.निरीक्षण विधि

3.जीवन इतिहास विधि
4.उपचारात्मक विधि
5. विकासात्मक विधि
6. मनोविश्लेषण विधि
7. तुलनात्मक विधि
8. सांख्यिकी विधि
9. परीक्षण विधि
10. साक्षात्कार विधि
11. प्रश्नावली विधि
12. विभेदात्मक विधि
13. मनोभौतिक विधि

शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता :–

शिक्षक शिक्षा में आमूल चूल बदलाव इसीलिए आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक प्रभाव और संभावनाओं का विस्तार हो सके। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाए कि शिक्षक शिक्षा के उपागम में मूलभूत बदलाव किए जाने की जरूरत है। शिक्षक शिक्षा के बारे में बहुत सी पॉलिसीयां नीतियां बनी यह एक निश्चित बदलाव लाने की बात भी की यह सही है कि पहले भी इस तरह के प्रयास हो चुके है।इनमें से कई बार शिक्षक शिक्षा की समीक्षा करने इसे पुनर्जीवित और पुनर्गठित करने की भी कोशिश की गई है ।लेकिन यह प्रयास वास्तविक व्यवहार में नहीं लाये जा सके और कार्यक्षेत्र में ये प्रासंगिक है या नहीं, ऐसा प्रमाण नहीं दे सके। शिक्षक शिक्षा को जीवन और इस क्षेत्र में उठ रही मांगों के अनुरूप बनाने के लिए शिक्षक शिक्षा को बुनियादी अवधारणाओं एवं मान्यताओं में निश्चित और परीक्षित बदलाव जरूरी है । शिक्षक शिक्षा के उपागम में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन लाना चाहिए।यह शिक्षक शिक्षा में बदलाव का सुझाव है।

शिक्षक शिक्षा को स्कूल व्यवस्था की आवश्यकताओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील होना पड़ेगा इसके लिए शिक्षकों को दोहरी भूमिका के लिए भी तैयार करना पड़ेगा।

वे सीखने सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बने जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में ,उनकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता से जने, उन में सामाजिक और मानवीय मूल्यों के तथा चरित्र के विकास में भी जिम्मेदार नागरिक की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएं।

विद्यार्थियों के बदलते हुए सामाजिक तथा व्यक्तिगत जरूरत को ध्यान में रखते हुए स्कूली पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की प्रक्रिया में योगदान देने के चैतन्य प्रयास करें।

सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भ में बच्चों को समझ सके।

व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने का अधिगम कराएं।

सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियों पैदा करने के संभावित तरीके जाने ,विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझें।

ज्ञान को चिंतनशील सीखने की सतत उभरती प्रक्रिया माने।

ज्ञान को पाठ्य पुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर सांझा संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।

उन सामाजिक पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भों के प्रति संवेदनशील हो जिन में उसे काम करना है।

लगातार सीखते रहे समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियां को समझ सके।

वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैया को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करें बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।

भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।

व्यक्तिगत अपेक्षाओं , आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरुचियों आदि की पहचान कर सके।

शिक्षक शिक्षा में शिक्षक की भूमिकाः–

शिक्षक की मुख्य भूमिका सीखने के मार्ग में सहायता करने वाले की होती है। शिक्षक वह होता है जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं की पहचान कराएं, उनके व्यक्तिगत तथा संदर्भ विशिष्ट अनुभवों को इस तरीके से सामने रखें कि वह राष्ट्र के संदर्भ में स्वीकृत हो।

शिक्षक को यह समझना चाहिए की पाठ्यचर्या विद्यार्थी केंद्रित हो। वह पहले से तय नहीं हो सकती शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा सीखे जाने की प्रक्रिया में संभव सहयोग देने मात्र के लिए तैयार किया जाता है। लेकिन प्रत्येक अधिगम स्थिति संचित रूप से शिक्षक को बच्चों की जरूरत को पहचानने के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

ऐसी कोई एक पद्धति नहीं है जो सभी विद्यार्थियों को एक ही ढंग से सीख सके। हर शिक्षक को बौद्धगम्य में अभ्यास द्वारा अलग–अलग विद्यार्थियों में सीखने के तरीके पहचानने होंगे लेकिन इस तथ्य को स्वीकार करते हुए की सभी विद्यार्थी अपने–अपने ढंग से सीखते हैं । शिक्षण विधि को प्रभाविता और उपयुक्तता जांचने के दो पहलू हैं पहला शिक्षक को अपनी शैली जिसमें वह विधि का प्रयोग करता है और दूसरा विद्यार्थी के सीखने का अपना ढंग जब इसमें दोनों ज्ञान की प्रक्रिया में भाग लेते हैं तो लाभावांवित होते हैं।विद्यार्थी के लिए अधिगम ग्रहण करना शैक्षिक परिस्थितियों का एक बड़ा सरोकार है। इस प्रकार से तकनीकी रूप से दोनों ही सीखने वाले हैं।

शिक्षक को अपने आपको ऐसे पेशेवर के रूप में देखने की आवश्यकता है जिसमें उपयुक्त क्षमता, लगन , उत्साह, नए तरीके अपनाने की लगन हो चिंतनशीलता है।उसमें संवेदनशीलता भी है, न केवल विद्यार्थियों और संस्था के लिए बल्कि वृहत् सामाजिक संदर्भ में जिसमें व्यक्ति कार्य करता है।

विद्यार्थी को बहुत सारी ऐसी बातों को अर्थपूर्ण ढंग से तथा सकारात्मक ढंग से सीखाना शिक्षक की हिस्से में ही आता है। अभी आई.सी.टी. जैसी सुविधाओं तक सभी की पहुंच होने में समय लगेगा। शिक्षक को इस तरह की परिस्थिति में प्रभावी रहने के लिए नए केवल दक्षता चाहिए बल्कि ऐसी संवेदनशीलता भी जो युवा विद्यार्थियों को उपयुक्त संदर्भ में प्रस्तुति को समझने और स्वीकार करने की ओर ले जाए।

शिक्षक को क्रिया आधारित शिक्षक की प्रकृति और गतिशीलता को समझना चाहिए। यह ध्यान दिलाएगी कि 'क्या काम करता है क्या नहीं' इसके साथ ही है क्रिया का आलोचनात्मक विश्लेषण, चिंतन तथा आत्मसात् करने में मदद मिल करेगी। इसीलिए शिक्षक व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए तैयार करती है।

बेशक, शिक्षक प्रशिक्षकों को अधिगम परिस्थितियों में सहभागी बनने के लिए प्रशिक्षण की जरूरत है साथ ही उन्हें शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की दिनचर्या को संगठित करने के अच्छे तरीके आने चाहिए।

उपसंहार

शिक्षा का अर्थ बच्चों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का सम्यक विकास करना था। शिक्षा द्वारा उपयोगी नागरिक का विकास होना चाहिए। पूर्ण पुरुष एवं स्त्री के रूप में, जिनमें मानव जीवन के चारों पक्षों हाथ मस्तिष्क हृदय तथा आत्मा का समर्थ विकास सम्मिलित हो पूर्ण विश्वास ऐसी शिक्षा में है जिसके द्वारा ऐसी समाज का निर्माण किया जा सकता है। बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया में बच्चे को स्वतंत्रता, आत्मनियंत्रण और आत्मविश्वास के लिए तैयार करना। भारत का सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक नवनिर्माण सही प्रकार की शिक्षा पर आश्रित है।केवल शिक्षा ही सत्य तथा न्याय पर आधारित शांतिपूर्ण अहिंसात्मक समाज निर्मित करने में सक्षम है।

शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में प्रोत्साहन तथा सहयोग देकर मानवीय ढंग से प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाले के रूप में जो शिक्षार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज करने में तथा उनकी शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचानने के योग्य बनाए, तथा इस योग्य भी कि वे चरित्र के साथ–साथ सामाजिक और मानवीय मूल्यों का विकास कर जिम्मेदार नागरिक के रूप में उभरे।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

डॉ. विभादत्त ,भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान अवधारणा एवं व्यक्तित्व, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल (2010)

राजाराम तोमर (2015) भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के आधार ,विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान ,कुरुक्षेत्र।

एस. के. मंगल (1जन.2009) शिक्षा मनोविज्ञान, Prentice Hall India Learning Private Ltd-

गुलाटी एस.(1998) भारत में प्रारंभिक शिक्षक शिक्षा के शैक्षिक मनोविज्ञान पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अध्ययन। अप्रकाशित पांडुलिपि, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली।

एस. के. गुप्ता /एस.बी.पी.डी ,शिक्षा मनोविज्ञान, पब्लिशिंग हाउस (नवीन संस्करण)

पी.डी.पाठक, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं।

राजोरिया अरुण कुमार अरोड़ा, प्रीति "अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया" (2007)

पत्राचार पाठ्यक्रम, शिक्षा मनोविज्ञान माध्यमिक शिक्षा मंडल मध्यप्रदेश भोपाल।

स्वयं के विचार।

शिक्षा का भारतीय प्रतिमान एवं शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम

श्रीमती ममता शर्मा (सहायक आचार्य)
Email - shikhaloachan@gmail.com (9414351010)
Parishkar Institiute of Education, Jaipur

किसी भी राष्ट्र की जीवन दृष्टि वहाँ की शिक्षा को एक दृष्टि प्रदान करती है। शिक्षा के भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा शब्द व्यापक अर्थ को लिए हुए हैं। अमरकोश में शिक्षा शब्द का प्रयोग षड्–वेदांगों में से एक वेदांग के लिए प्रयुक्त हुआ है उस समय शिक्षा–शास्त्र का प्रयोजन वेदों की रचनाओं का शुद्ध उच्चारण सिखाना था उस युग में वेदों का पठन–पाठन ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य रहा होगा परन्तु किसी भी कार्य को सीखने की और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया शिक्षा है। शिक्षा के अर्थ को लेकर विद्वानों का अलग–अलग दृष्टिकोण है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग – भारतीय परम्पराओं के अनुसार ''शिक्षा'' रोजी कमाने का साधन मात्र नहीं है, न ही विचारों का पालन–पोषण और न ही नागरिकता की पाठशाला। यह आत्मा के जीवन का आरम्भ है, मानवीय आत्मा के सत्य की खोज के लिए प्रशिक्षण है और नेकी का अभ्यास है।

महात्मा गाँधी – ''शिक्षा का तात्पर्य बालक तथा व्यक्ति के शरीर, मन तथा आत्मा की सर्वोत्तमता का सर्वांगीण प्रकटीकरण है।

उपनिषद् – शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण है।

भारतीय दर्शनों में जीवन को 'समग्र' दृष्टि से देखने की वृत्ति रही है, इसलिए शिक्षा दर्शन, राजनीति दर्शन आदि नामों से पृथक्–पृथक विवेचन नहीं मिलता परन्तु समय के साथ शिक्षा में परिवर्तन हो रहा है परन्तु भारतीय जीवन दृष्टि से ही भारतीय शिक्षा का प्रतिमान स्पष्ट होता है।

❖ शिक्षा का भारतीय प्रतिमान : समग्र विकास

प्रतिमान अर्थात् किसी रूपरेखा तथा उद्देश्य के अनुसार व्यवहार को ढालने की प्रक्रिया और विकास से संबंधित है व्यक्ति के विकास का भारतीय प्रतिमान ''समग्र विकास प्रतिमान'' है और व्यक्ति के विकास का यह प्रतिमान ही भारतीय शिक्षा का प्रतिमान है। इसके दो आयाम है पंच कोशीय विकास और परमेष्ठीगत विकास। जहां पंच कोशीय विकास व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है, वहीं परमेष्ठीगत विकास उसका समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी के साथ सांमजस्य बैठाने का विकास है।

❖ प्रथम आयाम : पंचकोशीय आयाम

पंचकोशीय विकास का अर्थ है, पांच कोशों का विकास करना। तैत्तिरीय उपनिषद् हमें बताते हैं कि व्यक्तित्व पांच कोशों से निर्मित है। ये पांच कोश हैं –अन्नमय कोश ,प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमयकोश। व्यक्तित्व की पंचकोशीय अवधारणा में कोश का अर्थ है आवरण या स्तर। हमारे उपनिषद् बताते हैं कि हमारी आत्मा के ऊपर पांच आवरण या स्तर है।भीतर से बाहर के क्रम में बताना हो तो आत्मा के ठीक ऊपर आनन्दमय कोश, उसके ऊपर विज्ञानमय कोश, विज्ञानमय कोश के ऊपर मनोमय कोश, मनोमय के ऊपर प्राणायम कोश और प्राणायम के ऊपर बाहरी आवरण है अन्नमय कोश। अन्नमय कोश स्थूल है और बाहर है, इसलिए हमें दिखाई देता है। शेष चारों कोश अन्नमय कोश (शरीर) के भीतर है और सूक्ष्म हैं, इसलिए हमें दिखाई नहीं देते।

अन्नमय कोश अर्थात् शरीर, प्राणायम कोश अर्थात् प्राण, मनोमय कोश का अर्थ है मन, विज्ञानमय कोश अर्थात् बुद्धि और आन्नदमय कोश अर्थात् चित्त। अर्थात् शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और चित्त का विकास करना ही सर्वांगीण विकास है। व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही पंचकोशीय विकास है।

❖ द्वितीय आयाम – परमेष्ठीगत विकास

समग्र विकास का दूसरा आयाम है परमेष्ठीगत विकास। परमेष्ठीगत विकास के चार चरण है :– 1. व्यष्टि 2. समष्टि 3. सृष्टि 4. परमेष्ठी। व्यष्टि अर्थात् व्यक्ति, समष्टि अर्थात् समुदाय, सृष्टि

अर्थात् प्रकृति और परमेष्ठी अर्थात् परमात्मा। समष्टि में चार इकाइयां आती है, 1. परिवार 2. समाज 3. देश 4. विश्व

परमेष्ठीगत विकास से तात्पर्य है व्यक्ति का व्यक्ति के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना, व्यक्ति का समुदाय के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना, व्यक्ति का सृष्टि के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना और व्यक्ति का परमात्मा के साथ सामंजस्य बैठाने का विकास करना ही परमेष्ठीगत विकास कहलाता है और परमेष्ठीगत विकास द्वारा बच्चे में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास किया जाता है।

अतः इन दोनों आयामों के आधार पर भारतीय शिक्षा के उद्देश्य हैं –

- **संस्कारों का विकास करना –** वैदिककालीन शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में अच्छे संस्कारों का विकास करना था। ब्रह्मचर्य, सदाचार, परमार्थ, जनहित भावना, परोपकार, सामाजिक भावना, गुरू व बड़ों का आदर, कर्तव्य पालन, सत्यव्रत, धर्म के प्रति निष्ठा, श्रम के प्रति आदर, उच्च विचार आदि संस्कारों को विकसित करके छात्रों को संस्कार युक्त बनाया जाता था।
- **ज्ञान एवं अनुभव का समन्वय –** प्राचीन शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत ज्ञान एवं अनुभव का समन्वय करके शिक्षा प्रदान की जाती थी, जिसके फलस्वरूप शिक्षार्थी ज्ञान को आत्मसात् करने में सफल हो जाते थे। इस शिक्षा पद्धति में चितन, मनन, स्वाध्याय इत्यादि के द्वारा शिक्षार्थियों को यथासंभव योग्य एवं कुशल बनाने का प्रयास गुरूजनों द्वारा किया जाता था।
- **आत्मा की पवित्रता का विकास करना –** मानव जीवन को अत्यधिक सरल, स्वाभाविक तथा पवित्र बनाने का प्रयास किया जाता था जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था। मनुष्य की ईश्वर में पूर्ण आस्था थी तथा धर्म के द्वारा सत्य तक पहुंचकर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास किया जाता था।
- **चित्तवृत्तियों का निरोध –** प्राचीन भारतीय शिक्षाविद् जीवन को सफल बनाने हेतु आत्मज्ञान एवं आत्मसंयम का समान महत्व मानते थे इसी कारणवश वैदिक काल में शिक्षार्थियों को न केवल मौखिक या सैद्धांतिक रूप से सत्य का ज्ञान कराया जाता था, अपितु सत्य के मार्ग पर चलने के लिए उन्हें आत्मसंयम की दिशा में प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता था।
- **चरित्र का निर्माण –** गुरूजन शिक्षार्थियों को सदाचरण के उपदेश देते थे एवं स्वयं अपने उन्नत चरित्र को उदाहरण स्वरूप शिक्षार्थियों के सामने प्रस्तुत करते थे।
- **भारतीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार –** शिक्षार्थियों को संस्कृति का ज्ञान प्रदान करके सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरा पीढ़ी तक हस्तांरित किया जाता था।
- **स्वास्थ्य संरक्षण एवं वृद्धि –** वैदिककालीन ऋषि और गुरूओं की यह मान्यता थी कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। इस उद्देश्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए पहली आवश्यकता स्वस्थ शरीर और निर्मल मन की है। यही कारण है कि ऋषि आश्रमों और गुरूकुलों में शिष्यों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्द्धन पर विशेष बल दिया जाता था।
- **सामाजिक कुशलता की उन्नति –** वैदिक काल में शिक्षार्थियों को सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार का ज्ञान साथ–साथ प्रदान किया जाता था, जिससे कि शिक्षार्थी शुद्ध आचार–विचार एवं व्यवहार के माध्यम से अपने जीवन को सफल बना सकें। व्यावहारिक कुशलता के माध्यम से ही शिक्षार्थी समाज में अपना अस्तित्व सुरक्षित रख पाते थे या समाज में सामंजस्य स्थापित कर पाते थे।
- **व्यावसायिक कुशलता का विकास –** शैक्षिक ज्ञान के साथ शिक्षार्थियों को व्यावसायिक योग्यता प्रदान करना, प्राचीन भारतीय शिक्षा का अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य था। भिन्न–भिन्न वर्णों को भिन्न–भिन्न व्यवसायों की शिक्षा प्रदान की जाती थी।
- **ईश्वर की भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश –** प्राचीन काल की शिक्षा 'सा विद्या या विमुक्तये' की उक्ति को सार्थकता प्रदान करने वाली थी। प्राचीन युग में शिक्षार्थियों में आध्यात्मिकता का विकास करने के लिए दैनिक जीवन में यज्ञ, व्रत, उपवास, संध्या, प्रार्थना आदि का प्रावधान था। शिक्षा संस्थाओं में ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय था। शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों ही धर्म का पालन करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते थे।

- **सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करना –** वैदिक काल की शिक्षा एक उद्देश्य शिक्षार्थियों को सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करना सिखाना था। इस युग में शिक्षार्थी विद्या अध्ययन के साथ–साथ समाज के अन्य व्यक्तियों की सहायता कर, अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते थे, जैसे – दीन–दुखियों की सहायता करना, निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना आदि। इन सामाजिक कार्यो को उन्हें निःस्वार्थ भाव से करना होता था। शिक्षार्थी इन कार्यो को करके तीन प्रकार के ऋणों (पितृ, गुरू एवं देव) से ऋण–मुक्त हो जाते थे।
- **जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना –** शिक्षार्थियों को इस प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था कि वे अपने जीविकोपार्जन के लिए समर्थ हो सकें। जीवनोपयोगी उद्यम जैसे – कृषि, डेरीफार्म, चिकित्सा, युद्ध, कला, व्यवसाय, पशु–पालन आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण से शिक्षार्थियों की सामाजिक कुशलता में वृद्धि होती थी तथा वे गृहस्थ आश्रम के दौरान अपने परिवारजनों का भरण–पोषण करने में सक्षम सिद्ध होते थे।

  इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य वैदिक काल से ही व्यापक रहे हैं। समय के साथ इनमें थोड़ा परिवर्तन आया और प्राचीन शिक्षा के इन उद्देश्यों के साथ आधुनिक शिक्षा के अनुसार ज्ञान का विस्तार करना, नए ज्ञान के लिए इच्छा जागृत करना, व्यावसायिक शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देना, सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास करना और देश का आधुनिकीकरण भी शिक्षा के उद्देश्य रहे हैं।

❖ शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम

शिक्षा के इन सभी उद्दश्यों को शिक्षक के बिना पूरा नहीं किया जा सकता। शिक्षण को न केवल भारत में, बल्कि दुनिया के अन्य देशों में भी सबसे पुराने और सबसे सम्मानित व्यवसायों में से एक माना गया है। अतः समय–समय पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षक तैयार करने हेतु विभिन्न शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम तैयार किये गये। शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम एक व्यवस्था है जो लोगों को राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में शिक्षक की आधुनिक तथा बदलती भूमिका का निर्वाह करने की योग्यता व दक्षता को ग्रहण करने के लिए शिक्षित करती है। अतः शिक्षक–शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं हैं बल्कि एक मिशन है। भारत दुनिया में शिक्षक–शिक्षा की सबसे बड़ी प्रणालियों में से एक है।

माना जाता है कि भारत में शिक्षकों की शिक्षा का जन्म 2500 ईसा पूर्व हुआ था। हिंदु सभ्यता की शुरूआत में शिक्षण मुख्य रूप से वेदों के बारे में ज्ञान प्रदान करने पर केंद्रित था। हिंदू समाज के चार वर्गों में से, ब्राह्मण समुदाय के शिक्षक के रूप में कार्य किया। शिक्षकों को कभी–कभी सक्षम छात्रों द्वारा उनके काम में सहायता मिलती थी, जो मॉनिटर के रूप में कार्य करते थे। यह प्रणाली विद्यार्थियों को शिक्षक के पद पर नियुक्त करने की एक विधि थी। शिक्षकों की अनुपस्थिति के दौरान, आमतौर पर कक्षा को पढ़ाने के लिए तेज और बुद्धिमान छात्रों को कर्तव्य सौंपा जाता था। इसलिए, शिक्षा प्राप्त करने के दौरान, छात्र शिक्षण कौशल विकसित करने में सक्षम थे।

1906 से 1947 तक काफी शैक्षणिक संस्थानों का विकास हुआ और देश के भीतर कई शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र खोलें गए एवं कार्यक्रम चलाए गए। वर्तमान समय में शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम दो प्रकार के हैं– सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम एवं सेवारत शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम। सेवापूर्व शिक्षक–शिक्षा वह शिक्षा और प्रशिक्षण है जो छात्र शिक्षकों को शिक्षक पेशे में प्रवेश करने से पहले प्रदान की जाती है इसके विपरीत सेवाकालीन शिक्षक–शिक्षा शिक्षक पेशे में प्रवेश करने के बाद शिक्षकों को सीखने के अवसर प्रदान करती है।

❖ सेवारत् शिक्षक –शिक्षा

सेवारत् अध्यापक शिक्षा, सेवारत् अध्यापकों के लिये आयोति की जाने वाली एक प्रक्रिया है। यह व्यवस्थित, सतर्क ध्यानस्थ, आवश्यकतापरकता और विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है जो किसी विशेष उद्देश्य के लिये सेवारत् अध्यापकों को प्रदान की जाती है। सेवारत् अध्यापक शिक्षा से अध्यापकों का दृष्टिकोण व्यापक बनता है। यह प्रक्रिया सेवारत् अध्यापकों में व्यवहारिक परिवर्तन उत्पन्न करती है और अध्यापकों को विविध प्रकार के अनुभव प्रदान करती है जिससे उन्हें शिक्षा तथा शिक्षण की नवीन आवश्यकताओं

का ज्ञान प्राप्त होता है और परिणामस्वरूप उनमें शिक्षण कार्य को अधिक कुशलतापूर्वक तथा प्रभावशाली ढंग से करने की योग्यता का विकास होता है।

- **सेवारत् शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम**
- **कार्यगोष्ठी** :–कार्यगोष्ठियों का आयोजन शिक्षा के किसी भी रूप से संबंधित अनेक शैक्षिक समस्याओं पर किया जा सकता है। पहले से ही एक कार्यपत्र तैयार कर लिया जाता है और इसमें भाग लेने वालों को भेज दिया जाना चाहिये। इसे खुले अधिवेशन में पढ़ा जाता है और इस पर विवेचन किया जाता है। समस्या के विभिन्न पक्षों पर विचार करने के लिये अनेक कमेटियाँ बना दी जाती है। कमेटियों आम सभा में पढ़ी जाती है और सुधार आदि के सुझाव के लिये उन पर विवेचन किया जाता है। वाचन के रूप में भी कार्य गोष्ठियों का प्रबंध किया जा सकता है।

  शिक्षा के उद्देश्यों के पुनःनिर्धारण, पाठ्यक्रमसुधार, नयी शिक्षण विधियाँ, प्रशासन, पर्यवेक्षण तथा वित्तीय सहायता और शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी कार्य गोष्ठियों का आयोजन किया जा सकता है।
- **कार्यशालायें** :– कार्यशालायें कार्यगोष्ठियों से भिन्न होती है। कार्यशालाओं में क्रियात्मक मार्ग अपनाया जाता है। सभी भाग लेने वाले सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और महत्वपूर्ण योगदान देते है।

  कार्यशालाओं का आयोजन पाठ योजना, पाठ्यक्रम के निर्माण तथा परीक्षणों के निर्माण पर किया जा सकता है। प्रत्येक भाग लेने वाले को कुछ कार्य करने के लिये दिया जाता है। कार्यशाला की प्रमुख उपयोगिता एक या दो पाठ–योजनाओं बनाने या किसी विशिष्ट विषय अथवा किसी विशष्टि श्रेणी के लिये पाठ्यक्रम बनाने में या किसी स्कूल के विषय में उपलब्धि परीक्षण बनाने में उल्लेखनीय है।
- **रिफ्रेशर कोर्स** :– रिफ्रेशर कोर्स बड़े प्रभावशाली ढंग से अध्यापकों को अन्तःसेवा शिक्षा प्रदान करते है। इनका उद्देश्य अध्यापकों को अपने विषय तथा शिक्षा के सिद्धांत एवं प्रयोग में नये परीक्षणों के साथ–साथ चलने के योग्य बनाना है।
- **सम्मेलन** :– पाठ्यक्रम का संशोधन, पाठ्य–पुस्तकों का चुनाव, सफल शैक्षिक परीक्षणों के परिणाम, पिछड़े हुये बालकों का निर्देशन तथा दैनिक शिक्षण से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित इसी प्रकार की समस्यायें एवं विशिष्ट विषयों के अध्यापन पर विचार करने के लिये सम्मेलन बुलाया जा सकता है। कुछ प्रमुख ये सम्मेलन प्रान्त, जिला अथवा क्षेत्र स्तर पर आयोजित किये जा सकते है।
- **विस्तार सेवा कार्यक्रम** –इस वर्ग के कार्यक्रम में विद्यालय प्रशिक्षण महाविद्यालय अन्तर्सम्बन्ध विकास हेतु कार्यक्रम, विद्यालय उन्नयन योजना, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम विकास योजना, गहन कार्यशाला एवं अधिगम सामग्री प्रकाशन कार्यक्रम आदि सम्मिलित किये जा सकते है।
- **अध्ययन समूह** :– विभिन्न विषयों के अध्यापक विचार–विमर्श के लिये एक अध्ययन समूह का निर्माण कर कुछ सामान्य रूचि वाले विषयों को विचार विमर्श हेतु ले सकते है। उप–विषय का चुनाव यथासम्भव इस अध्ययन समूह के अध्यापकों की व्यावहारिक आवश्यकताओं तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर किया जाये। विचार–विमर्श व्यावहारिक क्रिया की ओर अग्रसर होना चाहिये। अध्ययन समूह शैक्षिक योजनाओं के बनाने में सहायता कर सकते है।
- **स्कूल कार्यक्रम** :– क्लब मीटिंग, अलग विषयों की मीटिंग (सभायें), अध्ययन मण्डल स्कूल में प्रदर्शनियाँ, प्रयोगात्मक प्रोजेक्ट फिल्म शो, प्रदर्शन पाठ, प्रसार–भाषण तथा पुस्तकालय सेवायें भी अध्यापकों को सेवाकालीन को सेवाकालीन शिक्षा प्रदान करने सकते है।
- **विविध कार्यक्रम** :– अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के लिये शैक्षिक भ्रमण, शैक्षिक महत्व के स्थानों को देखना, अध्यापक विनिमय कार्यक्रम आदि का संगठन किया जा सकता है।
- **सारांश –**

  शिक्षा का भारतीय प्रतिमान ''समग्र विकास'' विद्यार्थी को केवल रोजगारोन्मुख ही नहीं बनाता अपितु यह तो उसके शरीर, प्राण, मन, बुद्धि एवं चित्त का विकास करता है। यह प्रतिमान उसे अहम् से त्वम्, त्वम् से वयं और वयं से सर्वं तक ले जाता है। यह उसे केवल मैं और मेरा परिवार तक संकुचित न रखकर उसे 'वसुधैव कुटुंबकम्' का पाठ पढ़ाता है। यह प्रतिमान व्यक्ति को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य परमेष्ठी तक पहुँचता है। इस प्रतिमान की मुख्य विशेषता है कि यह भारतीय जड़ों से जुड़ा हुआ है और भारतीयता से जोड़ने वाला है।
- **संदर्भ सूची –**

- अग्रवाल, जे.सी (2007), भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, शिप्रा पब्लिकेशन
- ओड़, एल.के. (2008), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि (9वां संस्करण), राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी
- काटदरे, इन्दुमति (2018), शिक्षा समग्र प्रतिमान, भारतीय शिक्षा ग्रंथमाला – 2
- भट्टाचार्य, जी.सी. (2012), अध्यापक शिक्षा (7वां संस्करण), अग्रवाल पब्लिकेशन
- लाल (प्रो.) रमन बिहारी, कांत (डॉ.) कृष्ण (2013), अध्यापक शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिकेशन

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं

मनीषा जोशी
(शोधार्थी)
e-mail id: manishamehta340@gmail.com
Mobile no. 7426990424

सारांशः–
वैदिक काल से 18वीं शताब्दी तक भारतीय शिक्षण चिंतन का आधार धर्म, नैतिक जीवन तथा मूल्यों का संरक्षण रहा। मूल्यपरक शिक्षा ने न केवल भारत में बल्कि विश्व में उन्नत सभ्यता तथा संस्कृति का मार्गदर्शन किया। स्वतंत्र के पश्चात् ही भारत में शिक्षण का मार्ग सही दिशा से भ्रमित हो गया। शिक्षा का स्वरूप पाश्चात्य अथवा यूरोपीय मॉडल पर ही घसीटा जाता रहा है।भारत में पाश्चात्यीकरण को ही आधुनिकता का पर्याय एवं मार्गदर्शक मान लिया गया। भारतीय मानसिकता में दासता का नया दौर प्रारंभ हुआ। शैक्षणिक स्तर पर गिरावट ने सामाजिक विघटन, अस्त–व्यस्त अर्थ रचना, राजनीतिक पतन तथा सांस्कृतिक ह्रास को तीव्रता से बढ़ावा दिया। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। किसी भी देश की शिक्षा का स्वरूप तथा जड़ें उस देश की संस्कृति में होनी चाहिए। वस्तुतः शिक्षा लौकिक तथा पारलौकिक उन्नत जीवन को स्थापित करने वाली होनी चाहिए। शिक्षा राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास तथा आत्म गौरव बढ़ाने वाली हो। शिक्षा का स्वरूप संवैधानिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। वर्तमान में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में कुछ चुनौतियां है जैसे अध्यापक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र–अध्यापकों में रूचि का अभाव है।वर्तमान में छात्रों का अध्यापक शिक्षा के प्रति आकर्षण कम हो रहा है। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है। कुछ निजी महाविद्यालयों में छात्र–अध्यापकों अनुपस्थित रहकर भी नियमित प्रवेश की सुविधा भी दी जाती है। अधिकांश महाविद्यालयों में अध्यापक शिक्षा से आधारभूत सुविधाओं का अभाव दिखाई देता है। इस क्षेत्र में विशेषज्ञ शिक्षकों की कमी है। शिक्षक शिक्षा के भारतीयकरण के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सरकार को अपनी भाषा नीति तथा पाठ्यक्रमों में आवश्यक तथा साथ ही चरित्र निर्माण तथा स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे। शिक्षक भारतीय संस्कृति और विरासत को समझें और इसके प्रति गौरव की भावना रखें। यह कार्यक्रम संवैधानिक एवं नैतिक मूल्यों के पालन को जीवन का अंग बनाने वाला होना चाहिए तथा शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम केवल बहु–विषयक शैक्षिक संस्थानों में ही आयोजित किए जाएँ। भारतीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमके अन्तर्गत इन सब बातों को ध्यान में रख कर ऐसी शिक्षक पीढ़ी का निर्माण किया जाए जो भारत को आत्मनिर्भर,सक्षम और समर्थ बनाते हुए परम वैभव के लक्ष्य के स्वप्न को खुली आंखों से देख सके।

1.प्रस्तावनाः–

प्राचीन काल में भारत शिक्षा का सर्वोच्च केन्द्र रहा है। तक्षशिला, नालंदा आदि ऐसे स्थान थे जहाँ पर भारत केविभिन्न राज्यों से ही नहीं वरन् विदेशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इसका कारण भारत की शिक्षा व्यवस्था का उत्कृष्ट व शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों का सुव्यवस्थित होना था। यद्यपि प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तरह शिक्षक प्रशिक्षण का कोई विधिवत् विधान नहीं था। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय अध्यापक को तैयार या प्रशिक्षित नहीं किया जाता था बल्कि वह अपने जीवन के अनुभवों से सीख कर ही अध्यापक बनता था और अपने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के अनुभवों से ही वह वास्वितक प्रशिक्षण प्राप्त करता था।

शिक्षक शिक्षा, दो शब्दों, शिक्षक एवं शिक्षा का समेकित रूप है, जिसमें शिक्षक शब्द का अर्थ सीखने एवं सिखाने वाले के रूप में तथा शिक्षा शब्द का अर्थ अध्यापन एवं ज्ञानाभिग्रहण के रूप में किया गया है। यहाँ दोनों ही शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से हुई है, जिसका शब्दकोशीय अर्थ है, सीखना, व अध्ययन करना तथा ज्ञानार्जन करना। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा का सामान्य अर्थ उस व्यक्ति की शिक्षा से है, जो सीखने एवं सिखाने का कार्य करता है। शिक्षक का समानार्थी शब्द गुरु

है, जो प्राचीन और वर्तमान भारत में अध्यापन करने वाले व्यक्तियों के लिए उपयोग में किया जाता है। प्राचीन भारत में शिक्षकों का प्रशिक्षण गुरुकुलों में स्वाभाविक रूप से अध्ययन–अध्यापन के दीर्घकालिक अनुभव के आधार पर होता था, जिसमें प्रज्ञा के साथ ही साथ उत्तम चरित्र का होना अनिवार्य शर्त थी। समयांतर में समाज में औपचारिक शिक्षा की बढ़ती माँग ने पेशेवर शिक्षकों के विकास की अवधारणा को बल दिया और शिक्षक शिक्षा की औपचारिक शुरुआत के लिए शिक्षक संस्थानों की स्थापना हुई।

किसी भी देश का भविष्य उस देश के अध्यापकों के हाथ में होता है क्योंकि किसी भी देश का भविष्य उस देश के बच्चे होते हैं और इन बच्चों या विद्यार्थियों को सही आकार देने का कार्य एक शिक्षक का ही होता है। अगर यह शिक्षकसही ढंग से प्रशिक्षित होगा तभी देश के भविष्य का निर्माण कर पाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी कहा गया है कि किसी भी समाज की संस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि कापता उस समाज में अध्यापकों के स्तर से पता चलता है। अध्यापक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धूरी है। अतः अध्यापकोंके निर्माण के लिए उचित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता है।बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। देश के इस भविष्य को आकार देने का कार्य शिक्षक का है। यदि शिक्षक स्वयंसुशिक्षित व प्रशिक्षित है तो वह देश के भविष्य को सही आकार दे पाएगा अन्यथा वही उसे विकृत कर देगा। शिक्षक के महत्वपूर्ण स्थान को देखते हुएविभिन्न आयोगों, समितियों आदि ने शिक्षक के प्रशिक्षण पर बल दिया।

2. शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम में चुनौतियांः–

शिक्षक शिक्षा, शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रम में उन युवाओं हेतु एक व्यावसायिक तैयारी है, जो शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करना चाहते हैं। यह व्यावसायिक तैयारी अनेक प्रकार की हो सकती है– परंपरागत अथवा वस्तुनिष्ठता से युक्त एवं आबद्ध, जिसका लक्ष्य है– विद्वता एवं खुलेपन के लिए समर्पित प्रगतिशील शिक्षक वर्ग की उपलब्धि, जो विद्यार्थियों की व्यक्तिपरकता अथवा आत्मनिष्ठा के प्रति अभिमुख हो।राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षक की एक आदर्श अवधारणा प्रस्तुत की गई है, जो प्राचीन भारतीय शिक्षकों की तरह विद्वता, नैतिक आचरण, कर्तव्य परायणता और विश्व के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील शिक्षक की कार्यप्रणाली की याद दिलाती है। इसके साथ ही यह नीति मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, सूचना–संचार की तकनीकों और अत्याधुनिक उपकरणों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने में समर्थ तथा आधुनिक नवाचारों एवं ज्ञान–विज्ञान में दक्ष शिक्षकों की अवधारणा प्रस्तुत करती है।

वैदिक काल से 18वीं शताब्दी तक भारतीय शिक्षण चिंतन का आधार धर्म, नैतिक जीवन तथा मूल्यों का संरक्षण रहा। गुरु शिष्य के सात्विक गहरे संबंध और सामूहिक जीवन का बोध इसका मार्ग रहा। इसी पद्धति से कृष्ण–सुदामा, अर्जुन–अश्वत्थामा एक साथ पढ़े। कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य, विद्यारण्य ने हरिहर व बुक्काराय तथा रामानन्द ने अपने बारह शिष्यों को तैयार किया, इसमें कहीं भी अमीर–गरीब, जात–पांत आदि शिक्षण प्रगति में बाधक नहीं बने। गत हजारों वर्षों से भारत के ऋषियों–मनीषियों ने अपने अध्ययन, अनुभवों, आचरण तथा अनुभूतियों से भारतीय जीवन मूल्यों के प्रतिमान स्थापित किये। शिक्षा में जीवन के चार पुरुषार्थों, धर्म के दस लक्षणों तथा संस्कारों की बृहद् योजना को जीवन मूल्यों की शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग माना गया। मूल्यपरक शिक्षा ने न केवल भारत में बल्कि विश्व में उन्नत सभ्यता तथा संस्कृति का मार्गदर्शन किया। मध्यकालीन भारत में अनेक आक्रमणकारियों, लुटेरों तथा घुसपैठियों ने राजनीतिक प्रहारों, आर्थिक लूटमार, सांस्कृतिक ध्वंस से देश को तहस–नहस किया, परन्तु भारत में मूल्यपरक शिक्षा ने अपना स्थान अक्षुण्ण बनाये रखा। सन्तों, भक्तों, गुरुओं ने अपनी वाणी तथा उपदेशों में शिक्षा में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा को सदैव सर्वोच्च बनाये रखा। भारत में मूल्यपरक शिक्षा पर पहला क्रूर प्रहार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों, ब्रिटिश प्रशासकों, ब्रिटिश इतिहासकारों तथा ईसाई पादरियों के द्वारा हुआ। भारत के ईसाईकरण तथा गुलामीकरण के प्रयास में उन्हें सर्वाधिक बाधा यहां की शिक्षा व्यवस्था लगी। भारतीय परतंत्रता के काल में भी मूल्यपरक शिक्षा को बनाये रखने के लिए कई महत्वपूर्ण उच्चकोटि के संस्थानों की स्थापना हुई। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का उद्देश्य जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण बताया। इसी भाँति ब्रिटिश परतंत्रता के काल में महर्षि अरविन्द ने पांडेचेरी आश्रम में तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्वभारती में शिक्षा की व्यापक दृष्टि को बनाये रखा।

आश्चर्यजनक बात यह है कि भारत, स्वतंत्र होते ही अपने शिक्षा मार्ग की दिशा से भ्रमित हो गया। शिक्षा का स्वरूप पाश्चात्य अथवा यूरोपीय मॉडल पर ही घसीटा जाता रहा, बल्कि अंग्रेजों से भी अधिक प्रभावी ढंग से अग्रसर हुआ। भारत में पाश्चात्यीकरण को ही आधुनिकता का पर्याय एवं मार्गदर्शक मान लिया गया। भारतीय मानसिकता में दासता का नया दौर प्रारंभ हुआ। शैक्षणिक स्तर पर गिरावट ने सामाजिक विघटन, अस्त–व्यस्त अर्थ रचना, राजनीतिक पतन तथा सांस्कृतिक ह्रास को तीव्रता से बढ़ावा दिया। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए सांस्कृतिक धरोहर तथा सामाजिक परम्परा वर्तमान शिक्षा प्रणाली से असम्बद्ध है। आध्यात्मिक ज्ञान के बिना कोरा वैज्ञानिक ज्ञान अधूरा है तथा नैतिकता के अभाव में बौद्धिक विकास का केवल भौतिक महत्व है। चारित्रिक ह्रास की आर्थिक विकास द्वारा कदापि क्षतिपूर्ति नहीं होसकती। विदेशी विश्वविद्यालयों का मोह तथा शिक्षा का व्यावसायीकरण देश के लिए घातक तथा विनाशकारी है।

यूनेस्को की डेलर्स रिपोर्ट में कहा गया कि किसी भी देश की शिक्षा का स्वरूप तथा जड़ें उस देश की संस्कृति में होनी चाहिए। वस्तुतः शिक्षा लौकिक तथा पारलौकिक उन्नत जीवन को स्थापित करने वाली होनी चाहिए। शिक्षा राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास तथा आत्म गौरव बढ़ाने वाली हो। शिक्षा का स्वरूप संवैधानिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। वर्तमान में शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम मेंनिम्न चुनौतियां का सामना करना पड़ रहा हैः–

- वर्तमान में अध्यापक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र–अध्यापकों में रूचि का अभाव है। इस कार्यक्रम को केवल खाना–पूर्ति ही बना दिया गया है।
- वर्तमान में छात्रों का अध्यापक शिक्षा के प्रति आकर्षण कम हो रहा है। क्योंकि इसे पूरा करने के पश्चात् सरकारी क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएं बहुत कम हैं तथा निजी क्षेत्र में अध्यापन कार्य के लिए वेतन बहुत कम दिया जाता है। निजि संस्थाओं में अध्यापकों का शोषण हो रहा है तथा उन्हें नाममात्र की ही सुविधाएं मिलती हैं।
- वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है। जिसके कारण अध्यापक शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है।
- अधिकांश निजी महाविद्यालयों में योग्य व उचित मात्रा में स्टाफ नहीं रखा जाता है क्योंकि इसके लिए उन्हें अधिक वेतन देना होता है। अध्यापन के लिए अयोग्य व कम वेतन के अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं, जिनको पूरा ज्ञान नहीं होता है।
- कुछ निजी महाविद्यालयों में छात्र–अध्यापकों अनुपस्थित रहकर भी नियमित प्रवेश की सुविधा भी दी जाती है। इस कारण छात्र–अध्यापकों के कारण अध्यापन शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है जो चिन्ता का विषय है और यह अध्यापक शिक्षा के सुधार के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है।
- अध्यापक शिक्षा के अंतर्गत शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाएं, वैज्ञानिक उपकरण उन्नत पुस्तकालय का होना आवश्यक है। परन्तु अधिकांश महाविद्यालयों में अध्यापक शिक्षा से संबधिंत इन सुविधाओं का अभाव दिखाई देता है। इस कारण ऐसे महाविद्यालय एक योग्य व कुशल अध्यापक बनाने में विफल रहते हैं। ऐसे अध्यापकों मे व्यवहारिक ज्ञान की भी कमी होती है।
- शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम एक विशेषीकृत कार्यक्रम है, जिसमें बाल–व्यवहार एवं मनोविज्ञान, अध्ययन–अध्यापन की तकनीक एवं शिक्षणशास्त्र, आकलन अथवा मूल्याकन तथा मार्गदर्शन एवं निर्देशन जैसे अनेक विषयों से संबंधित विशेषज्ञीय सेवा की आवश्यकता होती है। शिक्षाशास्त्र मात्र विषयों को ही पढ़ाने का नाम नहीं है। ऐसे में सवाल यह है कि अप्रशिक्षित एवं मात्र अपने विषय (गणित, अंग्रेजी, दर्शनशास्त्र, करता इत्यादि) में विशेषज्ञता रखने वाले व्यक्ति भावी शिक्षको का कैसे प्रशिक्षण दे सकते हैं, शिक्षक शिक्षा जैसे विशेषीकृत कार्यक्रम में मात्र अपने विषय का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भविष्य के शिक्षक कैसे तैयार करेंगे, यह एक व्यावहारिक समस्या है।
- भावी शिक्षक के मानसिक विकास के लिए कक्षा, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, गतिविधि कक्ष एवं समिति कक्ष के साथ–साथ शारीरिक विकास के लिए एक खेल का मैदान और व्यायामशाला की आवश्यकता होगी। वर्तमान में, अधिकांश संस्थानों में इन सुविधाओं का अभाव है।

- शिक्षक की भूमिका में एक बड़ी तब्दीली आई है, उसे अब तक ज्ञान के स्रोत के केंद्र रूप में स्थान मिलता रहा है और वही समूची सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का संरक्षक एवं प्रबंधक रहा है। अब उसकी भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी, जो सूचना का ज्ञान अथवा बोध में बदलने की में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करे।
- अध्यापक आदर्श पाठों का आयोजन करने मे रूचि नहीं लेते। वे इसमें लापरवाही करते है, केवल खानापूर्ति करते है। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनायें बड़ी पुरानी व परम्परागत होती हैं। कुछ पाठों को बिना पढ़ाये विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिये जाते है।

3. शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में सुधार के संबंध में सुझावः–

उपर्युक्त चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए इक्कीसवीं सदी की शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा कार्यक्रम विकसित किया जाए, जिसमें निम्नलिखित अपेक्षाओं को पूर्ण करने की क्षमता होः

- शिक्षा के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सरकार को अपनी भाषा नीति तथा पाठ्यक्रमों में आवश्यक तथा साथ ही चरित्र निर्माण तथा स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे।
- शिक्षक को अपने विषय की विशेषज्ञता के साथ–साथ अन्य विषयों का सामान्य ज्ञान होना चाहिए ताकि वह समग्र शिक्षण की अवधारणा को मूर्तरूप दे सकें।
- शिक्षक, आजीवन सीखने वाले की भूमिकामें होना चाहिए ताकि वह लगातार स्वयं को विकसित कर सके।
- अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और रुचि होनी चाहिए।
- भारतीय संस्कृति और विरासत को समझें और इसके प्रति गौरव की भावना रखें।
- आधुनिक सूचना–संचार प्रौद्योगिकी और शैक्षिक नवाचारों के साथ–साथ इन्हें उपयोग करने की क्षमता की भी समझ होनी चाहिए।
- अध्ययन, शिक्षण, अनुभव और अनुसंधान के माध्यम से स्वयं को प्रासंगिक बनाए रखने एवं कौशलात्मक सुधार के लिए उत्सुक होना चाहिए।
- संवैधानिक एवं नैतिक मूल्यों के पालन कोजीवन का अंग बनाने वाला होना चाहिए।
- अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में नवाचारों की खोज एवं तदनुरूप स्व–अध्ययन शैली में परिवर्तन के प्रति तत्पर होना चाहिए।
- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम केवल बहु–विषयक शैक्षिक संस्थानों में ही आयोजित किए जाएँ।
- समाज की आवश्यकताओं को साकार करने वाली नई माँग आधारित शिक्षण संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए।
- प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को आकर्षित करनेके लिए विद्यार्थीवृत्ति की व्यवस्था के साथ हीसाथ जरूरतमंद प्रशिक्षओं की मदद करना।
- गुणवत्ता की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय परीक्षणसंस्थान द्वारा आयोजित विषय और शिक्षकयोग्यता परीक्षा के आधार पर शिक्षक शिक्षासंस्थानों में प्रवेश।
- शिक्षकों के रूप में काम करने वाले सभी शिक्षकों को अपने व्यावसायिक को जारी रखने के लिए प्रेरणा और सुविधाएँ दी जाएँ।

4. निष्कर्शः–

शिक्षा किसी राष्ट्र के नव निर्माण एवं प्रगति की आधारशिला होती है। जिसके द्वारा देश की समृद्ध प्रतिभा एवं संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिये किया जाता है।इसके लिए आवश्यक है कि भारी–भरकम परीक्षाओं पर जोर देने के बजाय मूल्यांकन के

तंत्र को बुनियादी तौर पर बदल दिया जाए ताकि विद्यार्थियों के व्यवहार में व्यापक परिवर्तन लाया जा सके।स्कूली शिक्षा में सुधार के लिये शिक्षण विधियों, प्रशिक्षण और परीक्षण की विधियों में भी सुधार करने की जरूरत है। अभी शिक्षण की विधियाँ राज्य स्तर से तय की जाती हैं, जिनमें कक्षागत शिक्षण कौशलों को या तो नकार दिया जाता है या उन्हें परिस्थितिजन्य मान लिया जाता है।शिक्षकों के अच्छे प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण का दायित्व कर्त्तव्यनिष्ठ, योग्य और क्षमतावान प्रशिक्षकों को सौंपा जाना चाहिये। शिक्षकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने, शिक्षण में नवाचारी पद्धतियों का विकास करने सहित परीक्षण/मूल्यांकन की व्यापक प्रविधियाँ तय कर उन्हें व्यावहारिक स्वरूप में लागू करने की दिशा में कारगर कदम उठाने चाहिये। शिक्षा के आधार पर चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास ही शिक्षा के भारतीय प्रतिमान में प्रतिबिंबित होना चाहिये। शिक्षा देश की संस्कृति के अनुरूप, जीवन के लक्ष्यों का बोध करवाने वाली और उस के अनुरूप सामर्थ्य उत्पन्न करने वाली होनी चाहिये। शिक्षा धर्मनिष्ठ होने के साथ साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा चुनौतियों का सामना करने वाली होनी चाहिये।भारतीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमके अन्तर्गत इन सब बातों को ध्यान में रख कर ऐसी शिक्षक पीढ़ी का निर्माण किया जाए जो भारत को आत्मनिर्भर,सक्षम और समर्थ बनाते हुए परम वैभव के लक्ष्य के स्वप्न को खुली आंखों से देख सके।

संदर्भ–ग्रंथ सूचीः–

- शर्मा, डॉ. प्रवीण, वर्तमानकालीन अध्यापक शिक्षा के सशक्त पहलू व उसके समक्ष चुनौतियाँ, https://ijcrt.org/papers/IJCRT1703074.pdf
- मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र (2014),"शिक्षा का भारतीयकरण आवश्यक"https://panchjanya.com/2014/08/02/209918/archive/r14d46fc7/
- अधिगम एवं शिक्षण (2017), हल्द्वानीः शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उतराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
- पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा (2009), नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई शिक्षा नीति 2020 : एक शैक्षणिक नवाचार

श्रीमती मेनका जाखड़ (शोधार्थी–शिक्षा)
IASE (DEEMED TO BE UNIVERSITY)
SARDARSHAHR, CHURU, RAJ.
मो. 7891009588

सारांष

नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्षों पश्चात् आई इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व–प्राथमिक शिक्षा (3–6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है।

नई शिक्षा नीति 2020 का परिचय

उचित बुनियादी शिक्षा प्राप्त करना भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। सुखी जीवन जीने के लिए तैयार होने के लिए एक बच्चे के विकास में शिक्षा बेहद महत्वपूर्ण तत्व है। 21वीं सदी में 1986 के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बदलाव जुलाई 2020 में हुआ और यह नई शिक्षा नीति 2020 के रूप में सामने आई।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव लाने के लिए 34 वर्षों के अंतराल के बाद; जुलाई 2020 में हमारी केन्द्रीय सरकार द्वारा एक नई शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य छात्रों की सोच और रचनात्मक क्षमता को बढ़ाकर सीखने की प्रक्रिया को और अधिक कुशल बनाना। नई शिक्षा नीति में स्कूल स्तर के साथ–साथ उच्च शिक्षा में कई बदलाव शामिल हैं।

29 जुलाई 2020 को कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में नई शिक्षा नीति बनाई गई। यह शिक्षा के क्षेत्र में सरकार द्वारा की गई उत्कृष्ट पहल है। वर्ष 2030 तक इस नीति को पूर्ण रूप से लागू करने की आशा है। उचित बुनियादी शिक्षा प्राप्त करना भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है।

गौरतलब है कि आजादी के बाद भारत में पहली शिक्षा नीति सन 1986 में बनाई गई थी जो मुख्यतः लॉर्ड मैकाले की अंग्रेजी प्रधान शिक्षा नीति पर आधारित थी। इसमें सन 1992 में कुछ संशोधन भी किए गए किंतु इसका ढांचा मूलतः अंग्रेजी माध्यम शिक्षा पर ही केंद्रित रहा।

आज समय के साथ हमें यह महसूस हुआ कि 1986 की वह शिक्षा नीति में कुछ खामियां हैं इसके तहत बच्चा ज्ञान तो हासिल कर रहा है किन्तु यह ज्ञान उससे भविष्य में रोजगार के अवसर पैदा करने योग्य नही बन पा रहा हैं।
अतः इन कमियों को दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाने की आवश्यकता पड़ी।

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की ऐसी पहली शिक्षा नीति है, जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए आने वाली आवश्यकता को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और उसके सांस्कृतिक मूल्यों को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्य, जिसके अंतर्गत शिक्षा व्यवस्था उसके नियमों का वर्णन सहित सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमता के विकास पर जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा से ना केवल साक्षरता, उच्च स्तर की तार्किक और

समस्या समाधान संबंधित संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए बल्कि नैतिक सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा 2030 तक नीतिगत पहलुओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से नई शिक्षा नीति तैयार की गई है। यह मौजूदा शिक्षा नीति में पूर्ण परिवर्तन है जिसे अंतिम बार 1986 में लागू किया गया था। यह विद्यार्थी की आत्म–क्षमताओं और अवधारणा पर आधारित सीखने की प्रक्रिया है न कि रटने वाली प्रक्रिया।

नई शिक्षा नीति सीखने के लिए पुस्तकों का बोझ बढ़ाने के बजाय व्यावहारिक शिक्षा को बढ़ाने पर ज्यादा केंद्रित है। छात्रों को पाठ्यक्रम के विषयों के साथ–साथ सीखने की इच्छा रखने वाले पाठ्यक्रम का चयन करने की भी स्वतंत्रता होगी, इस तरह से कौशल विकास को भी बढ़ावा मिलेगा।यह 10+2 सिस्टम को 5+3+3+4 संरचना के साथ बदल देता है, जिसमें 12 साल की स्कूली शिक्षा और 3 साल की प्री–स्कूलिंग होती है।

नई शिक्षा निति का मुख्य उद्देश्य एक बच्चे को कुशल बनाने के साथ–साथ, जिस भी क्षेत्र में वह रुचि रखता हैं, उसी क्षेत्र में उन्हें प्रशिक्षित करना है। इस तरह, सीखने वाले अपने उद्देश्य, और अपनी क्षमताओं का पता लगाने में सक्षम होते हैं। नई शिक्षा नीति में शिक्षक की शिक्षा और प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के सुधार पर भी जोर दिया गया है।

- वर्तमान शिक्षा प्रणाली वर्ष 1986 की मौजूदा शिक्षा नीति में किए गए परिवर्तनों का परिणाम है। इसे शिक्षार्थी और देश के विकास को बढ़ावा देने के लिए लागू किया गया है। नई शिक्षा नीति बच्चों के समग्र विकास पर केंद्रित है। इस नीति के तहत वर्ष 2030 तक अपने उद्देश्य को प्राप्त करने का लक्ष्य है।
- नई शिक्षा नीति पहले की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का पुनर्मूल्यांकन है। यह नई संरचनात्मक रूपरेखा द्वारा शिक्षा की संपूर्ण प्रणाली का परिवर्तन है।
- नई शिक्षा नीति में रखी गई दृष्टि प्रणाली को एक उच्च उत्साही और ऊर्जावान नीति में बदल रही है। शिक्षार्थी को उत्तरदायी और कुशल बनाने का प्रयास होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ढांचा

- वर्तमान नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की जगह ले चुकी है।
- नई शिक्षा नीति के बारे में चर्चा जनवरी 2015 में कैबिनेट सचिव टीएसआर सुब्रमणियन के नेतृत्व में समिति द्वारा शुरू की गई थी और 2017 में समिति द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।
- 2017 की रिपोर्ट के आधार पर बनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक मसौदा, 2019 में पूर्व इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) प्रमुख कृष्णस्वामी कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में नई टीम द्वारा प्रस्तुत किया गया था।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जनता और हितधारकों के साथ परामर्श के बाद मसौदा नई शिक्षा नीति की घोषणा की गई थी।
- नई शिक्षा नीति 29 जुलाई, 2020 को अस्तित्व में आई।

नई शिक्षा नीति के लाभकारी प्रभाव

- यह सीखने वाले की आत्म–क्षमता, संज्ञानात्मक कौशल पर जोर देता है। यह एक बच्चे को अपनी प्रतिभा विकसित करने में मदद करेगा यदि वे जन्मजात प्रतिभावान हैं तो।
- पहले छात्रों के पास अध्ययन के लिए केवल एक ही विषय चुनने का विकल्प था, लेकिन अब अलग–अलग विषय चुन सकते हैं, उदाहरण के लिए दृ गणित के साथ–साथ कला और शिल्प का भी विकल्प चुन सकते हैं।

- हर विषय पर समान रूप से व्यवहार करने पर जोर।
- इस नीति का मुख्य उद्देश्य छात्रों के बीच नवीन विचारों के समावेश के साथ सहभागिता, महत्वपूर्ण सोच और तर्क करने की क्षमता को विकसित करना है।
- स्नातक पाठ्यक्रमों में कई विषय विकल्प छात्रों को अनुभव से लाभान्वित करने और इस बीच कहीं काम करने से कौशल प्राप्त करने और फिर बाद में जारी रखने का अवसर प्रदान करेंगे।
- नई शिक्षा नीति किसी भी विषय को सीखने के व्यावहारिक पहलू पर केंद्रित है, क्योंकि यह अवधारणा को समझने का एक बेहतर तरीका माना जाता है।
- 2040 तक सभी संस्थान और उच्च शिक्षण संस्थान बहु–विषयक बन जाएंगे।

नई शिक्षा नीति के सकारात्मक परिणाम

- नई शिक्षा नीति में मातृभाषा पर विशेष जोर दिया गया है जिससे बच्चा बचपन से ही अपनी मातृभाषा को अच्छे से समझ और जान पाएगा।
- इस नई नीति के तहत यदि कोई बच्चा अपनी उच्च शिक्षा पूरी कर पाने में असमर्थ है या 3 वर्ष का कोर्स पूरा नहीं कर पाता है तो भी उसका नुकसान नहीं होगा उसे सर्टिफिकेट, डिप्लोमा प्राप्त हो पाएगा। जिसका उपयोग वह रोजगार के क्षेत्र में कर पाएगा।
- छठी कक्षा से ही बच्चों को इंटर्नशिप कराई जाएगी जिससे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- शिक्षा नीति में कोडिंग को भी शामिल किया गया है, यानी बच्चे मात्र किताबी और व्यावहारिक ज्ञान ही नहीं अपितु तकनीकी क्षेत्र में भी बेहतर प्रदर्शन कर पाएंगे।
- कुल मिलाकर यह नीति बच्चे के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करेगी।

2020 में नई शिक्षा नीति 30 वर्षों के बाद आई और भारत की मौजूदा शैक्षणिक प्रणाली को अकादमिक के अंतरराष्ट्रीय स्तर के बराबर बनाने के उद्देश्य से बदलने के लिए पूरी तरह तैयार है। भारत सरकार का लक्ष्य वर्ष 2040 तक एनईपी की स्थापना करना है। लक्षित वर्ष तक, योजना का मुख्य बिंदु एक–एक करके लागू किया जाना है।

एनईपी 2020 द्वारा प्रस्तावित सुधार केंद्र और राज्य सरकार के सहयोग से लागू होगा। कार्यान्वयन रणनीति पर चर्चा के लिए केंद्र और राज्य दोनों स्तर के मंत्रालयों के साथ विषयवार समितियों का गठन किया जाएगा।

निष्कर्ष

नई शिक्षा नीति कई उपक्रमों के साथ रखी गई है जो वास्तव में वर्तमान परिदृश्य की जरूरत है। नीति का संबंध अध्ययन पाठ्यक्रम के साथ कौशल विकास पर ध्यान देना है। किसी भी चीज के सपने देखने से वह काम नहीं करेगा, क्योंकि उचित योजना और उसके अनुसार काम करने से केवल उद्देश्य पूरा करने में मदद मिलेगी। जितनी जल्दी एनईपी के उद्देश्य प्राप्त होंगे, उतना ही जल्दी हमारा राष्ट्र प्रगति की ओर अग्रसर करेगा।

सन्दर्भ

- "नई शिक्षा नीतिः पढ़ाई, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब में होंगे ये बड़े बदलाव". आज तक. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- "नई शिक्षा नीति पर BJP अध्यक्ष जेपी नड्डा बोले– नई शिक्षा नीति नए भारत की जरूरतों को ध्यान में रखती है". पंजाब केसरी. 29 जुलाई 2020. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- "नई शिक्षा नीति–2020ः प्रमुख पॉइंट्स एक नजर में". 30 जुलाई 2020. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- "आइए जानें आखिर देश की शिक्षा प्रणाली को बदलने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की जरूरत क्यों पड़ी". दैनिक जागरण. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.

- नई शिक्षा नीतिः पढ़ाई, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब में होंगे ये बड़े बदलाव". आज तक. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- "नई शिक्षा नीति 2020 : स्कूल एजुकेशन, बोर्ड एग्जाम, ग्रेजुएशन डिग्री में हुए बड़े बदलाव, जानें 20 खास बातें". हिन्दुस्तान लाइव. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- सिंह, प्रोफेसर दिनेश (29 जुलाई 2020). "स्कूली और उच्च शिक्षा की बेड़ियां खोलेगी नई शिक्षा नीति". द क्विंट. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.
- "नई शिक्षा नीति से कितनी बदलेगी शिक्षा व्यवस्था ? जानिए—क्या कहते हैं जानकार". आज तक. अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2020.
- "नई शिक्षा नीति का समर्थन कर शशि थरूर बोले— कई लक्ष्य सच्चाई से परे, बजट पर चिंता". आज तक. अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2020.
- सिंह, सरोज (30 जुलाई 2020). "नई शिक्षा नीति 2020: सिर्फ़ आर. एस. एस. का एजेंडा या आम लोगों की बात भी". बीबीसी हिन्दी. अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2020.

शिक्षक शिक्षा में संपूर्ण गुणात्मक प्रबंध

डॉ. अल्पना शर्मा
सहायक आचार्या
संजय टी.टी. कॉलेज, जयपुर

मुकेश कुमार शर्मा
सहायक आचार्य
मोहनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड. कॉलेज
लक्ष्मणगढ़ (सीकर)
मो. न. 9649633330
email- sharmamukesh007@gmail.com

शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्राप्त कराना शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य है। शिक्षा अपने मौलिक उद्देश्य से जितनी दूर होती जाएगी उसकी गुणवत्ता भी उसी क्रम में घटती जाएगी। हमें सिर्फ इस बात से ही संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि हमनें पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली है। जीने के लिए साक्षर अथवा शिक्षित होना जरूरी है लेकिन उससे ज्यादा जरूरी गुणात्मक शिक्षा लेना है। शिक्षा का अर्थ प्रमाणपत्र या डिग्री आदि प्राप्त करना या जीविकोपार्जन हेतु धन कमाना ही नहीं है। इसका अर्थ उस कौशल अर्जन से भी नहीं है जिससे व्यक्ति धन, आराम व मनोरजंन प्राप्त कर सके। शिक्षा जो प्रत्येक नागरिक को शारीरिक ,मानसिक, सामाजिक, आर्थिक ,आध्यात्मिक,राजनैतिक व नैतिक रूप से मजबूत बनाए। अर्थात ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को सुसंस्कृत ,जिम्मेदार ,शान्ति प्रिय तथा मानवीय और अमानवीय व्यवहार पद्वति के प्रति संवेदनशील बनाए। ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को पर्यावरण स्नेही, वैचारिक रूप से व्यावहारिक, संवेगात्मक रूप से स्थिर , राजनैतिक रूप से जिम्मेदार, सामाजिक रूप से क्रियाशील व स्वीकार्य, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर तथा नैतिक रूप से पवित्र व अनुकरणीय बनाने में सक्षम हो तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास कर सकें, वह गुणात्मक शिक्षा है।

संपूर्ण गुणवत्ता आधारित शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा के स्तर का ग्राफ उठने की अपेक्षा गिरता जा रहा है। शिक्षा में हो रहे ह्रास के लिए किसी एक को दोषी ठहराना जायज नहीं होगा। सन् 1970 तक शिक्षण संस्थानों की संख्या कम थी और शिक्षा के स्तर में भी कोई खास गिरावट नहीं आई थी लेकिन 1980 के बाद राजस्थान ही नहीं पूरे देश में शिक्षण संस्थानों की संख्या में खूब इजाफा हुआ और कुकरमुत्ते की तरह बिना कोई मापदण्ड के वृद्धि हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि जिन पवित्र उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संस्थानों को कार्य करना था उनको गौण कर दिया और धन कमाने की फैक्ट्री अधिक समझने लग गये। वर्तमान में न तो अधिकतर शिक्षक अपना दायित्व ईमानदारी से निभा रहे हैं और न ही शिक्षण संस्थान अपना कार्य प्रभावी ढंग से कर रहे है। जहां प्रत्येक विषय का ज्ञान सात वर्श में दुगुना हो जाता है वहां पाठ्यक्रम में भी कोई विशेष नवीनता नहीं आई है और ज्यादातर अध्यापन नवीन शिक्षण विधियों की अपेक्षा परंपरागत विधियों से हो रहा है। नवीन शिक्षा तकनीक का बहुत कम प्रयोग किया जा रहा है। इस समय हमें जनता को शिक्षित करने की आवश्यकता है लेकिन हमारी गाडी अभी निरक्षरता के दलदल से भी नहीं निकल पाई है। अतः वर्तमान में हमें गुणात्मक स्तर की शिक्षा में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

गुणात्मक शिक्षा के उद्देश्य

अच्छी शिक्षण संस्थाएं छात्रों को स्वायत्ता तथा उत्तरदायित्व के मध्य सुरक्षात्मक जीवन जीने के अवसर देकर उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं । यह तभी संभव होगा जब शिक्षक मानवीय संसाधन व शिक्षण संस्थाओं के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से अपने कर्तव्य का निर्वाह करें। आधुनिक व लोकतांत्रिक समाज को समृद्ध व शक्तिशाली बनाने के लिए गुणात्मक शिक्षा देने के निम्नांकित उद्देश्य हैं–

1. उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।
2. नवीनतम व तकनीकी आधारित शिक्षा प्रदान करना जो छात्रों के भविश्य निर्माण में सहायक हो।
3. देश की एकता व उन्नति के लिए ऐसी शिक्षा प्रदान करना, जो उत्प्रेरक की भूमिका का निर्वाह करे।

4. छात्रों की व्यवसाय आधारित श्रेष्ठ दक्षताओं को प्रशिक्षण द्वारा उजागर करना, जो रोजगार सुलभ कौशल विकसित कर सके।
5. कार्य संस्कृति का विकास करना, जिससे छात्रों में कर्त्तव्य निर्वाह की भावना का विकास हो सके।
6. आपसी सहयोग, अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता,समाजवाद तथा भ्रातृत्व का विकास करना जिससे छात्र एक दूसरे की भावना की भावना का आदर करते हुए कार्य करें।
7. मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना,अर्थात शारीरिक, मानसिक,बौद्धिक,भावात्मक व आध्यात्मिक पहलुओं का पूर्ण रूप से विकास करना।

गुणात्मक शिक्षा को प्रभावित करने वाले घटक

गुणात्मक शिक्षा को प्रभावित करने वाले घटक मुख्यतः निम्नांकित है–

1. शिक्षा देने वाले अभिकरण
2. शिक्षक
3. पाठ्यक्रम
4. शिक्षण विधि व प्रविधि और
5. मूल्यांकन

शिक्षक शिक्षा में संपूर्ण गुणात्मक प्रबंध का महत्व

शिक्षण संस्था के भौतिक वातावरण का विद्यार्थियों पर सब तरह का असर पड.ता है शिक्षण संस्था का शैक्षिक वातावरण रूचिकर उत्साह बढाने वाला हो तो विद्यार्थी भी अच्छा कार्य करते है। गुणात्मक शिक्षा में शिक्षक का योगदान अग्रलिखित प्रकार से संभव है–

1. **शिक्षकों द्वारा अच्छे आचरण की शिक्षा को बढावा देना –** बालक –बालिकाओं में अच्छे आचरण की शिक्षा देने से पूर्व शिक्षकों का सदाचरण होना चाहिए क्योकि विद्यार्थी अध्यापक की बातों का अनुकरण करते है। वे अभिभावकों की अपेक्षा अध्यापकों का अनुकरण अधिक करते हैं अतः शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों में अच्छे संस्कारों का विकास करने से शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदर्शित करेंगे।

2. **मनोबल बढ.ाना**– समस्त विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देशों में अध्यापकों को सामाजिक,आर्थिक ,शैक्षिक व प्रशासनिक दृष्टि से उत्तम माना गया है अतः अध्यापकों को भी छात्र –छात्राओ का मनोबल बढाना चाहिए। कई बार अध्यापक छात्र को कहते है कि तुम्हें यह प्रश्न भी नहीं आया जबकि अन्य लडको से तुम बहुत कमजोर हो। इस प्रकार के कथन नहीं करने चाहिए जो छात्र मनोबल पर प्रतिकूल असर करे। अतः अध्यापकों द्वारा मनोबल बढ.ाने का प्रयास होना चाहिए जिससे गुणवता आधारित शिक्षा दी जा सके।

3. **बाल केन्द्रित शिक्षण व शिक्षण विधि –** शिक्षण करते समय अध्यापक को विद्यार्थियों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखना चाहिए। अगर छात्र के मन लगाने से अधिगम हो जाता है इसका तात्पर्य शिक्षण रूचिकर है। अतः बालक –बालिकाओं की आयु, स्तर ,रूचि एवं आवश्यकता के अनुसार शिक्षण करवाना बालक केन्द्रित शिक्षण है। बालक केन्द्रित शिक्षण के लिए आवश्यक साधनों की पर्याप्त मात्रा होगी तभी हम खेल–खेल में रूचिकर शिक्षण प्रदान कर सकते हैं। शिक्षक को आवश्यकतानुसार शिक्षण विधियों में परिवर्तन भी करना चाहिए उसे किसी विशेष विधि तक सीमित होकर कार्य नहीं करना चाहिए।

4. **बालक को सीखने के अवसर –** शिक्षण संस्था से जुड.ने वाले प्रत्येक बालक –बालिका को कुछ नया करने का अवसर देना होगा ताकि उसे शिक्षण संस्था आने में खुशी एवं आनन्द का अनुभव हो और सीखने में भी रूचि पैदा हो सके। शिक्षा पद्धति ऐसी हो कि शिक्षक व छात्र दोनो सीखे। शिक्षक पोस्टमैन की तरह नही होना चाहिए कि बन्द बक्से में से लिफाफे को निकालकर छात्रों की तरफ फेक दें। दोनों के बीच अतः क्रिया होनी चाहिए। इस प्रकार के आनन्दमयी व रूचिपूर्ण शिक्षण में सीखने की सामग्री का प्रयोग एक प्रभावकारी कदम है।

5. **जन भागीदारी–** शिक्षक अपने मृदु एवं उत्कृष्ट व्यवहार से ग्रमीणों की सोच को शिक्षण संस्था विकास में सहयोग के लिए बढ.ा सकते है उन्हें बालक–बालिकाओं की शिक्षा से होने वाले फायदों के बारे में बताना चाहिए जिससे शिक्षा में मजबूती आ सके। अतः अध्यापकों द्वारा समय–समय पर अभिभावकोंसे उनकी समस्याओं की जानकारी कर उनके निराकरण में सहयोग दिया जाना चाहिए। अतः शैक्षिक समस्याओं को जन भागीदारी द्वारा आसानी से समाधान किया जा सकता है।

6. **शिक्षण संस्था में वृक्षारोपण–** शिक्षण संस्था के वातावरण को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षण संस्था चारदीवारी में वृक्षारोपण भी किया जाना चाहिए जिससे हरे –भरे व फलों से लदे पेड. –पौधे अच्छे आचरण के लिए प्रेरित करते प्रतीत हो। इससे छात्र भी प्रकृति की शरण में स्वछन्द होकर शिक्षण अधिगम कार्य में रूचि ले सकते है। शिक्षण संस्था के महत्वपूर्ण स्थानों पर विविध सूक्तियों तथा प्रेरणापद उद्धरणों को लिखा जाना चाहिए।इन सबका विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पडता है। इससे शिक्षण संस्था का वातावरण सौम्य व प्राकृतिक रूप से घर जैसा महसूस होगा और विद्यार्थी शिक्षण में अधिकाधिक रूचि लेगा।

7. **भयमुक्त वातावरण बनाना –** बालक–बालिकाएं अध्यापकों के डराने से नियमित रूप से शिक्षण संस्था नही जा पाते है। इसमें सभी अध्यापकों का दोष नही है लेकिन कुछेक अध्यापकों के कारण बालकों के शिक्षण संस्था छोड.ने की नौबत आ जाती है। शिक्षण संस्था में भयमुक्त वातावरण बनाने के लिए हम अध्यापकों को ही पहल करनी होगी। हम बालक को डराने के बजाए प्रेम करें तो निश्चित रूप से छात्र असंतोष कम होगा तथा अध्यापक व शिक्षण संस्था के प्रति छात्रों का स्वच्छ व सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा होगा जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढनें में आसानी होगी।

सारांश–

शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्राप्त कराना शिक्षा का मूलभूत उददेश्य है। शिक्षा अपने मौलिक उद्देश्य से जितनी दूर होती जाएगी उसकी गुणवत्ता भी उसी क्रम में घटती जाएगी। हमें सिर्फ इस बात से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए कि हमनें पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली है।

वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा के स्तर का ग्रफ उठने की अपेक्षा गिरता जा रहा है। शिक्षा में हो रहे ह्रास के लिए किसी एक को दोषी ठहराना जायज नहीं होगा। सन् 1970 तक शिक्षण संस्थानों की संख्या कम थी और शिक्षा के स्तर में भी कोई खास गिरावट नहीं आई थी लेकिन 1980 के बाद राजस्थान ही नहीं पूरे देश में शिक्षण संस्थानों की संख्या में खूब इजाफा हुआ और कुकरमुत्ते की तरह बिना कोई मापदण्ड के वृद्धि हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि जिन पवित्र उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संस्थानों को कार्य करना था उनको गौण कर दिया और धन कमाने की फैक्ट्री अधिक समझने लग गये। वर्तमान में न तो अधिकतर शिक्षक अपना दायित्व ईमानदारी से निभा रहे हैं और न ही शिक्षण संस्थान अपना कार्य प्रभावी ढंग से कर रहे हैं। जहां प्रत्येक विषय का ज्ञान सात वर्श में दुगुना हो जाता है वहां पाठ्यक्रम में भी कोई विशेष नवीनता नहीं आई है और ज्यादातर अध्यापन नवीन शिक्षण विधियों की अपेक्षा परंपरागत विधियों से हो रहा है। नवीन शिक्षा तकनीक का बहुत कम प्रयोग किया जा रहा है।

जीने के लिए साक्षर अथवा शिक्षित होना जरूरी है लेकिन उससे ज्यादा जरूरी गुणात्मक शिक्षा लेना है। शिक्षा का अर्थ प्रमाणपत्र या डिग्री आदि प्राप्त करना या जीविकोपार्जन हेतु धन कमाना ही नहीं है। इसका अर्थ उस कौशल अर्जन से भी नहीं है जिससे व्यक्ति धन, आराम व मनोरजंन प्राप्त कर सके। अर्थात ऐसी शिक्षा जो प्रत्येक नागरिक को शारीरिक ,मानसिक, सामाजिक, आर्थिक ,आध्यात्मिक,राजनैतिक व नैतिक रूप से मजबूत बनाए। अर्थात् ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को सुसंस्कृत ,जिम्मेदार ,शान्ति प्रिय तथा मानवीय और अमानवीय व्यवहार पद्वति के प्रति संवेदनशील बनाए। ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को पर्यावरण स्नेही, वैचारिक रूप से व्यावहारिक, संवेगात्मक रूप से स्थिर , राजनैतिक रूप से जिम्मेदार, सामाजिक रूप से

क्रियाशील व स्वीकार्य, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर तथा नैतिक रूप से पवित्र व अनुकरणीय बनाने में सक्षम हो तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास कर सकें, वह गुणात्मक शिक्षा है।

भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवन दृष्टि

सुश्री नीतू शेखावत
बी.एड. छात्रा
बालाजी टी.टी कॉलेज, गुढ़ा

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की क्रिया। इसे भारतीय दृष्टि से देखने से पहले पाश्चात्य दृष्टि से देखना भी समीचीन समझती हूॅं। शिक्षा को आंग्ल भाषा में 'एजुकेशन' कहते हैं। शिक्षा शास्त्रियों का मत हैं कि यह शब्द लैटिन भाषा के 'एडुकेटम, एडूसीयर व एडूकेयर' शब्द से बना हैं। जिसका अर्थ क्रमशः शिक्षित करना, विकसित करना व आगे बढ़ाना हैं। इस तरह से तुलनात्मक रूप से देखा जाये तो भारतीय शिक्षा संबंधी अर्थ की परिभाषा व्यापक रूप लिए हुए हैं। शिक्षा प्रदान करने वाले को हमारे यहां गुरु कहा जाता हैं, शिक्षक के रूप में समादृत किया जाता हैं। जो सिखाने का काम करता हैं। भारतीय जीवन दृष्टि तो समस्त प्रकृति को ही गुरु रूप में स्वीकार करती हैं। कहने का तात्पर्य यह हैं कि प्रकृति का प्रत्येक घटक हमें कुछ न कुछ सिखाता हैं, अतः वह गुरु पद का ही अधिकारी हैं। कहने का तात्पर्य हैं कि भारतीय मूल्य शिक्षा के सर्वोच्च प्रतिमान स्थापित करते हैं।

भारतीय शिक्षा व संस्कृति प्राचीन होने के साथ -साथ सबको साथ लेकर चलने वाली विस्तृत व विविधता से पूर्ण है। भारतीय शिक्षा के मूल में भारतीय दर्शन रहा हैं।जिसकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर भारतीय जीवन मूल्य प्रतिष्ठित हुए। भारतीय दर्शन आध्यात्मिक विकास को केंद्र बिंदु मानकर व्यावहारिक सामाजिक विकास का पक्षधर रहा है। भारतीय समाज में जीवन मूल्यों का प्रमुख स्रोत धर्म - दर्शन ही रहा हैं। धर्म ही जीवन मूल्यों के प्रति अटल तथा अविचल आस्था उत्पन्न करता हैं। यहां धर्म का अर्थ जीवन में धारण करने वाले मूल्यों से रहा हैं। इस प्राचीन शिक्षा व्यवस्था ने विद्यार्थियों में प्रेम, करूणा, दया का संचार तो किया ही प्राणिमात्र के कल्याण की कामना भी की। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना यहीं पोषित और पल्लवित हुई। भारत में आध्यात्मिक विकास के साथ -साथ चारित्रिक विकास पर बल दिया गया हैं। प्राचीन भारत में मनुष्यों में नैतिक विकास हो, दूसरों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, दया, करूणा एवं सहयोग का भाव हो, ऐसी मान्यता प्रचलित थी। भारतीय संस्कृति में उन्हीं महापुरूषों को आदर्श माना गया हैं उच्च मूल्यों को आधार मानकर जीवन जीया हो, जैसे- राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, महात्मा गांधी आदि।

यह कहना उपयुक्त रहेगा कि भारत की प्राचीन शिक्षण व्यवस्था में जीवन यापन की विविध विधाओं के साथ-साथ उच्च जीवन मूल्यों के शिक्षण की व्यवस्था थी। गुरुकुल जीवन मूल्यों के संवाहक, प्रसारक रूप में कार्य करते थे। प्राचीन शिक्षा का आधार सत्य, अहिंसा, करूणादि मानवीय मूल्य आधृत था। यह कहना समीचीन रहेगा कि भारतीय शिक्षा के मूल में यहां की जीवन-दृष्टि रही हैं। यहां की चीजें जिस उदार व व्यापक रूप से यहां के लोगों ने देखी, उसे उसी रूप में स्वीकार किया। शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण का मुख्याधार हैं। यही कारण हैं कि प्राचीन गुरुकुलों में सर्वप्रथम मनुष्य को मनुष्य रूप में रहने की शिक्षा दी जाती थी। मनुष्य का तात्पर्य केवल हाड-मांस का लोथड़ा होने से नहीं हैं, वरन मानवीय गुणों से पूरित होने से हैं। यह कहना ठीक रहेगा कि भारतीय ऋषि-मुनियों ने भारत व भारतीयता को अपने शिक्षा केंद्रों में जीवित रखा। यह जीवित रखना, हमारी सनातन शिक्षा का वैशिष्ट्य हैं। कला, संगीत, वास्तु, नृत्य, विद्या आदि की शिक्षा ने भारतीयता से प्रेरित होने के नाते उच्च प्रतिमान स्थापित किये हैं। शिक्षा की यह सर्वाच्चता एक दिन या एक वर्ष में हासिल नहीं हुई अपितु इसके पीछे सदियों की साधना व प्रयास थे। अपन सूक्ष्मता से देखना चाहेंगे तो यह अच्छी तरह से देख सकेंगे कि हमारी शिक्षण पद्धति पूर्ण रूप से वैज्ञानिक थी। बालक उपनयन संस्कार के बाद विद्यार्जन हेतु योग्य समझा जाता था। इसके बाद वह किसी गुरु के आश्रम में विद्यार्जन हेतु प्रवेश लेता था। वहां वह दीर्घकाल तक रहकर समुचित शिक्षा ग्रहण करता था। लेकिन, यहां ध्यान देने योग्य यह बात हैं कि वह बालक शिक्षार्जन के साथ-साथ समस्त दैनिक क्रियाकलाप भी अच्छी तरह से सम्पादित करता था। वह शिक्षा तक सीमित न रहकर सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों रूपों में निपुणता पाता था। गुरु की सेवा, गुरुकुल की व्यवस्था, प्रकृति का संरक्षण आदि वह करता था। कहने का तात्पर्य यह हैं कि भारतीय जीवन-दृष्टि में वह शिक्षा के विविध आयामों को छूता था। उसकी शिक्षा एकांगी न होकर सार्वकालिक थी। भारतीयता की यही दृष्टि हमारी शिक्षा व्यवस्था का उज्ज्वल व उदात्त पक्ष हैं।

यद्यपि अपन प्राचीन शिक्षा व्यवस्था की बात पूर्व में कर चुके हैं तथापि यह बताना चाहूंगी कि वैदिक काल शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल था। वेद जैसे दिव्य ग्रंथों का प्रणयन इसी काल में हुआ। वैदिक ऋषि जब सरस्वती या गंगा नदी के किनारें ऋचाओं का सस्वर पाठ किया करते थे, तब सारा वातावरण अध्यात्म से पूरित होकर धर्ममय हो जाता था। विशेष नाद-ध्वनि से आप्लावित यह वातावरण प्रकृति का अलौकिक अंग-सा प्रतीत होता था - मनहर, शुचितापूर्ण व पावन। निसंदेह वैदिक ऋषियों ने भारतीय शिक्षा को व्यापक आकार देते हुए सबल बनाया। उस समय की शिक्षण व्यवस्था अपूर्व व अद्वितीय थी। शास्त्रार्थ आदि इसी शिक्षा-व्यवस्था के अंग थे। जिससे मेधा व प्रतिभा का निरंतर परिष्करण -परिमार्जन व उत्कर्ष हुआ। निश्चित रूप से हमारी शिक्षा व्यवस्था की जड़ें इसी वैदिक शिक्षा पद्धति में निहित हैं।

भारत के पास ज्ञान और शिक्षा भी एक समृद्ध विरासत है और यह इसकी शिक्षा प्रणाली में गहराई से अंतर निहित है भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन शैली और जीवन दृष्टि में निहित है जो संस्कृति परंपरा और मूल्य में गहराई से निहित है।

भारत में शिक्षा का अर्थ केवल ज्ञान और शैक्षिक कौशल प्राप्त करना नहीं है यह महत्वपूर्ण जीवन पाठों और मूल्यों को आत्मसात करने के बारे में भी है भारतीय शिक्षा शारीरिक +मानसिक+नैतिक+आध्यात्मिक +चारित्रिक विकास पर ध्यान देने के साथ-साथ व्यक्ति के समग्र विकास पर जोर देती है ।
यह योग , ध्यान और नियमित शारीरिक व्यायाम जैसी विभिन्न प्रथाओ के माध्यम से लिया जाता हैं जो भारतीय पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग है ।

भारतीय शिक्षा का एक प्रमुख पहलू नैतिक मूल्य और चरित्र निर्माण को दिए जाने वाला महत्व है।
भारतीय संस्कृति ईमानदारी, करुणा और सम्मान जैसे गुणों को बहुत महत्त्व देती हैं और ये मूल्य बहुत कम उम्र से ही बालकों में स्थापित किए जाते हैं, भारतीय स्कूलों में शैक्षणिक उत्कृष्टता और चरित्र विकास पर समान जोर दिया जाता है और साथ ही छात्रों को जिम्मेदार नागरिक बनाना, बड़ों का सम्मान करना, और समाज में सकारात्मक योगदान देना सिखाया जाता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान कौशल को भी प्रोत्साहित करती है केवल रटने के बजाय, छात्रों को विभिन्न विचारों और अवधारणाओं का विश्लेषण प्रश्न और अन्वेषण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह रचनात्मकता , स्वतंत्र सोच और ज्ञान की प्यास को बढ़ावा देता है । भारतीय शिक्षा एक सर्वांगीण और व्यापक शिक्षक अनुभव को बढ़ावा देती है जो छात्रों को विभिन्न विषयों के बीच संबंध बनाने और दुनिया की व्यापक समझ विकसित करने में सक्षम बनाती है ।

भारतीय शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू पारंपरिक ज्ञान और ज्ञान पर जोर देना है। भारत के पास प्राचीन ग्रंथो और धर्म ग्रंथो की एक समृद्ध विरासत है बहुमूल्य अंतर्दृष्टि और शिक्षाएं समाहित है । यह ग्रंथ विज्ञान, दर्शन और साहित्य जैसे विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला को संग्रहित करते हैं। भारतीय शिक्षा इन प्राचीन ग्रंथो से प्रेरणा लेती है और उन्हें आधुनिक पाठ्यक्रम में एकीकृत करने का प्रयास करती है इससे अतीत के ज्ञान को संरक्षित करने और उसे युवा पीढ़ी तक पहुंचाने में मदद मिलती है ।

भारतीय शिक्षा अध्यायमिकता पर जोर देती है जो आत्मज्ञान और आत्म साक्षात्कार की खोज है यह छात्रों को नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के महत्व को सीखाता है।

- भारतीय शिक्षा समग्र विकास पर जोर देती है जो शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास का एक संतुलन है यह छात्रों को जीवन के सभी क्षेत्रों में सफल होने के लिए तैयार करता है ।

- भारतीय शिक्षा भारतीय संस्कृति को संरक्षित और संप्रेषित करने का प्रयास करती है यह छात्रों को भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के बारे में सिखाता है जैसे कि इतिहास, दर्शन, साहित्य और कला ।

- भारतीय शिक्षा छात्रों को नैतिक और मूल्यवान व्यवहार सीखाती है प्रत्येक मानव एक दुसरे से भिन्न होता है उसका आचार - विचार , व्यवहार सब किसी प्राणी से शतशः मेल नही खाता इसका कारण है – व्यक्तियों के जीवन मूल्यों की भिन्नता मूल्य परक शिक्षा वास्तव में हमें यह क्षमता देती है कि हम अच्छे बुरे की पहचान कर सके

- भारतीय शिक्षा छात्रों को जीवन के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करती है जैसे की समस्या - समाधान, संचार और टीमवर्क । यह उन्हें एक सफल जीवन जीने के लिए तैयार करता है।

अतः भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय संस्कृति है यह संस्कृति हजारों वर्षों से विकसित होती रही है और इसमें ज्ञान, मूल्य, विश्वासो और प्रथाओं की एक समृद्ध विविधता शामिल है। भारतीय शिक्षा इस संस्कृति को सुरक्षित और संप्रेषित करने का प्रयास करती है और यह भी छात्रों को जीवन के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्रदान करती है।

भारतीय शिक्षा एक मजबूत आधार है यह छात्रों को जीवन के सभी क्षेत्रों में सफल होने के लिए तैयार करता है यह उन्हें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के महत्व को सीखना है और यह उन्हें भारतीय संस्कृति के बारे में भी सीखाता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास नागरिक और सामाजिक कर्तव्य का पालन, सामाजिक सुख और कौशल की उन्नति भी शामिल है इस शिक्षा प्रणाली में छात्रों को नैतिक मूल्य,चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास के बारे में सिखाया जाता है उन्हें नागरिक और सामाजिक कर्तव्य का पालन करना भी सिखाया जाता है इससे वह एक अच्छे और सभ्य नागरिक बन सकते हैं।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में छात्रों को सामाजिक कौशल, जीवन के कौशल और नौकरी के कौशल के बारे में भी सिखाया जाता है इससे वह एक अच्छे और उत्पादक नागरिक बन सकते हैं।
इस प्रकार भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय संस्कृति है भारतीय शिक्षा प्रणाली में भारतीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, नागरिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन सामाजिक सुख और कौशल की उन्नति भी शामिल है

इसके अतिरिक्त, भारतीय शिक्षा विविधता और समावेशिता को महत्व देती है। भारत विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और परंपराओं वाला एक विविध देश है। भारतीय शिक्षा इस विविधता को स्वीकार करती है और उसका सम्मान करती है, समावेशिता और स्वीकृति के माहौल को बढ़ावा देती है। छात्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों, संस्कृतियों और परंपराओं से अवगत कराया जाता है, जो दुनिया के बारे में उनकी समझ को व्यापक बनाता है और सहिष्णुता और सहानुभूति को बढ़ावा देने में मदद करता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की अनेक शक्तियों के बावजूद, ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनमें सुधार की आवश्यकता है। व्यावहारिक कौशल, व्यावसायिक प्रशिक्षण और आधुनिक प्रौद्योगिकियों के संपर्क पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है। भारतीय शिक्षा प्रणाली को रटने वाली शिक्षा को कम करने और अधिक अनुभवात्मक और व्यावहारिक सीखने के अनुभवों को बढ़ावा देने पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

निष्कर्षतः, भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन दृष्टि में निहित है, जो समग्र विकास, नैतिक मूल्यों, पारंपरिक ज्ञान, आलोचनात्मक सोच, विविधता और समावेशी शिक्षा को प्राथमिकता देती है। भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है और वह एक सर्वांगीण शिक्षा प्रदान करना चाहती है जो छात्रों को न केवल शैक्षणिक सफलता के लिए, बल्कि व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए भी तैयार करती है। हालांकि सुधार की गुंजाइश है, भारतीय शिक्षा प्रणाली अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के सिद्धांतों पर बनी मजबूत नींव पर खड़ी है।

[illegible]

भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन दृष्टि हैं। इस तथ्य के आलोक में देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता हैं कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था हमारे सर्वांगीण विकास की सबल संवाहक हैं। इस शिक्षण में धर्म, दर्शन, अध्यात्म, शारीरिक संरचना, विज्ञान आदि अन्यान्य विषय समाहित हैं। गुरुकुलों से प्रारंभ यह शिक्षा प्रणाली आज आधुनिक काल तक आते-आते अपने परम्परा-विकास की दृष्टि से चरम पर पहुंच गई हैं। शिक्षा का अर्थ, शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति, शिक्षा का

क्रमिक विकास, भारतीय मनीषा में शिक्षा आदि अध्यायों से गुजरते हुए इसने भारतीय मूल्यों को संरक्षित व सुरक्षित रखा हैं। कहना ही होगा कि काल के भाल पर अंकित भारतीय जीवन दृष्टि ने हमारे शैक्षिक ढांचे को मजबूत बनाया हैं। वस्तुतः जीवन दृष्टि इसे व्यापकता देती हैं। सोच व समझ का दायरा इससे विकसित होता रहा हैं। भारतीय मूल्य राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। यह पूनीत भाव ही हमारे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक गौरव को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

दरअसल शिक्षा की प्रकृति सार्वभौमिक हैं। आज जिस प्रकार से तकनीक व विज्ञान ने नये आयाम स्थापित किये हैं। इससे शिक्षा व्यवस्था में विशेष परिवर्तन हुए हैं। तथापि इसके मूल में भारतीय मूल्यों की पुनर्स्थापना इसे सुदृढ़ आकार दे रही हैं। भारत विश्वगुरू की संज्ञा से अभिहित हुआ, इसके पीछे भारतीय जीवन दृष्टि मूल कारण रही हैं। भारतीय जीवन दृष्टि ने व्यक्ति के विवेक को जाग्रत रखते हुए उसकी प्रतिभा व प्रज्ञा को निरंतर परिष्कृत किया हैं। इसी परिष्करण ने यहां के जनमानस की कल्पना को नूतन पंख देकर गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठित किया हैं। निसंदेह भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन दृष्टि का समेकित विकास हैं।

नीतू शेखावत
मो.न. 6376523489
ईमेल.- neetujjn2001@gmail.com

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणाएवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता

नेहा शर्मा
(शोधार्थी)
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबरेवाला विश्वविद्यालय,
चुडेला, झुंझुनूं
e-mail id: nehasharma07@gmail.com
Mobile No. 94620 05907

सारांशः–
भारतीय साहित्य में मनोविज्ञान की प्रकृति पश्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक नहीं होकर आध्यामित्क है। अतः उसे ''मन का ज्ञान'' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाताहै। भारतीय मनीषी, आध्यात्मिक साधना जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियां प्राप्त करते थे उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाशा जाता था।भारतीय परम्परा में दर्शन, मनोविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है। भारतीय चिंतन के अनुसार आत्मा और मन के अध्ययन के बिना मानव के व्यवहार का अध्ययन निरर्थक है। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास समाहित किए हुए हैं।भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टाएँ हैं। भारतीय मनोविज्ञान में कुछ तथ्यों को शिक्षा का आधार बनाया गया है, जैसेःसमस्त ज्ञान का मनुष्य के अन्तर में निहित होना, एकाग्रता, ब्रह्मचर्य आदि। एक शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक, उपयोगी और महत्वपूर्ण है। कक्षा–शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नही कर सकता है। अपने शिक्षण–कार्य को सफल बनाने तथा छात्रों के सीखने को लाभप्रद बनाने के लिये उसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिये।मनोविज्ञान शिक्षक को अपने छात्रों को समझने में, शिक्षक को विद्यार्थियों के विकास की अवस्थाएं समझने में, विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया से परिचय कराने में, व्यक्तिगत भिन्नता का ज्ञान कराने में, विभिन्न स्तरों के छात्रों के लिए पाठ्यक्रमबनाते समय, विशिष्ट बालकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का ज्ञानकराने में, मापन व मूल्यांकन के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराने आदि में सहायता पहुँचाता है। वास्तव में, शिक्षक एकअच्छा पथ–प्रदर्शक, निर्देशक व कुशल नेता होता है।मनोविज्ञान केज्ञान से वह कक्षा रूपी समूह को भली प्रकार संचालित कर सकता है और छात्रों के सर्वांगीण विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकता है।

1. प्रस्तावनाः–

शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को शिक्षा कहा जा सकता है। वास्तव में समस्त जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। जो कुछ भी व्यवहार मनुष्य के ज्ञान की परिधि को विस्तृत करे, उसकी अन्तर्दृष्टि को गहरा करे, उसकी प्रतिक्रियाओं का परिष्कार करे, भावनाओं और क्रियाओं को उत्तेजित करे अथवा किसी न किसी रूप मे उसको प्रभावित करे वह ''शिक्षा'' ही है। शिक्षा शास्त्र में व्यक्तित्व के सन्तुलित एंव सम्पूर्ण विकास को शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। शिक्षा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का सर्वांगीण अर्थात् शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "शिक्षा व्यक्ति में पूर्व से ही निहित पूर्णता का प्रकाशन है।''

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन हैं। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं यथा चिन्तन भाव एवं घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करता है।शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है, शिक्षा तथा मनोविज्ञान का पारस्परिक संबंध का ज्ञान मानव के समन्वित संतुलित विकास के लिये आवश्यक है। शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक प्रकियाओं एवं अनुभवों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षण की प्रभावशाली तकनीकों को विकसित करना तथा अधिगमकर्ता की योग्यताओं एवं अभिरूचियों का आंकलन करना है। यह व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा है जो शिक्षण एवं सीखने की प्रकिया को सुधारने में प्रयासरत है।

प्राचीनतम शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था का जन्म भारत में ही हुआ। प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्वों का वर्णन मिलता है। पुराणों, स्मृतियों, दर्शन में मनोविज्ञान पर आधारित अनेक शिक्षण विधियों का उल्लेख है। मानव स्वभाव को अभिव्यक्त करने वाले संवेग तथा मूल प्रवृत्तियों का विस्तार से प्राचीन ग्रंथों में पूर्ण व्याख्या के साथ वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में आचार्य, मानव के व्यवहार की समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। शिक्षा के द्वारा वे उन व्यावहारिक समस्याओं को हल करते थे। यह सच है कि शिक्षा मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप रहाहो, वह शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायक रहा है।

2. शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणाः–

''मन के विज्ञान'' को मनोविज्ञान कहा जाता हैं। भारतीय वाड्मय में उसकी प्रकृति पश्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक नहीं होकर आध्यामित्क है। अतः उसे ''मन का ज्ञान'' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाताहै। भारतीय मनीषी, आध्यात्मिक साधना जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियां प्राप्त करते थे उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाशा जाता था। ऐसे तो पाश्चात्य मनोविज्ञान का उद्भव भी दर्शन से हुआ हैं। मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभूति का एक निश्चित विज्ञान है जिसमें व्यवहार को अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।

भारतीय परम्परा में दर्शन, मनोविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है। भारतीय चिंतन के अनुसार आत्मा और मन के अध्ययन के बिना मानव के व्यवहार का अध्ययन निरर्थक है। भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन हैं। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास समाहित किए हुए हैं।भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टाएँ हैं। किन्तु इन सबके केन्द्र बिन्दु– आत्मा का ज्ञान मानव के लिए आवश्यक है।

भारतीय संकल्पना में, मनोविज्ञान में उन सभीतत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो कि वर्तमान समय में विद्यमान है। आज का मनोविज्ञान प्राचीन मनोविज्ञान की ही देन है। सामान्यतः वर्तमान एवं भारतीय संकल्पना में मनोविज्ञान में एकअन्तर पाया जाता है। मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में रहस्यवाद समाहित था वहीं वर्तमानमनोविज्ञान में रहस्यवाद का कोई स्थान नहीं है। वर्तमान समय के मनोविज्ञान पर विचार किया जाये तो यह मनोविज्ञान प्राचीनकाल केमनोविज्ञान की ही देन माना जा सकता है। प्राचीनकाल के मनोविज्ञान में वे सभी मनोवैज्ञानिक तथ्य समाहित हैं, जो कि आज के मनोविज्ञान में समाहित हैं। आज बालक के अवधान को केन्द्रित करने के लिए कक्षा में अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं परन्तु प्राचीनकाल में छात्रों का अवधान केन्द्रित करने के लिए उनको योग की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर दी जाती थी। वर्तमान मनोविज्ञान में संवेगात्मक स्थिरता के उपाय के रूप में अनेक प्रकार केव्यवहारिक एवं शैक्षिक उपाय बताये जाते हैं परन्तु मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में योग के

आधार पर ही मनोवृत्ति को स्थिर करना सिखाया जाता था जिससे कि स्वाभाविक रूप से छात्रका मन स्थिर हो जाय तथा उसमें संवेगात्मक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न न हो।

भारतीय मनोविज्ञान का मूल आधार वेद ही है। वेदों में इसे आध्यात्म विद्या भी कहा गया है क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्य जीवनयापन का सशक्त साधन है। वैदिक साहित्य में हिन्दू मनोविज्ञान के अनेक तथ्य वर्णित है। वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् है, जिसमें पुरुष जो अनन्त शक्ति है, सर्वत्र व्याप्त है, संसार का रचियता और उस पर काल का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है, ऐसा वर्णित है। इनमें (उपनिषद्) आत्मा का विस्तृत विवेचन मिलता है। हिन्दू मनोविज्ञान का केन्द्रीय विषय है आत्मा और परमात्मा के बीच आई दूरी को योग द्वारा हटाना। औपनिषदिक मनोविज्ञान में शरीर और आत्मा दोनों अपनी मूल संज्ञा में एक हैं।**भारतीय मनोविज्ञान में कुछ तथ्यों को शिक्षा का आधार बनाया गया है, इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैः–**

- **समस्त ज्ञान मनुष्य के अन्तर में निहित**–मस्तिष्क को ऐसा कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता जो जीव की आत्मा में सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से गुप्त न हो। जिस प्रकार एक नन्हे से बीज में एक विशाल (विशिष्ट) वृक्ष की जड़ें, तना, डालियों, पत्तियाँ, फूल, फल और बीज उत्पन्न करने की क्षमता निहित होती है और उपयुक्त जल, ताप और ऑक्सीजन पाकर विकास कार्य आरम्भ हो जाता है।उसी प्रकार शिक्षा अज्ञान के आवरण को हटाकर आत्मा के ज्ञान के प्रकाश को प्रकट करती है। हिन्दू मनोविज्ञान के इसी आधार को स्वामी विवेकान्द ने भी मान्यता दी है, ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।'' जिस व्यक्ति पर से अन्धकार/अज्ञानता का आवरण हटता जाता है वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बनता जाता है।
- **एकाग्रता –** हिन्दू मनोविज्ञान के अनुसार ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र मार्ग एकाग्रता है। मन की एकाग्रता ही सम्पूर्ण शिक्षा का सार है। एकाग्रता जितनी अधिक होगी ज्ञान की प्राप्ति उतनी ही अधिक होगी। एक समय में एक ही विषय पर ध्यान देना एकाग्रता है। मन में संकल्प, विकल्प पानी की लहरों से समान उत्पन्न होते हैं। मन चंचल होता है, निरन्तर बाह्य विषयों में प्रवृत्त होता रहता है। अतः उसका अशान्त और अस्थिर रहना स्वाभाविक है। चित्त की ऐसी अस्थिरता से किसी कार्य को विधिवत् सम्पादित करना सम्भव नहीं है। हिन्दू मनोविज्ञान के अनुसार एकाग्रता की स्थिति ध्यान योग के अभ्यास से प्राप्त होती है। योगाभ्यास से प्राप्त एकाग्रता की शक्ति ही ज्ञान के कोष की कुंजी है।
- **ब्रह्मचर्य–** हिन्दू शिक्षा पद्धति के मूल में ब्रह्मचर्य का अभ्यास सबसे महत्वपूर्ण है। आत्म संयम के सभी रूप तपस/तपस्या कहलाते हैं और यही शक्तिशाली कर्म और सिद्धि का मूल स्रोत है। हिन्दू शिक्षा का मूल आधार ब्रह्मचर्य पालन है जो कि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है। स्वामी विवेकानन्दजी के अनुसार पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। पावित्र्य के बिना आध्यात्मिक शक्ति नहीं आ सकती।''

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा मे निम्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैः–

- रहस्यवाद का मनोविज्ञान
- योग एवं ध्यान का महत्व
- आत्म तत्व को पहचानना
- गीता एवं वेदों में मनोविज्ञान
- शारीरिक एवं मानसिक विकास की अवधारणा
- चेतना के चार स्तर : जागृत, स्वप्न, सुसुप्त और तुरीय
- पंचकोष– अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष, आनन्दमयकोष
- भौतिक शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्मशरीर तथा कारण शरीर
- मानव व्यक्तित्व की संरचना– मनुष्य में 5 कर्मेन्द्रियाँ और 5 ज्ञानेन्द्रियाँ है, इनके ऊपर मन और मन के परे बुद्धि है।इनके अलावा मनुष्य मूल रूप से आत्मा है जो व्यक्तित्व की समस्त संरचना को चलाता है। उपनिषदों और गीता में दी गयी व्यक्तित्व की यह संरचना ही षड्दर्शनों एवं विचार के अन्य क्षेत्रों में भी दिखायी देती है।

3. मनोविज्ञान की शिक्षक शिक्षा में उपयोगिताः–

एक शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक, उपयोगी और महत्वपूर्ण है। कक्षा–शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नही कर सकता है। अपने शिक्षण–कार्य को सफल बनाने तथा छात्रों के सीखने को लाभप्रद बनाने के लिये उसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान समय में यदि शिक्षक को अपने कार्य में सफल होना है तो उसे बालमनोविज्ञान का ज्ञान जैसे उनकी वृद्धि, विकास, सीखने की प्रक्रिया व समायोजनकी योग्यता के बारे में समझ होनी चाहिए। वह छात्रों की शिक्षा सम्बन्धी विशिष्टकठिनाईयों को पहचान सके तथा उपचारात्मक शिक्षण देने की कुशलता रखताहो। उसको आवश्यक शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन देना आना चाहिए। इसप्रकार कोई भी व्यक्ति यदि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों व विधियों के बारे में शिक्षितनही है तो वह शिक्षक के दायित्व को भली भांति नहीं निभा सकता।**शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता निम्न प्रकार है–**

- मनोविज्ञान शिक्षक को अपने छात्रों को समझने में सहायता प्रदान करता है साथ ही यह भी बताता हैकि शिक्षक को छात्रों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक काव्यवहार पक्षपात रहित हो। उसमें सहनशीलता, धैर्य व अर्जनात्मक शक्तिहोनी चाहिए।
- मनोविज्ञान एक शिक्षक को विद्यार्थियों के विकास की अवस्थाएं समझने में सहायता देता है। प्रत्येक छात्र विकास की कुछ निश्चित अवस्थाओं से गुजरता है जैसे शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था। विकास की दृष्टि से इन अवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताएं होतीहै। यदि शिक्षक इन विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं से परिचित होताहै तो वह अपने छात्रों को भली प्रकार समझ सकता है और छात्रों को उसीप्रकार निर्देशन देकर उनको लक्ष्य प्राप्ति में सहायता कर सकता है।
- शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया से परिचित कराता है। ऐसा देखा जाता है कि कुछ शिक्षक कक्षा में पढ़ाते समयअधिक सफल साबित होते है तथा कुछ अपने विषय पर अच्छा ज्ञान होनेपर भी कक्षा शिक्षण में असफल होते है। प्रभावपूर्ण ढंग से शिक्षण करनेके लिए शिक्षक को सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान, सीखने कीसमस्याओं एवं सीखने को प्रभावित करने वाले कारणों और उनको दूरकरने के उपायों की जानकारी होनी चाहिए। तभी वह छात्रों को सीखनेके लिए प्रेरित कर सकता है।
- शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्तिगत भिन्नता का ज्ञान कराता है। संसार के कोईभी दो व्यक्ति बिल्कुल एक से नहीं होते है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मेंविशिष्ट व्यक्ति है। एक कक्षा में शिक्षक को कई विद्यार्थियों कोपढ़ाना होता है जिनमें अत्यधिक व्यक्तिगत भिन्नता होती है। यदि शिक्षकको इस बात का ज्ञान हो जाए तो वह अपना शिक्षण सम्पूर्ण सभी छात्रोंकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला बना सकता है।
- विभिन्न स्तरों के छात्रों के लिए पाठ्यक्रमबनाते समय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त सहायता पहुंचाते है। छात्रों कीआवश्यकताओं, उनके विकास की विशेषताओं, सीखने के तरीके वसमाज की आवश्यकताएं यह सब पाठ्यक्रम में परिलक्षित होनी चाहिए।
- मनोविज्ञान, विशिष्ट बालकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का ज्ञान शिक्षक को देता है। जिससे शिक्षक इन बच्चों को अपनी कक्षा में पहचानसकें। उनको आवश्यकतानुसार मदद कर सकें। उनके लिए विशेषकक्षाओं का आयोजन कर सके व परामर्श दे सकें।
- शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों को शिक्षित करने सम्बन्धी विभिन्न विधियों के बारेमें अध्ययन करता है और खोज करता है कि विभिन्न विषयों जैसे गणित,विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा, साहित्य को सीखने से सम्बन्धितसामान्य सिद्धान्त क्या है।
- मापन व मूल्यांकन के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान भी मनोविज्ञान सेमिलता है। वर्तमान की परीक्षा प्रणाली से उत्पन्न छात्रों में डर, चिन्ता, नकारात्मक प्रवृत्तियाँ जैसे आत्महत्या, नशा आदि करने से छात्रों के व्यक्तित्व काविघटन के साथ–साथ समाज का भी विघटन होता है। अतः

सीखने केपरिणामों का उचित मूल्यांकन करना तथा उपचारात्मक शिक्षण देनाशिक्षक का ध्येय होना चाहिए। यह शिक्षा मनोविज्ञान के माध्यम से ही संभव है।

- समूह गतिकी का ज्ञान शिक्षा मनोविज्ञान कराता है। वास्तव में शिक्षक एकअच्छा पथ–प्रदर्शक, निर्देशक व कुशल नेता होता है। समूह गतिकी केज्ञान से वह कक्षा रूपी समूह को भली प्रकार संचालित कर सकता हैऔर छात्रों के सर्वांगीण विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकता है।

4. निष्कर्षः–

मनोविज्ञान तो विज्ञानों का विज्ञान है, इसमें वस्तुनिष्ठता, मापन योग्यता और व्यावहारिक उपादेयता भी है। हमें यह भी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि किसी भी विज्ञान का एक अल्पांश ही उपयोग में आता है। इसी प्रकार हमारी चेतना का एक अल्प अंश से संविध धरातल पर है। परन्तु हम सोचते यह हैं कि हमारा सम्पूर्ण मन ही चेतना है जबकि हमारे अर्द्धचेतन मन के अपार समुद्र में यह एक बूँद के समान है।भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी समझ विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से सार्थक ढाँचे पर आधारित हो। इस रुझान की झलक उन प्रयासों में दिखी जिनसे पारंपरिक भारतीय मनोविज्ञान पर आधारित उपागमों का विकास हुआ, जो हमने प्राचीन ग्रन्थों एवं धर्मग्रन्थों से लिए थे। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान समाज के लिए सार्थक था और भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर आधारित था।

भारत में मनोविज्ञान विश्व में मनोविज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान कर रहा है। भारत में मनोविज्ञान का अनुप्रयोग अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिक मात्र विशिष्ट समस्याओं वाले बच्चों के साथ ही कार्य नहीं कर रहे हैं, वे चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक के रूप में नियुक्त हो रहे हैं, मानव संसाधन विकास विभाग एवं विज्ञापन विभागों जैसे कंपनी संगठनों में, खेलकूद निदेशालयों में, विकास क्षेत्रक तथा सूचना प्रौद्योगिकी उद्योगों में नियुक्त हो रहे हैं। भारतीय मनोविज्ञान का शैक्षिक प्रक्रिया में सम्यक योगदान केवल तब सम्भव है जब शिक्षा का आधार भारतीयता बने। भारतीय संस्कृति, योग और शैक्षिक लक्ष्यों को शिक्षा तंत्र में इस प्रकार सम्मिलित किया जाए कि शिक्षाकर्ता का जीवन उद्देश्य– 'सा विद्या या विमुक्तये' की प्राप्ति बन सके।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

- दत्त, डॉ. विभा (2010), 'भारतीय शिक्षा मनोविज्ञानः अवधारणा एवं व्यक्तित्व' भोपालः मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमीhttps://bharatavani.in
- तोमर, एल.,(2015) भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के आधार, कुरूक्षेत्रः विद्या भारती संस्कृति शिक्षण संस्थान https://www.exoticindiaart.com/book/details/foundations-of-indian educational-psychology-bab874/
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_मनोविज्ञान
- शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएँ, प्रकृति, अर्थ, उपयोगिता व आवश्यकताhttps://hinditecharea.com/2021/06/शिक्षा–मनोविज्ञान–की–परि.html
- शिक्षा मनोविज्ञान,(पत्राचार पाठ्यक्रम) माध्यमिक शिक्षा मंडल, भोपाल (म.प्र) https://mpbse.nic.in/Ded-Study-Material/secondnew/EDUCATION%20PSYCHOLOGY.pdf

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता

प्रीति कुमारी
शोधार्थी,
श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय,
विद्यानगरी, चुड़ेला, झुन्झुनू
Mail ID: sachinvksjjn@gmail.com
Mob. 7300213152

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में मानव मस्तिष्क प्रक्रियाओं, विकास और अधिगम के अध्ययन करने का विज्ञान नहीं है। यह शिक्षा को प्रभावी और उपयोगी बनाने में सहयोग प्रदान करता है। शिक्षा को अंग्रेजी में EDUCATION कहते हैं। जो लैटिन भाषा केEDUCATION का रूपान्तरण है। जिसका अर्थ है To BRING UP TOGETHERशिक्षा को हिन्दी में ज्ञान भी कह सकते हैं। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य ''व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा के समुचित विकास से है।''

मनोविज्ञान अर्थात् PSYCHOLOGY.यह शब्द दो शब्दों PSYCHOऔर LOGSसे मिलकर बना है। PSYCHE अर्थात् आत्मा औरLOGUSका अर्थ है विचार विमर्श अर्थात् आत्मा के बारे में विचार विमर्श या अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान का तात्पर्य है शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने से है। शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

क्रो एवं क्रो के अनुसार ''शिक्षा मनोविज्ञान जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के अधिगम अनुभवों का विवरण एवं व्याख्या देता है।''

इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार मानसिक प्रक्रियाओं एवं अनुभवों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षण की प्रभावशाली तकनीकों को विकसित करना तथा अधिगमकर्ता की योग्यताओं एवं अभिरूचियों का आकलन करना है।

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। क्योंकि शैक्षिक वातावरण में अधिगमकर्ता के व्यवहार का वैज्ञानिक विविधयों, नियमों तथा सिद्धान्तों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान विद्यालय और नियामक दोनों प्रकार का विज्ञान है। विद्यालय विज्ञान तथ्यों पर जबकि नियामक विज्ञान मूल्यांकनपर आधारित है। शिक्षा मनोविज्ञान का सीधा सम्बन्ध शिक्षण के अधिगम क्रिया–कलापों से है।

भारतीय अवधारणाएँ

- गुरू–शिष्य परंपरा – भारतीय समाज में गुरू–शिष्य परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से गुरू का स्थान ईश्वर से भी बड़ा बताया गया है। गुरू को पिततुल्य माना जाता है। गुरू के प्रति श्रद्धा और आदत आज भी कायम है। गुरू–शिष्य को पुत्र तुल्य मानकर उसको शिक्षा दीक्षा प्रदान करता है। छात्र का मानसिक विकास साथ–साथ उसका चहुँमुखी (सर्वांगीण) विकास किया जाता है। इसके लिए गुरू द्वारा शिक्षा मनोविज्ञान का सहारा लिया जाता है।
- धार्मिक अध्ययन और अध्यात्मिकता – भारतीय शिक्षा में धर्म और आध्यात्मिकता का बहुत अधिक महत्व है। भारतीय शिक्षा में छात्र के मानसिक, आत्मिक और शारीरिक निर्माण पर बल दिया जाता है। जिससे छात्र का सर्वांगीण विकास होकर वह पूर्णता प्राप्त कर सके। शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा छात्रा की कला, भाव बौद्धिक स्थिति को जानकर उसका विकास किया जाता है।
- भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान एवं व्यापक दृष्टिकोण – भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान का दृष्टिकोण विस्तृत व व्यापक है। इसमें मनोविज्ञान शिक्षा विज्ञान, शिक्षा प्रौद्योगिकी और समाज शास्त्र के सिद्धान्तों को जोड़कर मनोवैज्ञानिक विधि से शिक्षा प्रदान की जाती है। भारतीय शिक्षा

मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी उपायों को पता लगाकर शिक्षा व्यवस्था में सुधार करना है।

- शिक्षा प्रक्रिया की समस्या – भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षको को विद्यार्थियों के स्वरूप और शिक्षा प्रक्रिया के सन्दर्भ में समझने में मदद करता है। प्रगति और उनकी मानसिक क्षमता का मूल्याकंन करने में भी सहायता करता है। जिसमें छात्रों में आवश्यक सुधार किये जा सके।
- शिक्षा में सामाजिक और मानवीय पहलुओं को महत्व – भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों को समझकर उनको सामाजिक और मानवीय पहलुओं से भी अवगत कराता है। शिक्षक शिक्षा मनोविज्ञान की अनेक विविधयों द्वारा छात्रों में दया, प्रेम, करूणा, साहस, वीरता व श्रृंगार रस आदि का भी ज्ञान करवाया जाता हैं छात्रों को इन सभी गुणों को जीवन में उतारने की प्रेरणा भी प्रदान करता है।
- आत्म–समर्पण– भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान की अवधारणा में आत्म–समर्पण, आत्म–परिश्रम, और आत्म–संयम को स्थान दिया जाता है। यह विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद करता है। साथ ही छात्रों को अपनी स्थिति समझने में मदद करता है।
- गुरूकुल प्रणाली – प्राचीन भारतीय गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में शिक्षा मनोविज्ञान की आवधारणा को प्रदर्शित किया जा सकता है। गुरूकुल में गुरू छात्रों की मानसिक स्थिति का अध्ययन करके उनके व्यक्तिगत विकास को आगे बढ़ाते थे। गुरूकुल प्रणाली में छात्रों को वेद–वेदांगों, शिक्षा ज्योतिष, काव्य, व्याकरण, साहित्य, शास्त्र विद्या, संगीत आदि इसी प्रकार की विद्यायें प्रदान की जाती है। छात्र की रूचि के अनुसार उसको वहीं विद्या प्रदान की जाती थी।

मनोविज्ञान की अवधारणाएँ

- आत्मा का विज्ञान – ईसा पूर्व युग में यूनान के महान दार्शनिकों को इस क्षेत्र में महान योगदान रहा है। स्वप्नदृष्टा कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान के प्रारम्भिक स्वरूप को जन्म दिया। उन्होंने स्वप्न जैसी क्रियाएँ करने वाले को आत्मा SOULतथा इस आत्मा को आत्मा का विज्ञानSCIENCE OFSOUL कह कर पुकारा। मनोविज्ञान की प्रारम्भिक अवधारणा थी मनोविज्ञान आत्मा का विज्ञान है।'' अर्थात मनुष्य मन में उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं के समाधान करने वाले माध्यम को आत्म विज्ञान कहा गया है।''
- मन का विज्ञान– 16 वीं शताब्दी तक मनोविज्ञान को आत्मा का मनोविज्ञान माना जाता है। जब इस विचारधारा की आलेचना होने लगी तब दार्शनिकों ने मनोविज्ञान से मनस् का विज्ञान कहकर सम्बोधित किया। इस नवीन विचारधारा का मुख्य उद्देश्य मस्तिष्क अथवा मनस् का अध्ययन करना रहा। मानसिक शक्तियों के आधार पर मस्तिष्क के रूवरूप में निर्धारित करने में थॉमस रीड 1710–1796 का विशेष योगदान रहा। परन्तु मनस की विचारधारा के समर्थन मनस् को स्वतंत्र शक्तियों का सही–सही स्वरूप निर्धारण करने में असफल रहे। आत्मा की भांति मन का भी कोई भौतिक स्वरूप नहीं है। अतः जिसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं है, उसे ठीक–ठीक परिभाषित नहीं किया जा सकता है।
- चेतना का विज्ञान – एक समायान्तराल के पश्चात मनस् विज्ञान को चेतना का विज्ञान कहकर पुकारा जाने लगा। दार्शनिकों का यह मानना था की मनस् समस्त शक्तियों के साथ चैतन्य होकर कार्य करना है। एक समय के बाद चेतना की विचारधारा के सम्बन्ध में भी विद्धानों में गम्भीर मतभेद पैदा हो गया। इस चेतना के विज्ञान को अवैज्ञानिक सिद्ध करने में व्यवहारवादियों का प्रमुख योदान रहा।
- व्यवहारवाद का विज्ञान – व्यवहारवाद के मनोविज्ञान में व्यवहारवाद के प्रर्वतक वाट्सन का प्रमुख योगदान रहा है। वाट्सन ने अन्तःदर्शन का बहिष्कार किया। उन्होंने बताया की शारीरिक क्रियाएँ स्पष्ट रूप से दर्शनीय तथा उल्लेखनीय है तो चेतना का कोई स्थान नहीं है। व्यवहारवाद में शरीर में विभिन्न मांसपेसियाँ तथा ग्रन्थीय क्रियाएँ देखने को मिलती है। बाट्सन ने विश्वविद्यालयी पढ़ाई के दौरान ही पशुमनो विज्ञान के क्षेत्र कार्य किया। इन्होंने स्वयं शिकागों

विश्वविद्यालयों में पशुमनोविज्ञान प्रयोगशाला अपने संरक्षण स्थापित की यही से मूल रूप से व्यवहारवाद का जन्म हुआ। वर्तमान शताब्दि में वाटसन का यह योगदान मनोविज्ञान को स्पष्ट रूप से व्यवहार तथा अन्तक्रियाओं को अध्ययन के रूप में परिभाशित करता है। इस प्रकार व्यवहारवादी विचारधारा ने मनोविज्ञान को वर्तमान की ओर एक नया मोड़ देकर कीर्तिमान स्थापित किया इन सभी पिछली बदलती अवधारणों के बदलते क्रम को देखकर हम निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है और प्राणियों के व्यवहार तथ उप व्यवहार की प्रभावित करने वाली सभी बातों का अध्ययन इसके अन्तर्गत आता है।

- **शिक्षा में उपयोगिता –** भारतीय अवधारण के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की प्रक्रियाओं को समझने और सुधारने में भूमिका निभाता है। इसका उपयेग इस प्रकार किया जा सकता है :–

1. शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन – शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों के शिक्षा के शिक्षा क्रिया कलापों सहित क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करके शिक्षा को प्रभावी बनाने में मदद करता है।

2. शिक्षाक्रम और शिक्षकों का प्रशिक्षण – शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षकों के अध्यापन की प्रक्रिया मे भी सुधार करता है। शिक्षक मनोविज्ञान की विविध विधियों का प्रयोग करके विषय वस्तु की सुगम बोद्यगम्य बनाता है।

3. छात्रों की सामाजिक और मानसिक स्थिति को सुधारना – शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए नैतिक शिक्षा, सामाजिक उत्थान आदि क्षेत्रों में अनेक तकनीकियों को उपलब्ध कराता है।

4. स्वयं को समझना–एक शिक्षक को यह जानकारी होनी चाहिए कि उसमें अपने दायित्व के अनुकूल योग्यताएँ है या नहीं। स्वभाव, स्तर, बुद्धि, जीवन दर्शन, स्वयं के निर्धारित मूल्य, शिक्षकों एक अभिभावकों से सम्बन्ध शिक्षक एवं छात्रों से सम्बन्ध, व्यवहार, चारित्रिक गुण शिक्षक की योग्यता, उसका अपना दायित्व आदि बातों की जानकारी शिक्षक की शिक्षा मनो विज्ञान में प्राप्त होती है।

5. बालक के स्वरूप को जानना– शिक्षा मनोविज्ञान बालक के स्वरूप यथा उसकी योग्यता, रूचि, व्यवसायिक रूचि, बौद्धिक स्तर आदि की जानकारी प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में जॉन एडन्स ने लिखा है कि ''किसी भी विषय की जानकारी के बजाय बालक की जानकारी प्राप्त करना अधिक महत्वपूर्ण है।''

6. शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक– शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध में स्किनर ने लिखा है–''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर उसकी शिक्षण विधि को उन्नत कर उसे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है।''

7. कक्षागत समस्याओं का निदान व समाधान– कक्षा–कक्ष की स्थिति में जो समस्यायें उपस्थित होती है, उनमें खासतौर पर अनुशासनहीनता, बाल अपराध, विशिष्ट बालक और पिछडे बालकों आदि से सम्बन्धित होती है। अध्यापक के समक्ष होने वाली इन समस्याओं को शिक्षा मनोविज्ञान समस्याओं के कारणों को खोजने और निदान करने में मदद करता है।

8. शिक्षण विधियों के चयन में साहयक – कक्षा–कक्ष की परिस्थितियों में एक अध्यापक विषय को किस प्रकार पढ़ाये, उसका तरीका क्या होना चाहिए, किस विधि का प्रयोग करना चाहिए जिससे छात्र विषय वस्तु को आसानी से समझते हुए ग्रहण कर सके। इन सब बातों की जानकारी में शिक्षा मनोविज्ञान मदद करता है। शिक्षा मनोविज्ञान एक अध्यापक की शिक्षण विधियों का चयन करने में सहायता देने के लिए अधिगम के नए–नए सिद्धान्त प्रस्तुत किए है।

9. मूल्यांकन – बालकों के मूल्यांकन के लिए बुद्धि रूचि, व्यक्तित्व, ज्ञान आदि के शिक्षा मनोविज्ञान में अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों, नियमों एंव विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस मूल्यांकन कार्य में सर्वाधिक योगदान शिक्षक का होता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक को शिक्षा मनोविज्ञान की पूर्ण जानकारी हो।

इसके अलावा भी शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों के मार्गदर्शन में सहायक, शिक्षा के उददेश्यों को प्राप्त करने में सहायक, शिक्षण पद्धतियों को जानने में सहायक, सीखने के लिए उचित परिस्थितियों एवं वातावरण का आयोजन करना, बाल–स्वभाव एंव व्यवहार का समुचित ज्ञान कराने में सहायक, मार्ग निर्देशन में सहायक, बालक द्वारा विषय वस्तु के चयन कराने में सहायक, सामाजिक

भावना के विकास में सहायक और शिक्षक के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में सहायता प्रदान करता है।

भारतीय अवधारणा और शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन शिक्षा को सुधारने और छात्रों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए महत्वपूर्ण है। इससे शिक्षा प्रणाली को मानविक दृष्टिकोण से समझा व सुधारा जा सकता हैं जिससे हमारा और मानव समाज का विकास हो सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह अवधारणा विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तिगत विकास को समझने में मदद करती है और शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावी बनाती है। अन्त में हम स्किनर के शब्दों में कह सकते है कि ''शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान एक अध्यापक को अध्यापन के रूप में स्वयं कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायता देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शिवचरण शर्मा एवं डॉ. सुशीला पारीक, 2007: शिक्षा मनोविज्ञान,सरस्वती प्रकाशन, अलवर
- https://www.samareducation.com
- htttps://bharatavani.in
- https://gk-hindigyan.in
- https://testbook.com

भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवनदृष्टि

डॉ. यशवन्ती गौड
(सहायक आचार्य)
संजय टी.टी. कॉलेज,जयपुर
(डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी)

श्रीमती रचना टेलर
(शोधार्थी)
इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज इन एज्यूकेशन
गाँधी विद्या मंदिर, सरदारशहर
e-mail id: rachanat8740@gmail.com

सारांशः–
भारत में शिक्षा का बीजारोपण वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक कालीन शिक्षा तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन पर आधारित थी। इस चिन्तन में जीव और ब्रह्म, जीवन और मृत्यु, लोक और परलोक इत्यादि विषयों की प्रधानता थी। वैदिक शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को केन्द्र में रखकर प्रदान की जाती थी। पाठ्यक्रम में चारों वेद, छः वेदांग, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद्, पुराण, तर्क, मीमांसा, गणित, शिल्प, शस्त्र, वाणिज्य, आयुर्वेद, योग, राजनीति आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था। वैदिक काल में मौखिक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था, उस समय वाचिक ज्ञान की महत्ता थी। प्राचीन काल में स्त्री–शिक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। इस प्रकार प्राचीन भारत में शिक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक एवं सुचारु व्यवस्था प्रतिष्ठित थी।भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली रचनावादी दृष्टिकोण और करके सीखने, सार्थक और बिना बोझ के अधिगम पर आधारित है।इसका मुख्य उद्देश्य छात्रोंको हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, समतावाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की मुख्यविशेषताओं के बारे में सूचित करना है।भारत में शैक्षणिक संस्थान, अधिगम की सुविधा के लिए उन्नत तकनीकों को अपना रहेहैं और उसी पुराने कक्षा शिक्षण में क्रांतिकारी बदलाव ला रहे है। आज भारतीय शिक्षा काआधार विद्यार्थियों को बाहरी दुनिया के साथ वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने और अंतर्राष्ट्रीय अवसरों की तलाश करने के लिए तैयार करना है।

1. प्रस्तावनाः–

शिक्षा के प्रति भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक एवं सूक्ष्म रहा है। भारतीय शैक्षिक चिन्तन मानवीय मूल्यों को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। शिक्षा के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। इसके लिए भारतीय शैक्षिक परम्परा में आश्रम व्यवस्था की अनिवार्यता सुनिश्चित की गई। भारतीय ऋषियों द्वाराप्रतिपादित आश्रम व्यवस्था में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम को शिक्षा को ही समर्पित किया है। इसी आश्रम में विद्यार्थी को जीवन के अन्य आश्रमों यथा गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम के कर्तव्यों के परिपालन के लिए भी दक्ष बना दिया जाता था। इस प्रकार भारतीय शैक्षिक चिन्तन में सम्पूर्ण जीवन शिक्षा के लिए एवं शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन के लिए माना गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। गुरुकुल एवं मठ प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र के रूप में संस्थापित थे। इस प्रकार प्राचीन भारत में शिक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक एवं सुचारु व्यवस्था प्रतिष्ठित थी।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। बादशाहों और अन्य शासकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रारंभिक शिक्षा के केंद्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के। राजकुमारों के लिए महलों के भीतर शिक्षा का प्रबंध था। राज्यव्यवस्था, सैनिक संगठन, युद्धसंचालन, साहित्य, इतिहास, व्याकरण, कानून आदि का ज्ञान गृहशिक्षक से प्राप्त होता था। मुसलमान शासकों के संरक्षण के अभाव में भी संस्कृत काव्य, नाटक, व्याकरण, दर्शन ग्रंथों की रचना और उनका पठन–पाठन बराबर होता रहा।

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ। विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चाहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। 1850 तक भारत में गुरुकुल की प्रथा चलती आ रही थी परन्तु मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ और भारत में कई गुरुकुल बंद हुए और उनके स्थान पर कॉन्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के राज्य के शासन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। इसके अलावा पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति आकर्षण पैदा करना भी मैकाले का लक्ष्य था।

जब भारत 1947 में आजाद हुआ तो उसके समक्ष कई वृहद चुनौतियाँ थीं। सबसे अहम चुनौती थी कि असमानता और भेदभावपूर्ण समाज में (स्त्री–पुरुष, उच्च वर्ग–दलित, अमीर–गरीब, आदिवासी–सामान्य, अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक समुदाय आदि) सबको समान अवसर दिलवाना तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना। दूसरी चुनौती थी कि पूरे देश में राष्ट्र के प्रति आस्था विश्वास और संकल्प बने तथा आपसी भेदभावों को शान्ति और प्रेमपूर्वक दूर करें। तीसरी प्रमुख चुनौती थी देश का आर्थिक विकास–देश में औद्योगिक और कृषि उत्पादन बढ़ाना। लोगों को रोजगार और जीविकोपार्जन के नए साधन उपलब्ध कराना ताकि गरीबी और बेकारी पर नियंत्रण पा सकें। इन तीन प्रमुख राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक शिक्षा को एक महत्वपूर्ण माध्यम माना गया।

2. भारतीय शिक्षा का आधारः–

2.1 प्राचीन भारतीय शिक्षा का आधारः–

प्राचीन भारत में शिक्षा का व्यापक अर्थ स्वीकृत था जिसमें यह माना जाता था कि व्यवहार में सार्थक परिवर्तन ही शिक्षा है। वैदिक काल में सम्पूर्ण जीवन के लिए शिक्षा की प्रतिष्ठा की जाती थी। बालक की शिक्षा के लिए परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व सभी का दायित्व माना गया है क्योंकि कालान्तर में बालक को शिक्षा प्राप्त कर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए एक सन्नागरिक के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह करना आवश्यक है। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप एक सुसंगठित शिक्षा प्रणाली का अभ्युदय हुआ, जिसे हम आज 'प्राचीन भारतीय शिक्षा' अथवा 'वैदिक शिक्षा प्रणाली' के रूप में जानते हैं। प्राचीन काल में शिक्षा को न तो पुस्तकीय ज्ञान के रूप में माना जाता था और न ही जीविकोपार्जन के साधन के रूप में। उस कालखण्ड में शिक्षा को जीवन–दर्शन के निर्माण के लिए आधारभूत सिद्धान्त के रूप में माना जाता था। समस्त शैक्षिक तन्त्र ज्ञान को अनुभूति का विषय बनाने के लिए आयोजित किया जाता था।

- **आदर्शवादी शिक्षा–** प्राचीन भारतीय शिक्षा आदर्शवादी शिक्षा थी। शिक्षा में मानवीय एवं परम्परागत मूल्यों को अतीव महत्त्व दिया जाता था। शिक्षा में धर्म एवं दर्शन का सन्निवेश अनिवार्य था।
- **प्रकृति का सान्निध्य**– वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी। गुरुकुल सदैव नगर से कुछ दूरी पर प्रकृति के शान्त एवं एकान्त वातावरण में बनाये जाते थे। गुरुकुल तपोवनसदृश स्थान होता था, जहाँ का वातावरण प्राकृतिक एवंआध्यात्मिक होता था क्योंकि आध्यात्मिकता की दृष्टि से प्रकृति का सान्निध्य अनिवार्य माना जाता था।
- **गुरुकुल शिक्षा प्रणाली**– प्राचीन भारतीय शिक्षा में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मुख्य स्थान है। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा संस्था में पारिवारिक स्थितियों में सीखने का अवसर प्रदान करती है। गुरुकुल में पढने वाले छात्रों में समायोजन का गुण सहज में विकसित हो जाता था।
- **चित्तवृत्तियों का निरोध–** आत्मा को अनश्वर होने के कारण प्राचीन भारत में शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्त्व जाता था। आत्मशुद्धि के लिए जप, तप एवं योग पर अत्यन्त बल दिया जाता था। मन की विकारात्मक वृत्तियों के उपशमन के लिए अष्टांग योग का प्रशिक्षण दिया

जाता था तथा सभी छात्र यम और नियमपूर्वक जीवन जीते हुए यथासमय अन्य अंगों का अभ्यास करते थे।

- **निःशुल्क शिक्षा–** वैदिक शिक्षा निःशुल्क हुआ करती थी। अतः धन की न्यूनता के कारण किसी भी छात्र को शिक्षा से वंचित नहीं होना पड़ता था। वैदिक काल में शिक्षा को तप के समान माना जाता था, न कि आय के स्रोत के रूप में। छात्र अपने सामर्थ्य से अथवा स्वोपार्जित संसाधनो से समावर्तन संस्कार के समय अर्थात् शिक्षा की परिसमाप्ति पर स्वेच्छा से गुरुदक्षिणा समर्पित कर सकते थे, परन्तु गुरुदक्षिणा के लिए किसी भी छात्र को बाध्य नहीं किया जाता था।
- **वैयक्तिक अवधान(ध्यान)–** प्रत्येक छात्र के सामर्थ्य एवं सम्भावनाओं पर गुरु का पूर्ण ध्यान होता था। वैयक्तिक अवधान होने से छात्रों के चरित्र निर्माण में एवं व्यक्तित्व विकास में अत्यन्त सहायता मिलती थी।
- **सबके लिए समान शिक्षा–** वैदिक काल में कर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था थी। वैदिक काल में शिक्षा पर सभी का जन्मसिद्ध अधिकार था। धनवान एवं निर्धन, स्त्री एवं पुरुष, शक्तिशाली और निर्बल इत्यादि किसी भी प्रकार का भेद किसी को भी शिक्षा से वंचित नहीं कर सकता था।
- **कक्षा नायकीय प्रणाली**– प्राचीन भारत की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता कक्षा नायकीय प्रणाली भी थी। इसे अग्र शिष्य प्रणाली भी कहा जाता है। गुरु की आज्ञा से कक्षा का प्रबुद्ध छात्र अपने से कनिष्ठ छात्र वर्ग को शिक्षित करने का कार्य करता था।ऐसे कक्षा नायक के रूप में उस छात्र को 'पितुलाचार्य' की संज्ञा भी दी जाती थी।
- **मौखिक शिक्षण–**गुरुकुल में मुख्यतया शिक्षण मौखिक ही होता था। मौखिक ज्ञान के लिए अत्यन्त आग्रह रहता था, मान्यता थी कि आपत्ति काल में पुस्तक में लिखित विद्या और किसी और को उधार में दिया हुआ धन हमारे किसी काम का नहीं होता। अतः समस्त ज्ञान कण्ठस्थ होना चाहिए। मौखिक शिक्षण के लिए वैदिक काल में व्याख्या विधि, पाठ पारायण विधि, शास्त्रार्थ विधि सूत्र विधि इत्यादि का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त प्रश्नोत्तर विधि,बाकोवाक् विधि (कथोपकथन विधि), वाद विवाद विधि, उदाहरण कथन, दृष्टान्त कथन, रूपक, उपमा, तुलना इत्यादि विधियों का उपयोग शिक्षण में किया जाता था।शिक्षण विधियों में श्रवण (सुनना), मनन (विचार करना) तथा निदिध्यासन (गहन चिन्तन करना) के क्रम का पालन किया जाता था।
- **उच्चारण की शुद्धता**– वैदिक काल में उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके लिए शिक्षा वेदांग का समुपयोग किया जाता था। पाणिनीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा,याज्ञवल्क्य शिक्षा इत्यादि शिक्षाओं के माध्यम से शुद्ध एवं मानक उच्चारण का प्रशिक्षणप्रदान किया जाता था।
- **स्त्री शिक्षा–**वैदिक काल में स्त्री–शिक्षा की व्यवस्था थी। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर चुकी शिक्षिता स्त्री को आश्रम में प्रवेश का अधिकार मिल जाता था। रामायण की कैकेयी जहाँ शस्त्र संचालन में दक्ष थी, वहीं कौशल्या को अनेक मन्त्रों का ज्ञान था। विदेहराज जनक की राजसभा में गार्गी एवं याज्ञवल्क्य के संवाद से ज्ञात होता है कि गार्गी जैसी विदुषियों को पुरुषों के समान अध्यात्मविद्या और वैदिक ऋचाओं पर अधिकार था। आत्रेयी ने लव और कुश के साथ वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय **सह–शिक्षा का भी प्रचलन था।** अथर्ववेद में कन्या के ब्रह्मचर्या के विषय में विधान प्राप्त होता है।

2.2वर्तमान भारतीय शिक्षा का आधारः–

आजादी के बाद भारत में शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार बनाया जाना उचित था कि वह इस नवगठित राष्ट्र को विकास की राह पर आगे बढ़ा सके। लेकिन सामन्तवादी विरासत और जातिगत भेदभाव, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक वैमनस्यता, भाषाई विभेद और गरीबी जैसी विकराल समस्याओं से निपटना एक विकट चुनौती थी। इन समस्याओं से उबरते हुए देश के

जनतांत्रिक नागरिकों का विकास करना और सभी नागरिकों को राष्ट्रीय एकात्मता के सूत्र में पिरोना था। इस राष्ट्रीय कार्य के लिए संविधान में यथायोग्य प्रावधान करना और शिक्षा का एक व्यापक ढाँचा भी बनाना था।

- **लोकतांत्रिक नागरिकों को तैयार करना**–जनतंत्र की सफलता शिक्षित और साक्षर नागरिकों पर ही आधारित होती है। लोग उचित निर्णय तर्क और समझदारी के साथ लें यह तभी सम्भव है जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति न केवल शिक्षित हो बल्कि जनतंत्रात्मक मूल्यों को समझता हो। साथ ही लोगों में सार्वजनिक जीवन में भागीदारी करने के लिए जरूरी नेतृत्व क्षमता भी बने। यही नहीं लोगों में अपने और अन्य लोगों के न्यायसंगत अधिकारों व जरूरतों के लिए संघर्ष करने तथा तर्क और शान्तिपूर्ण तरीकों से एक–दूसरे को मनवाने की क्षमता से ही लोकतंत्र मजबूत बन सकेगा।
- **राष्ट्रीय भावना को सुदृढ करना**–जब भारत स्वतंत्र हुआतो यह सम्भावना थी कि क्षेत्रीयता, जातीयता या धर्म के आधार पर लोगों में भेदभाव इस सीमा तक बढ़ जाएकि देश की एकता को ही खतरा बन जाए। इसके लिये जरूरी था कि हर धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति केलोगों को अपने–अपने विकास के पर्याप्त मौके मिले और साथ ही अन्य धर्म, जाति या भाषा के लोगों के बारे में जानने–समझने तथा सम्मानपूर्वक रिश्ते बनाने के मौके मिलें। लोग यह समझने लगे कि उनके क्षेत्र या समुदाय का विकास राष्ट्र के विकास में निहित है। इसी से एक नई राष्ट्रीय संस्कृति और मजबूत राष्ट्रीय भावना बन सकती थी। बचपने से ही ऐसी भावनाओं को कायम करने के लिए शिक्षा के अलावा और कोई माध्यम कारगर नहीं हो सकता है।
- **आर्थिक विकास में योगदान–** देश में औद्योगिक विकास सबसे जरूरी है और साथ में खेती में भी आधुनिक तरीकों का उपयोग होना जरूरी है। खेती तथा औद्योगिक विकास के लिए जरूरी था कि हमारे लोग शिक्षित हों और आधुनिक तौर–तरीकों से परिचित हों।यह उम्मीद कुछ हद तक ही पूरी हो पाई और आज भी अशिक्षा और गरीबी एक वृहद समस्या के रूप में हमारे सामने है।
- **सामाजिक न्याय और समानता**– स्वतंत्रता के बाद जो संविधान बना और उसके तहत जो प्रावधान किए गए वे समानता और सामाजिक न्याय को केन्द्र में रखकर बनाए गए अनुसूचित जाति व जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा और शासकीय नौकरियों में आरक्षण तथा महिलाओं से सम्बन्धित कानून इस बात के प्रमाण हैं। पिछले 75 वर्षों में हमारे देश की महिलाओं व अन्य वंचित समुदाय के लोगों ने इन मौकों का भरपूर फायदा उठाया और समानता और न्याय पाने में सफल रहे।
- **धार्मिक स्वतंत्रता–** हमारे संविधान में हर नागरिक को न केवल किसी धर्म को मानने या किसी भी धर्म को न मानने स्वतंत्रता है बल्कि यह भी प्रावधान है शासन किसी विशेष नहीं देगा। शासकीय शैक्षिक संस्थानों में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- **अल्पसंख्यक समुदायों के शैक्षणिक व सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान** संविधान में हैं। पहला तो यह कि भारत के नागरिकों के किसी समुदाय को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार होगा। शासकीय शिक्षा संस्था में प्रवेश के लिए किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा आदि के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकेगा। साथ ही यह प्रावधान भी किया गया कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोग अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए शैक्षिक संस्थाएँ चला सकते हैं।
- **बुनियादी शिक्षा–** स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में एक नई शिक्षा व्यवस्था बनाने को लेकर काफी उत्साह था। लोग चाहते थे कि अंग्रेजो द्वारा स्थापित औपनिवेशक शिक्षा व्यवस्था की जगह भारत की जरूरतों के अनुरूप एक राष्ट्रवादी शैक्षणिक दर्शन का क्रियान्वयन हो। स्वतंत्रता के बाद इसे पूरे देश में लागू करने का प्रयास शुरू हुआ यह तय किया गया कि हर प्रदेश में कुछ चयनित शालाओं को बुनियादी शाला के रूप में विकसित किया जाए जिसमें इस नई शिक्षा पद्धति को लागू किया जा सके। काफी जोश और उत्साह के साथ यह कार्यक्रम लागू किए जाने से कई सकारात्मक परिणाम हुए, खासकर शिक्षा के प्रति सोच में। पुरानी

पाठ्यपुस्तकों पर आधारित शिक्षण पद्धति की जगह गतिविधि शारीरिक श्रम, सामुदायिक काम आदि के महत्व को शिक्षा में स्वीकार किया जाने लगा।

- **सार्वभौमिक शिक्षा**– देश का संविधान जब बना तब नीति निर्देशक सिद्धान्तों में यह कहा गया कि 10 साल के अन्दर देश के हर 6 से 14 वर्ष के बच्चे को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। यह माना गया था कि देश में समानता, लोकतंत्र, राष्ट्रीय भावना तथा आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए सार्वभौमिक शिक्षा अति आवश्यक है।
- **शिक्षा क्षेत्र में प्रौद्योगिकी**–शिक्षा में प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका से अध्ययन की गुणवत्ता में सुधार होता है, बेहतर संचार छात्रों को कौशल और ज्ञान की सुविधा प्रदान करता है। इसके अलावा, ई–लर्निंग प्रौद्योगिकी उपकरणों के साथ, छात्र किसी भी भौगोलिक क्षेत्र से अध्ययन सामग्री तक पहुंच सकते हैं।
- **शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना**–उन नीतियों, प्रक्रियाओं आदि के समूह को शिक्षकप्रशिक्षण कहते हैं जो अध्यापकों के ज्ञान, अभिवृत्ति, व्यवहार, और पढ़ाने के कौशल की वृद्धि के लिये बनायी गयी होतीं हैं।शिक्षक प्रशिक्षण स्वयं को व्यक्त करने की कला में शिक्षकों की मदद करता है। नियमित प्रशिक्षण और प्रतिक्रिया शिक्षकों के मौजूदा ज्ञान को शैक्षणिक रुझानों में बनाए रखती है और जो काम करती है उसे सुदृढ़ करती है। प्रभावी शिक्षण और कक्षा प्रबंधन कौशल रखने के लिए शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण है।
- **समावेशी शिक्षा प्रणाली पर जोर**–समावेशी शिक्षा ऐसी शिक्षा है जिसके अन्तर्गत शारीरिक रूप से बाधित बालक तथा सामान्य बालक साथ–साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपंग बालकों को कुछ अधिक सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा अपंग बालकों के पृथक्कीकरण के विरोधी व्यावहारिक समाधान है।
- **गुणवत्ता शिक्षा को बढ़ावा देना**–गुणवत्तापूर्ण शिक्षा (Quality Education) आधुनिक समाज की मांग हैं और चाहे कोई भी क्षेत्र हो गुणवत्ता की मांग हर जगह होती हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से आशय शिक्षा में गुणों का विकास करना या गुणों का समावेश करना हैं जिससे छात्रों एवं शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति भली–भांति हो सकें।
- **शिक्षा क्षेत्र में ढाँचागत विकास हेतु 'पीपीपी मॉडल' को अपनाना**–नई विकास रणनीतियों में सार्वजनिक निजी भागीदारी (Public-private partnership (PPP) एक फैशनेबल नारा बन गया है, खासकर पिछले कुछ दशकों में इसे निजी संसाधनों का दोहन करने और राष्ट्रीय विकास में निजी क्षेत्र की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए एक नए विचार के रूप में पेश किया गया है।

3. निष्कर्षः–

आधुनिक शिक्षा आज की आवश्यकता है परंतु केवल भौतिक उन्नति ही जीवन का सार नहीं है, इसके साथ आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में जितने भी आयोग और समितियां शिक्षा की उन्नति के लिए गठित किए गए। उन सभी का विश्लेषण करने के बाद यह प्रतीत होता है कि किसी ने भी प्राचीन भारतीय ज्ञान और विज्ञान के बारे में ऐसा कोई विचार नहीं दिया जिससे कि प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान का सदुपयोग आज की भौतिकवादी सभ्यता में किया जा सके। बिना आध्यात्मिकता के कोरी भौतिकता सर्वनाश की ओर ले जाती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में भौतिक उन्नति के स्थान पर आध्यात्मिक उन्नति को महत्व दिया गया था, इसीलिए उनका जीवन शांतिपूर्ण और सात्विक था।प्राचीन भारतीय मनीषियों ने वर्तमान समय से कहीं अधिक उन्नति कर ली थी।ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वह आज से कहीं आगे थे। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा में आधुनिकता को तो अपनाया जाएं लेकिन अपने प्राचीन शिक्षा के आधारों को भी यथोचित स्थान दिया जाए।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
- शर्मा, के. (2021), प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली (इकाई–24), नई दिल्लीः इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयhttps://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/71644
- भारतीय शिक्षा अतीत और वर्तमान, (16 अगस्त 2020)https://thehindipage.com/indian-education/bhartiya-shiksha-ka-itihaas-aur-vartamaan/
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_शिक्षा_का_इतिहास
- सिंह, डॉ. कर्ण. "भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास", 4/230, कचहरी घाटी, आगराः एच.पी. भार्गव बुक हाऊस

भारतीय मनोविज्ञान के सदंर्भ में

राजेश कुमार शर्मा (शोधार्थी)
जयपुर नेशनल विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)
मेल आईडी– rajmaya 2011 / yahoo.com

सारांश :–

भारतीय मनोविज्ञानः– मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है–मन का विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषाओं के साइकोलॉजी शब्द का अर्थ होता है. आत्मा का विज्ञान अतः मनोविज्ञान का अध्ययन विषय आत्मायामन है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मंशेन और आत्मा एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। परन्तु भारतीय मनोविज्ञान में मन और आत्मा अलग–अलग है। आत्मा चतेन सत्ताहै। तथा मन, जड़ प्रकृति का रूप है।' भारतीय मनोविज्ञान का कार्य चित्त को विकसित करना तथा विवेक ज्ञान प्रदान करना भी है।

भारतीय मनोविज्ञान समग्र मन चित्त एवं उसके साधनो मस्तिष्क,नाड़ियो कुण्डलिनीचक्रआदि सहितमानव की अनुभूतियों तथा व्यवहारों का चतेन सापेक्ष गत्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने का क्रियात्मक विज्ञान है।

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है पतञ्जलि का यागे शास्त्र विशुद्ध मनोविज्ञान का शास्त्र है। इस शास्त्र में मानव की प्रकृति का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्मा और मन के अध्ययन के बिना मानव व्यवहार का अध्ययन करना व्यर्थहै। साथ की मन के संयोग बिना इन्दियाँ बाह्य जगत का ज्ञान कराने में असमर्थ है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन इन्द्रिय द्वारा लाए गए विषयोंको ग्रहण कर, उसको बुद्धि को समर्पित करता है। बुद्धचित्त के संस्कारों के आधार पर अहकांर के संयागे से उस विषय को अर्थ प्रदान करती है आरै अपनी प्रतिक्रिया को बाहर भजेती है यह समस्तक्रिया चतेन सत्ता आत्मा के प्रकाश में घटित हातेी हैं।

यजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त की में मन की सत्ता, उसके कार्य व शक्ति का विशद विवरण है। तथापि मनोविज्ञानकी मूल धारणाओं का विवेचन भी इसमें पर्याप्त मिलता है। तथा यह भी कहा गया है कि मन के बिना प्राणियों में काईं भी व्यवहार नही हो सकता। वेदों में मन शब्द उस उपकरण के लिए प्रयुक्त जिसको दार्शनिकों ने अन्तः करण माना हैं।

भारतीय मनोविज्ञान की धारणाएं अत्यन्त उत्कृष्ट तथा वैज्ञानिक है। यह आत्मा मन तथा शरीर का व्यवस्थित या वैज्ञानिक स्वरुप प्रस्तुतकरता है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मानवचित्त में कुछ स्वाभाविक तथा प्राम्भवीय प्रवृत्तियाँ पायी जाती है। जो सभी प्रकारके विचारों एवं क्रियाओंके तत्त्वतः स्राते हैं। इनके अनुसार ये वे आधार है, जहां से व्यक्तियों के चरित्र तथा इच्छा–शक्ति का क्रमशः विकास होता है। प्रत्यक्ष एवं पराक्षे रूप में मलू प्रवृत्तियाँ ही समस्त क्रियाओं को प्रवृत्त करने वाली है।

स्वामी दयानन्द ने भारतीय मनोविज्ञान के क्षत्रे में ज्ञानेन्द्रियों का शक्ति रुप तथा स्थूल रूप भेद को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अपने शक्ति के रूप में होती हैं। स्वामीजी के अनुसार सूक्ष्म शरीर में स्थित पंच ज्ञानेन्द्रियों को शक्ति से स्थूल पंच ज्ञानेन्द्रिया क्रियाशील होती है। यद्यपि आधुनिक परा–मनोविज्ञान–सूक्ष्म शक्तियों को स्वीकार नही करता है। किन्तु परामनोविज्ञान को दूरदर्शन, दूरश्रवण तथा दूसरे के मन की बात जान लेना इन ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियों को सिद्ध करती है। भारतीय मनोविज्ञान का मत है कि सूक्ष्म इन्द्रियाँ अपनी सत्र असाधारण शक्ति से इनको जान लेती हैं।

मनुष्य का शरीर लगभग 20 वर्ष तक ही क्यों बढ़ता हैं। और फिर क्यों बढ़ना बन्द हो जाता है। इसका यही उत्तर हैं कि उस छोटे से मौलिक कोष्ठ मे मनुष्य के भावी विकास तथा इन शक्तियों का समर्थन करती है। भारतीय मनोविज्ञान इसी उपर्युक्त अवधारणा के साथ अग्रस रहातेा

आ रहा है।

भारतीय मनोविज्ञान के अर्न्तगत मानव की मानसिक शक्ति एवं चेतना के उन्नयन में योग और ध्यान का अध्ययनः – आज के व्यस्ततम जीवन में मनुष्य ने सफलता के कई आयामों को प्राप्त किया है, किन्तु उसने इस दौर में अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक मल्यों को छाड़े रहा है, जिसके परिशामस्वरूप अनेको मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो गयी है। जिसका निवारण केवल ध्यान यागेद्वारा ही सम्भव है।

मनसिक व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति को चिन्ता से चतेना स्तर पर पहंचुाने का कार्य ध्यान याग` द्वारा होता है। यहाँ चिंतन, चिंता और चेतना क्या है। इसको समझना अत्यन्त आवश्यक है। चिन्ता में व्यक्ति न कारात्मक सोचता है, चिंतन में व्यक्ति न कारात्मक तथा सकारात्मक सोचता है। तथा जब व्यक्ति केवल सकारात्मक ही सोचता है, तब उसमें चतेना शक्ति का प्रादुर्भाव होता ह`ै इस के प्रादुर्भावों में ध्यान यागे का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन के प्रारम्भ में कहा है–योग श्चित्तवृति निराधेः अर्थात्, चित्तवृत्ति का निरोध या अवराधे ही यागे है। अर्थात जिन क्रियाओं के द्वारा चित्त की वृत्तियों का अवराधे होता है वही यागेा कहलाता है। परन्तु यहां प्रश्न उठता है कि चित्त की वृत्तियां क्या है? और कितनी ह`ै। चित्र की वृत्तियों से तात्पर्य– चित्त के व्यापारी तथा अवस्थाओं से है। ये वृत्तियां 5 प्रकार की होती है– 1.प्रमाण, 2.विपर्यय, 3.विकल्प, 4. निद्रा, 5 स्मृति।

प्रमाणः – पद्माकरणं प्रमाणम्। प्रथा का कारण अथार्त् सत्य ज्ञान। यागे–दशर्न भी प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द तीन प्रमाणो को स्वीकार करता है।

विपर्यय :–वस्तु का मिथ्या ज्ञान विपर्यय कहलाता है।

विकल्प :– स्मृतिः शब्द शान से उत्पन्न,परन्तु सत्य से शून्य ज्ञान 'विकल्प है।

निद्रा :– तमका आधिक्य हाने से जो ज्ञान हातेा है, वह निद्रावृति है।

स्मृति :– अनुभव किए गए विषयों का बिना परिवतर्न किए हुए ठीक–ठाक याद करना स्मृति ळें अनुभूत विषया सम्प्रभाषेः स्मृतिः यागे हैं। चित्रवत्ति के उपर्युक्त 5 प्रकार के व्यापारोंका अवराधे ही यागे है।

भारतीय मनोविज्ञान में 'पंचकाशे' की अवधारणाः – भारतीय मनोविज्ञान में 'पंचकाशे' की संकल्पना का अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्त्व है। 'यथा पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड' की अवधारणा से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः वदेान्त दशर्न का यह एक आधारभूत सिद्धान्त है। श्री आद्यशकंराचार्य ने अपने ग्रन्थ विवेक – चूड़ामणि' में पंचकाशेों का वर्णन किया है। इसके बाद श्री विद्यारण्य स्वामी ने पंचकोशों का सुन्दर निरूपण अपने ग्रन्थ पंचदशी में किया। लेकिन पंचकाशे संकल्प नाका मूल स्थान तैत्तिरीय उपनिषद् है ।

ठस उपनिषद् के आधार पर ही पंचकाशेों का अध्ययन अपेक्षित है। आचार्य विनोबा भावेने अपने ग्रन्थ अष्टादशी में इस उपनिषद् से 25 श्लाके चुनकर हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। उनका अनुवाद सरल तथा स्पष्ट होने के कारण समझ में आता है। 'पंचकाशे' सम्बन्धी जोश्ला के तैत्तिरीय उपनिषद में हैं उनका अनुवाद विनाबेा की की भाषा में इस प्रकार हैः–

(आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से पानी, पानी से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधि, आषेधि से अन्न (और) अन्न से पुरुष (उत्पन्न हुआ)। यह पुरुष अन्न रसमय है। उसका यह अन्न सिर है, यह दक्षिण (दायां) बाजू, यह उत्तर (बायीं) बाजू,यह आत्मा है। यह आधार रूप बैठक है।)

ये पाँचकाशे हैं :–

1.अन्नमयकाशे –अन्न तथा भोजन से निर्मित। शरीर और मस्तिष्क। सम्पूण दृश्यमान जगत, ग्रह –नक्षत्र, तारे और हमारी यह पृथ्वी, आत्मा की प्रथम अभिव्यक्ति है। यह दिखाई देने वाला जड़ जगत जिसमें हमारा शरीर भी शामिल है यही अन्न से बना शरीर अन्न रसमय कहलाता हैं। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने अन्न को ब्रह्म कहा है। यह प्रथम कोश है जहाँ आत्मा स्वयं को अभिव्यक्त करती रहती है। शरीर कहने का मतलब सिर्फ मनुष्य ही नहीं सभी वृक्ष, लताओं और प्राणियों का शरीर। जो आत्मा इस शरीर को ही सब कुछ मानकर भोग–विलास में निरंतर रहती है वही तमोगुणी कहलाती है। इस शरीर से बढ़कर भी कुछ है। इस जड़–प्रकृति जगत से बढ़कर भी कुछ है जड़ का अस्तित्व मानव से पहिले का है। प्राणियों से पहिले का है। वृक्ष और

समुद्री लताओं से पहिले का है। पहिले पाँच तत्वों (अग्नि, जल, वायु, पृथवि, आकाश) की सत्ता ही विद्यमान थी। इस जड़ को ही शक्ति कहते हैं– अन्न रसमय कहते हैं। यही आत्मा की पूर्ण सुप्ता वस्था है। यह आत्मा की अधागेति है। फिर जड़ में प्राण, मन और बुद्धि आदि सुप्त है। इस शरीर को पुष्ट। और शुद्ध करने के लिए यम, नियम और आसन का प्रवधान है।

2.प्राणमय काशे– प्राणों से बना। स्वास लेने से हमारे अन्नमय का शेसे जो स्पंदन बाहर तरफ़ जाता है डस से हमारे चारों तरफ़ तरंगों का क्रम बन जाता है, यही हमारा प्राणमय काशे होता है, मानसिक आरै शारीरिक रूप से स्वस्थ मनुष्य पूर्ण साँस लेता है तो उसका प्राणमय काशे उत्तम अवस्था में रहता है, प्राणायाम के सतत प्रयोग से प्राणमय कोश को स्वस्थ रखा जा सकता है।

3.मनोमय कोश– मन से बना। हम जो देखते, सुनते हैं अर्थात हमारी इन्द्रियों द्वारा जब कोई सन्दशे हमारे मस्तिष्क में जाता है तो उसके अनुसार वहाँ सूचना एकत्रित हो जाती है, और मस्तिष्क से हमारी भावनाओं के अनुसार रसायनों का श्राव होता है जिससे हमारे विचार बनते हैं, जैसे विचार होतें हैं उसी तरह से हमारा मनस्पंदन करने लगता है और इस प्रकार प्राणमय काशे के बाहर एक आवरण बन जाता है यही हमारा मनामेय काशे होता है

4. विज्ञानमय काशे –अन्तर्ज्ञा नया सहज ज्ञान से बना काशे विज्ञान मय काशे कहलाता है। 5. आनंदमय काशे – आनन्दानुभूति से बना। यागे मान्यताओं के अनसुार चतेन आरै अवचेतन मन का संपर्क प्राणमय कोश के द्वारा होता है।

स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा लिखित स्वर यागे के तहत काशेों के मनोवैज्ञानिक आयाम, शारीरिक दशा आरै अनुभूति के प्रकार का उल्लेख किया गया।

भारतीय मनोविज्ञान के अर्न्तगत परिपक्व व्यक्ति की संकल्पना तथा स्थित राजः – भारतीय मनोविज्ञान में वर्णित स्थित प्रज्ञ एवं परिपक्व व्यक्ति की संकल्पना का स्राते गीता है। गीता के अनुसार परिपक्व व्यक्ति में वे लक्षण होने चाहिए जो किसी स्थित प्रज्ञपुरुष में होते हैं। इस प्रकार परिपक्व व्यक्तित्व के लिए स्थित प्रज्ञ होना आवश्यक है। गीता के द्वितीय अध्याय में स्थित पक्ष के लक्षण बताए गए हैं। जो परिपक्व व्यक्ति की दृष्टि महत्वपर्ण है। स्थित प्रज्ञ व्यक्ति के लक्ष्य निम्न है)

1. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनागेतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः
स्थित प्रज्ञस्तदाच्यते।। (55)

अर्थात् जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः। वीतराग भय को स्थिती मुनि
रुच्यते। अर्थात् राग, द्वेष, भय, क्राधे आदि से मुक्त होता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः। वीतराग भय को स्थिती
मुनिरुच्यते। यदा संहरते न्याय, कुर्मी डानी व सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। अर्थात जो व्यक्ति,
कछु ओंके समान अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटा लेता है।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत्भत्यरः। बशेहि यस्थेन्द्रियाणि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

इस प्रकार गीता में स्थित प्रज्ञ व्यक्ति के जोल क्षण गीता में बताएं गए है वे वास्तव में परिपक्त व्यक्ति के ही लक्षण है।

भारतीय मनोविज्ञानकी शिक्षा में उपयोगिताः–

1.भारतीय मनोविज्ञान आत्मा तथा मन की अलग–अलग रूपों में स्वीकार 'करते हैं, उनके अनुसार आत्मा चतेन तत्व तथा मनजड़ तत्त्व है।

2. भारतीय मनोविज्ञान से उसे मनमानता हं।

3.भारतीय मनोविज्ञान में मन कों जानने के लिए आत्मीय तथा अन्तर्दशर्न रीतियों को अपनाया जाता है, जिससे पूर्ण मन की जानकारी स्पष्ट रूप में प्राप्त हा।

4. भारतीय मनोविज्ञान में मन की सभी सूक्ष्म, अव्यक्त, अप्रत्यक्ष वृत्तियोंका अध्ययन किया जाता है।

5.भारतीय मनोविज्ञान मस्तिष्क को नही मानता क्योंकि संकल्प विकल्प जो मन द्वारा सम्भव है वह मस्तिष्क द्वारा सम्भव नही है ।

6. भारतीय मनोविज्ञान मानव की आत्म तत्व मानता है ।
7. भारतीय मनोविज्ञान मनुष्यके निः श्रेयस (मुक्ति) पर
आधारित है।
8. भारतीय मनोविज्ञान पूर्णतः आध्यात्मिक रहा है ।
9. भारतीय मनोविज्ञान इन्द्रिय सापक्ष तथा इन्द्रिय निरपेक्ष दानेा है। तथा दानों को महत्त्व दिया जाता है।
10. भारतीय मनोंविज्ञान मानव मन की शक्तियों से परिचित हाने से मानव मन का पूर्ण विकास, संभव है
11. भारतीय मनोंविज्ञान बाद्य पक्ष के साथ ही अन्तः पक्ष व्यक्ति निष्ठता को भी स्वीकार करता है।

उप संहारः – भारतीय मनोविज्ञान का अध्ययन प्रत्येक शिक्षक के लिए आवश्यक है। इस विषय का अध्ययन करके शिक्षक को यह भली–भाँति मालूम हो जाता है कि व्यक्ति मूलतः आध्यात्मिक है। शरीर प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा के सर्वांगीण सम्बन्ध के आलोक में शिक्षण कार्य सही अर्थों में भारतीय जीवन दर्शन तथा संस्कृति के अनुरूप होता है।

अपने को जानो, अपने को पहचानो यह सीख भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्नहै। प्रत्यके व्यक्ति को एसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह अपनी सही पहचान आत्मा की अनुभूति के द्वारा कर सके यही शिक्षा का आध्यात्मिक आयाम है। भारतीय मनोविज्ञान इसी आध्यात्मिक आयाम को व्यावहारिक रूप प्रदान करता है ।

भारतीय मनोंविज्ञान चतेनाका विज्ञान है। दूसरे शब्दों में, चतेना के विभिन्न स्तरों का अध्ययन स्थूल से सूक्ष्म की आरे अग्रसर होने में सहायक होता है। जब हम बुद्धि के स्वरूप का अध्ययन करते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि भारतीय मनोविज्ञान में सत्य आरै यथार्थ पर कितना बल दिया गया है। जब व्यक्ति काम, क्राधे और लाभे के वश में होता है, तब उसकी बुद्धि अधागेामी बन जाती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति निर्मल मन से सत्य और प्रमे का अनुसरण करता है उसकी बुद्धि ऊर्ध्व गामी बन कर प्रज्ञा का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार बुद्धि के विकास का चरम बिन्दु ऋतम्भरा प्रज्ञा है। इसकी व्याख्या हमें महर्षि पतंजलि के यागे सूत्र में मिलती है।

शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का अध्ययन जिन विषयों के ज्ञान की अपक्षेा शिक्षकों से करता है उन सबका विवेचन भारतीय दशर्न के विभिन्न आधारों के आलाके में इस आशा से प्रस्ततु करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय मनो विज्ञान अपनी सांस्कृतिक परम्परा से जुड़ा रहे।

भगवद्गीता एक प्रकार से भारतीय मनोविज्ञान का मलू ग्रन्थ है। अतः जो शिक्षक भारतीय मनोविज्ञान में रुचि रखते हों उनके लिए यह आवश्यक है कि वे गीता का सतत अध्ययन करेंगी ताके आलाके में मानव–जीवन की विभिन्न समस्याओं को समझें।

टधिकतर भारतीय विश्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों में 'शिक्षा– मनोविज्ञान' का वह स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है जो पश्चिम की देन है। इस के फल–स्वरूप पश्चिमी शिक्षा मनोविज्ञान पर आधारित जो पाठ्यपुस्त कें प्रकाशित की गई हैं। उनमें केवल मानव के जैविक पक्ष परबल दिया गयाहै।

संदर्भ ग्रन्थ सचूी

अखण्ड ज्योंति–युग गीता (दिसम्बर, 2015)
राजस्थान पत्रिका–ज्ञान का सागर है भागवत् (8जनवरी, 2017)
राजस्थान पत्रिका–धर्म की रक्षा मनुष्य का धर्म (11जनवरी, 2018)
इन्दा, उम्मदे सिंह–''मलूय पर शिक्षा आज की महती आवश्यकता' 'राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका, अप्रैल, 2016 मार्च, 2017 एक वर्षीय समकित अंक माध्यमिक शिक्षा बार्ड राजस्थान अंक 4, खण्ड 42 से 43 पृ.सं. 50–51
पंत निम्मी छात्रों में मलूय संवर्द्धनः–''भारतीय आधुनिक शिक्षा'' अंक–21, अप्रैल, 2019 पृ.सं. 38–42
शर्मा वी. के. ममताः– ''उच्च शिक्षा में मूल्य का प्रावधान'' शिविरा पत्रिका अंक 8 फरवरी, 2021 पृ

सं.32–33
भट नागर, ए. बी., एवं भटनागर, एम. (2007) –मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मल्यांकन. मरेठः आर. लाल बुक डिपों.
भटनागर, सुरेश (2008) – शिक्षा मनोविज्ञान, मरेठः आर. लाल बुकडिपो.
भटनागर, बी. भटनागर, एम.(2003) –शैक्षिक एवं मानसिक मापन, मेरठः आर. लाल बुक डिपो.
गुप्ता, कु.रक्षा जुलाइ सितम्बर (2002) . शिक्षा चिन्तनः उच्च शिक्षा और भारतीय मल्य. कानुपरः त्रिमूर्ति सस्थान पृ. स.33. सिंह, कुलदीप नवम्बर (2021). शिविरा पत्रिकाः बच्चों को परिवार में शिष्टा चार की शिक्षा .बीकानेरः राजस्थान शिक्षा विभाग. पजे न.15
विद्या भारती पद्रीपिका. नईदिल्लीः त्रैमासिक. अप्रैल–जून 2022. शिक्षा से संस्कार.पृ. स.–17

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

डॉ. कृपाशंकर शर्मा
(सहायक आचार्य)
संजय टी.टी. कॉलेज,जयपुर

डॉ. सन्तोष कुमारी
(सहायक आचार्य)
मोहिनी देवी गोयनका गर्ल्स बी.एड कॉलेज,
vinitakripa117@gmail.comघस्सू लक्ष्मणगढ़, सीकर

E-mail Id -Santoshdhaka538@gmail.com

सारांश

''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाँयें।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताये।''

गुरु–अर्थात शिक्षक व धुरी जो शिष्य में उसकी बुराइयों (दुर्गणों) को दूर कर उसमें आदर्श तथा नवीन मान्यताओं का विकास करता है।

एडम्स ने शिक्षक तथा छात्र दोनों को ब्राह्माण्ड का अंग माना है शिक्षक का कार्य है बालक को उच्चता के शिखर पर पहुँचाना, बालक में अन्तर्निहित शक्तियों को व्यवस्थित तथा आदर्श मार्ग–प्रदर्शन करके; मन,वचन और उसके कार्यो में समन्वय स्थापित करना। समाज व राष्ट्र के लिए नये–नये उच्च व्यक्तित्व वाले नागरिको का निर्माण करता है जिसके छात्र भविष्य में देश, समाज तथा स्वंय की उन्नति कर सके।

शिक्षक शिक्षा या अध्यापक शिक्षा एक ऐसी शैक्षिक व्यवस्था है जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने का प्रयास किये जाते है कि ज्ञान तथा मूल्यों का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक हस्तांतरण कर शैक्षिक व विकासात्मक उत्तरदायित्वों का आरोपण किया जा सके और वो वैज्ञानिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक दक्षता प्रयोग धर्मी सोच ;प्ददवअंजपअम जीपदापदहद्ध तथा मानवीय प्रवृति विकसित कर सके।

प्रो. एस.एन. मुखर्जी के अनुसार– विभिन्न शिक्षा केद्रों में सुधार की आवश्यकता है और इस उद्देश्य हेतु ''अध्यापक शिक्षा'' एक बेहतर शब्द है क्योंकि यह अध्यापक निर्माण संबंध क्षेत्रविस्तृत बनाती हैं।

गुड के शिक्षा कोष के अनुसारः– ''अध्यापक शिक्षा के वे सभी अनुभव तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्रियाएं सम्मिलित है जो किसी भी व्यक्ति को शिक्षण–व्यवसाय का दायित्व संभालने की योग्यता प्रदान करती है।''

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने स्कूली शिक्षा को स्कूल पूर्व प्राइमरी, अपर प्राइमरी, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तरों में बॉटा है। ताकि इसकी निरंतरता लगातार बनी रह सकें। योजना का उद्देश्य अंग्रेजी के टी से बने शब्द–टीचर्स और टेक्नोलॉजी का एकीकरण करके सभी स्तरो पर गुणवता में सुधार लाना है। अभिभावक स्कूल प्रबंधन समिति के सदस्य, समुदाय तथा राज्य कर्मी आदि की सक्रिय भागीदारी से बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना सुनिश्चित किया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा मिशन योजना का उद्देश्य कहीं भी किसी समय उच्च शैक्षिक संस्थानों मे सभी विद्यार्थियों के फायदे के लिये शिक्षण और अध्ययन प्रक्रिया के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का पूरा इस्तेमाल करना हैं। विद्यालयों/महाविद्यालयों का बुनियादी ढाँचा और शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था बेहद कमजोर है शिक्षा की गुणवता में सुधार के सकारात्मक अभियान में सभी का सक्रिय सहयोग लेना अति आवश्यक होगा। शिक्षको के अच्छे प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण का दायित्व कर्तव्यनिष्ठ, योग्य और क्षमतावान प्रशिक्षकों को सौंपा जाना चाहिए।

प्रस्तावना

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है तथा इसका मुख्य उद्देश्य समाज के सदस्यों को शिक्षित करके संपूर्ण समाज का विकास करना है, सभी वर्गों की शैक्षिक आवश्यकताएं व आर्थिक–सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती है। जिसकी वजह से इन वर्गों को अलग–अलग प्रकार की

शिक्षा–व्यवस्था की आवश्यकता होती हैं। राज्य सभी वर्गों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने में संभवतः असमर्थ ही रहेगा। अतः समाज यह निर्णय कर सकेगा कि उसके सदस्यों की भावी शिक्षा किस प्रकार की हो शिक्षा किस प्रकार से दी जाये, शिक्षा क्यों दी जायें, शिक्षा कहां दी जायें, शिक्षा कैसे दी जायें, शिक्षा कौन दे व शिक्षा कौन ले आदि।

अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थानों में शासन एक हताहत है क्योंकि वे भागीदारी, जवाबदेही, पारदर्शिता, आम सहमति, और समावेश जैसी विशेषताओं की उपेक्षा करते है भारतीय शिक्षा का प्रबंधन अति केंद्रीकरण, नौकरशाही संरचनाओं और जवाबदेही की कमी पारदर्शिता और व्यावसायिकता की चुनौतियों का सामना करता है।

पाठ्यक्रम छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों, दृष्टिकोणों कल्पना शक्ति ,सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी ध्यान रखना चाहिए।

शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यता, रूचि व अभिवृति तथा अनुभव की दृष्टि से उपयुक्त हो। बहुत कम विभाग इस प्रकार की क्रियाओं को संगठित करने में रूचि लेते है अधिकतर स्थानों पर पाठ्यक्रम की खानापूर्ति करना ही सब कुछ है। पाठ्यक्रम में निर्धारित शारिरिक शिक्षा, स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः इसमें सुधार की आवश्यकता हैं।

प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव–विद्यालय व महाविद्यालयों में पर्याप्त प्रशिक्षित अध्यापकों की पूर्ति न होने के कारण उचित अकादमिक वातावरण का सृजन नहीं हो पाता है इससे समाज में शिक्षा के संबध में सही संदेश नहीं पहुँच पाता है तथा शिक्षा के प्रति उन्ममुखता नहीं बढ़ पाती है। विद्यालयों व महाविद्यालयों में पर्याप्त प्रशिक्षित अध्यापकों की निष्पक्ष ढंग से भर्ती करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

शिक्षा में जनसहभागिता की कमी– शिक्षक शिक्षा

पुराना पाठ्यक्रम भारत में शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पुराना है और छात्रों की बदलती जरूरतों को प्रतिबिंबित नहीं करता है। व्यावहारिक और अनुभवात्मक शिक्षा के बजाय अक्सर रटने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। मौजूदा संस्थानों में शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे का अभाव है।

भारत में कई चुनौतियों का समाधान किया जाना चाहिए। महतवपूर्ण चुनौतियों में एक योग्य, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है। उन सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए पर्याप्त योग्य प्रशिक्षक नहीं है। जिन्हें इसकी आवश्यकता है

भारत में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए कोई मानकीकृत पाठ्यक्रम नहीं है। जिसके परिणाम स्वरूप प्रशिक्षण की गुणवत्ता और सामग्री असंगत हो सकती हैं।

भारत में अच्छे शोध कार्य का अभाव है।

सकारात्मक और ज्ञान देकर, शिक्षा हमारा भविष्य बदलती है हमे नयी पहचान देकर। धर्म जाति और भेदभाव से परे, शिक्षा जीवन में एक सुनहरे काल का निर्माण करे।

शिक्षा है जीवन का आधार, शिक्षा बिन सब है बेकार।
शिक्षा पर जोर होगा, तभी देश प्रगति की ओर होगा।
शिक्षा जीवन का सार सिखाती है, जीवन की कठिनाइयों में राह दिखाती है।

शिक्षक या अध्यापक–

भारत में शिक्षा की गुणवता में सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण आवश्यक है। यह शिक्षकों के ज्ञान और कौशल को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है। उन्हें नई शिक्षण विधियों और प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने में सक्षम बना सकता है। और छात्रो की जरूरते को बेहतर ढंग से समझने में मदद कर सकता है। शिक्षक प्रशिक्षण से शिक्षकों की नौकरी छोड़ने की प्रवृति को कम करने में भी मदद मिल सकती है, जो कुछ क्षेत्रों मे खराब कामकाजी परिस्थितियों और कम वेतन के कारण अधिक हो सकती है, जो संविदा शिक्षको के लिए अधिक सटीक है।

अच्छे शोध कार्य का अभाव– भारत वर्ष में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी अपनी शैशवास्था में प्रतीत होता है। विदेशों विशेषकर ब्रिटेन एवं अमेरिका में किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं का प्रिय विषय

रहा है। नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में अभाव रहा है। खेद का विषय है कि शिक्षा की स्नातकोत्तर व अनुसंधान उपाधियों से युक्त तथाकथित महान प्रोफेसरगण शिक्षा को कोई निंतात मौलिक बात नहीं दे पाये है।

आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेश को ध्यान में रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान किये जायें ताकि सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनो की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।

आगे की राह–

हमारे शैक्षिक वितरण तंत्र को मानव पूंजी की संपति को जन–जन तक पहुंचाना चाहिए। भारत को कंप्यूटर और हाई स्पीड इंटरनेट तकनीक को अपनाना होगा, ईंट और मोर्टार स्कूलों, कॉलेजो और विश्वविद्यालय के मॉडल को एकीकृत और आईसीटी के साथ जोड़ना होगा। नवाचार और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करें।

हमारे परीक्षण और अंकन प्रणाली को मूल योगदान, रचनात्मकता, समस्या समाधान और नवाचार को पहचानने के लिए बनाया जाना चाहिए।

प्रशिक्षकों को लगातार प्रशिक्षित करें।

विदेशी सहयोग रखते हुये। सरकार को भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों और शीर्ष अतंराष्ट्रीय संस्थानों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए।

सरकार को बेहतर गुणवत्ता और सहयोगी अनुसंधान के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाओं और शीर्ष संस्थानों के अनुसंधान केंद्रों के बीच संबंध बनाना चाहिए।

शैक्षणिक उत्कृष्टता शिक्षण, अनुसंधान और अकादमिक प्रशासन में एकीकृत कौशल की मांग करती है। लेकिन विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति/संस्थापक और उनका समर्थन करने वाले मानव संसाधन नेताओं में इस क्षमता का अभाव है।

अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थानों में शासन एक हताहत है, क्योंकि वे भागीदारी, जवाबदेही, पारदर्शिता, आमसहमति और समावेश जैसी विशेषताओं की उपेक्षा करते है।

भारतीय शिक्षा का प्रबंधन अति–केन्द्रीकरण, कमी, पारदशिता और व्यावसायिकता की चुनौतियों का सामना करता है।

उच्च शिक्षा के लिए एन.ई.पी. –2020 ने कुशल रोजगार सृजन और रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिए आगामी औद्योगिक क्रांति से जोड़कर बहु–विषयक कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों के समूहो की स्थापना के उद्देश्य से शासन और संस्थागत सुधारों में जबरदस्त बदलाव लाए है।

एन.सी.टी.ई की स्थापना के बाद सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा पर पुनर्विचार किया गया । उसके अनुसार उद्देश्यों को पुनः परिभाषित किया गया व वर्तमान स्थिति का भी आकलन किया गया।

ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड येाजना आरम्भ हुई तो व्यापक रूप से लाखों अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया गया पर मुल्यांकन से ज्ञात हुआ कि उसके अन्तर्गत दिये गये उपकरणों का उपयोग विद्यालयों में नहीं के बराबर हुआ। देखना, सुनना और है पर उसे जीवन की पद्धति बनाकर क्रियान्वयन करना कुछ और। देखने व सुनने से ही वैसा करना हो जाता तो पिछले पचास वर्षों के ढेर सारे प्रशिक्षणों पर कुल मिलाकर अरबों रूपये ख़र्च होने के बाद शिक्षा में उसकी स्थिति ही बदी जाती , पर आज हम देखते हैं समस्याएँ बढ़ी है, घटी नहीं हैं।

निष्कर्ष– भविष्य की आवश्यकताओं तक पहुंचने और प्राप्त करने के लिए वितिय संसाधनों, पहुंच और इक्विटी, गुणवत्ता मानकों, प्रासंगिकता और बुनियादी ढांचे पर फिर से विचार करने की तत्काल आवश्यकता है।

अध्यापक शिक्षा में आवश्यकता इस बात की है कि मूल्यांकन की नई विधियाँ अपनाई जाएँ। प्रशिक्षण के उद्देश्य क्रियान्विति, उपयोगिता, आयोजन, अवधि, संदर्म्य व्यक्तियों का योगदान, व्यय की प्रभावशीलता (कॉस्ट इफेक्टिवनेस), उपलब्धि विद्यालयों में होने वाले प्रभाव, संभागियों का चयन, सहभागिता आदि अन्य पक्ष भी मूल्याकंन में सम्मिलित होने चाहिये। अध्यापक शिक्षा मौलिक अनुंसधान,मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

भारत में शिक्षक प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर विभिन्न संगठनों द्वारा आयोजित किया जाता है,राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद एनसीटीई एक वैधानिक निकाय है। जो भारत में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए मानक निर्धारित करती है। राज्य शैक्षिक अनुंसधान एवं प्रशिक्षण परिषद एक राज्य स्तरीय संगठन है ''जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान''(डाइट) एक जिला स्तरीय संगठन है जो शिक्षकों को सेवापूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करता हैं।

भारत में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, निजी संस्थानों और नागरिक समाज को मिलकर काम करने और एक ऐसी प्रणाली बनाने की जरूरत है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षक प्रशिक्षण प्रदान करे। तभी हम सुनिश्चित कर सकते है कि भारत में प्रत्येक बच्चे को 21वीं सदी के लिए छात्रों को तैयार करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले।

शिक्षक शिक्षा में आने वाली चुनौतियों का समाधान किया जाना चाहिए, भारत में शिक्षा के भविष्य के लिए शिक्षक प्रशिक्षण एक आवश्यक निवेश हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- Kailash education, https://www.Kailasheducationcom.
- भावी शिक्षकों के लिए आधारभूत कार्यक्रम, जगदीश नारायण पुरोहित, हरिश्चन्द्र व्यास, डॉ मुरली मनोहर शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर, ISBN-978-81-7137-657-5
- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ पी.डी. पाठक श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2009, ISBN-81-7457-0470
- शिक्षक प्रशिक्षण के सिद्धान्त और समस्याएं,दिनेश चन्द्र जोशी,चतर सिंह मेहता,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- अग्रवाल.वी.(1997), आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएं'' विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा

भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवनदृष्टि एवं स्त्री शिक्षा

श्रीमती सरोज योगी
(शोधार्थी)
महर्षि अरविन्द विश्वविद्यालय,जयपुर
e-mail id: sarojyogi0121@gmail.com
Mobile No. 7414807421

डॉ. चन्दन सहारण
(Dean & HOD)
शिक्षा संकाय, महर्षि अरविन्द विश्वविद्यालय, जयपुर
e-mail id: chandan.saharan77@gmail.com
Mobile No. 9414218380

सारांशः–
वैदिक काल में शिक्षा का प्रमुख स्थान था। इसे समाज के लिए पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाता था। शिक्षा काफी हद तक धार्मिक थी और ब्राह्मण शिक्षा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार थे। शिक्षकों से अपेक्षा की जाती थी कि उनमें धर्मपरायणता, धार्मिकता, प्रबुद्ध दृष्टि, उच्च चरित्र, आत्मविश्वास और दृढ़ निर्णय, अपने सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, दक्षता और आत्म–संयम हो। वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा का भी प्रमाण मिलता है। वैदिक कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का उतना ही अधिकार प्राप्त था जितना कि पुरुषों को। भगवान बुद्ध के उपदेशों से जो शिक्षा प्रणाली अस्तित्व में आई जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली के नाम से जाना जाता है। शिक्षा की यह प्रणाली मठवासी थी। शिक्षक और छात्र दोनों मठ के प्रति उत्तरदायी थे। दोनों 'सादा जीवन और उच्च विचार' सिद्धांत का पालन कर रहे थे। बौद्ध काल में महिलाओं की शिक्षा नगण्य थी, क्योंकि महिलाओं को भगवान बुद्ध ने सभी बुराइयों का स्रोत माना था। इसलिए उन्होंने अपने जीवन काल में महिलाओं को मठों में प्रवेश न देने की सलाह दी थी। तत्पश्चात् मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रदान करने के लिए दो स्तर प्राथमिक स्तर और उच्च स्तर तय किये गए थे। प्राथमिक स्तर की शिक्षा के केंद्र मकतब और उच्च शिक्षा के केंद्र मदरसा थे। मध्यकाल में प्राथमिक शिक्षा के केंद्र मकतबों में तो बालिकाओं को भी शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रवेश दिया जाता था, लेकिन उच्च शिक्षा मदरसों में प्रवेश पर प्रतिबंध था अर्थात् उच्च शिक्षा की महिलाओं के लिए कोई व्यवस्था इस समय नहीं थी। अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ और भारत में कई गुरुकुल बंद हुए और उनके स्थान पर कॉन्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के शासन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। आजादी के पश्चात् शिक्षा व्यवस्था में लोकतांत्रिक और राष्ट्रीय भावना के सुदृढीकरण, सामाजिक न्याय और समानता, धार्मिक स्वतंत्रता, बुनियादी शिक्षा, अल्पसंख्यक समुदायों के शैक्षणिक व सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए अलग से शैक्षणिक संस्थाओं का विशेष प्रावधान, सार्वभौमिक शिक्षा, समावेशी शिक्षा प्रणाली, गुणवत्ता शिक्षा को बढ़ावा आदि को आधार बनाया गया। **भारत में स्वतन्त्रता के समय महिलाओं में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त विकट थी। सरकार ने बालिका शिक्षा और बालिका सशक्तिकरण को लेकर हाल में अनेक योजनाएँ शुरू की है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन से निश्चित रूप से बालिकाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है। बालिका सशक्तिकरण में शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण है। बिना शिक्षा के महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन असम्भव है।**

1. प्रस्तावनाः–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। (जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वहाँ देवताओं का वास होता है।) प्राचीन काल में शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया गया था। भारत 'विश्वगुरु' कहलाता था। विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा को प्रकाशस्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञानचक्षु और तीसरा नेत्र आदि उपमाओं से विभूषित किया है। उस युग की यह मान्यता थी कि जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने का साधन प्रकाश है, उसी प्रकार व्यक्ति के सब संशयों और भ्रमों को दूर करने का साधन शिक्षा है। प्राचीन काल में इस बात पर बल दिया गया कि शिक्षा व्यक्ति को जीवन का यथार्थ दर्शन कराती है तथा इस योग्य बनाती है कि वह भवसागर की बाधाओं को पार करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सके, जो कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। भारतीय शैक्षिक चिन्तन में सम्पूर्ण जीवन शिक्षा के लिए एवं शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन के लिए माना गया है। वैदिक काल में सम्पूर्ण जीवन के लिए शिक्षा की प्रतिष्ठा की जाती

थी। भारत दुनिया में शिक्षक शिक्षा की सबसे बड़ी प्रणालियों में से एक है। भारत में शिक्षा का एक मजबूत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है और यह विभिन्न बाहरी आक्रमणकारियों, समाज सुधारकों और प्रमुख शिक्षाविदों का परिणाम है।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। फारसी जानने वाले ही सरकारी कार्य के योग्य समझे जाने लगे। हिंदू अरबी और फारसी पढ़ने लगे। बादशाहों और अन्य शासकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रारंभिक शिक्षा के केंद्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के। भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्मप्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विद्यालय स्थापित किए। इन विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा के साथ साथ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि विषय भी पढ़ाए जाते थे। अंग्रेजों की इस शिक्षा नीति का लक्ष्य था– संस्कृत, फारसी तथा लोक भाषाओं के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना। साथ ही सरकार चलाने के लिए देशी अंग्रेजों को तैयार करना। इस प्रणाली के जरिए वंशानुगत कर्म के प्रति घृणा पैदा करने और परस्पर विद्वेष फैलाने की भी कोशिश की गई थी। बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों के दौरान शिक्षा को राष्ट्रीय भावना से भरने का प्रयास किया गया। आजादी के बाद भारत में शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार बनाया जाना उचित था कि वह इस नवगठित राष्ट्र को विकास की राह पर आगे बढ़ा सके।

2. भारतीय शिक्षा प्रणालियाँः–

प्राचीन भारत में शिक्षा के विकास में **प्राचीन शिक्षा प्रणाली, बौद्ध शिक्षा प्रणाली, मुस्लिम शिक्षा प्रणाली और ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली** महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वैदिक काल में शिक्षा का प्रमुख स्थान था। इसे समाज के लिए पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाता था। आर्यों की दृष्टि में शिक्षा ही शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के क्षेत्र में समृद्धि प्राप्त करने का एकमात्र साधन थी। शिक्षा काफी हद तक धार्मिक थी और ब्राह्मण शिक्षा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार थे। इस काल को ब्राह्मणिक युग या उपनिषद् काल के नाम से जाना जाता था। शिक्षा की यह पूरी प्रणाली मौखिक होती थी और लेखन के माध्यम से इसके प्रसारण की व्यक्तिगत विधि पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति सामान्यतः पाठन के रूप में थी। शिक्षा वैयक्तिक थी और इसने हमेशा शिक्षक और पढ़ाए जाने वाले के मध्य घनिष्ठ संबंध को बरकरार रखा है। शिक्षकों से अपेक्षा की जाती थी कि उनमें धर्मपरायणता, धार्मिकता, प्रबुद्ध दृष्टि, उच्च चरित्र, आत्मविश्वास और दृढ़ निर्णय, अपने सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, दक्षता और आत्म–संयम हो। शिक्षार्थियों की शिक्षा को बढ़ाने के लिए धीरे–धीरे कई प्रकार की संस्थाएँ विकसित हुईं जिन्हें 'शाखा', 'चारण', 'परिषद', 'कुल', 'गोत्र' और इसी तरह के नाम से जाना जाता था। उत्तर वैदिक काल में शिक्षक अपनी शिक्षा को बढ़ाने और विकसित करने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित थे। शिक्षण पेशे के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए उनके लिए कोई औपचारिक या अतिरिक्त प्रशिक्षण आवश्यक नहीं समझा गया। **वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा का भी प्रमाण मिलता है क्योंकि काशी के राजा अजातशत्रु के आध्यात्मिक ज्ञान की प्रमुखता को गार्गेय और बालकी ब्राह्मण आचार्यों द्वारा मान्यता दी गई और सम्मानित किया गया। वैदिक कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का उतना ही अधिकार प्राप्त था जितना कि पुरुषों को। गार्गी, मैत्री, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा ऐसी ही कुछ विदुषी स्त्रियों के नाम है जिन्होंने वेदों की शिक्षा से लेकर राज्य पद संभालने की जिम्मेदारी उठाई।** प्राचीन भारतीय में शिक्षा का अंतिम उद्देश्य इस दुनिया में या उससे परे जीवन के लिए तैयारी के रूप में ज्ञान नहीं था, बल्कि वर्तमान और भविष्य दोनों के जीवन की जंजीरों से आत्मा की मुक्ति के लिए स्वयं की पूर्ण प्राप्ति थी। शिक्षक का दर्जा बहुत ऊँचा था। राजाओं द्वारा भी उन्हें पूर्ण आदर और आदर प्राप्त हुआ। शिक्षक ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में माने जाते हैं।

भगवान बुद्ध द्वारा प्रदत उपदेशों को **बौद्ध शिक्षा प्रणाली** के नाम से जाना जाता है। मध्यकाल में यह शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण प्रणाली थी। इस काल में ब्राह्मण शिक्षकों ने आम लोगों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया। शिक्षा की यह प्रणाली मठवासी थी। मठों और विहारों में शिक्षण का कार्य 'भिक्षु' या 'भिक्खु' द्वारा किया जाता है। उन्हें शिक्षा, चरित्र और प्रतिष्ठा से योग्य दो वरिष्ठों के प्रभारी

जहाज के तहत रखा गया था, जिन्हें 'उपाध्याय' और 'आचार्य' कहा जाता था। 'उपाध्याय' को युवा भिक्खु को पवित्र ग्रंथों और सिद्धांतों की शिक्षा देने का कर्तव्य सौंपा गया था, जबकि 'आचार्य' ने उनके आचरण और अनुशासन की जिम्मेदारी संभाली थी। शिक्षक को स्वयं कम से कम दस वर्ष साधु के रूप में व्यतीत करना होगा और उसमें चरित्र की शुद्धता, विचारों की शुद्धता और उदारता आवश्यक रूप से होनी चाहिए। शिक्षक और छात्र दोनों मठ के प्रति उत्तरदायी थे। दोनों 'सादा जीवन और उच्च विचार' सिद्धांत का पालन कर रहे थे। उनका जीवन पवित्रता, उदात्तता, कर्तव्यपरायणता और मानवता से परिपूर्ण था। **बौद्ध काल में महिलाओं की शिक्षा नगण्य थी, क्योंकि महिलाओं को इस अर्थ में तिरस्कृत किया जाता था कि भगवान बुद्ध ने उन्हें सभी बुराइयों का स्रोत माना था। इसलिए उन्होंने अपने जीवन काल में महिलाओं को मठों में प्रवेश न देने की सलाह दी थी, लेकिन कुछ समय बाद अपने प्रिय शिष्य आनंद के आग्रह के कारण बुद्ध ने कई प्रतिबंधों और आरक्षणों के साथ विहारों में अनुमति दे दी थी।**

मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रदान करने के लिए दो स्तर प्राथमिक स्तर और उच्च स्तर तय किये गए थे। प्राथमिक स्तर की शिक्षा के केंद्र मकतब और उच्च शिक्षा के केंद्र मदरसा थे। सूफी संतों के खानकाह और दरगाहों ने प्राथमिक शिक्षा केंद्र के रूप में ख्याति प्राप्त की। इस काल में मोहम्मद साहब और उनके प्रशिक्षित चार शिष्यों ने इस्लाम के प्रचार–प्रसार की जिम्मेदारी ली। उन्हें 'साहाबा' के नाम से जाना जाता था और उन्हें इस्लाम के पहले शिक्षक माना जा सकता है जिनकी शिक्षाएँ मुख्य रूप से धार्मिक थीं। इस काल में शिक्षा के प्रसार के लिए सम्राट अकबर ने बड़ी संख्या में विद्वानों और शिक्षकों को ख्याति अर्जित करने में मदद की। इसके अलावा अकबर के समय में कई प्रतिष्ठित पुस्तकें भी लिखी गईं जो शिक्षक शिक्षा के उद्देश्य को पूरा करती थीं। पाठ्यक्रम में मा कुलत (तर्कवाद) जिसमें तार्किक विषय, खगोल विज्ञान, गणित, दर्शन और इस्लामिक न्यायशास्त्र आदि को पढ़ाया जाता था और मनकुलत (परंपरावाद) जिसमें कुरान, कुरान के नियमों और इस्लामिक परंपरा के तौर तरीकों को पढ़ाया व सिखाया जाता था। लंबे समय तक फारसी और हिंदी भाषाएँ साथ रहने से एक नयी भाषा उर्दू का जन्म हुआ। हुमायूँ ने गणित, खगोल विज्ञान और भूगोल के अध्ययन को मदरसों में लागू किया तो वहीं अकबर ने शिक्षण संस्थानों की स्थापना हेतु अनुदान दिया। **मध्यकाल में प्राथमिक शिक्षा के केंद्र मकतबों में तो बालिकाओं को भी शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रवेश दिया जाता था. लेकिन उच्च शिक्षा मदरसों में प्रवेश पर प्रतिबंध था अर्थात् उच्च शिक्षा की महिलाओं के लिए कोई व्यवस्था इस समय नहीं थी। शाही परिवारों की शहजादियों, मुगल दरबार में नियुक्त उच्च अधिकारियों, अन्य राजाओं और धनी व्यापारियों की पुत्रियों के लिए उनके घरों में ही उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। इस काल में भी स्त्री शिक्षा को उचित महत्व नहीं दिया गया।**

भारत में अंग्रेजों के आगमन से पहले, यूरोपीय मिशनरियों ने पहले विद्वानों और बाद में शिक्षक शिक्षा संस्थानों की शुरुआत की। उस समय भारत में ऐसे शैक्षणिक संस्थान थे जो पश्चिम के देशों में नहीं थे। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में भी, शिक्षा का मामला यूरोपीय देशों से आगे था। विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चाहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। 1850 तक भारत में गुरुकुल की प्रथा चलती आ रही थी परन्तु मैकाले द्वारा लागू अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ और भारत में कई गुरुकुल बंद हुए और उनके स्थान पर कॉन्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के राज्य के शासन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। सन् 1947 तक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विकास हो चुका था लेकिन कुल मिलाकर स्थितियों में अभी भी सुधार की जरूरत थी क्योंकि देश की जरूरतें तेजी से बढ़ रही थीं। बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों के दौरान शिक्षा को राष्ट्रीय भावना से भरने का प्रयास किया गया, इसके मुख्य आकर्षण थेः भारतीय नियंत्रण में शिक्षा, हीनता की भावना को दूर करना, पश्चिमी ज्ञान और विज्ञान में शिक्षा, अंग्रेजी भाषा को सामान्य विषय माना जाना और व्यावसायिक शिक्षा की अपर्याप्तता को पूरा करना।

आजादी के बाद भारत में शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार बनाया जाना उचित था कि वह इस नवगठित राष्ट्र को विकास की राह पर आगे बढ़ा सके। लेकिन सामन्तवादी विरासत और जातिगत भेदभाव, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक वैमनस्यता, भाषाई विभेद और गरीबी जैसी विकराल समस्याओं से निपटना एक विकट चुनौती थी। इन समस्याओं से उबरते हुए देश के जनतांत्रिक नागरिकों का

विकास करना और सभी नागरिकों को राष्ट्रीय एकात्मता के सूत्र में पिरोना था। इस राष्ट्रीय कार्य के लिए संविधान में यथायोग्य प्रावधान करना और शिक्षा का एक व्यापक ढाँचा भी बनाना था। इसलिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में लोकतांत्रिक और राष्ट्रीय भावना के सुदृढीकरण, सामाजिक न्याय और समानता, धार्मिक स्वतंत्रता, बुनियादी शिक्षा, अल्पसंख्यक समुदायों के शैक्षणिक व सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए अलग से शैक्षणिक संस्थाओं का विशेष प्रावधान, सार्वभौमिक शिक्षा, समावेशी शिक्षा प्रणाली, गुणवत्ता शिक्षा को बढ़ावा आदि को आधार बनाया गया।

भारत में स्वतन्त्रता के समय महिलाओं में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त विकट थी। पुरूषों में सारक्षता की दर 20 प्रतिशत थी वहीं महिलाओं की साक्षरता केवल 8.9 प्रतिशत थी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जहाँ पुरूषों की साक्षरता दर 82 प्रतिशत थी वहीं महिलाओं की साक्षरता दर 63.5 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, झारखण्ड आदि राज्यों में यह 55 प्रतिशत से भी कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने जब पूरे विश्व के लिए धारणीय विकास के लक्ष्य निर्धारित किये तब उसमें समावेशी शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया। शिक्षा से वंचित वर्गों में पूरे विश्व में सबसे बड़ा हिस्सा महिलाओं का है।

शिक्षा किसी भी व्यक्ति के सुखद जीवन की मजबूत आधारशिला तैयार करती है। शिक्षा के द्वारा एक महिला असहाय व अबला से सशक्त और सबला बनती है। बालिका सशक्तिकरण का तात्पर्य है बालिकाओं में छिपी हुई उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को विकसित करना, जिनको व्यवहार में लाकर व अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके, यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। केन्द्र सरकार ने बालिका शिक्षा और बालिका सशक्तिकरण को लेकर हाल में अनेक योजनाएँ शुरू की है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन से निश्चित रूप से बालिकाओं को हौसला मिल रहा है। इसमें प्रमुख रूप से बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया है। इस योजना के तारतम्य में हर लड़की के लिए पैसे बचाने की ओर लघु बचत योजना सुकन्या समृद्धि खाता योजना शुरू की। यह योजना माता पिता को अपनी लड़की की बेहतर शिक्षा और भविष्य के लिए पैसे बचाने के लिए प्रोत्साहित करती है। साथ ही केन्द्र की ओर से शैक्षिक रूप से पिछड़े उपखण्डों में दसवीं और बारहवीं कक्षा की छात्राओं के लिए छात्रावासों की स्थापना की गई है। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ावर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग की 14 से 18 साल की ऐसी बालिकाओं को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करना है जो खराब आर्थिक स्थिति के कारण बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देती हैं। भारत सरकार की ओर से अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ा वर्ग की बालिकाओं के लिए सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का शुभ आरम्भ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरूआत पहले दो वर्ष तक अलग योजना के रूप में सर्वशिक्षा अभियान, बालिकाओं के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दिलाने का राष्ट्रीय कार्यक्रम व महिला समाख्या योजना के साथ सामंजस्य बिठाते हुए शुरू की गयी थी। बाद में इसे सर्वशिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में विलय कर दिया गया।

शिक्षा महिलाओं को पितृसत्तात्मक ज्ञान, नियमों, मूल्यों, व्यवहार, पद्धतियों आदि को चुनौती देने मे मदद करती है। बालिका सशक्तिकरण में शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण है। बिना शिक्षा के महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन असम्भव है। शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में जागरूकता आयी है, वे अपने बारे में सोचने लगी है, उन्होने महसूस किया है कि घर से बाहर भी जीवन है, महिलाओं में आत्मविश्वास का संचार हुआ है और उनके व्यक्तित्व में निखार आया है। महिलाएँ न केवल सामान्य शिक्षा, विश्वविद्यालय तथा कॉलेजों मे ही जा रही है बल्कि मुख्यमंत्री, राज्यपाल, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति बन रही है, एवरेस्ट पर विजय प्राप्त कर रही हैं, वायु सेना और नौ सेना में अपनी सेवा प्रदान कर रही है।

3. निष्कर्षः–

शिक्षा व्यवस्था उस समाज से अलग–अलग होकर काम नहीं करती जिसका वह एक भाग है और यहाँ भारत में शिक्षा का सामाजिक संदर्भ अनेक चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। प्राचीन वेदों के अध्ययन से लेकर आधुनिक समय तक भारतीय शिक्षा प्रणाली ने कई आयाम तय किये हैं। इस शिक्षा प्रणाली को सुदृद, संयमित, वैशेषिक, अपूर्व और अद्वितीय बनाने में सबसे प्रमुख योगदान भारत की सांस्कृतिक विविधता ने दिया है। भारत में जीवन की महानतम समस्याओं पर विचार करके उनमें से

कुछ का समाधान खोजा गया, यहाँ के साहित्य के द्वारा हम अपने आंतरिक जीवन का अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत, सार्वभौमिक तथा वास्तव में मानुषिक बना सकते हैं। भारत की भाषायी विविधता ने यहाँ की शिक्षा प्रणाली को वैचारिक बहुरूपता और सांस्कृतिक विविधता ने रचनात्मक चिंतन के लिए प्रेरित किया है। ऐसे में विकास के नये दौर से गुजरते गुजरते भारतीय शिक्षा प्रणाली ने पूरी दुनिया में छाप छोड़ी है। प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं का स्थान पुरूषों के समान ही महत्वपूर्ण था। आज भी महिला अबला नारी के रूप में सुदृढ़ होकर पुरूष से कदम से कदम मिलाने को प्रयासरत है। जैसे–जैसे महिलाओं का शिक्षा की ओर रूझान बढ़ा है अर्थात् वे शिक्षित हुई हैं, वैसे–वैसे वे सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में भी सुदृढ़ हुई है तथा आत्मनिर्भर बनी हैं। अतः महिला और पुरूष दोनों रथ के पहियों के समान है। यदि एक निर्बल और घटिया हुआ तो समाज का रथ निर्विघ्न आगे नहीं बढ़ सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ज्ञान में तो हम तब भी विश्व गुरु थे और आज भी है। हमें केवल अपनी जड़ों को खोजने और प्राचीन ज्ञान परंपराओं के निहितार्थ को पहचानने की जरूरत है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची–

- मिश्रा, पी. एवं सिंह, बी. (2019) "भारतीय शिक्षा व्यवस्थाः वैदिक काल से आधुनिक काल तक" शैक्षिक उन्मेष, आगराः केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ISSN 2581-687X खंड–2, अंक–2, जन.–मार्च 2019
- कुमारी, सारथी (2019) "महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका" International Journal of Advanced Academic Studies 2020; 2(1): 305-308 https://www.allstudyjournal.com/
- Balwaria, R.R., "International Educational E-Journal", (Quarterly), ISSN 2277-2456, Volume-III, Issue-I, Jan-Feb-Mar 2014 https://www.researchgate.net/publication/352737267_Historical_Perspective_of_Teacher_Education_in_India
- शर्मा, के. (2021), प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली (इकाई–24), नई दिल्लीः इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय https://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/71644
- भारतीय शिक्षा अतीत और वर्तमान, (16 अगस्त 2020) https://thehindipage.com/indian-education/bhartiya-shiksha-ka-itihaas-aur-vartamaan/
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_शिक्षा_का_इतिहास

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम

1. शकुन्तला जाँगिड 2. डॉ. पूनम मिश्रा

1. पीएच.डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
2. एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

Email - [1]shakuntla992@gmail.com, [2]poonam.mishra@apexmail.in

सारांश / आलेखः–

अध्यापक शिक्षा का क्षेत्र मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक फैला हुआ है, जन्म के समय ही बालक का प्रथम शिक्षक उसकी माता होती है, जो भोजन एवं सुरक्षा से लेकर बालक केजीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, तथा उसे संस्कारवान बनाते हुए, परिवार, वातावरण एवं समाज से सामन्जस्य रखना सिखाती है, शिक्षा हमारे जीवन का न केवल आवश्यक बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है, यह हमारे अस्तित्व के प्रत्येक क्षेत्र में विकास और प्रगति का आधार है, अध्यापक शिक्षा एक ऐसी शैक्षिक व्यवस्था है, जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने का प्रयास किया जाता है, कि ज्ञान तथा मूल्यों का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक इस प्रकार हस्तान्तरण किया जाये कि उसमें शैक्षणिक व विकासात्मक उत्तरदायित्वों का आरोपण किया जा सके। शिक्षक शिक्षा एक व्यवस्था है, जो लोगों को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक की आधुनिक तथा बदलती हुई भूमिका का निर्वाह करने की योग्यता व दक्षता को ग्रहण करने के लिए शिक्षित करती है। इस अर्थ में अध्यापक शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं है, बल्कि एक मिशन है।

मूख्य शब्दः

अध्यापक शिक्षा, हस्तान्तरण, शैक्षिक कौशल, नैतिकता, नवचारिता, मोनीटोरियल, उदयनोमुख

प्रस्तावनाः–

यह एक निर्विवाद सत्य है, कि शिक्षा हमारे जीवन का न केवल आवश्यक बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह हमारे अस्तित्व के प्रत्येक क्षेत्र में विकास और प्रगति का आधार है, एवं यही भावी शक्तिशाली भारत के विविध प्रशासनिक, नागरिक एवं विकासात्मक क्षेत्रों के आधार पर निर्भर करती है। शिक्षा किसी भी आधुनिक उन्नत और विकसित कहे जाने वाले समाज का अनिवार्य लक्षण है, और इसके बिना प्रगति कभी भी पूर्ण और बहुआयामी नहीं हो सकती है। एक शिक्षित व्यक्ति शिक्षित समाज या शिक्षित राष्ट्र की प्रगति के दुर्गम पथ पर अनवरत यात्रा कर पाने में समर्थ होता है।

स्वतन्त्र राष्ट्र को योग्य नागरिकों की आवश्यकता होती है, उन्हें तैयार करने का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर अधिक माना जाता है, इस प्रकार अध्यापकों को राष्ट्र का कर्णधार माना जा सकता है। प्राचीन भारत के समय से माता–पिता और गुरू समान स्तर पर सर्वाधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते रहे हैं। अध्यापक के समक्ष बड़े–बड़े सम्राट नत मस्तक हो जाते थे, और कल्याण के लिए ज्ञान का आशिर्वाद मांगा करते

थे। अतः व्यापक संदर्भ में यह कहा जा सकता है, कि अध्यापक शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है, जिसमें विभिन्न स्तरीय एवं वर्षीय अध्यापकों को इस तरह से शिक्षित करने के लिए प्रयत्न किया जाता है, कि अग्रिम प्रजा को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में सक्षम हो, तथा उनमें तकनीकि कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवचारिता के साथ मानवता बोध का विकास करना संभव हो सके।

अध्यापक शिक्षा का अर्थः–

अध्यापकों द्वारा शैक्षिक प्रक्रिया सम्पादित किये जाने में उनके अनुभव और ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अध्यापक अपनी योग्यता और विषय वस्तु की पूर्ण जानकारी के आधार पर ही शिक्षण कार्य में सफल होता है। हमारे आदर्श समाज के निर्माण और राष्ट्र के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अध्यापक शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अध्यापक अपने कौशल, अनुभव और योग्यता के आधार पर सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है, और राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। अध्यापक शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति का चारित्रिक और व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। अध्यापक शिक्षा वह है, जिसके माध्यम से शैक्षिक वातावरण तैयार किया जाकर मूल्यों पर आधारित शिक्षा के लिए अनुकूल परिवेश का निर्माण किया जाता है। इसी संदर्भ में हम कह सकते हैं, कि अध्यापक शिक्षा एक शैक्षिक आयोजन है, जिसमें विभिन्न विषयों के अध्यापकों को विभिन्न विषय वस्तुओं सहित सामान्य व्यक्ति से पृथक एक प्रशिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षण के योग्य बनाया जाता है।

अध्यापक शिक्षा की परिभाषाः–

गुड के शिक्षा कोष के अनुसार – ''अध्यापक शिक्षा में वे सभी अनुभव तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्रियाएँ सम्मलित हैं, जो किसी भी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय का दायित्व संभालने की योग्यता प्रदान करती है।''

प्रो. एस. एन. मुखर्जी के अनुसार – ''विभिन्न शिक्षा केन्द्रों में सुधार की आवश्यकता है, और इस उद्देश्य हेतु अध्यापक शिक्षा एक बेहतर शब्द है, क्योकि यह अध्यापक निर्माण सम्बधित क्षेत्र को विस्तृत बनाती है।''

इस प्रकार उक्त सभी तथ्यात्मक बातों पर विश्लेषण करते हुए, अध्यापक शिक्षा के तर्क को निम्नलिखित रूप से व्याख्या कर सकते हैं।

1. अध्यापक शिक्षा एक ऐसी तकनीक है, जिसमें शिक्षण कार्य के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता है, और शैक्षिक कौशलों का विकास किया जाता है।

2. अध्यापक शिक्षा एक मिशन है, जिसमें राष्ट्रीय विकास के लिए व्यक्तियों को विभिन्न संदर्भो मे तैयार किया जाता है।
3. अध्यापक शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास की शिक्षा है।
4. अध्यापक शिक्षा व्यक्ति के सामजिक सांस्कृतिक और नैतिक विकास की शिक्षा है।
5. अध्यापक शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें छात्र–छात्राओं को ज्ञानात्मक और बौद्धिक विकास की शिक्षा दी जाती है।

प्राचीन काल से वर्तमान तक अध्यापक शिक्षा का स्वरूपः–

शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा वर्तमान में कोई नई प्रक्रिया नहीं है, अध्यापक शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को प्राचीन काल में एक पृथक नाम से जाना जाता था, जो हम सब जानते हैं, कि पहले आश्रम व्यवस्था में गुरू के माध्यम से शिष्यों को शिक्षा दी जाती थी। बौध काल में मोनीटोरियल(निगरानी) शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षा दी जाती थी। मुस्लिम काल में मदरसों में शिक्षा दी जाती थी, और आधुनिक युग में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में शिक्षा दी जाने लगी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि प्राचीन काल से वर्तमान तक शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप में कुछ बदलाव भी आयें हैं, जो अध्यापक शिक्षा में अनिवार्य है।

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामः–

अध्यापक शिक्षा के आयाम वास्तव में अध्यापक शिक्षा व्यवस्था की धुरी है, शिक्षा उद्देश्यों की प्राप्ति में इसकी प्रमुख भूमिका रही है। शिक्षक समाज का वह अग्रदूत है, जिसका उत्तरदायित्व है, कि वह सरकारी नीतियों व सामजिक जनमत तैयार करे, उदयोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक की भूमिका बदल गई है, अब व नये समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने वाला अग्रदूत है। शिक्षक ही समाज में नई चतेना का शंख फूंक सकता है, और समाज में व्याप्त संकीर्णताओं को, अंधविश्वासों रूढ़ियों तथा विघटनकारी शक्तियों का निर्मूलन कर नये समाज का निर्माण कर सकता है। अतः एक शिक्षक की शिक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। शिक्षक के प्रशिक्षण के स्थान पर अध्यापक शिक्षा शब्द के प्रयोग के साथ ही इसे अलग–अलग आयामों में स्वीकृत किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है।

1. शिक्षकः

पाठ्यक्रम का सफल अथवा असफल होना शिक्षक के व्यक्तित्व एवं गुणों पर निर्भर करता है, शिक्षक के स्वयं के मन में भी अंतराष्ट्रीय सद्भावना होनी चाहिए, उसका दृष्टिकोण विशाल होना चाहिए। ऐसा शिक्षक ही बालकों में अंतराष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में समर्थ हो सकता है। शिक्षक पाठ्यक्रम को पढ़ाने के साथ–साथ कुछ अन्य कार्यक्रमों को संचालित करके बालकों को सद्भावना में बांध सकता है, शिक्षक ही बालक की रचनात्मक शक्तियों को विकसित करने का प्रयास करता है।

2. विद्यालयः

वर्तमान काल में विद्यालय एक ऐसा भौतिक वातावरण है, जहाँ हर प्रकार के बालक को उचित शिक्षा प्रदान की जाती है। जिस प्रकार से रेडियो टीवी महत्वपूर्ण हैं, उसी प्रकार विद्यालय का भी विशेष महत्व है, विद्यालयों में विद्यार्थीयों को ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिससे उनमें सामूहिकता, सहयोग, प्रेम, सद्भावना एवं अनुशासन के गुणों का विकास हो, विद्यालय की पाठ्य पुस्तकें इस प्रकार की हों, जिनके पढ़ने से बालक के मन मस्तिष्क में राष्ट्र के प्रति मैत्री भावना विकसित हो। विद्यालय का वातावरण शुद्ध होना चाहिए और वहाँ अध्ययन, अध्यापन, खेल–कूद, व्यायाम के अतिरिक्त ध्यान योग की क्रियाएँ भी सम्पन्न करवायी जानी चाहिए।

3. अनुशासनः

व्यापक रूप में अनुशासन से तात्पर्य आत्मनियंत्रण अथवा आत्मानुशासन से है, अर्थात् बालक स्वयं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखकर अपने विवेक से निर्णय ले तथा इस प्रकार कार्य एवं व्यवहार करे जिससे उनका स्वयं का तथा समाज का दोनों का भला हो। इस प्रकार अनुशासन में कोई बाहरी बंधन नहीं होता वरन् बालक स्वयं ही अपने स्वभाव को इस प्रकार बना लेता है, जिससे वह केवल अच्छे कार्यों को करने की ओर प्रवृत्त हो। वह बुरे काम करने से तथा नियमों का उल्लंघन करने से बचता है, तथा नियमों का स्वेच्छा से अनुगमन करता है।

4. विद्यार्थीः

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, कि गुरू शिष्य का सम्बन्ध केवल सांसारिक ही नहीं होना चाहिए वरन् उन्हें एक दूसरे के दिव्य स्वरूप को भी देखना चाहिए। ज्ञान चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक हो, उसको प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थीयों द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। विद्यार्थी में सीखने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए और वह गुरू में श्रद्धा के भाव रखते हुए सत्य को जानने का प्रयत्न करे, तभी वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्षः–

अध्यापक शिक्षा को नये आयाम राज्य सरकार द्वारा ही प्रदान किये जाते हैं, अध्यापक शिक्षा में जो ज्ञान विद्यार्थीयों को दिया जाता है, उसका उपयोग करने का मौका उन विद्यार्थीयों को आगे मिलता है, और इसी प्रक्रिया से हमारे समाज व देश का विकास होगा, इस स्थिति में उन बच्चों को पढ़ाने वाले अध्यापकों की शिक्षा में ध्यान देना आवश्यक है। विद्यालयों को उपयुक्त भौतिक सामग्रीयों की जानकारी देना तथा इसे लागू करवाना राज्य सरकार की जिम्मेदारी है। अध्यापक शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अध्यापक अपने कौशल, अनुभव तथा योग्यता के आधार पर सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है, जो राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. भट्टाचार्य, जी.सी. – अध्यापक शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

2. भटनागर सुरेश – शिक्षा सिद्धान्त, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।

3. इन्टरनेट, जर्नल्य आदि।

शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं विकल्प

श्रीमती शारदा कुमारी
(शोधार्थी)
महर्षि अरविन्द विश्वविद्यालय, जयपुर
e-mail id: shardajangir121@gmail.com

डॉ. सूरज शर्मा
(प्रोफेसर)
शिक्षा संकाय, महर्षि अरविन्द विश्वविद्यालय,जयपुर
e-mail id: surajsharma979@gmail.com

सारांशः–

प्राचीन भारत में शिक्षा का समाज में प्रमुख स्थान था। आर्यों की दृष्टि में शिक्षा ही शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के क्षेत्र में समृद्धि प्राप्त करने का एकमात्र साधन थी। वैदिक काल में आमतौर पर प्रचलित शिक्षण विधियाँ मुख्यतः मौखिक थीं और अन्य विधियाँ चिंतन पर आधारित थीं। 5वीं शताब्दी ई.पू. भगवान बुद्ध द्वारा जो शिक्षा प्रणाली अस्तित्व में आई उसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली के नाम से जाना जाता है। बौद्ध धर्म के उद्भव ने लोगों को शिक्षा प्राप्त करने और स्वयं अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता प्रदान की। पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद मोहम्मद गोरी ने उत्तरी भारत में मुस्लिम शासन की नींव रखी।मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य धार्मिक व्यक्तियों का निर्माण करना और छात्रों की गुप्त क्षमताओं को सामने लाना, उनकी बुद्धि की शक्तियों को अनुशासित करना और उन्हें उन सभी चीजों से सुसज्जित करना था, जो इसके लिए आवश्यक थीं।

भारत में आधुनिक शिक्षक शिक्षा का इतिहास भारतीय उपमहाद्वीप में यूरोपीय मिशनरियों के आगमन के साथ शुरू हुआ।अंग्रेजों की शिक्षा नीति का लक्ष्य था– संस्कृत, फारसी तथा लोक भाषाओं के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना औरभारतीय समाज की एकता को नष्ट करने तथा वर्णाश्रित कर्म के प्रति घृणा उत्पन्न करना।आजादी के बाद राधाकृष्ण आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, कोठारी शिक्षा आयोग (1964), राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं नवीन शिक्षा नीति आदि के द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समय–समय पर सही दिशा देनें की गंभीर कोशिश की गयी।विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति हुई। आयोग की सिफारिशों को बड़ी तत्परता के साथ कार्यान्वित किया गया जिससे उच्च शिक्षा में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में नए बदलाव लाने की आवश्यकता है। इसके लिए केवल पाठ्यचर्या संबंधी बिन्दुओं का पुनर्निर्धारण ही पर्याप्त नहीं होगा। बल्कि शिक्षक शिक्षा के सैद्धान्तिक आयामों में परिवर्तन की आवश्यकता है।

भारत की शासन व्यवस्था लोकतंत्र पर आधारित है। देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था तभी कायम हो सकेगी जब यहाँ के युवाओं को विकास के अवसर मिलेंगे। युवाओं के विकास के लिए उच्च शिक्षा के साथ–साथ सहगामी क्रियाओं को भी बढ़ावा मिले। इस आधार पर उच्च शिक्षण संस्थानों में छात्र संघ चुनाव होने लगे। छात्र संघ चुनाव, प्रशासन व छात्रों केमध्य की कड़ी है। छात्रों की समस्याओं को छात्र नेता, प्रशासन तक पहुँचाते है। सभी शिक्षा आयोग और प्रमुख समितियों ने इस बातपर जोर दिया कि शिक्षा का प्रमुख कार्य लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए छात्रों को तैयारकरना ताकि देश को सुयोग्य नागरिक प्राप्त हो सके।

1. प्रस्तावनाः–

भारत दुनिया में शिक्षक शिक्षा की सबसे बड़ी प्रणालियों में से एक है। भारत में शिक्षक शिक्षा का एक मजबूत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है और यह विभिन्न बाहरी आक्रमणकारियों, समाज सुधारकों और

प्रमुख शिक्षाविदों का परिणाम है। यह प्राचीन शिक्षा प्रणाली से शुरू होकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली तक भारतीय समाज की वैश्विक और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप आकार लेती है। भारत में ब्रिटिश काल से पहले, शिक्षा के चार तरीके काम करते थे अर्थात् ब्राह्मणों द्वारा अपने शिष्यों को दी जाने वाली शिक्षा टोल पाठशाला या मठों में तथा मुसलमानों के लिए मकतब और मदरसे थे। भारतीय शैक्षिक चिन्तन मानवीय मूल्यों को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। शिक्षा के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता था।भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्मप्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विद्यालय स्थापित किए।अंग्रेजों की शिक्षा नीति का लक्ष्य था– संस्कृत, फारसी तथा लोक भाषाओं के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना।भारतीय समाज की एकता को नष्ट करने तथा वर्णाश्रित कर्म के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए मैकाले ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बनाया। इसके अलावा पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति आकर्षण पैदा करना भी मैकाले का लक्ष्य था। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में ईसाई मिशनरियों ने भी महत्तवपूर्ण भूमिका निभाई।

2. स्वतंत्रता पूर्व शिक्षक शिक्षाः–

स्वतंत्रता पूर्व भारत में शिक्षक शिक्षा के विकास में प्राचीन शिक्षा प्रणाली, बौद्ध शिक्षा प्रणाली, मुस्लिम शिक्षा प्रणाली और ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।**प्राचीन शिक्षा प्रणाली** में पूर्व वैदिक काल में शिक्षा का समाज में प्रमुख स्थान था। इसे समाज के लिए पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाने लगा। आर्यों की दृष्टि में शिक्षा ही शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के क्षेत्र में समृद्धि प्राप्त करने का एकमात्र साधन थी। उत्तरवैदिक काल में वर्ण जन्म से निर्धारित होने लगा। परिणामस्वरूप पूरा समाज चार वर्णों में विभाजित हो गया – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मुख्य रूप से शिक्षा का भाग ब्राह्मणों द्वारा संभाला जाता था। ऐसा माना जाता था कि कोई भी ज्ञान गुरु की सहायता के बिना नहीं मिल सकता। दूसरे शब्दों में, यह माना जाता था कि गुरु की सहायता के बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं थी।यह विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा थी। निर्देश की कोई एकल विधि नहीं अपनाई गई, हालाँकि आमतौर पर विद्यार्थी द्वारा सस्वर पाठ के बाद शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण का पालन किया जाता था। प्रश्न–उत्तर, वाद–विवाद और चर्चा के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार कथावाचन को भी अपनाया गया। कोई कक्षा शिक्षण नहीं था। हालाँकि निगरानी प्रणाली प्रचलित थी और वरिष्ठ विद्यार्थियों को कनिष्ठ विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता था। वैदिक काल में आमतौर पर प्रचलित शिक्षण विधियाँ मुख्यतः मौखिक थीं और अन्य विधियाँ चिंतन पर आधारित थीं। शिक्षा वैयक्तिक थी और इसने हमेशा शिक्षक और पढ़ाए जाने वाले के बीच घनिष्ठ संबंध को बनाये रखा। शिक्षण पेशे के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए उनके लिए कोई औपचारिक या अतिरिक्त प्रशिक्षण आवश्यक नहीं समझा गया। शिक्षकों विद्यार्थियों के साथमाता–पिता की तरह व्यवहार करतेथे और उनका अपने विद्यार्थियों के साथ पूर्ण करुणा का व्यवहार था। शिक्षक–शिक्षित संबंध सौहार्दपूर्ण और अनुकूल थे।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली 5वीं शताब्दी ई.पू. में भगवान बुद्ध द्वारा शिक्षा प्रणाली अस्तित्व में आई जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली के नाम से जाना जाता है। बौद्ध धर्म के उद्भव ने लोगों को शिक्षा प्राप्त करने और स्वयं अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता प्रदान की। शिक्षा की यह प्रणाली मठवासी थी। शिक्षक को स्वयं कम से कम दस वर्ष साधु के रूप में व्यतीत करना होगा और उसमें चरित्र की शुद्धता, विचारों की शुद्धता और उदारता आवश्यक रूप से होनी चाहिए। शिक्षक और छात्र दोनों मठ के प्रति उत्तरदायी थे। दोनों 'सादा जीवन और उच्च विचार' सिद्धांत का पालन करते थे। धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन सबसे महत्वपूर्ण था। सुत्त, विनय और धम्म पिटक अध्ययन के लिए निर्धारित मुख्य विषय थे।

मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद मोहम्मद गोरी ने उत्तरी भारत में मुस्लिम शासन की नींव रखी। शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक व्यक्तियों का निर्माण करना और छात्रों की गुप्त क्षमताओं को सामने लाना, उनकी बुद्धि की शक्तियों को अनुशासित करना और उन्हें उन सभी चीजों से सुसज्जित करना था, जो इसके लिए आवश्यक थीं।उनका नैतिक और भौतिक विकास, शिक्षा को जीवन की तैयारी के रूप में देखा जाता था और जिस शिक्षक ने अपने विद्यार्थियों को इस लक्ष्य तक पहुंचने में मदद की, उसका समाज में बहुत सम्मानित स्थान होता था। प्राचीन भारत की तरह, मध्यकालीन भारत

में भी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए किसी औपचारिक कॉलेज का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक एक प्रणाली जो चलती रही वह थी 'निगरानी प्रणाली'। इस दौरान अनुशासनहीनता के आरोप में छात्रों को कड़ी शारीरिक सजा दी गई।

ब्रिटिश शिक्षा प्रणालीःभारत में आधुनिक शिक्षक शिक्षा का इतिहास भारतीय उपमहाद्वीप में यूरोपीय मिशनरियों के आगमन के साथ शुरू हुआ। भारत में अंग्रेजों के आगमन से पहले, यूरोपीय मिशनरियों ने पहले विद्वानों और बाद में शिक्षक शिक्षा संस्थानों की शुरुआत की। प्राथमिक या प्राथमिक ग्रेड के लिए एक सामान्य प्रशिक्षण स्कूल विलियम कैरी द्वारा सन् 1802 में सेरामपुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित किया गया था। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में भी,भारतशिक्षा के मामलेमें यूरोपीय देशों से आगे था। पहला सामान्य स्कूल जून 1826 में मद्रास में ब्रिटिश सरकार के प्रबंधन और वित्त के तहत शुरू किया गया था। शुरुआत में इसमें जिला स्कूलों के लिए शिक्षक तैयार किए गए थे। बाद में यही सामान्य विद्यालय प्रेसीडेंसी कॉलेज के रूप में विकसित हुआ।

भारत शिक्षा के कार्यवृत्त में उनकी प्रमुख बातें इस प्रकार थीं, 'साहित्य' का अर्थ अंग्रेजी साहित्य है, न कि संस्कृत या अरबी या फारसी साहित्य। वुड्स डिस्पैच (1854) भारतीय शिक्षा का पहला मील का पत्थर था क्योंकि इसने भारतीय शिक्षा के विकास के लिए विभिन्न तरीके और साधन सुझाए थे। शिक्षा पर वुड्स डिस्पैच 1854 ने शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता को सामने लाया गया। भारतीय शिक्षा आयोग (1882) को भारतीय शिक्षा का दूसरा मील का पत्थर माना गया। इसने विभिन्न चरणों में शिक्षा के क्षेत्र में अपने बहुमूल्य सुझाव दिये। शिक्षण के सिद्धांत और अभ्यास में एक परीक्षा शुरू की जानी चाहिए और केवल सफल उम्मीदवारों को किसी भी सरकारी या सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। उपरोक्त नीति को 1912 में सरकारी घोषणा द्वारा समर्थन दिया गया था जिसमें कहा गया था कि शिक्षा की आधुनिक प्रणाली के तहत किसी भी शिक्षक को बिना प्रमाण पत्र के पढ़ाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ऐसे सिद्धांतों का भारत में शिक्षक प्रशिक्षण पर सीधा प्रभाव पड़ा। प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या में वृद्धि हुई। इन सभी उपायों से शिक्षकों के प्रशिक्षण में अनेक सुधारों का लाभ मिलता चला गया। आंध्र विश्वविद्यालय ने 1932 में एक नई डिग्री बी.एड की घोषणा की। बॉम्बे ने 1936 में एम.एड में स्नातकोत्तर डिग्री शुरू की।

1937 में गांधीजी ने वर्धा शैक्षिक सम्मेलन बुलाया और शिक्षा की एक नई प्रणाली का प्रतिपादन किया जो लोकप्रिय रूप से 'बुनियादी शिक्षा' के नाम से जानी जाती है। गांधीजी ने शिक्षक–प्रशिक्षण को अधिक व्यावहारिक और कार्यात्मक बनाने की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने बच्चों के लिए जीवन स्थितियों से संबंधित शिल्प–केंद्रित शिक्षा की पेशकश की। सन् 1947 तक शिक्षक शिक्षा में कुछ विकास हो चुका था लेकिन कुल मिलाकर स्थितियों में अभी भी सुधार की जरूरत थी क्योंकि देश की जरूरतें तेजी से बढ़ रही थीं।

3. स्वतंत्रता पश्चात् शिक्षक शिक्षाः–

सन् 1950 में, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कार्यक्रमों और कार्यों पर चर्चा करने के लिए भारत में प्रशिक्षण महाविद्यालयों का पहला सम्मेलन बड़ौदा में आयोजित किया गया था। इसमें शिक्षक प्रशिक्षण को एक नया नाम दिया गया और यह 'शिक्षक शिक्षा' बन गया।शिक्षक शिक्षा पर इस सम्मेलन के बाद कार्यशाला, सेमिनार और सम्मेलनों में अचानक वृद्धि देखी गई। शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को संशोधित किया गया, विशेषज्ञता के नए क्षेत्रों को जोड़ा गया और व्यावहारिक कार्य को बढ़ाने पर जोर दिया गया। स्वतंत्रता के पहले दशक के दौरान शिक्षा के इतिहास में एक और महत्वपूर्ण घटना माध्यमिक शिक्षा आयोग, (1952–53) की रिपोर्ट थी, जिसमें स्कूलों में शिक्षण की खराब गुणवत्ता पर दुख व्यक्त किया गया था। आयोग ने सिफारिश की कि स्नातक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान को उन विश्वविद्यालयों से,जो डिग्री देंगे, से मान्यता प्राप्त और संबद्ध किया जाना चाहिए । प्रशिक्षुओं को एक या अधिक पाठ्येतर गतिविधियों, विशेष विषयों में लघु गहन पाठ्यक्रम, कार्यशाला और पेशेवर सम्मेलनों में प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा।

शिक्षा आयोग (1964–66) की एक अन्य रिपोर्ट, जिसे कोठारी आयोग (1964–66) के नाम से भी जाना जाता है, ने कहा कि शिक्षक शिक्षा के सभी स्तरों पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों के लिए व्यावसायिक शिक्षा का एक ठोस कार्यक्रम आवश्यक है। शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCFTE): पेशेवर और

मानवीय शिक्षक तैयार करने की दिशा में, 2010 में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि यह स्पष्ट है कि एक नौकरी के लिए पेशेवर रूप से सुसज्जितभावी शिक्षक की शिक्षा और प्रशिक्षण उस हद तक प्रभावी होगा जब तक यह सक्षम शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा प्रदान किया गया हो। इतना ही नहीं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की गुणवत्ता में सुधार के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद(NCTE) ने पिछले दशक के दौरान कई पहल कीं। गुणवत्ता, आश्वासन और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए इसने राष्ट्रीय मूल्यांकन और प्रत्यायन परिषद (NAAC) के साथ हाथ मिलाया।बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009, जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ, का भी देश में शिक्षक शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। महाविद्यालयी शिक्षा और शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिएयूजीसी पहले ही राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (NET) आयोजित कर चुका है, राज्य स्तर पर राज्य स्तरीय पात्रता परीक्षा (SET) पहले से ही थी।

डॉ. पी.एन. प्रभु के शब्दों में, ''प्राचीन भारत में शिक्षा राज्य और सरकार या किसी दलीय राजनीति जैसे किसी भी बाहरी नियंत्रण से मुक्त थी। यह देखना राजा का कर्तव्य था कि विद्वान पंडित अपनी पढ़ाई करें और किसी भी स्रोत के हस्तक्षेप के बिना ज्ञान प्रदान करने का अपना कर्तव्य निभाएँ।' वर्तमान में उच्च शिक्षण संस्थानों की शैक्षिक प्रक्रिया के सुचारु रूप से संचालन हेतु विश्वविद्यालय के उच्च शैक्षिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों तथा सम्प्रेषण काकार्य कतिपय चयनित छात्रों द्वारा किया जाता है अर्थात् उच्च शिक्षण संस्थानों में कक्षावारछात्रों की समस्याओं को प्रशासन तक पहुँचाने हेतु छात्र अपनी कक्षा के सहपाठियों में से हीएक छात्र को चुनकर उसी छात्र के माध्यम से अपनी व महाविद्यालय की समस्याओं को प्रशासन तक पहुँचाया करते थे कालान्तर में उस शिक्षण संस्थान से छात्र नेता चुनने के लिए प्रत्यक्षरूप से सभी की सहमति ली जाने लगी और विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षण संस्थानों में छात्र संघ चुनाव होने लगे।समाजवाद से प्रभावित छात्र संघ चुनावों के द्वारा चयनित छात्रों ने राजनीति मेंसहयोग प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। सभी शिक्षा आयोग और प्रमुख समितियों ने इस बातपर जोर दिया कि शिक्षा का प्रमुख कार्य लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए छात्रों को तैयारकरना ताकि देश को सुयोग्य नागरिक प्राप्त हो सके।

छात्रसंघ चुनावों की उपादेयताःछात्रों को लोकतंत्र एवं नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने में उपयोगी है। छात्रों को स्वशासन की शिक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैः स्वशासन प्रणाली में छात्र क्रियाशील भाग लेकर अपने अधिकार कर्तव्यों तथा दायित्व का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है। छात्रों में आपसी सहयोग को भावना का विस्तार होता है एवं उनमें सहयोग, एकता तथा सहानुभूति के पोषण द्वारा संघ–भावना उत्पन्न होती है। छात्रों को रुचियों का सही मार्गान्तरण होता है। छात्रों का सर्वतोन्मुखी विकास संभव हो पाता है। समाज के परस्पर संबंधों को दृढ़ करने में सहायकः सामाजिक जीवन की शिष्टता, सांधिक जीवन में कार्य करने की क्षमता, धैर्य, अच्छा स्वभाव, निष्कपटता, सेवा–भावना एवं साथी की भावना, अनुशासन आदि शामिल है। व्यक्तित्व की दृष्टि से सुसन्तुलित,मानसिक रूप से जागरुक, भावना की दृष्टि से स्थिर, सांस्कृतिक दृष्टि से शक्तिशाली तथा सामाजिक रूप से दक्ष बनने में सहायता प्रदान करते है। छात्रों को सामाजिक सम्पर्क के अवसर मिलते हैं एवं हर सदस्य व्यावहारिक ढंगों से परिचित होता है तथा नैतिकता का पाठ पढ़ता है। सद्भावना, सहानुभूति, सच्चाई, ईमानदारी आदि गुण सहज में ही प्राप्त हो जाते है।

शैक्षणिक वातावरण पर प्रभावः महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में प्रत्याशियों धोषणा के साथ ही चुनावी माहौल बन जाता है और नियमित कक्षाएँ बाधित होनी शुरू हो जाती है। छात्र संघ चुनावों के लिए छात्र लंबे समय से चुनावों की तैयारी में जुटे रहते है जिसमें उनका बहुत समय व्यर्थ होता है। इस कारण पाठ्यक्रम समय पर पूर्ण होने में बहुत कठिनाई आती अथवा पूर्ण ही नहीं हो पाता है। इन चुनावों में भी धनबल तथा बाहुबल का प्रयोग होता है। प्रत्याशी छात्रसंघ का चुनाव जीतकर मुख्यधारा की राजनीति में शामिल होने की जल्दबाजी भी करते हैं, छात्रसंघ का चुनाव एक रणनीतिक जगह बन जाती है जहां पर कोई दल अपने विचार और राजनीतिक मूल्यों का प्रसार करता है जो स्वस्थ शैक्षणिक वातावरण के लिए नुकसानदेह साबित होता है।

4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकताएँः–

शिक्षा में अध्ययन–अध्यापन का केंद्रीय महत्व होता है। वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में सम्मिलित किये जा सकने वाले मुख्य बदलाव निम्नांकित हैं–

- शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में अधिगम अनुभव मुख्य रूप से विद्यार्थी प्रधान होने चाहिए क्योंकि ये अनुभव उन्हें सीखने के नए आयामों से परिचित करा सकें, जिनमें तरह–तरह की अधिगम परिस्थितियाँ शामिल हों जो सीखने में विविधता, अपसारी सोच, चिंतन और सीखने वाली परिस्थितियों के साथ सूक्ष्मदृष्टि के साथ बर्ताव को बढ़ावा दें। साथ ही विद्यार्थियों की सामाजिक विषमताओं, असमानता, लिंग–भेद तथा प्रशासनिक एवं व्यवस्थाजन्य विषमताओं जैसे बड़े मुद्दों का तर्कसम्मत ढंग से मूल्याँकन करने का भी अवसर दें।
- शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षक की वे क्षमताएँ जो सामान्य मौखिक और शाब्दिक क्षमताओं से परे होती हैं तथा जिनकी सहभागिता आधारित शिक्षा में आवश्यकता है, को विकसित किया जाना शामिल होना चाहिए। उनमें से कुछ क्षमताएं हैः विभिन्न विद्यार्थियों के लिए अलग–अलग गतिविधियाँ आयोजित की जाएँ। समूह या व्यक्ति आधारित समस्या सुलझाने का लक्ष्य होना चाहिए। विद्यार्थियों को बिना उत्तर या हल की अनुक्रिया देना, जो उन्हें आगे सोचने के लिए बढ़ावा दे। विद्यार्थियों की तर्क क्षमता का इस तरह विकास कि उससे उसे खोज करने तथा उसे बढ़ावा देने में सहयोग मिलें।
- देश के अधिकांश स्थानों में विद्यार्थी–शिक्षक को दिए गए अनुभव ऐसे नहीं होते जो उन्हें प्रेरणा दें। कुछ विद्यालय औरों की तुलना में अधिक व्यवस्थित होते हैं। परंतु परीक्षा पुराने ढंग से ही ली जाती है। अतः ऐसी संकल्पना की जानी चाहिए कि शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम के दौरान अनेक प्रकार के अनुभव प्रचुर मात्रा में कराए जाएं जिससे को विद्यार्थी–अध्यापक देखने, सोचने, विचार–विमर्श करने, जाँचने, समझने तथा अधिगम स्थितियों 'क्या और कैसे' हों इस पर निर्णय ले सकें। इसके लिए कुछ सकारात्मक स्थितियाँ पैदा करनी होंगी, ऐसा कृत्रिम परिस्थितियों के निमार्ण आदि के द्वारा किया जा सकता है।
- सांस्थानिक तौर पर नया शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम बदली हुई व्यवस्था की माँग करता है। इस अर्थ में इसके कार्यान्वयन के लिए आवश्यक नये पाठ्यचर्या विवरण तैयार किए जा सकते हैं। पाठ्यचर्या का निर्माण अधिगम की प्रकृति, गति और शैली में विविधता लिए होना चाहिए।
- शिक्षक–प्रशिक्षक की भूमिका अधिगम को सहज बनाने वाली होनी चाहिएन कि ऐसी जैसे एक शिक्षक मात्र कोई कोर्स पढ़ा रहा है। आकलन के लिए भी प्रक्रिया में भागीदारी पर ज्यादा जोर होना चाहिए न कि परिणामों पर।
- विद्यार्थी–आधारित वैविध्यपूर्ण पाठ्यक्रम की संभावना आज आई.सी.टी. के कारण बढ़ गई है। सार्थक तरीके से आई.सी.टी. का उपयोग शिक्षकों के लिए रोचक की रचना करने, समस्या सुलझाने की परिस्थितियों का निर्माण करने तथा प्रभावी अधिगम परिस्थितियों के कृत्रिम अनुभव देने में मदद कर सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में मास मीडिया, आई.सी.टी. और उपग्रह–आधारित टीवी के शामिल होने से जाने से शिक्षक की भूमिका और महत्त्वपूर्ण हो गई है। शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें विद्यार्थी–शिक्षक को विभिन्न प्रकार की अधिगम परिस्थितियों में काम करना सिखाया जाए।

5. निष्कर्षः–

स्वतंत्र भारत में जितने भी आयोग और समितियां शिक्षा की उन्नति के लिए गठित किए गए। उन सभी का विश्लेषण करने के बाद यह प्रतीत होता है कि किसी ने भी प्राचीन भारतीय ज्ञान और विज्ञान के बारे में ऐसा कोई विचार नहीं दिया जिससे कि प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान का सदुपयोग आज की भौतिकवादी सभ्यता में किया जा सके। सभी आयोग और रिपोर्ट सामान्य रूप से शिक्षकों और विशेष रूप से शिक्षक–प्रशिक्षकों की गुणवत्ता पर जोर देते हैं। इसे वर्तमान संदर्भ में अधिक व्यावहारिक और प्रासंगिक बनाना हमेशा एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। जैसा कि उपर अभिकल्पित है यदि उसी तरह का बदलाव आये तो बदले हुए अभ्यास शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रमों में पर्याप्त और सुव्यवस्थित बदलाव ला सकेंगे। इससे सेवाकालीन प्रशिक्षण का माहौल भी बदलेगा, क्योंकि नए शिक्षक की आवश्यकताएँ अलग होंगी। इस परिस्थिति में सेवा–पूर्व और सेवाकाल में अपने आप मजबूत संबंध हो जाएगा। इससे शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम पूरी तरह शिक्षक विकास कार्यक्रम होगा, और इस अर्थ में शिक्षक के लिए यह जीवनपर्यंत शिक्षा होगी।

संदर्भ–ग्रंथ सूचीः–

- पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा (2009), नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- Balwaria, R.R., "International Educational E-Journal", {Quarterly}, ISSN 2277-2456, Volume-III, Issue-I, Jan-Feb-Mar 2014https://www.researchgate.net/publication/352737267_Historical_Perspective_of_Teacher_Education_in_India
- आधुनिक विश्व के संदर्भ में भारतीय शिक्षा (2021), रायपुरः राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छतीसगढ़.
- शर्मा, के. (2021), प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली (इकाई–24), नई दिल्लीः इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयhttps://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/71644
- भारतीय शिक्षा अतीत और वर्तमान, (16 अगस्त 2020) https://thehindipage.com/indian-education/bhartiya-shiksha-ka-itihaas-aur-vartamaan/
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_शिक्षा_का_इतिहास
- सिंह, डॉ. कर्ण. "भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास", 4/230, कचहरी घाटी, आगराः एच.पी. भार्गव बुक हाऊस

भारतीय शिक्षा का आधार - भारतीय जीवन दृष्टि

शिव कुमार सारण
NET, JRF UGC

शिक्षा मनुष्य का परिष्कार करती है। शिक्षा ही उसके गुणों का संवर्द्धन कर देवत्व की ओर प्रेरित करती है। किन्तु शिक्षा के उद्देश्य उसके दर्शन से नियंत्रित होते हैं। शिक्षा साध्य है अथवा साधन इसको लेकर चिंतकों में मतभेद हैं। भारतीय शिक्षा परम्परा प्राचीनतम है किन्तु कालान्तर में यह परम्परा विच्छिन्न हो गई। आज आवश्यकता है शिक्षा पर भारतीय मनीषियों के विचारों को जानने–समझने और शिक्षण पद्धति में उनका उपयोग कर भारत को विश्वगुरु के रूप में पुनः अभिव्यक्त करने की। भारतीय मनीषा में अनेक चिंतकों ने शिक्षा पर गहन विचार किया है। उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप और दिशा पर पर्याप्त विमर्श किया है। भारतीय परम्परा में विद्या को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वेदांग के छः अंगों में शिक्षा भी सम्मिलित है। यहाँ उसका विस्तार करते हुए उच्चारण, व्याख्या, विधियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। विद्या यहाँ परा व अपरा दो वर्गों में विभाजित है। भारतीय परम्परा इसे धर्म के दस लक्षणों में स्थान देती है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमनिद्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम् ।।

– मनुस्मृति

विष्णु पुराण में भी इसका उल्लेख है–

तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरम् कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।।

– विष्णुपुराण 1/19/41

अनेक चिंतकों और रचनाकारों ने विद्या (आध्यात्मिक, श्रेष्ठ) एवं अविद्या (लौकिक) इसे दो रूपों में वर्गीकृत किया है –

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभुतिमउपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भुत्याम्रताः ।।

अर्थात् जो केवल अविद्या की उपासना करता है, वो गहरे अंधकार में प्रवेश करता है। परन्तु जो केवल विद्या में ही रत रहता है वह उससे भी गहरे अंधकार में प्रवेश करता है। यहाँ शास्त्राकारों का मन्तव्य विद्या के अनुप्रयोग को लेकर है। विद्या प्राप्ति के साथ ही विवेकसम्मत प्रयोग भी अभीष्ट है। यह चिंतन मनुष्य के लिए लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान को आवश्यक मानता है। इनमें से किसी एक के बिना वह अपूर्ण है और अपने दायित्वों का निर्वाह सम्यक् ढंग से नहीं कर सकेगा।

दर्शन –

दर्शन का सामान्य अर्थ है देखना, जानना अर्थात ***'दृश्यते अनेन इति दर्शनम'***। जिसे देखा जाए अर्थात् सत्य का दर्शन किया जाए। ***दृश्यते यथार्थतत्त्वमनेन*** अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्त्वों की अनुभूति हो। ज्ञान की अनेक शाखाओं में दर्शन विशिष्ट है। यह अवधारणा की खोज करता है। वस्तुतः यह ज्ञान की वह शाखा है जिसके माध्यम से सत्य की प्राप्ति होती है। हमारी संस्कृति अध्यात्म केन्द्रित है। परमतत्त्व की प्राप्ति ही हमारी साधना का उद्देश्य है। सभी दार्शनिक परम्पराओं में अद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि आत्मचिंतन और परमतत्त्व का अन्वेषण ही प्रमुख है। उन्होंने आत्मानुभूति को ही मुक्ति का मार्ग माना है। ***'तमसो मा ज्योर्तिगमय'*** अंधकार से प्रकाश की ओर की यात्रा है, जिसमें अमृत जीवन ही प्रत्यक्ष है। जीवन को उसके बृहत् परिप्रेक्ष्य (मात्र सांसारिक नहीं) में देखना ही उसका उद्देश्य है। इस परम्परा में प्रकृति और मनुष्य में साहचर्य एवं परस्पर पूरकता है जबकि भोगवाद इसके विपरीत है। ये सांख्य, न्याय, वेदान्त, योग, वैशेषिक, मीमांसा छः आस्तिक दर्शन है।

किसी भी साध्य को बिना साधन के प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दर्शन लक्ष्य की बात करता है और शिक्षा साधन की। शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में दर्शन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, प्रविधियाँ, शिक्षक, विद्यार्थी के बहुस्तरीय संबंध निर्धारण में दर्शन की महत्त्वूपर्ण भूमिका

है। भारतीय दर्शन के दो प्रकार के धारक हैं – आस्तिक और नास्तिक। वेद का मूलाधार मानने वाले आस्तिक हैं। जबकि नास्तिक वेद को प्रमाण नहीं मानते।

सांख्य दर्शन महर्षि कपिल द्वारा प्रवर्तित है। यह द्वैतवादी दर्शन है। जिसमें प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्त्व हैं। यहाँ ज्ञान के दो रूपों का उल्लेख किया गया है। पदार्थ और विवेक ज्ञान। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, इस ज्ञान की प्राप्ति के साधन हैं। महर्षि कपिल के अनुसार शिक्षा वह है जो मनुष्य को प्रकृति और पुरुष की भिन्नता का ज्ञान कराती है। ज्ञान प्राप्ति की इस यात्रा में ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, मन, अहम्, बुद्धि और आत्मा उपकरण हैं।

न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। न्याय दर्शन के अनुसार, सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर है और आधार है पदार्थ। न्याय दर्शन में ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया गया है। अनुभवजन्य ज्ञान और स्मृतिजन्य ज्ञान। आधुनिक शब्दावली में यह ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान कहा जाता है। इसमें शिक्षा वह है जो मनुष्य को पदार्थ और आत्मतत्त्व के स्वरूप से साक्षात्कार कराती है। महर्षि गौतम ने शिक्षा के चार स्तर स्वीकार किए हैं।

(क) प्रमाता – ज्ञान प्राप्त करने वाला विद्यार्थी

(ख) प्रमेय – ज्ञान का विषय यानि पाठ्यचर्या

(ग) प्रमाण – ज्ञान प्राप्ति का उपकरण, साधन एवं विधियाँ

(ध) प्रमिति – यथार्थ ज्ञान। जिसे हम निष्पति/उपलब्धि कहते हैं अर्थात् शिक्षार्थी ने क्या सीखा उसे क्या उपलब्धि हुई।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान–तुलना एवं शब्द के माध्यम से शिक्षार्थी ज्ञान की प्राप्ति करता है। महर्षि कणाद द्वारा प्रवर्तित वैशेषिक दर्शन गोचर जगत् को सत्य मानते हुए द्रव्य आदि पदार्थों के तत्त्वज्ञान से स्थायी कल्याण एवं मोक्ष में विश्वास करता है। पदार्थ ज्ञान से अज्ञान दूर होता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। जगद्गुरू शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित वेदांत दर्शन भारतीय ज्ञान परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दर्शन है।

इसे हम मेरुदंड भी कह सकते हैं। यह जीव और परमात्मा को अद्वैत मानता है। कालान्तर में इसका विस्तार हुआ और रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत तथा माध्वाचार्य कृत द्वैताद्वैत इसकी शाखाएँ बनीं। जगद्गुरू शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र के अनुसार 'जगन्मिथ्या ब्रह्मसत्य'। वेदान्त का ब्रह्म कर्त्ता और भोक्ता दोनों भूमिकाओं में हैं। यहाँ ज्ञान को दो स्वरूपों में विभाजित किया गया है।

अपरा – लौकिक एवं व्यावहारिक ज्ञान तथा परा – आध्यात्मिक ज्ञान

विद्या वही जो मुक्त करे – 'सा विद्या या विमुक्तये'

वेदांत परम्परा में ज्ञान के स्रोत हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। ज्ञान का लक्ष्य यहाँ इस रूप में वर्णित है–श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन।

योगदर्शन महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित है। साधना और अभ्यास के माध्यम से इसमें ज्ञान प्राप्ति का प्रावधान है। योग का शाब्दिक अर्थ है– चित्तवृतियों का निरोध। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है 'योगः कमसु कौशलम' चित्तवृतियों का निरोध इसलिए कि कर्मो में कुशलता प्राप्त की जा सके। ज्ञान योग, कर्म योग और राजयोग इसके तीन रूप बताए गए हैं। शिक्षा का अभिप्रेत यहाँ प्रकृति तत्त्व से ईश्वर तत्त्व की ओर जाना है। शिक्षा का लक्ष्य है– 'परमानंद' की प्राप्ति और उसका साक्षात्कार। योग दर्शन में ज्ञान प्राप्ति के जिन साधनों का उल्लेख है वे हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और योग। ज्ञान प्राप्ति की इस यात्रा के पड़ाव हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें प्रथम चार क्रियाएँ हैं, फिर तीन अवस्थाएँ हैं एवं अंतिम समाधि सम्प्राप्ति है। यह सिद्धावस्था है जिसमें वह साक्षात्कार करने के लिए सिद्ध हो जाता है। ये सभी स्थितियाँ परस्पर पूरक हैं। उपनिषद् वेदों का विस्तार है, उनकी व्याख्या है। वस्तुतः उपनिषद् सिद्धांतों के अनुप्रयोग की दिशा में अगला पड़ाव है। उपनिषद् यानि प्राचीन गुरुकुलपरम्परा में गुरु के निकट बैठकर ज्ञान प्राप्त करना।ज्ञानयात्रा अत्यन्त कठिन है। ज्ञान मिल नहीं सकता, कोई किसी को दे नहीं सकता। ज्ञान अर्जित करना पड़ता है और यह स्वयं के प्रयास के द्वारा ही संभव है।

भारतीय परम्परा में पात्र और सुपात्र का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः शिक्षा अपनी योग्यता और क्षमतानुसार वैयक्तिक रूप में ही ग्रहण की जा सकती है। ज्ञान सुपात्र को ही प्रदान किया जाना चाहिए। कुपात्र को ज्ञान देने से उसके दुष्परिणाम के अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। मीमांसा

दर्शन को वेदांत दर्शन के क्रम में देखने की परंपरा है। यह पूर्व मीमांसा कहा जाता है जबकि वेदान्त दर्शन को उत्तर मीमांसा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। पूर्व मीमांसा में धर्म के विशद स्वरूप का विवेचन है जबकि उत्तर मीमांसा (वेदान्त) ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करता है। वह कैसा है?, क्या है आदि। वस्तुतः हम कह सकते हैं कि धर्म ज्ञान के परस्पर विरोधरहित वेदमंत्रों का विवेचन ही मीमांसा है। वैदिक संस्कृत में वाक्यशास्त्र का प्रयोग मीमांसा के लिए ही किया जाता है। वाक्यांष द्वारा जिस बोध ज्ञान की प्राप्ति होती है उसे वाक्यार्थ बोध अथवा शब्द बोध कह सकते हैं। व्याकरणशास्त्र में भी शब्द से अर्थ के बोध को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है –अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना। वाक्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ (ध्वनि)।

आधुनिक युग में अनेक विचारकों ने शिक्षा पर विचार किया। उनका चिन्तन तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय शिक्षा की दशा और दिशा को प्रतिबिम्बित करने के साथ ही प्रेय मार्ग की ओर भी संकेत करता है। जहाँ शिक्षा भारतीय परम्पराओं से संबद्ध होने के साथ ही आधुनिक विश्व की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करने में समर्थ है। इस क्रम में आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द प्रमुख हैं। उन्होंने वेद–वेदांग को ज्ञान का स्रोत मानते हुए आर्य दर्शन प्रतिपादित किया। अपने शास्त्रार्थ के लिए प्रसिद्ध महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में अपने विचारों को प्रस्तुत किया– 'विद्या विलास मनसो धृतशील शिक्षा'।

आधुनिक भारतीय चिन्तकों में स्वामी विवेकानन्द अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भारतीय ऋषि–मुनियों का लोहा पश्चिम में मनवाने वालों में वे अग्रगण्य हैं। उन्होंने वेदान्त को नव्य वेदांत के रूप में पुनःस्थापित किया। शंकराचार्य प्रणीत वेदान्त का वे आधुनिक विवेचन करते हैं। मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर भारतीयता के नवजागरण कालीन व्याख्याकारों में प्रमुख हैं। कलाविद् का हृदय और चिंतक का मस्तिष्क दोनों एक साथ वहाँ उपस्थित हैं। वे विश्वबोध से युक्त उनकी दृष्टि में समस्त प्राणियों के प्रति एकात्मभाव है। टैगोर जीवन और सृष्टि के बीच समरसता की स्थापना हो जिससे समूची मानवता और विश्व के बीच की विषमताएँ दूर हो सकेगी। भारतीय चिंतन में शिक्षा की अंतिम परिणति प्रकृति को संस्कृति की ओर ले जाना है विकृति की ओर नहीं। संस्कृति की ओर प्रषस्त करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है। भारतीय दर्शन परम्परा भगवद् प्राप्ति और साक्षात्कार की बात करती है। यह ध्यान में रखना समीचीन होगा कि भारतीय षड्दर्शन सामानान्तर नहीं, क्रमानुगत हैं। सांख्य से उत्तर मीमांसा तक एक क्रम और निरन्तरता है। इस निरन्तरता को क्रियारूप मे परिणत करने के लिए प्रमाण एवं व्यवस्था शिक्षा ही उपलब्ध कराती है। परिणाम में यह शाश्वत की ओर ले जाती है। आज की भाषा कहें तो यही इसका 'अधिगम उपलब्धि' है।

सन्दर्भ सूची –

1. वर्मा, राजेन्द्र एवं रावत, रीता– ''भारतीय संस्कृति का विकास'', कॉलेज बुक हाऊस, चौड़ा रास्ता, जयपुर
2. चाँद, एस. एम.– ''भारतीय संस्कृति का विकास'', अग्रवाल प्रिण्टर्स, मालवीय नगर, जयपुर
3. गुप्त, शिव कुमार– ''भारतीय संस्कृति के मूलाधार'', इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राज. वि. वि., जयपुर
4. कपूर, श्यामचन्द्र– ''भारतीय संस्कृति का दिग्दर्शन'', आर्य बुक डिपो, करोल बाग नई दिल्ली
5. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप– ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजषास्त्रीय सिद्धान्त'' आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ
6. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद– ''धर्मदर्शन की रूपरेखा'', मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली
7. चोपड़ा, आर. एल. एवं जांगिड़, ओमप्रकाष– ''मूल्य एवं नैतिक शिक्षा'', स्वाति पब्लिकेषन्स, जयपुर
8. गुप्त, नत्थूलाल– ''भारत की धार्मिक परम्परा'', राधा पब्लिकेषन्स, नई दिल्ली

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियाँ एवं संभावनाएं

सुमित्रा शर्मा
(पी.एच.डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग महात्मा ज्योतिराव फूले
विश्व विद्यालय जयपुर (राज.)

भारत में ही नही सम्पूर्ण जगत में शिक्षक को सर्वश्रेष्ट व्यक्तिव माना गया है। इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने अध्यापन व्यवसाय को अपनाया है। शिक्षक एक स्वच्छ, निर्मल, आदर्श चरित्र एवं दुर्व्यसनों से दूर एक जलता हुआ दीपक है। एक ऐसा दीपक जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है। अज्ञान का अंधकार मिटाकर ज्ञान

रूची दीप्ति से दूसरों के जीवन को प्रकाशवान एवं ऊर्जावान बनाता है। इसलिए किसी भी राष्ट्र का हित अध्यापक के हित पर निर्भर करता है । शिक्षक ही हमारे भविष्य का संरक्षक है। अतः शिक्षक के लिए उत्तर व्यवस्थाओं का निर्माण करना चाहिए । शिक्षक बनाने के कोई कारखाने नही होते है। यह तो (अध्यापन) एक कला है। इसके लिए आवश्यकता है कि शिक्षक शिक्षा की उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये, क्योंकि जन्मजात शिक्षक उतनी संख्या में नही मिल पाते जितने कि चाहिए ।

स्वतंत्रता पूर्व अध्यापकों को को प्रशिक्षित करने के लिए ‘‘अध्यापक प्रशिक्षण” महाविद्यालयों की स्थापना की गई जिसमें संख्यात्मक और गुणात्मक रूप से वृद्धि हुई । प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीन विचारों का समावेश नही हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात इस धारणा में परिवर्तन हुआ और इसे 'अध्यापक शिक्षा' के स्थान पर 'शिक्षण शिक्षा' नाम दिया गया। इस समय शिक्षक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ । परन्तु गुणात्मक दृष्टि से ही नही बल्कि संख्यात्मक दृष्टि से भी शिक्षक शिक्षा संतोषप्रद नही रही। क्योंकि कोई भी शिक्षण संस्थाऐं अपने उत्तरदायित्वो को निर्वहन नही कर रही है। इसलिए शिक्षक शिक्षा की अनेकानेक समस्याऐं उभरती हुई दिखाई देती है। जो कि निम्न है

मुख्य शब्दावली :- शिक्षक शिक्षा, मानदण्ड, सैद्धान्तिक शिक्षा, उत्तरदायित्व, प्रशिक्षण, संस्थाऐं, शिक्षक, शिक्षा की समस्याऐं सेवारत।

प्रस्तावना :-

शिक्षा मानव जीवन की प्राथमिकता है। क्योंकि शिक्षा मानव जीवन के तम को मिटाकर उसके जीवन में दीप्ति बिखेरती है। बिना शिक्षा के एक मानव पशु के समान आचरण करता है। शिक्षा की वह प्रकाशमान पुंज है जिसके आधार पर व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव है । जो व्यक्ति शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता है वह भगवान से भी बढकर होता है तभी तो कहा गया है :

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागू पांय ।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ।।

अर्थात् जो शिक्षा प्रदान करता है या व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि करता है। उसे गुरू की संज्ञा दी गई है । परन्तु गुरू कब शिक्षक बन गया यह तो निरन्तर प्रक्रिया की ही देन है। शिक्षा प्रदान करने में एक शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रसिद्ध विद्वान एच.जी. वैल्स ने

शिक्षक के कार्य का महत्व देखते हुए उसे 'राष्ट्र निर्माता' कहा है। भारत में ही नही सम्पूर्ण विश्व में शिक्षक को सर्वश्रेष्ठ माना गया है । शिक्षक ही सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति का निर्देशन एवं संचालन करता है। इसी वजह से इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने अध्यापन व्यवसाय को अपनाया है।

डॉ० राधा कृष्णन ने ठीक ही कहा है कि “समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है वह एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है, जहॉ से बौद्धिक परम्पराएँ तथा तकनीकी कुशलताएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचारित होती है। वह सभ्यता के दीप को प्रज्जवलित रखने रखने में सहायता प्रदान करता है । वह केवल व्यक्ति का मार्गदर्शन ही

नही करता बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के भाग्य का निर्माण करता है। अतः अध्यापकों को समाज के प्रति अपने विशिष्ट कार्य को पहचानना चाहिए |

किसी भी कार्य या व्यवसाय तथा वृति की प्रतिष्ठा, गौरव तथा मान सम्मान इस बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर रहता है कि उस कार्य को करने वाला व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व के प्रति कितने जागरूक है और अपने कर्त्तव्य पालन में कितनी निष्ठा रखते है । शिक्षक का दायित्व अपने कार्य को ईमानदारी व अपने कार्यक्षेत्र को बखूबी निभाता है ।

1. शिक्षक शिक्षा का उद्भव एवं विकास

प्राचीन काल में अन्य व्यवसायों के लिए जिस प्रकार प्रशिक्षण दिया जाता था, उस प्रकार अध्यापन कार्य के लिए कोई प्रशिक्षण नही दिया जाता था। प्राचीनकाल में शिक्षक शिक्षा गुरूकुल प्रणाली द्वारा ही शिक्षा दी जाती थी। जिसमें गुरु प्रत्येक विद्यार्थियों पर व्यक्तिगत ध्यान देता था तथा अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में अपने ज्येष्ठ शिष्यों का सहारा देता था। ज्येष्ठ विद्यार्थी ही गुरु की आज्ञानुसार कनिष्ठ दात्रों को पढाते थे। इसे अध्यापक शिक्षा का अप्रत्यक्ष प्रारंभ माना जाता सकता है ।

2. मध्ययुग में शिक्षक शिक्षा :-

अर्थात् मुस्लिम काल में भी अध्यापक शिक्षा पर किसी ने ध्यान नही दिया। इस काल में अध्यापक का कार्य मुल्ला, मौलवी एवं पंडित करते थे तथा अध्यापन कार्य सामान्यतः वंश परम्परागत हो गया था । इसलिए अलग से शिक्षक शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही किया गया ।

3. ब्रिटिश काल में शिक्षक शिक्षा :-

उन्नीसवीं शताब्दि के अन्तिम चरण से पूर्व तक इस दिशा में कोई विशेष कार्य शिक्षण के क्षेत्र में नही हुआ । उस समय देश में में कक्षा नायक पद्धति प्रचलित थी। इस पद्धति में शिक्षण कार्य मॉनीटर करता था । इस समय विद्यालय को समूहों में बांट दिया जाता था और प्रत्येक समूह का एक नायक होता था और यह नायक अपने कार्य का ब्यौरा अपने गुरू को देता था। कालान्तर में यह नायक ही कुशल अध्यापक और विद्यालय संचालक हो जाते थे। यह पद्धति अंग्रेजों के समय अधिक प्रचलित रही। इस प्रथा के अनेक नामकरण हुए जैसे :- मॉनीटर पद्धति, पेष्टोलॉजी, ग्लासगोप्रथा, लेंकारिस्टन पद्धति आदि ।

4. स्वातंत्रयोत्तर काल में शिक्षक शिक्षा :-

भारत में इसका प्रारम्भ आधुनिक युग में ही हुआ । इस समय शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का कार्य किया गया। कुछ प्रयासों के फलस्वरूप शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में डेनिस पादरियों अपने विद्यालय के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। उन्होनें सर्वप्रथम सन् 1716 में ट्रानक्यूबर में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल के प्रशिक्षित शिक्षक को ही प्राथमिक (बंगाल) में स्कूल की स्थापना की। इसके बाद बम्बई मद्रास और कलकत्ता की शिक्षा परिषदों ने प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के प्रशिक्षण देने का कार्य प्रारम्भ किया ।

5. स्वतंत्र भारत में शिक्षक शिक्षा :-

स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा में सुधार के लिए सरकार को सुझाव देने के लिए

1. सन् 1948 में डॉ० राधाकृष्णम आयोग
2. सन् 1952 में डॉ० लक्ष्मण सिंह मुदलियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग
3. सन् 1964 में डॉ० दौलत सिंह कौठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया।
4. सन् 1968 व 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति
5. 1986 में नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति जिसमें अध्यापक शिक्षा पर जोर दिया गया ।
6. सन् 2020 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारम्भ किया गया।

इस प्रकार कह सकते है कि शिक्षक शिक्षा एक लम्बे सफर के पश्चात भारत में स्वतंत्रता के पश्चात ही अपना रूप ले सकी। भारत में वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा के लिए अनेकों प्रशिक्षण संस्थान बनाये गये परन्तु फिर भी शिक्षक शिक्षा को भारत में अनेको चुनौतियों का सामना करना पडता है। जो निम्न है :

भारत में शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम में आने वाली चुनौतियां निम्न है :-

1. प्रवेश के मानदण्डों में विविधता :-

हमारे देश में प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रवेश के लिए विभिन्न राज्यों में विभिन्नता है। इसका प्रमुख कारण कुछ विद्यार्थियों का चयन सिफारिश और अनुदान के आधार पर ही हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो निम्न स्तर के बालक है उनका भी चयन हो जाता है और सिफारिश व दान के अभाव में उच्च मानसिक योग्यताओं एवं शिक्षण में रूचि रखने वाले बालक का प्रवेश नही हो पाता है। ऐसी में दात्र अनुशासन हीनता में वृद्धि होती है तथा शिक्षा एवं शिक्षक के स्तर में दिन प्रतिदिन गिरावट आती रही है।

2. सैद्धान्तिक शिक्षा पर अनावश्यक बल :-

प्रायः प्रशिक्षण संस्थाओं का जो पाठ्यक्रम है उसमें विद्यालयों में छात्राध्यापकों को 40-50 या 60 पाठ पढाये जाते है। परन्तु हर संस्थान ऐसा नही करता है कई तो कम समय में ही पढवा लेते है और कुछ संस्थान तो सूक्ष्म शिक्षण द्वारा ही आधे से अधिक पाठ पूरे करवा लेते है। इनके द्वारा कक्षा शिक्षण तीन या चार दिन करवाकर ही परीक्षाएं करवा दी जाती है और निरीक्षक एवं उचित मार्गदर्शन के अभाव में बालक को उचित प्रशिक्षण नही मिल पाता है।

3. शिक्षक शिक्षा में अलगाव की समस्या :-

इसमें बालक के विश्व विद्यालय के अंकेडमिक जीवन से अलग शिक्षा मिलती है। स्कूली जीवन से अलग शिक्षा होती है अर्थात् प्राथमिक एवं माध्यमिक दोनों ही स्तर पर शिक्षा का प्रावधान अलग है।

4. सिद्धान्त एवं व्यवहार में भिन्नता की समस्या :-

अध्यापक शिक्षा में सिद्धान्त एवं व्यवहार के बीच जमीन आसमान का अन्तर है। क्योंकि प्रशिक्षण काल में बालक को जिन सिद्धान्तों को बताया जाता है, उनका विद्यालय के वास्तविक जीवन में कही उपयोग नही होता। इससे ये शिक्षण मजाक बनकर रह गया क्योंकि कक्षा में कुछ और पढाते है और व्यवहार में कुछ और करके हम अन्तर्विरोधों में जीने के आदि होते जा रहे है।

5. शिक्षक शिक्षा के निम्न स्तर की समस्या :-

शिक्षक शिक्षा मात्र कागजी कार्यवाही के रूप में ही रह गई है। इसकी गुणवता दिनों दिन गिरती जा रही है। क्योंकि वर्तमान समय में हमारे देश में शिक्षक शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है तथा स्तर निम्न होने के कारण इस शिक्षा के सभी कार्यक्रम प्रभावहीन तथा उद्देश्य हीन होते जा रहे है।

6. प्रशिक्षण संस्थाओं की गुणवता की दृष्टि से निम्न कोटि :-

स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि हुई है परन्तु प्रशिक्षण संस्थाओं का गुणात्मक दृष्टि से निम्न स्थान है। इसी संबंध में कोठारी आयोग ने लिखा है कि "कुछ प्रशिक्षण संस्थाओं को छोडकर शेष सभी साधारण व निम्न कोटि की है। इस प्रमुख कारण प्रशिक्षण संस्थाओं में उचित स्टॉफ की कमी है। इसके साथ ही जिन शिक्षकों के पास शिक्षा उपाधि नही है। उनसे भी अध्ययन का कार्य करवाया जाता है। प्रशिक्षण संस्थाओं में उचित प्रयोगशाला, वर्कशॉप, तथा पुस्तकालय आदि की पूर्ण सुविधा का न होना है।

7. प्रशिक्षण महाविद्यालयों के वातावरण में स्वतंत्रता के अभाव की समस्या :

प्रशिक्षण विद्यालयों के वातावरण में स्वतंत्रता का अभाव रहता है। प्रशिक्षण संस्थाओं में जिस नई शिक्षा को महत्व दिया जाता है उसके कारण छात्राध्यापकों को कठोर बंधन में रहना पड़ता है। छात्राध्यापकों की नित्य प्रति की गतिविधियों पर नियत्रंण रखा जाता है। उन्हें यह स्वतंत्रता नही होती है की वे किसी कार्य को स्वतंत्रता से कर सके व उसका वास्तविक अनुभव प्राप्त कर सकें।

8. अध्यापकों के सामाजिक स्तर की समस्या :-

प्राचीन काल में शिक्षक को समाज का सिरमोर समझा जाता था । परन्तु वर्तमान समय में गुरूओं को (विशिष्ठ, विश्वामित्र, संदीपन, गौतम की) जैसे उच्च आदर्शों का नही माना जाता। इसी के कारण शिक्षकों का सामाजिक स्तर दिन पर दिन गिरता जा रहा है। शिक्षक की समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। यही वजह है कि शिक्षक का समाज में उच्च स्थान नही है ।

9. अध्यापकों के व्यावसायिक स्तर की समस्या :-

अध्यापन व्यवसाय में लोग विवशता के कारण आते है। इसलिए वो अध्यापन में रूचि ना रखकर मात्र वेतन प्राप्त करने के लिए ही कक्षा में जाते है । इसलिए इनका व्यावसायिक स्तर गिरता जा रहा है।

10. विभिन्न राज्यों में विभिन्न आवश्यकताएँ :-

प्रत्येक राज्य में शिक्षक शिक्षा के अलग -2 मानदण्ड एवं योग्यताऐं निर्धारित की गई है। अतः प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या अलग-2 है तो जहाँ कही इनकी संख्या अधिक हो जाती है तो वे बेरोजगार रह जाते है ।

निष्कर्ष :-

शिक्षक शिक्षा का सफर एक चुनौती पूर्ण है शिक्षक शिक्षा को प्राचीनकाल, मध्यकाल, एवं स्वतंत्रता पूर्ण एवं पश्चात भी अनेको चुनौतियों का सामना करना पडा है और यह स्थिति वर्तमान समय में भी यथावत ही है। शिक्षक शिक्षा की गुणवता मात्र कागजों तक ही सिमटी हुई है। इसका निस्तारण होना चाहिए एवं उचित स्थान मिलना चाहिए |

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. गुप्ता एवं ममता आगरा - 3 - भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ

2. इन्टरनेट एवं जर्नल्स आदि ।

पता - C/o घोषी ट्रेक्टर्स न्यू मण्डी, लिंक रोड़ दौसा

जिला - दौसा, राजस्थान |

मो0नं0-9462482239

Email - sumitraghoshi111@gmail.com

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता

सुरेन्द्र कुमार पारीक
शोधार्थी (शिक्षा संकाय)
आई.ए.एस.ई. (मानित विश्वविद्यालय)
गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर

ज्ञान विज्ञान तथा सांस्कृतिक कार्यों की प्राचीनतम धरोहर भारत में है। प्राचीनतम शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था का जन्म भारत में ही हुआ। प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्वों का वर्णन मिलता है। पुराणों, स्मृतियों, दर्शन में मनोविज्ञान पर आधारित अनेक शिक्षण विधियों का उल्लेख है। मानव स्वभाव को अभिव्यक्त करने वाले संवेग तथा मूल प्रवृत्तियों का विस्तार से प्राचीन ग्रंथों में पूर्ण व्याख्या के साथ वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में आचार्य, मानव के व्यवहार की समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। शिक्षा के द्वारा वे उन व्यावहारिक समस्याओं को हल करते थे। यह सच है कि शिक्षा, मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप रहा हो, वह शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायक रहा है।

मनोविज्ञान का अर्थ –

''मन के विज्ञान'' को मनोविज्ञान कहा जाता हैं। भारतीय वाङ्मय में उसकी प्रकृति पष्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक नहीं होकर आध्यामित्क हैं। अतः उसे ''मन का ज्ञान'' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाता है। भारतीय मनीषी आध्यात्मिक साधना, जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियां प्राप्त करते थे उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाषा जाता था। यूं तो पाष्चात्य मनोविज्ञान का उद्भव भी दर्शन से हुआ हैं। मनोवैज्ञानिक मन के अनुसार ''मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभूति का एक निष्चित विज्ञान है जिसमें व्यवहार को अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है''। मनोविज्ञान की विकास की लम्बी यात्रा के दौरान मनोवैज्ञानिकों एवं मनीषियों ने चिंतन मनन किया तथा मनोविज्ञान के स्वरूप को निर्धारित किया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को निम्नानुसार परिभाषित किया है–

शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध –

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्किनर के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान का आरम्भ अरस्तु के समय से माना जा सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने एवं सीखने की विधियों अर्थात पढ़ाने से है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान ज्ञान की दो स्पष्ट शाखाएं है, परंतु इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं। आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है। बच्चे को उसकी रूचियों, रूझानों, सम्भावनाओं तथा व्यक्तित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है। आज शिक्षा तथा मनोविज्ञान एक दूसरे के पूरक है। स्किनर का मत है कि ''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक का मत है तत्त्व है। इसकी सहायता के बिना शिक्षा की गुत्थी सुलझाई नहीं जा सकती। शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों का संबंध व्यवहार के साथ है। मनोविज्ञान की खोजों की शिक्षा के दूसरे पहलुओं पर गहरी छाप है।'' शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है, शिक्षा तथा मनोविज्ञान के पारस्परिक संबंध का ज्ञान मानव के समन्वित एवं संतुलित विकास के लिये आवश्यक है। शिक्षा के समान कार्य, मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित है। क्रो एण्ड क्रो के अनुसार ''मनोविज्ञान, वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान हैं'' मनोविज्ञान सीखने से संबंधित मानव विकास की व्याख्या करता है। शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया को करने की चेष्टा प्रदान करती है। शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के क्यों और कब से संबंधित है।''

मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना–

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन हैं। भारतीय परम्परा में दर्शन, मनोविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है। भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टा हैं। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास

समाहित किए हुए हैं। वेद, उपनिषद, श्रीमद्भगवद्गीता आदि सभी ग्रन्थ मनोविज्ञान के प्रमाणित ग्रन्थ हैं। हिन्दू मनोविज्ञान का मूल आधार वेद ही हैं। वेदों मे इसे आध्यात्म विद्या भी कहा गया है, क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्य जीवनयापन का सषक्त साधन है। वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् हैं, जिसमें पुरूष जो अनन्त शक्ति है, सर्वत्र व्याप्त हैं, संसार का रचियता और उस पर काल का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता हैं। गीता में अनेक ऐसी बातें हैं जो उपनिषदों में भी मिलती हैं। गीता व्यवहारिक जीवन दर्शन पर बल देती है। भारतीय मनोविज्ञान में जीवन के अन्तः और बाह्य दोनों ही पक्षों की महत्ता है। अन्तः पक्ष की अध्ययन प्रणाली में व्यक्तिनिष्ठता और बाह्य पक्ष की अध्ययन विधि में वस्तुनिष्ठता रहती है। प्रायः यहाँ व्यक्तिनिष्ठता भी उतनी ही प्रमाणिक रहती है जितनी की वस्तुनिष्ठता होती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन हैं। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार का अध्ययन करना है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं यथा चिन्तन भाव एवं घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करना है। **मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना की विषेषताएं –**

1. आत्म तत्त्व को पहचानना
2. आध्यात्मिक मनोविज्ञान
3. योग का महत्त्व
4. ध्यान का महत्त्व
5. रहस्यवाद का मनोविज्ञान
6. प्राकृतिक व्यवस्था का समावेश
7. गीता में मनोविज्ञान
8. वेदों में मनोविज्ञान
9. शारीरिक एवं मानसिक विकास की अवधारणा

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संकल्पना में, मनोविज्ञान में उन सभी तत्त्वों को सम्मिलित किया गया है, जो कि वर्तमान समय में विद्यमान है। आज का मनोविज्ञान प्राचीन मनोविज्ञान की ही देन है। सामान्यतः वर्तमान एवं भारतीय संकल्पना में मनोविज्ञान में एक अन्तर पाया जाता है। मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में रहस्यवाद समाहित था वहीं वर्तमान मनोविज्ञान में रहस्यवाद का कोई स्थान नहीं है। प्राचीनकाल के मनोविज्ञान में वे सभी मनोवैज्ञानिक तथ्य समाहित हैं, जो कि आज के मनोविज्ञान में समाहित हैं। आज बालक के अवधान को केन्द्रित करने के लिए कक्षा में अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं परन्तु प्राचीनकाल में छात्रों का अवधान केन्द्रित करने के लिए उनको योग की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर दी जाती थी। वर्तमान मनोविज्ञान में संवेगात्मक स्थिरता के उपाय के रूप में अनेक प्रकार के व्यावहारिक एवं शैक्षिक उपाय बताये जाते हैं परन्तु मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में योग के आधार पर ही मनोवृत्ति को स्थिर करना सिखाया जाता था जिससे कि स्वाभाविक रूप से छात्र का मन स्थिर हो जाय तथा उसमें संवेगात्मक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न न हो। उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान में उन सभी तथ्यों को आधार माना गया है, जो कि मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में विद्यमान है।

शिक्षक शिक्षा के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता–

वर्तमान समय में शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। इस विषय के नवीन अनुसंधानों का व्यवहार समझने में अध्यापकों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता मिली है। शिक्षा मनोविज्ञान ने व्यक्ति के जीवन को सफल व सुखमय बना दिया है। शिक्षा मनोविज्ञान के कारण शिक्षा के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आये हैं। वर्तमान में शिक्षा, सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक स्वरूप से बदलकर, व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित हो गई है। शिक्षा मनोविज्ञान से अध्यापकों के दृष्टिकोण में भी उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिला है। शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा के उद्देश्यों को सरल बनाया है तथा अध्यापक की व्यावसायिक कार्यकुशलता को बेहतर बनाया है। शिक्षा मनोविज्ञान ने छात्र व अध्यापक दोनों के शैक्षिक सामर्थ्य को उन्नत बनाया है। कक्षा–शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना शिक्षक अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नहीं कर सकता है। अपने शिक्षण–कार्य को सफल बनाने तथा छात्रों के सीखने को लाभप्रद बनाने के लिये उसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिये। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुये, एलिस क्रो ने यह विचार व्यक्त किया कि,शिक्षकों को अपने शिक्षण

मे उन मनौवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करने के लिये तैयार रहना चाहिए जो सफल शिक्षण और प्रभावशील अधिगम के लिए अनिवार्य हैं।

शिक्षक के लिए मनोविज्ञान की उनयोगिता अथवा आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से हैं –

बालक के स्वभाव व व्यवहार को समझने में उपयोगी –

शिक्षा मनोविज्ञान में बालक का विभिन्न आयुस्तरों पर क्रमिक विकास एवं उनके संवेगों को जानने काप्रयास किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान बालक के स्वभाव को समझने में बहुत ही सहायक होता हैक्योंकि यह उनकी शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विशेषताओं सहित अंतःक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययनकरता है। अध्यापक बच्चों का स्वभाव एवं उनकी मूल प्रवृत्तियों को जानने के पश्चात् ही उचित विधि सेशिक्षण देने में सफल रहता है । एक शिक्षक के लिए यह जानने जरूरी है कि उसमे अपने दायित्व केअनुकूल योग्यताएं है या नही। स्वभाव, बुद्धि, स्तर, जीवन दर्शन, स्वयं के निर्धारित मूल्य, शिक्षकों एवंअभिभावकों से संबंध, शिक्षक एवं छात्रों से संबंध, व्यवहार, चारित्रिक गुण, शिक्षक योग्यता की समाज मेंक्या प्रक्रिया हैं? शिक्षक का क्या दायित्व हैं? शिक्षक की क्या आवश्यकता हैं? आदि सभी बातों कीजानकारी शिक्षक को शिक्षा–मनोविज्ञान की सहायता से मिल जाती हैं।

पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक–

पाठ्यक्रम निर्माण में बालकों की रुचि, योग्यता तथा पाठ्यक्रम का बालकों पर पड़ने वाले प्रभाव का विशेष ध्यान रखा जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान से व्यक्तिगत भिन्नताओं की जानकारियाँ मिलती हैं जो पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक होती हैं। अध्यापक बालकों की मनोदशा को समझकर पाठ्यक्रम के प्रति बालकों में रुचि उत्पन्न करता है। शिक्षा मनोविज्ञान ने बालक के सर्वांगीण विकास में पाठ्यक्रम के साथ–साथ सहगामी क्रियाओं को महत्त्वपूर्ण माना है। इसके लिए विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है।

विद्यार्थियों के मार्गदर्शन मे सहायक –

उचित मार्गदर्शन के अभाव मे विद्यार्थी अपने पथ से भटक जाते हैं और उनके अध्ययन का उद्देश्य विफल हो जाता हैं। शिक्षा–मनोविज्ञान बालकों को समुचित दिशा प्रदान करता है जिससे वे अपनी क्षमताओं का समुचित ढंग से उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को निर्देशन तथा परामर्श संबंधी सभी जरूरी तथ्यों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है। अतः शिक्षा–मनोविज्ञान विद्यार्थियों के उचित मार्गदर्शन में अध्यापक की सहायता करता हैं।

शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक –

शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने मे विशेष सहायक होता है। इस संबंध में स्किनर ने ठीक ही लिखा हैं, "शिक्षा–मनोविज्ञान आजकल शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर उसकी शिक्षण विधि को उन्नत कर उसे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता हैं।"

शिक्षण विधियों के चयन मे सहायक –

शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षकों को बालकों की आयु एवं स्तर तथा समय और परिस्थिति के अनुकूल शिक्षण विधि का चयन करने मे सहायता देता है क्योंकि प्रत्येक स्थिति और समय पर एक ही शिक्षण विधि को नही अपनाया जा सकता। शिक्षा–मनोविज्ञान मे सीखने के लिए ऐसे अनेक सिद्धांत है जिनकी मदद से शिक्षक अपनी शिक्षण की विधियों का चयन कर सकते है एवं शिक्षण को अधिक से अधिक प्रभावशाली बना सकतें हैं।बालकों के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा मनोविज्ञान ने अध्यापक के सामने अनेक वैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ प्रस्तुत की हैं। अध्यापक इन विधियों का प्रयोग शैक्षिक प्रक्रिया में बालकों के मानसिक स्तर के अनुसार उचित तकनीकी का चुनाव करने में करता है। विभिन्न परिस्थितियों में छात्रों को सुगमता से ज्ञान प्रदान करने के लिए आधुनिक शिक्षण विधियाँ बहुत ही उपयोगी हैं।

सीखने के लिए उचित परिस्थितियों एवं वातावरण का आयोजन करना –

शिक्षण कार्य के समय वातावरण एवं परिस्थितियों का भी शिक्षण की प्रक्रिया में एक विशेष महत्व होता है। शिक्षा–मनोविज्ञान के माध्यम से यह ज्ञात होता हैं, कि किस समय व्यक्तिगत शिक्षा तथा किस समय सामूहिक शिक्षण की आवश्यकता है, सहायक सामग्री का उचित प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। उपयुक्त परिस्थितियों शिक्षार्थी को सीखने के लिए अधिक प्रेरित करती हैं।

मूल्यांकन –

बालकों के मूल्यांकन के लिए बुद्धि, रूचि, व्यक्तित्व, ज्ञान आदि के शिक्षा मनोविज्ञान में अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, नियमों एवं विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस मूल्यांकन कार्य में सबसे अधिक योगदान एक शिक्षक का होता है। इसलिए जरूरी है कि उसे शिक्षा–मनोविज्ञान की पूरी जानकारी हों। शिक्षक से प्राप्त ज्ञान का छात्र पर किस मात्रा तक प्रभाव पड़ा और उनमें क्या–क्या व्यावहारिक परिवर्तन आये हैं इसकी जानकारी शिक्षा मनोविज्ञान प्रदान करता है। अध्यापक छात्रों की प्रगति का अनुमान लगाने के लिए विभिन्न मूल्यांकन विधियों का प्रयोग करता है। शिक्षा मनोविज्ञान की सहायता से शिक्षक बालकों की मानसिक योग्यता का सही आंकलन कर निर्देशन का कार्य करता है।

बालक द्वारा विषय–वस्तु चयन मे सहायक –

यह अध्यापक को ऐसी अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह बालक की मानसिक योग्यता, क्षमता, रूचि और रूझान के अनुसार विषय–वस्तु चयन करने एवं उन विषयों के शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होता हैं।

सामाजिक भावना के विकास मे सहायक–

शिक्षा–मनोविज्ञान अध्यापक को सामाजिक संबंधों के महत्व का ज्ञान कराता है। इसी ज्ञान के आधार पर अध्यापक सामाजिक गतिविधियों का आयोजन करता है जो बालकों मे सामाजिक भावनाओं के विकास मे सहायक होता हैं।

शैक्षिक समस्याओं की जानकारी–

किशोरावस्था तीव्र संवेगों का काल होती है। इस दौरान अध्ययन में छात्रों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस उम्र में बालकों में अनुशासनहीनता, बाल–अपराध, असंतोष जैसी बुराइयाँ घर करने लगती हैं। शिक्षक, शिक्षा मनोविज्ञान की सहायता से उक्त समस्याओं का गहन अध्ययन कर उनका छात्रों के सम्मुख व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। वर्तमान में अध्यापक, छात्रों की अनुशासनहीनता को भय व दण्ड से दूर करने की बजाय समस्या के वास्तविक कारणों का पता लगाने का प्रयास करते हैं।

सन्दर्भ–

1. राजोरिया, अरूण कुमार, अरोडा प्रीति, "अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया"
2. पाराषर, डॉ0 प्रतिभा भार्गव, डॉ0 सुनीता, "बाल्यावस्था एवं अभिवृद्धि"
3. Leyitoy,N.D.: Essentionals of Educational Psychology Bratis lawa SPN , 1951,
4. Lindgren,M.C. : Educational Psychology in the class – room (Fourth edition) wiley International ed.
5. चौहान रीता, पाठक पी. डी, "बाल्यावस्था एवं उसका विकास"

कुशल, प्रतिबद्ध एवं भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से जुड़े शिक्षकों की तैयारी सुनिश्चित करना

सुशीला ख्यालिया
सहायक आचार्या
सुभाष बी.एड. कॉलेज, सेवद बड़ी (सीकर)
e-mail id: skhyaliya.a@gmail.com
Mobile No. 8764096321

शिक्षक का मुख्य लक्ष्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। छात्रों के ज्ञान कौशल, अभिवृति, रूचि आदि के विकास के फलस्वरूप ही छात्रों में विकास सम्भव है। शिक्षक जब कक्षा में छात्रों को पढ़ाता है तो उसक सम्मुख कुछ उद्देश्य व लक्ष्य होते हैं। इन उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास वह निरन्तर करता रहता है । जिस सीमा तक वह अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो जाता है, उसकी कुशलता व प्रभावशीलता का परिचायक है। शिक्षा का सम्यक लक्ष्य तभी पूरा हो सकेगा जब विद्यालय की क्रियाओं के प्रति उसके कर्मचारियों की कार्य सम्बन्धी जवाबदेही पर विशेष बल दिया जाए,

सभी शिक्षकों को अपने को अपनी वृति में प्रतिबद्धता होनी चाहिए। हमें शिक्षकों को इस प्रकार तैयार करना पड़ेगा जिससे वे शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में प्रोत्साहन तथा सहयोग देकर मानवीय ढंग से प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाले के रूप में कार्य करें, जो शिक्षार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज करने में तथा उनकी शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचानने के योग्य बनाए तथा इस योग्य भी कि वे चरित्र के साथ-साथ सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों का विकास कर जिम्मेदार नागरिक के रूप में उभरे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्य-योजना में इस सन्दर्भ में कहा गया है कि नई नीति के प्रतिबलों के सन्दर्भ में अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या को सुधारने की आवश्यकता है। मुख्य रूप से शिक्षा तथा संस्कृति के समाकलन, कार्य अनुभव, शारीरिक शिक्षा तथा खेलकूद, भारतीय संस्कृति के अध्ययन तथा भारत की एकता एवं समाकलन विषयक समस्याओं पर बल दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को नई अधिगम सामग्रियों को तैयार करने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए और ये अधिगम सामग्रियाँ ऐसी हो जिनमें शिक्षा में भारतीय अनुभवों का दिग्दर्शन हो सके।

1. प्रस्तावना:-

शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंगों - शिक्षक, छात्र व पाठ्यवस्तु में शिक्षक का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। श्रेष्ठ शिक्षकों के अभाव में सुयोग्य छात्रगण भी वांछित ज्ञानार्जन में सफल नहीं हो सकते है। अच्छी से अच्छी पाठ्यवस्तु भी निपुण अध्यापकों की अनुपस्थिति अनुपस्थिति में प्राणहीन हो जाती है। अध्यापकगण शिक्षा प्रक्रिया को उचित दिशा प्रदान करते है। अच्छे शिक्षक छात्रों को व्यवहार परिवर्तन में

सहायता प्रदान करते हैं तथा उनको सर्वांगीण विकास के पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। शिक्षा व्यवस्था किसी भी प्रकार की क्यों न हो उसमें अध्यापक की भूमिका सर्वोपरि होती है। अध्यापक शिक्षा प्रणाली का केन्द्र होता है तथा समस्त शिक्षा व्यवस्था उसके चहुँ ओर विचरण करती है। अध्यापक को शिक्षा व्यवस्था का प्राण कहना भी अनुचित नहीं होगा क्योंकि अध्यापक ही शिक्षा व्यवस्था को जीवन्त बनाता है।

हमारा वर्तमान समाज व राष्ट्र परिवर्तन व विकास के एक नाजुक परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहा है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है । शिक्षक ही देश के भावी नागरिकों अर्थात युवावर्ग के छात्र - छात्राओं के वास्तविक सम्पर्क में आता है तथा उन्हें अपने आचार-विचार तथा ज्ञान के अवबोध से प्रभावित करता है । अध्यापकों के ऊपर ही राष्ट्र के भावी निर्माताओं को तैयार करने का दायित्व

होता है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास का सूत्रधार अध्यापक ही होता है। समाज की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, आकांक्षाओं, आदर्शों, मूल्यों आदि को वास्तविक रूप देने की जिम्मेदारी भी अध्यापकों को वहन करनी होती है।

कोठारी आयोग (1964-66) ने अपने प्रतिवेदन "शिक्षा तथा राष्ट्रीय विकास" में स्पष्ट किया है शिक्षा के स्तर तथा राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान का जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें अध्यापक के गुण, क्षमता व चरित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्यापकों तथा सेवारत अध्यापकों के व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक विकास करके उन्हें अध्यापक के विभिन्न उत्तरदायित्वों को सफलता पूर्वक व प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के योग्य बनाया जाना चाहिए। शिक्षक शिक्षा की अवधारणा अधिक व्यापक है। शिक्षक शिक्षा के अन्तर्गत न केवल शिक्षण कला में निपुण बनाया जाना चाहिए बल्कि शिक्षकों को शिक्षा प्रक्रिया की विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित अन्तर्दृष्टि विकसित करने योग्य भी बनाया जाना चाहिए।

2. कुशल, प्रतिबद्ध एवं मूल्यवान शिक्षकों की तैयारीः

शिक्षक - शिक्षा को विद्यालयी व्यवस्था की जरूरतों के प्रति ज्यादा संवेदनशील होना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों को इस प्रकार तैयार करना पड़ेगा जिससे वे शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में प्रोत्साहन तथा सहयोग देकर मानवीय ढंग से प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाले के रूप में कार्य करें, जो शिक्षार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज करने में तथा उनकी शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचानने के योग्य बनाए तथा इस योग्य भी कि वे चरित्र के साथ-साथ सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों का विकास कर जिम्मेदार नागरिक के रूप में उभरे। शिक्षक एक वृहत् संदर्भ में कार्य करता है जिसकी गतिशीलता और सरोकार उस पर प्रभाव डालते हैं। कहने का तात्पर्य है कि शिक्षक को शिक्षा के सामाजिक संदर्भों के प्रति संवेदनशील और जवाबदेह होना चाहिए। साथ ही उसे शिक्षार्थियों की अलग-अलग पृष्ठभूमियों और वृहत् राष्ट्रीय तथा वैश्विक संदर्भों समता, समानता, सामाजिक न्याय और उत्कृष्टता के लक्ष्यों की प्राप्ति के राष्ट्रीय सरोकारों के प्रति भी संवेदनशीलता जागृत करनी चाहिए।

शिक्षक - शिक्षा में ऐसे लक्षणों का समावेश होना चाहिए जो शिक्षार्थियों अर्थात् शिक्षक-शिक्षार्थियों को इस योग्य बनाएँ कि वे कुशल, प्रतिबद्ध एवं मूल्यवान बन सके, शिक्षक शिक्षा के द्वारा भावी शिक्षकों को निम्न के लिए तैयार किया जाना चाहिए जिससे कि वे -

• बच्चों / शिक्षार्थियों की देखभाल कर सकें तथा उनकी संगति में रहना पसंद करें। बच्चों को उनके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों के साथ समझें। अधिगम को व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने की प्रक्रिया मानें।

उन तरीकों को समझें जिससे बच्चे सीखते हैं, वे संभव तरीके खोजें जिनके द्वारा बच्चों के अधिगम हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान की जा सकें, साथ ही यह भी समझें कि शिक्षार्थियों में सीखने के प्रकार, तरीकों और गति के संदर्भ में विभिन्नताएँ होती हैं।

ज्ञान की उत्पत्ति को चिंतनशील अधिगम की निरंतर उभरती प्रक्रिया के रूप में देखें।

ज्ञान को पाठ्यपुस्तक प्रदत्त बाह्य यथार्थ के रूप में न देखें वरन् उसे शिक्षण-अधिगम के साझा संदर्भों और व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा गढ़ा हुआ मानें। सामाजिक, व्यावसायिक और प्रशासनिक

संदर्भों, जिसमें कार्य करना है, के प्रति संवेदनशील रहें।

ग्रहणशील और लगातार सीखने की प्रक्रिया में संलग्न रहें, समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझें और एक बेहतर विश्व के लिए काम करें ऐसी उपयुक्त दक्षताओं का विकास कर सकें जो उन्हें इस योग्य बनाएँ कि वे केवल अपने स्व को समझें, व्यक्तिगत आकांक्षाओं, क्षमताओं और रुझानों को पहचानें।

सजग रूप से अपना पेशेवर रुझान इस तरह बनाएँ कि जिससे स्थिति विशिष्ट संदर्भ में शिक्षक के रूप में उनकी भूमिका का निर्धारण हो सके।

स्व–अधिगम, चिंतन तथा नये विचारों को सामने रखने के लिए अवसर स्व-निर्देशित अधिगम के लिए दक्षताओं तथा सोचने की योग्यता का विकास, खुद के लिए आलोचनात्मक होने तथा समूह में कार्य करने जैसी योग्यताओं का भी विकास।

स्व और अन्य की समझ के अवसर (जिसमें अपनी मान्यताएँ पूर्व मान्यताएँ और संवेदनाएँ शामिल हैं) आत्म - विश्लेषण, स्व-मूल्यांकन, अनुकूलीकरण, लचीलापन, रचनात्मकता और नवोन्मेष की योग्यता का विकास |

समझ और ज्ञान को बढ़ाने के साथ-साथ विषयगत ज्ञान और सामाजिक यथार्थ के परीक्षण. विषय वस्तु को समाज के साथ जोड़ने के तथा आलोचनात्मक चिंतन का विकास करने के अवसर।

किसी भी व्यक्ति के लिए एक अच्छे या कुशल शिक्षक का विचार उसके पूर्व अनुभव, मूल्य अभिवृत्ति तथा समाज की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। शिक्षक का मुख्य लक्ष्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। छात्रों के ज्ञान कौशल, अभिवृत्ति, रूचि आदि के विकास के फलस्वरूप ही छात्रों में विकास सम्भव है। शिक्षक जब कक्षा में छात्रों को पढ़ाता है तो उसक सम्मुख कुछ उद्देश्य व लक्ष्य होते हैं। इन उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास वह निरन्तर करता रहता है। जिस सीमा तक वह अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो जाता है, उसकी कुशलता व प्रभावशीलता का परिचायक है। शिक्षक की मानसिक क्षमता, शिक्षा, विषय सम्बन्धी ज्ञान शिक्षण अनुभव आदि पर चर सम्मिलित होते हैं। प्रभावशाली शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह बुद्धिमान हो तथा उसकी उच्च शैक्षिक निष्पत्ति हो। ए. एस. बार (1967) ने अनेक अध्ययनों के निष्कर्ष के फलस्वरूप शिक्षक की निर्णय लेने की क्षमता, विचार शक्ति तथा मानसिक जागरूकता का उसकी शिक्षण कुशलता से गहरा सम्बन्ध बताया। एक कुशल शिक्षक में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए:-

ज्ञानात्मक विशेषताएं (प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रवेश देते समय इस बात का भी विशेष महत्व दिया जाना चाहिए कि जो छात्र इस व्यवसाय में सम्मिलित हो वह कम से कम औसत शैक्षिक निष्पत्ति वाले हो। निम्न शैक्षिक स्तर वाला व्यक्ति प्रभावशाली शिक्षण नहीं कर पाता है। यह देखा गया है कि उच्च स्तरीय ग्रेड बिन्दु का श्रेष्ठ शिक्षण से घनात्मक सह- सम्बन्ध है।

भावानात्मक विशेषताएं (भावनात्मक विशेषताओं के अन्तर्गत शिक्षक के संवेग, रूचियां, अभिवृत्ति मूल्य तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएं आती है । प्रभुत्ववादी शिक्षक कक्षा पर अच्छा व वांछित प्रभाव चक्र को उत्पन्न करने वाले होते है। समन्वयी शिक्षक से पढ़ने वाले छात्र भी समन्वयी मनोवृति वाले हो जाते हैं तथा इन छात्रों में अधिक स्वभाविकता व अच्छा संवेगात्मक व सामाजिक समायोजन पाया जाता है। समन्वयी शिक्षक सभी प्रकार के छात्रों के साथ अधिक प्रभावशाली होते है, जबकि कम समन्वयी शिक्षक कक्षा में कम प्रभावशाली होते है तथा कक्षा में भय की स्थिति अधिक होती है।

गतिशील एवं कौशल सम्बन्धी विशेषताएं (शिक्षक छात्रों के समझ एक आदर्श प्रतिमान होता है, जिसका अनुकरण छात्र करते है। अतः शिक्षक में पूर्ण कौशल नितान्त आवश्यक है, ताकि वह छात्रों की त्रुटियों को शुद्ध कर सकें तथा उन्हें सही क्रिया करने का निर्देश दे सके।

शिक्षा के राष्ट्रीय आयोगों, शिक्षा समितियों तथा शिक्षाविदों ने विद्यालय की शिक्षा हेतु कार्यक्रमों भूमिकाओं, उतरदायित्वों तथा जवाबदेही के सम्बन्ध में सुझाव तथा संस्तुतियां दी है। विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही से और उतरदायित्व की भूमिका से शिक्षण कार्यो का संचालन किया जाता है और विद्यालयी शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है। विद्यालय की शिक्षा में प्राचार्य एवं अध्यापकों की भूमिका तथा उतरदायित्व होता है । विद्यालय के संचालन की जवाबदेही प्राचार्य तथा अध्यापकों की होती है

जवाबदेही का अर्थ होता है- उतरदायित्व का निर्वाह करना। कर्तव्यों की पूर्ति की समीक्षा करने को जवाबदेही कहते है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) के अनुसार, "जीवन जीने की कला" एक विस्तृत धारणा है, जिसमें विद्यालय के द्वारा सामाजिक जीवन की लोकाचार, शिष्टता, सामायिक जीवन हेतु कार्य करने की क्षमता

निष्कपटता, निर्भिकता, अच्छा स्वभाव एवं सरलता, सेवा-भाव, साथी को सहयोग, अनुशासन आदि सम्मिलित होते है। यह कार्य पूर्ण निष्ठा आस्था एवं उत्तरदायित्व के रूप में सम्पन्न किए जाने चाहिए। इन कार्यों के प्रति जवाबदेही भी एक समुचित रूप में मार्गदर्शन प्रदान करती है। वस्तुतः जवाबदेही में ही विद्यालय कार्यों का समावेश होता है। इस के माध्यम से प्रत्येक कर्मचारी अपनी संस्था के प्रति समर्पित होता है। यह कर्मचारी को अपने उतरदायित्व की ओर सचेत करती है। साथ ही प्रत्येक कार्य को बहुत सजगता तथा क्रमबद्ध रूप में करने पर बल देता है।

मानव मन अनके कल्पनाओं का कल्पवृक्ष है । मानव जीवन में आने वाले अच्छे-बुरे, सही-गलत, नैतिक-अनैतिक, कल्याणकारी - अकल्याणकारी आदि विचार व्यक्ति की मान्यताओं एवं प्राप्त शिक्षा के अनुसार ही होते हैं। ये जीवन की मान्यताएँ ही व्यक्तिगत जीवन के मूल्य है। दूसरे शब्दों में, जीवन की उपादेयता, सार्थकता आदि का मापदण्ड मूल्य ही होते हैं। मूल्य जीवन की मान्यताएँ होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है, सदैव कल्याणकारी विचार एक लम्बे समयान्तर के पश्चात् समाज द्वारा अत्यधिक उपयोगी मान लिये जाते हैं। कोई आदर्शात्मक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धांत जो किसी दी हुई परिस्थिति में हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और जिन पर हमारा व्यवहार आधारित होता है, मूल्य कहलाते हैं।

प्रवीण तथा प्रभावी शिक्षकों को तैयार करने का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर है शिक्षक - प्रशिक्षक छात्राध्यापकों के मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। मूल्यपरक शिक्षक शिक्षा में मूल्यों के द्वारा शिक्षकों का सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास होता है। मूल्य शिक्षा शिक्षक के अंदर मूल्यों के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्य-योजना में इस सन्दर्भ में कहा गया है " नई नीति के प्रतिबलों के सन्दर्भ में अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या को सुधारने की आवश्यकता है। मुख्य रूप से शिक्षा तथा संस्कृति के समाकलन, कार्य अनुभव, शारीरिक शिक्षा तथा खेलकूद, भारतीय संस्कृति के अध्ययन तथा भारत की एकता एवं समाकलन विषयक समस्याओं पर बल दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह माना गया है कि शैक्षिक प्रौद्योगिकी न केवल शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया की विधियों को बल्कि उसकी विषय-वस्तु तथा रूपरेखा को भी प्रभावित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को नई अधिगम सामग्रियों को तैयार करने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए ।" ये अधिगम सामग्रियाँ जैसे:- पाठ्य-पुस्तकें, संदर्भ पुस्तके, हैण्ड–बुक्स, स्लाइड, टेप व फिल्म आदि ऐसी हो जिनमें शिक्षा में भारतीय अनुभवों का दिग्दर्शन हो सके।

मूल्यपरक अध्यापक शिक्षा के लिए अध्यापक शिक्षा के मानवीय पक्ष पर बल दिया जाना चाहिए। राम शंकर शुक्ल (1989) का मत है कि शिक्षक शिक्षा के माध्यम से प्रयत्न किया जाना चाहिए कि छात्रों के मस्तिष्क पर धीरे-धीरे जातिवाद, भाषावाद सम्प्रदाय, प्रान्तीयता आदि के संकण विचारों पर प्रभाव खत्म हो जाये। मूल्य परक अध्यापक शिक्षा के औपचारिक स्वरूप में प्रत्येक स्तर के लिए उपुयक्त पाठ्यक्रम का होना अति आवश्यक है ताकि निर्धारित उद्देश्यों की सम्प्राप्ति उसके माध्यम से कर पाना सम्भव हो सके। पाठ्यक्रम के क्षेत्र में नित्य नवीन समावेश आवश्यकता को किसी भी स्तर पर आज

अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योकि नये प्रयोग तथा नवाचारिक प्रयत्नों के कारण निरन्तर ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। पाठ्यक्रम में परिवर्तन विद्यालीय शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर भी किया जाना अपेक्षित हो जाता है ताकि भावी अध्यापक नवीनतम विद्यालयी पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण कार्य करने में सक्षम हो सके।

3. निष्कर्षस

अध्यापक शिक्षा में कुशलता का मानदण्ड अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षक शिक्षा में शिक्षक-व्यवसाय, शिक्षक - कौशल व शिक्षक एक महत्वपूर्ण अभिकरण का कार्य करता है। एक अध्यापक शिक्षण में कार्य कुशलता एवं दक्षता विकसित करता है। वह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अध्यापक शिक्षा में गुणवता की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रभावशाली अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह बुद्धिमान हो । अध्यापक शिक्षा में गुणवता के लिए कार्यक्रमों में सुधार अनुभवों तथा परिस्थितियों के आधार पर करना चाहिए। देश के भावी कर्णधारों को सर्वोत्तम प्रकार की शिक्षा प्रदान करने हेतु मूल्यपरक शिक्षक शिक्षा देना आवश्यक है। अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद अध्यापक शिक्षकों तथा अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं को मूल्यपरक अध्यापक

शिक्षा की प्रभावी योजना के निर्माण एवं क्रियान्वयन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए । यदि हम ऐसी शिक्षा सेवा पूर्व या सेवाकालीन व्यवस्था करने में सफल हो जाये तो हम आशा कर सकते है कि भारत का भविष्य मूल्यों में आस्था रखने वालों के हाथो में निश्चित रूप से सुरक्षित रहेगा यदि वर्तमान समय में शिक्षक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम रूप में प्रदर्शित करना चाहता है तो स्वयं के सशक्तिकरण के लिए उसे अपने स्तर व्यवसायिक विकास के साथ - साथ संधार एवं सम्प्रेषण तकनीक का पूर्ण ज्ञान होना तथा भारतीय संस्कृ ति के मूल्यों के अनुरूप शिक्षा का उचित संतुलन एवं सम्मिश्रण करना होगा तभी वह अपने शिक्षार्थियों के साथ न्याय कर सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

'अध्यापक शिक्षा', हल्द्वानी: शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उतराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

• भट्टाचार्य डॉ. जेसी (2008) "अध्यापक शिक्षा अग्रवाल पब्लिकशन्स

• पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक - शिक्षा (2009), नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (5 प्रकार) https://hi.triangleinnovationhub.com/teacher-education-programmes

CHANGING CONTEXT OF TEACHER EDUCATION IN THE INDIAN SCENARIO

DR. ANJANA AGARWAL
Assistant Professor
Sanjay Teacher's Training College, Jaipur
Mob no.931468488
Mail - anjana.agarwal55@gmail.com



Abstract

No nation develops beyond the quality of its education system, which is highly dependent on the quality of its teachers. Teachers should be given the most appropriate tools during and after their training, including content knowledge and skills as well as teaching methodology to be able to do their work professionally. The globalisation concept, if taken into account, would require that teachers and teaching should be recognised like all other professions and should require stringent training and acquisition of knowledge and skills and professional registration under a global council of unified teacher registration body to allow for easy mobility of teachers across national boundaries. The National Curriculum Framework 2005 and National Education Policy 2020 places demands and expectations on the teacher, which need to be addressed by both initial and continuing teacher education.

Keywords: Teacher Education,globalization,NCF2005,NEP2020

Introduction

An educational institution performs a significant function of providing learning experiences to lead their students from the darkness of ignorance to the light of knowledge. The key personnel in the institutions who play an important role to bring about this transformation are teachers. As stated by NCTE (1998) in Quality Concerns in Secondary Teacher Education, ―The teacher is the most important element in any educational program. It is the teacher who is mainly responsible for implementation of the educational process at any stage.‖ this shows that it is imperative to invest in the preparation of teachers, so that the future of a nation is secure. The 2 importance of competent teachers to the nation‘s school system can in no way be overemphasized. The National Curriculum Framework 2005 places demands and expectations on the teacher, which need to be addressed by both initial and continuing teacher education.

MEANING OF TEACHER EDUCATION:

It is well known that the quality and extent of learner achievement are determined primarily by teacher competence, sensitivity and teacher motivation.

The National Council for Teacher Education has defined teacher education as – A programme of education, research and training of persons to teach from pre-primary to higher education level. Teacher education is a programme that is related to the development of teacher proficiency and competence that would enable and empower the teacher to meet the requirements of the profession and face the challenges therein.

According to Goods Dictionary of Education Teacher education means, ―all the formal and non-formal activities and experiences that help to qualify a person to assume responsibilities of a member of the educational profession or to discharge his responsibilities more

effectively. In 1906-1956, the program of teacher preparation was called teacher training. It prepared teachers as mechanics or technicians. It had narrower goals with its focus being only on skill training. The perspective of teacher education was therefore very narrow and its scope was limited. As W.H. Kilpatrick put it, ―Training is given to animals and circus performers, while education is to human beings.

Teacher education encompasses teaching skills, sound pedagogical theory and professional skills. Teacher Education = Teaching Skills + Pedagogical theory + Professional skills.

Teaching skills would include providing training and practice in the different techniques, approaches and strategies that would help the 3 teachers to plan and impart instruction, provide appropriate reinforcement and conduct effective assessment. It includes effective classroom management skills, preparation and use of instructional materials and communication skills.

Pedagogical theory includes the philosophical, sociological and psychological considerations that would enable the teachers to have a sound basis for practicing the teaching skills in the classroom. The theory is stage specific and is based on the needs and requirements that are characteristic of that stage. **Professional skills** include the techniques, strategies and approaches that would help teachers to grow in the profession and also work towards the growth of the profession. It includes soft skills, counselling skills, interpersonal skills, computer skills, information retrieving and management skills and above all lifelong learning skills. An amalgamation of teaching skills, pedagogical theory and professional skills would serve to create the right knowledge, attitude and skills in teachers, thus promoting holistic development.

CHANGING CONTEXT OF TEACHER EDUCATION IN THE INDIAN SCENARIO:

The well-established tradition of teaching and learning in India has retained its inherent strength even under adverse circumstances. The post-independence period was characterized by major efforts being made to nurture and transform teacher education. The system of teacher preparation has come under considerable pressure as a result of the expansion and growth of school education, through efforts to universalize elementary education. Having inherited a foreign model of teacher preparation at the time of independence from Britain in 1946, major efforts have been made to adapt and up-date the teacher education curriculum to local needs, to make it more context based, responsive and dynamic with regard to best meeting the particular needs of India. The current system of teacher education is supported by a network of national, provincial 12 and district level resource institutions working together to enhance the quality and effectiveness of teacher preparation programs at the pre-service level and also through in-service programs for serving teachers throughout the country.

Impact of National Policies: India has made considerable progress in school education since independence with reference to overall literacy, infrastructure and universal access and enrolment in schools. Two major developments in the recent years form the background to the present reform in teacher education the political recognition of Universalization of Elementary Education that led to the Right to Education Bill, 2008 and The National Curriculum Framework for school education, 2005. The Bill has been passed by the Parliament and the Right to Education Act has come into being making it mandatory for the state to provide free and compulsory education to almost 20 crore children in the 6-14 age group till class 8. The Act mandates a schedule for the functioning of schools which includes a teacher student ratio of 1:30 till a student population of 200 students at the primary stage. This would increase the demand for qualified elementary school teachers many times. The country has to address the need of supplying well qualified and professionally trained teachers in large numbers in the coming years. The lunch of the massive Sarva Shiksha

Abhiyan in 2002 and the recent financial commitment and education cess to augment the Universal Elementary Education mission have underscored the need to adequately prepare teachers to address the growing demand for quality education.

Developments in School education: School education has seen significant development over the decades since independence. According to Government estimates (Selected Educational Statistics- 2004-2005 – Ministry of Human Resource Development, New Delhi) while 82% of the 20 crore children of the 5-14 age group were in school as per enrolment figures, it is equally true that 50% of these children are dropping out before completing class 8 (MHRD Annual Report 2007-08). The situation on the ground is still ridden with difficulties. Regional, social, economic and gender disparities are posing new challenges. This reality increases the challenge that the prospective teacher will face in implementing the Right to Education Act. 13 The continued fragmentation of the school system poses the severest challenge to the national declaration of catering to the basic needs of all children in the 6-14 age group through the elementary education in an inclusive setting. However increasing privatization and differentiation of the schooling system have vitiated drastically the right to quality education for all children.

Changing Role of the Teacher: The current system of schooling poses tremendous burden on children. Educationists are of the view that the burden arises from treating knowledge as a _given', an external reality existing outside the learner and embedded in textbooks. Knowledge is essentially a human construct, a continuously evolving process of reflective learning. The NCF 2005, requires a teacher to be a facilitator of children's learning in a manner that the child is helped to construct his/her knowledge. Education is not a mechanical activity of information transmission and teachers are not information dispensers. Teachers have to increasingly play the role of crucial mediating agents through whom curriculum is transacted.

Challenges in Teacher Education: Unprecedented expansion of teacher education institutions and programmes during the past few years characterizes the teacher education scenario of today. With increasing school enrolments and the launch of pan-Indian primary education development programmes like Operation Blackboard, District Primary Education Programme, Sarva Shiksha Abhiyan and Universalization of Elementary Education, there was a natural increase in the demand for teachers. Added to this, the backlog of untrained teachers in the system and the essential requirement of pre-service teacher certification for appointment as a teacher led to mounting pressure on existing institutional capacity. The demand far exceeding supply, market forces have taken over unprecedented rise in the number of teacher education institutions in most parts of the country. From 3489 courses in 3199 institutions and an intake of 2,74,072 in 2004, the numbers in December, 2008 swelled to 14,523 courses in 12,200 institutions with an intake of 10,73,661 at different levels. This expansion has taken a heavy toll on quality parameters like infrastructure, faculty learning resources and student profile. Teacher education as a whole needs urgent and comprehensive reform. There is a need to bring greater convergence 14 between professional preparation and continuing professional development of teachers at all stages of schooling in terms of level, duration and structure. Considering the complexity and significance of teaching as a professional practice, it is imperative that the entire enterprise of teacher education should be raised to a university level and that the duration and rigour of programmes should be appropriately enhanced.

Research and Innovation: There is a need to increase research that documents practices reflectively and analytically- whether it is of programs or of individual classrooms – so that it can be included in the body of knowledge available for study to student teachers.

University departments and research institutions need to undertake such research. In addition there is a need to innovate with different models of teacher education. Institutional capacity and capability to innovate and create are a pre-requisite for the pursuit of excellence. Hence in the present scenario a lot of impetus has been given to research. Many teacher educators are encouraged to take up either major or minor research projects.

Inclusive Education: There are two kinds of exclusion prevalent in schools; one is the exclusion of the child with disabilities and the second is the social exclusion of children who come from socially and economically deprived backgrounds. There is a dire need to equip teachers to overcome their biases in these regards and positively handle these challenges. The Persons with Disabilities (PWD) Act of 2005 provides for free and compulsory education up to the age of 18 years for all children with disabilities. The education of socially and economically disadvantaged groups, especially the SCs, STs and minorities has remained a primary national concern of education for several years. The enrolment and retention of girls and therefore their participation has also remained behind those of boys. Teachers will have to be specially equipped if the social deprivation has to be overcome through education.

Perspectives for equitable and sustainable development : In order to develop future citizens who promote equitable and sustainable development for all sections of society and respect for all, it is necessary that they be educated through perspectives of 15 gender equity, perspectives that develop values for peace, respect the rights of all, and that respect and value work. In the present ecological crisis promoted by extremely commercialized and competitive lifestyles, children need to be educated to change their consumption patterns and the way they look at natural resources. There is also a increasing violence and polarization both within children and between them, that is being caused by increasing stress in society. Education has a crucial role to play in promoting values of peace based on equal respect of self and others. The NCF 2005 and subsequent development of syllabi and materials is attempting to do this as well.

Role of Community knowledge in education: It is important for the development of concepts in children as well as the application of school knowledge in real life that the formal knowledge is linked with community knowledge. The NCF 2005 promotes the inclusion of locally relevant content in the curriculum as well as pedagogy.

ICT in Schools and E-learning: With the onset and proliferation of Information and Communication Technology (ICT), there is a growing demand that it be included in school education. Teacher education has been structured to orient and sensitize the teacher to distinguish between developmentally appropriate and detrimental uses of ICT. It needs to also equip teachers with competence to use ICT for their own professional development. In view of the above discussion the newly visualized Teacher education program as put forth by NCERT is as follows;

Newly visualized Teacher Education Program:

- Emphasizes learning as a self-learning participatory process taking place in social context of learner‘s as well as wider social context of the community to nation as a whole.
- Puts full faith in self learning capacity of school children and student teacher and evolving proper educative program for education.
- Views the learner as an active participative person in learning. His/her capabilities or potentials are seen not as fixed but capable of development through experiences.
- Views the teacher as a facilitator, supporting, encouraging learner‘s learning.
- Does not treat knowledge as fixed, static or confined in books but as something being constructed through various types of experiences. It is created through discussion, evaluate, explain, compare and contrasts i.e., through interaction.

- Emphasizes that appraisal in such an educative process will be continuous, will be self-appraisal, will be peer appraisal, will be done by teacher educators, and formal type too.

Hence there would be a major shift;

From	To
Teacher centric, stable designs	Learner centric, flexible process
Teacher direction and decisions	Learner autonomy
Teacher guidance and monitoring	Facilitates, support and encourages learning
Passive reception in learning	Active participation in learning
Learning within the four walls of the classroom	Learning in the wider social context the class room
Knowledge as "given" and fixed	Knowledge as it evolves and created
Disciplinary focus	Multidisciplinary, educational focus
Linear exposure	Multiple and divergent exposure
Appraisal, short, few	Multifarious, continuous

Conclusion:

When we talk of sustenance of quality and professional development, it implies strengthening and sharpening of the professional competencies of understanding and insights concerning various intricacies of a profession. Professional development leads to 176 job satisfaction and helps the professional to attain higher degree of self-actualization. Teacher and teaching at tertiary level is much more responsible in the art and science of teaching. It is imperative for every teacher to reassess and reflect professional competence and identify and provide input program for updating them in terms of new professional needs, apart from routine teaching in form institutionalized in service education, A teacher can make use of multiple alternate modalities to upgrade and update knowledge and professional skills. It obviously implies further enrichment of teacher‘s knowledge about theories and practices. How a teacher educator develops competitive skill by updating knowledge and understanding of the content, pedagogy, various strategies for professional development, the teacher educator at tertiary level should perform his / her role by using positive and constructive skills, commitment to profession, in-depth learning habits, self – study attending in service Program, The utility of attending workshops and seminars. Presentation skills can be developed by participating in such academic activities.

References:

- Arora G.L. Panda Pranati (eds) 2001. Fifty years of teacher education in India. Post-independence development, New Delhi, NCERT (mimeo).
- Liberman (1992) Building professional culture in schools and colleges, New York, Teachers college press.
- NCTE (1998) competency based and commitment oriented, teacher education for quality college education, New Delhi NCTE
- S.K. Singh, Role of educated, competent teacher in upliftment of the weak students.
- Quality of Higher Education – A new paradigm

National Education Policy 2020 & Teacher Education (Implementation, Problems and Solutions)



Dr. Priyanka Shrimali
Asst. Professor (Hindi)
Swami Vivekanand College, Sinthal
Bikaner
Mob. 9413471252
Email : drshrimali1982@gmail.com



Dr. Rajendra Kumar Shrimali
Professor (Deptt. of Education)
Maulana Azad University, Jodhpur
Mob. 9414742973
Email : shrimalidrrajendra@gmail.com
S.S.R.N. - 4556183
Google Scholer Profile:
https://scholar.google.com/citations?user=kNxjU_8AAAAJ&hl=en

Summary:-
The National Education Policy 2020, which has been approved by the Union Cabinet to change the Indian education system to meet the needs of 21st century India, if implemented successfully, then this new education system will make India one of the leading countries of the world. The purpose of this education policy is to provide higher education to all students, and also to use artificial intelligence. India is also making rapid progress in the direction of digital education, adopting digitization in schools, colleges and universities, Digital Education has been significantly stimulated by the government, which has made every effort to ensure the availability of digital technology not only in cities but also in remote rural areas. Digital Technology is growing rapidly & covering such vast field, which helps any student to gain knowledge and access information from any corner across the country. Technical education and learning methods in India have ushered in Digital India by incorporating innovation.

Key Terms:-Technical Education, National Education Policy 2020, Artificial Intelligence, Smart Board, Machine Learning, Computer Testing, Technology, Digital India.

Preface:-

Education refers to the use of such processes in life, which are acquired by man through experiences, and become his guide. This process goes on from childhood in the form of learning and continues till life, due to which the store of human experience keeps on increasing continuously. The meaning of education is the process of acquiring knowledge, virtue, proper conduct, technical education, technical skill, learning etc. Along with the progress of any country, education is considered the most important basis for the all-round development of its citizens. Indian education system has played an important role in the making of modern India since the independence of the country till now. According to the needs of modern times, education commissions were formed to bring about the expected changes in the Indian Education System, In 1952, The Secondary Education Commission was formed under the

- Chairmanship of Laxmanswami Mudaliar and in 1964, the Education Commission was formed under the chairmanship of Daulat Singh Kothari. In the year 1986, the new National Education Policy was implemented, which is still going on. The National Education Policy 2020 was approved by the Central Government in July 2020 to bring the expected changes in this education system. Through the National Education Policy 2020, a vision of major changes in the Indian education scenario was presented.
- National Education Policy 2020:-
- New Education Policy 2020 is the education policy of India, which was announced by the Government of India on 29 July 2020. This is the first new change in India's Education Policy after the release of new education policy in 1986. This policy is based on the report of the committee headed by Kasturirangan. Under the New Education Policy 2020, a target has been set to bring the gross enrolment ratio to 100 percent by the year 2030. In this policy, the format of 10+2 has been completely abolished, now it has been moulded into 5+3+3+4 format. This policy aims for compulsory education for all children up to the age of 14 year and focuses on better training and qualification of teachers.
- The National Education Policy provides necessary reforms to help students in school and higher education. The National Education Policy 2020 aims to focus on essential areas such as early childhood care, strengthening teacher training, reforming the existing examination system and reforming the education infrastructure.
- Among all the creatures of the world, man is such a creature, who changes his work behaviour from time to time to fulfil his needs. In this sequence, due to progressiveness and creativity many revolutions took place in the world. At present, technological revolution has become a part of human life in every field. In the field of education also, the whole world has been united by making a lot of changes in information and technology, support will be given to the use and integration of all kinds of technology to improve the various aspects of education. The use of technology will be considered for improvement in teaching, evaluation, planning, administration etc. in both school and higher education sector.
- **Technical use and Integration**
- In the New Education Policy 2020, not only the current young generation has been kept in mind, but the expectations, aspirations and challenges of the coming generations have also been kept in mind, The value of the study is to evaluate the use of efficient and effective techniques apart from knowing how teachers play a vital role in educational and career counselling of students, it is the appropriate knowledge imparted to the students by different types of educationists that determines the learning outcome. According to the need of the present time, it is important for teachers to make students aware of technical knowledge and to put it into practice. India is a global leader in information and communication technology and other cutting edge sectors, Digital India campaign is transforming the entire country into a digitally empowered society and knowledge based economy. In the field of education, technology will also play an important role in improving the educational process and results. New technology areas such as artificial intelligence,

machine learning, block chain, smart boards, handheld computing devices, computer testing for student development, and other types of softwares will not only change what students learn, but there will also be a change in how he learns, thus there will be a huge need in these areas in the future as well, both technically and educationally. Support will be given to the use and integration of all types of technology to improve various aspects of education. National Educational Technology Forum (NETF) will be created as an autonomous body to exchange ideas on the use of technology for improvement in the field of education. The objective of the NETF will be to facilitate decisions related to the adoption of technology and its use in a particular area NETF will help heads of educational institutions, central and state governments and other stakeholders to share the latest knowledge and research as well as best practices. By providing opportunities for sharing and consultation some of the functions of the National Educational Technology Forum will be as follows:-

- - To provide independent and evidence based consultancy to Central and State Government agencies in technology based interventions.
- - Building intellectual and institutional capacity in educational technology.
- - Strategically envisioning very effective works in this area.
- - Clarifying new directions for research and innovation.
- To achieve all the above objectives, many educational software will be developed for teachers and students, and will be made available to them. All such softwares will be available in all major Indian languages. The main objectives of educational technology are to improve teaching-learning and evaluation processes, to support teachers' preparation and professional development, to increase educational access and to simplify and organize administration, which includes admission, attendance, evaluation related processes.
- **National Education Policy 2020 Implementation Plan-**
- 1. After India's independence, the National Education Policy was implemented for the first time in the year 1968, on the basis of the recommendations of the Kothari Commission, whose basic principle was to improve the quality of curriculum.
- 2. In the year 1986, along with the necessary reforms in the country's education system, the second National Education Policy was implemented to strengthen the access to education and to remove the inequalities prevailing in the education sector.
- 3. In the year 1992, the National Education Policy 1986 was amended, under which the concept of a single entrance examination at the national level was introduced for admission to technical and vocational education programs in the country.
- The National Education Policy 2020 was approved by the Central Government to bring expected changes in the Indian education system according to the needs of modern times. Through the National Education Policy 2020, a vision of major change in Indian education has been presented.
- 1. The National Education Policy 2020 aims to promote innovation and research in education along with improving the quality of education.
- 2. Under this, it has been said to adopt mother tongue in education up to class 5 and to give priority to mother tongue in further education.

- 3. Development of curriculum material for deaf students at national and state level and a target was set to standardize Indian Sign Language across the country.
- 4. In the National Education Policy, special attention was paid to the development of skills, experience-based learning and encouraging logical thinking in students while reducing the understanding of curriculum.
- 5. Technical education under National Education Policy 2020, removal of linguistic constraints:-
- It has been talked about using 'artificial intelligence' based software to promote the use of technology to make education accessible to students with disabilities, etc. and to help students to take decisions related to their future.
- 6. The policy has given special emphasis on life skills and vocational training.
- 7. According to this policy, children leave the school proficient in at least one skill.
- **Problems during the implementation of National Education Policy 2020:-**
- **1. Lack of appointment of qualified teachers: -** In this policy, important changes have been proposed in the curriculum, infrastructure, teaching system etc. from primary level to higher education. Management of resources, money, appointment of qualified teachers etc. is a big problem to implement these changes.
- **2. Lack of coordination between the state and the centre: -** For the successful implementation of the National Education Policy 2020, various types of interventions will be required, which includes coordination and cooperation between the centre and the states.
- **3. Lack of adequate number of universities: -** Under the National Education Policy 2020, a target has been set to double the successful enrolment ratio in higher education by the year 2035. In such a situation, the problem of establishment of many new universities to provide education to the students.
- **4. Financing: -** Ensuring financing will depend on how strong the will power is to spend the proposed 6% of GDP as public expenditure on education.
- **5. Inadequate funding checks:** Fee regulation is still in place in some states, but these regulatory procedures are unable to curb hoarding in the form of unlimited donations.
- **5. Lack of human resources: -** At present, there is a lack of skilled teachers in the field of elementary education. In such a situation, there are practical problems in the implementation of the arrangements made for elementary education under the National Education Policy 2020.
- **6. Problem related to technical resources: -** The National Education Policy 2020 has given an approach to promote technology, but still the structure of most of the school buildings located in small villages and cities all over India is
- Not suitable, as well as there is a lack of facilities and resources provided to the students for a good educational environment in the schools, In such a situation, without improving the above conditions, bringing technical resources to the students as a whole, is a big problem right now.
- **Solution:-**
- Special emphasis should be given for the successful implementation of the National Education Policy. Studies related to the implementation of policies show that the role of strong instruments, methodology and implementation

mechanism is very important in avoiding policy failures. Following are some suggestions to solve the problems of National Education Policy:-

- 1. Promotion of technology in the education sector.
- 2. Arranging for the training of teachers.
- 3. Increasing government expenditure.
- 4. Promotion of quality education.
- 5. Establishment of Standing Committee.
- 6. To consider the establishment of National Higher Education Philanthropy Council.
- 7. It is very important for the government to pay attention to elements like incentives, resources, information, adaptability, credibility and management for success in the implementation of any policy.
- **Conclusion:-**
- In the presented research paper, India's new National Education Policy 2020 has been considered, and the ideas have been presented after reviewing the technical experiments, implementation problems and solutions contained in it. In conclusion, this National Education Policy 2020 accepts these problems. While doing this, we all Indians should play an important role in the implementation of all its positive aspects. The Digital India campaign is going to be implemented in the whole country. In such a situation, the initiative of technical education in the National Education Policy 2020 is a commendable work, so that today's youth will be able to digitize themselves completely and will be able to move forward. New technologies involving artificial intelligence, machine learning, block chain, smart boards, computer testing, and other types of educational softwares and hardwares will allow us to see what students are learning in the classrooms. Therefore, the knowledge of technology has become very important for the personality development of the youth.
-
- **Reference list:-**
- - National Education Policy 2020, Ministry of Human Resource Development, Government of India.
- - https://www.sarkariyojnaa.com
- - https://www.rashtriyashiksha.com
- - https://www.drishtiias.com
- - https://hi.quora.com
- - https://hi.m.wikipedia.org
-

"A Study of main Factors related to Existentialism in the Novel's of Anita Desai"

Dr.Ruchika Singla
Assi. Proffesor
Tantia University, sri Ganganagar

Anchal Jangu
Ph. D.Scholar
Tantia University, sri Ganganagar

ABSTRACT : The study aims to find out if Anita Desai women really assert themselves or somewhere in their assertion process conform to endurance. For the purpose of this study, all her novels have been considered, but the thrust of this research is on three of her major novels viz., Cry The Peacock, Voices in the City, Fasting Feasting and Fire on the Mountain . These five novels have won awards and have been translated into a number of foreign languages. In this paper -A modern philosophical movement, Existentialism deals with man's disillusionment and despair. Originating in the philosophical and literary writings of Jean Paur Sartre, it was more on attitude to life, a vision, or what Kaufman calls a "timeless sensibility that can be discerned here and there is the past." (Existentialism from Dostoevsy to Sartre, A philosophical idealism, existentialism in due course of time developed into a powerful revolt against reason, rationality, positivism and the traditional ways in which early philosophers portrayed man.

Keywords : , Existentialism, Factors, Novels, Anita Desai

Existentialism, taken as a whole, undoubtedly a philosophical movement. Existialism, broadly defined, is a set of philosophical systems concerned with Free will, Choice and Personal responsibility. Because we make choices based on our experiences, beliefs, and biases, those choices are unique to us – and made without an objective form of truth. There are no "Universal" guidelines for most decisions, existentialism believe. Instead, even trusting science is often a "Leap of Faith". Existentialism is, at its core, individualistic. It deals with man's disillusionment and despair some thinkers have presented a very gloomy picture of it. They have described it as 'the shocking the sordid, the obscene'. To them existentialism is "nearly meaningless." They hold that it is mostly negative, morbidity, individualistic and devoid of values of any kind. They attach to it such charge of extreme subjectivism, pessimism and even nihilism. Despite a strong pessimistic note, Existentialism does not aim at plunging man into despair it rather prepares him through disillusionment and despair for a some purpose, sense and meaning. Such a concern is quite pertinently expressed in 'Albert Camus' play 'Caligula'.

"To love one's life is a little thin and I shall have the courage to do so if is necessary, but to see the meaning of this lifedissipated, to see our reason for existing disappear that is what is unbearable. One cannot live without meaning." A great philosopher Sartre have very well explained that existentialism is optimistic so far a it is doctrine of action: "Existentialism is nothing else but an attempt to draw the full conclusion from a consistently atheistic position. Its intention is not in the least that of plunging men into despair. And if by despair one means as the Christians do- any attitude of unbelief the despair of the existentialists is something differentExistentialism is not atheist in the sense that it would exhaust itself in demonstration of the non-existence of God. It declares, rather, that even if God existed that would make no difference for its point of view. Not that we believe God does exist; but we think that the real problem is not that of his existence, what man needs it to find himself again and to understand that nothing can save him from himself, not even a valid proof of the existence of God. In this sense existentialism is optimistic. It is a doctrine of action, and it is only by self-deception by confusing their own despair with ours that Christians can be describne us as without hope."

Existentialism is a protest against all forms of rationalism. The existentialists have therefore reacted strongly against the excessive claims of reason. Kierkegaard reacted against Hegeliane idealism. Marcel reacted against the idealists like F.H. Bradley and Brushchving. Heidegger and Sartre, too, reacted against the age of reason. The existentialists actually think passionately. He sets forth the dictum "existence precedes essence."

The existentialists assert that man first exists and then he look at the world, thinks of it and then acts as an individual. His contemplations and his actions are possible only because of his existence. “Existence, thus, is the first principal from which all else flows. It is only later, by living, thinking, and acting that man defines his nature and forms what is called his essence – that he is and will be." The essence of man is pre determined. Jean Paul Sartre has thus posited his view point :"What do we mean by saying that existence precedes essence ? We mean that man first of all exist, encounters himself, surges up in the world, and defines himself afterwards. If man as the existentialist sees him, is not definable. it is because to begin with he is nothing. He will not be anything until later,and then, he will be what he makes of himself."

Statement of Problem:

“A Study of main Factors related to Existentialism in the Novel’s of Anita Desai”

Aims and Objectives:-

* To study existential philosophies in literary context.
* To discuss the main factors of existentialism in the novels of Anita Desai
* To highlight existentialism in the novels of Anita Desai.
* To trace Anita Desai as an Existentialist with a different vision.
* To trace the inter-relationship between existential philosophy and the themes of the novels of Desai.
* To find out alternatives for human existence through literary study.
* To discuss husband-wife relationship and to bring out the existential predicaments of women protagonists in Indian cultural set-up..

Hypothesis

The researcher assumes while studying the later novels of Anita Desai.

1) Existentialism is a philosophy related to self-discovery and the purpose of life through freedom of choice, and personal commitment.
2) Existentialistic ideas emerged at a time when society had a deep sense of hopelessness following the Great Depression
3) The existentialists basically agree that human life is in no way complete and fully satisfying.
4) Anita Desai’s writings reveal the inner realities and minds of the characters. She also faces the issue of ‘Perfect Personality.

Methodology:

The methodology will be used in the study is mainly descriptive, interpretive and analytical. The main focus will on reading closely and analyzing selected novels from an existing perspective, at the same time, in order to better understand the depth and better understanding of the second different sources referred to.

In Cry, The Peacock (1963) the protagonist, Maya is alienated from her husband, Gautama and feels estranged from her entire surroundings she lives as a virtual outsider in her home, in an environment where love is scant and understanding meager. As she is living under the constant shadow of death, the husband is engrossed in the materialistic pursuits and rational hair-splitting of the wisdom of the Gita. She discovers utter meaninglessness of life in the entanglement of what is 'gross' and 'useless' matter of fact and rational. She scorns a system that preaches 'must accept'. Under the lucidity of absurd existence, in a fit of rage, she kills

her husband and immolates herself, Physical suicides is a way of pointing out the agony of the absurd and symptomatic of deep urge for freedom.

Voices In The City (1965) deals with the three important characters-- Nirode, Monisha and Amla who feel almost detached or disconnected from the society. They are involved in deep spiritual crises. They seek ways and means by which they may protect their identity against the onslaught of meaningless existence. They are ill at ease in the general environment of dreariness, brutality and absurdity of existence. Nirode's life consisted of one rejection following another. He loathed the world that could offer to crusade no pilgrimage and he loathed himself for riot having the true, the unwavering spirit of either within him. He knew by instinct that 'he was a man for whom aloneness alone was the sole natural condition'. Monisha, too, feels alienated in her family and rebels against the traditional philistinism of Bengali community. She considers her life a virtual 'waste' and immolates herself. Amla is tormented by the chaotic life of Calcutta. The three characters— the three voices-fell that amidst meaningless chaos of existence they are born like strangers as if they were in exile. A sense of rootlessness and loss of identity results in a haunting sense of meaningless existence.

'Where shall we Go this Summer (1965)

'Where shall we Go this Summer? is Desai' "Shortest existentialist novel." It is once again a family drama focusing attention on Sita, a house wife who is pregnant but hates to deliver the child. She is hypersensitive and is emotionally so charged. She has passed her childhood is an island under the magic spell of her father. She feels alienated from her husband and is not able to understand at time the behaviour of her children. Sita and her husband Raman both are of different nature. Raman is practical man but he cares for her and that's why he leaves his joint family and live-alone with Sita and his four children so that he could make her happy. But Sita is over emotional and she does not want to come out of the fantasy world of her childhood. That's why, when she becomes pregnant again she decides to go to the Manori Island, to keep her baby unborn. She thinks that though her father is dead but his magical effect still remain in the island. But when she goes there she finds nothing. When his husband Raman arrives the Island to take them back to the Bombay, she refused. But then Raman introduces her to the reality of the world and then she comes out from the world of fantasy, accept the world of reality and come back to her home. This novel is divided into three sections, namely "Monsoon-67" "Winter-47" and "Monsoon-67". The first one describes her present life in Bombay, Second is connected to her past, her life in Manori Island before her marriage and the third part described her present and uncomparing future, because in this section she returns to the world of reality and thus the novel go to thehappy end.

Bye-Bye, Blackbird (1971) of Anita Desai adequately highlights the cultural tension experienced by the protagonists Adit, Dev and Sarah in an alien soil and reveals their loss of identity amidst racial hostility. The novelist powerfully underlines the dawn of lucidity among Adit and Sarah to discard the yokes of slavery and cruel misdemeanour of the whites. Adit and Sarah are in quest of their 'natural condition' or 'true circumstance' and ultimately they secure it in their willed departure from a land which was steadily devouring their conscience. The novel embodies profound appeal for authentic maturity and spiritual growth and invokes human beings to imbibe the truth that the sublimity of conscience can't be compromised by the lure of loaves and butter.

The existentialist dilemma and the resultant alienation are further accentuated in the character of further accentuated in the character of Sita in the novel, Where Shall We Go This Summer? (1975). Sita feels extremely bored and lonely although she is materially well off. Her dilemma lies in her isolation caused by her inability to accept values and attitudes of the society around her. She is expecting her fifth child but wants to keep it unborn in a world that is not fit to receive this new comer. The reality of her life with her husband becomes

oppressive and she hastens to Manori Island. But her hopes are short-lived and she is brought back to Bombay. Her courageous 'No' is demolished in the face of harsh reality. Though totally alienated she has to swallow the pill of compromise. Yet Sita's rebellion reveals her courage to launch on a quest for authentic selfhood and adequate existence.

Fire On The Mountain (1977) is a narrative of a lady, Nanda. Kaul, who sought withdrawl in a solitary mountain villa of carignano in the foothills of Himalayas. She resigned to the self imposed loneliness because 'she was forced to do, reduced to doing'. What she cherished throughout her life was solitude and serenity in the close proximity of Nature but this desire was thwarted at every second step. But, no, while she was at carignano every interruption would be an unwelcome intrusion upon her. She would not tolerate it. But the anticlimax reaches at the moment when Raka, great grand-child of Nanda comes intervening in her nectar full bliss. The liberation so fondly cherished by her evaporates into the thin air. The intrusion of Raka and death of Ila Das in a rape-episode explode the last refuge of respite and release of an enlightened lady like Nanda Kaul. There is no soothing ground in the world. Perhaps boat moves to ultimate shipwreck. Absurd nullity of existence does not let one's experience one's fulfillment.

From the comprehensive analysis of Anita Desai's novels it can be established that her protagonists experience to the full the sense of alienation mainly caused by the absurdity of existence. This they experience not only on the physical or materialistic level but also on the level of spirit. The constitution of the world is such that 'aloneness alone' becomes the only reality and the person in aloofness is in relentless quest for identity and authentic selfhood. It is also abundantly clear from a close scrutiny of her novels that there is a deep philosophical connotation in the problems of existence that she has highlighted in her protagonists. What her protagonists confront in their daily lives is not simple issue of their individual concerns but fundamentally cankering problems of the whole human race. In Anita Desai, the inner crisis develops from the failure of human relationship and lack of emotional stability. Her characters originate and exist because of the incompatibility of their temperaments. Maya is hungry for love, and Gautama is cold Nirode Monisha and Amla are also not ordinary characters but sensitive artists, having feelings of individuality and self-respect. Adit, Dev and Sarah have their own crisis. Sarah is psychically lacerated. She is 'silent volcano, not dead, yet not bursting.' Sita suffers from her inner crisis to check the delivery of her baby. Nanda Kaul languishes in her soul for personal reasons. Bim lives in her dreamy world. Thus the inner crisis in the characters leads them to the complexity of existential problem which they have to face time-to-time. The protagonists of Anita Desai are highly sensitive and terribly bewildered of the burden of living helplessly in the society with absurd realities. She is essentially a novelist of existential concerns. There is reverberation of Kierkegaard, Nietzsche, Bergson, Marcel Proust, Camus, Sartre and Virginia Woolf in her novels.

Conclusion:

The novelist's language and theme reveal the meaningful correlations between the psychic condition of the characters. Mrs. Desai is primarily concerned with the fate of the married woman in Indian society today. Her women becomes victims of the traditional modes of existence without a strong terra firma, which makes them intensely conscious of
their lack of identity. Their protest mostly turns into frustration, for as an Indian girls a woman is brought up to be passive, meek and obedient. With this kind of orthodox background, she tries to depict the oppressive and unfeeling conjugal bond. Hence, Mrs. Desai presents the unhappy situation of women in Indian society. She has handled the issues of violence against women artistically and veraciously.

References:

Primary Sources

Desai, Anita. Cry, The Peacock. 1963 Delhi: Orient Paperbacks, 2004.

———————. Voices in the City. 1965 Delhi: Orient Paperbacks, 2006.
———————. Bye- Bye Blackbird. 1971 Delhi: Orient Paperbacks, 2001.
———————. Where Shall We Go This Summer?. 1975 Delhi: Orient Paperbacks, 2001.
———————. Fire on the Mountain. 1977 London: Vintage Random House, 1999.
Asnani, Shyam M. Critical Response of Indian English Fiction. Delhi: Mittal Publication, 1985.
Bala, Suman and D. K. Pabby, eds. The Fiction of Anita Desai. 2 Vols. New Delhi: Khosla Publishing House, 2002.
Sharma, R.S. Anita Desai. New Delhi: Arnold Heinemann, 1981.
Sharma, kajali. Symbolism in Anita Desai's Novels. New Delhi: Abhinav Publication, 1991.
Vassanji, M.G. Introduction. Fire on the Mountain. By Anita Desai. Noida:Random House, 2008.xiii.1-20. Print.
Weir, Ann Lowry. "Anita Desai : Fire on the Mountain." World Literature Written in English. 8.2 (1978).

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम

डॉ. तारा सैनी
प्राचार्य. एस.एन.महिला बी.एड. कॉलेज,
नवलगढ़

भूमिका

शिक्षक शिक्षा के आयाम वास्तव में अध्यापक शिक्षा व्यवस्था की धुरी है। शिक्षा उद्देश्यों की प्राप्ति में उसकी महत्तवपूर्ण प्रमुख भूमिका रही है। शिक्षक समाज का वह अग्रदूत है जिसका उत्तरदायित्व है कि वह सरकारी नीतियों व सामाजिक जनमत तैयार करें। वर्तमान समय में भारतीय समाज में शिक्षक की भूमिका बदल गई है अब वह नये समाज के निर्माण का मार्ग दर्शक प्रशस्त करने वाला अग्रदूत है। शिक्षक ही समाज में नई चेतना का आधुनिक विकास कर सकता है और समाज में व्याप्त संकीर्णताओं, अंधविश्वासों, रूढियों तथा विघटनकारी शक्तियों का हटाकर कर नये समाज का निर्माण कर सकता है।

शिक्षक शिक्षा जगत का महत्वपूर्ण आधारभूत स्तम्भ होता है एक कहावत है, शिक्षक जन्मजात होते है, बनाये नहीं जाते। प्रशिक्षण में शिक्षक इस कौशल हेतु गुणात्मकता का विकास करता है। शिक्षा में गुणात्मक एवं स्तरीय विकास का उत्तरदायित्व शिक्षक के कंधों पर ही सर्वाधिक होता है।

अतः एक शिक्षक की शिक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों को निम्न प्रकार से बताया जा सकता है –

1. शिक्षक के विभिन्न आयाम –

शिक्षण रणनीति में सामान्यतया सीखना एवं अध्ययन कौशल के साथ ही उनका अर्थ निर्माण, गणितीय समस्याओं को समाधान और वैज्ञानिक ढंग से तर्कबुद्धि सोच के लिए शिक्षण करना शामिल होता है. शिक्षण के दौरान सम्पूर्ण रणनीति में कुछ सवाल बालको की जानकारी के सन्दर्भ में किया जा सकता है, जैसे कि कोई ज्ञान / समझ को बालक क्या जानते हैं? कैसे जानते हैं? तथा इस समझ या जानकारी को कब, कैसे और किन परिस्थितियों में उपयोग कर सकते हैं? इस प्रकार के प्रश्नों को केंद्र में रखकर शिक्षण की रणनीति को बनाया जा सकता है.

शिक्षण में छात्र के सीखने की प्रक्रिया और प्राकृतिक वातावरण को भी ध्यान में रखना होता है. जब हम कहते हैं कि बालक स्वयं सीखता है, अपने सहपाठी से सीखता है, छोटे समूहों में सीखता है तो इसे Co-operative Learning के रूप में देखना होगा. इस प्रकार का Co–operativeLearning प्रभावशाली शिक्षण एवं सामाजिक अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करता है. यह बालक की अभिरूचि विषयगत मूल्य, एवं उनके सकारात्मक अभिवृत्ति (Attitude) को भी बढ़ाता है. यद्यपि ये बालक दर बालक अलग–अलग हो सकता है। Co–operativeLearning में चूंकि चर्चा शामिल होता है, जिससे उनमें संज्ञानात्मक एवं उनके Metacognative क्षमता को पालने–बढ़ने की पुरी गुंजाइश होती है।

परम्परागत शिक्षण प्रक्रिया इसमें कक्षा में सभी बालको को किसी एक ही प्रकरण / विषय में व्याख्यान में एक साथ एक ही स्तर का मानकर शिक्षण दिया जाता है साथ ही बच्चों को जो कार्य दिए जाते हैं उसे सभी बच्चे व्यक्तिगत रूप से करते हैं जिसे एक नियत समय में करना ही होता है. Co–operative Learning में भी कक्षा के साथ एक साथ ही काम होता है, लेकिन इसमें बालक का जोड़ी में कार्य करना, सहपाठी के साथ मिलकर कार्य करना, छोटे समूहों में भागीदारी करते हुए काम करना इसे महत्त्वपूर्ण बना देते हैं। यह अधिगम को सार्थक बना देता है. जिसे सामाजिक मूल्यों के साथ भी जोड़ कर देखा जा सकता है।

सहयोगात्मक शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री का भी महत्वपूर्ण योगदान है. इसमें विशेषकर छोटे समूहों में कार्य करने का अवसर देना कक्षा में उपलब्ध शिक्षण सहायक सामग्री पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए बच्चों में 'ग्लोब' की समझ एवं पठन कौशल विकसित करने के लिए छोटे समूहों में सीखने का अवसर देना है तो कक्षा में एक ग्लोब से काम नहीं चलेगा।

लक्ष्य आधारित मूल्यांकन में अनेक औपचारिक व अनौपचारिक विशेषकर अनौपचारिक मूल्यांकन के तरीके को अपने शिक्षण प्रक्रिया में स्थान तथा मूल्यांकन चाहे जिस तरीके से हो वह लक्ष्य आधारित हो। यह भी सत्य है कि अच्छी तरह से विकसित पाठ्यक्रम में आकलन के घटक स्वमेव शामिल होता है। आंकलन के ये घटक पाठ्यक्रम के उद्देश्य, विषयवस्तु, सीखने की गतिविधि और परिणाम के साथ

एकीकृत भी होते हैं। समझ आधारित आकलन करते समय यह देखा जाना चाहिए कि बच्चे प्रश्नों के उत्तर किस हद तक समझ के साथ दे रहा है, के साथ–साथ यह भी देखा जाना चाहिए कि उत्तर में 'तर्क' कितना शामिल है तथा क्या प्रक्रिया अपनाई गयी है. एक अच्छा शिक्षक बच्चों का आकलन केवल ग्रेड देने के लिए नहीं बल्कि बच्चों की उपलब्धि को समग्रता में देखता है। साथ ही वह शिक्षक सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के दौरान ही बच्चों की उपलब्धि व उन्हें सीखने में आने वाली कठिनाइयों का सतत अनुवीक्षण करते रहता है।

2. **छात्र के विभिन्न आयाम –**

विद्यालय लीडर के रूप में, आप यह सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार हैं कि सभी बालक को सीखने में भाग लेने के लिए अवसर और सहायता मिले। ऐसा तभी संभव होगा यदि संसाधनों का प्रबंधन प्रभावी ढंग से और सीखने की प्रक्रिया को सुधारने को स्पष्ट प्रयोजन के साथ किया जाय। अब तक का संबसे महत्वपूर्ण संसाधन जिसे विद्यालय नेता प्रबंधित करता है वह है मनुष्य आयाम। आपको लोगों के एक ऐसे समूह (शिक्षक, अन्य स्टाफ, छात्र, मातापिता और समुदाय के सदस्य) में पहचान प्राप्त है जो सीखने का समर्थन करने के लिए कौशलों और ज्ञान का योगदान कर सकते हैं। मानव संसाधन प्रबंधन के साथदृसाथ आप वित्तीय और भौतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए भी जिम्मेदार होंगे ताकि सुनिश्चति किया जा सके कि वे बालक की सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए उपयुक्त और सुविधा हैं और उनका उपयोग प्रभावी ढंग से देखा जा सकता है।

भारत में विद्यालयों के सन्दर्भ वृहत् रूप से अलग हैं, जो वातावरण और उनकी भौगोलिक स्थिति की जलवायु से लेकर उनके छात्रों की संस्कृतियों और भाषाओं तक विस्तृत हैं। कोई विद्यालय सचमुच छोटा सा हो सकता है जैसे किसी ग्रामीण क्षेत्र का एकमात्र शिक्षक वाला बहुदृश्रेणी विद्यालय, या किसी मैदानी क्षेत्र के बड़े शहर में हजारों की संख्या में छात्रों के लिए शिक्षको की बड़ी संख्या में देखा हो सकता है। छात्रों को विद्यालय के बाहर अलग अलग प्रकार के संसाधन सुलभ होंगे लेकिन सभी विद्यालयदृआधारित संसाधन सभी छात्रों को समान रूप से उपलब्ध होने चाहिए, ताकि उनकी सीखने की जरूरतें पूरी की जा सकें।

छात्राओं के अनुशासन की भूमिका

एक विद्यालय में बालको के विभिन्न प्रकार देखने को मिलते है और शिक्षकों को कक्षाओं में इन सभी प्रकार के छात्रों को समझने और संलग्न करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों की मिश्रण की आवश्यकता होती है। विद्यालय अनुशासन एक जटिल प्रक्रिया है. अनुशासन को बढ़ावा देने और इसके पाठ्यक्रम को बनाए रखने के लिए एक विशेष प्रकार की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कक्षाओं में अनुशासन मूल्यों को अच्छी तरह से शामिल करने की आवश्यकता है।

यदि कोई स्कूल अनुशासन के आवश्यक स्तर को बनाए रखने में विफल रहता है, तो कक्षा में छात्रों को प्रबंधित करने के संघर्ष के अलावा अधिक संख्या में निलंबन और निष्कासन होते हैं। यह गंभीर मुद्दा स्कूल की शिक्षा की गुणवत्ता को नीचे लाता है। और स्कूल का माहौल मेहनती छात्रों (पढ़ने के लिए) और शिक्षकों (पढ़ाने के लिए) के लिए अप्रिय हो जाता है।

3. अनुशासन के विभिन्न आयाम –

अनुशासन शब्द अंग्रेजी के शब्द Discipline का हिन्दी रूपान्तरण है। इस शब्द की व्युत्पत्ति Discipline शब्द से मानी जाती है। इसका अर्थ है शिष्य, छात्र या शिक्षक का अनुगामी। अनुशासन एक महत्वपूर्ण साधन है। इससे आचरण तथा गुणों का विकास होता है तथा कुछ विद्ववानों ने अनुशासन की परिभाषाए देते हुए कहा है जैसे–

नन् के शब्दों में – ''अपनी भावनाओं और शक्तियों को नियंत्रण के अधीन करना जो अव्यवस्था को व्यवस्था प्रदान करता है''। इस कथन से स्पष्ट है कि अनुशासन के अंतर्गत व्यक्ति को अपनी मुक्त भावनाओं एवं शक्तियों को किसी निर्धारित नियन्ण द्वारा नियमित तथा नियंत्रित करना होता है। अनुशासन समाज में व्यवस्था बनाए रखने में सहायक है।

एच. मारटिन के अनुसार – ''अनुशासन का अर्थ है, व्यवहार के कुछ निश्चित नियमों का पालन करना, सीखना। आयाम का अनिवार्य गुण आज्ञाकारिता है अर्थात् नियमों एवं अधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता होनी चाहिए''।

अनुशासन के प्रकार

प्राकृतिक अनुशासन – प्राकृतिक अनुशासन के अंतर्गत किसी प्रकार के बाहरी दबाव अथवा नियन्त्रण को लागू नहीं किया जाता।

अधिकारिक अनुशासन – अधिकारिक अनुशासन में किसी प्रकार की आजादी नहीं दी जा सकती है। हर प्रकार से अपने बड़ों के नियन्त्रण तथा अधिकार में रहना होता है। स्वयं इच्छा से कोई भी कार्य करने की छूट नहीं होती। इस प्रकार के अनुशासन में बड़ों के आदर्शों एवं निर्देशों का सर्वाधिक महत्व होता है। परिवार अपने अभिभावकों का तथा विद्यालय में शिक्षकों का हर आदेश मानना चाहिये।

वैयक्तिक अनुशासन – इस प्रकार का नियन्त्रण व्यक्तियों के लिए होता है। जब आदमी में समुचित पूर्णस्थिर का विकास हो जाता है तब उसे स्वयं ही मालूम हो जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या नियम है और क्या अनियमित है। वह स्वयं ही उचित तथा नियमित का चुनाव करता है।

सामाजिक अनुशासन – अनुशासन का एक अन्य आकार ''सामाजिक अनुशासन'' है। इस अनुशासन का निर्धारण सामाजिक मान्यताओं द्वारा होता है। प्रत्येक समाज का यह नियम है कि सामाजिक मान्यताओं के अनुसार कार्य करने पर समाज व्यक्ति की प्रशंसा करता है और सामाजिक मान्यता के विपरीत निन्दा की जाती है। इसी व्यक्ति के आचरण प्रशंसा तथा निन्दा के माध्यम से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है। सामान्य रूप से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है।

4. विद्यालय के विभिन्न आयाम –

विद्यालय के विकास की चर्चा करते समय अनेक सवाल उठते हैं, जैसे विद्यालय में बनावट व उनकी गुणवत्ता कैसी है? मानव संसाधन और सीखने अधिगम शिक्षण की उपलब्धता कैसी है? विद्यालय में शिक्षण–अधिगम और मूल्यांकन की प्रक्रियायें कितनी प्रभावी हैं? विद्यार्थियों की उपस्थिति, सहभागिता और उपलब्धी का स्तर कैसा है? विद्यालय का नेतृत्व और प्रबंधन किस प्रकार का है? विद्यालय में सामाजिक परिवेश कैसा है? विद्यालय का समाज के साथ संबंध कितना लाभकारी है? इत्यादि। विद्यालय विकास की कार्य योजना इन्ही प्रश्नों/परिस्थितियों के संतोष जनक समाधान खोजने का प्रयास करती है। भविष्य के विद्यालय की कल्पना करते हुए, निम्नवत् चार प्रमुख आयामों को दृष्टिगत रखकर कार्ययोजना तैयार की जाना चाहिए।

विद्यालय के संबंधी आयाम

गुणात्मक शिक्षा के लिए कई महत्त्वपूर्ण उत्तरदायी होते हैं, जैसे विद्यालय में उपलब्ध भौतिक संसाधन, प्रशिक्षित शिक्षक, कक्षागत् प्रक्रियायें, शैक्षिक सहायक सामग्री की उपलब्धता, संस्था प्रधान की भूमिका एवं विद्यालय के विकास में समुदाय का सहयोग इत्यादि।

अस्तु इन्ही कारकों के स्तर में विकास हेतु क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिए। विद्यालय में अच्छे शैक्षिक वातावरण के लिए

निम्नानुसार समुचित व्यवस्थायें होना चाहिए –

- विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षण कक्षों की व्यवस्था।
- विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षकों की व्यवस्था।
- विद्यालय में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की उचित बैठक व्यवस्था।
- अध्यापन कक्ष की साज–सज्जा एवं परिसर की स्वच्छता।
- विद्यालय में खेल एवं मनोरंजन आदि की सुविधायें।
- विद्यालय में शुद्ध पेयजल एवं स्वच्छ शौचालय की सुविधायें।

सीखने–सिखाने की क्रिया को प्रभावी बनाने हेतु ऐसी योजना बनाना आवश्यक है जिससे कि कक्षाओं में सीखनें–सिखानें का उत्कृष्ट वातावरण का निर्माण हो। प्रत्येक विद्यार्थी कक्षाओं में होने वाली विचार विमर्श व गतिविधियों में सहभागिता करे। सीखने सिखाने का रूचिपूर्वक वातावरण।

- सीखने सिखाने के भरपूर अवसरों की उपलब्धता।
- सीखने सिखाने के उपयुक्त तरीके।
- सीखने सिखाने का उचित आक्लन

गुणात्मक शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ती के लिए आवश्यक है कि स्थानीय समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति सजक रहे और सक्रिय रहकर विद्यालय की गतिविधियों में सहयोग करे ं, इस हेतु विद्यालय से संबंधित विभिन्न पक्षों के आपसी संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए कार्ययोजना तैयार की जाना चाहिए।

- विद्यार्थी – विद्यार्थी संबंध
- विद्यार्थी – शिक्षक संबंध
- शिक्षक – पालक स ंबंध
- विद्यालय के संस्थागत आयामः
- सीखने की प्रक्रिया में विद्यालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है अतः विद्यालय को समूह से सहयोग प्राप्त कर खेलकूद,
- सांस्कृतिक एवं साहित्यक गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए।
- विद्यालय में विद्यार्थियों की उपस्थिति, दक्षता, एव ं उपलब्धियां सुनिश्चित करने हेतु समुचित प्रबंध करना चाहिए।

भारतीय संदर्भ

इस तथ्य को और स्पष्ट करने के लिए प्राथमिक स्कूल के शिक्षण व्यवसाय का उदाहरण दिया जा सकता है जिसे विश्व में सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय माना गया है क्योंकि प्राथमिक स्कूल के शिक्षक छोटे बच्चों को ज्ञान और जीवन के मूल्य उन्हें समझ आने लायक भाषा में प्रदान करते हैं ताकि इन छोटे बच्चों का भविष्य सुरक्षित और सुनहरा बन सके जब अच्छी शिक्षा देने की बात आती है तो विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले सभी शिक्षक इसके प्रणेता नजर आते हैं। शिक्षा, शिक्षक और शिष्य के आत्मीय और निकटतम सम्बन्ध को कभी तोड़ा नहीं जा सकता है।

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए एक सजग, उदात्त चरित्र, धार्मिक नैतिकता परिपूर्ण शिक्षक की आवश्यकता है ताकि हमारी आने वाली पीढ़ी को हम ऐसे भारतीय नागरिक बनाने में सफल हो सकें जो विश्व में भारत का नाम रोशन कर सकें और पुनः भारत को 'जगतगुरु'की उपाधि प्राप्त करवा सके। हम सब की भी यही अभिलाषा है।

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है। अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी है तो उस देश को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी नहीं होगी तो वहां की प्रतिभा दब कर रह जाएगी बेशक किसी भी राष्ट्र की शिक्षा नीति बेकार हो, लेकिन एक शिक्षक बेकार शिक्षा नीति को भी अच्छी शिक्षा नीति में बदलने में सक्षम होता है।

आज के समय में शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती है। पुराने समय में भारत में शिक्षा कभी व्यवसाय या धंधा नहीं थी। गुरु एवं शिक्षक ही वो हैं जो एक शिक्षार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करते हैं और सही मार्ग दिखाते हैं।

एक शिक्षार्थी को अपने शिक्षक या गुरु प्रति सदा आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। किसी भी राष्ट्र का भविष्य निर्माता कहे जाने वाले शिक्षक का महत्व यहीं समाप्त नहीं होता क्योंकि वह ना सिर्फ हमको सही आदर्श मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सफल जीवन की नींव भी उन्हीं के हाथों द्वारा रखी जाती है।

वर्तमान युग है आधुनिकता का, वैज्ञानिकता का, व्यस्तता का, अस्थिरता का, जल्दबाजी का। आज का विद्यार्थी जीवन भी इन्ही समस्याओं से ग्रसित है। आज का विद्यार्थी जीवन पहले की तरह सहज, शांत और धैर्यवान नहीं ही रह गया है। क्योंकि आगे बढ़ना और तेजी से बढ़ना उसकी नियति, मजबूरी बन गई है। वह इसलिए कि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो ज़िंदगी की दौड़ में वह पीछे रह जायगा। तो यह वक्त का तकाजा है। ऐसे समय में विद्यार्थी जीवन को एक सही, उचित, कल्याणकारी एवं दूरदर्शी दिशा निर्देश देना एक शिक्षक का पावन कर्तव्य

वर्तमान समय में विद्यार्थियों के संदर्भ में एक शिक्षक की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। उसके अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे आज–कल विद्यार्थी बहुत ही सजग, कुशल, अद्यतन

होने के साथ–साथ बहुत अस्थिर और अविश्वासी भी होते जा रहे हैं। इसके कारण चाहे जो कुछ भी हो परंतु एक शिक्षक को आज के ऐसे ही विद्यार्थियों को उचित प्रशिक्षण, सदुपयोगी शिक्षण और सटीक कल्याणकारी, दूरगामी मार्गदर्शन प्रदान करते हुए उन्हें भावी देश के कर्णधार, जिम्मेदार देशभक्त नागरिकों में परिणित करना है। एक शिक्षक की जिम्मेदारी बहुत अधिक होती है।

आदर्श शिक्षक का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक बात और कि जिस प्रकार शिक्षा एक अंतहीन प्रक्रिया है। उसी प्रकार शिक्षण भी अंतहीन प्रक्रिया है। क्योंकि कोई भी इंसान जैसे पूरी जिंदगी सीखता रहता है, सिखाता भी रहता है। विश्व स्तरीय शिक्षा के महत्व पर बढ़ती जागरूकता के साथ, कई भारतीय माता–पिता अब अपने बच्चों के लिए आईबी बोर्ड का विकल्प चुन रहे हैं। हालाँकि, भारतीय शिक्षा के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक प्रणाली की स्थिरता अभी भी संदिग्ध है। भारत में लोग पारंपरिक स्कूली शिक्षा प्रणाली के इतने आदी हैं कि शिक्षा प्रणाली पर किसी भी पश्चिमी प्रभाव का खुले दिल से स्वागत नहीं किया जाता है। इसलिए, सवाल उठता है कि क्या अंतर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कभी सीबीएसई और आईसीएसई जैसे स्थापित बोर्डों के समानांतर आएगा।

यदि हम सीखने की गुणवत्ता के मामले में भारतीय बोर्डों (सीबीएसई और आईसीएसई) की तुलना आईबी जैसे अंतरराष्ट्रीय बोर्डों से करते हैं, तो आईबी स्कूल संभवतः छात्रों के समग्र विकास पर जोर देने के साथ अधिक उन्नत पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्कूल कार्यक्रम भारत में नए हैं और ऐसे कार्यक्रमों को भारतीय स्कूल शिक्षा प्रणाली में अपनी सुरक्षित जगह बनाने में कई साल लगेंगे। आईबी स्कूल संख्या में कम हैं और ये स्कूल अधिकांश भारतीय परिवारों के लिए किफायती नहीं हैं। चूँकि पैसा शिक्षा विकल्पों का एक प्रमुख निर्धारक है, अधिकांश लोग अंतर्राष्ट्रीय बोर्डों के बजाय सीबीएसई, आईसीएसई या अन्य राज्य बोर्ड के स्कूलों को चुनते हैं।

अध्यापक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु विशिष्टतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी

कमला (सहायक आचार्य)
संबल कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
नवलगढ़ रोड़, शिवसिंह पुरा, सीकर (राज.)

सार

शिक्षण सामग्री वे सामग्रियां हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपने शिक्षण को सरल बनाने के लिए करते हैं। इनमें दृश्य और श्रव्य–दृश्य दोनों सहायता शामिल हैं और ये ठोस या गैर–ठोस हो सकते हैं। ये अनुदेशात्मक सामग्रियां छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करके सीखने में जान डालती हैं। सहायक सामग्री पुनर्बलन और प्रतिपुष्टि प्रदान कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अपने उद्देश्यों में सफल बनाते हैं। विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री (रेडियो, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि) के प्रयोग से बालकों को नए–नए शब्दों का अनुभव होता है, उनके शब्द भंडार में वृद्धि होती है। सहायक सामग्री बालकों की कल्पना–शक्ति का विकास करती है।

शिक्षा एक ऐसा गुण है जो जीवन भर व्यक्ति के साथ रहता है। शिक्षित जनता थिंक टैंक, विकास चालक और साथ ही किसी भी राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में योगदानकर्ता होती है। 2020 तक शिक्षा का मतलब था कि एक छात्र कितनी सामग्री सीख सकता है और उसे परीक्षा में दोबारा पेश कर सकता है। यह प्रणाली नवीन विचारों, रचनात्मकता, आलोचनात्मक विश्लेषण आदि के विरुद्ध थी।

कॉलेज में दाखिले के लिए उच्च कट–ऑफ अंक और बोर्ड परीक्षाओं में छात्रों का स्कोर लगभग परफेक्ट होना शिक्षा प्रणाली में गंभीर खामियों को दर्शाता है। जैसा कि सोनम वांगचुक ने कहा, "95% अंक वाले छात्रों को असफल होने का एहसास क्यों कराया जाता है"।

हालाँकि, शिक्षा में गुणवत्ता का न केवल आर्थिक विकास यानी सकल घरेलू उत्पाद या जीवन स्तर, गरीबी में कमी, बल्कि सामाजिक विकास यानी भेदभाव में कमी, जाति चेतना में कमी, लिंग अंतर और लिंग पूर्वाग्रह में कमी आदि और नैतिक मानक पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। नागरिक, नवाचार, रहने योग्यता।

गुणात्मक शिक्षा का क्या अर्थ है :–सरल शब्दों में, गुणात्मक शिक्षा का अर्थ शिक्षा का वह स्तर है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति समाज में योगदानकर्ता बन सकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वे परिणाम प्रदान करती है जो व्यक्तियों, समुदायों और समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में न केवल साक्षरता और संख्यात्मकता बल्कि व्यापक जीवन कौशल भी शामिल होना चाहिए जो उन्हें नेता और परिवर्तन–निर्माता बनने के लिए सशक्त बनाए ।

एसोसिएशन फॉर सुपरविजन एंड करिकुलम डेवलपमेंट के अनुसार, "एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वह है जो लिंग, जाति, जातीयता, सामाजिक आर्थिक स्थिति या भौगोलिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक छात्र के संपूर्ण बच्चे यानी सामाजिक, भावनात्मक, मानसिक, शारीरिक और संज्ञानात्मक विकास पर ध्यान केंद्रित करती है।" जगह। यह बच्चे को जीवन के लिए तैयार करता है, न कि केवल परीक्षण (परीक्षा) के लिए।"

शिक्षा को गुणात्मक बनाने के लिए, उसे न केवल "छात्रों को पढ़ाने" पर बल्कि "क्या पढ़ाया जा रहा है (पाठ्यक्रम) और "कैसे पढ़ाया जा रहा है" (शिक्षाशास्त्र) पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। स्कूली शिक्षा हमेशा सीखने की ओर नहीं ले जाती। दुनिया भर में, स्कूल के बाहर की तुलना में स्कूल में गैर–सीखने वालों की संख्या अधिक है।

इस प्रकार गुणात्मक शिक्षा "सीखने के परिणामों" या सीखने के परिणामों, जीवन कौशल सीखने, अमूर्त अवधारणाओं को सरल तरीके से समझाने की क्षमता (फेनमैन तकनीक) पर केंद्रित है। इसके लिए याद रखने और रटने से लेकर वास्तविक जीवन में समझने, विश्लेषण और अनुप्रयोग की ओर बदलाव की आवश्यकता है – इसमें अनुभव के माध्यम से सीखना शामिल है।

पहले शिक्षा का ध्यान, विशेष रूप से भारत में, मुख्य रूप से "प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच", "सीखने की अवधारण" और "प्राथमिक शिक्षा की प्रतिस्पर्धा" पर था। इस प्रकार, शैक्षिक परिणामों के बजाय, बड़ी संख्या में बच्चों द्वारा बुनियादी शिक्षा तक पहुंच और छात्र एक विशेष कक्षा में कितना ज्ञान रट सकते हैं, इस पर ध्यान केंद्रित किया गया था। पहले सोच यह थी कि सामग्री याद रखने से बच्चे शिक्षित होंगे। सामग्री की मात्रा को कम से कम भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मानक माना जाता था।

एसडीजी इस बात की मान्यता है कि शिक्षा का यह विचार अपर्याप्त और पुराना है। शिक्षा केवल परीक्षा में सामग्री वितरण प्रणाली नहीं है। इसे सभी बच्चों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुंचने और पूर्ण और उत्पादक नागरिकों के रूप में समाज में प्रवेश करने में मदद करने वाली एक प्रणाली के रूप में देखा जाना चाहिए।

गुणात्मक शिक्षा के प्रमुख तत्व –

सुरक्षित और सहायक शिक्षण वातावरण : –सार्थक शिक्षण के लिए, वातावरण ऐसी शिक्षा के लिए अनुकूल होना चाहिए। यहां पर्यावरण का अर्थ भौतिक वातावरण, प्रारंभिक बचपन का अनुभव और माता–पिता, शिक्षकों, सरकारों आदि से समर्थन है। प्रारंभिक बचपन के दौरान स्वस्थ विकास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह एक स्वस्थ जीवन और सफल औपचारिक स्कूल अनुभव की नींव बनाता है। व्यवहार संबंधी समस्याओं वाले बच्चों को आमतौर पर बचपन के दौरान "वंचित या बेकार परिवारों" का अनुभव होता है।

प्रारंभिक जीवन में एक बच्चे के विकास की गुणवत्ता उसके पूरे जीवन में विकास क्षमता और मुकाबला कौशल को प्रभावित करती है।

सुरक्षित और समावेशी शिक्षण वातावरण के बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं हो सकती। लड़कियों और हाशिए पर रहने वाले वर्ग यानी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए सुरक्षित वातावरण को जाति, जातीयता, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव का सामना नहीं करना चाहिए, साथ ही बेहतर सीखने के परिणामों के लिए भी आवश्यक है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षक :–ज्ञान प्रदान करने के लिए शिक्षक पाठ्यक्रम के साथ–साथ गुणात्मक शिक्षा का आधार हैं। छात्रों को सीखने में मदद करने के लिए शिक्षकों के लिए पेशेवर शिक्षा होनी चाहिए। शिक्षकों को अपने विषय के साथ–साथ शिक्षाशास्त्र पर भी महारत हासिल होनी चाहिए। एक शिक्षक की योग्यता महत्वपूर्ण है क्योंकि बुनियादी कौशल से परे छात्रों की उपलब्धि काफी हद तक विषय पर शिक्षक की पकड़ पर निर्भर करती है, उदाहरण के लिए। माध्यमिक शिक्षा संस्थानों और उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षक, अधिक जानकारी के लिए

आधारभूत संरचना :–इसमें सुरक्षित भौतिक संरचनाएं (जैसे शौचालय, कक्षाएँ), ऐसे वातावरण की स्थापना शामिल है जो सीखने की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है, कर्मचारियों को एक छात्र की आवाज़ को प्रोत्साहित करती है, और सामाजिक और भावनात्मक विकास को बढ़ावा देती है। इसमें स्कूलों की उपलब्धता और शिक्षा तक पहुँचने की प्रक्रिया कितनी सुरक्षित है, यह भी शामिल है। स्कूलों के माध्यम से . यदि लड़कियों को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में शारीरिक और यौन उत्पीड़न का अनुभव होता है तो भारत की तरह स्कूलों की यात्रा असुरक्षित है। सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण वातावरण के लिए बुनियादी ढांचे की उपलब्धता महत्वपूर्ण है।

पाठ्यक्रम :–किसी बच्चे का पाठ्यक्रम से परिचित होना उसकी उपलब्धियों और स्कूल में बच्चे के बने रहने की संभावनाओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। भारत और अफ़्रीका जैसे देशों में स्कूल छोड़ने की उच्च दर बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

गुणवत्तापूर्ण सामग्री :– यूनिसेफ के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे विषय की गहरी समझ हो सके। इसे प्रासंगिक अध्ययन यानी वास्तविक दुनिया के संदर्भ में सैद्धांतिक ज्ञान को लागू करके समस्याओं को समझने और हल करने में सक्षम होना चाहिए। प्रासंगिक शिक्षण का अर्थ है सीखने के दौरान सिखाई जाने वाली सैद्धांतिक संरचनाओं को व्यावहारिक, वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ना।

प्रिन्ट–सामग्री – पाठ्यपुस्तकें,पम्पलेट,हैंडा–आउट,अध्ययन–मार्गदर्शिकाएँ, मैनुअल
श्रव्य सामग्री– यूएसबी ड्राइव, कैसेट, माइक्रोफोन,
दृश्य सामग्री– चार्ट, वास्तविक वस्तुएँ, फोटोग्राफ, ट्रान्सपैरेन्सी
श्रव्य–दृष्य सामग्री– स्लाइड, टेप, फिल्में, टेलीविजन, मल्टिमिडिया, यू–ट्यूब
इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ– संगणक, ग्राफ दर्शाने वाले कैलकुलेटर, टैबलेट, स्मार्ट फोन

गुणात्मक शिक्षा का महत्व :–"शिक्षा को लोगों को अधिक न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और सहिष्णु समाज बनाने में मदद करने में पूरी तरह से अपनी केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए।" (बान की मून, संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव)

1. सतत विकास लक्ष्यों का लक्ष्य–4 "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" पर केंद्रित है। एसडीजी–4 के अनुसार, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सतत विकास की नींव है, और इसलिए सतत विकास लक्ष्यों की नींव है। 2030 तक शिक्षा के वैश्विक लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रत्येक बच्चे को समावेशी, गुणवत्तापूर्ण पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने और उसे पूरा करने में सक्षम होना चाहिए।
2. शिक्षा पीढ़ियों से चली आ रही गरीबी और भुखमरी को कम करती है और विशेष रूप से माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य परिणामों में सुधार करती है। इस प्रकार यह राष्ट्रों के सामाजिक–आर्थिक संकेतकों के लिए महत्वपूर्ण है।
3. शिक्षा राष्ट्रों के आर्थिक स्वास्थ्य में सुधार करती है, नागरिक भागीदारी बढ़ाती है और संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान की संभावना बढ़ाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को यूं ही नहीं छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि यह वह आधार है जिस पर देश अपनी आबादी के समग्र स्वास्थ्य, कल्याण और आर्थिक जीवन शक्ति में सुधार के लिए भरोसा करते हैं।
4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा यह भी सुनिश्चित करती है कि मनुष्य प्रकृति के साथ सद्भाव में रहें और प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग करें। दुनिया भर के लोगों को एक स्थायी भविष्य के निर्माण के लिए ज्ञान और कौशल विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए।
5. प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, अपर्याप्त शिक्षण सामग्री, अस्थायी कक्षाएं और खराब स्वच्छता सुविधाएं कई बच्चों के लिए सीखना कठिन बना देती हैं। यूनिसेफ इसे "सीखने का संकट" के रूप में वर्णित करता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव बच्चों और किशोरों को जीवन, कार्य और सक्रिय नागरिकता के लिए तैयार करने में सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती है।
6. यूनिसेफ के अनुसार खराब गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच बिल्कुल भी शिक्षा न होने के बराबर है। गुणवत्ता न केवल कक्षाओं में क्या होता है, बल्कि कक्षाओं के बाहर क्या होता है, उससे भी प्रभावित होती है।

गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारतीय मानक :–भारत में गुणात्मक शिक्षा को विशेष रूप से परिभाषित नहीं किया गया है, बल्कि इसे विभिन्न संकेतकों या गुणों से समझा जाता है जो एक व्यक्ति या बच्चे के जीवन के एक निश्चित चरण में होने चाहिए। जैसे आलोचनात्मक विश्लेषण करने की क्षमता, योग्यता, रोजगार योग्यता, किसी कार्य को करने में दक्षता आदि।

प्राथमिक स्तर :–प्राथमिक स्तर पर, गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) को गुणात्मक शिक्षा के रूप में समझा जाता है। यूनेस्को के अनुसार ईसीसीई केवल प्राथमिक विद्यालय शिक्षा की तैयारी से कहीं अधिक है। यह आजीवन सीखने और कल्याण के लिए एक ठोस आधार बनाने के लिए बच्चे की सामाजिक, भावनात्मक, संज्ञानात्मक और शारीरिक आवश्यकताओं का समग्र विकास है।

प्राथमिक स्तर पर सीखने के परिणाम :–एक बच्चे के सीखने के परिणामों की निगरानी के लिए, कक्षा 3 , 5 और 8 के छात्रों का राष्ट्रीय मूल्यांकन सर्वेक्षण (एनएएस) आयोजित किया गया । इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य इस बात की समग्र तस्वीर प्राप्त करना था कि विशिष्ट कक्षा के छात्र क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं और इन निष्कर्षों का उपयोग कमियों की पहचान करने, उन क्षेत्रों का निदान करने के लिए करना था जिनमें सुधार की आवश्यकता है। इस डेटा के माध्यम से डेटा एनालिटिक्स ने छात्रों के सीखने में सुधार के लिए नीतियां और हस्तक्षेप तैयार करने में मदद की।

2017 में एनसीईआरटी ने प्रारंभिक चरण में सीखने के परिणाम शीर्षक से दस्तावेज़ जारी किया। इसने पहली बार स्कूलों के लिए सीखने के परिणामों पर एक बेंचमार्क प्रदान किया। यह विस्तार से प्रदान करता है कि कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों को अंग्रेजी, गणित, पर्यावरण अध्ययन और विज्ञान में समस्या–समाधान क्षमताओं को प्राप्त करने सहित क्या समझने और करने में सक्षम होना चाहिए। कई विशेषज्ञों ने इसका स्वागत किया है क्योंकि इसने पहली बार स्कूलों द्वारा सीखने के परिणामों के रूप में प्राप्त किए जाने वाले संस्थागत लक्ष्य बनाए हैं जो आमतौर पर छात्रों के पास होने चाहिए।

स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक :–नीति आयोग ने स्कूली शिक्षा में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (UT) के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए SEQI विकसित किया है। नीति आयोग के लिए यह सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद को आगे बढ़ाने का एक तरीका है। यह सूचकांक भारत में स्कूली शिक्षा परिदृश्य की विविधता और जटिलता को दर्शाता है। यह राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को डेटा–संचालित निर्णय

लेने के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है, जिसमें गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हस्तक्षेपों का बेहतर लक्ष्यीकरण भी शामिल है।

SEQI का लक्ष्य सीखने के स्तर, पहुंच, समानता और बुनियादी ढांचे और शासन प्रक्रिया में सुधार करके "शिक्षा परिणामों" में सुधार करना है।

सीखने के परिणाम को इस रूप में दिखाया जाता है कि बच्चे कक्षा 3, कक्षा 5 और कक्षा 8 में भाषा और गणित में कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 4 के अनुसार, यदि किसी बच्चे को सीधे प्रवेश दिया जाता है एक कक्षा में जो उसकी उम्र के लिए उपयुक्त है, तो उस बच्चे को दूसरों के बराबर होने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। इसके अलावा धारा 4 में कहा गया है कि प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश पाने वाला बच्चा चौदह वर्ष के बाद भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक मुफ्त शिक्षा का हकदार होगा । पहुंच परिणाम को नामांकन अनुपात का विश्लेषण करके मापा जाता है यानी कितने नए छात्र स्कूल में शामिल होते हैं और संक्रमण दर से यानी कितने छात्र प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक जाते हैं। इस संबंध में। निःशुल्क और अनिवार्य बच्चों की शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत मॉडल नियमों की धारा 4 ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह स्कूलों तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए राज्य पर कर्तव्य थोपती है।

नियम 4(1) के अनुसार, राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह कक्षा 1 से 5 वीं (प्राथमिक विद्यालय) के बच्चों के लिए पड़ोस के 1 किमी की पैदल दूरी के भीतर एक स्कूल स्थापित करे और 3 की दूरी के भीतर भी एक स्कूल स्थापित करे। कक्षा 6 वीं से 8 वीं तक के लिए पड़ोस का किमी .

इसके अलावा नियम 4(7) के तहत विकलांग बच्चों के लिए जो उन्हें स्कूल तक पहुंचने से रोकते हैं, राज्य सरकार/स्थानीय प्राधिकरण को उनके लिए स्कूल जाने और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए उचित और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करनी चाहिए। नियम 5(1) के अनुसार विकलांग बच्चों को निःशुल्क विशेष शिक्षण एवं सहायता सामग्री उपलब्ध करायी जायेगी।

इक्विटी परिणाम सामान्य श्रेणी के छात्रों की तुलना में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के प्रदर्शन (सीखने के परिणाम) को मापता है। इससे यह पता चलता है कि सीखने की प्राप्ति और परिणाम के बीच कितनी असमानता है। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के छात्रों और लड़कों और लड़कियों के बीच सीखने के परिणामों में अंतर को भी मापता है।

गुणात्मक शिक्षा के लिए सूचकांक महत्वपूर्ण है क्योंकि बचपन के प्रारंभिक वर्ष (विश्व स्तर पर 0–8 वर्ष) मानव जीवन चक्र में संज्ञानात्मक, मोटर, सामाजिक और भावनात्मक विकास का सबसे महत्वपूर्ण चरण है।ैम्फप् 2019 के अनुसार, प्रारंभिक बचपन में सबसे महान और सबसे शक्तिशाली तुल्यकारक होने की क्षमता है।

भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बाधाएँ और एनईपी–2020 से सुधारों का सुझाव दिया गया :–

ब्रिटिश भारत में शिक्षा प्रणाली अभिजात्यवादी थी, हालाँकि साक्षरता दर 16% थी, जिसमें महिला साक्षरता दर मात्र 8.9% थी। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद ध्यान स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों के नामांकन को सुनिश्चित करने, शैक्षणिक संस्थानों के विस्तार, समानता यानी जाति, धर्म, क्षेत्र, रीति–रिवाजों आदि के कारण शिक्षा प्रणाली से बहिष्कृत लोगों को शामिल करने पर था। यह 6 दशकों तक चला। वर्तमान शिक्षा प्रणाली यंत्रवत है, जो बच्चों को ऐंठने वाली मशीन समझती है। यह रचनात्मक सोच, मूल्यों, व्यवहार आदि को दबाता था, यह रटने और परीक्षाओं के लिए सीखने (रिटेंशन) पर अधिक ध्यान केंद्रित करता था।

राष्ट्रीय शैक्षिक नीति 2020 (एनईपी 2020) ने भारत में शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदल दिया है। यह पहले के एनईपी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर विचारों से एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है।

शुरुआत में, एनईपी 2020 के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मतलब न केवल "बुनियादी संख्यात्मकता और साक्षरता कौशल" प्राप्त करना है, बल्कि भारत की समृद्ध और विविध, प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों, नैतिकता, सहानुभूति, सम्मान जैसे संवैधानिक मूल्यों को समझना भी है। अन्य, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के प्रति सम्मान, वैज्ञानिक स्वभाव, स्वतंत्रता, बहुलवाद, समानता और न्याय। यह शिक्षण और सीखने में

बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति को भी पहचानता है। एनईपी 2020 का लक्ष्य नव सुधारित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से नागरिकों में इन गुणों को विकसित करना है।

शिक्षकों की अनुपस्थिति :–सरकारी स्कूल में शिक्षकों की अनुपस्थिति, विशेषकर ग्रामीण और अर्ध–शहरी स्कूलों में। "शिक्षक अनुपस्थिति" का अर्थ है जब शिक्षक के पास अपनी अनुपस्थिति का कोई वैध कारण नहीं होता है। यह "शिक्षक अनुपस्थिति" से भिन्न है, जो शिक्षक या शिक्षक के अधिकृत अवकाश पर न होने या शिक्षक द्वारा अन्य विभागीय कार्य करने के कारण हो सकता है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की रिपोर्ट के अनुसार, आमतौर पर शिक्षकों की अनुपस्थिति 2–5% की सीमा में होती है, जबकि कुल शिक्षक अनुपस्थिति 20% की सीमा में होती है। वास्तव में कक्षाओं में पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं होने के कारण, छात्र शायद ही कभी स्कूल आने के लिए प्रेरित होते हैं, घर पर रहना और पारिवारिक व्यवसायों में मदद करना पसंद करते हैं ।

एनईपी–2020 शिक्षक–से–छात्र अनुपात 30:1 का प्रावधान करता है यानी प्रत्येक 30 छात्रों के लिए 1 शिक्षक और जिन स्कूलों में बड़ी संख्या में छात्र सामाजिक और शैक्षणिक रूप से वंचित वर्ग से हैं, वहां शिक्षक–से–छात्र अनुपात 25 होगा। :1.

समाधान :– इससे निपटने के लिए, राज्य सरकारों ने सरकारी स्कूलों से शिक्षकों की अनुपस्थिति को रोकने के लिए बायोमेट्रिक मशीनें लगाने को कहा।

ख़राब सीखने के परिणाम :–एएसईआर 2018 के अनुसार , कक्षा 5 के सभी छात्रों में से केवल आधे (50.3%) ही कक्षा 2 का पाठ पढ़ सकते हैं। इसके अलावा, 14–18 आयु वर्ग में, केवल 43% ही सरल विभाजन सही ढंग से करने में सक्षम थे, जबकि 14 में से 47% वर्षों पुराना सरल अंग्रेजी वाक्य नहीं पढ़ सका। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहले शिक्षा नीतियों और योजनाओं का ध्यान मुख्य रूप से केवल स्कूलों तक पहुंच पर था और प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पर ज्यादा नहीं था। भले ही प्राथमिक शिक्षा का चक्र पूरा हो जाए लेकिन यदि शिक्षा पाठ्यक्रम खराब गुणवत्ता का है तो मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल खराब होंगे। मात्रा–गुणवत्ता के व्यापार–परिणामों को "सीखने के संकट" के रूप में परिभाषित किया गया है, जहां प्राथमिक विद्यालय में छात्रों के एक बड़े हिस्से ने मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल प्राप्त नहीं किया है। इससे धरातल पर शिक्षा की गुणवत्ता का पता चलता है।

समाधान :– भारत का जनसांख्यिकीय लाभांश छात्रों की कमाई के स्तर पर निर्भर करता है, इसका सीधा असर अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। एएसईआर रिपोर्ट के अनुसार, विषय या सामग्री सीखने के बजाय संज्ञानात्मक कौशल पर ध्यान केंद्रित करके इसे हल किया जा सकता है। यह स्मृति निर्माण करने वाली खेल–आधारित गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करने का सुझाव देता है। तर्क और समस्या–समाधान की क्षमताएं केवल सामग्री ज्ञान की तुलना में अधिक उत्पादक हैं।

एनईपी–2020 का लक्ष्य 5+3+3+4 के नए पाठ्यक्रम के माध्यम से इससे निपटना है। इस नए ढांचे के तहत 3–6 साल की उम्र के बच्चे अब "बुनियादी चरण" के रूप में औपचारिक स्कूली शिक्षा प्रणाली का हिस्सा हैं। इसका लक्ष्य एक छात्र के कक्षा 3 तक पहुंचने तक सभी छात्रों द्वारा मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है। 2020 की नीति "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा" (ईसीसीई) पर जोर देती है। स्वस्थ मस्तिष्क के विकास के लिए प्रारंभिक वर्षों में उचित मस्तिष्क उत्तेजना आवश्यक है। अच्छा ईसीसीई छोटे बच्चों को जीवन भर शिक्षा में आगे बढ़ने में सक्षम बनाता है। एनईपी 2020 के अनुसार "ईसीसीई तक सार्वभौमिक पहुंच की कमी के कारण, बच्चों का बड़ा हिस्सा ग्रेड 1 के पहले कुछ हफ्तों के भीतर ही पिछड़ गया। एनईपी–2020 का लक्ष्य 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है।" यह पहलू इतना महत्वपूर्ण है कि यह कहता है कि बाकी नीति छात्रों के लिए तभी प्रासंगिक होगी जब यह सबसे बुनियादी आवश्यकता यानी पढ़ना, लिखना और अंकगणित कौशल का मूलभूत स्तर हासिल किया जाएगा। इसने एक प्रशिक्षित शिक्षक की देखरेख में छात्रों के लिए एक स्वैच्छिक और आनंददायक गतिविधि के रूप में एक–पर–एक सहकर्मी को पढ़ाने का भी प्रावधान किया। इससे उन बच्चों पर ध्यान दिया जा सकेगा जिन्हें इसकी आवश्यकता है।

छोड़ने वालों की दर :–डॉ. शशि थरूर का कहना है कि पहले जब बच्चे स्कूल से बाहर थे तो यह माता–पिता की गलती थी, लेकिन अगर अब वे स्कूल से बाहर हैं, तो यह सिस्टम की गलती है, सरकारी स्कूलों में, खासकर ग्रामीण इलाकों में कई बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि वे कक्षा में क्या पढ़ाया जा रहा है यह समझने में असमर्थ होना। सामग्री (पाठ्यचर्या) की गुणवत्ता और शिक्षण के तरीके

(शिक्षाशास्त्र) की कमी इस पहलू के लिए महत्वपूर्ण है। आगे शिक्षक शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एनईपी–2020 में कहा गया है कि ग्रेड 6–8 के लिए सकल नामांकन अनुपात 90.9% था, जबकि ग्रेड 9–10 और 11–12 के लिए यह क्रमशः 79.3% और 56.5% था, जो दर्शाता है कि नामांकित छात्रों का एक महत्वपूर्ण अनुपात ग्रेड के बाद पढ़ाई छोड़ देता है। 5 और विशेषकर ग्रेड 8 के बाद।

इसके अलावा काउंसिल फॉर सोशल डेवलपमेंट की एक रिपोर्ट के अनुसार, नई दिल्ली 71वें एनएसएसओ के आधार पर 6–14 आयु वर्ग के 4.5 करोड़ से अधिक बच्चे स्कूल से बाहर थे। यह एक गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत भी, जो मुफ्त अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है, ड्रॉप–आउट दर अधिक है। इसका कारण यह है कि स्कूल छोड़ने वाले अधिकांश छात्र कम आय वाले परिवारों, भूमिहीन या सीमांत परिवारों से होते हैं, जिससे परिवारों को अस्तित्व और शिक्षा की दुविधा का सामना करना पड़ता है। लड़कों के स्कूल छोड़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण परिवार की कमाई को पूरा करना था और लड़कियों के लिए घरेलू काम में भाग लेने की मजबूरी थी। हालाँकि, इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत नियमों का खराब कार्यान्वयन था। इसमें 1 किमी के भीतर प्राथमिक विद्यालय और 3 किमी के भीतर उच्च प्राथमिक विद्यालय की उपलब्धता का प्रावधान है। यदि इन्हें लागू किया गया तो ड्रॉप–आउट का एक कारण अर्थात्

समाधान :– जब तक आवश्यक शिक्षक और बुनियादी ढांचे वाले स्कूलों की निर्धारित संख्या उपलब्ध नहीं हो जाती, तब तक स्कूल तक यात्रा के लिए रियायती साधन उपलब्ध कराना आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम में संशोधन करके गरीब परिवारों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए वित्तीय सहायता शामिल की गई है। शिक्षा प्रदान करने में गुणवत्ता सुनिश्चित करना छात्रों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है ताकि वे (विशेष रूप से, अन्य सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों की लड़कियां और छात्र) स्कूल जाने में रुचि न खोएं।

एनईपी–2020 में परिकल्पित खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा पर आगे ध्यान केंद्रित करने से छात्रों को अमूर्त अवधारणाओं को समझने में मदद मिलेगी। अनुभव और सीख के माध्यम से शिक्षा देना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि रटना स्पष्ट रूप से विफल हो गया है। शिक्षा ज्ञात से अज्ञात की ओर होनी चाहिए। ड्रॉप–आउट दरों को रोकने के लिए प्रारंभिक और मध्य विद्यालय में पढ़ने, लिखने, बोलने, अंकगणित और गणितीय सोच के अलावा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता पर सुधारित पाठ्यक्रम और बढ़ते फोकस की आवश्यकता है।

एक पुराना पाठ्यक्रम जो याद रखने पर केंद्रित है :–अब तक शिक्षा नीतियों का फोकस छात्रों को अधिक सामग्री सीखाना था ताकि वे परीक्षाओं में बेहतर स्कोर कर सकें। शिक्षा एक "अनुष्ठान" नहीं होनी चाहिए जिसके सामने एक पाठ्यपुस्तक हो और उसकी विषय–वस्तु को दोहरा दिया जाए। यह हाल सिर्फ स्कूली शिक्षा का ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा का भी है। पुराने पाठ अभी भी बच्चों और कॉलेज के छात्रों द्वारा उपयोग किए जा रहे हैं, जिनमें ज्ञान के व्यावहारिक और वास्तविक दुनिया के पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। बचपन के प्रारंभिक स्तर पर, रटने की यह पद्धति हानिकारक है और सीखने को अरुचिकर बना देती है। पाठ्यक्रम प्रासंगिक शिक्षा पर आधारित होना चाहिए, जब छात्र किताबों में सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ सकते हैं, तो वे इसे बनाए रखने में सक्षम होंगे और अवधारणा को पूरी तरह से आत्मसात करने में मदद करेंगे।

समाधान :– सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों पर जोर देने के साथ, सभी छात्रों के लिए सीखने को सुनिश्चित करने के लिए, एनईपी–2020 स्कूली शिक्षा के दायरे को व्यापक बनाने के लिए सीखने के कई रास्ते प्रदान करता है जिसमें औपचारिक यानी कक्षा के भीतर और शिक्षा के गैर–औपचारिक दोनों तरीके शामिल हैं। बच्चों को बाहरी यात्राएँ करना, घटनाओं को देखकर सीखना या दिन–प्रतिदिन की सरल प्रक्रिया में सिद्धांत का अनुप्रयोग पसंद है। भारत में उन युवाओं की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) और राज्य मुक्त विद्यालयों द्वारा प्रस्तावित मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) कार्यक्रमों का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया जाएगा, जो शारीरिक स्कूल में भाग लेने में सक्षम नहीं हैं।

एनसीईआरटी को 8 वर्ष तक के बच्चों के लिए "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढांचा (एनसीपीएफईसीसीई)" विकसित करने का भी दायित्व सौंपा गया है। मूलभूत स्तर (3–8 वर्ष) पर प्रारंभिक शिक्षा का विकास "खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा" पर आधारित होगा।

स्कूली शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा, एनसीएफएसई 2020–21, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों के आधार पर एनसीईआरटी द्वारा तैयार किया जाएगा। यह नया पाठ्यक्रम भारतीय जनता के लिए गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करेगा।

आगे नीति गणितीय कौशल और सोच विकसित करने के महत्व को पहचानती है, इस प्रकार, गणित और कम्प्यूटेशनल सोच में पूरे स्कूल के वर्षों में सुधार किया जाएगा, मूलभूत स्तर से शुरू करके और पहेलियों और खेलों के नियमित उपयोग जैसे नवीन तरीकों के माध्यम से जो गणितीय सोच को और अधिक मनोरंजक बनाते हैं, कोडिंग से जुड़ी गतिविधियाँ मध्य चरण में शुरू की जाएंगी।

आईसीटी के आगे उपयोग से स्कूल और उच्च शिक्षा संस्थान में भी सीखने के स्तर में सुधार होगा। आईसीटी सीखने को सहज और रोचक बनाने में मदद करता है। जब सीखना उबाऊ या समझने में मुश्किल नहीं होगा तो ड्रॉप–आउट दरें भी कम हो जाएंगी। इससे गुणात्मक सामग्री की कमी के कारण शहरी और ग्रामीण छात्रों के बीच शिक्षा का विभाजन भी कम हो जाएगा। हालाँकि, आईसीटी उपकरण केवल कंप्यूटर लैब उपलब्ध कराने से कहीं अधिक हैं। आज इसका मतलब चौथी औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करना है जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट–ऑफ–थिंग्स, बिग–डेटा एनालिटिक्स के उपकरण शामिल हैं। स्कूलों में आईसीटी उपकरणों के शुरुआती प्रदर्शन से बच्चों को साइबर–धमकाने और साइबर–अपराधों का शिकार नहीं बनने में भी मदद मिलेगी।

शिक्षक की शिक्षा :–एक शिक्षक में निवेश करना भविष्य में निवेश करना है। न्यायमूर्ति वर्मा आयोग के अनुसार , 2012 की टूटी हुई शिक्षक शिक्षा प्रणाली 370 मिलियन से अधिक शिक्षकों को खतरे में डाल रही है। इसमें कहा गया है कि 85% से अधिक शिक्षक केंद्रीय–शिक्षक पात्रता परीक्षा (सी–टीईटी) में असफल हो जाते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षक गुणात्मक शिक्षा प्रणाली के केंद्र में हैं। शिक्षक शिक्षा, भर्ती, सेवा शर्तों और शिक्षकों के सशक्तिकरण की गुणवत्ता वह नहीं है जहाँ होनी चाहिए, और इस प्रकार शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रेरणा वांछित मानकों तक नहीं पहुँच पाती है।

समाधान :– ईसीसीई के लिए, 2020 नीति ईसीसीई की सामग्री और शिक्षाशास्त्र में विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों और श्रमिकों की भर्ती का प्रावधान करती है। ईसीसीई के लिए यह विशेष ईसीसीई प्रशिक्षकों की भूमिका पर जोर देता है। एनसीईआरटी को उच्च गुणवत्ता वाले ईसीसीई शिक्षकों के प्रारंभिक कैडर के लिए एक प्रणाली विकसित करने का आदेश दिया गया है और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को भी ईसीसीई में प्रशिक्षित किया जाएगा। यह "प्रारंभिक साक्षरता और संख्यात्मक कौशल" विकसित करने में सक्षम होगा। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री दीक्षा– ज्ञान साझा करने के लिए डिजिटल बुनियादी ढांचे पर उपलब्ध कराई जाएगी।

बुनियादी स्तर से आगे के सभी पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र को फिर से डिजाइन किया जाएगा और यह भारत की संस्कृति, परंपराओं, विरासत, दर्शन, भूगोल, वैज्ञानिक आवश्यकताओं सहित भारतीय और स्थानीय संदर्भ पर आधारित होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा प्रासंगिक, प्रासंगिक, दिलचस्प और हमारे छात्रों के लिए प्रभावी।

नई नीति में शिक्षक शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार 4–वर्षीय बीएड पाठ्यक्रम की शुरूआत है। सामग्री और शिक्षाशास्त्र दोनों के संदर्भ में बेहतर परीक्षण सामग्री तैयार करने के लिए शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) में सुधार किया जाएगा। टीईटी को स्कूली शिक्षा के सभी चरणों (बुनियादी, प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक) के शिक्षकों को शामिल करने के लिए भी बढ़ाया जाएगा।

शिक्षकों को स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं के साथ–साथ ऑनलाइन शिक्षक विकास मॉड्यूल के माध्यम से अपने पेशेवर क्षेत्र में नवीनतम नवाचारों और प्रगति को सीखने के लिए आत्म–सुधार के अवसर दिए जाएंगे। इस प्रकार नीति सतत व्यावसायिक विकास पर केंद्रित है।

शिक्षा कानून के शासन को कैसे मजबूत कर सकती है?

कानून के शासन और कानून की संस्कृति को बढ़ावा देने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। कानून का शासन समाज के सभी पहलुओं, सार्वजनिक और निजी, दोनों के लिए मौलिक है, जो व्यक्तियों के एक–दूसरे के साथ और समाज के सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक संस्थानों के साथ बातचीत करने के तरीके को आकार देता है – विश्वास और पारस्परिक जवाबदेही के रिश्ते बनाता है। यही कारण है कि कानून के शासन और कानून की संस्कृति (सीओएल) को बढ़ावा देने वाली शिक्षा इतनी महत्वपूर्ण है।

सार्वजनिक हित के रूप में, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालियों की कानून के शासन के सिद्धांतों को बनाए रखने और आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी है; जिसमें कानून की सर्वोच्चता, कानून के समक्ष समानता, कानून के प्रति जवाबदेही, कानून के अनुप्रयोग में निष्पक्षता, शक्तियों का पृथक्करण, निर्णय लेने में भागीदारी, कानूनी निश्चितता, मनमानी से बचाव और प्रक्रियात्मक और कानूनी पारदर्शिता शामिल है।

शिक्षा भविष्य की पीढ़ियों को राज्य संस्थानों को जवाबदेह बनाने के लिए तैयार कर सकती है और शिक्षार्थियों को ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस कर सकती है जो न्याय और मानवाधिकारों का समर्थन करने वाले नैतिक रूप से जिम्मेदार निर्णय लेने के लिए आवश्यक हैं। चूंकि लोकतंत्र के जीवित रहने के लिए कानून का शासन महत्वपूर्ण है, इस सिद्धांत पर जनता को शिक्षित करने से लोकतंत्र को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

कानून के शासन को बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों द्वारा एसडीजी 16 के तहत लक्ष्यों में से एक के रूप में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है "स्थायी विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समाजों को बढ़ावा देना, सभी के लिए न्याय तक पहुंच प्रदान करना और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेह और समावेशी संस्थानों का निर्माण करना।" "। आगे लक्ष्य 16.3 स्पष्ट रूप से कहता है 'राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानून के शासन को बढ़ावा देना और सभी के लिए न्याय तक समान पहुंच सुनिश्चित करना।

शिक्षा उन व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों को सक्षम बनाती है जो कानून के शासन को बढ़ावा देने और बनाए रखने के लिए आवश्यक है :–

1. प्रमुख ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार के विकास और अधिग्रहण को सुनिश्चित करना।
2. शिक्षार्थियों को अपने दैनिक जीवन में कानून के शासन के सिद्धांतों को महत्व देने और लागू करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. शिक्षार्थियों को उनके लिए आवश्यक उचित ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस करना।
4. समाज में इसके निरंतर सुधार और पुनर्जनन में अधिक व्यापक रूप से योगदान देना।

निष्कर्ष :–शिक्षा एक मानवाधिकार और सार्वजनिक भलाई है जो दुनिया के स्वास्थ्य और भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को प्रत्येक बच्चे का बुनियादी अधिकार माना जाना चाहिए (एनईपी–2020)। एनईपी–2020 ने यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न दिशानिर्देश और भविष्य की संभावनाएं निर्धारित की हैं कि "विज़न 2030" में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके और भारत 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को पूरा कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत में शिक्षा : छात्र असफल हो रहे हैं या व्यवस्था? सोनम वांगचुक
- मस्तिष्क विकास, बाल विकास – वयस्क स्वास्थ्य और कल्याण और बाल चिकित्सा, जे फ्रेजर मस्टर्ड, कैनेडियन इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड रिसर्च, टोरंटो, ओंटारियो
- 2030 सतत विकास लक्ष्य और सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का लक्ष्यः एजुकेशन इंटरनेशनल और एएससीडी से समर्थन का एक बयान
- शिक्षा में गुणवत्ता को परिभाषित करना, यूनिसेफ, शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कार्य समूह फ्लोरेंस, इटली जून 2000
- लड़कियों के दृष्टिकोण से, सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, यूनिसेफ, अप्रैल 2002
- शिक्षक अनुपस्थिति अध्ययनः शिक्षा में क्षेत्रीय अध्ययन मार्च 2017, अज़ीन प्रेमजी विश्वविद्यालय।
- एक सुशिक्षित दिमाग बनाम एक सुगठित दिमागः 2013 में डॉ. शशि थरूर
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020

INDIAN CONCEPT OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY AND USEFULNESS OF TEACHER EDUCATION

DR. EKTA PAREEK
Principal
Biyani Girls B.Ed. College, jaipur

ABSTRACT
This paper explores Indian educational psychology's role in creating a conductive learning environment for teachers and emphasizes the utility of teacher education in enhancing their skills. Authors in the paper would focus on psychology of education and its Indian perspective and in other side we will focus on the importance of teaching learning process for achieving the skills and knowledge by the teacher. Educational psychology is the applied knowledge gained from psychology uses in the classrooms. With the help of educational psychology teacher is able to create positive learning environment in the classrooms resulting in effective learning. The teacher education is the process where the teacher polish his qualities and become a diamond.

KEY WORDS- Concept of education psychology, Indian perspective, usefulness of teacher education.

INTRODUCTION

Basically the main meaning of "psychology is the science of behaviour and experience; the science of the adjustments of organisms to their environment." Psychology is defined as a science which aims to give better understanding and control of the behaviour of the organism as a whole." Education can be defined as an "act or process of imparting or acquiring general knowledge, developing the powers of reasoning and judgement, and generally of preparing oneself or other intellectually for mature life." Educational psychology is the applied branch of psychology and is the combination of education and psychology.
Where in the other hands Teacher Education refers to the policies and procedures designed to equip prospective teachers with the knowledge, attitude, behaviour and skills they require to perform their tasks effectively in the classroom, schools and wider community. The educational psychology is correlated with teacher's education because every teacher must learn the educational psychology for become a good teacher who understands his students mind.

CONCEPT OF EDUCATION PSYCHOLOGY IN INDIA

Edward Lee Thorndike is the father of educational psychology. Educational psychology is the study of the behaviour of a student including his memory, conceptual process, and ability to retain knowledge. In 1900 he published an article titled 'The Journal of Educational Psychology' .There are four main psychology stances on human development and learning that inform education: information processing, behaviourism, constructivism/ cognitivist, and humanism. The followings are included in the scope of Educational Psychology: Human Behaviour: It studies human behaviour in educational situations. Psychology is the study of behaviour and education deals with the modification of behaviour and hence, educational psychology runs through in whole field of education.
There are some functions of education psychology -
1. Consultation- Educational Psychologists help a lot of people like parents, teachers, and others by giving advice and talking with them. They work together with different groups, like social workers and health workers, to help everyone understand and support students better in school.

2. Assessment- In India, teacher assess students not only within the confines of the school but also beyond, allowing them to understand the psychological challenges the students may face. Assessment is helpful for the teacher to identify the strengths and weaknesses of the learners, assisting in addressing challenges the learner faces during the learning process.
3. Intervention-In education, effective help often comes from working together and sharing skills. This help can be for one student, a group, a whole class, or even at a bigger level like for a school. Educational psychologists do this. They help learners with complex needs to do well in their school.
4. Training- Educational psychologists have valuable knowledge about how kids learn and behave. They can train various groups and schools to connect research and psychology with real-world teaching. Training must meet learner's needs and to evaluate to ensure it helps learners or children effectively.
5. Research and Strategic Development- Educational psychologists play a vital role in education through research. They help gather evidence to improve education, guide policies, and test new ideas. By assessing and promoting better practices, they aid schools in finding effective ways to enhance learning.

Educational psychology is the study of how humans learn and retain knowledge, primarily in processes. For education there are some pillars on which it stands in India .These five pillars are:
1. Biological pillar- In this pillar, we generally consider the study of neuroscience, consciousness, and sensation.
2. Cognition pillar- In the cognition pillar, we discuss the memory, perception, and intelligence of the learners.
3. Developmental and Learning pillar-In the development and learning pillar, we discuss the life span development, learning styles and languages of the learners.
4. Social and Personality pillar- In this pillar, we learned about the psychology of learners, focusing on social aspects, personality, multiculturalism, gender, motivation and emotions.
5. Mental and Physical Health pillar- In this pillar, we learned about the psychology of learners, with a focus on disorders, health and therapies related to the learners.

BIOLOGICAL PILLAR COGNITION PILLAR DEVELOPMENT AND SOCIAL AND MENTAL AND

LEARNING PILLAR PERSONALITY PHYSICAL

PILLAR

health pillar



1. Biological bases Of behavior	1. Cognition	1. Life span development	1. Social	1. Disorders
2. Sensation	2. Perception	2. Learning	2. Multiculturalism	2. Therapiesand gender
3. Consciousness and	3. Intelligence Emotion	3. Language	3. Motivation	3.Health

An example of the biological approach to psychology would be the fear response. The fear response gives way to fight, flight, or freeze behaviours. Which course of action an individual takes in the presence of a stressor relies on their biological make-up. And some biological explanation of behaviour are here -Physiological-relates a behaviours to the activity of the brain and other organs. Ontogenetic- describes the development of a structure or behaviour. Evolutionary- reconstructs evolutionary history of a behaviours or structure. Functional- describes why a structure or behaviour evolved as it did. The "biological factors" that create an impact on the biological behaviour of the human being are self-preservation, reproduction, and survival. Self-preservation: self-preservation is the biological process of sustaining in critical conditions. And there are three types of biological behaviour -

1. Innate Behaviour is the ability of an animal to respond spontaneously to a situation or a stimulus.
2. Learned Behaviour is animal behaviour attained through training and correction from the errors of past experiences.
3. Habituation is learning behaviour through repeated exposure to a stimulus.

Educational psychology is a field that applies theories and research from psychology to education. It provides valuable insights into how learners acquire knowledge and skills and how educators can create effective learning environments.
In India where the literacy rate is 74.04 % here teachers should know the psychology of students for motivate them and give them a comfortable environment to study.

METHODOLOGY

There are five things learner, teacher, content, method/process and environment. These five components could contribute to and/or hinder learner's motivation. Educators could watch themselves and their own behaviour to become self-aware of new understandings about motivation.
The teacher education has many things like types of teaching methods include differentiated instruction, lecture-based instruction, technology-based learning, group learning, individual learning, inquiry-based learning, kinaesthetic learning, game-based learning and expeditionary learning.
Learning methodologies are systems of practices and procedures that educators, mentors, teachers, and Learning Guides use to support and enrich the learning journeys of learners. Our learning methodologies guide the learning process and the people who help learners reach goals.
In essence, the three teaching styles boil down to this:

1. Direct — Tell students what to do.
2. Discuss — Ask questions and listen.
3. Delegate — Empower students.

Perhaps the most simple way of describing 'learning styles' is to say that they are different methods of learning or understanding new information, the way a person takes in, understand, expresses and remembers information. There are 4 predominant learning styles: Visual, Auditory, Read/Write, and Kinaesthetic.

USEFULNESS OF TEACHER EDUCATION

Teachers' responsibilities have evolved significantly. Initially, they followed a set curriculum and instructions on teaching methods. However, their role has expanded beyond traditional teaching. Nowadays, teacher provide more than just lessons. They offers counselling and mentoring to students, guiding them on applying knowledge effectively in their lives. This

transformation highlights the vital shift in educators' roles, emphasizing holistic support for students' growth and development.

NEED FOR TEACHER EDUCATION

Developing skills- As mentioned earlier, teacher education helps to develop teachers' skills such as communication and management. To build a strong classroom community it is important to have strong communication skills. It helps to enhance knowledge about the students and parents. And obviously when a teacher will be confident and motivated he can also motivate other students and make an environment the teacher education help teacher to feel confident.

Understanding learning process- Teacher education enables understanding the process of learning and guiding teachers for effective initiation of the learning process.

Motivation and memorization- Educational psychology offers valuable insights for teachers, guiding them on effective strategies to motivate students and facilitate efficient memorization techniques in the learning process. Memorization techniques aid teacher education by enabling innovative delivery of information, promoting effective and effective learning for students and learners to grasp the content thoroughly.

Guidance and channeling abilities-Teacher education plays a pivotal role by channeling students' abilities and ensuring they are directed towards the right path for growth and success.

Student personality development- Teacher education actively contributes to moulding student personalities, aligning with the core objective of education to nurture well-rounded individuals with strong character and values, fostering a brighter future.

Understanding learner's nature and potential-Teacher education enlightens educators on the inherent nature and potential of learners, aiding in a comprehensive understanding to tailor teaching approaches and facilitates optimal development in students.

Adaptation of teaching methodologies- Teacher education guides educators in adjusting teaching methodologies, ensuring they align with the unique needs and preferences of learners, optimizing the learning experience for enhanced comprehension and engagement.

Addressing Individual differences-Teacher education helps in understanding and addressing the differences between students. It ensures that each student's unique learning style and needs are recognized and catered to appropriately for effective education.

Solving learning problems-Teacher education aids educators in tackling student learning challenges. It equips them to effectively address and resolve any difficulties students might face during their learning journey, ensuring a smooth educational experiences.

Evaluation of learning- Teacher education offers guidance in assessing the effectiveness of teaching and learning objectives. It helps teachers determine if their methods have successfully met the intended goals, promoting a continuous improvement cycle for enhanced educational outcomes.

CONCLUSION

The conclusion of this topic (Indian concept of educational psychology and usefulness of teacher education) is education psychology is what students wanna learn things and what's there needs to be relaxed with teachers and teachers must know about the psychology of students this is education of psychology and the teachers education is the process where every teacher make himself a teacher and become confident and acquire an attitude and style of teaching students by which students feel comfortable with teachers.

Teachers must learn the psychology of education and this is what they learn in teacher's education.

In the end I just wanna say some words -"a teacher, student, pen and paper can't do anything when they are alone but when they come together they can win any war.

REFERENCES

Dennis Michael mclnerney. Vol.25, NO.6, December (2005).Educational psychology-Theory, research, and teaching: A25-year retrospective. 25(6): 585-599. University of Western Sydney Australia.

Mohd. Shakir, sonal Sharma. June 2017.Using educational psychology for better teaching-learning environment. International journal of education.

Anita Woolfolk hoy, June 2010. Educational psychology in teacher education. Page 257-270. https://www.researchgate.net/publication/355773885_Perspectives_on_Educational_Psychology

BASIS OF INDIAN EDUCATION-INDIAN WAY OF LIFE

Dr. Manish Saini
Associated professor
Biyani Girls B.Ed. College, Jaipur

Introduction

The India education system is Quiet old education system. Nalanda was the first university Of India. Which was founded over 1000 years ago, while it is the one of the oldest education system. India has produced many genius mind that are making India proud all over the world. There are many or thousands of schools in India among which many Schools are best in the world.

HISTORY OF INDIAN EDUCATION SYSTEM

As we told that Indian education system is the oldest education system which comes from the time of ramayana and Mahabharata.

The history of Indian education system is the also called the gurukula system. Where the guru's are now known as teacher and shishya who are called student now. In gurukula where the guru's and shishya leave together under one roof till the completion of their education. In gurukula Sanskrit the holy Scriptures and the mathematics to
metaphysics and all subject where thought by guru's .

Lord Thomas babington Macaulay Brought the modern education system in our country in 1830. In which subject like philosophy,
metaphysics were given a back seat and subject like science and mathematics were given much importance to modernised the strength of education system.

Education in India is primarily managed by the state run public education system, which falls under the command of the government at three levels central, state and local. Under various articles of the Indian constitution and the rights of children to free and compulsory Education Act 2009. Free and compulsory education is provided as Fundamental rights to children aged 6to 14.The approximate ratio of

the total number of public schools to private schools in India. The new education policy 2020 there has been drastic change in education. The new national education policy(NEP)The division of stages have been made to confirm to the mental development that a youngsters experience typically. The literacy ratio of india for adult he's 69.3% by 2030 India higher education system expected to have more than 20 universities among the global top 200 universities.

1. Problem of Indian education system

1. Inadequate infrastructure:

One of the major challenge's faced by Indian education system is Inadequate infrastructure most of the school in rural areas have lack of basic facilities as per survey conducted by the ministry of human resource Development(MHRD)In 2016 found that 30% of school in India do not have separate toilet for girls.

2. Shortage of trained teachers: Many school in rural areas do not have enough qualified teachers to teach subject in specific streams which affects the education of student .In a survey conducted by the national sample survey office(NSSO)it was found that around 43% of student in rural india and 34% of student in urban india cannot read and write simple sentence in their language.

3. Gender inequality: According to united nation children fund(UNICF)Poverty and local cultural practice place a big role in gender inequality in education (such as dowry and early marriage.)

4. Mass illiteracy: In spite of constitutional Directives and effort aimed enhancing education around 25% of India still remains illiterate.

5. High dropout rate: The dropout rate is very high in primary and secondary levels most of the student in 6to 14age group leave the school before completing their education. According to national family health survey 21.4% of girls and 35.7% of boys age between 6 to 17 years for dropping out of school before 2019 to 2020 school year.

How can we improve the education system in India.

1. Increase government spending on education: The government needs to increase spending on education to ensure that all children have access to quality education. This will involve increasing the budget allocation for education and ensuring that the funds are used effectively to improve the quality of education.

2. Teacher training and salaries : To address the shortage of qualified teacher the government needs to provide better trainings and support for teachers. Additionally teachers salary should be increased to motivate for better outcomes from their side which helps students for better education.

3. Skills with training to promote gender equality: It is necessary to improve the skill of teacher through training to promote the gender equality. Ensure any educational materials used to show gender in equal measures and helps students identify instance of gender BIAS,

through awareness activities or historical events law and cultural changes.

4. literacy rate: It is necessary in India required a combination of governance initiatives, private sector involvement, community engagement, and Society mindset changes. It is long term process but with consistent effort are made to reduce illiteracy rate.

5. High dropout: To reduce the high dropout rate the teachers should connect with the parents and motivate the parent and explain the various positive thoughts about the education. The school should identify the student who are at the risk of dropping out. The school should provide innovative technique method to draw student towards education. Digital learning strategies can use to provide education in Confined of their homes student can assess free educational content through smartphone applications. Which leads the students and motivate them for further education.

2. Conclusion: Education plays an important role In every individual. Education is the backbone of the society. The Indian education system has a rich history influenced by both ancient educationals tradition and today's education. India produce number of brilliant mind and successful scholars and professionals. The government and other entities who are associates with the education sector need to understand the importance of education. A holistic process that must focus on the overall development of physical ,emotional, social and cognitive skill of child.

- Reference:1. Mrs. D.Shobana & Dr. Shrikant Nityanath Dr. Dilipkumar A. Ode, Dr. J.Suresh Kumar, Abhishek Sharma P., Jigeshkumar D. Chauhan, Dr. Birajlakshmi Ghosh, Dr. Ar Mahesh (EDUCATION SYSTEMS IN INDIA: Issues, Challenges and Problems).

R.N. Sharma and R.k Sharma

(History Of Education In India)

https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news- editorials/reforms-in-education-system

https://www.provide-education.co.uk/10-ways-to- promote-gender-equality-in-the-classroom/#:~:text=Avoid%20segregating%20boys%20and%20girls,and%20roles%20from%20different%20communities

https://www.turnthebus.org/blog/school-dropouts-in-india-the-cause-and
https://www.futurelearn.com/info/futurelearn-international/explore-india-education-system#:~:text=A%20brief%20history%20of%20India's,home)%20or%20in%20close%20proximity
https://www.toppr.com/guides/essays/essay-indian-education-system/

https://blog-teachmint-com.cdn.ampproject.org/v/s/blog.teachmint.com/current- education-system-in-india-an-overview/amp/?amp_gsa=1&amp_js_v=a9&usqp=mq331AQIUAKwASCAAgM%3D#amp_tf=From%20%251%24s&aoh=16967527758357&csi=1&referrer=https%3A%2F%2Fwww.google.com&ampshare=https%3A%2F%2Fblog.teachmint.com%2Fcurrent-education-system- in-india-an-overview%2F

The Barriers for Early Childhood Care And Education in the implementation of National Education Policy 2020

Dr. Kashmir Singh Khunda
Email :- Khundaks@gmail.com
Mob. :- 9915352701
Department of School Education, Punjab (Amritsar)

A lot of attention is required to pinpoint the barriers in the implementation of National Education Policy. It is imperative to focus on children's' education at Foundational level that target the kids of 3-8 years when they complete their 2nd class. NEP itself states that Cumulative brains of Six years children develop up to 85% and above. It also admits that "A sound body have a sound mind". But the facts presented by NFHS(National Family Health Survey) in their reports of 2015-2016 and 2019-2020 are very shocking and astonishing as the 7.4% children below five years are adversely affected due to malnutrition and these numbers increased to 35.5% in year 2019-20. The malnutrition sprang up to 28% within this short duration of four years which is unbelievable and a cause of great worry. Nobody could guess the plight of children suffered from malnutrition and the increase their numbers in future.

The doctor population ratio in India is 1:1456 that furthers to the worst in rural and remote areas. So these conditions of malnutrition and poor health service ratio becomes the cause unhealthy and underdeveloped children. The National Education Policy aims at attaining optimal outcomes in the domains of physical , motor ,cognitive , socio- emotional-ethical , cultural/ artistic communicative skills , literacy and numeracy at the Early Childhood Care And Education stage . The Aanganwadi Workers and Helpers are expected to perform these multiple tasks to ensure the above said aims of the policy. At present when Edu. Policy being implemented an advertisement came into light to fill the vacant posts of Workers and Helpers by Government of Punjab that states the educational qualifications for the same is +2 and Matric respectively. It further clears that the former will be paid the honorarium @ Rs.5500/- & 2750/- per month. Both the qualification for the above posts and the honorarium being paid to them are unjustifiable as they are appointed for the bigger goals... The appointees of such posts should be academically and professionally well qualified, well equipped with modern Educational technology and their salary, emoluments and perks should be justifiable. The experiences of the past show that for better outcomes the medium of instructions should be mother tongue up to 3rd class. Hindi can be introduced from 4th to 5th standard that can serve to be a tool for communication at national level. English or any other International language should be adopted after 5th Standard. . The facts are explicit that the developed Nations like China, Germany, Japan ect. Teach their native languages at elementary level and selectively other languages as a medium of instructions at higher level. China's medium of instruction at elementary and secondary level is Mandarin the main official language of China. In some regions where majority of students are ethnic minorities, instructions are given both in Mandarin and dominant local languages. So we need to prefer mother tongue and other languages step by step. At foundational level, 3 languages formula will prove be a big hurdle in holistic and harmonies development of the children. At the graduation standard mother tongue should be compulsory. Edu. Policy emphasized on richest literary languagages as sanskrit and classical languages including Tamil, Telgu , Kannada , Malayalam ,Odia in adition Pali , Persian and Prakrit.In the 8th schedule of constitution of India 22 languages are included .Punjabi language is also its part. Nowadays Punjabi is considered to be among the top ten Languages spoken in the World.. More than 150 million people speak Punjabi. Among them there are almost 107 million in Pakistan, 35 million in India and 8 million in rest of the world. It is a 5500 years old language. So it should be enlisted among the classical languages. To overcome the obstacles as discussed above arrangement of sufficient funds must be made, proper planning and road map should be chalked out without delay to attain the goals of National Education Policy 2020.

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

डॉ. प्रहलाद सोनी
रेलमगरा, राजसमंद (राज.)
E mail Id:-drplsoni5@gmail.com
Mob.9413173715

भारतीय शिक्षा प्रणाली में पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। सीखने और ज्ञान के अपने लंबे इतिहास के बावजूद, भारतीय शिक्षा प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, जिसमें शिक्षा तक असमान पहुंच, पुराना पाठ्यक्रम और धन का व्यय शामिल है। हालाँकि, इन चुनौतियों के बावजूद, भारत में शिक्षा प्रणाली ने काफी प्रगति की है। भारत वर्तमान में विश्व के अग्रणी देशों में सम्मिलित हो चुका है। यह विश्व की बड़ी आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक शक्ति बनने की ओर अग्रसर है। भारत निकट भविष्य में ही सम्पूर्ण विश्व को प्रशिक्षित मानव संसाधनों की आपूर्ति करने वाला देश होगा। कृषि, उधोग व सेवा क्षेत्र के तीव्र विकास के साथ–साथ गरीबी निवारण, रोजगार सृजन व ज्ञान आधारित समाज की संरचना एवं चरित्रवान कुशल नागरिकों के निर्माण के लिए देश में शिक्षा एवं प्रशिक्षण की दिशा में ठोस कदम उठाये जाने की आवश्यकता है जो शिक्षा जगत के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस दिशा में केन्द्र सरकार के द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लायी गयी है जो एक सराहनीय कदम है परन्तु नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति को व्यावहारिक पटल पर सार्थक बनाना भी एक चुनौती है। शिक्षा का परिमाणात्मक विकास विगत वर्षों में तेजी से हुआ है परन्तु गुणात्मक विकास में ह्रास हुआ है, जो चिन्तनीय है। आज भी शिक्षा पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव है। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का उद्देश्य मात्र बाबूओं का निर्माण करना था। फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ती गयी और आज शिक्षित बेरोजगारों की फौज खड़ी हो गयी है।आवश्यकता है, शिक्षा की गुणवत्ता के विकास की, जो एक बहुत बड़ी चुनौती है परन्तु, गुणवत्ता में सुधार कीसंभावनाओं का अभाव नहीं है। शिक्षा मानवीय मूल्यों, तकनीकी ज्ञान एवं अद्यमिता के विकास में सार्थक पहलकर सकता है जिसकी अपार संभावनाएँ हैं।

शिक्षक शिक्षा की निम्नलिखित चुनौतियाँ हैं :––

भारत में उच्च शिक्षा का विकास अनियोजित रहा है। परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर शिक्षास्तर में गिरावट आयी है, वहीं छात्रों में ज्ञानोर्जन एवं चरित्र निर्माण की अभिलाषा नष्ट हुई है। शिक्षित व्यक्तियों के समक्ष बेरोजगारी की विकट समस्या उत्पन्न हो गयी है। हमारी उच्च शिक्षा ज्ञानोन्मुखी एवं नैतिकता उन्मुखी नहीं हैं। मात्र डिग्री उन्मुखी है। इसका स्वरूप शिक्षक केन्द्रित व परीक्षोन्मुखी है जो सिर्फ डिग्री बॉटता है। इसके समक्ष कई चुनौतियाँ है जिसमें प्रमुख निम्नलिखित है :–

- भारत में शिक्षा प्रणाली के सामने मुख्य चुनौतियों में से एक शिक्षा तक असमान पहुँच है। देश की तीव्र आर्थिक वृद्धि और बढ़ती समृद्धि के बावजूद, कई ग्रामीण और वंचित समुदायों में अभी भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच का अभाव है। यह असमानता इन क्षेत्रों में कम साक्षरता दर के साथ–साथ इन समुदायों के छात्रों की उच्च स्कूल छोड़ने की दर में परिलक्षित होती है।
- भारत में शिक्षा प्रणाली के सामने एक चुनौती पुराना पाठ्यक्रम है। कई मामलों में, स्कूलों और कॉलेजों में उपयोग किए जाने वाले पाठ्यक्रम प्रौद्योगिकी और समाज में नवीनतम विकास के अनुरूप नहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप छात्र आधुनिक कार्यस्थल की मांगों के लिए तैयार नहीं हो सकते हैं और उनके भविष्य के कैरियर की संभावनाएं सीमित हो सकती हैं।
- उच्च शिक्षा के क्षेत्र में योग्य शिक्षकों की कमी एक बहुत बड़ी चुनौती है। UGC के अनुसार, कुल स्वीकृत शिक्षण पदों में से 35% प्रोफेसर के पद 46% एसोसिएट प्रोफेसर के पद और 26% सहायक प्रोफेसर के पद रिक्त हैं।

- ❖ उच्च शिक्षा में गुणवत्ता एक बहुत बड़ी चुनौती है। उच्च 200 विश्व रैंकिंग में भारतीय शिक्षण संस्थानों को स्थान नहीं मिल पाता है।
- ❖ शिक्षा में सुधार हेतु बनीराष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को व्यावहारिक पटल पर लाना एक बहुत बड़ी चुनौती है।
- ❖ उच्च शिक्षा में नामांकन का एक बड़ा हिस्सा राज्य विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों से आता है, जबकि इन राज्य विश्वविद्यालयों को अपेक्षाकृत बहुत कम अनुदान प्राप्त होता है।
- ❖ तकनीकी शिक्षण संस्थाओं का अभाव हमारे सामने एक चुनौती है, क्योंकि कोरिया में 95% , चीन में 80%, जर्मनी में 80%, अस्ट्रेलिया में 70%, ब्रिटेन में 60% युवक तकनीकी शिक्षा से लैस है, जबकि भारत में तकनीकी शिक्षा पाने वाले युवाओं का प्रतिशत मात्र 2.2 है।
- ❖ भारत में निजी संस्थानों और विश्वविद्यालयों का कोई मानक स्तर नहीं है।
- ❖ अधिकांश महाविद्यालयों में पर्याप्त बुनियादी ढ़ाचा मिल सकता है, इसलिए भारतीय उच्च शिक्षा में सुधार प्रक्रिया को अंतराष्ट्रीय दृष्टिकोण के मद्देनजर विश्वस्तरीय मापदंडों के अनुकूल बनाने व परखने की आवश्यकता है जो भारतीय उच्च शिक्षा के समक्ष एक बड़ी चुनौती है।
- ❖ अध्यापक शिक्षा मे प्रवेश की समस्या एक विकट रूप मे शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेश के लिये जो छात्र आते है, वे शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से हीन होते है एवं उन्हें रोजगार नही मिल पाता है। इससे शिक्षा का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेश संबंधी नियम कड़े किये जायें तथा बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि के द्वारा चयन कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।
- ❖ अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यंत संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रशिक्षण की अवधि मे सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों, दृष्टिकोणों, कल्यना शक्ति, सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी कोई ध्यान नही रहता है। पाठयोजना की घिसी–पिटी परिपाटी अपनाई जाती है एवं उसके अक्षरतसः पालन करने की अपेक्षा की जाती है। प्रशिक्षण में अर्जित ज्ञान अध्यापकगण वास्तविक परिस्थितियों मे प्रयोग नही लाते हैं। इससे प्रशिक्षण की उपयोगिता ही संदिग्ध हो जाती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है।
- ❖ हमारे शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यता, रूचि व अभिवृति तथा अनुभव की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसके फलस्वरूप अध्यापक शिक्षा संबंधी कार्यों को सुचारू रूप से संपन्न नही किया जाता है एवं सिर्फ उनकी खाना–पूर्ति ही की जाती है।
- ❖ अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भारत मे किये गये अनुसंधान कार्यों की विशाल श्रृंखला है। लेकिन अच्छे अनुसंधान कार्य का अभाव सा प्रतीत होता है। भारतवर्ष मे अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी अपनी शैशवावस्था मे प्रतीत होता है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेश को ध्यान मे रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे मौलिक अनुसंधान किये जायें ताकि सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।
- ❖ प्रशिक्षण मे केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्राध्यापक अपने विचारों, मूल्यों आदि पर ध्यान नही देते। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इसी कारण वह अपनी छोटी–छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ

रहते है। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

- ❖ प्रशिक्षण की अवधि मे सिद्धांत को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ शिक्षा विभागों व प्रशिक्षण संस्थाओं मे तो शिक्षणाभ्यास औपचारिक क्रिया मात्र समझा जाता है। अतः शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की पूर्णरूप से अवहेलना की जाती है।
- ❖ शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों मे आज भी छात्राध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नही किया जाता है। छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते है तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हें डराते रहते है। यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है।
- ❖ पृथकता की समस्या अध्यापक शिक्षा मे तीन रूपों मे व्याप्त है। प्रथम विश्वविद्यालय एवं कॉलेज के अन्य विभागों में पृथकता, दूसरे शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों से अलगाव, तीसरा प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों मे परस्पर सहयोग का अभाव पाया जाता है। इससे एक विभाग के अध्यापक दूसरे स्तर के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने लगते है। यह अध्यापक शिक्षा हेतु बहुत अहितकर है। कोठारी आयोग ने इस समस्या को हल करने हेतु जोरदार सिफारिश की है।
- ❖ शिक्षा विभागों के शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता मे कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। साथ ही साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता है। वे अत्यंत परम्परागत एवं रूढिबद्ध हैं। अतः व्यावसायिक शिक्षण को सजीव बनाना जरूरी है।
- ❖ शिक्षा विभाग की मान्यता का आधार विभाग से सम्बद्ध प्रदर्शनात्मक विद्यालय की सुविधा होनी चाहिए। जिन विभागों के पास अपना शिक्षण विद्यालय नही है उन्हें मान्यता ही न दी जाये क्योंकि दिन–प्रतिदिन के शैक्षिक प्रयोगों तथा अध्यापन के कार्यों मे कठिनाई होगी।
- ❖ शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रायः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। वह परम्परागत है। भाषण निरर्थक होते है। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रूप में बैठे रहते है। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नही होता। अच्छा अध्यापक विचारों से पूर्ण होना चाहिए। उसे आवश्यकतानुसार गतिशील अध्यापन विधियों का उपयोग करना चाहिए।
- ❖ अध्यापक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषयनिष्ठ है तथा ज्ञान की सही परीक्षा नही करती। छात्राध्यापकों का मूल्यांकन पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। उसमें सिफारिश अथवा द्वेष आदि का कोई स्थान न हो। निष्पक्ष भाव से प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाये। सम्पूर्ण मूल्यांकन के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालना चाहिए।
- ❖ अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे अच्छी पाठ्य–पुस्तकों का अभाव है। बाजार प्रश्नोत्तर, सस्ते नोट्स, गाइड से भरा पड़ा है। वे प्रायः निम्न स्तर के अध्यापकों द्वारा लिखी जाती है। अच्छे अनुभवी अध्यापक इसमें रूचि नही लेते। कुछ पुस्तकें क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों द्वारा भी लिखी जाती है। इससे शिक्षा–स्तर में बहुत गिरावट आ गई है। विश्वविद्यालय तथा अध्यापकों को इस कार्य में छात्राध्यापकों का मार्गदर्शन करना चाहिए। सस्ते नोट्स व प्रश्नोत्तर पुस्तकों पर रोक लगाई जाये। छात्रो को मौलिक शिक्षा ग्रंथ पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- ❖ पाठ्यक्रम मे निर्धारित शारिरिक शिक्षा, स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है। अतः इसमे सुधार की आवश्यकता है।
- ❖ शिक्षा विभागों मे छात्राध्यापकों को अध्यापन के विषयों का चयन सावधानी से करना चाहिए। प्रवेश के समय ही इस ओर ध्यान दिया जाये। कभी–कभी कुछ ऐसे विद्यार्थी प्रवेश पा जाते है, जिनके स्नातक स्तर के विषय विद्यालयों मे नहीं होते। विवश होकर उन्हें ऐसे विषय दिलाने

पड़ते है जिन्हें उन्होंने कभी नही पढ़ा है और न ही उनके प्रति उन्हें रूचि है। अतः विषयों के उचित चुनाव की ओर ध्यान दिया जायें।

- ❖ प्रायः अध्यापक आदर्श पाठों का आयोजन करने मे रूचि नही लेते। वे अपने को इस कार्य मे दक्ष नही पाते। वास्तव में शिक्षा विभाग के अध्यापकों को कुछ समय अनिवार्य रूप से विद्यालयों मे अध्यापन कार्य करना चाहिए। इसमें हम विद्यालय के अन्य अनुभवी अध्यापकों की सहायता ले सकते है।
- ❖ विद्यालयों में शिक्षण कार्य को सावधानी से संगठित किया जाये। प्रायः छात्राध्यापकों इसमें लापरवाही करते है। वे खानापूरी करते है। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनायें बड़ी पुरानी व परम्परागत होती हैं। कुछ पाठों को बिना पढ़ाये विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। ऐसा करना बड़ा घातक है। हम ऐसे अध्यापकों से क्या आशा कर सकते हैं? उनका दृष्टिकोण कुछ सीखने का होना चाहिए। यदि थोड़ी सी सावधानी से कार्य करें तो उनके अध्यापन कार्य में काफी सुधार हो सकता है। निरीक्षक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- ❖ विद्यालयों तथा शिक्षा विभागों में परस्पर संपर्क की भारी कमी है। उनमे कोई साम्य नही है। वे एक दूसरे की न परवाह करते और न ध्यान देते हैं। दृष्टिकोण मे भी बड़ा अंतर पाया जाता है। इससे बड़ी हानि हो रही है। शिक्षा–विभागों द्वारा अपनाई गई विधियाँ, प्रविधियाँ तथा सहायक सामग्री शिक्षा विभाग तक ही सीमित रह जाती है, वे विद्यालयों तक नही पहुंच पातीं। विद्यालयों में मुख्यतः पुरानी परम्परागत पुस्तक–पाठन विधि का ही प्रचलन है। हमारे छात्राध्यापक विद्यालयों के अध्यापकों की इस कार्य मे कोई रूचि न लेने की शिकायत करते है। राज्य के शिक्षा विभाग भी इसमें कोई रूचि नही दिखाते। अतः वे तीनों मे परस्पर सहयोग तथा संपर्क स्थापित करना जरूरी है। प्रत्येक दशा में यह पृथकता समाप्त होनी चाहिए। सब सहयोग व रूचि से मिलजुल कर कार्य करें। सिद्धांत व व्यवहार में अंतर नही रहना चाहिए।
- ❖ अध्यापन कार्य में प्रायः शिक्षा विभागों के अध्यापक अपनी रूढिवादी व परम्परागत विधि का अनुसरण करते हैं। वे नवीन विचारों अध्यापन विधियों तथा प्रविधियों से सर्वथा अभिन्न है। उन्हें स्वतंत्र अध्ययन की आदत नही है। आजकल ज्ञान का विकास तीव्र गति से हो रहा है। अध्यापक को अपना ज्ञान निरन्तर नया तथा पूर्ण रखना चाहिए। इसके लिए शैक्षिक पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। समय–समय पर आयोजित विचार–गोष्ठी, वर्कशॉप तथा शैक्षिक सम्मेलनों मे उन्हें भाग लेना चाहिए। कक्षा अध्यापन में नवीन विधियों को प्रयोग करने की क्षमता उनमें चाहिए।
- ❖ शिक्षा विभागों में वातावरण में प्रायः बनावट व कृत्रिमता पाई जाती है। हमें विभागों का वातावरण अधिक प्रकृतिक, वास्तविक तथा ठोस बनाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और छात्र व अध्यापक संबंध घनिष्ठता तथा निकटता को स्थापित करना चाहिए।
- ❖ छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते है। इसमे प्रायः लापरवाही बरती जाती है। खानापूरी अधिक रहती है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। निरीक्षण पूर्ण हो। वह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो।
- ❖ इन चुनौतियों के अलावा, भारत में शिक्षा प्रणाली को धन की कमी का भी सामना करना पड़ता है। शिक्षा के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता के बावजूद, कई स्कूलों और कॉलेजों में अभी भी अपने छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी है। इसमें कक्षाओं और पुस्तकालयों जैसी बुनियादी सुविधाओं के लिए धन, साथ ही नए पाठ्यक्रम के विकास और शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए धन शामिल है।

संभावनाएँ :–

शिक्षक शिक्षा में चुनौतियों के बावजूद, भारत में शिक्षा प्रणाली ने हाल के वर्षों में काफी प्रगति की है। कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों ने आधुनिक कार्यबल की जरूरतों को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करने के लिए अपने पाठ्यक्रमों को आधुनिक बनाया है, और सरकार ने शिक्षा के लिए अपनी फंडिंग में वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त, सभी भारतीय नागरिकों के लिए शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसी नई पहल शुरू की गई है, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या आय कुछ भी हो।

भारतीय उच्च शिक्षा का परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। सरकार द्वारा भारतीय निजी संस्थानों, उद्योगों और विदेशाी संस्थानों से भागीदारी की जा रही है। भारतीय जनसांख्यिकी और इसकी विविधता के अनुरूप शिक्षा को सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है, ताकि भारत को विकसित देश में शुमार किया जा सके। पिक्की और अर्नेस्ट एंड यंग को एक संयुक्त अध्ययन ''नए सच नयी संभावनाएँ : भारतीय उच्च शिक्षा का बदलता चेहरा'' में भारतीय उच्च शिक्षा में भविष्य की दशा और दिशा निर्धारित करने वाले कारकों के बारे में बताया है। रिपोर्ट में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रहे खर्च विधार्थियों की नयी श्रेणी, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सुविधाओं के लिए भुगतान करने के इच्छुकों की बड़ी संख्या, ग्लोबल शिक्षा की बढ़ती मांग, रोजगारोंन्मुखी शिक्षा की मांग, आदि कारकों पर चर्चा की गयी है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त संभावनाएँ है। आवश्यकता है शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने की।

निष्कर्षतः भारत में शिक्षक शिक्षा प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, हालाँकि इन चुनौतियों के बावजूद, उच्चतर शिक्षा में क्षमता और समावेश, शिक्षक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा का नवीन आकल्पन, एन.आर.एफ. (National Research Foundation) के माध्यम से सभी क्षेत्रों में गुणवत्तायुक्त अकादमिक अनुसंधान को प्रेरित करना, उच्चतर शिक्षा की नियामक प्रणाली में आमूल–चूल परिवर्तन, उच्चतर शिक्षा संस्थानों के लिए प्रभावी शासन एवं नेतृत्व सम्बन्धी विषयों पर भी सत्र 2030 को दृष्टिपथ पर रख राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कुशल क्रियान्वयन एवं रणनीति पर शिक्षा सम्बन्धी अभिकरणों को सशक्त मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 निश्चित् ही समर्थ भारत राष्ट्र के पुनःनिर्माण का योजनाबद्ध दस्तावेज़ है, जो वैश्विक पटल पर सन् 2030 के बाद की भारतीय भूमिका को यथार्थ स्वरूप प्रदान करता हुआ पथ साबित होगा।

शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयाम (शिक्षक, छात्र, अनुशासन विद्यालय आदि) एवं भारतीय सन्दर्भ



डॉ. गायत्री कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (रसायन विज्ञान)
एम. डी. गर्ल्स कॉलेज, लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

शोध सारांशः –

'तुम मुझे एक बालक दो और मैं आप जैसा चाहोगे वैसा बना दूँगा'' –वॉटसन

समाज सिर्फ और सिर्फ उत्कृष्ट शिक्षको से ही उन्नत बनता है। किसी भी देश का भविष्य उस देश के शिक्षकों के हाथ में होता है। शिक्षकों की ताकत नहीं प्रभाव पूजनीय होता है। क्योंकि शिक्षक घर समाज एवं देश को चलाने वाले चिराग पैदा करते है और ऐसे गुणवतापूर्ण शिक्षक बनने के लिए शिक्षक शिक्षा की महत्वपूर्ण आवष्यकता होती है।

शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों का शिक्षणत्कार्य अपेक्षित है। ऐसे में यदि शिक्षक शिक्षा का पाठ्यक्रम दोषपूर्ण होगा तो उससे अच्छें शिक्षक तैयार नहीं हो सकते। इस हेतु न्यास ने इस आधारभूत विषय पर काम करना आरम्भ किया। शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यावहाहारिकता, भारतीयता एवं छात्रों के समग्र विकास का समावेश करके देशभर में शिक्षक शिक्षा के विद्वान शिक्षकों की कार्यशालाओं का आयोजन हो रहा है और इससे प्राप्त सुझावों के आधार पर पाठ्यक्रम तैयार करने का कार्य हो रहा है। शिक्षक की आवष्यकता, उद्देष्य छात्रों के लिए उत्तरदायित्व निभाने की भूमिका, विद्यालय का विकास अनुशासन पर क्रियान्वयन व सामंजस्य करने का सफलता कार्य शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों एवं भारतीय सन्दर्भ में शिक्षक शिक्षानीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रस्तावना : शिक्षक शिक्षा से अभिप्राय उन सभी औपचारिक क्रियाओं से है या अनुभवो का ज्ञान प्रदान करने से है। जो किसी व्यक्ति को प्रशिक्षक के उत्तरदायित्वों को कि प्रभावशाली ढ़ग से निवार्ह करने मे सहायता करे। शिक्षक ही वह व्यक्ति होता है जो शिक्षण के अभ्यास के माध्यम से छात्रों में ज्ञान, योग्यता व गुण प्राप्त करने में मदद करता है, इसलिए एक बेहतर नागरिक का निर्माण करने के लिए एक प्रशिक्षित अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो एक बेहतर समाज व देश का निर्माण हो सके।

अध्यापक शिक्षा की आवष्यकताः–

1. अच्छे समाज का निर्माण करने के लिए।
2. बालक का मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, व्यक्तिगत, व्यवसायिक मनोवेज्ञानिक एवं तकनीकि विकास के लिए एक निपुण शिक्षण तैयार करने हेतु शिक्षक शिक्षा अति आवष्यक है।

शिक्षक शिक्षा के उद्देष्यः–

1. शिक्षक को शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक पृष्टभूति से अवगत करवाना।
2. शिक्षक को राष्ट्रीय विकास में योगदान से परिचित कराना ताकि बच्चों को देश की सेवा के लिए प्रेरित कर सके।
3. शिक्षक को अधिगम मनोविज्ञान से अवगत कराना।
4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से अवगत कराना ताकि बच्चों के मानसिक, ष्शारिरिक व बौद्धिक विकास अच्छे से हो।
5. मूल्यांकन व मापन की तकनीकी विधियों से अवगत कराना।
6. छात्र निर्देशन व परामर्श व्यवहारिक ज्ञान से अवगत कराना।
7. शिक्षक को शिक्षा की समस्यओं पर विचार करने को प्रोत्साहन देना।

8. शिक्षक को विद्यालय प्रबन्धन व प्रशासन के ज्ञान में निपुण करना।
9. सामाजिक आयाम को सर्वोच्च प्राथमिकता देना ताकि इस शिक्षा विद्यालय से निकला प्रत्येक भावी शिक्षक देश के जिम्मेदार शिक्षक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वाहन करे।

शिक्षक शिक्षा के आयामः– शिक्षक किसी के महत्वपूर्ण चार आयाम है।
(शिक्षक, छात्र अनुशासन एवं विद्यालय) शिक्षक किसी भी देश की रीढ़ होता है इसलिए इसके प्रशिक्षण की अत्यन्त आवष्यकता होती है।

''एक इंजीनियर की गलती ईंट और सीमेंट में छुप जाती है।
एक चिकित्सक की गलती कब्र में दफन हो जाती है।
एक वकील की गलती फाइल में छुप जाती है।
पर एक शिक्षक की गलती राष्ट्र के जीवन में झलकती है।

इसलिए शिक्षक शिक्षा अलग – अलग स्तर पर राष्ट्र के जीवन को ध्यान में रखते हुए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा प्रयास हो रहा है।
प्राथमिक स्तरः (NTT प्रशिक्षण) उच्च प्राथमिक स्तर पर (BSTC, BPC, Diploma in Teaching)
माध्यमिक स्तर :(B.Ed. ST) एवं उच्च शिक्षास्तर (NET, SET, Ph. D), शिक्षक शिक्षा में स्नात्कोत्तर (डण्म्कण) शिक्षकों के प्रशिक्षण प्रणालियां निर्धारित है जो अपने कार्य को सुचारू से करती है और भावी शिक्षक देश को समर्पित कर रही है।
छात्रः– शिक्षक शिक्षा में छात्र में छात्र का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रशिक्षण के समय किसी विद्यालय में प्रशिक्षण दिया जाता है और एक गुणवत्ता पूर्ण शिक्षक के गुण पैदा करने के लिए प्रयास करते है। भावी शिक्षक छात्रो से पाठ्यक्रम, पाठ्यसहगामी क्रियाओं पर चर्चा करता है तो उसमें विभिन्न कौशलों का विकास होता है।
अनुशासनः– स्कूल प्रणालियां नियम निर्धारित करती है, यदि छात्र इन नियम को तोड़ता है तो वे अनुशासन के अधिन होता है। जैसे – ये नियम की वर्दी, समय की पाबंदी, सामाजिक आचरण व कार्य नैतिकता के अपेक्षित मानको को परिभाषित करता है।
एक शिक्षक के रूप में शिक्षक की भूमिका के लिए शिक्षक को अपना अधिकार बनाए रखना, अनुशासित, स्वतंत्र होना और एक अच्छा व्यक्तित्व होना आवष्यक है ताकि वह अपने छात्रों के लिए एक उदाहरण बन सके। अनुशासन से छात्रों में विष्लेषणात्मक कौशल का विकास होता है।इससे छात्रों के चरित्र निर्माण आत्मनिर्भर बनाने में सहायता मिलती है।
विद्यालयः – शिक्षक विद्यालय संगठन का हृदय माना जाता है। विद्यालय में प्राप्त संख्या में विभिन्न विषयो व प्रवृतियों के दक्ष व सुयोग्य शिक्षकों का होना अनिवार्य आवष्यकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों की सफलता शिक्षक के व्यवहार, योग्यता एवं कार्यप्रणाली पर ही निर्भर करती है।
शिक्षक शिक्षा एवं भारतीय सन्दर्भः– भारत मे शिक्षक नीति को समय के हिसाब से निरूपित किया गया है और यह शिक्षा समितियो/आयोगों की विभिन्न रिपोर्ट मे निहित सिफारिशों पर आधारित है जिनमें महतवपूर्ण है – कोठारी आयोग (1966), चट्टोपाध्याय समिति (1985), NEP (1986/92) आचार्य राममूर्ति समिकत (1990), यशपाल समिति (1990) एवं NCF –. (2005) निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ, का देश शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ है।
राज्यसरकारो द्वारा स्कूली बच्चो की शिक्षा उपलब्धियों में सुधार में विस्तृत उद्देष्यों की दोहरी कार्यनिति है।
(।) स्कूल प्रणाली के लिए शिक्षकों को तैयार करना (सेवापूर्व प्रशिक्षण .....)–सेवा पूर्व प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षापरिषद् (NCTE) जो केन्द्र सरकार का संविधिक निकाय है, देश की शिक्षक शिक्षा के नियोजित एवं समन्वित विकास का पाठ्यक्रम निर्धारण का जिम्मेदार है। NCTE ऐसे पाठ्यक्रम शुरू करने की इच्छुक संस्थानों (सरकारी, गैरसरकारी व स्वपोषित) को मान्यता भी प्रदान करता है व उनके मानदण्ड व गुणवत्ता विनियमित करने उन पर निगरानी की निमित व्यवस्था है।
(ठ) मौजूदा स्कूल अध्यापको की क्षमता में सुधार करना (सेवाकालीन प्रशिक्षण):–सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए सरकारी स्वामित्व वाली शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं (T.T.E.) का बड़ा नेटवर्क है जो स्कूल

अध्यपकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण देता है। NCERT एवं NUEPAA दोनो राष्ट्रीय के स्तर व वरिष्ट माध्यमिक स्कूल अध्यापकों व शिक्षक एवं प्रशिक्षण संस्थानों (डी. आई. ईटी.) द्वारा प्रदान किया जाता है।
निष्कर्षः– विद्यालय एवं शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को छात्रो की विविध आवष्यक ज्ञान, कौशल से लैस करने के लिए इन आयामों को अपना रहे है।

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के भारतीयकरण में आने वाली चुनौतियां एवं संभावनाएं

डॉ. बाबूलाल सैनी
प्राचार्य
श्री आदर्श महिला बी.एड. कॉलेज
श्रीमाधोपुर (नीमकाथाना) –332715
मोबाइल– 6376273294
ई–मेल–drblsaini1976@gmail.com

सारांश–

भारत देश की शिक्षा सभ्यता बहुत ही पुरानी मानी जाती है क्योंकि जब विश्व के अन्य देश अंधकार एवं रूढ़िवादिता में डूबे हुए थे उस समय भारत अपनी सभ्यता और संस्कृति को उच्चतम शिखर पर पहुंचा चुका था। भारत ने विश्व को साहित्य, कला व ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में नया ज्ञान प्रदान किया है। सिंधु घाटी की सभ्यता ईसा से 5000 वर्ष पहले की है। यह सभ्यता उच्च कोटि की नगरीय सभ्यता थी। सिंधु घाटी सभ्यता में कला एवं लिपि के साथ नगरों का निर्माण अत्यंत ही व्यवस्थित तरीके से किया गया था। उपनिषद के ऋषियों ने आत्मा परमात्मा के संबंध में गहन विचार प्रस्तुत किया। गणित के क्षेत्र में भी भारत आगे था। आर्यभट्ट एवं भास्कराचार्य ने गणित के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शून्य एवं दशमलव का ज्ञान भी भारत ने विश्व को प्रदान किया। चिकित्सा के क्षेत्र में चरक एवं सुश्रुत ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। कला एवं संगीत के क्षेत्र में भी भारत का महत्त्वपूर्ण योगदान था। महाकवि कालिदास की रचनाओं की ख्याति सारे विश्व में है। उनका जन्म गुप्तकाल में हुआ था। चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना की थी। जो कि राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। प्राचीन भारत में संगीत एवं नृत्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। भरत नाट्यम का विकास भी भारत में ही हुआ था।

विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान करने के कारण एवं विश्व को नया मार्ग दिखाने के परिणामस्वरूप भारत को विश्वगुरु कहा जाता है। वर्तमान में भारत को अपनी शिक्षा नीति में परिवर्तन करना होगा। क्योंकि वर्तमान शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में व्याप्त दोशों को गम्भीरता से लेना होगा ताकि भावी पीढ़ी को दोश मुक्त शिक्षा से नवाजा जा सके।

आधुनिकीकरण में शिक्षक शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान

डॉ. हिमांशु गंगवार
श्रीमती मिथिलेश गंगवार
gangwarhimanshu4@gmail.com
9759006150

किसी भी देश का भविष्य उस देश के अध्यापकों के हाथ में होता है क्योंकि किसी भी देश का भविष्य उस देश के बच्चे होते हैं और इन बच्चों या विद्यार्थियों को सही आकार देने का कार्य एक शिक्षक का ही होता है। अगर यह शिक्षक सही ढंग से प्रशिक्षित होगा तभी देश के भावी भविष्य का निर्माण कर पाएगा। कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी कहा गया है कि किसी भी समाज की संस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि का पता उस समाज में अध्यापकों के स्तर से पता चलता है। अध्यापक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धुरी है। अतः अध्यापकों के निर्माण के लिए उचित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता है। आधुनिक अध्यापक शिक्षा में बहुत सारी कमियां आ गयी है उन कमियों में सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत होतीं है। अतः प्रतीत होती हुई कमियों को दूर कर अध्यापक शिक्षा को और अच्छा किया जा सकता है।

बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। किसी भी देश के बच्चों की स्थिति व विकास को देख कर उस देश के वर्तमान तथा उसके भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। ऐसा ही दृष्टिकोण रखते हुए कोठारी कमीशन ने कहा है कि देश का भविष्य कक्षा.कक्ष में आकार ले रहा है। देश के इस भविष्य को आकार देने का कार्य शिक्षक का है। यदि शिक्षक स्वयं सुशिक्षित व प्रशिक्षित है तो वह देश के भविष्य को सही आकार दे पाएगा अन्यथा वही उसे विकृत कर देगा। इस प्रकार देखें तो बच्चे देश का भविष्य है और इस भविष्य का निर्माणकर्ता शिक्षक है।

आधुनिक अध्यापक शिक्षा में बहुत सारी कमियां आ गयी है उन कमियों में सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत होतीं है। अतः प्रतीत होती हुई कमियों को दूर कर अध्यापक शिक्षा को और अच्छा किया जा सकता है।

मुख्य बिंदु . अध्यापक शिक्षा, संस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि, शैक्षिक व्यवस्था

1. **छात्राध्यापकों के प्रवेश की समस्या :**—अध्यापक शिक्षा मे प्रवेश की समस्या एक विकट रूप मे शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेश के लिये जो छात्र आते है उन्हें समय से रोजगार नही मिल पाता है। जिससे शिक्षा का स्तर दिन.प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेश संबंधी कुछ नियमों को बनाये जाने चाहिए जिसमें बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि को समिल्लित किया जाना चाहिए।

2. **अनुपयुक्त पाठ्यक्रमः**—अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यंत संकुचित है। प्रशिक्षण की अवधि मे सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रूचियों, अभिरूचियों,

   दृष्टिकोणोंए कल्यना शक्ति, सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी कोई ध्यान नही रहता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है। जिससे प्रशिक्षण काल मे प्राप्त ज्ञान का अध्यापक गण वास्तविक जीवन मे प्रयोग करें एवं अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनायें।
3. **सुयोग्य एवं अनुभवी अध्यापकों का अभावः**—हमारे शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यताए रूचि व अभिवृति तथा अनुभव की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसके फलस्वरूप अध्यापक शिक्षा संबंधी कार्यों को सुचारू रूप से संपन्न नही किया जाता है एवं सिर्फ उनकी खाना.पूर्ति ही की जाती है। अतः इस समस्या का निराकरण करना जरूरी है। शिक्षा विभाग में ज्यादातर लोग भाई भतीजा बाद के कारण रख लिए जाते है । भाई भतीजा वाद को हटा कर शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
4. **अच्छे शोध कार्य का अभावः**—अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भारत मे किये गये अनुसंधान कार्यों की विशाल श्रृंखला है। लेकिन अच्छे अनुसंधान कार्यो की कमी सी प्रतीत होती है। भारतवर्ष मे अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी नगण्य अवस्था मे प्रतीत होते है। विदेशों मे किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं का प्रिय विषय रहा है। नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में अभाव रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेश को ध्यान मे रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे मौलिक अनुसंधान किये जायें ताकि सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।
5. **मानवीय मूल्यों की अवहेलनाः**—प्रशिक्षण मे केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्राध्यापक अपने विचारों, मूल्यों आदि पर ध्यान नही देते। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इसी कारण वह अपनी छोटी.छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते है। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।
6. **स्वतंत्र वातावरण का अभावः**—शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों मे आज भी छात्राध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नही किया जाता है। छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते है तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हें डराते रहते है। यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है। छात्रों को लगता है कि अगर वे अपने गुरुओं की चापलूसी नही करेंगे तो उन्हें अच्छे नंबर नहीं मिलेंगे।

7. **पृथकता की समस्याः**—यह समस्या अध्यापक शिक्षा मे तीन रूपों मे व्याप्त है। प्रथम विश्वविद्यालय एवं कॉलेज के अन्य विभागों में पृथकताए दूसरे शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों से अलगावए तीसरा प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों मे परस्पर सहयोग का अभाव पाया जाता है। इससे एक विभाग के अध्यापक दूसरे स्तर के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने लगते है। यह अध्यापक शिक्षा हेतु बहुत अहितकर है।
8. **व्यावसायिक प्रशिक्षण मे सुधार की समस्याः**—शिक्षा विभागों के शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता मे कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। साथ ही साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता है। वे अत्यंत परम्परागत एवं रूढिबद्ध हैं। अतः व्यावसायिक शिक्षण को सजीव बनाना जरूरी है।
9. **दोषपूर्ण अध्यापन विधिः**—शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रायः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। वह परम्परागत है। भाषण निरर्थक होते है। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रूप में बैठे रहते है। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नही होता। अच्छा अध्यापक विचारों से पूर्ण होना चाहिए। उसे आवश्यकतानुसार गतिशील अध्यापन विधियों का उपयोग करना चाहिए। अतः सामूहिक वाद.विवाद, विचार.विमर्श, विचार.गोष्ठी, सम्मेलन, वर्कशॉप तथा प्रश्नोत्तर विधि आदि का समय.समय पर आयोजन आवश्यक है। उद्देश्य यही है कि अध्यापक द्वारा भाषण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर विचार.विमर्श संभव हो और छात्र उनमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें। छात्रों के मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है।
10. **दोषपूर्ण परीक्षा प्रणालीः**—अध्यापक शिक्षा की परिक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषयनिष्ठ है तथा ज्ञान की सही परिक्षा नही करती। शिक्षण में प्रारूप छात्राध्यापकों को छोटी. छोटी बातों पर धमकी दी जाती है। कहीं.कहीं अध्यापकों में बदले की भावना पाई जाती है। वास्तव मे शिक्षा विभाग आदर्श होने चाहिए। छात्राध्यापकों का मूल्यांकन पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। निष्पक्ष भाव से प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाये। सम्पूर्ण मूल्यांकन के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालना चाहिए।
11. **अनुपयुक्त पाठ्य.पुस्तकें**:— अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे अच्छी पाठ्य.पुस्तकों का अभाव है। बाजार प्रश्नोत्तर, सस्ते नोट्स, गाइड से भरा पड़ा है। वे प्रायः निम्न स्तर के अध्यापकों द्वारा लिखी जाती है। अच्छे अनुभवी अध्यापक इसमें रूचि नही लेते। कुछ पुस्तकें क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों द्वारा भी लिखी जाती है। इससे शिक्षा.स्तर में बहुत गिरावट आ गई है। विश्वविद्यालय तथा अध्यापकों को इस कार्य में छात्राध्यापकों का मार्गदर्शन करना चाहिए। सस्ते नोट्स व प्रश्नोत्तर पुस्तकों पर रोक लगाई जाये। छात्रो को मौलिक शिक्षा ग्रंथ पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उनमे स्वतंत्र अध्ययन की आदत डाली जाये। अध्यापक इसमे बहुत सहायक हो सकता है।

12. **पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभावः**—बहुत कम विभाग इस प्रकार की क्रियाओं को संगठित करने मे रूचि लेते है। अधिकतर स्थानों पर पाठ्यक्रम की खानापूरी करना ही सब कुछ है। पाठ्यक्रम मे निर्धारित शारिरिक शिक्षाए स्काउटिंग व गाइडए प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों से स्कूलों मे विभिन्न क्रियाओं को संगठित करने की क्या आशा की जा सकती है। अतः इसमे सुधार की आवश्यकता है।
13. **विषयों के चयन मे कठिनाईः**—शिक्षाविभागों मे छात्राध्यापकों को अध्यापन के विषयों का चयन सावधानी से करना चाहिए। प्रवेश के समय ही इस ओर ध्यान दिया जाये। कभी.कभी कुछ ऐसे विद्यार्थी प्रवेश पा जाते हैए जिनके स्नातक स्तर के विषय विद्यालयों मे नही होते। विवश होकर उन्हें ऐसे विषय दिलाने पड़ते है जिन्हें उन्होंने कभी नही पढ़ा है और न ही उनके प्रति उन्हें रूचि है। अतः विषयों के उचित चुनाव की ओर ध्यान दिया जायें।
14. **कक्षा शिक्षण में लापरवाहीः**—विद्यालयों में शिक्षण कार्य को सावधानी से संगठित किया जाये। प्रायः छात्राध्यापकों इसमें लापरवाही करते है। वे खानापूरी करते है। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनायें बड़ी पुरानी व परम्परागत होती हैं। कुछ पाठों को बिना पढ़ाये विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। ऐसा करना बड़ा घातक है। हम ऐसे अध्यापकों से क्या आशा कर सकते हैं। उनका दृष्टिकोण कुछ सीखने का होना चाहिए। यदि थोड़ी सी सावधानी से कार्य करें तो उनके अध्यापन कार्य में काफी सुधार हो सकता है। निरीक्षक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।
15. **उचित निरीक्षण का अभावः**—छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते है। इसमे प्रायः लापरवाही बरती जाती है। खानापूरी अधिक रहती है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। निरीक्षण पूर्ण हो। वह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। सुझाव वास्तविक तथा ठोस हों और उनके द्वारा छात्राध्यापक के अध्यापन में उन्नति संभव हो। वास्तव में अध्यापन में सुधार अच्छे निरीक्षण पर निर्भर करता है। निरीक्षकों का दृष्टिकोण स्वस्थ होना चाहिए और वे छात्रों को नवीन विधियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करें।
16. **अध्यापक शिक्षा में रूचि का अभावः**—वर्तमान में अध्यापक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र अध्यापकों में रूचि का अभाव है। अध्यापक शिक्षा में प्रवेश के लिए किसी भी आयु के महिला.पुरूष इसमें प्रवेश ले सकते हैं। इसके कारण विद्यार्थी.जीवन निकल जाने के पश्चात् भी महिला.पुरूष इस कार्यक्रम में प्रवेश ले लेते हैं। ऐसे छात्र.अध्यापकों पर अपने घर.परिवार की जिम्मेदारी होती है। विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियों के चलते वह इसमें रूचि नहीं ले पाते। इस कार्यक्रम को केवल खाना.पूर्ति ही बनाकर रख दिया जाता है। वर्तमान में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है।

17. **अध्यापक.शिक्षा कार्यक्रम शुल्क में वृद्धिः–** वर्तमान में सरकारी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सीटों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश छात्रों को निजि शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रवेश हेतू जाना पड़ता है। परन्तु निजि महाविद्यालयों में शुल्क बहुत अधिक है जो कि सामान्य व गरीब विद्यालयों के लिए देना मुश्किल हो जाता है। इस कारण योग्य होते हुए भी वह इसमें प्रवेश नहीं ले पाते हैं तथा ऐसे विद्यार्थी जिनको अध्यापन में रूचि नहीं ऐसे लोगों को प्रवेश मिल जाता है।
18. **योग्य अध्यापकों का अभावः–** वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है। जिसके कारण अध्यापक शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। 19ण् निजि महाविद्यालयों में बढ़ता भ्रष्टाचाररू. अधिकांश निजि महाविद्यालयों में योग्य व उचित मात्रा में स्टाफ नहीं रखा जाता है क्योंकि इसके लिए उन्हें अधिक वेतन देना होता है। इससे बचने के लिए वह कागजी स्टाफ रखते हैं और अध्यापन के लिए अयोग्य व कम वेतन के अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं। जिनको पूरा ज्ञान नहीं होता है। इसके अतिरिक्त कुछ निजि महाविद्यालयों में छात्र.अध्यापकों को कक्षा में न बैठने की सुविधा भी दी जाती है। इसके लिए उनसे अतिरिक्त शुल्क वसूलता है। इस शुल्क को देने के पश्चात् छात्र.अध्यापकों घर में ही बैठ कर पढ़ाई करते हैं। ऐसे छात्र.अध्यापकों के कारण अध्यापन शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है जो चिन्ता का विषय है और यह अध्यापक शिक्षा के सुधार के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है।

संदर्भ सूची

1 भटटाचार्य डा0जी0सी0, (2012) अध्यापक शिक्षाः श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2।

2 पाठक पी0डी0 (2012) भारतीय समाज में शिक्षा व शिक्षक। विनोद पुस्तक मन्दिर, नई दिल्ली।

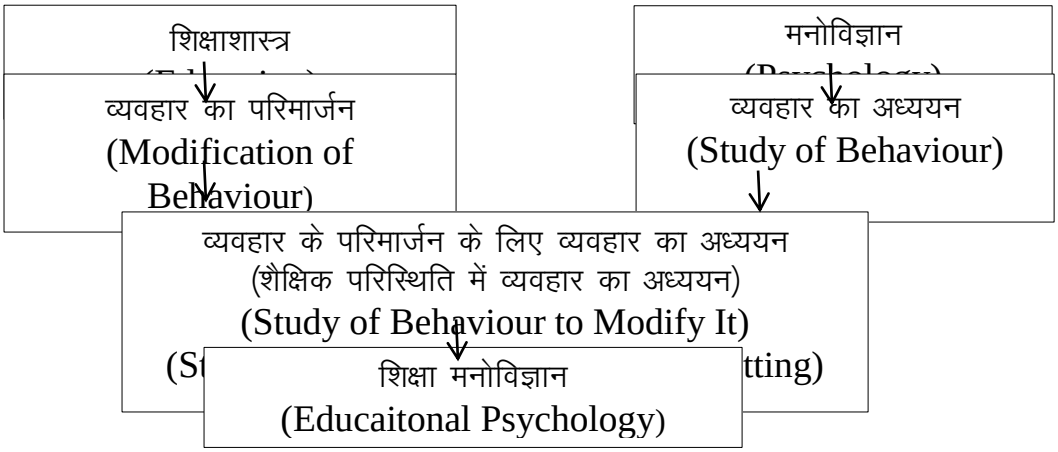
3 वालिया जे0 एस0 (2012) शिक्षा के दार्शनिक आधारए पाल पब्लिकेशन, जालंधर।

4 सिंह एन. पी. (2003) शिक्षा के दार्शनिक आधारए मेरठः आर0लाल बुक डिपो।

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा मे उपयोगिता

डॉ. करणीराम बिजारणिया
प्राचार्य
राजस्थान टी.टी. कॉलेज, बिसाऊ
फोन– 9461058833

शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के संयोग से बना है शिक्षा तथा मनोविज्ञान। अतः शिक्षा मनोविज्ञान शब्द. का शाब्दिक अर्थ निःसन्देह शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान से है। शिक्षा का सम्बन्ध मानव व्यवहार के परिमार्जन से होता है, जबकि मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार के अध्ययन से होता है। मानव व्यवहार के परिमार्जन के लिए मानव व्यवहार का अध्ययन करने की आवश्यकता स्वस्पष्ट ही है। मानव व्यवहार को उन्नत बनाने की दृष्टि से जब व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तो अध्ययन की इस शाखा को शिक्षा मनोविज्ञान के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक व तर्कसंगत ढंग से समाधान करने के लिए मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों का उपयोग करना ही शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु है।



अध्यापक के लिए मनोविज्ञान की उपयोगिता
(Utility of Psychology for the Teacher)

1. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों को शिक्षा सम्बन्धी सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को छात्रों के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा समदर्शी व्यवहार को अपनाने में सहायता करता है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को श्रेष्ठ शिक्षण विधियों की जानकारी देता है एवं उनमें पारंगतता प्रदान करता है।
4. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को बाल स्वभाव के ज्ञान तथा मानव व्यवहार की प्रकृति से परिचित कराता है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखना सिखाता है।
6. शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन बनाए रखने के मनोवैज्ञानिक तरीकों की जानकारी देता है।
7. शिक्षा मनोविज्ञान पाठ्य निर्माण एवं पाठ्य पुस्तक रचना करने में सहायता प्रदान करता है।
8. शिक्षा मनोज्ञनालकों के विकास की विभिन्न विधियों तथा आयामों की जानकारी प्रदान करता है।
9. शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करने में अध्यापक की सहायता करता है।

10. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों तथा प्रशासकों को मापन तथा मूल्यांकन की नवीन विधियों से परिचित कराता है।
11. शिक्षा मनोविज्ञान कक्षा में उपयुक्त शैक्षिक वातावरण उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है।
उपरोक्त से स्पष्ट है कि अध्यापकों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

21वीं सदी में भावी शिक्षकों से अपेक्षाएँ

डॉ, महेन्द्र सिंह
प्राचार्य
इण्डियन गर्ल्स कॉलेज ऑफ एज्युकेशन रीको
झुझुनूं (राज.) 9413892486

21वीं सदी की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य विद्यार्थियों को केवल ज्ञान देना नही बल्कि उसमें ऐसी अभिक्षमताओं को विकसित करना है, जिनके द्वारा वह आज के युग में होने वाले पूर्वानुमानित या अप्रत्याशित परिवर्तनों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना कर सकें व एक कुशल नागरिक बन अपने समाज को दिशा देने में सहायक हो सके। भारत में शिक्षा का प्रारूप एक उदाहरण प्रस्तुत करने वाला रहा है। एक समय था, जब शिक्षक, शिक्षक का ज्ञान, शिक्षक का अनुभव ही स्वयं में परिपूर्ण तथा अचूक हुआ करता था। आज के बदलते अविश्वसनीय परिवर्तनों तथा परिस्थितियों में विद्यार्थी के जीवन को सुगम व बेहतरीन बनाने के लिए 21वी सदी के 12 विभिन्न कौशलों के समायोजन की आवश्यकता है। हमें इस बात को समझना चाहिए कि हमारे विद्यार्थियों को आज ऐसी परिस्थतियों का सामना करना पड़ रहा है तथा करना होगा, जो पूर्वानुमानित नही है। जो पूर्ण रूप से अप्रत्यक्ष है, ऐसी परिस्थितियों को साधारण रूप से समझना कठिन है।

आधुनिक शिक्षक शिक्षा का लक्ष्य :–

आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य बच्चों को श्रेष्ठ निर्णायक, समस्या निवारक तथा सक्षम बनाना है। आज के विद्यार्थी को चाहिए कि वह विद्यालय से ज्ञान तो प्राप्त करे साथ ही अपने अन्दर ऐसी अभिक्षमताओं को विकसित करे जो उसे जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करनें में भी सक्षम बनाये यह जरूरी नहीं कि हर परिस्थितियों का समाधान हो परन्तु बदलते समय में विभिन्न परिस्थितियों में सही दिशा में अग्रसर रहना उससे आना चाहिए। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के साथ सामूहिक रूप से कार्य करना आना चाहिए। जैसे एक विद्यार्थी को अगर खेल का क्षेच चुनना है तो उसे एक सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी बनने के लिए एक अच्छे मनोवैज्ञानिक, प्रशिक्षक तथा अच्छी तकनीक की आवश्यकता होगी। उसे इन सब के साथ सामजस्य स्थापित करना होगा। इस प्रकार का कार्य टीम की तरह होता है।

उज्जवल भविष्य के लिए कौशल पूर्ण शिक्षा का महत्व :–

शिक्षा सिर्फ पाढ्यक्रम पूर्ण कराने पर ही आधारित नहीं होनी चाहिए। अपितु वह एक विद्यार्थी को जीवन में आने वाले विभिन्न प्रकार के उतार चढावों, चुनौतियो व कठिनाइयों पर जीत दिलाने में सक्षम बनाने वाली व जीवन कौशल को सुधारने वाली होनी चाहिए। आधुनिक युग में शिक्षक व विद्यार्थी का सम्बन्ध तेजी से बदलता जा रहा है। शिक्षक व विद्यार्थी के बीच एक मित्रता का भाव होना चाहिए। शिक्षक के प्रति विद्यार्थी के मन में किसी भी प्रकार का भय, उदासीनता व निराशा जैसे नकारात्मक भाव नही होने चाहिए। शिक्षा में लचीलापन, जीवन को कौशल युक्त बनाना, विद्यार्थी के सीखने पर केन्द्रित शिक्षा तथा भरपूर प्रौद्योगिकी का उपयोग ये सभी बिन्दु एक नए शिक्षा सिद्वान्त 4.0 को जन्म देते है।

आधुनिक शिक्षा की कार्य प्रणाली : –

आधुनिक शिक्षा कार्य प्रणाली विश्लेशणात्मक कौशल व चिन्तन पर आधारित है। अर्जित ज्ञान का अपने जीवन में सही प्रकार से रूपान्तरण व उपयोग करना ही बेहतर कैरियर व उज्जवल भविष्य की नींव है।

इस प्रक्रिया में प्रोजेक्ट बनाना, प्रयोगशालाओं में काम करना, कक्षा को कक्ष तक ही सीमित न रखकर दैनिक कार्य में आई समस्याओं को समझने के लिए मैदान में कक्षा की व्यवस्था करना तथा सीमित वातावरण मे ही विभिन्न चुनौतियों का सामना करना, अपनी भावनाओं व मन को सन्तुलित व एकाग्र करना, सभी का पूर्ण महत्व है। यह सभी सफलता पाने की आधार शैली है। इन सभी तथ्यों को

अपनाकर पाठ्यज्ञान व वास्तविक ज्ञान का अन्तर खत्म हो जाता है तथा विद्यार्थी सर्वागींण विकास के पथ पर आगे बढता है।

21वीं सदी की चुनौतियों और अवसरों से निपटने के लिए लचीले और रचनात्मक विचारकों की आवश्यकता है जो परिवर्तन की बढती गति को अपना सकें। भारत में मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था ऐसे विचारकों का निर्माण नहीं कर रही है। समस्या उतनी ही है कि विद्यार्थियों के कैसे बढाया जाता है, उतनी ही समस्या यह है कि क्या पढाया जा रहा है हमें छात्रों को उसी तरह सीखाने की जरूरत है जैसे हम चाहते है कि वे कार्य करें, रचनात्मक रूप से, सहयोगात्मक रूप से, लगातार दोहराव और संरचना और तर्क के साथ आउटपुट के लिए प्रेरित करना।

आज शिक्षण प्रणाली, शिक्षक व विद्यार्थी व विद्यार्थी के पारस्पारिक सम्बन्धों मे परिवर्तन लाने कीं आवश्यकता है न कि शिक्षक को प्रौद्योगिकी से विस्थापित करने की बदलते आधुनिकरण व वैश्वीकरण को देखते हुए सिर्फ शिक्षण प्रणाली व शिक्षक – शिष्य के सम्बन्धों मे बदलाव लाने की आवश्यकता ही नही अपितु उन्हे अधिक मित्रवत व सौहार्दपूर्ण बनाने की भी आवश्यकता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

Dr. Naveen Kumar (Asst. Professor)
Indian Girls College of Education
RIICO, Jhunjhunu (Raj.) 333001
Mail-nsnaveenjjn@gmail.com, +91 9314210366

1. **भूमिका**–शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को शिक्षकों से छात्रों तक ज्ञान के परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसे कहा जाता हैप्रक्रिया के भीतर विभिन्न तत्वों का संयोजन जहां एक शिक्षक सीखने के उद्देश्यों को पहचानता है और स्थापित करता है और विकास करता है। शिक्षण संसाधन और शिक्षण और सीखने की रणनीति को लागू करना। दूसरी ओर, सीखना एक प्रमुख कारक है जो एक शिक्षक को अवश्य करना चाहिए। विद्यार्थियों को पढ़ाते समय विचार करें। शोध का उद्देश्य शिक्षण प्रभावशीलता का आकलन करना है। शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि सकारात्मकता प्रदान करना, और पर्याप्त रचनात्मक और विकासात्मक प्रतिक्रिया, रोल–प्ले की शुरूआत का छात्रों पर गहरा सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह भी पता चला कि, सक्रिय शिक्षण वातावरण समावेशिता को बढ़ावा देता है और संकाय में सुधार करता है।

2. **सीखना एवं सीखाना एक परिचय**–

सीखने को उस परिवर्तन के रूप में माना जा सकता है जो प्रकृति में स्थायी है क्योंकि परिवर्तन एक शिक्षक द्वारा छात्रों में लाया जाता है। हालाँकि, उच्च शिक्षा में एक सक्रिय शिक्षार्थी बनने के लिए,प्रत्येक छात्र यह अपेक्षा करता है कि उसके साथ एक वयस्क शिक्षार्थी के रूप में व्यवहार किया जाए जिसका सीखने के माहौल पर पूछने के रूप में कुछ अधिकार होप्रश्न और शंकाओं का समाधान)। अर्थात, छात्र सीखने पर स्वामित्व की अपेक्षा करते हैं। इसके अलावा, छात्र यह भी चाहते हैं कि उनका प्रशिक्षक सहयोगी और विनोदी होजो स्पष्ट रूप से पढ़ाएंगे और आमतौर पर प्रासंगिक उदाहरणों का उपयोग करेंगे ताकि पढ़ाई जाने वाली पाठ्यक्रम सामग्री आसान हो जाए, समझें, जो मुझे लगता है कि आज कक्षाओं में तेजी से आवश्यक है।

3. **परिणाम और चर्चा**–

वर्तमान शोध के निष्कर्षों से पता चला कि यह शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह यह सुनिश्चित करे कि बच्चों के बीच नियमित बातचीत होएक शिक्षार्थी की बुनियादी मानवीय क्षमताओं और सांस्कृतिक रूप से आविष्कृत प्रौद्योगिकियों को ध्यान में रखते हुए यह अंततः उन्नति की ओर ले जाती है, उनकी संज्ञानात्मक क्षमताओं में. इस सिद्धांत के सिद्धांतों के अनुरूप, वर्ग अंतःक्रिया, भूमिका निभाना और दृश्य का उपयोगछात्रों को ग्राफ, चार्ट और समाचार पत्रों के रूप में अनुकरण प्रदान किया जाता है, जहाँ से विभिन्न व्यवसायों और व्यवसायों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। शिक्षको एवं शिक्षार्थियों को सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न संसाधनों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है जिसमें कंप्यूटर, किताबें, स्मार्टबोर्ड, शामिल हो सकते हैं।उपकरण, कलाकृतियाँ, व्हाइटबोर्ड, विशेष स्पीकर, गेम, कंप्यूटर प्रोग्राम आदि। शोध से यह स्पष्ट हुआ किपाठ जितना अधिक संवादात्मक होगा, उतना ही अधिक शिक्षार्थी अपने सीखने के अनुभवों को बेहतर बनाने के लिए संलग्नध्प्रेरित होंगे।

कुछ शिक्षण विधियाँ कुछ शिक्षार्थियों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती हैं जिनमें त्रुटियाँ हो सकती हैंअन्य। इस प्रकार, अनुभवात्मक के साथ–साथ मिश्रित शिक्षण (ऑनलाइन और ऑफलाइन शिक्षण का मिश्रण) का उपयोग करने की अनुशंसा की जाती हैसीखना (क्रॉस–एज पीयर ट्यूशन, प्रो और कॉन ग्रिड, प्रोडिजी गेम्स, स्मरक) जो सुधार करने में बहुत उपयोगी रहे हैंसीखने का अनुभव और केस स्टडी से कक्षा में विघटनकारी मुद्दों को कम करना।

श्रवण शिक्षार्थी जो श्रवण उत्तेजना प्राप्त करने और उसकी व्याख्या करने में अधिक आत्मविश्वास महसूस करते हैं। शिक्षार्थियों की यह श्रेणीछात्रों को कक्षा के व्याख्यानों, चर्चा सत्रों और समूह के माध्यम से प्राप्त होने वाले निर्देशों से सर्वोत्तम लाभ मिलता है।

कक्षा में शिक्षार्थियों की एक अन्य श्रेणी दृश्य शिक्षार्थियों की है जो दृश्य शिक्षण उत्तेजनाओं पर सबसे अच्छी प्रतिक्रिया देते हैं। अलावाइन दृश्य उत्तेजनाओं से सीखते हुए, दृश्य शिक्षार्थी यह देखकर भी

सीखते हैं कि सीखने के सत्र में अन्य लोग क्या करते हैं। यहशिक्षार्थियों की श्रेणी तब सबसे अच्छा सीखती है जब उन्हें चार्ट, आरेख, चित्र या सूत्र जैसे दृश्य शिक्षण प्रोत्साहन दिए जाते हैं ब्लैकबोर्ड पर लिखा है, शिक्षार्थियों की यह श्रेणी आम तौर पर अपने सीखने के परिणामों को लागू करने में रचनात्मक और चौकस रहती है। शिक्षार्थियों की तीसरी श्रेणी जो प्रायः पाई जाती हैकक्षा शिक्षण सत्र गतिशील शिक्षार्थी है। इस श्रेणी के शिक्षार्थी सीखने में अधिक सहज होते हैंदृश्य या श्रवण सीखने के बजाय व्यावहारिक दृष्टिकोण। इस प्रकार, जब शिक्षक उन्हें निर्देश देते हैं तो वे सबसे अच्छा सीखते हैं

प्रेरणा–स्वच्छता सिद्धांत या दोहरे कारक सिद्धांत के रूप में। हर्जबर्ग ने 1957 में प्रस्ताव रखा था, जिसका हवाला अडायर (2009) में दिया गया हैसाथ ही कुछ सीखने के प्रेरकों का भी संकेत दिया, जैसे काम की चुनौतीपूर्ण प्रकृति, कर्मचारी की पहचानप्रदर्शन, और काम से नए अवसरों की संभावना, रोमांचक काम, और कर्मचारी भागीदारी निर्णय लेने की प्रक्रिया। यह सिद्धांत काफी हद तक कक्षा व्यवहार के प्रबंधन में बहुत उपयोगी है। यदि शिक्षार्थी पाते हैंकुछ सीखने में रुचि होने से शिक्षकों के लिए उन्हें पढ़ाना आसान हो जाता है।

कोडिंग प्रणालियाँ जो किसी को डेटा से आगे बढ़कर नई और संभवतः फलदायी भविष्यवाणियों तक जाने की अनुमति देती हैं। सिद्धांत भी प्रस्तावित है। जब शिक्षार्थी में संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित किया जाता है, तो यह उसकी सोचने की क्षमता के रूप में प्रकट होता है

4. निष्कर्ष–

व्यक्तिगत चिंतन एवं वर्ग अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि व्यक्तियों अथवा समूहों के व्यवहार को प्रबंधित करने के लिएविभिन्न रणनीतियों का उपयोग करना पड़ सकता है जैसे प्रश्न पूछना, भूमिका निभाना, पुरस्कार, दंड, चर्चा, जोड़ी, समूहकार्य, अवलोकन, स्विचिंग गतिविधियाँ, ऑडियोधविजुअल आदि। शिक्षकों की गतिशीलता को शिक्षकों द्वारा समझने की आवश्यकता है,और व्यवहार या शिक्षण दृष्टिकोण को समायोजित करने की आवश्यकता है। फिर, शिक्षार्थियों की सीखने की जरूरतें, तरीके या शैलियाँ हो सकती हैं। शिक्षकों को शिक्षार्थियों की आवश्यकता और प्राथमिकताओं को समझने और पाठ तैयार करने की आवश्यकता है। कुछ व्यक्तियों के बजाय सभी शिक्षार्थियों के सीखने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए तदनुसार योजना बनाएं। सबसे महत्वपूर्ण, शिक्षकसीखने की बाधाओं को यथाशीघ्र पहचानने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, कभी–कभी छात्र विघटनकारी होते हैंकुछ बाधाएँ जिनमें भाषा बाधा, कम आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, अनुपयुक्त होने की भावना आदि शामिल हैं। इस मामले में,

शिक्षकों के लिए उन्हें चेतावनी देने के बजाय, अंतर्निहित कारणों को जानना और तदनुसार प्रतिक्रिया देना बेहतर है।सकारात्मक प्रतिक्रिया, कभी–कभी, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान पर गहरा सकारात्मक प्रभाव डालने में टॉनिक की भूमिका निभाती है।

अंत में, शिक्षकों के लिए सक्रिय शिक्षण के माध्यम से छात्रों की सहभागिता को बढ़ाना, बढ़ावा देना आवश्यक है। सीखने की प्रक्रिया (अनुभवात्मक और मिश्रित शिक्षा) के माध्यम से छात्र समावेशिता और संकाय के साथ परिणाम का मिलान करनाऔर मूल्यांकन के माध्यम से छात्रों की अपेक्षाएँ। यदि शिक्षक सक्षम हो सकें तो ऐसा करना उनके लिए आसानी से संभव हो सकता है। प्रभावी ढंग से संवाद करना, नियंत्रण में रहना, नियमों के अनुरूप रहना, विकल्प प्रदान करना और खुद को समायोजित करना और अंततःव्यवहार प्रबंधन में रचनात्मक बनें।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची–

Adair, J. (2009). Leadership and motivation: the fifty rule and the eight key principles of motivating others, London: Kogan Page. Alfayad, Z., Arif, L. S. (2017). Employee Voice and Job Satisfaction: An Application of Herzberg Two-factor Theory. International Review of Management and Marketing 7, 150–156. Alfieri, L., Brooks, P. J., Aldrich, J., Tenenbaum, H. (2011). Journal of Educational Psychology 103. Arthurs (2007). A juggling act in the classroom: Teaching Psychology 17, 59– 162. Bruner, J. S. (1957). Going beyond the information given. New York: Norton. National Curriculum Framwork 2005 NCERT New Delhi. Sharma Tara Chand 2005 "Reading Problems of Learners" Sarup & Sons, New Delhi.

भारत में शिक्षक शिक्षा की चुनौतियां व सम्भावनाएं

डॉ. (श्रीमती) पुष्पलता शर्मा
प्राचार्या
टैगोर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, रींगस
ई–मेल –pushpalata.sharma119@gmail.com
मोबाइल नम्बर – 9079200183, 9413963823

कोठारी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट का आंरभ इस कथन से किया –''भारत के भाग्य का निर्माण देश के कक्षा–कक्ष में किया जाता है।'' देश के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और शिक्षा का स्तर गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा द्वारा निर्धारित होता है। हमारे देश की 140 करोड़ जनासंख्या के संदर्भ में कुशल शिक्षकों की आवश्यकता है, यद्यपि भारत में दुनिया की सबसे व्यापक शिक्षा प्रणाली है जिसमें लगभग 1.5 मिलियन विद्यालय और 9.5 मिलियन से अधिक शिक्षक है। हमारे देश में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिशद एक मजबूत ढांचे के रूप में कार्य कर रही है और समय–समय पर शिक्षक शिक्षा के लिए नए विनियम व मापदंड निर्धारित करती रही है। प्रत्येक वर्श बहुत अधिक संख्या में शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जा रहा है किंतु –

- क्या प्रशिक्षण संस्थाएं अध्यापकों की संख्या को बढ़ा रही है ?
- क्या देश में अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षा के स्तर का ऊंचा उठाने में सफल रहा है ?
- क्या प्रशिक्षित अध्यापक अपने व्यवसाय में सफलता पा रहे है ?
- क्या वे वास्तव में भारत के भाग्य का निर्माण कर रहे है ?

यदि ऐसा नही है तो क्यो ?

अध्यापक अपने कार्यो को उचित प्रकार से नही कर पाए तो इसका क्या कारण है ?

निश्चित रूप से हमारे शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम का आलोचनात्मक विश्लेशण किये जाने की आवश्यकता है। हमारे देश में शिक्षा कार्यक्रम के कुछ कमजोर पक्षों को मैंने यहां उजागर करने का प्रयास किया है –

- सर्वप्रथम हमें शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में अभ्यर्थी के चयन के संबंध में विचार करना चाहिए। शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में केवल उन्हे प्रवेश दिया जाना चाहिए जो वास्तव में शिक्षण कार्य की योग्यता रखते है वर्तमान में जो चयन प्रक्रिया अपनाई जा रही है उसमें ऐसे अभ्यर्थी शिक्षक में उनके प्राप्तांक भी अर्हता प्राप्तांक से बहुत कम होते है।
- महत्वपूर्ण चुनौतियों मे से एक, योग्य प्रशिक्षित शिक्षको की कमी है शिक्षको को प्रशिक्षित करने के लिए पर्याप्त योग्य प्रशिक्षक नही है जिसके परिणाम स्वरूप खराब गुणवत्ता वाला प्रशिक्षण हो पा रहा है।
- भारत में शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पुराना है यह पाठ्यक्रम छात्रों की बदलती जरूरतों को पूरा नही कर पाता है इसमें व्यावहारिक और अनुभवात्मक शिक्षा का अभाव है।
- भारत के संपूर्ण शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम इस प्रकार नियोजित है कि व्यावसायिक दक्षता के विकास का कम ध्यान दिया जाता है कुछ प्रदेशों में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम पूर्ण व्यावसायिक हो गया है जिसका उदेश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है।
- अध्यापक–प्रशिक्षक के व्यावसायिक विकास हेतु कोई उचित प्रबंध नही है उनके व्यावसायिक विकास को बहुत कम प्रोत्साहित किया जाता है।

- अनुसंधान शिक्षा में उपेक्षित है और जो अनुसंधान कार्य शिक्षा में किया जा रहा है वह अत्यंत ही निम्न स्तर का है और शिक्षा विशय के विकास में कोई योगदान नही दे रहा है।
- प्रदेश के विश्वविद्यालयों में शिक्षक शिक्षा विभाग अलग–थलग है। अधिकांश विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग को निम्न स्तर की तरह लेते है और विश्वविद्यालयों की मुख्य शैक्षिक धारा के साथ शिक्षा विभाग की कम या कोई अंतःक्रिया नही होती है।

भारत में शिक्षक–शिक्षा की वर्तमान चुनौतियों का सामना करने के लिए कुछ प्रयास किये जा सकते है –

- शिक्षको को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग किया जाय।
- अनुभवात्मक शिक्षण विधियों को शामिल करके शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाया जाए। कार्यशालाओं और व्यावहारिक सत्रों के माध्यम से शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए।
- शिक्षक प्रशिक्षण एक बार की घटना के स्थान पर सतत प्रक्रिया होनी चाहिए।
- अध्यापक–शिक्षा कार्यक्रम का निर्धारण अनुसंधान से प्राप्त करने योग्य उदेश्यों पर आधारित होनी चाहिए। संपूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को अनुसंधान की सहायता से जीवन प्रदान किया जा सकता है।
- अध्यापक–प्रशिक्षकों के अध्यापक शिक्षा में व्यावसायिक विकास को अत्यधिक प्रभावशाली बनाना चाहिए। इसमें भिन्न विशय क्षेत्रों से श्रेष्ठ विद्वानों एवं विभिन्न स्तरों के अध्यापकों को सम्मानित करना चाहिए ताकि व्यावसायिक दढ़ता आ सकें।
- विश्वविद्यालयों को अलग स्वतंत्र शिक्षा विभाग का निर्माण करना चाहिए ताकि अध्यापक शिक्षा संस्थाएं एवं विभाग कार्यक्रमों को संचालित करने में अधिकाधिक स्वतंत्रता को प्राप्त करें।

भारत में शिक्षा के गुणवत्ता में सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है यद्यपि शिक्षक शिक्षा की कई चुनौतियां भी है लेकिन इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार व निजी संस्थानों को मिलकर काम करने और एक ऐसी प्रणाली बनाने की जरूरत है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षक प्रशिक्षण प्रदान करें। तभी हम यह सुनिश्चित कर सकते है कि भारत में प्रत्येक बच्चें को 21वी सदी के लिए छात्र तैयार करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले।

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा एवं शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता

डॉ. रीटा झाझड़िया, एसोसिएट प्रोफेसर
संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लालकोठी, जयपुर (राज.)
Email-ritajhajhria47@gmail.com, Mobil No. 9414265698

शिक्षा मनोविज्ञानः–

शिक्षा मनोविज्ञान वह विधायक विज्ञान है, जो शिक्षा की समस्याओं का विवेचन–विश्लेषण एवम् समाधान करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान से पृथक् नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप में रहा हो, उसने शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायता की है।

शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के योग से बना हैः–

शिक्षा और मनोविज्ञान। अतः इसका शाब्दिक अर्थ है– शिक्षा सम्बन्धि मनोविज्ञान। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है और शिक्षा की प्रक्रिया में मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

स्किनरः– शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा से, जो सामायिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान से, जो व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान है, ग्रहण करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ विश्लेषण करने के लिए स्किनर में निम्नलिखित तथ्यों की ओर संकेत किया है :–

1– शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र, मानव व्यवहार है।

2– शिक्षा मनोविज्ञान खोज और निरीक्षण से प्राप्त किये गये तथ्यों का संग्रह है।

3– शिक्षा मनोविज्ञान में संग्रहित ज्ञान को सिद्धान्तों का रूप प्रदान किया जा सकता है।

4. शिक्षा मनोविज्ञान में शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए अपनी स्वयं की पद्धतियों का प्रतिपादन किया है।

5– शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्त और पद्धतियाँ शैक्षिक सिद्धान्तों और प्रयोगों को आधार प्रदान करते है।

परिभाषाएँ :–

स्किनरः– शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवहार और व्यक्तित्व आ जाता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा :–

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन है। भारतीय परम्परा में मनोविज्ञान, दर्शन और शिक्षा को अलग–अलग कर विवेचना करने की कोशिश की गयी है। ये तीनों सदैव ज्ञान के स्थनान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है।

भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवम् चेष्टा है। भारतीय सन्दर्भ में मनोविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास भी समाहित किये हुये है।

हिन्दू मनोविज्ञान का मूल आधार वेद है। वेद में इसे आध्यात्मक विद्या भी कहा गया है; क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्य जीवनयापन का सशक्त माध्यम है।

वेद का अन्तिम भाग उपनिषद है, जिसमें पुरूष जो अनन्त शक्ति है, वह सर्वत्र व्याप्त है।

आधुनिक मनोविज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी मात्र के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। दुसरे शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणिय व्यवहार का अध्ययन करना है तथा प्राणी के भीतर मानसिक एवम् दैनिक (डमदजंस ंदक चीलेपबंस) प्रक्रियाओं यथा चिन्तन भाव एवम् घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोडकर अध्ययन करना है।

मनोविज्ञान की भारतीय अवधारणा की विशेषताएँ :–

(1) आत्मतत्व को पहचानना।

(2) आध्यामिक मनोविज्ञान।

(3) योग का महत्व।

(4) ध्यान का महत्व

(5) रहस्यवाद का मनोविज्ञान

(6) प्राकृतिक व्यवस्था का समावेश

(7) गीता में मनोविज्ञान

(8) वेदों में मनोविज्ञान

(9) शारीरिक एवम् मानसिक विकास की अवधारणा।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संकल्पना (अवधारणा) में मनोविज्ञान में उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो वर्तमान समय में विद्यमान हैं आज का मनोविज्ञान प्राचीन मनोविज्ञान की ही देन है। सामान्यतः वर्तमान एवम् भारतीय अवधारणा में मनोविज्ञान में अन्तर पाया जाता है। वर्तमान समय में मनोविज्ञान पर विचार किया जाये तो यह प्राचीन काल के मनोविज्ञान की ही देन माना जा सकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षक शिक्षा में उपयोगिता :–

एक शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना बहुत ही जरूरी और उपयोगी है। शिक्षक जब कक्षा में शिक्षण कार्य करवाता है और बालकों के दैनिक सम्पर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपना शिक्षण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं करवा सकता है। एक शिक्षक को चाहिए कि वह अपने शिक्षण कार्य को सफल बनाने के लिए उसे मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों को अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिए। शिक्षक को अपने शिक्षण में उन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने के लिये तैयार रहना चाहिए जो सफल शिक्षण और प्रभावशील अधिगम के लिए अनिवार्य है, शिक्षक के लिए उपयोगिता निम्न प्रकार हैः–

(1) **स्वयं को समझना :–** एक शिक्षक को स्वयं का आंकलन करना आना चाहिए कि उसमें अपने दायित्व के अनुकूल योग्यतायें है या नहीं।

(2) **विद्यार्थी को जानना :–** एक शिक्षक को अपने छात्र की समस्त शक्तियों एवम् योग्यता की जानकारी होनी जरूरी है।

(3) **शिक्षण पद्धति :–** शिक्षा मनोविज्ञान में सीखने के लिए अनेक सिद्धान्त है, जिनकी मदद से शिक्षक अपनी शिक्षण विधियों का चयन कर सकते है।

(4) **विद्यार्थीयों के मार्गदर्शन में सहायकः–** उचित मार्गदर्शन के अभाव में विद्यार्थी अपने पथ से भटक जाते है और उनके अध्ययन के उद्देश्य विफल हो जाते है।

(5) **शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायकः–**

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने में विशेष सहायक होता है।

स्किनर ने कहा है किः– शिक्षा मनोविज्ञान आजकल शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर उसकी शिक्षण विधि को उन्नत करके उसे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है।

(6) **सीखने के लिए उचित परिस्थितियों एवम् वातावरण का आयोजन करताः–**

शिक्षण कार्य के समय वातावरण एवम् परिस्थितियों का भी शिक्षण प्रक्रिया में विशेष महत्व है, शिक्षा मनोविज्ञान के माध्यम से ही हमें यह ज्ञात होता है कि किस समय व्यक्तिगत शिक्षा तथा किस समय सामूहिक शिक्षण की आवश्यकता है, किस स्थान पर सहायक सामग्री का प्रयोग करना उचित है।

(7) **बाल स्वभाव एवम् व्यवहार का समुचित ज्ञान :–**

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को बालक के स्वभाव एवम् व्यवहार से पूर्णतः अवगत कराता है। शिक्षक बालक की मूल प्रवृतियों और संवेग आदि की जानकारी प्राप्त कर लेता है।

(8) **मूल्यांकनः–** बालाकों के मूल्यांकन के लिए बुद्धि, रूचि, व्यक्तिगत ज्ञान आदि के शिक्षा मनोविज्ञान में अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों नियमों एवम् विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(9) **सामाजिक भावना के विकास में सहायकः–** शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सामाजिक सम्बन्धों के महत्व का ज्ञान कराता है।

(10) **शिक्षण व्यवस्थाको मनोविज्ञान आधार प्रदान करनाः–** शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक को विद्यालय प्रबन्ध नियोजन और शिक्षा व्यवस्था करने हेतु मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करना है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक को आपका शिक्षण प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

.....

सन्दर्भ :–

* Chauhan Reeta (2018), Childhood and growling up, Agrawal Publication, Agra.
* Pal S.K. (2015) Adhigam ka vikas evm Shikshan Adhigam Prakriya, New Kailash Prakashan Allahabad.
* Pathak R.P. (2008), Uchch Shiksha Manovigyan, Pearson Delhi.
* Saraswat M (2013) Shiksha Manovigyan ki Roop Rekha, Alok Prakashan Lucknow, Allahabad.

शिक्षण - अधिगम प्रक्रिया और भारतीय दृष्टिकोण

इन्द्रा कुमारी
शोधार्थी

शिक्षण की प्रक्रिया मानव व्यवहार को परिवर्तित करने की तकनीक है अर्थात् शिक्षण का उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन है। शिक्षण के बिना अधिगम असंभव है और अधिगम के बिना शिक्षण निरर्थक है परंतु विद्यार्थी के लिए दोनों परमावश्यक है, गाँधी जी ने क्रिया प्रधान और स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया उन्होंने बच्चों की क्रियाशीलता और खेल की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और इसी को आधार मानकर इसके परिमार्जन के साथ ही शिक्षण प्रदान करने की बात की और अपनी योजना को उद्योग केन्द्रित बनाया। विवेकानन्द ने भारत की उसी प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षण–पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिसमें गुरु और शिष्य के संबंध अत्यन्त घनिष्ठ रहते थे इन्होंने ज्ञान को व्याख्यान, तर्क, विचार–विमर्श, स्वानुभव तथा रचनात्मक कार्यों एवं उपदेशों द्वारा अर्जित करना, बालक को व्यक्तिगत निर्देशन तथा परामर्श द्वारा उचित मार्ग की ओर अग्रसर करना बताया। अरविन्द घोष ने शिक्षा का उद्देश्य शुद्धता के साथ बच्चे का शारीरिक तथा मानसिक विकास, आध्यात्मिकता का विकास बताया। शिक्षा का लक्ष्य भौतिक सफलता पाना नहीं है अपितु मानव को सच्चा मानव बनाना अर्थात् मानव चरित्र को सन्तुलित और सृजनात्मक बनाना है।

बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की कार्य शैली का उनकी शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना

डॉ. बिन्दू कुमारी
शोध निर्देशक
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर

कपिल उपाध्याय
शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर
Email- upadhyaykapil85@gmail.com
Mobile No. – 9602692363

व्यावसायिक कुशलता के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान का होना अत्यंत आवश्यक है। सैद्धान्तिक ज्ञान व्यक्ति में वैचारिक दृष्टिकोण विकसित करता है, वहीं व्यावहारिक ज्ञान उसे अनुभव प्रदान करता है जिसके माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है। व्यावसायिक कुशलता के लिए आवश्यक है, व्यक्ति को व्यावसायिक एवं व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक रूप से हो। व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति और व्यावहारिक ज्ञान के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते हैं, उनमें से एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है इर्न्टनशिप। इर्न्टनशिपकार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थी चयनित व्यवसाय से जुड़े हुए प्रत्येक पहलू से परिचित होता है तथा विभिन्न शैक्षिक व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन सीखता है। इर्न्टनशिपप्रशिक्षण कार्यक्रम विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों में जैसे– चिकित्सा क्षेत्र, अभियांत्रिकी क्षेत्र आदि में पहले से ही संचालित हो रहे है। इस प्रकार व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में इर्न्टनशिप प्रशिक्षण कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण समयावधि है। इसी को ध्यान में रखकर भावी अध्यापकों की शिक्षण सक्षमता को उन्नयित करने के लिए शिक्षक शिक्षा में इर्न्टनशिपकार्यक्रम को अनिवार्य कर दिया गया है। जिससे शिक्षक शिक्षार्थियों में शिक्षा के व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सके। शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों के स्व–अधिगम व स्वतंत्र चिंतन की क्षमता का विकास करने के लिए यशपाल समिति (1992) ने शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम को प्रासंगिक एवं व्यावहारिक बनाने पर मुख्य जोर दिया। भावी अध्यापकों की शिक्षण सक्षमता के उन्नयन के लिए प्रत्येक घटक के प्रति जागरूक करना है, क्योंकि विद्यालयी गतिविधियों का संचालन उनमें मौजूद शिक्षकों की शिक्षण–सक्षमता पर निर्भर है, उनके कक्षागत व्यवहार का अनुकरण विद्यार्थियों की निष्पत्तियों के रूप में झलकता है। शिक्षक–प्रशिक्षण की दयनीय एवं दुर्बल स्थिति से प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परिचित है। जिसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित जस्टिस वर्मा आयोग (2012) ने अपनी रिपोर्ट में वैद्यानिक रूप से प्रमाणित किया कि अध्यापक प्रशिक्षण में ज्ञान के कुछेक अंशो का इस्तेमाल पारस्परिक रूप से किया जाता है। जिसका कक्षागत व व्यावहारिक परिस्थितियों से भी कोई संबंध नहीं हो पाता है। वर्तमान चुनौतीपूर्ण अस्थिरता के दौर में कुछ अध्यापक तल्लीनता एवं शालीनता के साथ अपने उत्तरदायित्वों को लगन व कर्मठता से निर्वहन

कर रहे है। ऐसे अध्यापक समाज में बच्चों को दिशा देने में अपनी सृजनात्मक मनोवृत्ति के साथ योगदान दे रहे है। भावी अध्यापकों के प्रशिक्षण में सुधार कर उसे सुचारू बनाने के लिए एन.सी.एफ.टी. ई. रेगुलेशन (2014) के अलावा आर.टी.ई. एक्ट (2009) में भी शिक्षण–सक्षमता की जरूरतों पर बल दिया गया। वर्तमान में अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के पुनर्गठन में नवीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों को विद्यालयी अनुभवों के दर्शन तथा बालकों की संवेगात्मक जरूरतों का पाठ्यचर्या के घटकों पर पडने वाले प्रभाव को समझते हुए, शिक्षण अधिंगम प्रक्रिया की परिस्थितियों का अवलोकन करना है, ताकि वे पाठ–योजना, नियोजन शिक्षण तथा मूल्यांकन कर विद्यार्थियों व समुदाय के सदस्यों के बीच सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम हो पाऍं। इसी क्रम में शिक्षक शिक्षा में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम (बी.एड़) में भी इर्न्टनशिप कार्यक्रम को वर्ष (2014) में एन.सी.टी.ई. ने अनिवार्य कर दिया। इर्न्टनशिप कार्यक्रम के द्वारा भावी शिक्षकों को शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने एवं शैक्षिक व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिए उनकी कार्यशैली और शिक्षण प्रभावशीलता जैसे घटकों को इस कार्यक्रम में शामिल किया गया है।

कार्य शैली :–कार्यशैली कार्य करने के उन तरीकों का वर्णन करती है जिन्हें व्यक्ति अपने जीवन केआरम्भ में विकसित करता है और ये तरीके आजीवन उसके साथ रहते हैं। सामान्यतः कार्यशैलीकाम करने के लिए उपयुक्त वातावरण को बताती है। यथा– व्यक्ति का वास्तविकतावादी होनाकार्य पूर्ण करने में सहायता करता है, और व्यक्ति कौशलयुक्त कार्यकर्ता बन सकता है।सामाजिक तत्वों के प्रबलन से विश्वसनीय सहायक, अन्वेषणात्मकता के प्रबलन से समस्यासमाधानकर्ता, उद्यमिता के प्रबलन से आनन्दानुभूति करने वाला, फलात्मकता के प्रबलन सेसर्जनशील तथा परम्पराओं एवं मान्यताओं से परिचित होने पर अच्छा संगठनकर्ता बन सकता है।सामान्यरूप से यह माना जाता है कि कार्य करने में व्यक्ति की शैली का विशेष योगदान होताहै।

व्यक्ति की कार्यशैली को समझने के लिए डन व प्रेशनिग (1993) ने कार्यशैली विश्लेषण का पिरामिड प्रतिमान विकसित किया, इस पिरामिड प्रतिमान का कम्प्यूटरीकरण 1994 में किया गया। कार्यशैली का यह विश्लेषण मूलरूप से डन एवं डन के अधिगम शैली प्रतिमान पर आधारित है। जिसका उपयोग विशेषकर कार्यशक्ति में लगे हुए व्यक्तियों एवं व्यावसायिक नियोजन से सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। डन एवं प्रेशनिग के अनुसार कार्यशैली में व्यक्ति के जैव भौतिक स्वरूप सहित, संवेदी रूपरेखाओं, भौतिक जरूरतों, पर्यावरणीय वरीयताओं, सामाजिक पक्षों तथा वृत्तिक अभिवृत्तियों के अनुबन्धित शैली तत्व सम्मिलित होते हैं। कार्यशैली की अवधारणा का वर्णन एवं इसकी जांच व्यक्तियों के संगठनात्मक व्यवहार से संबंधित मनोवैज्ञानिक चरों को खोजने और उनका विश्लेषण करने मे रुचि रखने वाले विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा की गई है।

शिक्षण प्रभावशीलता

किसी भी शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक, विद्यार्थी एवं पाठ्यक्रम तीनों अवयवों का अलग–अलग एवं सम्मिलित योगदान महत्वपूर्ण होता है, इनमें से एक की भी अनुपस्थिति शिक्षा प्रणाली को अधूरा स्वरूप प्रदान करती है तथा एक का भी असहयोग होने पर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति असम्भव है। इसके अतिरिक्त शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के उद्देश्य, शिक्षण शैलियाँ तथा शैक्षिक एवं सामाजिक वातावरण में ऐसे कुछ अन्य आधारभूत तत्व हैं, जो शिक्षण एवं अधिगम को सफल एवं सोद्देश्य बनाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। शिक्षण को प्रभावी बनाने में इनका विशेष महत्व है। अतः शिक्षक प्रभावशीलता से तात्पर्य सीधे अर्थों में यही होगा कि विद्यार्थी के अधिगम (सीखने) की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावशील बनाया जाये? जिससे वे अधिकाधिक प्राप्त अनुभवों को अपने व्यवहार में ढ़ाले शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक विद्यार्थियों को सूचना प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रविधियों का उचित समय पर प्रयोग कर उसे प्रभावी बनाते हैं।परिणामस्वरूप शिक्षकों के प्रभावशील शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से विद्यार्थियों के अनुभवों में व्यापकता आयेगी, जिससे वे अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन करने में सफल होगें। यह शिक्षण प्रक्रिया सफल तभी कहला सकती है, जब विद्यार्थी सही प्रकार से उसका अधिगम कर लें। अतः अधिगम के बिना शिक्षण का कोई भी औचित्य शेष नहीं रह जाता है। "शिक्षक प्रभावशीलता से तात्पर्य है, प्रभाविक रूप प्रस्तुतीकरण अर्थात् निर्धारित उद्देश्यों तथा वांछित व्यवहारगत परिवर्तनों की सरल, सुगम तथा वास्तुनिष्ठ रूप से प्राप्ति हेतु ऐसे शिक्षण जो रोचकता से पढाते हों, आकर्षक हों तथा विद्यार्थियों का पुनर्बलन प्रदान कर रहे हो, को प्रभाव समझा जाता है।"

परम्परा एवं परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में सीखने की प्रक्रिया का अध्यापन एवं अधिगम में स्थानान्तरण

Dr. Mahesh Kumar Sharma (Asst. Professor)
Seth Motilal TT College
Jhunjhunu (Raj.) 333001
Mail-parvati mahesh1982@gmail.com
Ph.9460274883, 9829235883

अधिगम एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, 20 वीं शताब्दी में अधिगम प्रक्रिया में शिक्षा का फैक्ट्री मॉडल सामने आया क्योंकि उस समय उद्योग एवं खेती के काम कौशल वाले लोगों की आवश्यकता थी । पारम्परिक रूप से शिक्षक को विशेषज्ञ एवं विद्यार्थियों में ज्ञान का प्रसारण करने वाला माना जाता था। यह एक प्रकार का प्रसारण मॉडल था जिसमें शिक्षक विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करता था ।

1. अधिगम एक कठिन प्रक्रिया है, कठिन होने के साथ यह एक गम्भीर प्रक्रिया है । यदि सीखने की गतिविधि के दौरान विद्यार्थी मजाक या आनन्दित होते हुए सीखते तो यह माना जाता था कि अधिगम नहीं हो रहा है।

2. विद्यार्थी के लिए अधिगम एक कठिन प्रक्रिया थी जिसमें विद्यार्थियों की कमजारियों को विन्हित किया जाता था । शिक्षक के निर्देशानुसार ही उन्हें श्रेणीबद्ध या फेल या पास किया जाता था जो कि विद्यार्थी के लिए काफी मुश्किल पैदा करने वाला था ।

3. पाठ्यक्रम सभी विद्यार्थियों के लिए समान था, जिसमें उपचार योग्य या पिछडे बच्चों के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। बच्चे केवल किताबों एवं स्कूल पर ही आश्रित थे।

4. पिछडे बच्चों की कमजारियों की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। अधिकांश ऐसी स्थिति में बच्चों को स्कूल परिवर्तन कर दिये जाते थे इनको अभिप्रेरित करने या इनकी संकल्पनाओं को विकसित करने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था |?

5. पाठ्यक्रम की भाषा काफी सरलीकृत थी जो कि बोरिंग एवं कृत्रिम थी एवं मूल रुप से अर्थ विहिन थी। जिसे सामान्य व्यक्ति के लिए उसे समझना काफी मुश्किल था ।

6. अधिगम प्रक्रिया मात्र सूचनाओं को स्थानान्तरित करने उनकी पुनरावृति तक सिमित थी, जो कि शिक्षक केन्द्रीत प्रक्रिया थी, जिसमें शिक्षक सूचनाओं को प्रसारित करता था जिसमें विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे प्रसारित सूचनाओं को सकारात्मक रुप से ग्रहण कर उसका संग्रह करे तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी पुनरावृति करें।

7. स्कूलों में अधिकांशतः व्याख्यान शिक्षण विधि का उपयोग किया जाता था, यह शिक्षण शिक्षक केन्द्रीत होती है। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता होता है। शिक्षक बिना किसी श्रवय सामग्र सहायक दृश्य -ी के इस्तेमाल के शिक्षण कार्य सम्पन्न करता है। इस प्रकार का शिक्षण बहुत नीरस, उबाऊ और एकतरफा होता है। जिसमें विद्यार्थी ध्यान केन्द्रीत नहीं कर पाता है ।

अमेरिका की स्कूल में हुए सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि अधिकांश विद्यार्थी स्कूलों में अपना लम्बा समय स्कूल में दिये गये कार्यों को पूरा करने में लगा देते हैं तथा कक्षाकक्ष गतिविधियाँ बहुत ही अरुचिकर एवं अव्यवस्थित है, जिसमें शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करना अत्यन्त मुश्किल है।

इन सर्वेक्षणों के आधार पर यह पाया गया है कि स्कूली पाठ्यक्रम को इस प्रकार डिजाइन करने की आवश्यकता है कि उनमें प्रयोग गतिविधियाँ एवं निरीक्षण को महत्वपूर्ण मानते हुए सीखने की प्रक्रिया को रुचिकर बनाया जाये। यह भी पाया गया है कि अधिगम को स्कूल रेखिय प्रक्रिया के रूप में माना जा रहा है और पाठ्यपुस्तक या अध्यापक विषय-वस्तु को एक समित दायरे में विद्यार्थियों को उपलब्ध करवा रहे हैं। उदाहरणार्थ गणित में एक सवाल एक ही तरीके से हल करवाया जा रहा है। समस्याओं को दैनिक गतिविधियों से नहीं जोडा जा रहा है। सीखने के स्थान पर अधिक बल दिया जा रहा है।

लैकिन वर्तमान परिपेक्ष्य में अधिगम की आवश्यकता काफी परिवर्तित हो गई है जो कि पिछले दशकों में हुई अनुसंधानों का परिणाम है | अधिगम की नवीन अवधारणाओं में वैयक्तिक विभिन्नताओं को विशेष ध्यान दिया गया है। इसमे यह माना जाता है कि विद्यार्थी एक समान तरीके से नहीं सीख सकते है । प्रत्येक विद्यार्थी एक अलग

तरीके से सीखता है। इसके लिए हमें रुचि का एवं सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता है, जिसमें शिक्षक की भूमिका केवल निर्देशन देने तक ही सीमित है। अब विद्यार्थी अपना लम्बा समय अर्थयुक्त एवं रुचिकर कम्प्यूटर आधारित गतिविधियों के माध्यम से सीखने में लगा रहा है ।

1. अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है। समुदाय आधारित ज्ञान एवं अधिगम एक महत्वपूर्ण साधन है।

व्योगत्एकी (1978) के अनुसार विद्यार्थी सामुहिक भागीदारी में अपने साथियों, अध्यापकों एवं अन्य के साथ अर्थयुक्त रुचिकर गतिविधियों के माध्यम से श्रेष्ठ तरीके से सीख सकते हैं। वर्तमान आईने .टी.सी. अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को यह सुविधा उपलब्ध करवाई है कि वे अपने समीप ही नहीं अपितु पूरे विश्व में किसी भी जगह से भागीदारी द्वारा सीख सकते हैं ।

2. अधिगम एक क्रियात्मक प्रक्रिया है न कि एक निष्कर्म प्रक्रिया वर्तमान में विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करने को व्यक्तियों द्वारा एक चुनौति के रूप में लिया जा रहा है जो कि विद्यार्थी की क्षमता में वृद्धि कर रहा है। वे अधिगम प्रक्रिया में अधिक क्रियात्मक रुप से जुड रहे हैं। पारम्परिक पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में केवल ज्ञान का वर्णन करने की अपेक्षा रखता था जबकि वर्तमान पाठ्यक्रम ज्ञान के आधार पर समझ विकसित करते हुए नये ज्ञान की खोज की अपेक्षा रखता है।

3. अधिगम रेखिय या अरेखिय दोनों हो सकता है । मस्तिष्क एक प्रोफेसर के समान होता है। जो विभिन्न सुचनाओं को एक साथ ब्रहण करने की क्षमता रखता है । संयुग्मन सिद्धान्त एवं अनुसंधान ने यह दर्शाया है कि अधिगम ज्ञान संरचनाओं के द्वारा व्यवस्थित एवं विकसित होता है। ज्ञान संरचनाए स्कीमा या संयुग्मन मानचित्र के रुप में संचित होती है। इससे यह माना जाता है किसी विषय वस्तु की अवधारणा पर अच्छी तरह से समझ विकसित हो जाये एवं उसमें समाहित समस्त बिन्दुओं को मस्तिष्क में लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जाए तो अर्जित ज्ञान हमेशा काम में आता है।

4. अधिगम एक अन्तःक्रियात्मक एवं विषयवस्तु- आधारित अवधारणा है।

होलिस्टिक ब्रेन थ्योरी यह सुझाव देती है कि सूचनाएं वैश्विक रुप से आसानी से प्राप्त होती है। इन्हें सूचना तथ्यों के अनुक्रम के रुप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थी को सूचनाओं के सम्बन्धों को देखने एवं बनाने में आसानी रहती है।

5. अधिगम क्षमता मॉडल पर आधारित होती हैं, जो विद्यार्थी की योग्यताओं, रुचि एवं संस्कृति से जुड़ा रहता है ।

विभिन्न स्कूलों ने हार्वर्ड गार्डनर के कार्यों के आधार पर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत क्षमता और रुचि के आधार पर अधिगम वातावरणों का निर्माण किया है। इसके लिए स्कूलों ने विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से इन वातावरणों को निर्मित किया है जिसमें इनकी क्षमताओं के साथ-साथ इनकी कमजोरियों का भी ध्यान रखा है।

6. अधिगम की परिस्थिति हुई अवधारणा का शिक्षण विधियों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसमें कई नवाचार हुए हैं। आज बाल केन्द्रीत शिक्षण विधियों का उपयोग करने पर बल दिया जाता है । जैसे श्रिपद विधि, खेलखेल-, माइन्डमैप, सारांशीकरण वेब थीम, श्लोक - सूत्र, क्विज, अंत्याक्षरी, बहुबुद्धि, ई-मॉडल आदि।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि पारम्परिक तरीके में अधिगम एक प्रारुपिक शिक्षक–केन्द्रीत प्रक्रिया थी जिसमें अध्यापक अपना अधिकांश शिक्षण कार्य बातचित के द्वारा सम्पन्न करता था, जिसमें विद्यार्थी निष्क्रिय थे जिन्हें मात्र सूचना उपलब्ध कराई जाती थी परन्तु वर्तमान विद्यार्थी निष्क्रिय रहकर सूचना प्राप्त करने तक सीमित नहीं है, अपितु अब वो स्वयं ज्ञान की संरचना करने लगा है। जिसमें शिक्षक मात्र एक गाइड है।

1. National Curriculum Fram work 2005 NCERT New Delhi.
2. Sharma Tara Chand 2005 “Reading Problems of Learners” Sarup & Sons, New Delhi
3. Goleman Daniel (2007) "Social Intelligence” Arrow Books London
4. Shaffer Dauid (1999) “Social and Personality Development” Wadswarth Thomson Learning, USA
5. Exiekson Marian (1967) “The Metally Retarded Child in the elass Room ” The Moemillan Company

भारतीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में एन ई.पी.2020 का क्रियान्वयन

मिनाक्षी सुलोदिया
(शोधार्थी) शिक्षा विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय,
जयपुर, (राजस्थान) भारत–303122,
मेलआईडीः–minakshi21sulodia@gmail.com

भारत में शिक्षक शिक्षा का प्रतिमान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह विद्यार्थियों के शिक्षा में मानसिक,सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक विकास को समझने और सुधारने का साधन है। शिक्षकों का कार्य मात्र ज्ञान देने से बढ़कर है। वे विद्यार्थियों के साथ संवाद करते हैं उनके आत्मविश्वास को बढ़ावा देते हैं और उनके जीवन में नैतिक मूल्यों के अस्तित्व को महत्वपूर्णता के रूप में समझाते हैं। शिक्षा का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की समस्या को समझने में मदद करता है ।और शिक्षकों को बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए उपाय ढूंढने में सहायक होता है। इसके माध्यम से हम शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने और शिक्षार्थियों के विकास को समर्थन देने के लिए सामग्री, प्रक्रिया और मॉडल तैयार कर सकते हैं। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य शिक्षकों को विश्व शिक्षा और मनोविज्ञान क्षेत्र में तैयार करना है। यह कार्यक्रम भिन्न–भिन्न मानसिक आवश्यकताओं को समझने और समर्थन प्रदान करने के

कौशल को विकसित किया जाता है। इसकी परिणामस्वरूप शिक्षा मनोविज्ञान और शिक्षक शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक महत्वपूर्ण और अद्वितीय हिस्सा है।

मुख्य शब्दः शिक्षक शिक्षा, मनोविज्ञान, गुणवत्ता, नैतिक मूल्य, शिक्षा।

पृष्ठभूमिः

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों की तैयारी और प्रशिक्षण के लिए महत्वपूर्ण होता है। इसका उद्देश्य शिक्षकों को शिक्षा में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए तैयार करना है। जिसमें छात्रों को बेहतर शिक्षा मिले यह कार्यक्रम शिक्षकों को शिक्षण प्रक्रिया शिक्षा मानकों और प्रौद्योगिकी के साथ अवगत कराता है। ताकि वे छात्रों के विकास में सहायक हो सके। इसके माध्यम से शिक्षक समय–समय पर नई शिक्षा नवाचार और विकास के संदर्भ में भी अपडेट रहते हैं। जो शिक्षा के क्षेत्र में उनके पेशेवर विकास को सुनिश्चित करता है।

1.1 शिक्षकों की भूमिका शिक्षा कार्यक्रम के प्रवर्गानुसारः शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को प्रवर्गानुसार अनुसार प्रदान करते हैं। जैसेः प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा आदि।

1.2 शिक्षा उपयोगिताः शिक्षकों का कार्य है। छात्रों को विज्ञान, प्रौद्योगिकी ,सामाजिक और कौशलिक ज्ञान प्रदान करना। इसका उद्देश्य छात्रों की शिक्षा उपयोगिता को बढ़ावा देना है। ताकि वे अच्छे नागरिक बन सके।

1.3 मौलिक गुणवत्ता की सुनिश्चितताः शिक्षकों की जिम्मेदारी होती है। कि वे शिक्षा कार्यक्रम को मौलिक और गुणवत्ता से प्रदान करें। ताकि छात्र ज्ञान और सीखने कीअच्छी आदतें विकसित कर सकें।

1.4शिक्षा प्रणाली का संचालनः शिक्षा प्रणाली के संचालन में शिक्षकों द्वारा वह पाठ योजना तैयार करते हैं। पाठ्यक्रमों को समय–समय पर अपडेट करते हैं। और शिक्षा की गुणवत्ता को निरीक्षित करते हैं।

1.5 छात्रों के मार्गदर्शन का कार्यः शिक्षक छात्रों का मार्गदर्शन करते हैं ।और उनकी सीखने की आवश्यकताओं को समझते हैं। वे छात्रों को उनके रुचिकर क्षेत्र में दक्ष बनाने में मदद करते हैं।

1.6 समाज में शिक्षा का योगदानः छात्रों को सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए तैयार करते हैं।

2. शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में आने वाली चुनौतियांः

2.1 विविधता का प्रबंधनः भारत में भिन्न–भिन्न क्षेत्रों भाषण और सांस्कृतिक विविधताओं के कारण शिक्षकों को विविध छात्र गुणवत्ता और आवश्यकताओं का संबंध से बनाने में संकट हो सकता है।

2.2 शिक्षा संसाधनों की कमीः कई शिक्षण संस्थानों में शिक्षा संसाधनों की कमी होती है, जैसे पुस्तकें पुस्तकालय और सहायक सामग्री इत्यादि यह छात्रों की शिक्षा पर असर डाल सकता है।

2.3 शिक्षा प्रणाली के तंत्र मंत्र की तकनीकः शिक्षकों को नई तकनीक का सही तरीके से उपयोग करना सीखना और छात्रों को इन तकनीकों से आवश्यक ज्ञान प्रदान करना होता है। जैसे,ऑनलाइन शिक्षा, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और डिजिटल पाठ्यक्रम इत्यादि।

2.4 शिक्षा के अद्यतनीकरण की आवश्यकताः शिक्षा कार्यक्रमों को नवाचार और अद्यतनीकरण के साथ बदलते रहना चाहिए ताकि छात्रों को आधुनिक ज्ञान और कौशल प्राप्त हो सकें।

2.5 शिक्षा में गुणवत्ता की गारंटीः शिक्षकों को शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अपने काम में सदैव गुणवत्ता की गारंटी देनी होती है। तथा साथ ही छात्रों की प्रगति का निरीक्षण करना होता है।

2.6 छात्र सहभागिताः छात्रों को शिक्षा कार्यक्रम में सहभागी बनाना और उनकी रुचिकर क्षमताओं को समझने में शिक्षकों को सहायता करनी चाहिए।

2.7 शिक्षा में सामाजिक और आर्थिक असमानताः भारत में शिक्षा सामाजिक और आर्थिक असमानता की समस्या है जिससे शिक्षा में पहुंच और गुणवत्ता में अंतर होता है।

2.8 छात्र शिक्षक अनुपालनः शिक्षकों को छात्रों के साथ सहयोगी और मार्गदर्शन रूप में काम करना होता है। ताकि छात्रों को सही दिशा में जाने में मदद मिल सके।

3. नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम का क्रियान्वयनः

3.1 नवाचारी शिक्षक

3.2 शिक्षा पाठ्यक्रम का सुधार

3.3 शैक्षिक संसाधनों का सुधार

3.4 विद्यालय मूल्यांकन

3.5 शिक्षा तकनीकों का उपयोग

3.6 शिक्षण कौशल विकास

3.7 बोर्ड परीक्षा प्रणाली

3.8 मातृभाषा में शिक्षा

3.9 सामाजिक और आधारिक शिक्षा

3.10 सामाजिक समरसता

निष्कर्षः

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों का महत्वपूर्ण योगदान है और उनकी भूमिका शिक्षा कार्यक्रम के उपयोगिता में क्रियाशील होती है वे छात्रों के जीवन में गुणवत्ता और समृद्धि लाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। जैसे, ज्ञान का पासवर्ड, व्यक्तिगत मार्गदर्शन, शिक्षा सामग्री का चयन, छात्रों के सामाजिक और नैतिक विकास का समर्थन, डिजिटल शिक्षा, छात्रों की सहभागिता को प्रोत्साहित करना आदि के माध्यम से भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की उपयोगिता को बढ़ावा देते हुए। और छात्रों के शिक्षा और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

- 'शर्मा (डॉ.) आर.ए. व चतुर्वेदी (डॉ.) शिक्षा, अध्यापक शिक्षा, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउसः मेरठ,पृष्ठ 648–649
- 'सिंह (डॉ.) कर्ण, भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास, एच.पी. भार्गव बुक हाउसः आगरा, पृष्ठ 345 –361
- 'सक्सेना एन आर., मिश्रा, बी.के. व मोहंती, आर.के., अध्यापक शिक्षा, आर. लाल बुक डिपोः मेरठ
- 'पाठक, पी.डी., भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं,अग्रवाल पब्लिकेशंस,आगरा पृष्ठ 336– 337
- https://indubookservices.com/product/adhyapak-shiksha-p-p2019/
- https://e-gyan-vigyan.com/adhyaapak-shiksha-kee-aavashyakata/
- https://ijcrt.org/papers/IJCRT1703074.pdf

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक दर्शन की वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रद्धति में उपयोगिता :- एक अध्ययन

निशा सियाग
शोधार्थी (शिक्षा)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर
Email Id. :- surmanvi@gmail.com
Contact No:- 8003540019

सारांशः –

प्रस्तुत प्रपत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक दर्शन की वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति में उपयोगिता के संदर्भ में उल्लेख किया गया है। उन्नीसवी सदी का अंतिम चरण भारतीय संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में पुनर्जागरण का काल माना जाता है। किंतु इससे पूर्व भी स्वामी दयानन्द ने अपने धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार आंदोलन द्वारा इस राष्ट्रीय चेतना के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा दर्शन के दुष्प्रभावों से आहत भारतीय शिक्षा पद्धति के सम्मुख उन्होंने शिक्षा चिरकाल से विस्मृत वैदिक धर्म की शिक्षा और एवं संस्कृति का न केवलउज्जवल आदर्श प्रस्तुत किया है बल्कि आत्मसम्मान की भावना जागृत की और आधुनिक शिक्षा के अनुसार उन्नति करते हुए अतीत से भी प्रेरणा लेने पर बल दिया । प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति को वो विद्यार्थियों के शारीरिक मानसिक, नैतिक व चारित्रिक उत्थान के लिए आवश्यक समझते थे।

परिचयः –

शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही रहता है। शिक्षा व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त निरन्तर चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ही व्यक्ति सतत् सीखता रहता है। यह सीखना ही उसकी शिक्षा है।

एकशिक्षा, समाज की आधारशिला है। समाज में जैसी शिक्षा होगी, वैसा ही समाज होगा और जैसा समाज होगा वैसी शिक्षा होगी।

शिक्षा :–

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्'धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' शब्द का सीखना और सिखाना होता है। अतः 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया।

दर्शन :–

"दर्शन" शब्द पाणिनीय व्याकरण के अनुसार "दृर्शिप्रेक्षणे" धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। अतः दर्शन का शाब्दिक अर्थ है–दृष्टि या देखना, जिसके द्वारा देखा जाए या जिसमें देखा जाए।

शिक्षा दर्शन :–

साधारण अर्थ में शिक्षा पद्धत्ति दर्शन की ही एक शाखा होती है जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

हमारी दृष्टि में शिक्षा दर्शन को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है :– 'शिक्षा दर्शन शिक्षा शास्त्र की वह शाखा है जिसमें शिक्षा के सम्प्रत्ययों, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओं के सन्दर्भ में विभिन्न दार्शनिकों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है।"

जीवन परिचय :–

12 फरवरी 1824 को टंकारा में मोरबी के पास गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में जन्मे स्वामी जी के बचपन का नाम मूलशंकर था। बचपन से जीवन पर्यन्त उन्होंने कर्मकाण्ड, वैदिक ग्रन्थों, सम्पूर्ण संस्कृत व्याकरण और अन्य साहित्य का अध्ययन किया।

बचपन से स्वामी जी पर वेदों ने अमिट छाप छोड़ी। जिसके कारण स्वामी जी के विचारों में समाज का शुद्धिकरण व चारित्रिक उत्थान प्रमुख रहा। उनका सम्पूर्ण जीवन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने में व्यतीत हुआ। विदेशी शिक्षण पद्धत्ति को हटाने के लिए सदा संघर्षरत रहे जिसके कारण उनको अंग्रेजों की प्रबल शत्रुता का सामना करना पड़ा। इसी शत्रुता के अन्तर्गत 30 अक्टूबर 1883 में अजमेर में स्वामी जी पंचतत्व में विलीन हो गये।

शिक्षा के क्षेत्र में योगदान :–

स्वामी जी की शिक्षा सम्बन्धी धारणाओं में दूरदर्शिता, देशभक्ति, नैतिकता प्रमुख थीं।स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ही सर्वप्रथम 'स्वराज' और "स्वदेशी" की धारणा को प्रकट किया। स्वामी जी का मानना था कि जब हमारे देश में ज्ञान का भण्डार है तो बाहरी स्रोत की हमें क्या आवश्यकता है। वे समाज सुधारक, राष्ट्रवादी, और राजनैतिक आदर्शवादी थे।

स्वामी जी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए शिक्षा का वो स्वरुप प्रस्तुत किया जिससे बचपन से लेकर जीवन–पर्यंत मनुष्य का सर्वांगीण विकास, नैतिक उत्थान, व्यावसायिक सम्बलता, खुशहाल जीवन की प्राप्ति हो सके। उन्होंने बड़ी बारीकि से जीवन के हर पक्ष को ध्यान में रखकर शिक्षा पद्धत्ति प्रस्तुत की।

स्वामी जी के अनुसार भोजन, आचार–विचार, वेश–भूषा, चरित्र निर्माण तथा लोकाचार में निपुणता की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। वह वेद–पठन–पाठन, मातृभाषा व संस्कृत भाषा में शिक्षा का समर्थन करते थे।

स्वामी जी ने प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का समर्थन किया जिसमें विद्यार्थी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर सके। वे बालकों के सर्वांगीण विकास पर बल देते थे। उनका मानना था कि शास्त्रों के साथ–साथ छात्रों को जीवनयापन के लिए सहयोगी शिक्षा भी प्रदान की जानी चाहिए। स्वामी जी ने शिक्षा को सभी का अधिकार बताते हुए बालक–बालिकाओं दोनों के लिए समान रूप से अनिवार्य बताया। उनका मानना था कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी, तब तक घर–परिवार, समाज में पूर्णतया ज्ञान का प्रकाश नहीं फैलेगा ।

वेमनुष्य मात्र को शिक्षित करना चाहते थे।

- उन्होंने सर्व शिक्षा अभियान चलाया।
- उन्होंने नारी – शिक्षा के अधिकार को समर्थन दिया ।
- सबको वेद – अध्ययन का अधिकार
- गुरुकुल – शिक्षा
- हिन्दी भाषा का समर्थन
- प्रथम अनाथ आश्रम की स्थापना जहाँ खाना, कपड़े,और "शिक्षा" निशुल्क दी जाती थी।

- 1875 में मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की।
- 1886 में लाहौर में स्वामी जी के समर्थकलाला हंसराज द्वारा दयानन्द एंग्लों वैदिक कॉलेज कीस्थापना की।
- शिक्षा द्वारा सभ्यता, धार्मिकता, ज्ञान संयमता आदि शक्तियों की वृद्धि करना।
- यथार्थवादी, आदर्शवादी, प्रयोजनवादी, प्रकृतिवादीदर्शनों से परिपूर्ण शिक्षण का प्रचार।

वर्तमान शिक्षा पद्धतिः–

शिक्षा का वास्तविक अर्थ है ज्ञान अर्जित कर अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करना स्वहित और परहित में प्रयत्नशील रहना । परन्तु क्या आज का विद्यार्थी ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है। हमारा उत्तर 'नहीं' ही होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतन वर्षों बाद भी हमारे देश में देशवासी साक्षरता सेअधिक कुछ अर्जित नहीं कर पाए। हम आज भी लार्ड मैकाले द्वारा लागू लुंज पुंज शिक्षा प्रणाली का अनुसरण करते आ रहे हैं। जो शिक्षा प्रणाली लार्ड मैकाले ने लागू की थी वो केवल हमारे देश का विनाश करने और स्वयं के साम्राज्य को चलाने हेतु नौकर तैयार करने के लिए की थी।

आज भी उसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है जिसका एक मात्र उद्देश्य सफलता प्राप्त करना और प्राप्तांको की श्रेष्ठता का दंभ भरना मात्र रह गया है। ऐसी शिक्षा प्रणाली से युवक केवल कागज ही इकट्ठायुवककर पाते हैं। विद्यार्थीसाक्षर तो हो जाते हैं परन्तु शिक्षित नहीं। विदेशी प्रभावों से युक्त होने के कारण विद्यार्थियोंकानैतिक पतन होता जा रहा है। आत्म बोध– देश बोध, राष्ट्र बोध एवं मानवीयता का बोध तक दे पाने में यह शिक्षा सफल नहीं कहीं जा सकती है। वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली से सुशिक्षा का अस्तित्व संकट में हैं।

निष्कर्ष –

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी शिक्षा योजना में प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय आर्दशों का उत्तम समावेश किया हैं। शिक्षा को सभी प्रकार की विभिन्नताओं से अलग रखकर सबको समान रूप से शिक्षा–प्राप्ति का अधिकार प्रदान किया है।

स्वामी जी ने कहा है :– "स्वस्थ मस्तिष्क के सब व्यक्ति इस बात से सहमत होंगे कि शिक्षा का अधिकतम लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब उसे राष्ट्रीय चरित्र एवं स्वरूप में ढाल दिया जाय। वस्तुतः शिक्षा के स्वरूप को इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि वह उन प्राकृतिक बन्धनों को, जो भारतीयों को, एक सूत्र में बांधते हैं, और अधिक दृढ़ बनाएँ एवं उनमें समान राष्ट्रीयता का विकास करें।"

भारतीय शिक्षा का आधार -भारतीय जीवनदृष्टि



नाम –डॉ राजेन्द्र कुमार बगड़िया
पद–प्राचार्य वसुन्धरा महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
पता–ग्राम फदनपुरा, लक्ष्मनगढ–सीकर, राजस्थान पिन कोड –332316
मो.न.–9610213346
ई–मेल –rajendra.bagaria46@gmail.com

भारतीय शिक्षा का आधार

मानव जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। शिक्षा ही वह आभूशण है जो मनुष्य को सभ्य एवं ज्ञानवान बनाती है अन्यथा शिक्षा के बगैर मनुष्य का जीवन पशु के समान है। शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए ही प्रायः शैक्षणिक गतिविधियों को वरीयता दी जाती है। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली स्कूल एवं कॉलेजों पर केंद्रित एक व्यवस्थित प्रणाली है। भारतीय संस्कृति एवं जीवन दर्शन का विस्तार अनंत है। जो हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। शिक्षा मनुष्य का परिष्कार करती है। शिक्षा ही मनुष्य को सभ्य बनाती है। शिक्षा के उद्देष्यों का निर्धारण दर्शनशास्त्र द्वारा ही होता है तथा दर्शन ही शिक्षा के उद्देश्यों पर नियंत्रित करता है।शिक्षा साध्य है भारतीय शिक्षा का इतिहास प्राचीनतम है किसी समय में भारत विश्व गुरू था परन्तु आज हमें भारतीय अतीत को जानने समझने उचित शिक्षण पद्वति का उपयोग कर भारत को पुनः विश्व गुरू बनाना है।

दर्शन का सामान्य अर्थ देखना या जानना अर्थात् जिसे देखा जाए या सत्य का दर्शन किया जाए। ज्ञान की अनेक शाखाओं में दर्शन विशिष्ट है। यह मूल की खोज करता है। वस्तुतः यह ज्ञान की वह शाखा है जिसके माध्यम से सत्य की प्राप्ति होती है। हमारी संस्कृति अध्यात्म केन्द्रित है। परमतत्व की प्राप्ति ही हमारी साधना का उद्देश्य है। सभी दार्शनिक परम्पराओं में अद्वैत वाद,शुद्धाद्वैत वाद, द्वैताद्वैत वाद आदि आत्मचिंतन और परमत्तव का अन्वेशण ही प्रमुख है। दर्शन आत्मानुभूति को ही मुक्ति का मार्ग माना है। तमसो मा ज्योर्तिगमय। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना है जिसमें अमृत जीवन ही काम्य है।

किसी भी साध्य को बिना साधन के प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दर्शन लक्ष्य की बात करता है और शिक्षा साधन की । शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा के स्वरूप उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम प्रविधियॉ एवं शिक्षक एवं विद्यार्थियों के बहुस्तरीय सम्बंध का निर्धारण में दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय दर्शन के दो भाग है। 1.आस्तिक 2. नास्तिक। वेद का मूलाधार मानने वाले आस्तिक हैं। जबकि नास्तिक वेद को प्रमाणित नहीं मानते हैं।

आचार्य शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित वेदांत दर्शन भारतीय ज्ञान परम्परा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दर्शन है। इसे हम मेरूदंड भी कह सकते हैं। यह जीव और परमात्मा को अद्वैत मानता है। योग दर्शन महर्शि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित है। साधना और अभ्यास के माध्यम से इसमें ज्ञान प्राप्ति का प्रावधान है। योग का शाब्दिक अर्थ है चित्तवृतियों का निरोध। श्रीमद् भागवत् गीता कहती है योगः कमसु कौशलम् चित्तवृतियों का निरोध इसलिए कर्मो में कुशलता प्राप्त की जा सके । ज्ञान योग एवं कर्म योग और राजयोग इसके तीन रूप बताए गए हैं। शिक्षा का अभिप्रेत यहॉ प्रकृति तत्व से ईश्वर तत्व की ओर ले जाना है। शिक्षा का लक्ष्य है ईश्वर की प्राप्ति से हैं। योग दर्शन में ज्ञान प्राप्ति के जिन साधनों का

उल्लेख है वे हैं प्रत्यक्ष अनुमान शब्द और योग। योग दर्शन में ज्ञान प्राप्ति के प्रमुख पड़ाव हैं यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान और समाधि। मीमांसा दर्शन को वेदांत दर्शन के क्रम में देखने की परंपरा है। इसे पूर्व मीमांसा कहा जाता है जबकि वेदान्त दर्शन को उत्तर मीमांसा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। पूर्व मीमांसा में धर्म के विशद् स्वरूप का विवेचन किया गया है।

आधुनिक भारतीय निर्माताओं में विवेकान्नद अत्यन्त प्रसिद्व हैं। शंकराचार्य प्रणीत वेदान्त का वे आधुनिक विवेचन करते है। मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर भारतीयता के नवजागरण कालीन व्याख्याकारों में प्रमुख है। वे विष्वबोध से युक्त उनकी ड्डष्टि में समस्त प्राणियों के प्रति एकात्मभाव है। टैगोर जीवन और सृष्टि के बीच समरसता की स्थापना हो जिससे समूची मानवता और विश्व के बीच की विशमताएँ दूर हो सकेगी।

शिक्षकों के प्रति आदर का भाव भारतीय शिक्षा पद्वति का मूल आधार रहा है। जो शिक्षकों के जीवन का मूल आधार होता है। अच्छी शिक्षा देकर अच्छे इसांन बनाकर आप सभी शिक्षकगण समाज निर्माण का काम कर रहे हैं। प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा का ह्रास हुआ है। विदेशियों ने यहॉ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया जिस अनुपात में होना चाहिए। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। आज भी ये चनौतियॉ व समस्याएँ हमारे सामने है।

भारतीय जीवनदृष्टि

भारत में गुरूकुल शिक्षा पद्वति थी परन्तु मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ भारत की शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधरित थी। शिक्षा मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में थी। यह व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि धर्म के लिए थी। भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है। भारतीय शिक्षा में आचार्य का स्थान बड़ ही गौरव का था। उनका आदर और सम्मान होता था। आचार्य पारंगत विद्वान् सदाचारी क्रियावान निरभिमानी होते थे और विद्यार्थियों के कल्याण के लिए सदा कटिबद्ध रहते थे। अध्यापक छात्रों का चरित्रनिर्माण उनके लिए भोजन वस्त्र का प्रबंध करते थे। आचार्य विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते थे। विद्यार्थी गुरू का सम्मान और उनकी आज्ञा का पालन करते थे। आचार्य का चरणस्पपर्श के लिए शिक्षार्थी प्रातःकाल ही प्रस्तुत हो जाते थे। गुरू के आदेश का पालन करते थे। विद्यार्थी के लिए भिक्षा का कार्य करना होता था भिक्षा से प्राप्त सामग्री गुरू को समर्पित कर विद्यार्थी मनन और निदिध्यासन में लग जाते थे।

भारत में शिक्षा की वर्तमान स्थिति व शिक्षा प्रणाली में कौशल और हुनर का अभाव है। यह रोजगारोन्मुख नहीं है शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् योग्यता के अनुसार रोजगाार का अभाव है। स्कूल,कॉलेज और विश्वविद्यालय डिग्रियॉ बॉटने वाली एजेंसिया बन गई हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को व्यावहारिक सफल एवं आदर्श स्वरूप प्रदान करने के लिए इसमें बदलाव एवं सुधार की आवश्यकता है। उदीयमान भारत की वैश्विक भूमिका को रेखांकित भी करते हैं और उस दिशा में बढने के लिए मार्ग दिखाने का भी प्रयास करते हैं।

सरांश

वैदिक शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भॉति हम आज भी समस्त ज्ञान–विज्ञान कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते है। वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली उस समय की संसार की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली थी परन्तु आज के भारतीय समाज के स्वरूप और उसकी भावी आवश्यकताओं की दृष्टि से कुछ तत्व ग्रहणीय हैं और कुछ तत्व त्याज्य हैं। हमें वैदिक कालीन शिक्षा के ग्रहणीय तत्वों को ग्रहण कर अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को प्रभावी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षक शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं उपयोगिता

डॉ. हिमाक्षी वर्मा

किसी देश की समृध्दि उसकी शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। और शिक्षा प्रणाली में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। शिक्षक द्वारा कराया गया शिक्षण जितना प्रभावी होगा उतना ही प्रभावी परिणाम प्राप्त होगा अर्थात् देश को उत्तम नागरिक प्राप्त होगा। शिक्षण प्रक्रिया विज्ञानं एवं कला दोनों पर आधारित होती है। अतः शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया के साथ – साथ समाज का भी महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षक को शिक्षित होने के साथ प्रशिक्षित होना भी आवश्यक है। शिक्षक शिक्षा, शिक्षक के शिक्षण कौशल को विकसित करती है जिसका उपयोग करके शिक्षक एक अबोध बालक को उचित आकार प्रदान करता है। विभिन्न विधियों ,प्रविधियों ,सहायक सामग्रियों का ज्ञान शिक्षक को अध्यापक शिक्षा के माध्यम से प्राप्त होता है। यह ज्ञान शिक्षक को बालक का सम्पूर्ण विकास करने और विषयवस्तु को समझाने में सहायक सिध्द होता है। शिक्षक शिक्षा, शिक्षक के शिक्षण को उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करती है। शिक्षक यदि प्रशिक्षित होगा तो उसके शिक्षण में प्रभावकारिता होगी जो शिक्षण प्रक्रिया को श्रेष्ठता की ओर ले जाएगी।

मुख्य शब्द (□ □ □ □):- शिक्षा ,शिक्षक, शिक्षक शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण।

(□ □ □ □ □ □ □ □□□□

परिवर्तन हुए जो की बिना शिक्षा के संभव ही नहीं थे। अतः शिक्षा मानव की एक आधारभूत आवश्यकता है।

शिक्षा के माध्यम से ज्ञान में वृध्दि होती है जो आधुनिक विचारों के अनुरूप व्यव्हार करने हेतु समाज को प्रेरित करती है। भारत एक विकासशील देश है, जहाँ रोज नए परिवर्तन और खोज हो रही है, लगातार ज्ञान में परिवर्तन के कारण शिक्षकों की भूमिका भी बदलती रहती है। एक अच्छा शिक्षक लगातार अपने में सुधार करता है और समय के साथ अपनी भूमिका को समझकर उसके अनुरूप आचरण करता है।सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान चलाकर प्रत्येक बालक तक शिक्षा पहुँचाने की कोशिश की है। लेकिन उसकी गुणवत्ता को बेहतर बनाने का कार्य केवल शिक्षकोंद्वाराही किया जा सकता है। शिक्षक ही बालकों की बौध्दिक एवं नैतिक बुनियाद बनाकर उसे मजबूत कर सकता है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी के निर्माण में शिक्षक की भूमिका अहम होती है।

शिक्षक के कौशल एवं ज्ञान का विकास किये बिना देश की शिक्षण प्रक्रिया को बेहतर बनाना संभव नहीं है। शिक्षा की गुणवत्ता सुधार के लिए कौशलयुक्त, शिक्षित एवं प्रशिक्षित शिक्षक की आवश्यकता होती है। इसलिए शिक्षक को सक्षम बनाने के लिए शिक्षक शिक्षण की आवश्यकता है।

शिक्षक शिक्षण की आवश्यकता क्योंघ

शिक्षण एक आदर्श एवं महान पेशा है, और यह अपने विभिन्न आयाम के कारण अन्य सभी से अलग है। शिक्षक अन्य व्यवसायियों के समान ही राष्ट्र विकास की गतिविधियों में जुड़ा एक बड़ा समूह है। जिस प्रकार व्यवसायियों को किसी विशेष पेशे के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है, उसी प्रकार शिक्षक को भी शिक्षण के लिए प्रशिक्षित करना आवश्यक होता है।

शिक्षक प्रशिक्षण से शिक्षक को शिक्षा – शास्त्र का ज्ञान, शिक्षण तकनीकों का ज्ञान विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण का ज्ञान, बालकों को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान आदि प्राप्त होते हैं।

शिक्षक शिक्षा शिक्षक को समाज की आवश्यकता एवं बालक की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षण प्रदान करने में सक्षम बनती है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य निर्माण करना है और शिक्षक शिक्षा मनुष्य निर्माण प्रक्रिया को सुनिश्चित करती है। शिक्षक शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। एक प्रभावी शिक्षक वही है जो समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर समुदाय का विकास करे तथा वांछनिय सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायता करे।

शिक्षक शिक्षाके माध्यम सेशिक्षकों को इस प्रकार प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाता है कि वे ज्ञान एवं मूल्यों का एक पीढी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानान्तरण करसके और वो वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण, प्रयोगात्मक सोच एवं मानवीय प्रवृत्तियों को विकसित कर सके क्योकि एसा होने से शिक्षक की व्यवसायिक दक्षता में वृध्दि होगी और शिक्षण कार्य कराकर उसे संतोष प्राप्त होगा।

अध्यापक शिक्षा की अवधारणा एवं वर्तमान स्वरूप

रजनीश कुमार
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर
Email – rajneeshswami@gmail.com
Mobile- 9413544170

शिक्षण की अवधारणा में परिवर्तन –

वर्तमान समय में प्रवशति 'अध्यापक प्रशिक्षण' को छोड़कर अध्यापक शिक्षा की ओर बढ़ी है जिसके फलस्वरूप प्रशिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों को शिक्षण का अधिक ज्ञान एवं कौशल देने से संतुष्ट नहीं है। शिक्षक एक पूरी तरह शिक्षित तथा पूर्ण विकसित मनुष्य, योग्य नागरिक और व्यावसायिक हो इसको प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रम में जोड़ा जा रहा है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में जो अत्यधिक ज्ञान का विस्तार हुआ है, उसकी मांग बढ़ रही है।

अध्यापक की भागीदारी में परिवर्तन –

आज के शिक्षक को कल का आचार्य बनाना पडेगा। वह केवल ज्ञान प्रदान करने वाला ही नहीं है, उसे अधिगम का निर्देशक तथा संस्कृति का प्रचारक भी बनना है यदि शिक्षा को समाजिक परिवर्तन का शक्तिशाली उपकरण बनना है तो उस को इस परिवर्तन का कार्यकर्ता, सामाजिक अभियन्ता तथा भविष्य के समाज का शिल्पी बनना पडेगा। उस का कार्य केवल कक्षा तथा विषय तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसे सम्पूर्ण समाज तथा सांस्कृतिक परिवर्तनका मार्गदर्शन बनना पडेगा।

विद्यालय की अवधारणा में परिवर्तन –

विद्यालय की अवधारणयें प्रतिदिन बदलती जा रही है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालय को अपने तथा आम समुदाय के बीच अन्तः प्रक्रिया बनाये रखनी आवश्यक होगी ताकि वह आस–पास के वातावरण तथा स्थिति में परिवर्तन ला सके।

अध्यापक–शिक्षण में परिवर्तन –

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम इतना लचीला होना चाहिए कि वह साधारण तथा सृजनात्मक शिक्षक, दोनों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। वास्तव में सभी शिक्षकों से कक्षा में सृजनात्मक कार्य

करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती आज कक्षाओं में भीड़ बढ़ती जा रही है किन्तु समाज के विभिन्न स्तरों से बहुआयामी योग्यता वाले शिक्षकों को खोज निकालना होगा। अध्यापक शिक्षण कार्यक्रमों में विविधता लानी होगी। अभिवृत्तियों तथा कौशलों के विकास पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि इनके विकास में उद्देश्यपूर्ण अभ्यास की जरूरत है। प्रशिक्षण कॉलेजों के कार्यक्रम में बहुत अधिक भीड़ है। जिससे तथ्यों का एकीभूत होने, केन्द्रित होने, सोचने, आलोचनात्मक परीक्षण तथा सैद्धान्तिकरण में समय लगता है। जैसा कि मैकनायर कमेटी रिपोर्ट में बताया गया है। प्रशिक्षण में छात्रअध्यापक कोअपने कार्यक्रम समाप्त करने की जल्दी नहीं होनी चाहिए ताकि वे उसमें आत्मसात् हो जाये।शिक्षा आयोग (1964–66) की रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद से शिक्षक के गुणों पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा है।

शिक्षा ही राष्ट्र को आत्मनिर्भरता, आर्थिक विकासपूर्ण रोजगार, राजनैतिक विकास, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण की ओर ले जा सकती है।

माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन –

भारत में माध्यमिक शिक्षकों की शिक्षा एक शतक से भी अधिक पुरानी है। पहले की शिक्षा का क्षेत्र सीमित था। कक्षा प्रबन्धन, श्यामपट्ट कार्य, जैसी पद्धती चलती थी। वर्तमान कार्यक्रमों पर शिक्षा मनोविज्ञान का भारी प्रभाव है। कक्षा के अन्दर तथा कक्षा और विद्यालय के बाहर शिक्षक के सभी कार्यो पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा के प्रसार तथा बालकों की चिन्ता के कारण, गुणात्मक सुधार आवश्य हो गया है। देश में जनतंत्र होने के कारण शिक्षकों की तैयारी में नये आयाम जुड गये है। इसलिये राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान के साथ मिलकर इस कार्य के करने की कोशिश की है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अध्यापक शिक्षक संघ ने विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के साथ मिलकर इस कार्य को करने की कोशिश की है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद का यह विश्वास है कि यह उचित समय है। जबकि विश्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कार्यक्रम के शोध द्वारा एकत्रित तथ्यों पर आधारित हो क्योंकि समस्याओं और कार्यक्रम की कमियों को स्पष्ट तौर पर पहचाना नहीं गया है। तथा इसका समाधान भी स्पष्ट नहीं है।

अध्यापक शिक्षा में कठिनाइयाँ–

वर्तमान में अध्यापक शिक्षा के प्रशिक्षण के लिए बी.एड. पाठ्यक्रम का प्रयोग किया जा रहा है। जिसका मुख्य उद्देश्य अध्यापक प्रशिक्षण को एक परिपूर्ण अनुभव प्रदान करना तथा अध्यापन को कौशलों को विकसित करना और शिक्षकों में मूलभूत सिद्धान्तों तथा सहीअभिवृत्तियों को विकसित करना है।

1. इसका कार्यक्रम बहुत अल्पसमय के लिए होता है।
2. इसमें शिक्षा की विधि पर अधिक बल दिया जाता है। विषयवस्तु के ज्ञान पर ध्यान नहींदिया जाता।
3. इसके अन्तर्गत सिद्धांत और अभ्यास में कोई सम्बन्ध नहीं हैं।
4. इसके स्वरूप भारतीय संगठनों के अनुरूप नहीं है।
5. इसका पाठ्यक्रम व इसके प्रशिक्षण का ढंग पुराना हो चुका है।
6. यह आधुनिक शिक्षा पर आधारित नहीं है।
7. यह लोचपूर्ण नहीं है।
8. यह विद्यालयों व समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से सम्बन्धित नहीं है।

अध्यापक शिक्षण कार्यक्रम के गुणात्मक विकास के लिए सुझाव –

1. विषय का पूर्ण नियोजित समायोजन।
2. विश्वविद्यालयों का स्नातकोतर महाविद्यालयों के सहयोग से शिक्षण के मूल तत्वों काअध्ययन करना।
3. विश्वविद्यालयों में सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों को आरम्भ करना।
4. शिक्षा में अनुसंधान के विकास द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय परिस्थितियों केअनुरूप बनाना।
5. शिक्षा की तकनीक में ऐसा सुधार जिससे कि स्वअध्ययन तथा वाद–विवाद को पूरास्थान मिल सके।
6. मूल्यांकन के तरीकों में सुधार जिससे की आन्तरिक प्रयोगात्मक कार्य का सही तरीकेसे मूल्यांकन करना।
7. शिक्षण अभ्यास में सुधार और इसे व्यापक कार्यक्रम बनाना। विशेष पाठ्यक्रमों तथाकार्यक्रम का विकास।
8. विकासशील शिक्षा पद्धति में शिक्षक की बहुमुखी जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुएहर स्तर पर शिक्षा पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम में सुधार करना।

निष्कर्ष :–

वर्तमान में छात्र उन शिक्षकों को पसन्द करते है। जिन्हें अपने विषय पर अधिकार के साथ अन्य विषयों की भी समझ हो, जिनके विचार स्पष्ट हो तथा जो अपने कार्य में कुशल हो और छात्रों को सही तरह से दिशा निर्देश दे सके, छात्रों में रूचि ले, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं का

समाधान निकालने में उनका सहयोग दें मैत्रीपूर्ण स्वभाव होने के साथ–साथ वे कुछ सीमा तक कठोर भी हो तथा अपने कार्य को पूरे व्यवसायिक रूप से करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

- त्यागी, रामनरेश : भारतीय शिक्षा और समस्याएं पृष्ठ संख्या 14–16
- डॉ. मुखोपाध्याय, श्रीधर : भारतीय शिक्षा का इतिहास पृष्ठ संख्या 41–43
- पाठक, पी.डी. : भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं पृष्ठ संख्या 57
- मिश्रा, आनंद : अध्यापक शिक्षा का स्वरूप, पृष्ठ संख्या 26–29
- नया शिक्षक : राष्ट्रीय त्रेमासिक पत्रिका, वर्श–6, अंक–2, अप्रैल 2019

भारतीय शिक्षा का आधार–भारतीय जीवन दृष्टि

श्रीमती रजनी जोशी
प्रोफेसर (हिन्दी साहित्य)
एम.डी. गोयनका गर्ल्स कॉलेज
लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

शोध सारांश– शिक्षा अनवरत चलने वाली एक सतत् प्रक्रिया है तथा शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे मनुष्य का भविष्य संवरता है। शिक्षा बहुआयामी विकल्प है मानव के विकास का तथा राष्ट्र के विकास का। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा का आधार पाश्चात्य संस्कृति है, जिससे युवा पथ–भ्रष्ट एवं गुमराह हो रहे हैं। इसीलिए हम चाहते हैं कि भारतीय शिक्षा का आधार– भारतीय जीवन–दृष्टि हो। हम हमारे भारत के प्राचीन शैक्षिक इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें हमारी मानवीय मूल्यों सहित आध्यात्मिक वातावरण में प्रदान की गई शिक्षा का संपूर्ण ब्यौरा मिल जाएगा। हमारी प्राचीन शैक्षिक–परम्परा गुरूकुल की परम्परा रही है, शिष्य 8 वर्श की आयु में यज्ञोपवित संस्कार से संस्कारित हो, गुरू के आश्रम में अर्थात गुरू–गृह में पठन–पाठन अध्ययन के लिए भेज दिए जाते थे। इसके साक्ष्य में, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में लिखित चौपाई है–

''भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेउ गुरू पितु माता।।
गुरू–गृह गए पढ़न रघुराई। अल्प–काल विद्या सब आई।।

गुरू के सानिध्य में जाने पर शिष्य को गुरू की दिनचर्या के अनुसार, गुरू की सेवा–हित सभी कार्य सहर्श करने पड़ते थे तथा इसके अतिरिक्त वेदों की ऋचाओं को कंठस्थ करना मंत्रोच्चार एवं स्वाध्याय करना। प्रातः एवं संध्या–समय ईश–वन्दन भगवत–भजन इत्यादि संस्कारों को ग्रहण करता हुआ विद्यार्थी जीवन जीने की कला के साथ–साथ आध्यात्मिक वातावरण में अपना आत्मिक–उत्थान भी कर लेता था। सैद्धांतिक, धार्मिक और व्यवहारिक शिक्षा साथ ही उच्च मानवीय मूल्य भी विद्यार्थी के व्यक्तित्व को निखार देते थे। जाति– धर्म उँच–नीच सभी भेदों को भुलाकर गुरू, शिष्यों में मानवीय दृष्टिकोण उत्पन्न कर देते थे। चूंकि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है जिसका जीवन–दर्शन आध्यात्म से संबंधित है इसीलिए भारतीय सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा गौरवशाली रहे हैं तथा हमारा देश जगतगुरू कहलाया। किन्तु आज के पाश्चात्य रंग में रंगी लॉर्ड मैकाले की अंग्रेजियत– शिक्षा किस प्रकार युवा पीढ़ी को भारतीयता एवं भारतीय दर्शन से दूर कर सिर्फ भौतिकवादी संस्कृति के दिवा–स्वप्न दिखा रही हैं और गुमराह युवा अन्धानुकरण कर उस दौड़ में शामिल होता जा रहा है, जहाँ सिर्फ और सिर्फ भौतिकता तथा चकाचौंध है, जो कुछ समय पश्चात उन्हें पतन के गर्त में ढ़केलने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती हैं। भारतीय संस्कृति, दर्शन आध्यात्मिकता की गहरी मूल से सिंचित है अतः वही वर्तमान में विद्यार्थियों को पथ–भ्रष्ट होने से बचा सकती है, उन्हें सही मार्ग की और प्रशस्त कर सकती है। विद्यार्थी नैतिक– मूल्यों के साथ शिक्षित होकर राष्ट्र का एक सुंयोग्य नागरिक बनकर भारतीय दर्शन के मानवीय मूल्य व

मानवीय–दृष्टिकोण, आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित कर सकते हैं। अतः वर्तमान समय की मांग है कि, शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन कर, भारतीय शिक्षा का आधार भारतीय जीवन–दृष्टि होना आवश्यक हैं तभी हमारा राष्ट्र एक बार पुनः ज्ञान–विज्ञान, कला, धर्म, नीति का परचम लहराकर विश्व में जगत–गुरू की उपाधि प्राप्त कर सकता हैं।

राजकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. बिन्दू कुमारी
शोध निर्देशक
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय जोधपुर

राकेश रेगर
शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय जोधपुर
Email ID :rakeshregar07@gmail.com
Mobile No. : 9928989485

शिक्षा से तात्पर्य स्कूल के अन्दर व बाहर मिलने वाले वे सारे अनुभव है जो कि व्यक्ति को किसी भी प्रकार से उसके पूरे जीवन काल में प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा पूरे जीवन चलने वाली चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकिया है और जिसे समय, स्थान या व्यक्ति की सीमाओं में नहीं बाधा जा सकता। मनुष्य हर समय ज्ञान व अनुभव के रूप में कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करते हैं।

शिक्षा मानव जीवन का एक सुसंस्कृत एवं महत्वपूर्ण पक्ष है इसके द्वारा मानव अपना आर्थिक विकास करता है एवं जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है। तथा अपने आचार–विचार व रहन–सहन में परिवर्तन व परिमार्जन करता है। वर्तमान के वैज्ञानिक युग में व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाने के लिए सम्पूर्ण समाज तथा राष्ट्र का विकास करने के लिये अच्छी शिक्षा को एक सबल आधार माना जा रहा है। आज शिक्षा का उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास कर उसे समाज, राष्ट्र एवं विश्व की प्रगति में सहायक कुशल नागरिक बनाना है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य सुविचार प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीवन के विभिन्न पहलुओं का पोषण होता है। शिक्षा किसी न किसी रूप में आदिकाल से ही दी जा रही है। सर्वप्रथम शिक्षा बालक को माता–पिता द्वारा ही दी जाती थी और वे ही बालक को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत कराते है, परन्तु धीरे–धीरे समाज की ज्ञानार्जन की भावना बलवती होती जाती है और शिक्षा की अत्याधिक आवश्यकता महसूस की जाने लगी और यह दृष्टिकोण अपनाया गया कि शिक्षा विशेष व्यक्तियों द्वारा विशेष स्थानों पर ही प्रदान की जाये। इस प्रकार शिक्षक तथा महाविद्यालयों का विकास हुआ। जॉन ड्यूवी ने उसे प्रगतिशील प्रक्रिया कहा है। प्रगति के अभाव में शिक्षा अपने कर्तव्य से च्युत हो जायेगी

और इसकी सुस्थिर नींव पर निर्मित मानव सभ्यता तथा संस्कृति का विशाल भवन निष्प्राण हो जायेगा। अतः शिक्षा के अन्तर्गत प्रगति, परिमार्जन और विकास के मापन हेतु परीक्षा की आवश्यकता निर्विवाद है। आज प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं एवं उनके परिणाम के प्राप्तांकों के आधार पर होता है क्योंकि विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति का मापन परीक्षायें ही है।

व्यक्तित्व का बाहरी पक्ष शारीरिक संरचना पर निर्भर करता है सुन्दर तथा स्वस्थ शरीर आकर्षण तथा व्यक्तित्व का मालिक होता है। किसी भी व्यक्ति का रंग रुप, कद, भार, इत्यादि जन्मजात होते हैं। किसी भी शरीर की सुन्दर संरचना सभी ओर से प्रसंसनीय रहती है। यह प्रशंसा व्यक्ति के आत्म–विश्वास की आधारशीला है। इस के व्यक्तित्व को किसी न किसी ढ़ंग से प्रभावित करती है।

व्यक्तित्व–

व्यक्तित्व से तात्पर्य कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन से है जिसे वह अपने सामाजिक जीवन के आदान–प्रदान में व्यक्त करता हैं। परसॉनैलिटी शब्द की उत्पत्ति ''परसोना'' से हुई है। 'परसोना' एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ मुखावरण या नकली चेहरा है। यूनान के लोग नाटक के बड़े शौकीन थे। नाटक के समय अभिनय के अनुसार अभिनेता अपने असली चेहरा को छिपाकर नकली चेहरा के साथ दर्शकों के सामने आने के लिए अपने चेहरों पर एक विशेष मुखावरण लगा लिया करते थे, जिसको परसोना कहा जाता था। अभिनेता के मुखावरण को देखकर ही दर्शकों को इस बात का अनुमान हो जाता कि उसका अभिनय किस ढंग का होगा। इस प्रकार, एक विशेष समय में किसी अभिनेता के अच्छे, बुरे, संवेगी, असंवेगी या क्रोधी होने का परिचय उसके मुखावरण से मिल जाया करता है। इसी आधार पर बाद में शारीरिक गठन, शारीरिक प्रतीति तथा वेश–भूषा को व्यक्तित्व मान लेने की भूल की गयी। व्यक्तित्व एक जटिल प्रत्यय है, जिसकी एक भी परिभाषा ऐसी नहीं है, जिससे सभी मनोवैज्ञानिक सहमत हों। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को दो भिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ मनोवैज्ञाकिों ने व्यक्ति के बाहरी पक्ष जैसे –शारीरिक रचना, रूप–रेखा, रंगरूप आदि को ध्यान में रखकर और कुछ ने व्यक्ति के आंतरिक पक्ष जैसे–मानसिक रचना, स्वभाव, बौद्धिक योग्यता, नैतिकता

आदि को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व को परिभाषित किया है।

आलपोर्ट के अनुसार मनोदैहिक शीलगुणों का यह संगठन स्थिर नहीं है, बल्कि गत्यात्मक है। परिवर्तनशील वातावरण में व्यक्तित्व–संगठन में भी परिवर्तन हो सकता है। एक व्यक्ति एक परिस्थिति में ईमानदार और दूसरी परिस्थिति में बेईमान प्रमाणित हो सकता है। एक व्यक्ति एक परिस्थिति में निर्दय और दूसरी परिस्थिति में दयालु सिद्ध हो सकता है। अतः व्यक्तित्व संगठन में गत्यात्मकता का गुण पाया जाता है। परन्तु, इसके साथ–साथ व्यक्तित्व संगठन में संगति या स्थिरता भी पाई जाती है। यह सत्य है कि एक व्यक्ति एक परिस्थिति में ईमानदार और दूसरी परिस्थिति में बेईमान बन जाता है। परन्तु, यह भी असत्य नही है कि ईमानदार व्यक्ति अधिकांश परिस्थितियों में ईमानदार ही रहता है केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में बेईमान बन सकता है, इसी प्रकार बेईमान व्यक्ति अधिकांश परिस्थितियों में बेईमान रहता है। केवल यदा–कदा ईमानदार बन सकता है। एक लज्जालु व्यक्ति अधिकांश परिस्थितियों में लज्जालु और एक आक्रमणशील व्यक्ति अधिकांश परिस्थितियों में आक्रमणशील ही रहेगा। अतः प्रमाणित हुआ है कि व्यक्तित्व संगठन में एक ओर स्थिरता तथा दूसरी ओर गत्यात्कता की विशेषता पाई जाती है। इस प्रकार, आल्पोर्ट ने व्यक्तित्व निर्माण में परिवर्तनशील वातावरण के महत्व को स्वीकार किया और व्यक्तित्व के अभियोजन पक्ष पर बल दिया है।

"शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण"

डॉ. शिप्रा गुप्ता

HOD, शिक्षाविभाग

बियानी B.ED.गर्ल्स कॉलेज, जयपुर

Email:-shipragupta086@gmail.com

Contact No. - 9461036868

सारांश

भारत विश्व के अग्रणी देश में सम्मिलित हो चुका है। यह विश्व की बड़ी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक शक्ति बनने की और अग्रसर है। भारत निकट भविष्य में ही संपूर्ण विश्व को प्रशिक्षित मानव संसाधनों की आपूर्ति करने वाला देश होगा। कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र के तीव्र विकास के साथ–साथ गरीबी निवारण, रोजगार, सृजन, व ज्ञान आधारित समाज की संरचना एवं चरित्रवान कुशल नागरिक के निर्माण के लिए देश में शिक्षा, शिक्षण एवं शिक्षण अधिगम प्रशिक्षण की दिशा में ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। जो शिक्षण जगत के नए शिक्षा नीति को व्यवहारिक पटल पर सार्थक बनाना भी एक चुनौतीपूर्वक लक्ष्य है। भारतीय दर्शन के अनुसार, "असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय" मुख्य रूप से शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करता है। जो बताता है कि शिक्षा असत्य से सत्य की ओर ले जाना तथा अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना है। जिसको पूर्ण करने के लिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान अध्यापक ही इस प्रक्रिया को आगे बढ़ता है। इस प्रक्रिया में भारतीय दृष्टिकोण शिक्षक की पेशेवर तैयारी और उनके कौशलों को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। शिक्षा लोगों, समाज और राष्ट्र की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है और यह दुनिया में तेजी से विकास की चुनौतियों का सामना करने में भी मदद करती है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया विविधता, सांस्कृतिक विविधता और तात्कालिक सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विकसित होती है।

मुख्य शब्द :–

शिक्षा, अधिगम, शिक्षण, पेशेवर तैयारी, व्यवहार, लक्ष्य, शिक्षण अधिगम, भारतीय संस्कृति, समर्थनात्मक, सम्पूर्णता, अनुभवमय,विकास।

प्रस्तावना :–

भारतीय शिक्षा प्रणाली एक अत्यंत प्राचीन और समृद्ध परंपरा का परिचय कराती है जो गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित है। यहाँ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को एक मजबूत और उदार परिपेक्ष्य में समझा जाना चाहिए, जो न केवल ज्ञान का प्राप्तिकरण है, बल्कि विद्यार्थियों के सामाजिक, आध्यात्मिक, और नैतिक विकास का भी माध्यम होता है।

शिक्षणरू शिक्षण से तात्पर्य बालकों को ज्ञान, सूचना ,जानकारी व परामर्श देना ही शिक्षणहै यह शिक्षण पूर्ण नियोजित व नियंत्रित होती है।

- **रॉयन्स के अनुसार"** दूसरों को सीखने के लिए दिशा निर्देश देने तथा अन्य प्रकार से उन्हें निर्देशित करने की प्रक्रिया को शिक्षक कहते हैं"
- **सिंपसन के अनुसार** शिक्षण वह साधन है जिसके द्वारा समूह के अनुभवी सदस्य परिपक्व छोटे सदस्य का जीवन में अनुकूल करने में पथ प्रदर्शन करते हैं।

अधिगम

एक व्यापक सतत एवं जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है वातावरण से समायोजन की प्रक्रिया के दौरान अनुभव से ज्ञान प्राप्त करना ही सीखना अधिगम है व्यक्ति के अधिगम की क्षमता जितनी अधिक होती है उतना ही उसके जीवन का विकास होता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

सामान्यतः अधिगम का अर्थ तथ्यों, जानकारी या सूचनाओं की समग्र प्राप्ति से लगाया जाता है, पर यह अधिगम का सही अर्थ नहीं है।

अधिगम को व्यवहार में परिवर्तन या व्यवहार में संशोधन के प्रक्रिया माना जाता है। व्यक्ति को अपने परिवेश में रहने रहते हुए अनेक प्रकार के अनुभव होते रहते हैं। इन अनुभवों से उसके व्यवहार (क्रियोओ, प्रतिक्रियाओं या अनुक्रियाओं) में परिवर्तन घटित होता है, या प्रशिक्षण द्वारा उनके व्यवहार में संशोधन होता रहता हैद्य जैसे 'आग को पकड़ने पर यह ज्ञान होता है कि गर्म वस्तु को छूने से पीड़ा होती है। इस प्रकार स्वयं अनुभव के द्वारा या अन्य व्यक्तियों द्वारा सीखने पर व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन या संशोधन होता है। इस व्यवहार में परिवर्तन या संशोधन को ही अधिगम की संज्ञा दी जाती है।

मिलर एवं डोलाड के अनुसार

शिक्षण अधिगम के चार सोपान होते हैं। यह सोपान निम्न हैः–

- **आवश्यकता का अनुभव होनाः**–सर्वप्रथम बालक की अधिगमित की जाने वाली सामग्री की आवश्यकता का अनुभव करवाया जाना चाहिए।
- **लक्ष्य को देखना :**–बालक आवश्यकताओं को अनुभव कर लक्ष्य को देखता है।
- **लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास :**–लक्ष्य को देखकर वह लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास करते हैं।
- **लक्ष्य प्राप्ति :**–प्रयास के फलस्वरूप लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

बालक व अधिगम हेतु अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है। अभिप्रेरणा आवश्यकता के रूप में प्राप्त होती है। अभिप्रेरित बालक अधिगम के लक्ष्य का निर्धारण करता है।

इसके पश्चात वह लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास करता है। तथा मार्ग में बढ़ाएं आने पर कई अनुक्रियाएं करता है। और अंत में सही अनुक्रिया का चयन कर लक्ष्य प्राप्ति करता है। लक्ष्य प्राप्ति से उसे पुनर्बलन प्राप्त होता है और फलस्वरुप वह वही अनुक्रिया भविष्य में दोहराता है।

"डिशैल के अनुसार"

- **अभिप्रेरणा**
- **लक्ष्य प्राप्ति में बाधाऐं**
- **विविध अनुक्रियाएं**
- **सही अनुक्रिया का चयन।**
- **उद्देश्य प्राप्ति या पुनर्बलन।**

शिक्षण अधिगम ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बहुत से कारक सम्मिलित है। अधिगमकर्ता ज्ञान प्राप्ति के लिए लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए ज्ञान में कौशलों को समाहित करता है जिससे सीखने के अनुभव में विस्तार हो सके जिसके फलस्वरुप सभी कारक आपस में संवाद की स्थिति में आते हैं।

शिक्षण अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

बालक के लिए

1) सीखने की इच्छा
2) शैक्षिक पृष्ठभूमि

3) शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य
4) परिपक्वता
5) अभिप्रेरणा
6) अधिगमकर्ता
7) सीखने का समय वह अवधि
8) बुद्धि

अध्यापक के लिए

1) अध्यापक का विषय ज्ञान
2) शिक्षक का व्यवहार
3) शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान
4) शिक्षण विधि
5) व्यक्तिगत भिन्नता का ज्ञान
6) शिक्षक का व्यक्तित्व
7) पाठ्य सहगामी क्रियाएं
8) अनुशासन की स्थिति

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के मुख्य रूप से तीन नियम पर आधारित होती हैद्य

1) तत्परता का नियम
2) अभ्यास का नियम
3) प्रभाव का नियम

सीखने के पांच गौण नियम

1) बहुअनुक्रिया के नियम
2) मानसिक स्थिति या मनोवृति का नियम
3) आशिक क्रिया का नियम
4) समानता का नियम साहचर्य
5) परिवर्तन का नियम

शिक्षक तथा अधिगम में अंतर

1. शिक्षण में अधिगम निहित होता है।
2. शिक्षक का प्रमुख तथ्य पारस्परिक अंतर प्रक्रिया है।
3. शिक्षक पर सामाजिक दार्शनिक तथा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।
4. शिक्षक शिक्षक द्वारा प्रदान किया जाता है जो छात्रों से अधिक परिपक्व होता है तथा मैनेजर गाइड मित्र एवं सहायिका की भूमिका निभाता है।
5. यह स्मृति से चिंतन स्तर तक किसी प्रकार का भी हो सकता है।
6. शिक्षक से ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक पशुओं का विकास होता है।
7. इसका उद्देश्य सभी स्थितियों को सीखना है, जिससे उसका सर्वांगीण विकास होता है।

8. शिक्षण में अनुबंध प्रशिक्षण अनुदेशन तथा अधिगम प्रतिपादन एक सटक क्षेत्र के रूप में समावेशित होते हैं।
1. अधिगम के लिए शिक्षक तथा अनुदेशन सहायक है लेकिन आवश्यक नहीं है।
2. शिक्षक और अनुदेशन के माध्यम से सीखने के अनुभव प्रदान किए जाते हैं और व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाया जाता है।
3. अधिगम मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होता है।
4. अधिगम शिक्षण के द्वारा कम परिपक्व तथा कम शिक्षित छात्रों को भी सामान्य ज्ञान अर्जन करवाया जा सकता है।
5. अधिगम भी अधिगम स्थितियों के अनुसार स्मृति स्थल से चिंतन तक किसी भी प्रकार का हो सकता है।
6. अधिगम इनके प्रभाव का परिणाम होता है।
7. यह औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षक का परिणाम है जिससे व्यवहार में परिवर्तन होता है।
8. अधिगम में गहन द्वारा प्रस्तुत ऑटो प्रकार की अधिगम परिस्थितियों महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है।

कार्यप्रणाली :

पाठ्यक्रम विकास :

स्थानीय आवश्यकताओं और संस्कृति को ध्यान में रखते हुए शिक्षा सामग्री का विकास।

अध्यापक–

छात्र संबंधरू गुरु–शिष्य परंपरा का महत्व और अध्यापक की भूमिका में समर्थन और प्रोत्साहन।

प्रौद्योगिकी उपयोग :

शिक्षा में प्रौद्योगिकी का सहयोग, विशेष रूप से डिजिटल शिक्षा के माध्यम से।

संवैधानिक प्रावधान :

- राज्य की नीति के निदेशक तत्व (DPSP) के अनुच्छेद 45 में आरंभ में यह निर्धारित किया गया था कि सरकार को संविधान के लागू होने के 10 वर्षों के भीतर 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करनी चाहिये।
- अनुच्छेद 45 को संशोधित करते हुए इसके दायरे का विस्तार छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिये आरंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के लिये किया गया।
- 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के माध्यम से अनुच्छेद 21। प्रस्तुत किया गया जिससे प्रारंभिक शिक्षा को निदेशक तत्व के बजाय मूल अधिकार में बदल दिया गया।
- सरकार ने प्राथमिक स्तर (6–14 वर्ष) के लिये शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम के एक भाग के रूप में सर्व शिक्षा अभियान(SSA) को कार्यान्वित किया है।
- माध्यमिक स्तर (आयु वर्ग 14–18) की ओर बढ़ते हुए सरकार ने राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के माध्यम से SSA का विस्तार माध्यमिक शिक्षा तक किया है।
- उच्चतर शिक्षाकृजिसमें स्नातक, स्नातकोत्तर और एमफिल/पीएचडी स्तर शामिल हैं, को सरकार द्वारा राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA) के माध्यम से संबोधित किया जाता है ताकि उच्चतर शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
- इन सभी योजनाओं को 'समग्र शिक्षा अभियान' की सत्र योजना के अंतर्गत शामिल किया गया है।
- शैक्षिक सुधारों से संबंधित प्रमुख सरकारी पहलें।

नेशनल प्रोग्राम ऑन टेक्नोलॉजी एन्हांस्ड लर्निंग (NPTEL)

समग्र शिक्षा अभियान

प्रज्ञाता (PRAGYATA)

मध्याह्न भोजन योजना
बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ
पीएम श्री स्कूल (PM SHRI School)

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोणः–

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की कार्यकारिणी ने 14 – 19 जुलाई 2004 की बैठकों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को संशोधित करने का निर्णय मानवीय मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा दिए गए व्यक्तित्व के अनुसरण में किया गया था।

प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय संचालन समिति और 21 राष्ट्रीय फोकस समूह का गठन किया गया। इन समितियां में उच्च शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के अकादमी सदस्य, स्कूलों के शिक्षक और गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि सदस्यों के रूप में शामिल हुए।

देश के प्रत्येक हिस्से में इस मुद्दे पर विचार विमर्श एवं चिंतन किया गया क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों एवं राज्यों की शैक्षिक अनुसंधान आदि में भी शिक्षण अधिगम के लिए संगोष्ठियों का आयोजन किया गया।

1) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद वर्ष 2022 तक 'शिक्षकों के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' (National Professional Standards for Teachers- NPST) का विकास किया जाएगा।

2) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा छब्म्ज् के परामर्श के आधार पर 'अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' (National Curriculum Framework for Teacher Education&NCFTE) का विकास किया जाएगा।

3) वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिये न्यूनतम डिग्री योग्यता 4–वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया में शिक्षा से संबंधित संस्थानों जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों(DIET), राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद(SCERT) सीमेंट(State institute of education), I-A-S-E (Institute of advance studies in education) आदि को भी समय– समय पर पाठ्यचर्या के मूल्यांकन करने की पहल करनी चाहिए।

सुझाव

NEP का कार्यान्वयन शिक्षा प्रणाली की उदासीनता को तोड़ने में मदद कर सकता है।शिक्षण को अधिगम की गतिविधियों के माध्यम से छात्रों की भागीदारी पर जोर देना चाहिए।व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा शिक्षा के साथ एकीकृत कर और स्कूल में (विशेषकर सरकारी स्कूलों में) सही मार्गदर्शन प्रदान कर भारत की शैक्षिक व्यवस्था को उन्नत बनाने की ज़रूरत है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि छात्रों को आरंभ से ही सही दिशा में निर्देशित किया जाए और वे करियर के अवसरों के बारे में जागरूक हों।

निष्कर्षः–

यदि हम भविष्य में भयंकर विपत्ति से गिरना नहीं चाहते तो हमें शिक्षण अधिगम व अर्थव्यवस्था दोनों को ही मजबूत करना होगा। वर्तमान शिक्षण पद्धतियों, व्यवस्था, सिद्धांतों आदि की स्थिति सुधार की अपेक्षा रखती है, परंतु सुधार हेतु कर्तव्यबोध का अभाव है।

वास्तव में समस्या, साधन या संख्या की नहीं अपितु वातावरण एवं व्यवस्था की है। शिक्षण अधिगम के संदर्भ में वर्तमान में नई शिक्षा नीति 2020 का सूत्रीय कार्यक्रम सराहनीय है।

शिक्षण अधिगम के अंतर्गत भारत अपने मौलिक विचारों, आदर्शों, तकनीको एवं वैश्विक विकासों इत्यादि में समन्वय एवं शिक्षण गुणवत्ता के विकास में सामंजस्य से स्थापित कर अपने शिक्षण आयामों को एक नई दिशा की ओर अक्सर कर सकता है। यह कथन कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- जीन ब्रैन और कुल्फी सम्राट "सीखने की परंपरा और शिक्षकों की भूमिका भारतीय परिप्रेक्ष्य" Vol1(3) पीपी 29–33 मार्च 2013
- उमेश चमोला (2018) "अध्यापक शिक्षा एवं अध्यापकों का निरंतर पेशेवर विकास" भारतीय आधुनिक शिक्षा के लिए Vol.38,No- 8, PP 81–92,अप्रैल 2018
- https://www.gkexams.com/ask/36192-Shikshan-Adhigam-Prakriya
- https://www.drishtiias.com/hindi/daily-news-editorials/an-education-policy-that-is-sweeping-in-its-vision
- https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf

भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि

1. नाम – विजय कुमार मीणा – शोधार्थी – शिक्षा
2. नाम – गोविन्द गुरू जनजातीय विश्वविद्यालय – बाँसवाड़ा
3. mail. ID – vkm14121989@gmail.com Mob.9166364514

1. (सार)

शिक्षा शब्द सस्कृत भाशा की शिक्ष् धातू मे " अ " प्रत्यय लगाने से बना है शिक्ष् का अर्थ है – सीखना और सिखाना है शिक्षा की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रक्रिया है यही प्रकिया समाज में एक वयस्क भूमिका के लिए सामाजिकृत करती है समाज का एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है ।

भारतीय शिक्षा का समय के साथ–साथ अपने स्वरूप में अनेक से परिवर्तन देखने को मिले प्राचीनकाल से मध्यकाल और भारत स्वतंत्र होने से आधुनिक और वर्तमान समय भारतीय शिक्षा में अनेक परिवर्तन देखने को मिले प्राचीनकाल में भारत को विश्वगुरू के नाम से जानते थे जिस देश में गुरूकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे तब से आज से शिक्षक कि स्थिति में गिरावट आयी है गुरू अपने शिष्यों को अपने वास्तविक जीवन से संबंधित अपने मूल्यों आदर्शो की शिक्षा दी जाती थी । अब वर्तमान समय में एक बच्चा अपने खुद के दैनिक जीवन के रोज के कार्यो को करने मे असमर्थ है आज की शिक्षा पर पश्चिमी संस्कृतियों का प्रभाव है जो अपने सभी संस्कारो को भूल रहा है। अपनी शिक्षा को नम्बरों से तोल रहा है प्रतिशत को महत्व दे रहा है ।

2. **प्रस्तावना** – प्राचीन काल मे ं चरित्र निर्माण शिक्षा का अनिवार्य कार्य माना जाता था शैशिक विशयों को देखने से ज्ञात होता है कि पाठ्यक्रम में शारीरिक , मानसिक , और आध्यात्मिक सभी प्रकार के सामर्थ्य के विकास की चेष्ठा की जाती थी वैदिक काल में शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी जिसमें गुरू आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त की जाती थी ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य उपनयन संस्कार के बाद गुरू के आश्रम में प्रवेश करते थे जहां लगभग 24 वर्श तक शिक्षा ग्रहण करते थे वैदिक युग में शिक्षा का माध्यम मौखिक था गुरू द्वारा कहे गये वचनो को बार –बार दोहराया जाता था ।

प्राचीन भारतीय समाज में गुरू को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है गुरू – शिष्य में संबंध अत्यन्त मधुर एवं सौहादपूर्ण थे वैदिक युग में आचार्य और शिष्य के मध्य सीधा संबंध होता था ।

वैदिक युग में आधुनिक युग की भांति परीक्षा लेने तथा उपाधिया प्रदान करने की प्रथा का अभाव था वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जाती थी । गार्गी , लोपामुद्रा आदि विदुशी महिलाऐं वाद– विवाद में भाग लेती थी । परंतु उत्तरवैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा में कम महत्व दिया जाने लगा ।

मध्यकाल में भारतीय शिक्षा – भारत मे मुस्लिम राज्य की स्थापना के साथ इस्लामी शिक्षा का प्रचार होने लगा इस्लामी शिक्षा को संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदे , मदरसो , मकबरों एवं पुस्तकालयों की स्थापना की गयी विद्यार्थियों को कुरान की शिक्षा दी जाने लगी।

मध्यकाल में भी शिक्षक का स्थान उच्च था राजकुमारों एवं राजकुमारियों के लिए महलों के भीतर शिक्षा प्रबंध की व्यवस्था राजव्यवस्था , युद्ध संचालन , इतिहास ,व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी ।

आधुनिक काल की शिक्षा भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरूआत ब्रिटिश उननिवेशक वादियों द्वारा वर्श 1830 में लाई गयी थी जिसमें शिक्षा के लिए अंग्रेजी भाशा को प्रधानता दी गई लॉड मैकालो ने ही भारत की शिक्षा नितियों में बहुत से बदलाव किये इसलिए उसे आधुनिक शिक्षा का जनक माना जाता है ।

वर्तमान समय तक आते –आते शिक्षा में बहुत परिवर्तन हो गया जिसमे गुरू के सम्मान और मान – मर्यादा और उनके मूल्यों को कम महत्व दिया जाने लगा।

3 भारतीय शिक्षा में आधुनिक जीवन पर प्रभाव

1. **गुरू शिष्य संबंध –** भारत की सामाजिक परम्परा जिसमें गुरू शिष्य परम्परा " परम्परा द्वारा वेद उपनिशद, अरण्यक अन्य प्राचीन ग्रंथ पीढी – दर–पीढ़ी मौखिक रूप से सम्प्रेशित किये जाते थे उनका संबंध परस्पर प्रेम और श्रद्धा पर आधारित विद्यार्थि गुरू की सेवा करना परम कर्त्तव्य समझते थे शिष्य गुरू से नीचे आसान पर बैठते थे तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे।
प्रायः समय के साथ गुरू और शिष्य के संबंधो में गिरावट आयी है गुरू कि आज्ञा का पालन कम व गुरू की मान मर्यादा एवं उनकी आज्ञा कों अनदेखा किया गया ।

2. **शिष्य एवं अभिभावक का संबंध –** प्राचीन समय मे बालक किसी भी कार्य को करने से पहले अपने माता – पिता व बडों के आशीर्वाद प्राप्त करने पर ही कार्य करता था एवं अपने माता – पिता को भगवान से भी उच्चा दर्जा देता था श्रवण जैसे पुत्र द्वारा अपने माता – पिता की सेवा भाव रखने वाले भी पुत्र हुए है परंतु आज वर्तमान समय में बालक अपने माता – पिता के साथ बैठना भी उचित नहीं समझते अपने बडों का सम्मान भी भूल गये है

3. **शिष्य का समाज और देश के प्रति भाव –** प्राचीनकाल में बालक अपने समाज से जुड़ा हुआ था जो अपनी संस्कृति के मूल्यो आदर्शो का सम्मान करता था । बालक का सबसे छोटा एवं मूल भूत सामाजिक समूह उसका परिवार होता है समय के साथ परिवार में दो रूप बन गये ।
1. एकांकी परिवार , 2. संयुक्त परिवार
बालक इन दो परिवारों में से किसी एक परिवार में जन्म लेता है जिस परिवेश में बालक पलता है जिस वातावरण में रहता है देखता है उसका प्रभाव बच्चें पर अवश्य पड़ता है परंतु आधुनिक समय में बालक अपने संस्कारो मुल्यों आदर्शो को भूलता जा रहा है आधुनिक समय में एंकाकी परिवार बैठने लगे बालक अपने सभी संस्कारो से दुर होता जा रहा है

4. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार

1. **अतीत से भविष्य की और** – प्राचीन भारत में " गुरूकुल " प्रणाली में बहुत सीखा जा सकता है । जो सदियो पहले अकादमिक शिक्षा के बजाय समग्र विकास पर जोर देती थी । प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में नैतिकता एवं मूल्यों परख शिक्षा और आत्मनिर्भरता , सहानुभुति , रचनात्मक और अखण्डता जैसे मूल्य रहे थे जो आज भी प्रासंगिक है ।

2. **तकनिकी और व्यवसायिक शिक्षा का अभाव–** हमारी शिक्षा प्रणाली मुख्यत सामान्य प्रकृति की है तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा का विकास पर्याप्त असंतोशजनक है जिसके कारण शिक्षित बेरोजगारों

की संख्या बढ़ती जा रही है । शिक्षा व्यवस्था में 10वीं के बाद पाठयक्रम के साथ–साथ व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जाए तो बालक आत्मनिर्भर हो सके ।

3. **लिंग असमानता खत्म की जाए –** समाज में महिला – पुरूश दोनो के लिए शिक्षा की अवसर की सम्मानता सुनिश्चित करने से सरकार के प्रयासों के बावजूद भारत में महिलाओं की साक्षरता दर विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अभी बदतर है अभी बदतर इस कुरिती को समाप्त किया जाये एवं महिला–पुरूश को शिक्षा , रोजगार में समान अवसर प्रदान किये जाये ।

4. **अभिभावक को जागरूक करना –** अभिभावक जागरूक होगा तब हा बच्चो को शैक्षिक प्रगति संभव है सरकार को अभिभावको को जागरूक करने के लिए प्रोग्राम चलाने चाहिए अभिभावक जागरूक हो एवं शिक्षा के प्रति स्नेह हो तो स्कूल का विकास संभव है।

5. **नम्बरो से ज्यादा कौशल आधारित पाठ्यक्रम हो –** वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नम्बरों एवं प्रतिशत को महत्व दिया जा रहा है जिसमें बच्चा रटने एवं अधिक नम्बर प्राप्त करने की कोशिश करता है जिसमें कौशल आधारित पाठ्यक्रम हो जिससे बालक अपने दैनिक जीवन की क्रिया – कलापों का शिक्षा प्राप्त कर सकें ।

6. **निष्कर्श –**भारत एक कृशि प्रधान देश है देश पिछले एक दशक में गांव शहरों मे बदल रहे पिछले एक दशक में 75 प्रतिशत आबादी गांव में निवास कर रही थी वहीं आज ग्रामीण आबादी घट पर 64 प्रतिशत के आस–पास हो गयी है किसान कृशि कार्यो को छोडकर शहरों की और पलायन कर रहा है । बेरोजगारी आज की ज्वंलत समस्या हो गयी है
यह पश्चिमी कारण का प्रभाव है हमने अपने प्राचीन कार्यो को करना छोडा दिया है हमने अपने गांव के कुटिर उधोगो को बंद कर दिया है । भारतीय शिक्षा में हमने प्राचीन विचारधाराओं को पर चलना छोड दिया है अपने भारतीय संस्कृति के मूल्यों आदर्शो को भूल रहे है आज देश में तेजी से वृद्धावस्था आश्रमो का निर्माण हो रहा है इसकी जिम्मेदारी आज की शिक्षा प्रणाली है आज की पीढी अपने माता – पिता बड़े बुजुर्गो का सम्मान करना भूल रहे है । एक साथ शिक्षा व्यवस्था को बदलना सम्भव नहीं है परन्तु कुछ हद तक प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा में समन्यव स्थापित कर अपने देश में हो रहे बदलाव एवं भूली हूई संस्कृति को वापस स्थापित किया जा सकता है।

प्राचीन समय में गुरूकुलों में बालक अपनी सनस्याओं का समाधान खुद ढुंढता था परंतु वर्तमान समय में नवीन तकनीकी से आज मोबाइल फोन को सबकुछ मान लिया है छोटी से छोटी समस्याओं का हल मिडिया के माध्यम से व अन्य तरिको से खोजने का प्रयास किया जा रहा है मोबाइल फोन को ऑन करने के साथ अपने मस्तिष्क के दरवाजो को बंद कर रहा है अपने परिवार समाज संस्कृति से दूर भाग रहा है ।

इस लेख का अभिप्रायः पूर्ण रूप से प्राचीन शिक्षा प्रणाली लागु कर देना नही परंतु इसका उचित तालमेल से हम अपने प्राचीन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकते है ।
यदि इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार नहीं किया गया तो आने वाला समय खतरनाक सिद्ध हो सकता है ।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

वीरेंद्र कुमार त्रिपाठी
शोधार्थी
श्याम विश्वविद्यालय, लालसोट, दौसा, राजस्थान

शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो सीखने की सुविधा प्रदान करती है। शिक्षण ज्ञान, कौशल और विशेषताओं का विशेष अनुप्रयोग है। भारतीय कक्षा के लिए 5 आधुनिक शिक्षण विधियाँ है :–

1. पूछताछ–आधारित शिक्षा

पूछताछ–आधारित शिक्षा के रूप में जानी जाने वाली एक प्रभावी शिक्षण रणनीति छात्रों को नई अवधारणाओं पर विचार करने और उनकी समझ को गहरा करने के लिए प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि छात्र स्वाभाविक रूप से जिज्ञासु और सीखने के लिए उत्सुक होते हैं। पूछताछ–आधारित शिक्षा में संलग्न होकर, छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए, गंभीर और रचनात्मक रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

2. समस्या–आधारित शिक्षा

एक और मूल्यवान शिक्षण रणनीति ''समस्या–आधारित शिक्षा'' है, जो वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने के लिए ज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर जोर देती है। इस दृष्टिकोण के साथ, छात्र समस्याओं की पहचान, विश्लेषण और समाधान करने के लिए टीमों में सहयोगात्मक रूप से काम करते हैं।

3. योग्यता–आधारित शिक्षा

योग्यता–आधारित शिक्षा एक शिक्षण रणनीति है जो छात्रों को विशिष्ट शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करने पर केंद्रित है। इस पद्धति में मूल्यांकन छात्रों की उनके ज्ञान और कौशल को प्रदर्शित करने की क्षमता पर आधारित है।

4. प्रोजेक्ट–आधारित शिक्षा

प्रोजेक्ट–आधारित शिक्षा में छात्रों को व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य से वास्तविक जीवन की परियोजनाओं में शामिल किया जाता है। यह दृष्टिकोण आलोचनात्मक सोच और समस्या–समाधान क्षमताओं को बढ़ावा देने में अत्यधिक प्रभावी है।

5. सहयोगात्मक शिक्षा

सहयोगात्मक शिक्षण के रूप में जानी जाने वाली शिक्षण रणनीति छात्रों को सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समूह परियोजनाओं पर एक साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह दृ ष्टिकोण छात्रों के बीच ज्ञान, कौशल और अनुभवों के आदान–प्रदान को बढ़ावा देता है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के समायोजन एवं मानसिक स्वास्थ्य में सह–सम्बन्ध का अध्ययन करना

डॉ. बिन्दू कुमारी
शोध निर्देशक
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर

योगेन्द्र कुमार रावल
शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर

किसी भी देश या समाज के वर्तमान को विकसित एवं भविष्य को उज्जवल बनाने की आधारशिला होती है शिक्षा | शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे बालक का सर्वांगीण विकास हो पाता है । शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी संस्कृति की रक्षा करता है और सभ्यता के रथ को आगे बढ़ाता है। जीवन की उदारता, उच्चता, शारीरिक व मानसिक और भावात्मक विकास तब तक भली प्रकार नहीं हो पाता जब तक वह शिक्षा ग्रहण नहीं करता।

मानव विकास में मन और मस्तिष्क के विकास का महत्त्वपूर्ण स्थान है । मन और मस्तिष्क का स्वस्थ रहकर कार्य करने की क्षमता बनाये रखना ही मानसिक स्वास्थ्य है। मानसिक स्वास्थ्य के अभाव में व्यक्ति के विकास का मार्ग कुण्ठित हो जाता है। वह समाज पर बोझ बन जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वही है जो स्वयं सुखी है। अपने पड़ोसियों से शान्तिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है तथा अपनी शक्ति के अनुरूप समाज के हित के लिए भी कुछ करता है। वास्तव में मानसिक रूप से स्वस्थ रहने पर व्यक्ति अपने वातावरण में सामंजस्य स्थापित कर लेता है और अपने परिवार की तथा अपने समाज की उन्नति के लिए प्रयत्न करता है। अतः वातावरण से सामंजस्य स्थापित रखना मानसिक स्वास्थ्य का प्रमुख लक्षण है। सामंजस्य जितना अधिक होगा व्यक्ति मानसिक रूप से उतना ही अधिक स्वस्थ माना जायेगा। फलस्वरूप व्यक्ति हर नई परिस्थिति को समझकर अपने को उसके अनुकूल बना लेता है अथवा परिस्थिति को ही अपने अनुकूल बना लेता है। वह हर परिस्थिति का स्वागत करता है। वह जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए स्वस्थ शरीर के साथहै आवश्यक अत्यन्त होना का मस्तिष्क स्वस्थ साथ- ।

व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसके समायोजन पर प्रभाव पड़ता है।

मानसिक उलझनों से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अपने दैनिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से उचित समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं । प्रायः देखा जाता है कि संसार में शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही उच्च सफलता प्राप्त करते हैं । अतः मानव जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक मनोविज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र ने मानसिक विसंगतियों को पहचानने, उनका कारण खोजने तथा उनको दूर करने के उपायों में काफी हद तक सफलता प्राप्त कर ली है। वर्तमान में मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक महत्त्व देने की बात कही जाती है। माना जाने लगा कि शारीरिक अस्वस्थता सम्पूर्ण समाज के लिए परेशानी उत्पन्न करती है। वास्तव में बालकों का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब वे शारीरिक तथा मानसिक

दोनों ही दृष्टियों से पूर्णरूपेण स्वस्थ हों। शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य को तथा मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य को परस्पर प्रभावित करते रहते हैं।

समायोजन —

समायोजन दो शब्दों को मिलाकर बना है आयोजन और सम - | सम् का अर्थ है भली-भाँति, अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ है व्यवस्था अर्थात् अच्छी तरह व्यवस्था करना। समायोजन का अर्थ हुआ सुव्यवस्था या अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जाए और मानसिक द्वन्द्व न उत्पन्न होने पाये। समायोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए गेट्स एवं अन्य विद्वानों ने लिखा है कि 'समायोजन' शब्द के दो अर्थ हैं । एक अर्थ में निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं और पर्यावरण के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन कर देता है। दूसरे अर्थ में समायोजन एक संतुलित दशा है जिस पर पहुँचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते हैं।

मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपने वातावरण तथा परिस्थितियों के साथ समायोजन करता है। यह आवश्यक नहीं है कि समायोजन की प्रक्रिया में सफलता ही प्राप्त करें। समायोजन की प्रक्रिया में

दो तत्व होते हैं । एक तो जीव की आवश्यकताएँ एवं इच्छा, दूसरे इन आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ। यह परिस्थितियाँ व्यक्ति के अन्दर भी हो सकती हैं तथा उसके बाहर भी। बालक का व्यक्तिगत समायोजन आज के व्यस्त एवं जटिल जीवन में समस्याजनक बनता जा रहा है। जीवन में प्रत्येक को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है जब वह अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को तुरन्त पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं कर पाता है। यदि वह इस परिस्थिति में समायोजन कर लेता है तो उसका संतुलन बना रहता है परन्तु यदि वह इसपरिस्थिति का सामना नहीं कर पाता है तो उसमें असमायोजन उत्पन्न हो जाता है जो कि व्यक्ति के विकास की गति को रोक देता है। इसलिए व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसका सुसमायोजित होना आवश्यक है।

समायोजन को सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन भी कहते हैं। व्यक्ति को सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना आवश्यक हो जाता है । व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं, जिनका उसे समय सामना पर समय- है पड़ता करना। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलगके क्षमता अलग- अनुसार समायोजन करने का प्रयत्न करते हैं कुछ व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सफल होते हैं तो कुछ व्यक्ति हार मानकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं । इस प्रकार के व्यक्ति तनाव का शिकार बने रहते है। ये बातें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है

समायोजन की परिभाषा

बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वैल्ड के अनुसार, "समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखता है ।"

गेट्स व अन्य " समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच संतुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है ।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही व्यक्ति, परिस्थिति तथा पर्यावरण के मध्य अपने को समायोजित करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। अतः समायोजन को संतुलित दशा कहा गया है।

समायोजन की आवश्यकता

सर्वांगीण विकास के लिए उसका वातावरण के साथ समायोजन अत्यंत आवश्यक है। इस आवश्यकता को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है :

* मानसिक कष्ट और व्याधियों से अपने को दूर रखने के लिए।
* अपने मन और मस्तिष्क को व्यर्थ के चिंतन से दूर रखने के लिए।
* ध्यान की एकाग्रता बनाये रखने के लिए।
* विभिन्न गतिविधियों और कार्यकलापों में सक्रिय और उत्साहपूर्वक भाग लेने के लिए।
* पलायन करना, चुनौती देना जैसी कुप्रवृत्तियों को न पनपने देने के लिए।
* जीवन में शौक पैदा करने के लिए|
* अपने काम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने के लिए|
* जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकतम उपलब्धि प्राप्त करने के लिए।

मानसिक स्वास्थ्य (

अध्यापक राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है। यदि अध्यापक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा तो वह अपने छात्रों के साथ न्याय नहीं कर सकता। उसके मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव भावी पीढ़ी पर पड़ता ही है।

डी० जी० रैनास के अनुसार- " अच्छे अध्यापक वे हैं, जो बुद्धिमान कौशल से परिपूर्ण, कर्त्तव्यनिष्ठ, समझदार हों, अच्छे रचनात्मक समाज के निर्माण के लिए उनकी आवश्यकता है ।" सफल अध्यापक में निम्न विशेषताओं का होना अनिवार्य है। ये विशेषताएँ भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'द्रू सक्सीड्स एज ए टीचर' नामक पुस्तिका से ली गई हैं ।

1. राष्ट्रीय सेवा भावना का विकास -

अध्यापक राष्ट्र निर्माता कहा जाता है। अध्यापक को चाहिए कि वह राष्ट्रीय सेवा तथा भावना का अपने से विकास करे । संकीर्ण भावना से बचे। राष्ट्रीय भावना के प्रसार का लक्ष्य होने से अध्यापक में आत्मविश्वास विकसित होता है और राष्ट्रहित व्यापक होता है।

2. सुस्ती से दूर रहों ः अध्यापक को चाहिए कि वह अपने काम में सुस्ती न बरते। ऐसा करने से वह, जहाँ एक ओर अपने विषय को पढ़ाने में सफलता प्राप्त करेगा, वहाँ दूसरी ओर वह छात्रों व अपने साथियों के बीच लोकप्रिय भी होगा।

3. कर्तव्यपरायणता में अहम् को दूर रखो ः यदि अध्यापक कर्तव्यपरायण है तो उसे अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा के प्रति अहं नहीं होना चाहिए। यदि उसमें अहं पैदा हो जाता है तो जहाँ तक वह कर्तव्यनिष्ठ है, वहाँ उसी के साथी उसे उसके कर्तव्य से च्युत करने में पीछे न रहेंगे। इससे कटुता उत्पन्न होती है।

4. कर्तव्य ही पुरस्कार हैः अध्यापक को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दे। वास्तविकता यह है कि अध्यापक समाज के निर्माण की आधारशिला है। यदि अध्यापक ही कर्तव्यनिष्ठ नहीं होगा तो उसका काम न तो छात्रों के हित में होगा और न राष्ट्र के ।

5. अपने को विद्यार्थी समझो और छात्रों से प्रेम रखो ः छात्रों को उसी अध्यापक के प्रति सहानुभूति होती है, जो उन्हें प्यार करते हैं। अतः आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों से प्रेम करें

6. वातावरण के अनुसार बदलो ः एक अध्यापक तभी सुखी रह सकता है, जबकि वह समय तथा वातावरण के साथ बदलता रहे। यदि उसकी मान्यताओं में कोई परिवर्तन नहीं होता तो वह सफल अध्यापक नहीं हो सकता। इसका कारण शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का होना है, जिनसे परिचित होना हर अध्यापक का कर्तव्य है । समायोजनशीलता उसमें होनी चाहिए।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का भारतीय दृष्टिकोण

श्री प्रकाश राम (शोधार्थी)
श्रीमती रामकुमारी शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय मुकुन्दगढ मण्डी झुन्झुनू (राज0)

सारांश:-

शिक्षण अधिगम में गहरा सम्बन्ध है ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू है। यदि शिक्षण अच्छा होगा तो अधिगम भी अच्छा होगा। शिक्षण का अर्थ होता है अधिगम कराने या शिक्षित करने की प्रक्रिया |

शिक्षण के द्वारा बालक के ज्ञानात्मक पक्ष के विकास पर जोर दिया जाता है । अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अभ्यास एवं अनुभव व्यवहार परिवर्तन सम्भव होता है । शिक्षा के द्वारा अधिगम प्रक्रियाओं को सुसंगत व्यक्तित्व विकास जैसे अपने व्यापक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

अधिगम या सीखना शिक्षा के सभी स्वरूपों में केन्द्र बिन्दू माना जाता है। अधिगम को मानवीय परिपेक्ष्य में एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया। अधिगम के लिए व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन आवश्यक माना गया है ।

अधिगम एक व्यापक सतत् एवं जीवनपर्यन्त चलने वाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है शिक्षण का सम्बन्ध अध्यापक से और अधिगम का सम्बन्ध विद्यार्थी से है।

शिक्षण प्रक्रिया अधिगम (

प्रत्येक बच्चा स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बच्चों के सीखने के तौर तरीके में विविधता होती है। जैसेके अनुभवों - माध्यम से, प्रश्न पूछने, सुनने, सोचने, चिंतन करने, अधिव्यक्ति करने, छोटे बड़े समूहों में गतिविधियां करने आदि से सीखते है। बच्चों को शिक्षण से पूर्व उन्हें तैयार करने हेतु समूचित अवसर व वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता होती है। सीखने की प्रक्रिया केवल विद्यालय में वरन् विद्यालय से बाहर भी निरन्तर चलती रहती है । बच्चा सीखने की प्रक्रिया में संलग्न हो जाए उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण करने के लिए मात्र तथ्यों को रटाने के बजाय उनमें समझ विकसित करने की आवश्यकता है। सीखना किसी माध्यम से सम्भव हो सकता है। अतः इसके लिए शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया
आरंभ करने से पूर्व बच्चे के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य को जानना व समझाना महत्वपूर्ण होता है।

शिक्षण(अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

बालक	अध्यापक
सिखने की इच्छा	अध्यापक का विषय ज्ञान
शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य	शिक्षक का व्यवहार
परिपक्वता	शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान
अधिगमकर्ता की अभिवृति / मनोवृति	शिक्षण विधि
सिखने की समयावधि	व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान
शैक्षिक पृष्ठभूमि	शिक्षक का व्यक्तित्व |

भारतीय दृष्टिकोण

भारत में शिक्षण अधिगम प्रणाली देश के आकार, सांस्कृतिक विविधता और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण जटिल और विविध है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारत में विभिन्न राज्यों क्षेत्रों और संस्थानों में शैक्षिक प्रथाएं काफी भिन्न हो सकती है। भारत में शिक्षण अधिगम प्रणाली सामान्य अवलोकन में शामिल है।

शिक्षा की संरचना

भारत की शिक्षा प्रणाली कई चरणों में विभाजित है पूर्व प्राथमिक शिक्षा, प्रारंभिक बचपन की शिक्षा । प्रारम्भिक शिक्षा ग्रेड 1 से 5 उच्च प्राथमिक शिक्षा ग्रेड 6 से 8 माध्यमिक शिक्षा ग्रेड 9 से 10 उच्चतर माध्यमिक

शिक्षा गड 11 व 12 उच्च शिक्षा इसमें : विश्वविद्यालय कॉलेज और स्नातक, स्नातकोत्तर की पेशकश करने वाले संस्थान शामिल है।

नोट:- वर्तमान में नई शिक्षा नीति के तहत इस पुराने ढांचे में परिवर्तन किया गया है ।

पाठ्यक्रम

भारत में पाठ्यक्रम आमतौर पर संबंधित शिक्षा बोर्डो द्वारा निर्धारित किया जाता है और राज्यों के अनुसार अलगभाषा अक्सर में पाठ्यक्रम है। होता अलग- गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन और व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे विषय शामिल है।

शिक्षण विधियां

भारत में शिक्षण विधिया विकसित हो रही है लेकिन परम्परागत रूप से ये
व्याख्यान ओर नोट लेने पर जोर देने के साथ अधिक शिक्षक केन्द्रित रही है। हालांकि आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान को बढ़ावा देने के लिए छात्र केन्द्रित तरीकों सक्रिय शिक्षण और अनुभवात्मक शिक्षण की ओर बदलाव बढ रहा है।

परीक्षा प्रणाली

भारत में परीक्षा प्रणाली अपनी प्रतिस्पर्धी प्रकृति के लिए जानी जाती है विभिन्न स्तरों पर बोर्ड परीक्षाओं का छात्रों के भविष्य के शैक्षिक और कैरियर के अवसरों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

बह भाषी

भारत भाषाई रूप से विविध है और शिक्षा अक्सर कई भाषाओं में होती है छात्र अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई कर सकता है लेकिन अंग्रेजी भी शिक्षा का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला माध्यम है, खासकर उच्च शिक्षा में।

मूल्यांकन

भारत में मूल्यांकन पद्धतियां ऐतिहासिक रूप से उच्च जोखिम वाली परीक्षाओं पर केंद्रित रही है। खासकर माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों के दौरान। इस संदर्भ में अधिक व्यापक मूल्यांकन विधियों की आवश्यकता की मान्यता बढ रही जो एक छात्र के समग्र विकास कोशल का मूल्यांकन करती है।

निष्कर्ष

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार के प्रयास किये जा रहे है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसी पहल का उद्देश्य पाठ्यक्रम को आधुनिक बनाना, अनुभवात्मक शिक्षा को बढ़ावा देना, कौशल विकास व जीविकोपार्जन की शिक्षा में प्रौद्योगिकी को एकीकृत करना है ।

भारतीय जीवन दृष्टि

डॉ. सुमन शर्मा
सहायक प्रोफसेर–अम्बिका टी.टी. कॉलेज मलसीसर (झुन्झुनू)
ई–मेलआईडी–sumansharma201974@gmail.com
फोन नं.–918503851097

वाह! रे मेरे भारत देष, तेरा गुण गान करें हर एक चित्रकला, हस्तलखे, हस्तषिल्प, विष्व धराहेर स्थल अनेक संगीत, नृत्य, नाट्य कला, कठपुतली, सर्कस मार्षल आर्ट नेक अमूर्त, सास्ंकृतिक विरासते, मिठ्ठी भाषाएं अनेक धर्म, साहित्य, दर्षन, सिनेमा विज्ञान प्रौद्योगिकी की शेर कलैण्डर की छवि न्यारी, मेले तीज, त्याहोर अनेक पुरस्कार, सम्मान, कानून, संस्कृति और सांस्कृतिक संस्थान नेक भारतीय विदेषों में बनाएं पहचान, पर्यटन स्थल बना भारत एक विदेशियों की लगी कतारें, जीमण जी मे सोने, थाली खादी आसण बिछाय भारतियों की छवि निराली बन गई एक मिषाल भारत भूमि को कर दिया खुषहाल।

हमारा भारत देष सभी देषों में अग्रणिय है, था और रहेगा। इतना गौरवषाली है मेरा भारत देष अतः मैग र्वक रहती हूँ कि मेरा जन्म भारत की धोरा री धरती पर हुआ जिसकी झिणी रेत से मेरा लालन–पालन हुआ तथा भिगी बाकु माटी की खुषबू सेज्ञा न प्राप्त हुआ। वाह! रे मेरा देष धारो राधणी, धारो राधणी।

भारत की पहचान ही वास्तु से है जिसका अर्थ है रहना, बसना, निवास करना अर्थात् घर निवास, आवास आदि। कला शब्द का अर्थ है निर्माता। आदिकाल में जब मनुष्यों ने अपने निवास के लिए आश्रय बनाना शुरू किया तभी से वास्तु कला विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। इसी के साथ मूर्तिकला का निमार्ण शुरू हुआ जिसका अर्थ होता है मोङना।

भारतीय कला और वास्तुकला की कहानी तो विकास की कहानी है जो प्राचीन काल यानि सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर ब्रिटिष शासन तक मूर्तियों एवं भवनों तक की अपनी स्वयं की कहानी है। किसी देष की स्थापत्य संबंन्धी संरचनाएं भी समाज की अपनी संस्कृति और परम्परा के प्रति झुकाव दर्षाती है जैसे उत्तरप्रदेष में देवगढ का मंदिर, चट्टानों को काटकर बनाई गई आकृतियां गुफाएं, मूर्तिया, माहेरें, मृदभाण्डों और आभूषणों से जीवंत कल्पना और कलात्मक संवेदनषीलता सिंधु घाटी सभ्य ताकी विषिष्ट पहचान है।

हस्तषिल्प उन सभी वस्तुओं का सम्मिलित रू‍प है जिनकी हाथों से कारीगरी की जाती है इसमें भारत के कई राज्यों का यागेदान है जो अपने–अपने कौषलों को दर्षातें हैं। भारत में, बल्कि आने वाली पीढीयों के लिए संरक्षित कर जाने वाली कला के रू‍प में हस्तषिल्प का प्रयोग करतें हैं। ग्रामीण समुदाय एवं जनजातियों में इसका विषेष महत्त्व है।

अगर विष्व धरोहर की बात करें तो भारत में एक से बढकर एक सांस्कृतिक स्थल हैं जो भारत की भूमि पर चार.चाँदल गाते हैं। जैसे–आगरा का किला (उत्तर–प्रदेश), अजंता की गुफाएँ (महाराष्ट्र) कोण कि का सूर्य मंदिर (उडिसा).....आदि।

संगीत को संस्कृति की आत्मा कहा जाता है और भारत में संगीत की सुदीर्घ परम्परा चली आ रही है। यह कहा जाता है कि पृथ्वी पर नारद मुनि (ऋषि) नें संगीत कला का प्रदर्षन किया था।

भारतीय परम्परा में नृत्य कला का अलग ही महत्व है। नृत्य का पहला औपचारिक उल्लेख भरत मुनि की प्रसिद्ध नाट्य षास्त्र में पाया जाता है। नाट्य कला का अद्‌भुत नजारा रंग मंच पर पात्रों द्वारा देखनें को मिलता है जो भारतीय कुरीतियों को सुन्दर ढंग से पेष करता है। भारतीय कलाकार अपनी कला का प्रदर्षन सङक किनारे भीङ भाङ वाले स्थान पर सर्कस रूप में दिखाते है। यह सन् 1880 से चली आ रही परम्परा है। भारतीय भूमि को विविध संस्कृतियों तथा विषम प्रजातियों वाली भूमि माना है जो प्राचीन काल से ही अपने मार्षल आर्टस की विविधता के लिए जानी जाती है।

मानवीय लखेन में सम्पूर्ण इतिहास के दौरान संस्कृति जीवन शैली, समाज और समकालीन समाज की राजनीति को प्रतिबिम्बित किया है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक संस्कृति ने अपनी भाषा विकसित की और एक विषाल साहित्यिक आधार का सृजन किया। साहित्य का यह विस्तृत आधार हमें शताब्दियों से प्रत्येक भाषा और संस्कृति के विकास की झलक देता रहा है।

भारतीय उपमहाद्विपों में विविध धर्मों की एक विस्तृत श्रंखला उपस्थित है।कई समुदाय आपस में मिलजुल कर रहतें हैं तथा हमें भाँति–भाँति के धर्म देखने को मिलते है जैसाकि सितंम्बर 1893 में स्वामी विवेकानंद जी ने षिकागों के विष्व धर्म संसद में उद्‌घोषित किया था–

"मुझे उस धर्म का अनुयायी होने पर गर्व है, जिसने सम्पूर्ण विष्व को साहिण्णुता तथा वैष्विक मैत्री का पाठ पढाया है और हम केवल सार्वभौमिक सहिण्णुता में ही विष्वास नहीं करते, बल्कि हम सभी धर्मों की सभ्यता को स्वीकार भी करते है।"

भारत देष में षिक्षा के क्षेत्र में साहित्य की अहम भूमिका रही है। भारत देष में षिक्षा के क्षेत्र में साहित्य शब्द संस्कृत के सहित शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है साहचर्य, भाईचारा, मले–मिलाप, सहयोगिता आदि भाव से रचित कोई आलकांरिक रचना है।

षिक्षा सामान्य जनता को समाज की संस्कृति से परिचितक रानें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में षिक्षण संस्थानों को हमेषा षिक्षा के मंदिर के रूप में देखा जाता है। वैदिक काल में षिक्षा की एक अनुठी प्रणाली थी इसमें विषिष्ट गुण थे, जो विष्व के किसी भी कोनें में नहीं पाये गये। षिक्षा प्रणाली का प्राथमिक लक्ष्य एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में दर्षन की विषेषता भी महत्वपूर्ण रही है। अधिकांषतः दार्षनिक विचार धारा इस बात पर सहमत हुई कि मनुष्य को चार लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अथक प्रयास करना चाहिए जो इस प्रकार है–अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि।

(डॉ. सुमन शर्मा)

भारतीय शिक्षा का आधार – भारतीय जीवन दृष्टि

डॉ. अनूप शर्मा
(प्राचार्य)
एस.एम.डी. कॉलेज, रघुनाथगढ़–सीकर

Ph: 9413110113
Email: anupksharma78@gmail.com

परिचय :

शिक्षा का अधिकार एक मूलभूत मानव अधिकार है। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली की सरकारी सफलता वहाँ के सभी नागरिकों के शिक्षित होने पर निर्भर करती है । एक शिक्षित नागरिक स्वयं को विकसित करता है और साथ ही अपने देश को भी विकास की ओर आगे बढ़ाने में योगदान करता है। शिक्षा ही एक व्यक्ति को मानव की गरिमा प्रदान करती है। हमारे देश में यह कहा गया है कि एक अशिक्षित व्यक्ति पशु के समान है ।
शिक्षा सभी प्रकार के मानव विकास व प्रगति का आधार होती है। यह समस्त मानव समस्याओं के प्रति सर्वाधिक पैना हथियार तथा सबसे मजबूत ढाल होती है। शिक्षा के आभाव में मानव जीवन अर्थहीन हो जाता है। शिक्षा के माध्यम से हम उस ज्ञान तथा उन कौशलो को ग्रहण करते है, जिनसे हम एक सार्थक जीवन व्यतीत करने योग्य बनते है । शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति की कुंजी होती है। बेकन के अनुसार - ज्ञान ही शक्ति है, अर्थात ज्ञान ही मनुष्य को समाज को और देश को शक्ति सम्पन्न बनाता है। शिक्षा के द्वारा हम मनुष्य के अन्दर छुपी हुई अंतर्निहित शक्तियों को बाहर निकालकर उसका उपयोग समाज एवं देश की भलाई में करते हैं। शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनने के पथ पर अग्रसर करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य की आंतरिक और वाह्य शक्तियों का विकास होता है

जी. एच. थॉमसके अनुसार- शिक्षा के कारण ही मानव आज सभ्यता के इस ऊँचे शिखर पर पहुँच गया है। शिक्षा ही मनुष्य को असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने के लिए प्रेरित करती है, और निर्देशित करती है।

शिक्षा स्वयं साध्य न होकर व्यक्ति निर्माण का साधन है और व्यक्ति से समाज बनता है। इस प्रकार शिक्षा समाज निर्माण का साधन बन जाती है। शिक्षा ही अज्ञानता से मुक्ति दिला कर समाज के कमजोर वर्ग को सशक्त बनाने में अहम् भूमिका निभाती है, क्योंकि शिक्षा से ही वह यह जान पाता है कि उसके अधिकार व स्वतन्त्रताओं का क्या रूप है ? राज्य व समाज के प्रति उसके क्या दायित्व हैं ? अधिकारो के हनन को कैसे रोका जा सकता है ? निःसंदेह शिक्षा से व्यक्ति में सकारात्मक, तर्किक, व गुणात्मक सुधार आता है। वस्तुतः शिक्षा से ही एक अच्छे नागरिक निर्माण में सहायता मिलती है, इसलिए एक अच्छे समाज निमार्ण के लिए यह आवश्यक है कि तद्रुरूप वांछित शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण किया जाये, क्योंकि शिक्षा समाज परिवर्तन का सशक्त साधन भी है।

पृष्ठभूमि :

26 अगस्त, 2009 को भारतीय संसद ने शिक्षा के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक अधिनियम पारित किया जिसे "शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009" कहा जाता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से भारत सरकार की ओर से सर्वाधिक प्रतिक्षित कदम था। सर्वप्रथम गोपालकृष्ण गोखले ने 19 मार्च, 1910 को केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था। सोलह मार्च 1911 में गोखले ने इस प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में पेश किया, परन्तु यह विधेयक पास नहीं हो सका। 1937 में महात्मा गाँधी ने डॉ० जाकिर हुसैन के साथ मिलकर नई तालीम की अवधारणा प्रस्तुत की। वर्तमान में इसे वर्धा शिक्षा योजना, बुनियादी शिक्षा, बेसिक शिक्षा और बेसिक एजूकेशन आदि कई नामों से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत 7-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। 1966 में कोठारी आयोग ने बच्चों के लिए समान शिक्षा की सिफारिश की। 1986 की नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा को सभी को आसानी से प्राप्त होने के लिए एक किलोमीटर की दूरी के अन्दर प्राथमिक विद्यालय और तीन किलोमीटर की दूरी के अन्दर उच्च प्राथमिक विद्यालय खोलने की बात कही गयी ।

निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षाका अधिकार अधिनियम 2009 की पृष्ठभूमि में कहा गया है कि- " संविधान के 86वें संवैधानिक संशोधन से अनुच्छेद 21ए के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है ।"

विशेषतायें:

1. भारत के 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बीच आने वाले सभी बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा |
2. कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के रूप में परिभाषित।
3. प्राथमिक शिक्षा खत्म होने से पहले किसी भी बच्चे को रोका नहीं जाएगा, निकाला नहीं जाएगा या बोर्ड परीक्षा पास करने की जरूरत नहीं होगी।
4. प्राथमिक शिक्षा पूरा करने वाले छात्र को एक प्रमाणपत्र दिया जाएगा।
5. एक निश्चित शिक्षक छात्र अनुपात की सिफारिश |
6. जम्मू कश्मीर को छोड़ कर समूचे देश में लागू ।
7. वित्तीय बोझ राज्य सरकास तथा केन्द्र सरकार के बीच 55:45 के अनुपात में साझा किया जाएगा।

उद्देश्यः

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
2. केन्द्र एवं राज्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने के दायित्व की पूर्ति करना।
3. संविधान के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना।
4. शिक्षा एवं विद्यालयों की गुणवत्ता बढ़ाना।
5. शिक्षकों द्वारा अपने दायित्व का निर्वहन करना।
6. बालकों का संरक्षण एवं बाल श्रम को रोकना।
7. विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश में नौकरशाही प्रवृत्ति को समाप्त करना।
8. शिक्षा में स्थानीय भागीदारी को बढ़ाना।
9. परिक्षाओं के उत्पीड न से मुक्ति दिलाना।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम(2009 के क्रियान्वयन का विश्लेषण ः

एक गैर सरकारी संस्था प्रथम द्वारा 17 राज्यों के करीब ढाई हजार स्कूलों में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 90 प्रतिशत स्कूल शिक्षा का अधिकार कानून के मानकों पर खरे नहीं उतरते है। केवल 45 प्रतिशत स्कूल ही प्रति 30 बच्चों पर 1 शिक्षक होने का अनुपात करते हैं । डाइस रिपोर्ट 2013-14 के अनुसार शिक्षा के अधिकार कानून के मापदण्डों को पूरा करने के लिए 12 से 14 लाख शिक्षकों की जरूरत है। आर०टी०ई० फोरम की रिर्पोट के अनुसार बिहार में 51.51, छत्तीसगढ़ में 29. 98, असम में 11.43, हिमाचल में 9.01, उत्तर प्रदेश में 27.99, पश्चिम बंगाल में 40.50 प्रतिशत शिक्षक प्रशिक्षत नहीं है। 35 प्रतिशत स्कुलों में छात्र - छात्राओं के लिए अलग-अलग शौचालय की सुविधा नहीं हैं। 22 फीसदी विद्यालयों में पानी उपलब्ध नहीं है।

असर 2014 (एनुअल स्टेट्स ऑफ एजूकेशन रिपोर्ट) के अनुसार भारत में निजी स्कूल जाने वालों बच्चों का प्रतिशत 51.7 प्रतिशत हो गया है, 2010 में यह 39.3 प्रतिशत था। सरकारी विद्यालयों पर साधारण लोगो ं का विश्वास बहुत कम है, इसलिये इस वर्ग के लोग अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों मे पढ़ने के लिए नहीं भेजते। सरकारी विद्यालयों वे ही बच्चे पढ़ने जाते है ं, जिन्हे किसी भी अच्छे प्राईवेट स्कूल में प्रवेश नहीं मिलता। भारत के संविधान के अनुसार सभी को एक समान शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था है। परन्तु सरकारी विद्यालयों में सबसे वंचित वर्गो के बच्चे ही पढ़ने जाते हैं। सुविधा सम्पन्न वर्ग की जनता अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ने नहीं भेजते । गैर सरकारी संस्था असर 2014 की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2009 में कक्षा 3 के 5.3 प्रतिशत बच्चे कुछ भी पाठ नहीं पढ़ सकते थे, वहीं 2014 में यह अनुपात और बढ़ कर 14.9 प्रतिशत हो गया है। 2009 में कक्षा 5 के 1.8 प्रतिशत बच्चे कुछ भी पाठ नहीं पढ़ सकते थे, 2014 में यह अनुपात बढ़कर 5.7 प्रतिशत हो गया ।

चुनौतियाँ :

1. शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों के लिए सबसे बड़ी समस्या भाषा है। जिन छात्रों की मातृभाषा हिन्दी छोड कर अन्य भाषा होती है उन्हें हिन्दी मे ं लिखी हुई पाठ्य पुस्तकों को पढ़ने या समझने में अधिक परेशानी का सामना करना पड़ता है और उनको अन्य भाषा में दक्ष होने में लगभग आठ साल लग जाते हैं|

2. सरकारी स्कूलों में साधारण, लकिन आश्यक शौचालय जैसी सुविधाएं अभी भी अनुपस्थित है। सर्वेक्षणों से पता चला है कि केवल 49 प्रतिशत स्कूलों में ही लड़कियों के लिए शौचालय की सुविधा उपलब्ध है, जिसके कारण किशोर लड़कियाँ सरकारी स्कूली शिक्षा का त्याग कर रही हैं।

3. केवल 43 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में बिजली की सुविधा उपलब्ध है, जो परिस्थितियों को उचित शिक्षा प्रदान करने के लिए अत्यन्त प्रतिकूल बनाती है।

4. अधिनियम के दिशा निर्देश के सम्बन्ध में अधिकांश माता-पिता को ठीक तरह जानकारी न होने के कारण वे अपने बच्चों के लिये अधिकारों की मांग नहीं कर पाते।

5. देश के अनेक विद्यालय मानते हैं कि आर0टी0ई0 के अन्तर्गत गरीब बच्चों के प्रवेश से उनके विद्यालय के परिणाम का स्तर गिर जाएगा, अतः वे इन बच्चों के प्रवेश को हतात्साहित करते है।

6. सरकार विद्यालयों को समय पर क्षतिपूर्ति राशि प्रदान नहीं करती अतः विद्यालय प्रशासन इन बच्चों को प्रवेश देने में आनाकानी करता है ।

7. इस अधिनियम के अन्तर्गत विकलांगों, अनाथों, भिखारियों आदि के बच्चों के लिये पृथक प्रावधान नहीं किया गया है।

सफल बनाने के लिए सुझावः

सरकार कोशिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के समस्त प्रावधानों के क्रियान्वयन को निम्नलिखित सुझाव द्वारा सफल बनाया जा सकता-

1. शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 को सफल बनाने के लिये जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिये, जिसमें मीडिया, सोशल मीडिया, प्रसिद्ध व्यक्तियों, स्थानीय नेताओं, सिविल सोसायटी आदि को शामिल करना चाहिये ।

2. विद्यालयों की समुचित निगरानी करनी चाहिये एवं समय - समय पर इस अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन की रिपोर्ट लेनी चाहिये ।

3. विद्यालयों को रियल टाइम आधार पर निगरानी के लिये ऑनलाइन प्रबन्धन प्रणाली का प्रयोग करना चाहिये।

4. अध्ययन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये सतत् और व्यापक मूल्यांकन को महत्व देना चाहिये।

5. अध्यापन की गुणवत्ता सुधार के लिये शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्थाओं पर ध्यान देना चाहिये।

6. 25 प्रतिशत आरक्षण का पालन न करने के मामले में कडे दण्ड का प्रावधान किया जाना चाहिये।

7. शिक्षकों से गैर शिक्षकीय कार्य लेना पूरी तरह से बन्द कर दिया जाना चाहिये।|

8. शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षण समाप्त करके शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिये।

9. शिक्षा में सभी प्रकार का भेदभाव समाप्त कर देना चाहिये।

10. सभी विद्यालयों में फीस की राशि एक समान होनी चाहिये। अगर कोई विद्यालय ज्यादा फीस ले तो उसको कठोर दण्ड दिया जाये T

11. जो अभिभावक 6-14 वर्ष के बच्चों को विद्यालय नहीं भेजते और उनसे बाल श्रम करवाते है, उन्हें कठोर दण्ड देने का प्रावधान होना चाहिये।

भारतीय जीवन दृष्टि -

आजकल एक बात प्रायः कही जाती है कि वर्तमान युग संघर्ष का युग है। राष्ट्रों - राष्ट्रों के मध्य, जातियों-जातियों के मध्य व वर्गों के मध्य में संघर्ष जारी है। इतना ही नहींए भाई भाइयों और पति पत्नी के मध्य भी संघर्ष चल रहा है। इससे भी आगे बढ़कर आजकल तो व्यक्ति के अन्दर अंतर्मन में भी द्वंद्व जारी है। चारों ओर विघटन और टूट-फूट है। कोई भी राष्ट्र या परिवार संघर्ष के इस रोग से अछूता नहीं है। आखिर इतने बड़े विश्वव्यापी बिखराव और तनाव का कारण क्या है ? यह हमको जानना ही होगा।

हमारे अनुसार इसका सबसे पहला कारण युग का बदलाव है। युग परिवर्तन से युगबोध बदला है और उसके बदलने से जीवन-मूल्य या जीवन-दृष्टि बदली है। आज हम मूल्यों के चौराहे पर खड़े हैं। न तो हम अभी तक पुरातन जीवन-मूल्यों को छोड़ ही सके हैं और न नवीन मूल्यों को पूर्णतया आत्मसात् ही कर सके हैं। ऐसी स्थिति में एक प्रमुख सांस्कृतिक संकट उपस्थित हो गया है। नूतन और पुरातन का। यह दृष्टिगत संघर्ष ही आज के हमारे संघर्ष का मूल कारण है। यहाँ पर सनातन मूल्यों से तात्पर्य भारतीय जीवन-दृष्टि से है और नूतन से आशय पाश्चात्य दृष्टि का है। इनमें से अभी हम एक भी द ष्टि को न तो पूर्णतया

स्वीकार कर सके हैं और न ही पूर्णतया नकार सके हैं। ये दोनों जीवन दृष्टियाँ दो विरोधी दिशाओं में जाने वाली सरल रेखाओं की भांति है। इनके अन्तर को समझ लेने से हमारी बात स्पष्ट हो सकती है।

भारतीय या वैदिक सनातन दृष्टि जीवन प्रवाह को चिरंतन और अखण्ड मानती है जबकि आधुनिकतावादी पाश्चात्य दृष्टि जीवन को क्षणों में जीने की अभिलाषी है। इसी प्रकार से भारतीय जीवन - दृष्टि मानव जीवन का मूलोद्देश्य आनन्द या मुक्ति मानती है जबकि पाश्चात्य दृष्टि जीवन का उद्देश्य केवल शारीरिक सुख तक सीमित करती है। भारतीय जीवन दृष्टि विकास के लिए सहयोग को अनिवार्य मानती है। वह प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति का एक-दूसरे का विरोधी न मानकर उसका पूरक ही स्वीकार करती है। उन्हें ज्ञान के दो दिशाओं के ध्रुव मानकर उसके विकास में सहायक मानती है। लेकिन पाश्चात्य दृष्टि व्यक्ति–व्यक्ति, वर्ग–वर्ग, जाति-जाति, राष्ट्र - राष्ट्र, पदार्थ और पदार्थए विचार और विचार तथा व्यवस्था - व्यवस्था के मध्य संघर्ष को जरूरी मानती है। उसके यहाँ तो विकासवादी सिद्धांत की प्रक्रिया ही वाद-विवाद और संवाद की है। वहाँ सहयोग के लिए गुंजाइश नहीं, वहाँ तो केवल सतत संघर्ष की प्रेरणा है। और तो क्या धर्म के विषय में उसकी यही चिंतना है। भारतीय जीवन-दृष्टि यह मानती है कि हमने जो भी कुछ पाया है, वह प्रकृति और परमात्मा के उपहार के रूप में पाया है। अतः हमें उसका धन्यवादी होना चाहिए। इस विषय ने विकासवादी और मार्क्सवादी अथवा आधुनिकतावादियों का यह कथन है कि मनुष्य ने जो कुछ पाया हैए वह केवल और केवल उसके संघर्ष का ही प्रतिफल है। कोई ईश्वर या खुदा जैसी वस्तु नहीं है। जो कुछ है सो मनुष्य है। बल्कि उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि खुदा ने इंसान को नहीं बनाया बल्कि आदमी ने ही खुदा को अपनी कल्पना द्वारा बनाया है। ऐसी स्थिति में ऐसे लोग आत्मा-परमात्मा की बात कैसे करेंगे या मानेंगे। कैसे उस पर भरोसा करेंगेघ् कैसे जीवन में संतोष और अपरिग्रह के नियमों का पालन करेंगे?

एक और बात। भारतीय जीवन दृष्टि मूलतः निवृत्तिवादी अथवा त्यागवादी रही है। उसने त्यागपूर्वक भोग को उचित माना है जबकि पाश्चात्य दृष्टि में त्याग या संयम के लिए कहीं कोई स्थान ही नहीं है। वहाँ पर तो उन्मुक्त उपयोगितावाद या उपभोक्तावाद है। वहाँ पर प्रत्येक वस्तु का भौतिक प्रयोजन है। अतएव सबकुछ संसाधन है और तो क्या स्त्री और पुरुष भी संसाधन मात्र है। ऐसी स्थिति नियम संयम और सदाचार का क्या मूल्य हो सकता हैघ् जब जीवन का एकमात्र चरम लक्ष्य भोगवाद रह गया हो तो फिर समाज में बलात्कार और अपहरण तथा हिंसाचार ही होगा । संयम और सदाचार कैसे होंगे।|

भारतीय जीवन-दृष्टि ने प्रवृत्ति का सर्वथा विरोध नहीं किया है। बल्कि प्रवृत्ति और निवृत्ति का समुचित विधान किया है। मानव-जीवन के चार परम पुरुषार्थ - धर्म - अर्थ - काम और मोक्षए निर्धारित किए। इनमें से बीच के दो प्रवृत्ति परक हैं जबकि आदि और अन्तिम निवृत्ति मूलक हैं। कहने का तात्पर्य है कि हमारे यहाँ जीवन में भोग और योग यत्यागद्ध का समुचित सांमजस्य रहा है जबकि पचिम में उन्मुक्त उपभोगवाद है। हमारी दृष्टि यह रही कि निरन्तर भोग करने से हमारी कामनाएँ तृप्त नहीं होतीं बल्कि अभिलाषाएँ और ज्यादा उमड़ती हैं। जैसा कि मनु महाराज ने कहा कि न जातु कामनामुपभोगेन शाम्यते कामाः यथा हविषा कृष्णवर्त्मा भूयेवाभिवर्धते !!

अर्थात जिस प्रकार से यज्ञाग्नि में घी की आहुतियाँ डालने से वह और भी प्रचण्ड हो जाती है, इसी प्रकार से कामनाओं की निरन्तर पूर्ति से वह घटती नहीं बल्कि और भी बढ़ती है। यह हम व्यवहार में भी देख सकते हैं। जिसके पास साइकल है वह स्कूटर, मोटरसाइकल पर चढ़ने की बात सोचता है । जिस पर ये हैं वह कार की बात सोचता है। कार वाला वायुयान की बात सोचता है, इसी प्रकार से जिसके पास हजार रुपए हैं। वह लाखों की इच्छा करता है। लाखों वाला अरबपति और खरबपति बनने का स्वप्न देखता रहता है।

सारांश – कहने का तात्पर्य यही है कि कामनाओं का कहीं अंत ही नहीं है। इसी भोगवादी जीवन-दृष्टि के कारण जीवन में उद्दाम भोग लालसा जगी है। सुख - सामग्री के संचय की अंधी होड़ लग गई है। जब एक ही वस्तु के अनेक ग्राहक हों तो वहाँ संघर्ष तो होगा ही। त्याग और समर्पण अथवा सेवा और सहकार आज बीते युग की बातें हो गई हैं । सब स्वार्थी हो चले हैं। जहाँ भी स्वार्थ टकराता है तो संघर्ष हो जाता है। वह परिवार - क्षेत्र हो गया समाज - क्षेत्र। आय के साधन स्रोत सीमित हैंए लेकिन आवश्यकताएँ असीमित हैं। ऐसी स्थिति में, समाज में खिंचाव और तनाव तथा आपा-धापी है।

धन्यवाद!

21वीं सदी में भावी शिक्षकों से अपेक्षाएं

कल्पना दाधीच
शोधार्थी
सनराईज विश्वविद्यालय, अलवर
सेठ मोतीलाल टीचर्स एज्यूकेशन कालेज, झुंझुनू

आज देश में शिक्षा की गुणवत्ता और उन्नयन के लिए विभिन्न संस्थाऐं कार्य कर रही हैं। जो केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर अपनी-अपनी भूमिका में कार्यरत हैं। जिनमें प्रमुख संस्था NCERT है।

यह एक ऐसी संस्था है, जो देश में शिक्षा की गुणवत्ता के लिए विद्यालय शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक कार्य कर रही है। यह अपने तीन प्रमुख घटकों के माध्यम से कार्य करती है।

(1) राष्ट्रीय शिक्षा संस्था (2) शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र (3) क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय) इनकी भूमिका निम्न प्रमुख कार्यों में महत्वपूर्ण होती है।

(1) अध्यापक शिक्षा यह सेवापूर्व एवं सेवारत अध्यापकों के लिए कार्यरत नीति-निर्धारण एवं सामग्री निर्माण का कार्य करता है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में सुधार करना, परिवर्तन करना तथा प्रशिक्षण के कार्य में संलग्न अध्यापकों व अधिकारियों को उन परिवर्तनों से परिचित कराने का कार्य करता है। शिक्षण विधियों में सुधार के लिए समय-समय पर अपने सुझाव देता है। मंदबुद्धि एवं विकलांग बालकों की शिक्षा संबंधित खोजों के आधार पर आवश्यक सुझाव देना।

(2) शिक्षा के क्षेत्र में खास तौर पर प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों पर अनुसंधान कार्य करना, शिक्षकों को अनुसंधान के लिए प्रेरित करना, शिक्षकों को पुरस्कृत करना, अनुसंधान परिणामों को सुदूर क्षेत्रों तक प्रसारित करना।

(3) शिक्षण की उन्नत तकनीकों व नवाचारों को बढावा देना।

(4) शिक्षा मनोविज्ञान, परामर्श तथा निर्देशन बाल और किशोर मनोविज्ञान के उद्देश्यों द्वारा बाल केन्द्रित शिक्षा को रूचिकर बनाने के उद्धेश्य से सीखने के सिद्धान्त के आधार पर सीखने की प्रक्रिया को व्यवस्थित करने का कार्य करना, उनका परीक्षण करना।

(5) संचार माध्यमों का शिक्षा के क्षेत्र में समुचित प्रयोग कराना NCERT का केन्द्रिय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान घटक इस कार्य को पूरा करने में अपनी भूमिका निभाता है। यह रेडियो, दूरदर्शन पर शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए शैक्षिक सामग्री का निर्माण, मंच सज्जा, प्रस्तुतीकरण आदि सभी कार्य किये जाते हैं। सांस्कृतिक विरासत तथा र्यावरण जागरूकता के लिए कम्प्यूटर के कार्यक्रम भी निर्मित करना है।

यह घटक 5 से 8 तथा 9 से 11 वर्ष के बच्चों के लिए "शैक्षिक दूरदर्शन' कार्यक्रम पेश करता है।

(6) क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों के माध्यम से भी निम्न कार्यों का सम्पादन किया जा रहा है। जैसे- विभिन्न गोष्ठियों का आयोजन, कार्यशालाओं का आयोजन करवाना। प्रकाशन के लिए अनुदान देना, अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षित करना, सेवारत अध्यापकों को रेफ्रेशर कोर्सों के माध्यम से समय के अनुसार तैयार करना।

(7) विभिन्न पाठ्यपुस्तके, पुस्तकें एवं पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन NCERT विभिन्न स्तर की पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित करवाती है। शिक्षण सामग्री तथा प्रमुख जर्नल भी प्रकाशित कराती है।

जर्नल में प्रमुख हैं- इण्डियन एज्यूकेशन रिव्यू, जर्नल ऑफ इण्डियन एज्यूकेशन, स्कूल साइन्स, प्राईमर टीचर आदि।

(8) अर्न्तराष्ट्रीय संस्थानों जैसे यूनेस्को, यूनिसेफ तथा अन्य राष्ट्रों की शिक्षा संस्थाओं से सम्पर्क रखना।

NCERT का प्रभाव :- शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य को बढावा मिला, समय-समय पर शिक्षा में आने वाली समस्याओं का हल निकला। सेवारत तथा सेवा पूर्व अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध हुए। सेमिनार, वर्कसोपों (कार्यशालाओं) के आयोजन से प्रतिभागियों के वृत्तिक विकास होता है तथा विभिन्न निष्कर्षों को व्यवहार में लाया जा सका।

गुणवत्तापूर्ण पाठ्यक्रम लागू होने से सम्पूर्ण देश में NCERT के पाठ्यक्रम को सराहा जाने लगा। व विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में भी NCERT की पाठ्यपुस्तकों से प्रश्न पूछे जाते हैं।

विभिन्न स्तर की पाठ्यपुस्तकें व पत्र पत्रिकाओं में गुणवत्ता होती है। इनसे शिक्षा से संबंधित लोग लाभान्वित हो रहें हैं।

सुझाव :-

(1) विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा बी.एड. / एम.एड. के पाठ्यक्रमों में वही पाठ्यक्रम हो जो क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में लागू है।

(2) अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता का काम NCERT को ही दिया जाना चाहिए।

(3) अध्यापक शिक्षा के लिए कॉलेजों को मान्यता देने का कार्य NCTE का हो व अन्य जिम्मेदारी NCERT की हो।

(4) खेलों पर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। चाहे वो विद्यालय शिक्षा हो या अध्यापक शिक्षा।

सारांश :- शिक्षा की गुणवत्ता और उन्नयन में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद का कार्य सराहनीय पूर्ण है। प्रत्येक स्तर की शिक्षा में गुणवत्ता व उन्नयन का कार्य किया जा रहा है। प्रारम्भिक शिक्षा में पाठ्यक्रम निर्माण, योजना निर्माण, मूल्यांक क्रिया तथा खेल-खेल में शिक्षा देना, करके सीखना आदि विधियों में महत्वपूर्ण योगदान है। अनुसंधान के क्षेत्र में भी इस परिषद द्वारा अत्यधिक कार्य किया गया है। शिक्षा से संबंधित लोगों को प्रशिक्षण देना तथा विभिन्न पाठ्यपुस्तकों / पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन करना आदि कार्य करवाये जा रहे हैं।

सधन्यवाद् !

21 वीं सदी में शिक्षक शिक्षा भारतीयकरण की आवश्यकता, संभावनाएं एवं चुनौतियां

डॉ. रेखा शर्मा
प्राचार्या
ऋषिकुल बी.एड. कॉलेज, लक्ष्मणगढ
मो. न. 9887596694

21 वीं सदी में शिक्षक और विद्यालय को ज्ञानार्थी प्रतिपादक, संचारक, संगठन, समन्वयक, परवर्तक, समस्या निवारक की बहुआयामी भूमिकाएं निभानी पड़ेगी। इसके लिए बहुत प्रयास एवं प्रयत्न अभियान एवं आन्दोलन करना पड़ेगा। समाज में प्रमुख पदों पर बैठे हुए कई लोग भारत में शिक्षा के लिए सही दृष्टि कोण स्थापित करने में रूचि एवं प्रयास कर रहे है देश में चल रहीं वर्तमान बहसों में ''भारतीयकरण'' को भगवाकरण के रूप में गलत समझा जा रहा है जो अपने आप में गलत नहीं है लेकिन एक नये अर्थ को प्रदर्शित करता है। शिक्षा के भारतीयकरण से तात्पर्य एक समृद्ध संस्कृति का हिस्सा बनने से है शिक्षा मंत्रालय 7 वर्षों बाद भी भारत एवं भारतीयता की गहरी समझ रखने वाले विद्वानों–विशेषज्ञों को विभिन्न समितियों आयोगों से जोड़ नहीं पाया है जो दुर्भाग्यपूर्ण है अब तक पश्चिमीकरण को ही प्रगति स्तरीयता एवं आधुनिकता का एकमात्र पैमाना माना जाता है जबकि आज अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा प्रणाली को देशानुकूल बनाकर आत्मसात किया जाये।

चुनौतियां :–

वर्तमान शिक्षा कों 2 भागों में बांटा जा चुका है

1. पहली किताबी शिक्षा
2. व्यवहारिक शिक्षा।

किताबी शिक्षा के लिए आज भारत के शिक्षालय समर्पित दिखाई देते है देश का हर निजी विद्यालय लगभग विदेशी शिक्षा से प्रभावित होकर अपने संस्थान में शिक्षा दे रहे हैं ऐसे में शिक्षा को भारतीय स्वरूप में अपनाना तथा पूर्ण प्रभाव में लान एक महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक माना जा सकता है।

मानकीकृत कार्यक्रमों की कमी एक बड़ी चुनौती हैं जिसके परिणामस्परूप प्रशिक्षण की गुणवता एवं सामग्री असंगत हो सकती है जिनमें से कुछ है–

1. प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों की विशिष्ट आवश्यकताओं को अप्रासंगिक हो चुके है इसके अतिरिक्त पुराना पाठ्यक्रम जोकि अनुभवात्मक शिक्षा के स्थान पर रटने पर बल देता है जिसको अचानक बदलना चुनौतिपूर्ण है।
2. अपर्याप्त बुनियादी ढ़ांचा जोकि गुणवतापूर्ण व सुविधाओं की कमी से ग्रस्त है जिसे बदलना आसान नहीं है।
3. संसाधनों की कमी।
4. नवीनीकरण काअभाव।
5. टेक्नोलोजी के उपयोग से संबन्धित चुनौतियां।

उपर्युक्त कुछ चुनौतियां है जिनका समाधान कर हम 21 वीं सदी की शिक्षा को भारतीयता के अनुकूल बना कर देश की उन्नति में अपनी महत्वपूर्ण एवं प्रभावी भूमिका निभा सकते है।

शिक्षक शिक्षा का भारतीयकरण करने हेतु गुणवतापूर्ण अध्ययन सामग्री की तैयारी

सत्यवीर सिंह चाहर
कानोडिया बी.एड कॉलेज, मुकुन्दगढ़

डॉ. संजय कुमार (प्राचार्य)
जीवणी बी.एड कॉलेज,
अडूगा, झुन्झुनू (राज.)

शिक्षण सामग्री वे सामग्रियां हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपने शिक्षण को सरल बनाने के लिए करते हैं। इनमें दृश्य और श्रव्य–दृश्य दोनों सहायता शामिल हैं और ये ठोस या गैर–ठोस हो सकते हैं। ये अनुदेशात्मक सामग्रियां छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करके सीखने में जान डालती हैं। सहायक सामग्री पुनर्बलन और प्रतिपुष्टि प्रदान कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अपने उद्देश्यों में सफल बनाते हैं। विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री (रेडियो, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि) के प्रयोग से बालकों को नए–नए शब्दों का अनुभव होता है, उनके शब्द भंडार में वृद्धि होती है। सहायक सामग्री बालकों की कल्पना–शक्ति का विकास करती है।

शिक्षा एक ऐसा गुण है जो जीवन भर व्यक्ति के साथ रहता है। शिक्षित जनता थिंक टैंक, विकास चालक और साथ ही किसी भी राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में योगदानकर्ता होती है। 2020 तक शिक्षा का मतलब था कि एक छात्र कितनी सामग्री सीख सकता है और उसे परीक्षा में दोबारा पेश कर सकता है। यह प्रणाली नवीन विचारों, रचनात्मकता, आलोचनात्मक विश्लेषण आदि के विरुद्ध थी।

कॉलेज में दाखिले के लिए उच्च कट–ऑफ अंक और बोर्ड परीक्षाओं में छात्रों का स्कोर लगभग परफेक्ट होना शिक्षा प्रणाली में गंभीर खामियों को दर्शाता है। जैसा कि सोनम वांगचुक ने कहा, "95% अंक वाले छात्रों को असफल होने का एहसास क्यों कराया जाता है"।

हालाँकि, शिक्षा में गुणवत्ता का न केवल आर्थिक विकास यानी सकल घरेलू उत्पाद या जीवन स्तर, गरीबी में कमी, बल्कि सामाजिक विकास यानी भेदभाव में कमी, जाति चेतना में कमी, लिंग अंतर और लिंग पूर्वाग्रह में कमी आदि और नैतिक मानक पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। नागरिक, नवाचार, रहने योग्यता।

गुणात्मक शिक्षा का क्या अर्थ है :–सरल शब्दों में, गुणात्मक शिक्षा का अर्थ शिक्षा का वह स्तर है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति समाज में योगदानकर्ता बन सकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वे परिणाम प्रदान करती है जो व्यक्तियों, समुदायों और समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में न केवल साक्षरता और संख्यात्मकता बल्कि व्यापक जीवन कौशल भी शामिल होना चाहिए जो उन्हें नेता और परिवर्तन–निर्माता बनने के लिए सशक्त बनाए ।

एसोसिएशन फॉर सुपरविजन एंड करिकुलम डेवलपमेंट के अनुसार, "एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वह है जो लिंग, जाति, जातीयता, सामाजिक आर्थिक स्थिति या भौगोलिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक छात्र के संपूर्ण बच्चे यानी सामाजिक, भावनात्मक, मानसिक, शारीरिक और संज्ञानात्मक विकास

पर ध्यान केंद्रित करती है।" जगह। यह बच्चे को जीवन के लिए तैयार करता है, न कि केवल परीक्षण (परीक्षा) के लिए।"

शिक्षा को गुणात्मक बनाने के लिए, उसे न केवल "छात्रों को पढ़ाने" पर बल्कि "क्या पढ़ाया जा रहा है (पाठ्यक्रम) और "कैसे पढ़ाया जा रहा है" (शिक्षाशास्त्र) पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। स्कूली शिक्षा हमेशा सीखने की ओर नहीं ले जाती। दुनिया भर में, स्कूल के बाहर की तुलना में स्कूल में गैर–सीखने वालों की संख्या अधिक है।

इस प्रकार गुणात्मक शिक्षा "सीखने के परिणामों" या सीखने के परिणामों, जीवन कौशल सीखने, अमूर्त अवधारणाओं को सरल तरीके से समझाने की क्षमता (फेनमैन तकनीक) पर केंद्रित है। इसके लिए याद रखने और रटने से लेकर वास्तविक जीवन में समझने, विश्लेषण और अनुप्रयोग की ओर बदलाव की आवश्यकता है – इसमें अनुभव के माध्यम से सीखना शामिल है।

पहले शिक्षा का ध्यान, विशेष रूप से भारत में, मुख्य रूप से "प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच", "सीखने की अवधारण" और "प्राथमिक शिक्षा की प्रतिस्पर्धा" पर था। इस प्रकार, शैक्षिक परिणामों के बजाय, बड़ी संख्या में बच्चों द्वारा बुनियादी शिक्षा तक पहुंच और छात्र एक विशेष कक्षा में कितना ज्ञान रट सकते हैं, इस पर ध्यान केंद्रित किया गया था। पहले सोच यह थी कि सामग्री याद रखने से बच्चे शिक्षित होंगे। सामग्री की मात्रा को कम से कम भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मानक माना जाता था। एसडीजी इस बात की मान्यता है कि शिक्षा का यह विचार अपर्याप्त और पुराना है। शिक्षा केवल परीक्षा में सामग्री वितरण प्रणाली नहीं है। इसे सभी बच्चों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुंचने और पूर्ण और उत्पादक नागरिकों के रूप में समाज में प्रवेश करने में मदद करने वाली एक प्रणाली के रूप में देखा जाना चाहिए।

गुणात्मक शिक्षा के प्रमुख तत्व –

सुरक्षित और सहायक शिक्षण वातावरण : –सार्थक शिक्षण के लिए, वातावरण ऐसी शिक्षा के लिए अनुकूल होना चाहिए। यहां पर्यावरण का अर्थ भौतिक वातावरण, प्रारंभिक बचपन का अनुभव और माता–पिता, शिक्षकों, सरकारों आदि से समर्थन है। प्रारंभिक बचपन के दौरान स्वस्थ विकास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह एक स्वस्थ जीवन और सफल औपचारिक स्कूल अनुभव की नींव बनाता है। व्यवहार संबंधी समस्याओं वाले बच्चों को आमतौर पर बचपन के दौरान "वंचित या बेकार परिवारों" का अनुभव होता है।

प्रारंभिक जीवन में एक बच्चे के विकास की गुणवत्ता उसके पूरे जीवन में विकास क्षमता और मुकाबला कौशल को प्रभावित करती है।

सुरक्षित और समावेशी शिक्षण वातावरण के बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं हो सकती। लड़कियों और हाशिए पर रहने वाले वर्ग यानी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए सुरक्षित

वातावरण को जाति, जातीयता, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव का सामना नहीं करना चाहिए, साथ ही बेहतर सीखने के परिणामों के लिए भी आवश्यक है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षक :–ज्ञान प्रदान करने के लिए शिक्षक पाठ्यक्रम के साथ–साथ गुणात्मक शिक्षा का आधार हैं। छात्रों को सीखने में मदद करने के लिए शिक्षकों के लिए पेशेवर शिक्षा होनी चाहिए। शिक्षकों को अपने विषय के साथ–साथ शिक्षाशास्त्र पर भी महारत हासिल होनी चाहिए। एक शिक्षक की योग्यता महत्वपूर्ण है क्योंकि बुनियादी कौशल से परे छात्रों की उपलब्धि काफी हद तक विषय पर शिक्षक की पकड़ पर निर्भर करती है, उदाहरण के लिए। माध्यमिक शिक्षा संस्थानों और उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षक, अधिक जानकारी के लिए

आधारभूत संरचना :–इसमें सुरक्षित भौतिक संरचनाएं (जैसे शौचालय, कक्षाएँ), ऐसे वातावरण की स्थापना शामिल है जो सीखने की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है, कर्मचारियों को एक छात्र की आवाज़ को प्रोत्साहित करती है, और सामाजिक और भावनात्मक विकास को बढ़ावा देती है। इसमें स्कूलों की उपलब्धता और शिक्षा तक पहुँचने की प्रक्रिया कितनी सुरक्षित है, यह भी शामिल है। स्कूलों के माध्यम से . यदि लड़कियों को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में शारीरिक और यौन उत्पीड़न का अनुभव होता है तो भारत की तरह स्कूलों की यात्रा असुरक्षित है। सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण वातावरण के लिए बुनियादी ढांचे की उपलब्धता महत्वपूर्ण है।

पाठ्यक्रम :–किसी बच्चे का पाठ्यक्रम से परिचित होना उसकी उपलब्धियों और स्कूल में बच्चे के बने रहने की संभावनाओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। भारत और अफ़्रीका जैसे देशों में स्कूल छोड़ने की उच्च दर बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

गुणवत्तापूर्ण सामग्री :– यूनिसेफ के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे विषय की गहरी समझ हो सके। इसे प्रासंगिक अध्ययन यानी वास्तविक दुनिया के संदर्भ में सैद्धांतिक ज्ञान को लागू करके समस्याओं को समझने और हल करने में सक्षम होना चाहिए। प्रासंगिक शिक्षण का अर्थ है सीखने के दौरान सिखाई जाने वाली सैद्धांतिक संरचनाओं को व्यावहारिक, वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ना।

प्रिन्ट–सामग्री – पाठ्यपुस्तकें,पम्पलेट,हैंडा–आउट,अध्ययन–मार्गदर्शिकाएँ, मैनुअल

श्रव्य सामग्री– यूएसबी ड्राइव, कैसेट, माइक्रोफोन,

दृश्य सामग्री– चार्ट, वास्तविक वस्तुएँ, फोटोग्राफ, ट्रान्सपैरेन्सी

श्रव्य–दृष्य सामग्री–स्लाइड, टेप, फिल्में, टेलीविजन, मल्टिमिडिया, यू–ट्यूब

इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ–संगणक, ग्राफ दर्शाने वाले कैलकुलेटर, टैबलेट, स्मार्ट फोन

गुणात्मक शिक्षा का महत्व :–"शिक्षा को लोगों को अधिक न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और सहिष्णु समाज बनाने में मदद करने में पूरी तरह से अपनी केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए।" (बान की मून, संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव)

1. सतत विकास लक्ष्यों का लक्ष्य–4 "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" पर केंद्रित है। एसडीजी–4 के अनुसार, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सतत विकास की नींव है, और इसलिए सतत विकास लक्ष्यों की नींव है। 2030 तक शिक्षा के वैश्विक लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रत्येक बच्चे को समावेशी, गुणवत्तापूर्ण पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने और उसे पूरा करने में सक्षम होना चाहिए।

2. शिक्षा पीढ़ियों से चली आ रही गरीबी और भुखमरी को कम करती है और विशेष रूप से माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य परिणामों में सुधार करती है। इस प्रकार यह राष्ट्रों के सामाजिक–आर्थिक संकेतकों के लिए महत्वपूर्ण है।

3. शिक्षा राष्ट्रों के आर्थिक स्वास्थ्य में सुधार करती है, नागरिक भागीदारी बढ़ाती है और संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान की संभावना बढ़ाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को यूं ही नहीं छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि यह वह आधार है जिस पर देश अपनी आबादी के समग्र स्वास्थ्य, कल्याण और आर्थिक जीवन शक्ति में सुधार के लिए भरोसा करते हैं।

4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा यह भी सुनिश्चित करती है कि मनुष्य प्रकृति के साथ सद्भाव में रहें और प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग करें। दुनिया भर के लोगों को एक स्थायी भविष्य के निर्माण के लिए ज्ञान और कौशल विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए।

5. प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, अपर्याप्त शिक्षण सामग्री, अस्थायी कक्षाएं और खराब स्वच्छता सुविधाएं कई बच्चों के लिए सीखना कठिन बना देती हैं। यूनिसेफ इसे "सीखने का संकट" के रूप में वर्णित करता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव बच्चों और किशोरों को जीवन, कार्य और सक्रिय नागरिकता के लिए तैयार करने में सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती है।

6. यूनिसेफ के अनुसार खराब गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच बिल्कुल भी शिक्षा न होने के बराबर है। गुणवत्ता न केवल कक्षाओं में क्या होता है, बल्कि कक्षाओं के बाहर क्या होता है, उससे भी प्रभावित होती है।

गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारतीय मानक :–भारत में गुणात्मक शिक्षा को विशेष रूप से परिभाषित नहीं किया गया है, बल्कि इसे विभिन्न संकेतकों या गुणों से समझा जाता है जो एक व्यक्ति या बच्चे के जीवन के एक निश्चित चरण में होने चाहिए। जैसे आलोचनात्मक विश्लेषण करने की क्षमता, योग्यता, रोजगार योग्यता, किसी कार्य को करने में दक्षता आदि।

प्राथमिक स्तर :–प्राथमिक स्तर पर, गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) को गुणात्मक शिक्षा के रूप में समझा जाता है। यूनेस्को के अनुसार ईसीसीई केवल प्राथमिक विद्यालय शिक्षा की तैयारी से कहीं अधिक है। यह आजीवन सीखने और कल्याण के लिए एक ठोस आधार बनाने के लिए बच्चे की सामाजिक, भावनात्मक, संज्ञानात्मक और शारीरिक आवश्यकताओं का समग्र विकास है।

प्राथमिक स्तर पर सीखने के परिणाम :–एक बच्चे के सीखने के परिणामों की निगरानी के लिए, कक्षा 3 , 5 और 8 के छात्रों का राष्ट्रीय मूल्यांकन सर्वेक्षण (एनएएस) आयोजित किया गया । इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य इस बात की समग्र तस्वीर प्राप्त करना था कि विशिष्ट कक्षा के छात्र क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं और इन निष्कर्षों का उपयोग कमियों की पहचान करने, उन क्षेत्रों का निदान करने के लिए करना था जिनमें सुधार की आवश्यकता है। इस डेटा के माध्यम से डेटा एनालिटिक्स ने छात्रों के सीखने में सुधार के लिए नीतियां और हस्तक्षेप तैयार करने में मदद की।

2017 में एनसीईआरटी ने प्रारंभिक चरण में सीखने के परिणाम शीर्षक से दस्तावेज़ जारी किया। इसने पहली बार स्कूलों के लिए सीखने के परिणामों पर एक बेंचमार्क प्रदान किया। यह विस्तार से प्रदान करता है कि कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों को अंग्रेजी, गणित, पर्यावरण अध्ययन और विज्ञान में समस्या–समाधान क्षमताओं को प्राप्त करने सहित क्या समझने और करने में सक्षम होना चाहिए। कई विशेषज्ञों ने इसका स्वागत किया है क्योंकि इसने पहली बार स्कूलों द्वारा सीखने के परिणामों के रूप में प्राप्त किए जाने वाले संस्थागत लक्ष्य बनाए हैं जो आमतौर पर छात्रों के पास होने चाहिए।

स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक :–नीति आयोग ने स्कूली शिक्षा में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (UT) के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए SEQI विकसित किया है। नीति आयोग के लिए यह सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद को आगे बढ़ाने का एक तरीका है। यह सूचकांक भारत में स्कूली शिक्षा परिदृश्य की विविधता और जटिलता को दर्शाता है। यह राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को डेटा–संचालित निर्णय लेने के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है, जिसमें गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हस्तक्षेपों का बेहतर लक्ष्यीकरण भी शामिल है।

SEQI का लक्ष्य सीखने के स्तर, पहुंच, समानता और बुनियादी ढांचे और शासन प्रक्रिया में सुधार करके "शिक्षा परिणामों" में सुधार करना है।

सीखने के परिणाम को इस रूप में दिखाया जाता है कि बच्चे कक्षा 3, कक्षा 5 और कक्षा 8 में भाषा और गणित में कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 4 के अनुसार, यदि किसी बच्चे को सीधे प्रवेश दिया जाता है एक कक्षा में जो उसकी उम्र के लिए उपयुक्त है, तो उस बच्चे को दूसरों के बराबर होने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। इसके अलावा धारा 4 में कहा गया है कि प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश पाने वाला बच्चा चौदह वर्ष के बाद भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक मुफ्त शिक्षा का हकदार होगा । पहुंच परिणाम को नामांकन अनुपात का विश्लेषण करके मापा जाता है यानी कितने नए छात्र स्कूल में शामिल होते हैं और संक्रमण दर से यानी कितने छात्र प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक जाते हैं। इस संबंध में। निःशुल्क और अनिवार्य बच्चों की शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत मॉडल नियमों की धारा 4 ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह स्कूलों तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए राज्य पर कर्तव्य थोपती है।

नियम 4(1) के अनुसार, राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह कक्षा 1 से 5 वीं (प्राथमिक विद्यालय) के बच्चों के लिए पड़ोस के 1 किमी की पैदल दूरी के भीतर एक स्कूल स्थापित करे और 3 की दूरी के भीतर भी एक स्कूल स्थापित करे। कक्षा 6 वीं से 8 वीं तक के लिए पड़ोस का किमी .

इसके अलावा नियम 4(7) के तहत विकलांग बच्चों के लिए जो उन्हें स्कूल तक पहुंचने से रोकते हैं, राज्य सरकार/स्थानीय प्राधिकरण को उनके लिए स्कूल जाने और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए उचित और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करनी चाहिए। नियम 5(1) के अनुसार विकलांग बच्चों को निःशुल्क विशेष शिक्षण एवं सहायता सामग्री उपलब्ध करायी जायेगी।

इक्विटी परिणाम सामान्य श्रेणी के छात्रों की तुलना में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के प्रदर्शन (सीखने के परिणाम) को मापता है। इससे यह पता चलता है कि सीखने की प्राप्ति और परिणाम के बीच कितनी असमानता है। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के छात्रों और लड़कों और लड़कियों के बीच सीखने के परिणामों में अंतर को भी मापता है।

गुणात्मक शिक्षा के लिए सूचकांक महत्वपूर्ण है क्योंकि बचपन के प्रारंभिक वर्ष (विश्व स्तर पर 0–8 वर्ष) मानव जीवन चक्र में संज्ञानात्मक, मोटर, सामाजिक और भावनात्मक विकास का सबसे महत्वपूर्ण चरण है।ैम्फप् 2019 के अनुसार, प्रारंभिक बचपन में सबसे महान और सबसे शक्तिशाली तुल्यकारक होने की क्षमता है।

भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बाधाएँ और एनईपी–2020 से सुधारों का सुझाव दिया गया :–

ब्रिटिश भारत में शिक्षा प्रणाली अभिजात्यवादी थी, हालाँकि साक्षरता दर 16% थी, जिसमें महिला साक्षरता दर मात्र 8.9% थी। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद ध्यान स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों के नामांकन को सुनिश्चित करने, शैक्षणिक संस्थानों के विस्तार, समानता यानी जाति, धर्म, क्षेत्र, रीति–रिवाजों आदि के कारण शिक्षा प्रणाली से बहिष्कृत लोगों को शामिल करने पर था। यह 6 दशकों तक चला। वर्तमान शिक्षा प्रणाली यंत्रवत है, जो बच्चों को ऐंठने वाली मशीन समझती है। यह रचनात्मक सोच, मूल्यों, व्यवहार आदि को दबाता था, यह रटने और परीक्षाओं के लिए सीखने (रिटेंशन) पर अधिक ध्यान केंद्रित करता था।

राष्ट्रीय शैक्षिक नीति 2020 (एनईपी 2020) ने भारत में शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदल दिया है। यह पहले के एनईपी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर विचारों से एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है।

शुरुआत में, एनईपी 2020 के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मतलब न केवल "बुनियादी संख्यात्मकता और साक्षरता कौशल" प्राप्त करना है, बल्कि भारत की समृद्ध और विविध, प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों, नैतिकता, सहानुभूति, सम्मान जैसे संवैधानिक मूल्यों को समझना भी है। अन्य, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के प्रति सम्मान, वैज्ञानिक स्वभाव, स्वतंत्रता, बहुलवाद, समानता और न्याय। यह शिक्षण और सीखने में

बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति को भी पहचानता है। एनईपी 2020 का लक्ष्य नव सुधारित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से नागरिकों में इन गुणों को विकसित करना है।

शिक्षकों की अनुपस्थिति :–सरकारी स्कूल में शिक्षकों की अनुपस्थिति, विशेषकर ग्रामीण और अर्ध–शहरी स्कूलों में। "शिक्षक अनुपस्थिति" का अर्थ है जब शिक्षक के पास अपनी अनुपस्थिति का कोई वैध कारण नहीं होता है। यह "शिक्षक अनुपस्थिति" से भिन्न है, जो शिक्षक या शिक्षक के अधिकृत अवकाश पर न होने या शिक्षक द्वारा अन्य विभागीय कार्य करने के कारण हो सकता है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की रिपोर्ट के अनुसार, आमतौर पर शिक्षकों की अनुपस्थिति 2–5% की सीमा में होती है, जबकि कुल शिक्षक अनुपस्थिति 20% की सीमा में होती है। वास्तव में कक्षाओं में पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं होने के कारण, छात्र शायद ही कभी स्कूल आने के लिए प्रेरित होते हैं, घर पर रहना और पारिवारिक व्यवसायों में मदद करना पसंद करते हैं ।

एनईपी–2020 शिक्षक–से–छात्र अनुपात 30:1 का प्रावधान करता है यानी प्रत्येक 30 छात्रों के लिए 1 शिक्षक और जिन स्कूलों में बड़ी संख्या में छात्र सामाजिक और शैक्षणिक रूप से वंचित वर्ग से हैं, वहां शिक्षक–से–छात्र अनुपात 25 होगा। :1.

समाधान :– इससे निपटने के लिए, राज्य सरकारों ने सरकारी स्कूलों से शिक्षकों की अनुपस्थिति को रोकने के लिए बायोमेट्रिक मशीनें लगाने को कहा।

ख़राब सीखने के परिणाम :–एएसईआर 2018 के अनुसार , कक्षा 5 के सभी छात्रों में से केवल आधे (50.3%) ही कक्षा 2 का पाठ पढ़ सकते हैं। इसके अलावा, 14–18 आयु वर्ग में, केवल 43% ही सरल विभाजन सही ढंग से करने में सक्षम थे, जबकि 14 में से 47% वर्षों पुराना सरल अंग्रेजी वाक्य नहीं पढ़ सका। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहले शिक्षा नीतियों और योजनाओं का ध्यान मुख्य रूप से केवल स्कूलों तक पहुंच पर था और प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पर ज्यादा नहीं था। भले ही प्राथमिक शिक्षा का चक्र पूरा हो जाए लेकिन यदि शिक्षा पाठ्यक्रम खराब गुणवत्ता का है तो मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल खराब होंगे। मात्रा–गुणवत्ता के व्यापार–परिणामों को "सीखने के संकट" के रूप में परिभाषित किया गया है, जहां प्राथमिक विद्यालय में छात्रों के एक बड़े हिस्से ने मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल प्राप्त नहीं किया है। इससे धरातल पर शिक्षा की गुणवत्ता का पता चलता है।

समाधान :– भारत का जनसांख्यिकीय लाभांश छात्रों की कमाई के स्तर पर निर्भर करता है, इसका सीधा असर अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। एएसईआर रिपोर्ट के अनुसार, विषय या सामग्री सीखने के बजाय संज्ञानात्मक कौशल पर ध्यान केंद्रित करके इसे हल किया जा सकता है। यह स्मृति निर्माण करने वाली खेल–आधारित गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करने का सुझाव देता है। तर्क और समस्या–समाधान की क्षमताएं केवल सामग्री ज्ञान की तुलना में अधिक उत्पादक हैं।

एनईपी–2020 का लक्ष्य 5+3+3+4 के नए पाठ्यक्रम के माध्यम से इससे निपटना है। इस नए ढांचे के तहत 3–6 साल की उम्र के बच्चे अब "बुनियादी चरण" के रूप में औपचारिक स्कूली शिक्षा प्रणाली का

हिस्सा हैं। इसका लक्ष्य एक छात्र के कक्षा 3 तक पहुंचने तक सभी छात्रों द्वारा मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है। 2020 की नीति "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा" (ईसीसीई) पर जोर देती है। स्वस्थ मस्तिष्क के विकास के लिए प्रारंभिक वर्षों में उचित मस्तिष्क उत्तेजना आवश्यक है। अच्छा ईसीसीई छोटे बच्चों को जीवन भर शिक्षा में आगे बढ़ने में सक्षम बनाता है। एनईपी2020 के अनुसार "ईसीसीई तक सार्वभौमिक पहुंच की कमी के कारण, बच्चों का बड़ा हिस्सा ग्रेड 1 के पहले कुछ हफ्तों के भीतर ही पिछड़ गया। एनईपी–2020 का लक्ष्य 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता हासिल करना है।" यह पहलू इतना महत्वपूर्ण है कि यह कहता है कि बाकी नीति छात्रों के लिए तभी प्रासंगिक होगी जब यह सबसे बुनियादी आवश्यकता यानी पढ़ना, लिखना और अंकगणित कौशल का मूलभूत स्तर हासिल किया जाएगा। इसने एक प्रशिक्षित शिक्षक की देखरेख में छात्रों के लिए एक स्वैच्छिक और आनंददायक गतिविधि के रूप में एक–पर–एक सहकर्मी को पढ़ाने का भी प्रावधान किया। इससे उन बच्चों पर ध्यान दिया जा सकेगा जिन्हें इसकी आवश्यकता है।

छोड़ने वालों की दर :–डॉ. शशि थरूर का कहना है कि पहले जब बच्चे स्कूल से बाहर थे तो यह माता–पिता की गलती थी, लेकिन अगर अब वे स्कूल से बाहर हैं, तो यह सिस्टम की गलती है, सरकारी स्कूलों में, खासकर ग्रामीण इलाकों में कई बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि वे कक्षा में क्या पढ़ाया जा रहा है यह समझने में असमर्थ होना। सामग्री (पाठ्यचर्या) की गुणवत्ता और शिक्षण के तरीके (शिक्षाशास्त्र) की कमी इस पहलू के लिए महत्वपूर्ण है। आगे शिक्षक शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एनईपी–2020 में कहा गया है कि ग्रेड 6–8 के लिए सकल नामांकन अनुपात 90.9% था, जबकि ग्रेड 9–10 और 11–12 के लिए यह क्रमशः 79.3% और 56.5% था, जो दर्शाता है कि नामांकित छात्रों का एक महत्वपूर्ण अनुपात ग्रेड के बाद पढ़ाई छोड़ देता है। 5 और विशेषकर ग्रेड 8 के बाद।

इसके अलावा काउंसिल फॉर सोशल डेवलपमेंट की एक रिपोर्ट के अनुसार, नई दिल्ली 71वें एनएसएसओ के आधार पर 6–14 आयु वर्ग के 4.5 करोड़ से अधिक बच्चे स्कूल से बाहर थे। यह एक गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत भी, जो मुफ्त अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है, ड्रॉप–आउट दर अधिक है। इसका कारण यह है कि स्कूल छोड़ने वाले अधिकांश छात्र कम आय वाले परिवारों, भूमिहीन या सीमांत परिवारों से होते हैं, जिससे परिवारों को अस्तित्व और शिक्षा की दुविधा का सामना करना पड़ता है। लड़कों के स्कूल छोड़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण परिवार की कमाई को पूरा करना था और लड़कियों के लिए घरेलू काम में भाग लेने की मजबूरी थी। हालाँकि, इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत नियमों का खराब कार्यान्वयन था। इसमें 1 किमी के भीतर प्राथमिक विद्यालय और 3 किमी के भीतर उच्च प्राथमिक विद्यालय की उपलब्धता का प्रावधान है। यदि इन्हें लागू किया गया तो ड्रॉप–आउट का एक कारण अर्थात्

समाधान :– जब तक आवश्यक शिक्षक और बुनियादी ढांचे वाले स्कूलों की निर्धारित संख्या उपलब्ध नहीं हो जाती, तब तक स्कूल तक यात्रा के लिए रियायती साधन उपलब्ध कराना आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम में संशोधन करके गरीब परिवारों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए वित्तीय सहायता शामिल की गई है। शिक्षा प्रदान करने में गुणवत्ता सुनिश्चित करना छात्रों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है ताकि वे (विशेष रूप से, अन्य सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों की लड़कियां और छात्र) स्कूल जाने में रुचि न खोएं।

एनईपी–2020 में परिकल्पित खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा पर आगे ध्यान केंद्रित करने से छात्रों को अमूर्त अवधारणाओं को समझने में मदद मिलेगी। अनुभव और सीख के माध्यम से शिक्षा देना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि रटना स्पष्ट रूप से विफल हो गया है। शिक्षा ज्ञात से अज्ञात की ओर होनी चाहिए। ड्रॉप–आउट दरों को रोकने के लिए प्रारंभिक और मध्य विद्यालय में पढ़ने, लिखने, बोलने, अंकगणित और गणितीय सोच के अलावा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता पर सुधारित पाठ्यक्रम और बढ़ते फोकस की आवश्यकता है।

एक पुराना पाठ्यक्रम जो याद रखने पर केंद्रित है :–अब तक शिक्षा नीतियों का फोकस छात्रों को अधिक सामग्री सीखाना था ताकि वे परीक्षाओं में बेहतर स्कोर कर सकें। शिक्षा एक "अनुष्ठान" नहीं होनी चाहिए जिसके सामने एक पाठ्यपुस्तक हो और उसकी विषय–वस्तु को दोहरा दिया जाए। यह हाल सिर्फ स्कूली शिक्षा का ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा का भी है। पुराने पाठ अभी भी बच्चों और कॉलेज के छात्रों द्वारा उपयोग किए जा रहे हैं, जिनमें ज्ञान के व्यावहारिक और वास्तविक दुनिया के पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। बचपन के प्रारंभिक स्तर पर, रटने की यह पद्धति हानिकारक है और सीखने को अरुचिकर बना देती है। पाठ्यक्रम प्रासंगिक शिक्षा पर आधारित होना चाहिए, जब छात्र किताबों में सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ सकते हैं, तो वे इसे बनाए रखने में सक्षम होंगे और अवधारणा को पूरी तरह से आत्मसात करने में मदद करेंगे।

समाधान :– सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों पर जोर देने के साथ, सभी छात्रों के लिए सीखने को सुनिश्चित करने के लिए, एनईपी–2020 स्कूली शिक्षा के दायरे को व्यापक बनाने के लिए सीखने के कई रास्ते प्रदान करता है जिसमें औपचारिक यानी कक्षा के भीतर और शिक्षा के गैर–औपचारिक दोनों तरीके शामिल हैं। बच्चों को बाहरी यात्राएँ करना, घटनाओं को देखकर सीखना या दिन–प्रतिदिन की सरल प्रक्रिया में सिद्धांत का अनुप्रयोग पसंद है। भारत में उन युवाओं की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) और राज्य मुक्त विद्यालयों द्वारा प्रस्तावित मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) कार्यक्रमों का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया जाएगा, जो शारीरिक स्कूल में भाग लेने में सक्षम नहीं हैं।

एनसीईआरटी को 8 वर्ष तक के बच्चों के लिए "प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढांचा (एनसीपीएफईसीसीई)" विकसित करने का भी दायित्व सौंपा गया

है। मूलभूत स्तर (3–8 वर्ष) पर प्रारंभिक शिक्षा का विकास "खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और पूछताछ–आधारित शिक्षा" पर आधारित होगा।

स्कूली शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा, एनसीएफएसई 2020–21, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों के आधार पर एनसीईआरटी द्वारा तैयार किया जाएगा। यह नया पाठ्यक्रम भारतीय जनता के लिए गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करेगा।

आगे नीति गणितीय कौशल और सोच विकसित करने के महत्व को पहचानती है, इस प्रकार, गणित और कम्प्यूटेशनल सोच में पूरे स्कूल के वर्षों में सुधार किया जाएगा, मूलभूत स्तर से शुरू करके और पहेलियों और खेलों के नियमित उपयोग जैसे नवीन तरीकों के माध्यम से जो गणितीय सोच को और अधिक मनोरंजक बनाते हैं, कोडिंग से जुड़ी गतिविधियाँ मध्य चरण में शुरू की जाएंगी।

आईसीटी के आगे उपयोग से स्कूल और उच्च शिक्षा संस्थान में भी सीखने के स्तर में सुधार होगा। आईसीटी सीखने को सहज और रोचक बनाने में मदद करता है। जब सीखना उबाऊ या समझने में मुश्किल नहीं होगा तो ड्रॉप–आउट दरें भी कम हो जाएंगी। इससे गुणात्मक सामग्री की कमी के कारण शहरी और ग्रामीण छात्रों के बीच शिक्षा का विभाजन भी कम हो जाएगा। हालाँकि, आईसीटी उपकरण केवल कंप्यूटर लैब उपलब्ध कराने से कहीं अधिक हैं। आज इसका मतलब चौथी औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करना है जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट–ऑफ–थिंग्स, बिग–डेटा एनालिटिक्स के उपकरण शामिल हैं। स्कूलों में आईसीटी उपकरणों के शुरुआती प्रदर्शन से बच्चों को साइबर–धमकाने और साइबर–अपराधों का शिकार नहीं बनने में भी मदद मिलेगी।

शिक्षक की शिक्षा :–एक शिक्षक में निवेश करना भविष्य में निवेश करना है। न्यायमूर्ति वर्मा आयोग के अनुसार , 2012 की टूटी हुई शिक्षक शिक्षा प्रणाली 370 मिलियन से अधिक शिक्षकों को खतरे में डाल रही है। इसमें कहा गया है कि 85% से अधिक शिक्षक केंद्रीय–शिक्षक पात्रता परीक्षा (सी–टीईटी) में असफल हो जाते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षक गुणात्मक शिक्षा प्रणाली के केंद्र में हैं। शिक्षक शिक्षा, भर्ती, सेवा शर्तों और शिक्षकों के सशक्तिकरण की गुणवत्ता वह नहीं है जहाँ होनी चाहिए, और इस प्रकार शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रेरणा वांछित मानकों तक नहीं पहुँच पाती है।

समाधान :– ईसीसीई के लिए, 2020 नीति ईसीसीई की सामग्री और शिक्षाशास्त्र में विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों और श्रमिकों की भर्ती का प्रावधान करती है। ईसीसीई के लिए यह विशेष ईसीसीई प्रशिक्षकों की भूमिका पर जोर देता है। एनसीईआरटी को उच्च गुणवत्ता वाले ईसीसीई शिक्षकों के प्रारंभिक कैडर के लिए एक प्रणाली विकसित करने का आदेश दिया गया है और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को भी ईसीसीई में प्रशिक्षित किया जाएगा। यह "प्रारंभिक साक्षरता और संख्यात्मक कौशल" विकसित करने में सक्षम होगा। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री दीक्षा– ज्ञान साझा करने के लिए डिजिटल बुनियादी ढांचे पर उपलब्ध कराई जाएगी।

बुनियादी स्तर से आगे के सभी पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र को फिर से डिजाइन किया जाएगा और यह भारत की संस्कृति, परंपराओं, विरासत, दर्शन, भूगोल, वैज्ञानिक आवश्यकताओं सहित भारतीय और स्थानीय संदर्भ पर आधारित होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा प्रासंगिक, प्रासंगिक, दिलचस्प और हमारे छात्रों के लिए प्रभावी।

नई नीति में शिक्षक शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार 4–वर्षीय बीएड पाठ्यक्रम की शुरूआत है। सामग्री और शिक्षाशास्त्र दोनों के संदर्भ में बेहतर परीक्षण सामग्री तैयार करने के लिए शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) में सुधार किया जाएगा। टीईटी को स्कूली शिक्षा के सभी चरणों (बुनियादी, प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक) के शिक्षकों को शामिल करने के लिए भी बढ़ाया जाएगा।

शिक्षकों को स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं के साथ–साथ ऑनलाइन शिक्षक विकास मॉड्यूल के माध्यम से अपने पेशेवर क्षेत्र में नवीनतम नवाचारों और प्रगति को सीखने के लिए आत्म–सुधार के अवसर दिए जाएंगे। इस प्रकार नीति सतत व्यावसायिक विकास पर केंद्रित है।
शिक्षा कानून के शासन को कैसे मजबूत कर सकती है?

कानून के शासन और कानून की संस्कृति को बढ़ावा देने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। कानून का शासन समाज के सभी पहलुओं, सार्वजनिक और निजी, दोनों के लिए मौलिक है, जो व्यक्तियों के एक–दूसरे के साथ और समाज के सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक संस्थानों के साथ बातचीत करने के तरीके को आकार देता है – विश्वास और पारस्परिक जवाबदेही के रिश्ते बनाता है। यही कारण है कि कानून के शासन और कानून की संस्कृति (सीओएल) को बढ़ावा देने वाली शिक्षा इतनी महत्वपूर्ण है।

सार्वजनिक हित के रूप में, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालियों की कानून के शासन के सिद्धांतों को बनाए रखने और आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी है; जिसमें कानून की सर्वोच्चता, कानून के समक्ष समानता, कानून के प्रति जवाबदेही, कानून के अनुप्रयोग में निष्पक्षता, शक्तियों का पृथक्करण, निर्णय लेने में भागीदारी, कानूनी निश्चितता, मनमानी से बचाव और प्रक्रियात्मक और कानूनी पारदर्शिता शामिल है।

शिक्षा भविष्य की पीढ़ियों को राज्य संस्थानों को जवाबदेह बनाने के लिए तैयार कर सकती है और शिक्षार्थियों को ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस कर सकती है जो न्याय और मानवाधिकारों का समर्थन करने वाले नैतिक रूप से जिम्मेदार निर्णय लेने के लिए आवश्यक हैं। चूंकि लोकतंत्र के जीवित रहने के लिए कानून का शासन महत्वपूर्ण है, इस सिद्धांत पर जनता को शिक्षित करने से लोकतंत्र को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

कानून के शासन को बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों द्वारा एसडीजी 16 के तहत लक्ष्यों में से एक के रूप में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है "स्थायी विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समाजों को बढ़ावा देना, सभी के लिए न्याय तक पहुंच प्रदान करना और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेह और समावेशी संस्थानों का निर्माण करना।" "। आगे लक्ष्य 16.3 स्पष्ट रूप से कहता

है 'राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानून के शासन को बढ़ावा देना और सभी के लिए न्याय तक समान पहुंच सुनिश्चित करना।

शिक्षा उन व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों को सक्षम बनाती है जो कानून के शासन को बढ़ावा देने और बनाए रखने के लिए आवश्यक है :–

1. प्रमुख ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार के विकास और अधिग्रहण को सुनिश्चित करना।
2. शिक्षार्थियों को अपने दैनिक जीवन में कानून के शासन के सिद्धांतों को महत्व देने और लागू करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. शिक्षार्थियों को उनके लिए आवश्यक उचित ज्ञान, मूल्यों, दृष्टिकोण और व्यवहार से लैस करना।
4. समाज में इसके निरंतर सुधार और पुनर्जनन में अधिक व्यापक रूप से योगदान देना।

निष्कर्ष :–शिक्षा एक मानवाधिकार और सार्वजनिक भलाई है जो दुनिया के स्वास्थ्य और भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को प्रत्येक बच्चे का बुनियादी अधिकार माना जाना चाहिए (एनईपी–2020)।एनईपी–2020 ने यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न दिशानिर्देश और भविष्य की संभावनाएं निर्धारित की हैं कि "विज़न 2030" में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके और भारत 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को पूरा कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत में शिक्षा : छात्र असफल हो रहे हैं या व्यवस्था? सोनम वांगचुक
- मस्तिष्क विकास, बाल विकास – वयस्क स्वास्थ्य और कल्याण और बाल चिकित्सा, जे फ्रेजर मस्टर्ड, कैनेडियन इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड रिसर्च, टोरंटो, ओंटारियो
- 2030 सतत विकास लक्ष्य और सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का लक्ष्यः एजुकेशनइंटरनेशनल और एएससीडी से समर्थन का एक बयान
- शिक्षा में गुणवत्ता को परिभाषित करना, यूनिसेफ, शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कार्य समूह फ्लोरेंस, इटली जून 2000
- लड़कियों के दृष्टिकोण से, सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, यूनिसेफ, अप्रैल 2002
- शिक्षक अनुपस्थिति अध्ययनः शिक्षा में क्षेत्रीय अध्ययन मार्च 2017, अज़ीन प्रेमजी विश्वविद्यालय।
- एक सुशिक्षित दिमाग बनाम एक सुगठित दिमागः 2013 में डॉ. शशि थरूर
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020

शिक्षक-शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं विकल्प

प्रो. सुषमासिंह
सुधीरा

स्कूली शिक्षा में परिवर्तन की प्रक्रिया में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी संदर्भ में चट्टोपाध्याय आयोग ने कहा, "यदि स्कूली शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे पढ़ाने के उपागम में क्रांति लाएँ तो वह क्रांति पहले शिक्षा कॉलेजों में होनी चाहिए।" शिक्षक-शिक्षा को जीवंत और इस क्षेत्र में उठ रही माँगों के अनुरूप बनाने के लिए (न सिर्फ़ परिचालन या कार्यान्वयन के रूप में बल्कि सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है) शिक्षक-शिक्षा को रेखाकित करने वाली बुनियादी अवधारणाओं एवं मान्यताओं में भी निश्चित तथा परिलक्षित बदलाव जरूरी हैं। अध्यापक ही वह माध्यम है जो पाठ्यचर्या 2005 के मार्गदर्शक सिद्धान्तों को हकीकत में बदलेगा अतः शिक्षक शिक्षा का नवीनीकरण अति आवश्यक है। शिक्षक शिक्षा के वर्तमान प्रतिमानों तथा अभ्यासों में बदलाव के मूल बिंदुओं को प्रदर्शित करने के साथ-साथ उस सामान्य ढ़ाँचे को जिसके अंतर्गत सेवा-पूर्व व सेवाकालीन शिक्षकों को तैयार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 का महत्वपूर्ण मार्गदर्शक **सिद्धांत कि** ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना; पढ़ाई स्टेट प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना; पाठ्यचर्या का इस तरह से वर्द्धन किया जाए कि वह बच्चे को चहूँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवा सके, बजाए इसके कि वह पाठ्य पुस्तक केन्द्रित बनकर रह जाए. परीक्षा को अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।

इसके लिए शिक्षक शिक्षा का नवीनीकरण अति आवश्यक है अध्यापक ही वह माध्यम है जो पाठ्यचर्या 2005 के मार्गदर्शक सिद्धान्तों को हकीकत में बदलेगा अतः शिक्षक शिक्षा का नवीनीकरण अति आवश्यक है। यूँ तो सभी आयोगों ने शिक्षक शिक्षा व प्रशिक्षण पर बल दिया है। उसमें गुणवत्ता लाने के लिए सुझाव दिये गये है सन् 1970 के बाद से शिक्षा में गुणवत्ता का सवाल लगातार चर्चा में रहा है । लगभग सभी राज्य सरकारें प्राथमिक स्तर के लिए खुद शिक्षक तैयार करती हैं। बी.एड. के लिए विश्वविद्यालयों की जिम्मेदारी थी लेकिन सन् 1990 के बाद शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता को जबरदस्त धक्का लगा। विश्वविद्यालयों ने इसे पैसा कमाने का जरिया मान लिया और पत्राचार कोर्स चलने लगे। लेकिन गुणवत्ता या कम गुणवत्ता वाले अध्यापक का प्रभाव स्कूलों में तैयार होने वाले मानवीय संसाधनों पर पड़ना लाजमी था। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एन.सी.टी.ई.) का प्रस्ताव तैयार किया, जिसे संसद ने दिसंबर 1993 में वापस कर दिया। वर्ष 1995-96 में यह एक्ट पूरी तरह लागू हो गया। एन.सी.टी.ई. ने शिक्षक प्रशिक्षण के लिए मानकों का निर्धारण किया जैसे कोर्स में कितने कार्य दिवस जरूरी हैं, शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता तथा क्या सुविधाएँ होनी जरूरी हैं? आदि। ये मानक उन लोगों ने तैयार किये जो शिक्षा में गुणवत्ता को जरूरी मानते थे इनमें अध्यापक, शिक्षाविद् और विशेषज्ञ शामिल थे। सन् 1998 तक इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। सरकारी व गैर सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, बेसिक सुविधाओं तथा कर्मचारियों के सही अनुपात पर ध्यान दिया जाने लगा एन.सी.टी.ई. ने 1998 में गुणवत्ता बनाने के लिये नये पाठ्यकर्मों की रूपरेखा प्रस्तुत की|

शिक्षक-शिक्षा का 'नया दृष्टिकोण' शीर्षक इसलिए ही नहीं रखा गया है कि इसके सारे आयाम पूरी तरह नए हैं। बल्कि इसलिए यह शीर्षक रखा गया है क्योंकि यह शिक्षक-शिक्षा के बारे में हमारे दृष्टिकोण में एक निश्चित बदलाव लाने की बात करता है।

****प्राचार्या, शिक्षा विभाग , जे. एल.एन. पी.जी. टी.टी. कॉलेज, कोटा राजस्थान, 324010**
***शोधार्थी, शिक्षा संकाय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान, 324010**

शिक्षक प्रशिक्षण : दशा एवं दिशा

किसी भी देश की उन्नति उसके मानवीय संसाधनों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। मानवीय संसाधनों को गुणवत्तापूर्वक बनाने की जिम्मेदारी वहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर होती है। किसी भी शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्यापक को यह जानकारी होनी जरूरी है कि शिक्षा के व्यापक उद्देश्य क्या है? हमारे संविधान में यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि शिक्षा को किन मूल्यों व आदर्शों के लिए कार्य करना चाहिए।

शिक्षक शिक्षा में गुणात्मक सुधार अति आवश्यक है। भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम को और अधिक गतिशील बनाने की आवश्यकता है। बेहतर शिक्षक शिक्षा के लिए शिक्षक प्रशिक्षकों में भी अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों की भाति दक्षता का विकास करना होगा। अपने व्यावसायिक विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका तो स्वयं अध्यापक की होती तभी वह भावी शिक्षकों में व्यावसायिक दक्षता का विकास कर सकेंगे। शिक्षक को सतत् स्वसमीक्षा के द्वारा आत्म मूल्यांकन करते रहना चाहिए। उसको निरन्तर ज्ञान का अन्वेषण करते रहना चाहिए जिससे वह बालकों को नवीन ज्ञान प्रदान कर सके।

शिक्षक को सतर्क रहते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को आत्मसात् करते हुए अपनी नीति का निर्माण करना चाहिए इससे वह अपने शिक्षण का सामयिक रूप पायेगा। समग्र व्यावसायिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि इसकी नींव सेवा पूर्व शैक्षिक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान ही डाल दी जानी चाहिए। क्रियात्मक अनुसंधान से सम्बन्धित संगोष्ठियों, सेमिनार्स, शोधकर्ताओं, अभ्यास शिक्षण, प्रोजेक्ट कार्यों, ऑनलाइन व्यावसायिक स्त्रोतों कक्षागत व व्यक्तिगत आत्ममूल्याकन द्वारा अधिगम अनुभवों की समीक्षा, साथियों से चर्चा के द्वारा शिक्षण अभिक्षमताओं का विकास किया जा सकता है।

शिक्षा की गुणवता शिक्षक के गुणों पर निर्भर:

आज का स्वतन्त्र भारत एक विकासशील राष्ट्र है। ऐसे राष्ट्र को विकास के उच्चतम शिखर पर ले जाने में शिक्षक, राजनेता, श्रमिक एवं वैज्ञानिक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सभी में शिक्षक की भूमिका अति महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योकि समाज में विविध क्षत्रों के लिए सुयोग्य, उत्तम, कर्मठ तथा श्रेष्ठ व्यक्तित्व एवं उच्च मनोबल वाले व्यक्तियों का निर्माण स्वयं शिक्षक ही करता है।

डॉ. डी. एस. कोठारी ने भी शिक्षा समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा है कि, "भारत का भाग्य वास्तव में कक्षा- कक्ष में निर्मित हो रहा है।" बिना किसी संदेह के कहा जा सकता है की शिक्षा की गुणवता शिक्षक के गुणों पर निर्भर करती है वास्तव में किसी राष्ट्र का विकास उसके शिक्षक के गुणों पर आधारित होता है। शिक्षक शिक्षार्थी की प्रेरणा का अभय स्त्रोत है जो उसे आत्मा अनुभूति करवाते हुए विशव से तादात्मय स्तापित करने योग्य बनता है शिक्षक को दिव्य जन्म देने वाले पिता की संज्ञा से विभूषित किया गया है शिक्षा निति के किसी भी स्तर के किर्यान्वयन में शिक्षक एक केंदिर्य भूमिका निभाता है सिखने वाले की उपलब्धि का स्तर शिक्षक की योग्यता पर निर्भर करता है शिक्षक एक जिवंत आदर्श एवं ज्ञानपथ का सतत एवं अनवरत चलने वाला पाथेय तथा ज्ञान धरा का अजस्त्र स्त्रोत है।

बालक के सर्वांगींण विकास मे शिक्षक को बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है। शिक्षक ही वास्तव में बालक का समुचित (शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक) विकास कर सकता है। जिस प्रकार महाविद्यालयों / विद्यालयों में प्राचार्य मस्तिष्क के रूप में होता है ठीक उसी प्रकार शिक्षक आत्मा स्वरूप होता है। अतः आत्मा के बिना विद्यालय एवं महाविद्यालय रुपी शरीर निर्जीव माना जाएगा। इसलिए यह कहना उचित होगा कि शिक्षक विद्यालय रुपी समाज का अति महत्वपूर्ण अंग होता है। जीवन की वास्तविकता यह है कि शिक्षक एक ऐसा संदेशवाहक है, जो किस प्रकार की भावनाओं को छात्रों में प्रतिस्थापित करना चाहे, वैसा कर सकता है। भारत जेसे देश में जनमानस को जागरूक करने का प्रयास एक शिक्षक बहुत अच्छी तरह से कर सकता है, वैसा अन्य व्यक्ति के द्वारा संभव नहीं है।

शिक्षक प्रशिक्षण शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व :

किसी भी शिक्षक के लिए उसका प्रशिक्षण नीव की तरह कार्य करता है प्रशिक्षण की गुणवता बेहतर होगी तो शिक्षको की नीव भी मजबूत होगी। शिक्षक शिक्षा 21 वीं सदी का महतवपूर्ण भाग बनना चाहती है आज के उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण के दोर में शिक्षक की शिक्षा का गुणवता युक्त होना आवश्यक है शिक्षक को प्रशिक्षण देने के लिए महाविध्यालय एवं विश्वविद्यालय कार्यरत है।शिक्षको के प्रशिक्षण का महत्व बढता जा रहा है। शिक्षक देश व बालको के भविष्य का निर्माण करता है। इसलिए देश को उच्च स्तर पर ले जाने और सही दिशा प्रदान करने वाले श्रेष्ट अध्यापकों के उचित मार्गदर्शन से हम अज्ञान के गहन अंधकार से निरंतर दिव्य प्रकाश की ओर उन्मुख हुए हैं। अध्यापक प्रशिक्षण शिक्षा की आवश्यकता निमन **है-**

1.अध्यापन कला में दक्षता की प्राप्ति सम्भव हो जाती है, जिसके अन्तर्गत अध्यापन विधि, तकनीक, प्रतिमान, व्यूह रचना आदि के बारे में सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना संभव हो पाता है।

2. शिक्षक शिक्षा के माध्यम से अध्यापन कुशलता की प्राप्ति के लिए क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से प्रयास करना संभव हो पाने के कारण समय, श्रम, आदि की बचत होती है।

3. शिक्षक शिक्षा के माध्यम से शिक्षा के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करना संभव हो पाता है।

4. शिक्षक का कार्य अधिगमकर्ता का सर्वांगींण विकास करना होता है न कि मात्र उनके बौद्धिक पक्ष को ही समृद्ध करना। अध्यापक शिक्षा के माध्यम से ही कम से कम समय में अधिक से अधिक शिक्षकों का प्रशिक्षण प्राप्त करना सम्भव है।

5.अध्ययन और अधिगम औपचारिक शिक्षा के भव्य भवन के दो महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। जो अधिगम की उपलब्धियों के मूल्यांकन का सहारा पाकर और भी सुदृढ़ बन जाते हैं। इससम्पूर्ण संरचना की शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षण कार्य कितनी दक्षता के साथ संपादित किया जा रहा है तथा सीखने वाले की संवृद्धि और विकास पर उसका कितना सार्थक एवं हितकर प्रभाव पड़ रहा है।

शिक्षक-शिक्षा में बदलाव हेतु सुझाव :

शिक्षक-शिक्षा में आमूल-चूल बदलाव इसलिए आवश्यक हो गया है कि इसके प्रभावों और संभावनाओं का विस्तार हो सकें। शिक्षक-शिक्षा के उपागम में मूलभूत बदलाव व परिवर्तन लाना चाहिए । इस बात को ध्यान में रखते हुए शिक्षक-शिक्षा में बदलाव हेतु निम्नलिखित सुझाव हैं-

1.शिक्षक प्रशिक्षण के लिए विश्वविद्यालयों, एन.सी.ई.आर.टी और डाईट जैसी संस्थाओं को आपस में जोड़ने कि जरूरत है। इससे शिक्षक शिक्षा के अकादमिक कार्यक्रम, सेवा कालीन प्रशिक्षण तथा अपने अंदर ही शोध कि दक्षता विकसित करने का अवसर मिलेगा। इसके लिए इसे परिसरों का निर्माण किया जा सकता है जो किसी भोगोलिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों, कोलेजों, स्कूलों एस सी ई आर टी / डाईट तथा अन्य संघटनो को निकट ला सके ताकि कार्यक्रमों के अकादमिक सहयोग तथा प्रभंधन, निरिक्षण और मूल्यांकन का तंत्र विकसित हो सके।

2.शिक्षक प्रशिक्षण में अवधारणात्मक निवेशो को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि वे शैक्षिक घटनाओं, जैसे :- क्रिया, प्रयास, अवधारणा और घटनाओं का वर्णन विश्लेषण करे ऐसा करने से सिध्दांत और व्यव्हार को समन्वित रूप से देखने का मोका मिलेगा।

3.शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में समकालीन भारतीय समाज के मुद्दों और चिंताओं, उसके बहुलतावादी स्वभाव और पहचान लिंग, समता, जीविका और गरीबी के मुद्दों के लिए स्थान होना चाहिए।

4.शिक्षक-प्रशिक्षण को शिक्षक-विद्यार्थियो के सहयोग, लिखित, मौखिक दक्षता, दृष्टिकोण, प्रस्तुति आदि में मौलिकता की परख करनी चाहिए।

5.आत्म मूल्यांकन, सहपाठी मूल्यांकन, शिक्षकों की प्रतिपुष्टि और अन्त में औपचारिक मूल्यांकन होना चाहिए यानी मूल्यांकन का लक्ष्य सुधार होना चाहिए।

6.मूल्याँकन केवल संख्यात्मक न होकर गुणात्मक होना चाहिए वर्तमान में शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम परीक्षा प्रणाली केवल शिक्षक होने के लिए प्रमाण-पत्र देने का साधन मात्र बन रही है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ऐसी शिक्षक-प्रशिक्षण प्रणाली/व्यवस्था की अपेक्षा करती है, जिससे ऐसा शिक्षक तैयार हो जो निम्नलिखित रूपों में अपनी भूमिका को निभा सके।

7.वह ऐसा माहौल का निर्माण करे जिसके केन्द्र में बालक हो।

8.बह अध्ययन-अध्यापन की परिस्थितियों को मानवीय बनाएँ ताकि विद्यार्थियों को अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक संभावनाओं के पूर्ण विकास का मौका मिले।

9.वह सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर एक लोकतांत्रिक नागरिक का निर्माण करे।

10.वे ग्रहणशील और निरन्तर सीखने वाले हो। इसके लिए आवश्यक है कि सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम ज्यादा लम्बी अवधि तथा अधिक व्यापक होने चाहिए ताकि बच्चों का सूक्ष्म अवलोकन किया जा सके और स्कूलों में इन्टर्नशिप के द्वारा शिक्षा शास्त्रीय सिद्धान्तों को व्यवहार से जोड़ने का पूरा अवसर मिल सके।

निष्कर्ष : शिक्षक-शिक्षा के बारे में पहले भी इस तरह के प्रयास हो चुके हैं। इनमें से कई बार शिक्षक-शिक्षा की समीक्षा करने, इसे पुनर्जीवित और पुनर्गठित करने की कोशिश की गई है। लेकिन ये प्रयास वास्तविक व्यवहार में नहीं लाए जा सके और कार्यक्षेत्र में ये प्रासंगिक हैं या नहीं, ऐसे प्रमाण नहीं दे सकें।

शिक्षक-शिक्षा को जीवंत और इस क्षेत्र में उठ रही माँगों के अनुरूप बनाने के लिए (न सिर्फ़ परिचालन या कार्यान्वयन के रूप में बल्कि सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है) शिक्षक-शिक्षा को रेखाकित करने वाली बुनियादी अवधारणाओं एवं मान्यताओं में भी निश्चित तथा परिलक्षित बदलाव जरूरी हैं।

संदर्भ

1. **सक्सेना, एन.आर.; मिश्रा, बी.के.; (2006)** "अध्यापक शिक्षा", आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं. 25.
2. **भट्टाचार्य, जी.सी. (2007).** "अध्यापक शिक्षा", विनोद पुस्तक मन्दिर , आगरा, पृ.सं. 30.
3. **शर्मा, आर.ए. (2006),** "अध्यापक शिक्षा प्रणाली", आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं. 45.
4. **सक्सेना, एन.आर.; मिश्रा, बी.के. (2006)** "अध्यापक शिक्षा", आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं. 40.
5. **कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2006),** "शैक्षिक तकनीकी की मूलाधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.सं. 65.
6. **माथुर, एस.एस. (2006)** "शिक्षण कला एवं शैक्षिक तकनीकी", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.सं. 70.

भारतीय शिक्षा का आधार : भारतीय जीवन दृष्टि

सुशीला महरिया
सहायक आचार्या
श्रीमती गोमती देवी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
बड़ा गांव (झुंझुनूं)

"शिक्षा संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना है, जो कि प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में अदृश्य रूप में निहित होते हैं।" - सुकरात

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्णरूप से विकसित किया जाता है अर्थात शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का मूलाधार हैं | भारत में सत्यम, शिवम् और सुन्दरम के चिंतन में शिक्षा की अहम भूमिका हैं | भारतीय शिक्षा में आचार्य का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण था | वेदों का अध्ययन श्रावण पूर्णिमा को उपाकर्म से शुरु होकर पोष पूर्णिमा को उपसर्जन से समाप्त होता था |

शिक्षा एक मुक्तिदायी शक्ति है | इस शक्ति के माध्यम से हमें बालक को भावी जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करना है ताकि वह अपने जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना कर सके तथा राष्ट्र को उन्नति के शिखर तक ले जाने में अपना अमूल्य योगदान दे सके | भारतीय शिक्षा का सर्वांगीण विकास शिक्षा के सर्वमान्य उद्देश्य निश्चित करने एवं कार्य व्यवहार में लाने से होगा | जिससे भारतीय शिक्षा आत्मबोध के साथ चरित्र निर्माण में जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर सके |

राष्ट्रीय संगोष्ठी की झलकियाँ

















ISBN No. : 978-93-83240



M.D. GOENKA GIRLS B.Ed. COLLEGE

M.D. GOENKA MAHILA MAHAVIDYALAYA
(B.A., B,Sc.), (B.A.-B.Ed., B.Sc.-B.Ed. 4 Yrs. Integrated)

GOENKA COLLEGE OF PHARMACY

GOENKA PUBLIC SCHOOL
(C.B.S.E.)

GOENKA SCHOOL
(R.B.S.E.)

Managed By :

GOENKA INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH

Sikar-Laxmangarh Road, N.H. 52, Ghassu, 332315

Ph. : 01573-232863 (O), Fax : 01573-232200, 8233096507

● Email : bedcollege@goenka.ac.in ● Web. : www.goenka.ac.in

VARIOUS DIMENSIONS OF EDUCATION

शिक्षा के विविध आयाम

DR. HARISH KUMAR YADAV
DR. AMREEN SEKHON



VARIOUS DIMENSIONS OF EDUCATION
शिक्षा के विविध आयाम

VARIOUS DIMENSIONS OF EDUCATION

शिक्षा के विविध आयाम

EDITED BY

Dr. Harish Kumar Yadav

Dr. Amreen Sekhon

red'shine
PUBLICATION
INDIA

VARIOUS DIMENSIONS OF EDUCATION

by: Dr. Harish Kumar Yadav, Dr. Amreen Sekhon

■

RED'SHINE PUBLICATION PVT. LTD.

Headquarters (India): 88-90 REDMAC, Navamuvada,

Lunawada, India-389 230

Contact: +91 76988 26988

Registration no. GJ31D0000034

In Association with,

RED'MAC INTERNATIONAL PRESS & MEDIA. INC

India | Sweden | UK

■

Text © *Authors*, 2023

Cover page ©REDSHINE Studios, Inc, 2023

■

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or used in any form or by any means- photographic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information storage and retrieval systems- without the prior written permission of the author.

■

ISBN: 978-93-5879-758-9

ISBN-10: 93-5879-758-4

DIP: 18.10.9358797584

DOI: 10.25215/9358797584

Price: ₹ 750

November, 2023 (First Edition)

■

The views expressed by the authors in their articles, reviews etc. in this book are their own. The Editor, Publisher and owner are not responsible for them. All disputes concerning the publication shall be settled in the court at Lunawada.

■

www.redshine.co.in | info@redshine.in

Printed in India | Title ID: 9358797584

Dedicated to...

Our Parents, Colleagues and Authors
(Whose encouragement helped us to
make this edited book a reality)

ABOUT THE EDITORS

Dr. Harish Kumar Yadav is working an Assistant Professor in the department of B.Ed. RCU Govt. PG. College Uttarkashi, Uttarakhand. He is Post Graduate in Education, Economics and Hindi. He is UGC – NET qualified in Education and more than Ten years of Teaching and Learning experience in Teacher Education. He has published research papers, articles, and book chapters in national and international journals and books and also presented research paper at national symposiums. His research field covers inclusive education, special education, yoga education and philosophy etc. He can be contacted at yadavh101@gmail.com

Dr. Amreen Sekhon holds Double Master's degrees in Psychology and English from Panjab University. She also obtained a Ph.D. in Psychology from Punjab University, Chandigarh. Additionally, she completed a course in Social Psychology titled 'The Psychology of Influence' at Harvard University in Massachusetts, USA. Currently, Dr. Sekhon serves as Guest Faculty (Assistant Professor) at the Department of Psychology, Panjab University in Chandigarh. She has presented her research work at numerous National and International conferences, including locations like Amsterdam and Paris. Her research primarily focuses on positive psychology, and she has published multiple research papers in this field.

ABOUT THE BOOK

This edited book is a compilation of the contributions of professors, assistant professors, teachers, and researchers working in the fields of education, Physical Education, English, Psychology, Botany, Zoology, Law, History, etc. The edited book "Various Dimensions of Education" contains chapters on various aspects of education, such as: Inclusive Schools, Inclusive Education, Teacher In Education, Health And Physical Education, Yoga Education, Environment, Women Leadership, Religious Education, Sex Education, Economic, Peace Education, value education, learning environment, moral and character value etc. This book has been edited with the special aim of providing information to the students of B.Ed., M.Ed., and pedagogy. The author's effort has been to shed light on the diverse dimensions of education so that teachers, researchers, and students can get maximum benefit from the book in solving the problems of learning and teaching-learning. All those educationists, professors, and publishers who have played a constructive role in preparing this book deserve thanks.

Editors
Dr, Harish Kumar Yadav
Dr. Amreen Sekhon

CONTENTS

SR.NO.	CHAPTER NAME	PAGE NO.
1	THE IMPLEMENTATIONAL ASPECT OF STUDENT PROGRESSION IN INCLUSIVE SCHOOLS OF TRIPURA IN VIEW OF INCLUSIVE EDUCATION FOR THE STUDENTS WITH SPECIAL NEEDS **Dr. Uttam Kumar Das**	1
2	TRENDS AND CHALLENGES FOR THE 21ST CENTURY TEACHER IN EDUCATION **Dr. Dayal Pyari**	18
3	INCLUSIVE EDUCATION AND ITS IMPORTANCE FOR DISABLED STUDENTS **Jugmaheer Gautam**	25
4	A STUDY OF HEALTH AND PHYSICAL EXERCISE EFFECT ON ACADEMIC ACHIEVEMENT IN SCHOOL EDUCATION **Soma Singha**	37
5	THE IMPORTANCE OF YOGA AND HEALTH IN EDUCATION **Soumen Ghorai**	45
6	IMPORTANCE OF YOGA IN OUR EVERYDAY LIVES: AN INSIGHT **Dr. Shalini Pandey**	53
7	TEACHER WELL-BEING: UNDERSTANDING STRESS AND BURNOUT IN EDUCATION **Dr. Amreen Sekhon**	58

SR.NO.	CHAPTER NAME	PAGE NO.
8	EFFECT OF ENVIRONMENTAL VARIABLES ON SPECIES COMPOSITION OF THREE DOMINANT FORESTS OF NAINITAL REGION, KUMAUN HIMALAYA **Dr. Sanjay Kumar, Dr. Anupama Pandey**	68
9	MYTHS AND CHALLENGES ASSOCIATED WITH WOMEN LEADERSHIP IN THE IT SECTOR **Dr. Mohammad Zahid**	86
10	RELIGIOUS EDUCATION VIS ~A~VIS INDIAN CONSTITUTION **Dr. Rahul Yadav**	102
11	SEX EDUCATION IN INDIA **Ms. Rinkumani Teron**	117
12	DESIGNING EDUCATION TO FACILITATE ECONOMIC DEVELOPMENT **Dr. Preeti Sethi**	129
13	PEACE EDUCATION **Dr. Lekshmy.P.L**	139
14	DISTANCE EDUCATION **Manisha Uniyal Bhatt**	145
15	भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था **डॉ. दिनेश कुमार सिंह**	153
16	वर्तमान परिदृश्य में मूल्य शिक्षा की प्रासंगिकता **डॉ. शैलेश मिश्र**	160
17	पर्यावरण शिक्षा **डॉ. विनी शर्मा**	167

SR.NO.	CHAPTER NAME	PAGE NO.
18	नैतिक और चारित्रिक मूल्य : वर्तमान सन्दर्भ में **प्रो. बनवारी लाल जैन**	181
19	विद्या, विद्यार्थी और वैल्यू एजुकेशन **प्रोफेसर (डॉ०) एस० हुसैन**	187
20	विवेकवान नागरिक बनाने अनिवार्य है मूल्य आधारित शिक्षा **सुरभि नामदेव, डॉ. धीरेंद्र शुक्ल**	195
21	महिला शिक्षा **श्रीमती सुषमा**	200

CHAPTER 1

THE IMPLEMENTATIONAL ASPECT OF STUDENT PROGRESSION IN INCLUSIVE SCHOOLS OF TRIPURA IN VIEW OF INCLUSIVE EDUCATION FOR THE STUDENTS WITH SPECIAL NEEDS

Dr. Uttam Kumar Das
Assistant Professor, Department of Physics
College of Teacher Education Kumarghat, Unakoti, Tripura
Email: uttamsir.physics@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.01

ABSTRACTS

The UN agency defines inclusion as exactly: "a way to address and respond to the different aspirations of all students by increasing participation in learning, culture and communities and reducing exclusion in education. It involves changes and alterations in content, methods, structures and ways. There is an ideal vision that covers all children of appropriate age and this vision is the belief that a regular system of showing all children is a responsibility." After introduction of **RTE Act, 2009**, Directorate of School Education, Government of Tripura has been given top priority and importance for the education of CWSN students in inclusive set up with other children. To implement the different activities under this intervention convergence and collaboration has been built with District Disability Rehabilitation Centre (DDRC) , Social Welfare & Social Education Department, different NGOs in and outside the state working in the field of education of CWSN. With this view, investigator has decided to undertake this in-depth study in the state of Tripura to investigate the implementation of inclusive education for the students with special needs in the schools.

KEYWORDS: *CWSN students, implementation, DDRC, inclusive education.*

INTRODUCTION:

The concept of inclusive education can only be implemented after understanding the philosophy behind it. It is celebrated that a reluctant society will not be able to give equal rights to him or all his students. A metaphor for the ideal of inclusion is needed. Inclusive education is an element of strategic intervention. The goal of inclusive education is not just to provide one or all of the apprentices. But conjointly to resist the exclusionary pressure. Inclusion means much more than integration, it means that the child with disability is provided with a similar environment and experiences as his or her disabled peer. A better understanding of the philosophy of inclusion will facilitate the United States gain clarity on the subject and facilitate the franchising of inclusion processes.

For inclusion, schools need to restructure culture, policies and practices so that students can respond to the diversity. If a definite current perception of the class measurement of the inclusive curriculum is examined, it can be well assumed that in almost all definitions the inclusive college refers to the teaching of all students. Enrolment is not just about admission to the faculty of thought for students who have been excluded from the previous year. It is not about associating nursing in nursing, it is not about closing associate in nursing, it is merchandising in the way of unchanged thinking of these disciples. Existing school systems need to be modified in terms of physical factors, informational aspects, educational expectations and styles, leadership roles. It involves the participation of all children and young people as a result of inclusive learning and therefore the removal of a variety of exclusionary methods.

Inclusion can be a term, which can be asserted as an affiliate in the nursing approach or as a promise to appreciate diversity and accept that each child is educated to their greatest potential for a common school class. This will increase the capacity of conventional faculties to take revenge for greater diversity with creativity. Together it involves building academic capacity to influence a diverse population of scholars and to incorporate

pedagogical skills to facilitate the learning of scholars in their home.

Booth (1999) emphasizes three criteria for inclusive education, such as increasing participation, reducing exclusion, and providing equity. He once said, "Communities in the vicinity of the study centre. It considers peers' contributions to nursing equality regardless of their background, gender, ethnicity, sexuality, disability and achievement."

Lindsay (2003) horribly justifiably states: “It also promotes the tendency to block (inclusive education). Obstacles, improving outcomes and removing inequality. The inclusion is of course a posh and the square measure is a competitive concept of its manifestation in a number of and numerous observations rather than being a marginal problem of how some students often integrate into mainstream learning.”

Inclusive education is a method that emerges as a way to transform the education system and other learning environments into a range of learning. It aims to make both teachers and students feel comfortable with diversity and to enrich the training environment and identify it as a challenge.

A drag Inclusion emphasizes the opportunity for persons with disabilities (physical, social, and / or vulnerable) to participate equally in general education whenever possible, but opens up options for special needs and facilities for those in need.

For facilitating education of CWSN in formal schools, different important activities (Identification, Training of teachers, Supply of aids and appliances to CWSN etc.) are undertaken by the govt of Tripura under inclusive education programme to address the specific needs of CWSN

Investigator have gone through a lot of literature to find out the current state of inclusive education and the growth of inclusive education in our country and state Tripura and decided to conduct this study. The aim of this study is to analysis the implementation process by focusing on the institutional management, curriculum, student admission, student progression, external supports, instruction, assessment, and evaluation so that, necessary corrective measures can be taken in the part of administration and policy formulation.

Also, in terms of the concept of inclusive education, this study has conducted to meet the demand for encouragement in the

field of inclusive education and to assess the real situation of inclusive education in Tripura. The study was focused on understanding and measuring the degree of success as well as the program that was included in the survey. The investigator hopes that the results of the survey will shed light on its implementation situation as well as the current state of inclusive education so that future plans for inclusive education programs can be adopted, the research argues here.

REVIEW OF RELATED STUDIES:

In any educational research Review of related studies and Literature is an essential part. Review presents proof in order that the researcher is acquainted with what is already acknowledged and what remains unknown and untested. An effective study is primarily based totally on beyond knowledge.

Rosea, R. (2017), conducted a study on: Seeking Practice Informed Policy for Inclusive Education in India. A scientific review of the literature throughout this study, thinking about the need to develop an understanding of the collaborative degree of square measure custom-made measures for the promotion of broader education in India.

The adoption of Western models of inclusion may have a limited impact and there is a demand for understanding the methods that support inclusion in Indian faculties. It is requested that while there is a huge corps of literature that considers inclusion as a concept, there is a limited empirical basis from there to appreciate the understanding of the collaborative degree of these measures to encourage access to education. The author suggests an organized approach to the promotion of square measure to appreciate curriculum follow-up analysis and developing inclusive school rooms.

Sarao, T. (2016), Published a paper on: Barriers and Challenges in the broader education of India with special respect to teacher preparation. The aim of this research paper is to show that there are barriers and wide-ranging challenges in the field of education in India with special respect to teacher preparation.

The paper suggests that while there are many barriers and challenges related to teacher preparation for the promotion of inclusive education, it is not possible to achieve massive success in the country through effective means of effective teacher

preparation. In order to prepare teachers for inclusive acceptance for the overall education, teacher education programs should be made compulsory irrespective of primary or secondary level. Additional quality resources, colleges and facilities should be provided in every teacher's educational institution to make the comprehensive education activities unbeatable.

Shehla, F. (2015), published a paper on: Disabled children in inclusive classrooms behavioural problems and behaviour management strategies. This theoretical paper focuses on the behaviour issues of children's with different types of disability among the classroom once inclusion and conjointly reflects on the difficult role of teachers in creating classroom teaching effective.

The strategies presented throughout this paper to help teachers to attain their endeavour. The two forms of approaches in behaviour management conferred among the paper are by eliminating undesirable behaviour could be a technique whereas instructive approach that evokes adaptive behaviour and promotes most participation of individual in significant, daily activities is another one. Instruction and method of behaviour management goes on at the same time. Behaviour issues square measure of growing up and tough behaviours are forever difficult for teachers. Teachers want numerous thinking once handling each forms of children (with and while not disability). Different types of disability demand totally different management ways. It is necessary for teacher in associate degree inclusive schoolroom to design activities keeping in mind the requirements of children with disabilities. Understanding the problems and mistreatment correct management techniques will facilitate in sleek functioning of all the activities in inclusive classroom.

Bhatnagar, N. and Das, A. (2014), conducted a study on: The attitude of the teachers of the secondary regular schools towards the broader education of the national capital, India; A qualitative study. The goal of this study is to identify the attitudes of regular school teachers in Delhi, India, towards the inclusion of students with disabilities. Two focus group interviews with ten participants in each group and 20 individual semi – structured interviews were conducted.. Versatile analysis program QRS was used for in vivo knowledge analysis.

The major finding of the study was that teachers point to positive attitudes towards inclusion of students with disabilities. The teachers collectively request prompts for the type of inclusion in their school, such as improved infrastructure, policy changes, and institutional resource provision.

Raghavan, N.S. (2014), conducted a study on: Inclusion of students with disabilities: A case study of a private primary school in urban town in Southern India. This case study was designed to explore however one elementary school in India custom-made and enforced inclusion. The perceptions and experiences of the principal, teacher and parents concerning inclusion were conjointly explored among the context of inclusive practices of the school.

Findings are conferred as follows: (1) an introduction to the school (2) implementation of inclusion in India and (3) knowledge and perceptions of stakeholders concerning inclusion. Findings indicate that the school practiced a social model of inclusion to suit their desires and supported the availability of resources. Parents of children with disabilities play a vital role in implementing inclusion. Goals for inclusion, school and classroom practices, moreover as participant's perception concerning inclusion were in keeping with their experiences and implementation of social inclusion. Participants had principally positive perceptions, however expressed some limitations concerning inclusion. Implications for future analysis, follow and policy are mentioned.

Justice Shah, A.P (2014), Conducted a paper on: Right to Education of the disabled. This paper on Right to Education of the disabled tries to demonstrate on however persons with disabilities are neglected in India, each by the society moreover as by the government. The desire of such persons with disabilities to hitch the thought approach of life remains an overseas dream for currently because the present mechanisms and policies in place are grossly inadequate to impact any real amendment within the current state of affairs. It's during this lightweight that this paper discusses the proper right of disabled children to receive education for his or her overall development since this right could be a elementary right that's offered to each children, together with those with any style of disability. However, any reformatory measures during this

space square measure seriously obstructed by an absence of standardized and uniformly accepted definition of disability in India, resulting in variable and incorrect estimates in characteristic children with special needs. Totally different knowledge bases have their own parameters of decision making and characteristic disability, resulting in massive discrepancy in figures.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To study the attitude of regular students, CWSN students, Teachers', Administrators and Parents of regular and CWSN students toward 'Student Progression'.

RESEARCH METHOD:

Normative Survey method has been suitably employed for this study.

POPULATION OF THE STUDY:

Population of the present study includes physically challenged students, along with regular students, Teachers and Administrators of primary and secondary levels of government and government aided inclusive schools of Tripura.

SAMPLE SIZE OF THE STUDY:

The sample for the present study was 150 CWSN students (orthopedically handicapped, hearing impairment and low vision), 150 regular students, 70 teachers', 30 Administrator's, 50 parents of regular students and 50 parents of CWSN students.

The study was conducted in 25 nodal inclusive schools of Tripura. The researcher has focused primarily on orthopedically handicapped, hearing impairment, and low vision students because in Tripura there are separate and special schools for blind and deaf and dumb category students.

TOOLS USED FOR THE STUDY:

In the present study following tools are used keeping in mind the objectives of the study:

- **Comprehensive questionnaire**: To measure the views of the physically challenged students, regular students, Teachers and Administrators towards the various

Implementation of inclusive education of both the primary and secondary level of inclusive education.

- **An Attitude scale**: Measuring the attitude of parents of students with physical disabilities towards integrated education in both primary and secondary levels and

To measure the attitude of the parents of the normal students towards inclusive education of both primary and secondary levels of education.

DATA ANALYSIS:

Mean, Percentage, SD, t- test, chi- square test have been suitably computed to analysis data.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA :

To study the attitude of regular students, CWSN students, Teachers', Administrators and Parents of regular and CWSN students toward 'Student Progression'.

This objective examines the attitude of regular students, CWSN students, Teachers', Administrators and Parents of regular and CWSN students toward different factors under 'Student Progression'. Responses are indicated against each factor under 'Student Progression' along with its percentages and mean score.

Regular students and CWSN students toward 'Student Progression':

Table 1: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression" of schools as rated by regular students and CWSN students*

STUDENT PROGRESSION	Students	Quality Response Of Students (Rating by students)					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
Student motivation for self-learning	Regular	24 16%	58 38.66%	34 22.66%	34 22.6%	2.11	WEAK
	CWSN	38 25.3%	51 34%	37 24.67%	24 16%	2.66	STRONG
Guidance and counseling facility	Regular	17 11.33%	56 37.67%	48 32%	29 19%	2.41	WEAK
	CWSN	35 23.33%	54 36%	42 28%	19 12.67%	2.7	STRONG
Physical activity programme	Regular	26 17.67%	17 11.33%	48 32%	59 39%	2.27	WEAK
	CWSN	40	24	51	35	2.46	WEAK

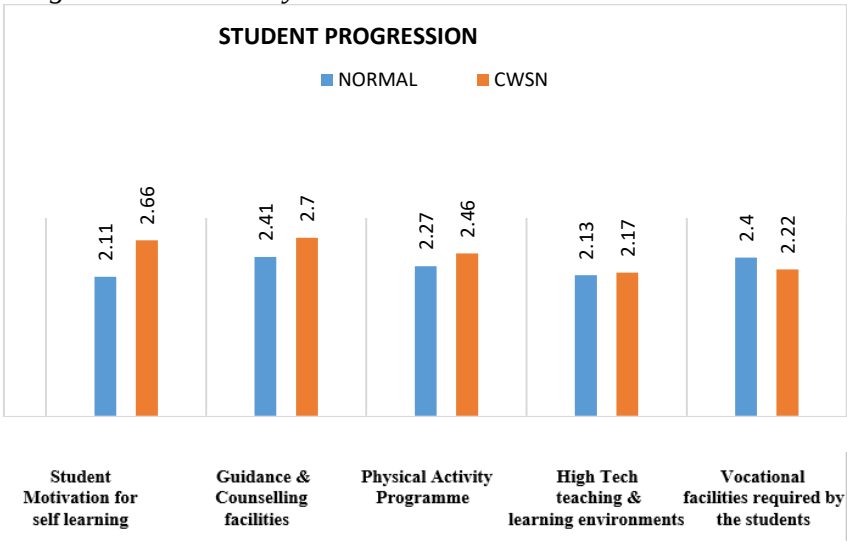
STUDENT PROGRESSION	Students	Quality Response Of Students (Rating by students)					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
		26.67%	16%	34%	23.33%		
High-tech teaching and learning environment	Regular	31 20.67%	20 13.3%	43 28.66%	56 37.33%	2.13	WEAK
	CWSN	23 15.3%	43 28.6%	21 14%	63 42%	2.17	WEAK
Vocational facilities required by the Schools	Regular	21 14%	63 42%	21 14%	45 30%	2.40	WEAK
	CWSN	9 6%	58 38.6%	40 26.6%	43 28.6%	2.22	WEAK

The researcher analysed the data obtained from responses of regular students and CWSN for domains of student progression and calculated their mean in each aspect. In the aspect of student motivation for self-learning, the weighted mean for regular students and CWSN were 2.11 and 2.66. This shows that the motivational aspects are lacking in schools as a whole. For CWSN the domain shows strength as they are boosted regularly under various govt. programmes. Similarly the weighted mean for guidance and counselling by faculty is not satisfactory for regular students and stands at 2.41. For CWSN students weighted mean for guidance and counselling by faculty stands at 2.7 which a positive sign.

The researcher determined the mean of physical activity programme which were 2.27 and 2.46 respectively for regular students and CWSN students. The performance is weak for both the group of students and needs proper attention. Just organizing annual sports is not physical activity. It should be included in routine on regular basis.

The obtained mean for high tech teaching and learning environment in both cases were 2.13 and 2.17 which reveals poor status and needs proper steps for development. Again the vocational facilities required by the students by regular students and CWSN students was 2.4 and 2.22 respectively. The high tech version of teaching learning or digital learning is ignorant or at nascent stage in maximum schools. This domain has very poor performance and needs proper administrative steps for development. From the above result it can be clearly defined that the schools are lacking technical advancement and students in both categories are not satisfied with the present scenario.

Graph 1: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression as rated by normal students and CWSN students*



Teachers' and Administrators toward 'Student Progression' :

Table 2: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression" of schools as rated by Teachers' and Administrators*

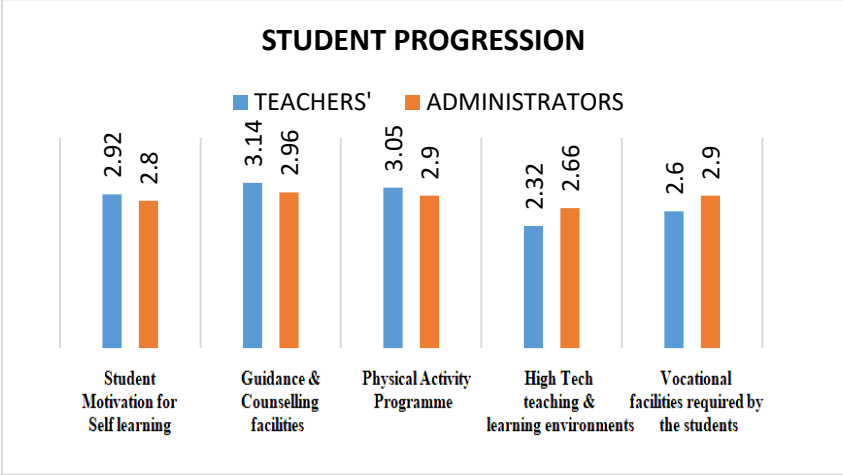
STUDENT PROGRESSION		Quality Response Of Teachers' and Administrators					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
Student motivation for self-learning	Teacher	21 30%	29 41.43 %	14 20%	6 8.57%	2.92	STRONG
	Administrator	6 20%	16 53.3%	4 13.3%	4 13.3%	2.8	STRONG
Guidance and counseling facility	Teacher	29 41.43%	27 38.57 %	8 11.43 %	6 8.57%	3.14	STRONG
	Administrator	7 16%	16 53.3%	6 20%	1 3.33%	2.96	STRONG
Physical activity programme	Teacher	24 34.28%	31 44.3%	10 14.3%	5 7.14%	3.05	STRONG
	Administrator	14 46.6%	6 20%	3 10%	7 23.4%	2.9	STRONG
High-tech teaching and learning environment	Teacher	7 10%	19 27.1%	34 48.57 %	10 14.2%	2.32	WEAK
	Administrator	6 20%	11 36.6%	10 33.3%	3 10%	2.66	STRONG

STUDENT PROGRESSION		Quality Response Of Teachers' and Administrators					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
Vocational facilities required by the Schools	Teacher	16 22.8%	27 38.5%	21 30%	6 8.57%	2.6	STRONG
	Administrator	8 26.7%	5 16.7%	14 46.7%	3 10%	2.9	STRONG

On further introspection by the researcher on Students Progression regarding Student motivation for self-learning, it has been seen that teachers mean stand at 2.92 while the Administrators mean stand for 2.8. It shows that both are appreciably strong and the students does go through self-learning. On further analysis, regarding Guidance and counselling facility the efforts taken by the Teachers are much appreciable and stands with a mean of 3.14 which is quite strong. On the other hand, the efforts taken by the Administrative staffs are also quite appreciable with a mean of 2.96. In this regard, it can be said, that both the Teachers and Administrative staffs are doing a good work by providing proper guidance and counselling.

Moving further with Physical Activity Programme the schools are doing a appreciable and good maintenance by organizing various sports and physical activity under CCE. The man for Teachers stance at 3.05 and the Administrators at 2.9 which are both strong. On further analysis, with High-tech Teaching and Learning environment, both the sectors show a unhappy result. Though the Teachers try to provide the best by using flowcharts, laboratory equipment; but it cannot be carried out at all classes. The Teachers' mean stand at a weak position of 2.32 while the Administrators mean stance at 2.66. It is clearly visible that the Teachers urge for more advanced level of learning. Regarding vocational facilities required by schools, there is a gloomy result. Since the Teachers' mean stand for 2.6 which is slightly strong. On the other hand, the Administrators result at a mean of 2.9 which is quite strong.

Graph 2: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression" of schools as rated by Teachers' and Administrators*



Parents of regular and CWSN students toward 'Student Progression':

Table 3: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression" of schools as rated by Parents of Normal Students and Parents of CWSN students.*

STUDENT PROGRESSION	Parents	Quality Response Of Parents of Normal and CWSN Students					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
Student motivation for self-learning	Parents of regular students	7 14%	16 32%	21 42%	6 12%	2.48	WEAK
	Parents of CWSN students	10 20%	14 28%	18 36%	8 16%	2.52	STRONG
Guidance and counseling facility	Parents of regular students	9 18%	13 26%	16 32%	12 24%	2.38	WEAK
	Parents of CWSN students	15 30%	12 24%	14 28%	9 18%	2.66	STRONG
Physical activity programme	Parents of regular students	17 34%	12 24%	9 18%	12 24%	2.68	STRONG
	Parents of CWSN students	06 12%	17 34%	15 30%	12 24%	2.34	WEAK
High-tech	Parents of	07	11	23	9	2.32	WEAK

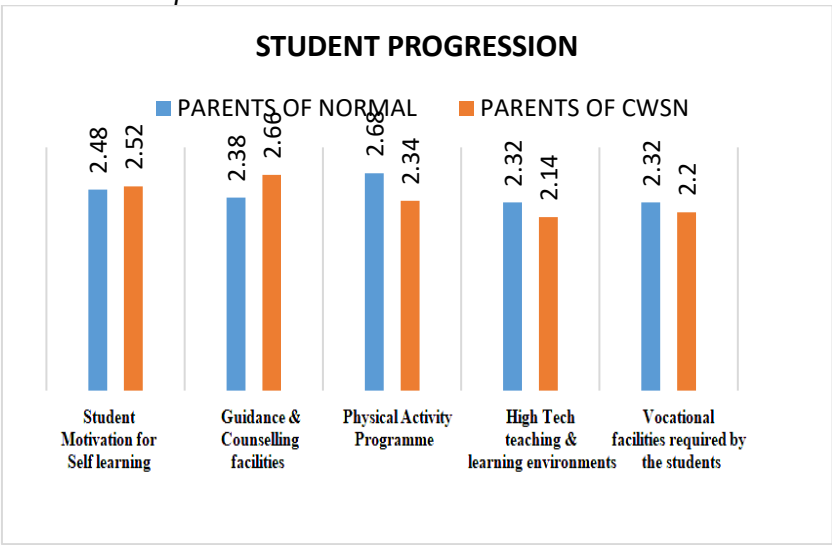
STUDENT PROGRESSION	Parents	Quality Response Of Parents of Normal and CWSN Students					Status
		SA (4)	A (3)	D (2)	SD (1)	MEAN	
teaching and learning environment	regular students	14%	22%	46%	18%		
	Parents of CWSN students	10 20%	4 8%	19 38%	17 34%	2.14	WEAK
Vocational facilities required by the Schools	Parents of regular students	7 14%	17 34%	11 22%	15 30%	2.32	WEAK
	Parents of CWSN students	9 18%	13 26%	7 14%	21 42%	2.2	WEAK

The researcher further introspects the parents of both regular and CWSN students for the progression of students. When enquired about Student motivation for self-learning, it has been seen that CWSN students are more focused than the normal students. The mean for regular students stand at 2.48 while the mean of CWSN students stand at 2.52. On further enquiry about Guidance and counselling facility at schools, the parents were at average level. While the parents of regular students have a mean of 2.38; which shows that the parents are not satisfied. On the other hand, the parents of CWSN students have a mean stance at 2.66. This means the school authority should take measures to improve their counselling session.

In accordance to, physical activity programme, the parents of regular students were quite satisfied with a mean of 2.68 while the parents of CWSN students show a mean of 2.34. The result indicates that during the time of physical activities the gap between regular and CWSN students should be bridged. In the context of high-tech teaching and learning environment, both the group of parents shows displeasure. The parents of regular students' shows a mean of 2.32 and the parents of CWSN students have a mean of 2.14. The school authority and Administration should take some steps to improve the high-tech teaching in schools to attract the focus of students in learning process. The parents showed their displeasure in Vocational facilities at schools. Both the group of parents want some improvement in vocational learning which has practical impact. The parents of regular students have a mean of 2.32 while the parents of CWSN students have a mean of 2.20.

This shows the schools need to improve significantly in this category.

Graph 3: *Weighted Mean for Quality items under "Student Progression" of schools as rated by Parents of regular Students and Parents of CWSN students.*



DISCUSSION:

The results obtained for students' motivation for self learning has a different picture as herein normal students and parents of normal students gave weak response towards Student progression . Similarly regarding guidance and counselling, normal students' and parents of normal students' gave weak response towards the attribute but the other groups gave strong response.

Regarding physical activity of students, the normal students, CWSN students and parents of CWSN students gave weak response while the other groups gave positive response. Regarding the attribute of high tech teaching environment of school the response of normal students, parents of normal students, CWSN and their parents along with Teachers' gave weak responses. This reveals the sheer lack of resources for implementing technical and skill based education in schools of Tripura. Also in regard with the vocational training provided in school the responses from all groups except administrators were weak. A matter of concern also lies with the fact that Govt documentation and activities takes place

through the reports of Administrators of institution. What factor lies or governs the incidence that no matter what the administrators always gives positive response towards all aspects even when they need outmost attention and care for proper development and reviewing for betterment of generation in the formation. This indicates the need for proper attention towards these factors as the responses of students and teachers are contrasting.

Rout Kumar Gyanendra, (2014) in his article "Attitude of Teachers towards Inclusive Education in India" concluded that lack of academic and flexible curriculum and lack of training are the ultimate challenge in affecting teachers attitude negatively in inclusive education program. Positive attitude of individuals with disability , non- disabled peers. Teachers and administrators contribute to the successful implementation of inclusive education.

Prince, Mayfield, McFadden and Marsh (2000) find out that the teachers would be required to accept the pupil and adjust the classroom and instructional activities to meet the academic , behavioural and social need of the pupil.

The disabled students, regular students and parents were found not satisfied with the quality aspect regarding student progression of the schools whereas the teachers and administrators employed in the schools were found satisfied with the aspects of students progression of the schools and also the administrators employed in the schools were found satisfied with the aspects of students progression of the schools. The innovative techniques developed by NCTE and other organization's are to be implied for students progression plays important role to achieve the aims and success of inclusive education. Thus it is necessary that the administrative authority should be periodically evaluate the mechanism of key aspect student's progression for success the implementing inclusive education

CONCLUSION:

The concept of inclusive education is based on the concept of education for all. Education is a birth right of each and every child . The constitution of India has declared' Education 'as a fundamental right for every citizen of India. In inclusive set up education provided opportunities to all children with disabilities in regular schools along with their normal peers .Inclusive education

enables a child who needs special care to overcome disability to make them useful member of the society.

Attitude plays an important role in inclusive education. Positive attitude leads to successful implementation of inclusive education in regular schools. Attitude of the teachers can change the whole picture of the program. Training has been found one necessary factor for effective implementation of inclusive education program. Teachers need extensive training to handle the CWSN children along with the normal counterpart.

There should be more involvement from the part of the government as well as the school authority to implement the program in a meaningful way. The government should be more conscious about the problems related to successful implementation of inclusive education so that Education for all become possible through the state in general schools.

REFERENCES:

1. Devi, Mridusmita (2012). Socio economic status and education of children with special needs CWSN a study conducted in Nagaon and Morigaon district. retrived from http://hdl.handle.net/10603/115302
2. Price, Mayfield, McFadden, and Marsh, (2000); Collaborative teaching: Special education for inclusive classrooms, Chapter 1,The change from isolation to collaboration, ,Copyright © 2000 Parrot Publishing, L.L.C.
3. Rout, Kumar, Dr Gyanendra (2014). Attitude of teachers towards Inclusive education in India. Edutrack vol 13 no 7
4. Sharma, U. (2001). *The attitudes and concerns of school principals and teachers regarding the integration of students with disabilities into regular schools in India.* Unpublished Ph.D. Thesis, University of Melbourne, Melbourne.
5. Single Dr. Nidhi (2009). "Education of Children with Disabilities in India", retrieved from https:// www.academia.edu /5683894/ Education_of_children_with_ disabilities_in_India
6. Boyd. B.(2006) : Taking the Initiative : Perspectives on Policies and practices on Inclusion . Retrieved from : http : // www. itscotland. Org.uk / inclusiveeducation/ research & report / takingtheinitiative/index.asp

7. Brown, P.C. (1976). Principles of Educational and psychological Testing, Holt, Rinhart and Winston, New York
8. Cabtree , A. (2011) Ethical implication for research into Inclusive Education in Arab Societies : Reflection on the politization of the personalized research experience in International Social Work , Saga Publication. Retrieved from: http : // isw.sagapub.com/ content / 56/2/148.abstract
9. Census of India (2011) . Government of India . Retrieved from : http: // censusindia . gov. In
10. Chaddha , A. 2003. Perspective in Special Needs Education in India : A Journey from Isolation to Inclusion , Janshala Volume VI Issue 1 January – March 2003. Joint GIO-UN programme.

CHAPTER 2

TRENDS AND CHALLENGES FOR THE 21ST CENTURY TEACHER IN EDUCATION

Dr. Dayal Pyari
Assistant Professor,
Amity Institute of Education,
Amity University, Noida, Uttar Pradesh
Email: dpyari@amity.edu

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.02

ABSTRACT
This paper aims at analysing the historical progression of Industry 4.0, leading to Education 4.0. It further aims at unpacking the trends and challenges related to Education 4.0 and presents certain suggestions for the teachers to adapt in their classrooms, to make them 21st Century ready for their learners.

KEYWORDS: *Industry 4.0, Education 4.0, 21st Century, Teachers.*

INTRODUCTION

The nature of our society is dynamic. It is subject to changes, that too revolutionary ones. When it comes to industry, our society has not only undergone enormous changes but has also seen various accounts of the industrial revolutions. People all over the world have been witness to these revolutions, generation after generation. The industrial revolutions occurred in response to the changes that were brought up in the social setup of the society w.r.t needs, requirements, desires, inhibitions, expectations etc. With all these fast-paced changes, there is an ardent need to study the industry and analyse the reasons as well as consequences of such revolutions and their impact in our lives.

Industry 4.0

We live in the era of Industry 4.0, which refers to the intelligent networking of equipment and processes for industry using information and communication technologies. It is the digitalization of manufacturing/ production and allied industries, as well as value generation activities.

There have been three previous industrial revolutions that have resulted in paradigm shifts in the manufacturing domain: mechanisation via water and steam power, mass production in assembly lines, and automation via information technology.

Industry 1.0 began in the 1780s with the advent of water and steam power, which aided mechanical production and vastly improved agriculture. Following that, Industry 2.0 is described as the time when mass production became the primary means of production in general. Steel mass production aided the introduction of railways into the industrial system, which in turn aided mass production in general. Industry 3.0 began throughout the twentieth century with the introduction of the Digital Revolution, which is more familiar than Industry 1.0 and 2.0 because most people today are familiar with industries that rely on digital technologies in production. For many countries, the massive development in computers and information and communication technology industries was and continues to be a direct effect of Industry 3.0. Many vocations have changed as a result of Industry 4.0. People have always been required to acquire new daily chores, but they are now also required to use high-tech devices, which are rapidly becoming the most significant aspect in their professional lives. [1]

Industry 4.0 is defined as a transformation of the entire organisation, including the production process, through digitization and automation. Industry 4.0 will be accepted by large worldwide firms that apply continuous improvement concepts and have strong research and development standards, allowing them to become even more competitive in the market.

Industry 4.0 is used interchangeably with the fourth industrial revolution and represents a new stage in the organization and control of the industrial value chain.

Impact of Industry 4.0 on Education

One of the majorly affected areas by the industrial revolution is that of Education. Thus, it is significant to not only

keep up with the industrial advancements, but also to analyse the impact of industry on the educational sector as a whole, involving all the stakeholders. When it comes to Industry 4.0, it does not only affect the business, governance and the people; it equally affects education. This is how the term Education 4.0 came to existence.

With the arrival of the 4th Industrial Revolution, education's function is shifting, and it is being relied upon to meet new demands. This leads to the emergence of Education 4.0, a phrase coined by academics to characterise the different ways in which technology is incorporated into the educational environment.

Education 4.0

Every individual must have the ability to know when and where to employ technology in the future. To fully benefit from Industry 4.0, they must be critical thinkers, problem solvers, innovators, and leaders. They must be prepared to face all of the problems that this transformation will bring. Overall, education has little choice but to adapt to the changes brought on by new technology, resulting in Education 4.0 [2]

Education 4.0 is therefore a response to the needs of IR4.0 where human and technology are aligned to enable new possibilities. A disruptive system, Education 4.0 not only focuses on ‘what is taught’ but it also assumes a nuanced approach to ‘the way it is taught’. It is an education model which is aligned with future trends, in order to develop and enhance individualised education that will eventually go on to define the manner in which youngsters of the future will work and live.

As the barriers between man, machine and technology dissolve, we need to define education for the next generation by keeping intact elements, values, beliefs and insights that make us ‘human’. This is the essence of conceptualising Education 4.0.

Essentially, pupils must be trained rather than instructed. They must seize the information and resources that will be made available to them on their own. As a result, the need of the hour is for Industry 4.0 to be aligned with Education 4.0. The least that today's schools can do is provide a more flexible curriculum and structure, and teachers should act as mentors. The education industry will undergo a revolution that will make it more individualised, peer-to-peer, and ongoing.

Trends in Education 4.0

Education 4.0 is embedded with technological interventions such as smartphones, online evaluation and assessment; Artificial Intelligence and big data. The future of education has been transformed for the better, thanks to modern technologies and automation.

In some ways, Education 4.0 completes the phenomena of digital integration in our daily lives, where humans and machines work together to solve problems, troubleshoot, and, of course, uncover new theories of innovation. Information is everywhere in education 4.0, and the teaching and learning process has become dynamic. It is not difficult to imagine what education 4.0 will store for us as technology improvements progress. The future of education 4.0 has the potential to significantly alter the economic use of information. [3]

Higher education institutions are projected to play a big role in the use of technological breakthroughs in education 4.0. It can improve the effectiveness of the teaching and learning process by incorporating the latest technologies. Students would pay greater attention to studying and demand more as a result of new technologies.

There are nine trends related to Education 4.0 (Fisk, 2017) [4]

- **Learning can take place anytime anywhere:** E-learning, remote learning, flipped classrooms etc.
- **Learning will be personalized to individual students**: Positive reinforcements, boosting learners' confidence.
- **Students have a choice in determining how they want to learn:** Blended learning, flipped classroom and BYOD (Bring Your Own Device) approach.
- **Students will be exposed to more project-based Learning:** Improving their organizational, collaborative and time management skills.
- **Students will be exposed to more hands-on learning** through field experience such as internships, mentoring projects and collaborative projects.
- **Students will be exposed to data interpretation** in which they are required to apply their theoretical knowledge to numbers and use their reasoning skills to make inferences based on logic and trends from given sets of data.

- **Students will be assessed differently** and the conventional platforms to assess students may become irrelevant or insufficient.
- **Students' opinion will be considered in designing and updating the curriculum**. **Students will become more independent in their own learning,** thus forcing teachers to assume a new role as facilitators who will guide the students through their learning process.

Challenges in achieving Education 4.0

While the present and the future seem to be very promising for the education sector with IR 4.0 and Education 4.0, there are some challenges that need to be addressed. Teachers will have a substantially heavier task as a result of their usage of technology. The usage of technology has resulted in the emergence of a variety of distinct and demanding occupations. It worsens disparities and extends the socioeconomic divide. Job losses are a very real possibility. Simultaneously, it presents a slew of ethical concerns. It offers cyberbullying and hate speech enough airtime, making the world more confusing, insecure, and uncertain. Furthermore, technology undermines individuality and the private sphere of existence to a large extent, homogenizing people's opinions, and greatly polarises society. [5]

So, the challenges to achieving Education 4.0 are as follows:

- Access and Equity: Provision of disruptive technologies while ensuring mass social inclusion.
- Unemployment: It is predicted that at least 50% of jobs will be lost due to technologies.
- Funding and investment
- Awareness and motivation among educational institutions and teachers.
- Pedagogical strategies and approaches: Necessary shift needed
- Assessment and Evaluation: Overuse of conventional methods and lack of innovative ways of assessing learners

Suggestions:

Artificial intelligence (AI), robots, the internet of things, autonomous vehicles, bio and nanotechnology, 3-D printing, material science, quantum computing, and energy storage are

examples of recent breakthroughs that the Indian education system must justify. Positive reinforcements must be transmitted across the country to schools and institutions. [9]

Understanding the necessary abilities for instructors in the twenty-first century, as well as teaching that is up to industry4.0 requirements, is a must. It is necessary to build the beginning of an era of learning-anytime-anywhere. The bigger the opportunities for e-learning tools, the better. Students will have more access to self-paced learning as a result of this. The idea of a flipped classroom needs to be spread. The flipped classroom method would make it easier for the classroom instructor to organise learning activities that would promote the students' social emotional learning. [6]

A teacher teaching in the 21st Century can adapt the following points in her classroom so as to envisage it in sync with Education 4.0:

- Meet the specific needs of students and facilitate personalized learning.
- Use a variety of tools and techniques that promote flexible and active learning so as to reach educational goals in a better way.
- Brainstorm the best technique and methods to facilitate the learners.
- Constructively use collaborative platforms so as to maximize collaboration and teamwork.
- Design innovative ways of evaluating the learners.

REFERENCES

1. Tay, S., Te Chuan, L., Aziati, A., Ahmad, A. N. A. (Dec 2018). An Overview of Industry 4.0: Definition, Components, and Government Initiatives. *Journal of Advanced Research in Dynamical Control System.* 10, 14.
2. Kumar, A., Anand, A., Kesri, V. (2020). Industry 4.0 to education 4.0: An Indian Student Perspective. *International Journal of Innovative Research in Technology*. 6(12), 7.
3. Halili, S.H. (2019). Technological Advancements in Education 4.0. *The Online Journal of Distance Education and E-Learning*. 7(1), 63-69.
4. Hussin, A., Aziz (July 2018). Education 4.0 Made Simple: Ideas For Teaching. *International Journal of Education and Lit. Study*. 6(3), 92.

5. Panagiotopoulos, G. (Jan 2020). Education 4.0 and Teachers: Challenges, Risks and Benefits. *European Science Journal*, 16(34). 108-122.
6. Tandon, D. R., Tandon, D.S., Nagar, M. Education 4.0: A New Paradigm in Transforming the Future of Education in India. (2020*). International Journal of Innovative Science, Engineering & Technology*. 7(2), 23.

CHAPTER 3

INCLUSIVE EDUCATION AND ITS IMPORTANCE FOR DISABLED STUDENTS

Jugmaheer Gautam,
Assistant Professor, Faculty of Education,
Shri Ram College, Muzaffarnagar

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.03

ABSTRACT

This paper recognizes and talks about significant issues and patterns in a custom curriculum in Indonesia, including ramifications of patterns for the future turns of events. Patterns are examined for the accompanying regions: (1) consideration and coordination, issues will stay irritating sooner rather than later; (2) youth and postsecondary instruction with incapacity understudies, custom curriculum will be seen as life expectancy tutoring; (3) changes and fundamental abilities, these will get more prominent accentuation; and (4) interview and joint effort, more accentuation yet issues remain. In addition, the member of the concentrate in this paper was a chemical imbalance understudy of twelve years of age who inhabited Maguwoharjo, Yogyakarta. This study was subjective with contextual investigation as an approach of the exploration. The scientists close the mental imbalance that has great intellectual, correspondence and profound ability can go to incorporated school joined by direction educator. However, by and by, comprehensive training in Indonesia is indistinguishable from partners going from government and establishments, for example, schools, teachers, school climate, local area and guardians to help the objective of comprehensive instruction itself. Satisfactory framework additionally should be given to the school that coordinates comprehensive training for an proficient and successful understudies understanding learning-focused of comprehensive schooling. So, every kid has a similar open door in training, yet for

a custom curriculum which is focused on understudy with exceptional instructive necessities.

KEYWORDS: *Inclusive education, early childhood, integrated school, school climate.*

Introduction:

Lately, the idea and practice of comprehensive training have acquired significance. Globally, the term is progressively seen all the more comprehensively as a change that backings and invites variety among all students.

Comprehensive schooling should be visible as a course of fortifying the limit of a school system to contact all students. It is, hence, a general rule that ought to direct all instructive strategies and works on, beginning from the conviction that schooling is a key basic freedom and the establishment for an all the more society. Training happens in numerous unique circumstances, both formal and non-formal, and inside families and the more extensive local area. Thusly, comprehensive schooling is definitely not a peripheral issue yet is fundamental to the accomplishment of great instruction for all students and the improvement of additional comprehensive social orders. Comprehensive schooling is fundamental to accomplish social value and is a constituent component of deep rooted learning. To put it plainly, comprehensive training is a cycle that includes the change of schools and different focuses of figuring out how to cater for all kids - including young men and young ladies, understudies from ethnic and semantic minorities, rustic populaces, those with handicaps and troubles in learning and to give learning potential open doors to all young and grown-ups too. Point is to take out prohibition is a result of negative perspectives and an absence of reaction to variety in race, monetary status, social class, identity, language, religion, orientation, sexual direction and capacity.

Most nations take on the standards of Schooling for All (EFA) in their strategies and regulations, however by and by, training is for "practically all" or for "the vast majority" and individuals rejected are definitively the people who need it most, to repay what is going on. As per the EFA Worldwide Checking Report 2008, there are as yet 72 million of kids on the planet who have no admittance to essential training and 774 million of

youngsters and grown-ups who are uneducated, 64% of which are ladies.

Admittance to youth care and schooling, important to ensure equivalent open doors, is very restricted in the three first years, and youngsters from the most impeded financial settings and from provincial regions scarcely benefit from these administrations. Admittance to auxiliary training has expanded by 5%, from 2000 to 2005, coming to 66%. By and by, a more prominent exertion ought to be made since these days essential instruction isn't enough for being incorporated into the information society and rising up out of neediness.

Training quality and balance are unsettled matters even in those nations with high tutoring rates. There are huge differences among and inside nations as respects the admittance to the different instructive levels and the dissemination of information. Just 63% of nations with accessible information have arrived at orientation equality in essential schooling, diminishing to 37% at the optional level. Understudies from monetarily hindered areas, country regions or minorities are the individuals who, because of an underlying circumstance, show higher reiteration and drop-out rates and accomplish lower learning results.

Also, isolated schools and projects exist, which are focused on individuals with exceptional instructive requirements, of various ethnic beginning, or transient families. Large numbers of these understudies are not treated with human poise; their way of life is not regarded and they are survivors of physical or mental viciousness.

Thusly, instructive prohibition is a significant peculiarity which isn't limited to the people who don't go to class due to a disavowal of access, or on the grounds that they exited school because of redundancy, the absence of importance of the schooling, monetary hindrances or the understudies' life conditions. Avoidance likewise influences the people who go to class yet are isolated or oppressed due to their ethnic beginning, orientation, social condition, of other individual attributes or limits, too as the individuals who can't learn because of the bad quality of the instruction they get.

In view of the perception at Mugowoharjo, Yogyakarta, Indonesia; there is long term understudy who has handicap which learn at one of formal school at Yogjakarta. He looks ordinary like

different understudies, yet he isn't; he is mental imbalance. He needs guide from the educator during the growing experience. Up until this point, incorporation has been introduced through a handicap focal point.

Incorporation ought to, be that as it may, not be viewed as an issue exclusively about understudies with inability. Some, notwithstanding, presently view comprehensive training as being worried about variety all the more by and large. As indicated by Shaddock and partners (2009), That's what incorporation infers assuming interest turns into an issue for any understudy, whether emerging from incapacity, orientation, conduct, destitution, culture, displaced person status or some other explanation, the beneficial methodology isn't to lay out extraordinary programs for the recently distinguished individual or gathering need, however to grow standard reasoning, designs, and practices with the goal that all understudies are obliged.

Incorporation and Combination

Comprehensive training is a course of reinforcing the limit of the schooling system to contact all students and can subsequently be perceived as a vital methodology to accomplish EFA. As a general rule, it ought to direct all training strategies and works on, beginning from the way that instruction is an essential basic liberty and the establishment for an all the more and equivalent society. The significant catalyst for comprehensive training was given at the World Meeting on Extraordinary Necessities Schooling: Access and Quality, held in Salamanca, Spain, June 1994. In excess of 300 members addressing 92 legislatures and 25 worldwide associations considered the essential arrangement shifts expected to advance the methodology of comprehensive training, accordingly empowering schools to serve all youngsters, especially those with extraordinary instructive requirements.

Albeit the quick focal point of the Salamanca Gathering was on extraordinary requirements instruction, that's what its decision was:

Exceptional necessities schooling - an issue of equivalent worry to nations of the North and of the South - can't progress in disconnection. It needs to frame part of a generally speaking instructive methodology and, without a doubt, of new friendly and

monetary strategies. It calls for significant change of the normal school.

An 'comprehensive' schooling system must be made assuming customary schools become more comprehensive - at the end of the day, in the event that they become better at teaching all kids in their networks. Consideration is in this way seen as a course of addressing and answering the variety of necessities, everything being equal, youth and grown-ups through expanding support in learning, societies and networks, and diminishing and taking out prohibition inside and from schooling. It includes changes and changes in happy, approaches, designs and techniques, with a typical vision that covers all offspring of the fitting age range and a conviction that it is the obligation of the standard framework to teach all kids.

The term consideration has various understandings in different nations. It is some of the time related with those understudies living in underestimated or unfortunate settings, however regularly it is connected with the cooperation of the crippled or those with extraordinary instructive requirements in standard schools. In this manner consideration is viewed as practically equivalent to joining, when they are as a matter of fact two unique methodologies with various dreams and viewpoints. As an outcome of this misinterpretation, comprehensive strategies are viewed as an obligation of a custom curriculum, confining the examination of the relative multitude of normal types of rejection and segregation that occur inside school systems.

On account of incorporation, in actuality, the emphasis is on the change of schooling systems and schools with the goal that they can cater for the variety of understudies' advancing necessities coming about because of their social and social foundation and their singular attributes as respects learning inspirations, capacities, styles and cadence. As per this viewpoint, it isn't the understudies signed up for school that should adjust to the current instructive arrangement, yet rather the school that ought to be adjusted to the requirements of each and every understudy, since all understudies are unique. Corps, Ceralli, and Boisseau (2012) make sense of that custom curriculum framework implies kids with handicaps getting training in an isolated learning climate, for example, an exceptional school or focus that is frequently segregated from the local area, from different youngsters, or from the standard training schools. In

numerous nations this sort of a custom curriculum framework has no connection to the Service of Training.

The critical component of consideration isn't individualization however the enhancement of the instructive arrangement and the personalization of normal growth opportunities to accomplish the most significant level of support, everything being equal, considering their singular necessities. This infers progressing towards general plan, where the showing growing experience and the educational plan consider all along the variety of requirements, everything being equal, rather than anticipating the premise of an "normal" understudy and afterward do individualized activities to answer the necessities of explicit understudies or gatherings who were not thought about by a schooling proposition in view of a rationale of homogeneity rather than variety. The reaction to variety — a fundamental condition to accomplish excellent training — is most likely the principal challenge as of now looked by schools and educators, as it includes considerable changes in the current originations, perspectives, educational programs, academic practices, educator preparing, assessment frameworks and school association.

So, the comprehensive schooling system adopts a methodical strategy to change as opposed to a school by school approach. Coordinated instruction can likewise imply that a youngster with a handicap is set into a standard school and class, yet that the school makes just negligible endeavors to address a particular scholar or social necessities the kid could have, and as needs be the kid should adjust his/herself to the climate. It implies classes for youngsters with handicaps that are situated in standard schools however in a different homeroom with other crippled students and with a committed educator. These kids will frequently have practically no contact with their non-debilitated peers. In addition, Schooling system considers the actions it should take to have the option to give suitable training all youngsters learning together.

Youth and Postsecondary Training with Incapacity

The World Statement on Training for All, took on in Jomtien, Thailand (1990), sets out a general vision:

Universalizing admittance to schooling for all kids, youth and grown-ups, and advancing value. This implies being proactive in recognizing the hindrances that many experience in getting to

instructive open doors and distinguishing the assets expected to defeat those obstructions. Youth is a rapidly growing concentration in a custom curriculum. Research has upheld the conviction that early mediations are basic for huge enhancements in uncommon people. There have been new regulations, subsidizing, and preparing laid out in the field to help with supporting youth custom curriculum. Tragically, there is as yet a lot more popularity for these administrations than what is right now being given. The ongoing accentuation in regulation has been toward growing custom curriculum from birth to adulthood. This more up to date viewpoint depends on a perspective on life expectancy tutoring.

School-going age for kids both with and without incapacities might fluctuate from one locale to another and country to country. Public legislatures have approaches and regulations specifying as far as possible for essential and auxiliary school: 1) normal preschool age 3-6 years, 2) normal grade young 6-15 years, 3) normal optional young 14-25 years. For this situation, the subject of understudy is at twelve years of age which has handicap on his correspondence, socialization and profound. Mental imbalance range jumble (ASD) and mental imbalance are both general terms for a gathering of mind boggling problems of mental health. These problems are portrayed, in fluctuating degrees, by challenges in friendly association, verbal and nonverbal correspondence and monotonous ways of behaving.

For kids with incapacities, who frequently start school later than their non-incapacitated friends and who some of the time call for extra investment, the most common way of setting an age limit regulation can forestall the consummation of fundamental training.

Training for youngsters with handicaps in most low and center pay nations generally comprises of isolated extraordinary schools in metropolitan regions where framework is more evolved. In any case, proof is starting to show that this kind of schooling system is certainly not a practical arrangement over the long haul and constantly rejects the least fortunate people, particularly in rustic settings. The beyond a decade have seen a huge worldwide drive on the issue of admittance to training. While much headway has been made, as exhibited by a worldwide reduction in the quantity of kids out of school, there stay serious difficulties regarding nature of instructing, learning, maintenance and progress in training. For youngsters with incapacities, the circumstance is

basic. Schooling systems and administrations overall are just neglecting to address their issues, both with regards to access and nature of training.

Progress and Fundamental abilities of Incapacity Understudies

Most people gain a greater part of their fundamental abilities from their families or friend gatherings. For people with exceptional necessities, these abilities frequently become a need for their schooling. People who have tactile or actual issues, for example, visual hindrance, hearing misfortune, cerebral paralysis or spinal bifida need to figure out how to utilize the particular materials and gear that will help them. Progress has turned into a developing worry of a custom curriculum. The aftereffects of examination on professional and postsecondary results prodded unique instructors to foster projects to assist understudies with handicaps make the change from school to work and free living. In accordance with the progress and fundamental abilities, the educational program and educators strategies in instructing and growing experience are associated with the outcome of understudies' fundamental abilities in the climate. A comprehensive educational program tends to the youngster's mental, close to home, social and innovative turn of events. It depends on the four mainstays of training for the twenty-first hundred years - figuring out how to be aware, to do, to be and to live respectively.

It plays an instrumental part to play in encouraging resilience and advancing basic liberties, and is a useful asset for rising above social, strict, orientation and different contrasts. A comprehensive educational program takes orientation, social personality and language foundation into thought. It includes breaking negative generalizations in reading material as well as, and all the more critically, in educator's perspectives and assumptions. Multilingual methodologies in schooling, in which language is perceived as a basic piece of an understudy's social personality, can go about as a wellspring of consideration. Moreover, native language guidance in the underlying long periods of school emphatically affects learning results.

A comprehensive way to deal with educational plan strategy has inherent adaptability and can be acclimated to various requirements so everybody benefits from a normally acknowledged fundamental degree of value instruction. This reaches from

fluctuating the time that understudies commit to specific subjects, to giving educators more prominent opportunity to pick their functioning techniques, and to permitting additional opportunity for directed study hall based work.

As per the EFA Worldwide Observing Report 2005, one method for moving towards an important, adjusted set of points is to dissect the educational program with regards to consideration. A comprehensive way to deal with educational program strategy perceives that while every student has various necessities - considerably more so in circumstances of weakness and drawback - everybody ought to profit from a usually acknowledged essential degree of value schooling. This underlines the requirement for a typical center educational program that is significant for the student while being instructed by adaptable techniques.

Available and adaptable educational plans, course readings and learning materials can act as the way to making schools for all. Numerous educational programs anticipate that all understudies should get familiar with exactly the same things, simultaneously and by similar means and techniques. In any case, understudies are unique and have various capacities and requirements. It is significant, hence, that the educational plan be adequately adaptable to give prospects to acclimation to individual necessities and to animate educators to look for arrangements that can be coordinated with the requirements, capacities and learning styles of every single understudy. This is especially significant in the turn of events and practice of learning exercises for youth and grown-ups.

Counsel and Joint effort

For understudies that are engaged with incorporated programs, executing a meeting or cooperative model of administration delivery is fundamental. Advisor models were initially remembered to be "master models" where custom curriculum experts would work with general teachers and educate them on how the instructors were to address the issues of their uncommon understudies. This model was not proper in certain states, where the custom curriculum educators get no huge extra preparation contrasted with their ordinary schooling partners. This model additionally experienced issues when experienced instructors didn't need or value counsel about their own study halls. Current models of discussion are more corresponding and give the

expert either equivalent, or less authority than the normal schooling instructor.

The cooperation model is a more well known strategy being supported by a few scientists and professionals. Cooperation models (like conference models) accept that the customary educator is the essential supplier of guidance and has a definitive obligation. The custom curriculum educator's job is to go about as a help and an asset to the normal educator remembering working for the overall homeroom with understudies. The Overall Instruction Cooperation Model proposed by Simpson and Myles (1993) is made out of five fundamental parts: 1) Adaptable departmentalization, 2) Program proprietorship, 3) Distinguishing proof and improvement of steady perspectives, 4) Understudy evaluation as a proportion of program viability, and 5) Study hall changes that help mainstreaming.

In spite of the fact that joint effort models might sound ideal, there are a few issues that poor person yet been settled. One issue is correspondence, for instructors don't necessarily in every case have what it takes to issue settle or function admirably together.

Another worry is the absence of time to work with different experts. There is additionally once in a while minimal shared belief among customary and specialized curriculum, with teachers holding numerous misguided judgments of the other field. Educator schooling is behind in preparing exceptional teachers and particularly normal instructors to manage these changes. The field is likewise confused regarding how to satisfactorily prepare educators functioning in the schools. Albeit in-administrations are the ongoing strategy for preparing working teachers, there should be extra help, school transformations, and study hall changes for cooperation to find lasting success. The eventual fate of a custom curriculum is by all accounts swinging toward expanded coordinated effort. Apparently custom curriculum will actually want to adjust to these changes, yet it is not yet clear in the event that the overall training projects will be as open.

Conclusion:

In summarize, a comprehensive schooling system must be made on the off chance that customary schools become more comprehensive - in other words, assuming they become better at teaching all kids in their networks. Consideration is in this manner

seen as a course of addressing and answering the variety of necessities, everything being equal, youth and grown-ups through expanding support in learning, societies and networks, and decreasing and killing prohibition inside and from schooling. It includes changes and alterations in happy, approaches, designs and procedures, with a typical vision that covers all offspring of the proper age range and a conviction that it is the obligation of the customary framework to teach all kids. Additionally, a comprehensive educational program tends to the kid's mental, close to home, social and imaginative improvement. It depends on the four mainstays of schooling for the twenty-first 100 years - figuring out how to be aware, to do, to be and to live respectively. In any case, there is shared belief among ordinary and custom curriculum, with teachers holding quite a large number confusions of the other field. Instructor schooling is behind in preparing exceptional teachers and particularly customary teachers to manage these changes. The field is likewise confused concerning how to sufficiently prepare educators functioning in the schools. Albeit in-administrations are the ongoing strategy for preparing working teachers, there should be extra support, school transformations, and study hall changes for cooperation to find success. Available and adaptable educational plans, course readings and learning materials can act as the way to making schools for all. Numerous educational plans anticipate all understudies to get familiar with exactly the same things, simultaneously and by similar means and strategies. In any case, understudies are unique and have various capacities and requirements. It is significant, in this way, that the educational plan be adequately adaptable to give opportunities for acclimation to individual requirements and to invigorate instructors to look for arrangements that can be coordinated with the necessities, capacities and learning styles of every single understudy. Yet, practically speaking, comprehensive instruction is indivisible from partners going from government and establishments like schools, instructors, school climate, local area and guardians to help the objective of comprehensive training itself. Satisfactory foundation additionally should be given to the school that arranges comprehensive schooling for a productive and viable understudies understanding learning-focused of comprehensive instruction.

REFERENCES

1. UNESCO. Policy Guideline on Inclusion in Education. Paris (2009)
2. S. Miles and N. Singal. The Education for All and Inclusive Education debate: Conflict, contradiction or opportunity?. International Journal of Inclusive Education. (2008)
3. UNESCO. Defining an Inclusive Education Agenda: Reflections around the 48th session of the International Conference on Education. Geneva, Switzerland. (2009)
4. UNESCO. The Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education. Paris, UNESCO/Mini stry of Education, Spain. (1994)
5. H. Corps, G. Ceralli, and S. Boisseau. Inclusive Education. (2012)
6. H. Corps, G. Ceralli, and S. Boisseau. Inclusive Education. (2012)
7. UNESCO. Policy Guideline on Inclusion in Education. Paris (2009)
8. Autism Speaks Inc. Autism Speaks and Autism Speaks It's Time to Listen & Design are trademarks owned by Autism Speaks Inc. All rights reserved. (2012)
9. J. Delors, et al. Learning: the Treasure Within. Report to UNESCO of the International Commission on Education for the Twenty-first Century. Paris, UNESCO. (1996)
10. UNESCO. EFA Global Monitoring Report 2005. The Quality Imperative. Paris, UNESCO. (2004b)
11. UIS. Investing in the Future: Financing the Expansion of Educational Opportunity in Latin America and the Caribbean, Montreal, Que.,UIS. (2004c)

CHAPTER 4

A STUDY OF HEALTH AND PHYSICAL EXERCISE EFFECT ON ACADEMIC ACHIEVEMENT IN SCHOOL EDUCATION

Soma Singha
Department of Physical Education
Assist. Prof. in Physical Education
Jasidih B.Ed College, Jasidih, Deoghar, Jharkhand,
Email- gobindakumardas92@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.04

ABSTRACT

This study will look at the connections between physical education (PE), school physical activity (PA), school sports, and academic success. These linkages have been the topic of much debate among supporters and detractors of PE, school PA, and school sports programs. Academic achievement and physical activity are both independent factors of a child's health in this context. The purpose of this article is to evaluate the effects of school PE programs (both PE and school sports) on academic achievement in both elementary and secondary schools. Previous studies looked at the links between PA and academic achievement. Recent research findings, which have been widely reported in the media, suggest that such activity may have a good impact on learning and memory. It is already well acknowledged that PA is now well acknowledged to be connected with the maintenance of cognitive function in older persons and to offer some protection against Alzheimer's disease. Given the rising average life expectancy and the resulting increase in the proportion of elderly and very old people in most nations, cognitive dysfunctions in older persons are becoming an urgent public health issue. A beneficial relationship between physical activity and cognitive health is suspected in younger people, but is less thoroughly demonstrated in this age group. Nonetheless, any

positive effect of PA on children's cognitive functions is significant for at least two reasons: 1) It could be a rationale for boosting PE and/or other types of school PA without jeopardizing academic success; and 2) It could be a way to prevent disruptive behaviour at school and drop-out from educational programs. Furthermore, an improved level of physical fitness would be an essential byproduct of increased engagement in school PA.

KEYWORDS*: Physical activity, Sports, Academic performance, Elementary school.*

Introduction:

The Vanves (France) examination, which featured a small sample of kids examined in the 1950s, was the first reported quasi-experimental study pertinent to this topic. Schoolchildren who spent mornings in the classroom and afternoons doing PE were stated to outperform children in a control class academically, but no further details were provided. Regrettably, the details of these observations were not published in peer-reviewed journals**.** What effect does a high level of PF have on academic performance? Is above-average PF associated with high cognitive functioning? If so, is this due to PF in general or to improved overall physical health? When the material is examined in its entirety, there is no obvious link between PF and either academic accomplishment or intellectual performance. Railo discovered no link between PF and either of these results as early as 1969. Following a meta-regression analysis, Etnier et al. concluded that the empirical evidence did not show a connection between cardiovascular PF and academic achievement. This meta-analysis, however, showed a gap in the literature: there was limited information on the association between PF and academic achievement in school-aged children. Indeed, when other than cardiovascular fitness is included in the definition of PF, there appears to be evidence of beneficial relationships between several measures of psychomotor performance, cognitive ability, and academic accomplishment. Psychomotor performance and cognitive functions overlap numerous neural pathways.

One recent topic of discussion has been whether or whether participation in sports and other forms of physical activity might improve cognitive function, such as memory and focus. Large, all-

encompassing evaluations of the association between physical activity and learning behaviour have revealed that engagement in physical exercise, particularly sport, may provide cognitive benefits to schoolchildren (Sibley and Etnier, 2003; Tomporowski, 2003b). Physical education, physical activity, and sport have been linked to improved classroom behaviour, which has been linked to improved academic attainment in students (Mahar et al., 2006).

School Sports and academic achievement: Since Davis and Cooper first found a positive association between school sports involvement and academic achievement, the link between school sports and intellectual achievement has been a long-standing problem. It is still the subject of ongoing investigations. The competitive feature of most sports poses unique challenges, even in the school context, because the instructional dimension is typically consigned to a secondary level. The evidence is mostly cross-sectional, and the conclusions are more ambiguous than for PA; unfortunately, most previous studies did not account for biases common to athletic and academic achievements.

The purpose of the review is to examine the impact of physical education and sport on academic achievement and on those wider social outcomes which might impact on academic achievement and other aspects of school performance. For young people sport forms a major component of physical activity and therefore those studies which have examined physical activity in the broadest sense are included in the review. The review includes academic peer-reviewed journal articles and other sources of information such as published reports.

The effect of physical education, physical activity, and sports on academic performance:

- A recent comprehensive study (Martin 2010)1 of the research on "physical activity, fitness, and academic achievement" revealed the following major points:
- The vast majority of university-based, internationally published research in this sector has discovered a beneficial relationship between children's participation in physical activity and academic ability.
- A two-year physical activity intervention improved children's arithmetic results significantly (Hollar et al., 2010).

- In a second year follow-up, academic success of children in a case study group (who got extra physical education) was considerably higher than children in a control group (who did not get extra physical education) (Shephard et al., 1994).
- Out of school, there was more rigorous physical exercise.
- Physical activity involvement was found to have a strong favorable relationship with academic achievement (Lidner, 2002).
- Higher levels of physical fitness, physical capability, and physical activity were linked to higher levels of scholastic performance (Dwyer et al., 2001).
- Students who reported a high degree of physical activity spent more time participating in sports and had higher grade point averages (Field, 2001).

The effect of physical education, physical activity, and sports on cognitive function:

There is a large body of research on the effect of single bouts of physical activity on cognitive performance in young individuals, as well as some studies on the long-term (or chronic) influence of doing extra physical activity for a few months on cognitive function. It is critical to include this information in this review since each physical education session or sport activity represents a bout of physical activity that may impair learning on that day and over time. Cognitive function is frequently assessed using computer tests, which may include assessments of memory, attention, perceptual abilities, and, in certain longitudinal studies, IQ tests.

Despite such large-scale assessments, there have been few intervention studies in which a physical activity program is integrated into the school day and its effect on cognition is tracked. As Trudeau and Shephard (2010) point out, a prevalent assumption in review publications is that diverse types of physical activity provide equal inputs for the learning process, yet this appears improbable. As a result, key studies in the field of physical exercise and learning behaviour are examined individually below.

The influence of physical education, physical activity, and sport on classroom behaviours that may have an effect on academic attainment:

According to findings reported in lengthy reviews on the topic (Strong et al., 2005; Trudeau & Shephard, 2008), physical activity has a positive effect on classroom behaviour. According to various writers, young people who engage in additional physical activity throughout the school day have higher brain function, higher self-esteem, and better behaviour (Cocke, 2002; Tremblay et al., 2000; Shephard, 1997).

Three longitudinal intervention studies on schoolchildren conducted in France (Fourestier et al, 1996), Australia (Dwyer et al., 1983), and Canada (Shephard & Lavalee, 1994) found that when the amount of time dedicated to physical activity was increased, teachers reported better behaviour and higher motivation in pupils towards their academic work.

However, the teacher evaluations and behavioural judgments gathered from such studies may indicate certain instructor attitudes regarding the intervention. For example, in the Trois Rivieres research, which boosted physical education time at the expense of academic instruction, 80% of the teaching staff supported the activity program, with the remaining neutral (Shephard, 1997). While teachers claimed that the activity program significantly improved behaviour, objective.

Self-esteem and confidence are examples of mental health:

The US National Longitudinal Study of Adolescent Health found a link between physical exercise and various mental health components, including self-esteem, emotional well-being, spirituality, and future expectations (Trudeau & Shephard, 2010). Similarly, it has been argued that the benefits of physical activity on anxiety, sadness, mood, and wellbeing are undeniable (Tomporowski, 2003a).

Regular physical activity in teenagers is associated with a positive self-image, as well as physical and psychological well-being (Kirkcaldy et al., 2002). Research of German adolescents found that those who were more active had lower anxiety and depression levels, as well as less social behavioural inhibition. After controlling for socioeconomic position, the strong association

between physical exercise and self image remains (Tremblay et al., 2010).

There is a wealth of literature indicating that physical activity is highly associated to greater self-esteem, with hypothesized "knock-on" consequences in many aspects of school life, including improved classroom behaviour and academic success (Shephard, 1996). Although beneficial cognitive behavioural changes have been reported across aerobics, strength, dance, and flexibility activities, the influence of physical activity on self-esteem may be altered by the activity mode done (Strong et al., 2005).

A recent well-controlled study found that girls' self-esteem improved after engaging in running activities (DeBate et al. 2009). The psychosocial and behavioural changes of girls who participated in two developmentally targeted youth athletics programs were studied. Girls in grades three through eight took part in "Girls on the Run" and "Girls on Track."

It is worth noting that enhanced self-esteem is frequently regarded to give the drive for engagement in physical exercise and sport, whereas poor self-esteem is frequently a primary barrier inhibiting participation. Thus, development and inclusion-focused treatments that have been found to boost self-esteem could be the catalyst for boosting juvenile physical exercise participation. Conducting such interventions in schools requires less effort from students to become involved (compared to specialty, after-school groups), and could serve as a trigger for the cyclical trend of enhanced self-esteem leading to increasing participation. However, more longitudinal research is needed to fully prove this concept, as cross-sectional studies that observe high-exercise groups with lower levels of depression and high self-esteem cannot determine the direction of such associations.

Conclusions: Physical activity and cognition have a beneficial link, with primary and middle-school age children benefiting the most in terms of improved cognitive performance. A session of physical activity improves perceptual abilities, attention, and concentration, although perceptual skills appear to gain the most from earlier exercise.

There are no distinctions in the acute and chronic effects of physical activity on cognition, therefore it is unclear if a longitudinal program would provide extra benefits or whether children would simply gain from each bout of exercise. Prior

exercise may be advantageous for cognitive function in the morning and afternoon, as studies have indicated an improvement in teenagers' performance on visual search and attention tests in the morning and on cognitive function tests in the afternoon.

REFERENCES:

1. Arrowsmith J, Jamieson C. Using ethos indicators in the evaluation of a physical education department: the pupil perspective. Scottish Journal of Physical Education 1995;23:4–8.
2. Atkinson M, Halsey K, Wilkin A, Kinder K. Raising Attendance. Slough: NFER. 2000. Bailey R. Physical Education and Sport in Schools: A Review of Benefits and Outcomes. Journal of School Health 2006;76:397-401.
3. Barros RM, Silver EJ, Stein REK. School Recess and Group Classroom Behavior. Pediatrics 2009; 123:431-436.
4. Brown R, Evans WP. Extracurricular Activity and Ethnicity. Creating Greater School Connection among Diverse Student Populations. Urban Education 2002;37:41-58.
5. Budde H, Voelcker-Rehage C, Pietrayk-Kendziorra S, Ribeiro P, Tidow G. Acute coordinative exercise improves attentional performance in adolescents. Neurosci Lett 2008 441:219–223.
6. Cameron M, MacDougall C. Crime prevention through sport and physical activity, Trends and Issues in Crime and Criminal Justice no.165 (Canberra, Australian Institute of Criminology) 2000.
7. Carlson SA, Fulton JE, Lee SM, et al. Physical education and academic achievement in elementary school: data from the early childhood longitudinal study. American Journal of Public Health. 2008;98:721-727.
8. Caterino MC, Polak ED. Effects of two types of activity on the performance of 2nd, 3rd and 4th grade students on a test of concentration. Percept Mot Skills. 1999;89:245-248. Coakley JJ. Using sports to control deviance and violence among youths. 2002. in:
9. Gatz M, Messner MA, Ball-Rokeach SJ (Eds). Paradoxes of youth and sport. Albany, NY, State University of New York Press;13–30.

10. Cocke, A. Brain May Also Pump Up from Workout. 2002. Retrieved 12/09/2010. Society for Neuroscience Annual Meeting Website: http://www.neurosurgery.medsch.ucla.edu/whatsnew/society forneuroscience Coe DP, Pivarnik JM, Womack CJ, Reeves MJ, Malina RM. Effect of physical education and activity levels on academic achievement in children. Medicine and Science in Sports and Exercise 2006;38:1515-1519.
11. Collins M. Sport and social exclusion. London: Routledge 2002. Cooper S, Bandelow S, Nute M, Morris J, Nevill M. Exercise and Cognition. 2010.Unpublished observations. Danish SJ. Teaching life skills through sport. 2002. in: Gatz M, Messner MA, Ball-Rokeach SJ (Eds). Paradoxes of youth and sport (Albany, NY, State University of New York Press), 49–59.
12. Davis CL, Tomporowski PD, Boyle CA, et al. Effects of aerobic exercise on overweight children‟s cognitive functioning: A randomized controlled trial. Research Quarterly for Exercise and Sport 2007;78:510.
13. DeBate RD, Gabriel KP, Zwald M, Huberty J, Zhang Y. Changes in psychosocial factors and physical activity frequency among third- to eighthgrade girls who participated in a developmentally focused youth sport program: a preliminary study. J. Sch Health. 2009; 79: 474-484.
14. .Delamont S, Galton M. Inside the secondary classroom. London, Routledge & Kegan Paul 1986.

CHAPTER 5

THE IMPORTANCE OF YOGA AND HEALTH IN EDUCATION

Soumen Ghorai
Assist. Prof. of Physical Education
Department of Physical Education
Chanakya Teachers Training College, 52 Bigha, Sapaha,
Madhupur, Deoghar, Jharkhand, 815353
Email-soumenghorai286@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.05

ABSTRACT:
The purpose of this study is to explain the benefits of using yoga in education through the presentation of research findings. Yoga uses a variety of strategies to achieve psychosocial equilibrium. We are seeing an increase in stress and emotional illnesses in children; youngsters are becoming more sedentary and obsessed with the plethora of stimuli that bombard them on a continual basis via mobile phone, computer, and television. We can conclude that yoga has proven to be effective in treating a number of ailments and disorders by studying a series of research era. Yoga can help relieve stress, anxiety, and depression symptoms. It investigates the feasibility of incorporating yoga into the school curriculum for both healthy and disabled youngsters. So far, the findings indicate that yoga in classrooms could help with focus, self-regulation, and tension reduction.

KEYWORDS: *Yoga education, Psychosocial, Disorder, social media, School children.*

Introduction:

In today's environment, education is becoming increasingly difficult. Children come to schools where the most common method is listening and transcribing from the blackboard while

sitting at a desk for six hours, surrounded by mobile phones and other forms of modern technology that bring something new every day, accustomed to speed, frequent activity changes, and bombarded with stimuli. Excessive demands and unrealistic expectations placed on children lead to increased stress and anxiety. Difficulties in satisfying the expectations of instructors and parents are also a source of stress in youngsters. At the same time, those same parents and instructors are under duress. We teach youngsters about annelid reproduction, but no one teaches them how to reproduce.

What is Yoga?

The "Yoga Sutra of Patanjali" is a foundational text of yoga philosophy. Patanjali developed the eight yoga degrees: yama, niyama, asana, pranayama, pratyahara, dharana, dhyana, and samadhi (Paramhans Swami Maheshwarananda, 2012). Pranayama is a breathing exercise, pratyahara is a sensory withdrawal exercise, dharana are concentration exercises, dhyana is meditation, and samadhi is a state of oneness awareness. According to Patanjali's "Yoga Sutras," it is being practiced today all across the world.

A normal yoga class starts with breathing exercises. For five to ten minutes, we carefully relax each region of the body. During relaxation, we focus on breathing and practice appropriate breathing, which includes diaphragm breathing (also known as abdominal breathing) in addition to chest and clavicular breathing. It is then followed by energetic exercises to warm up the joints and muscles. Asanas are the next step. Asana is a Sanskrit word that signifies "position" (Paramhans Swami Maheshwarananda, 2012). Asanas are the least exhausting positions that are beneficial to the psycho-physical state. While being conscious of the action, movement is linked with breathing. After that, there is a conscious breathing practice (pranayama) and meditation.

Yoga breathing is conscious, which implies controlled; it is deeper than normal exercise breathing. If we inhale and exhale times, each time a little deeper than usual, it increases energy and relaxes; it first activates the sympathetic and then the parasympathetic nervous systems, and can lead to the so-called ow or a meditative state known to athletes, artists, and so on (Hanson, Mendius, 2014).

Yoga incorporates movement coordination, stretching muscles, and belly breathing, which promotes circulation and resulting in tension release, increased oxygen, and a beneficial effect on the central and autonomic nervous systems (Peck et al., 2005).

Yoga exercise for school children:

Yoga exercises, their style, and duration should be tailored to children's psycho-physical ability (Paramhans Swami Maheshwarananda, Maheshwarananda, Puchnarová, 1998). Exercises take less time and can be gradually increased. Children should not stay in specific positions for too long because their skeletal and hormonal systems are still growing. Yoga also has some qualifications, such as identifying the major parts of the body, understanding the breathing process, and distinguishing between states of tension and states of relaxation. It is also vital to introduce new exercises gradually; certain activities can only be undertaken once the preceding steps have been mastered. Thus, pranayama exercises in youngsters are only undertaken once they have mastered the process of regular breathing.

The impact of psycho-social health in education:

According to a review of known evidence, practicing yoga can enhance general physical condition, posture, immunity, and minimize or eliminate certain illnesses. Yoga can be an anti-stress strategy that can assist reduce anxiety and sadness, as well as affect psychological well-being, as evidenced by available studies. Asanas help to correct posture by adjusting the vertebrae, increasing flexibility, strengthening muscles and tendons (Khalsa, 2007).

Internal organs are regenerated, the epidermal, digestive, and cardiovascular systems are cleansed of toxins and wastes, the neurological and endocrine systems are regulated, and brain cells are nourished by performing asanas and pranayama (Khalsa, 2007). Exercise helps to keep blood pressure and heart rate stable in adults, children, and adolescents (Bhargava et al., 1988; Birdee et al., 1989).

Yoga has been proved to be an effective stress-reduction technique in both adults and children (Granath et al., 2006; Kalayil, 1988). Positive effects on anxiety and panic have also been

documented (Telles, Gaur, Balkrishna, 2009; Kozasa et al., 2008; Kuttner et al., 2006; So, Orme-Johnson, 2001). Unlike walking, yoga practice raises the amount of the GABA neurotransmitter, which has a function in anxiety disorders (Karri, Yakhkind, Jensen, 2010). Yoga activities have been shown to help elementary school children minimize situational anxiety (Kalayil, 1988), whilst high school students improved their anger control, were less exhausted, had less anxiety, and had a better mood when compared to the control group (Khalsa et al., 2012). e result of a meta-analysis of 124 papers on the effects of yoga, asana practice,

Cognitive and Yoga education:

Many research has been conducted to confirm the effects of yoga practice on cognitive abilities in both adults and children. Improvements in attention, perception, and memory have been confirmed, and some study suggests that the speed of problem-solving and executive functions may be increased. In the 1970s, one of the first research on the effects of yoga on attention in children was conducted (Hopkins, Hopkins, 1979). The study included 34 children aged six to eleven. The children were placed into two groups; one group exercised for 15 minutes while the other group did psychomotor exercises. The score of one concentration game was used to assess concentration. Concentration improved significantly in both groups. The study's shortcoming is that there was no control group that did nothing during that time period.

Yoga for children with disable:

Children with impairments can practice yoga and benefit from it, according to practice and study. A recent study investigated the potential and impact of yoga practice in 29 children with autism spectrum condition (Sotoodeh et al., 2017). For eight weeks, a yoga instructor worked with each child individually for 30 minutes three times a week. There have been significant shifts in all areas except spoken language communication on the Autism Treatment Evaluation Checklist (ATEC). Uma et al. (1989) looked at the effects of yoga on children with intellectual disability. For one school year, 90 children were separated into an experimental group that practiced

yoga and a control group that participated in typical school activities for one hour each day.

Parents and children have the opportunity to enhance their relationship by practicing yoga together. Harrison, Manocha, and Rubia (2004) demonstrated this by studying the effect of Sahaja meditation on families with 48 ADHD children. There have been significant improvements in children's self-esteem, school success, parent-child interaction, and reduction in ADHD symptoms. Anxiety has also subsided. Some children have stopped taking their medications or reduced their dosage. By meditating, these children had even stronger eects. Many children reported being able to go asleep and concentrate more effortlessly. They reported fewer issues with their colleagues. Parents reported significant changes and satisfaction with the program in 92% of cases. While waiting for the program, there was no progress in the control group.

Yoga in school children:

Yoga as a program was mostly offered when other students had physical education classes, but on many occasions, teachers included exercises during or after classes. Most yoga programs are led by qualified yoga instructors, and in certain cases, yoga instructors train the teachers. So far, three systematic review studies on yoga-based classroom interventions have been done using accessible data. The most recent systematic analysis was conducted in 2016 (Khalsa, Butzer, 2016). Following that, a number of further publications in this field were published, only some of which followed strict methodological criteria, including experimental and control groups with participants chosen at random (so-called randomized controlled trials).

A comprehensive review of 12 studies (Serwacki, Cook-Cottone, 2012) found that doing yoga during classes not only benefits healthy children, but also children with autism, intellectual disabilities, learning problems, and emotional difficulties. Students' attention, focus, and self-esteem improved, stress coping mechanisms improved, and tension, anxiety, and emotional arousal decreased (Serwacki, Cook-Cottone, 2012). Although yoga-based therapies demonstrate some favorable outcomes, the authors say that methodological constraints of some research (quasi-experimental plans, cohort studies, inadequately detailed intervention programs) prevent definitive conclusions from being

reached. The results of a systematic review of nine research that met methodological standards (Ferreira-Vorkapic et al., 2015) revealed small- to medium-sized eects for mood, tension, anxiety, self-esteem, and memory measures.

In addition to the research discussed here, a number of studies with higher methodological constraints, such as a plan that does not contain a control group, uses only small samples, has inadequately documented interventions, and so on, have been done. In terms of the nature, duration, and mode of implementation of yoga programs, sample size, student age, and assessment methodologies, research into the eects of yoga in school is highly variable, making comparison difficult.

Although most programs incorporate classic yoga activities, they differ in the order and selection of exercises, as well as the manner in which they are practiced and the instructor's approach. As a result, the outcomes of particular programs may differ. Many programs, without knowledge of how to perform and eects, have borrowed some yoga movements from the traditional corpus while excluding others that are essential to the eete. Many programs that were part of individual research had relatively short lifespans. Given the duration of the program, it is reasonable to predict that longer programs will result in bigger changes in practitioners. Expecting a short-term program to result in complicated and process changes is unreasonable.

Conclusions:

This report aimed to contribute to solving the question of the role of yoga in education by evaluating a number of studies. Yoga is gaining popularity as a therapy for a variety of ailments and diseases, as a means of preventive and intervention in children with impairments, and as part of the educational curriculum. Previous research supports the effects of yoga on health, cognition, emotions, and self-regulation. There has been a reduction in stress, improved mood, enhanced concentration, and calm in some children in schools that have included yoga as part of the curriculum, all of which are requirements for good learning. Yoga activities have been shown to have potential benefits when used during breaks, during sessions, and as a separate activity.

Based on the foregoing, we can conclude that yoga could play an important role in education by assisting with outcomes and encouraging psychological development.

BIBLIOGRAPHY:

1. Anand, B. K. (1991). Yoga and medical science. Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 35 (2), pp. 84-87.
2. Aurobindo, S. (1949). Essay on thr Geeta. Shri Aurobindo Ashram: Pondicherry, India.
3. Bearne, L. M., Scott, D. L. and Hurley, M. V. (2002). Exercise can reverse quadriceps sensorimotor dysfunction that is associated with rheumatoid arthritis without exacerbating disease activity. Rheumatology (Oxford, England), 41 (2), pp. 157-166.
4. Bera, T. K. and Rajapurkar, M. V. (1993). Body composition, cardiovascular endurance and anaerobic power of yogic practitioner. Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 37 (3), pp. 225-228.
5. Berger, B.G. and Owen, D.R. (1988). Stress reduction and mood enhancement in four exercise modes: swimming, body conditioning, hatha yoga and fencing. Research quarterly exercise sport, Volume 59 (2), pp. 148-159.
6. Bernardi, L., Porta, C., Spicuzza, L., Bellwon, J., Spadacini, G., Frey, A. W., Yeung, L.Y.C., Sanderson, J. E., Pedretti, R. and Tramarin, R. (2002). Slow breathing increases arterial baroreflex sensitivity in patients with chronic heart failure. Circulation, 105, pp. 143–145.
7. Bernardi, L., Spadacini, G., Bellwon, J., Hajric, R., Roskamm, H. and Frey, A. W. (1998). Effect of breathing rate on oxygen saturation and exercise performance in chronic heart failure. Lancet, 351, pp. 1308–1311.
8. Bhavanani, A. B., Madanmohan and Udupa, K. (2003). Acute effect of Mukh bhastrika (a yogic bellows type breathing) on reaction time. Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 47 (3), pp. 297-300.
9. Birkel, D. A. and Edgren, L. (2000). Hatha yoga: Improved vital capacity of college students. Alternative Therapies in Health and Medicine, 6, pp. 55–63.
10. Calderon, R. Jr., Schneider, R. H., Alexander, C. N., Myers, H. F., Nidich, S. I. and Haney, C. (1999). Stress, Stress

reduction and hypercholesterolemia in African Americans: a review. Ethnicity and Disease, 9 (3), pp. 451-462.

11. Clay, C. C., Lloyd, L. K., Walker, J. L., Sharp, K. R. and Pankey, R. B. (2005). The metabolic cost of hatha yoga. Journal of Strength and Conditioning Research, 19 (3), pp. 604-610.
12. Chaudhary, A. K., Bhatnagar, H. N., Bhatnagar, L. K. and Chaudhary, K. (1988). Comparative study of the effect of drugs and relaxation exercise (yoga shavasana) in hypertension. Journal-Association of Physicians of India, 36, pp. 721–723.
13. Chaya, M. S., Kurpad, A. V., Nagendra, H. R. and Nagarathna, R. (2006). The effect of long term combined yoga practice on the basal metabolic rate of healthy adults. BMC Complementary and Alternative Medicine, 31, pp. 6: 28

CHAPTER 6

IMPORTANCE OF YOGA IN OUR EVERYDAY LIVES: AN INSIGHT

Dr. Shalini Pandey
Assistant Professor, Department of English
Govt. T. C. L. P.G. College Janjgir (C.G.)
Email- shalinipandeyenglishap@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.06

ABSTRACT
Yoga is a hot topic these days. Yoga is both a science and an art. It is the science of life and the art of living. Yoga arose during the Vedic and Upanishad periods. It is India's oldest and most perfect scientific and spiritual discipline. Yoga is a way of mind training and cultivating subtle senses so that man can discover for himself the spiritual truths that underpin religion, beliefs, and moral values. Yogic practises are quite beneficial in supporting an individual in pursuing his or her overall growth and development. Yoga is practised in the modern world to preserve good health. In this work, the researchers attempt to investigate the effect of yoga in sustaining good physical and mental health.

KEY WORDS: *Yoga, Vedas, Upanishads, Spiritual, Good Health,*

Yoga is an ancient metaphysical philosophy that studies the essence of the soul and, through its discipline, awakens the man's superconscious mind, which connects the moral being with the immortal divine spirit. Yoga promotes equilibrium while also serving as a philosophy and religion. When we can bring together nature and culture, prosperity and poverty, activity and silence, connection and detachment, the true joy of life emerges. Yogic practises are extremely beneficial in supporting an individual in seeking all-round growth and development in all

aspects of his or her personality, including the union of his or her self with the Greater Soul.

Many people still think of yoga as a religion, but it's not; rather, it's a way of life that aims for a healthy mind in a healthy body. A human being is made up of three parts: mental, physical, and spiritual, and yoga aids in the development of all three. Other types of physical activity, such as aerobics, solely provide physical benefits. They have very little to do with the spiritual or planetary body's development. Yoga activities infuse the body with cosmic energy, allowing it to function more effectively. Every human wish to live in harmony with himself and the environment. However, in today's world, many aspects of life are subjected to higher physical and emotional demands. As a result, an increasing number of individuals are suffering from bodily and mental tensions such as stress, anxiety, and insomnia, as well as a lack of physical activity and sufficient exercise. This is why methods and strategies for achieving and improving health, as well as physical, mental, and spiritual harmony, are so important, and "Yoga in Daily Life" thoroughly offers a tool to help oneself in this regard. However, the ultimate purpose of yoga is to assist the individual in transcending the self and achieving enlightenment.

As the Bhagavad-Gita says, "A person is said to have achieved yoga, the union with the Self, when the perfectly disciplined mind gets freedom from all desires, and becomes absorbed in the Self alone."

Importance of Yoga:

Yoga is not a religion, but rather a way of life aimed at achieving "a healthy mind in a healthy body." Yoga aids in the balanced development of the physical, mental, and spiritual aspects of man. Other types of physical activity, such as aerobics, focus solely on physical well-being. They have little to do with the spiritual or astral body's development.

Yogic activities infuse the body with cosmic energy and make it easier to:

- Promotes self-healing
- Removes negative blocks from the mind and toxins from the body
- Enhances personal power
- Increases self-awareness

- Aids in attention, focus, and concentration, which is especially important for children
- Reduces stress and tension in the physical body by activating the parasympathetic nervous system

The aspirant is re-energized and revitalised. As a result, yoga gives every aspirant the ability to manage their body and mind. Yoga's Advantages. Yoga is a technique that aids in the control of one's mind, body, and soul. It combines physical and mental disciplines to achieve a serene body and mind; it aids in stress management and relaxation. It also aids in the development of flexibility, muscle strength, and overall body tone. It boosts your energy, vitality, and respiration. Yoga may appear to be nothing more than stretching, but it has a lot of benefits for your body in terms of how you feel, look, and move. Yoga is more of a mental or lifestyle state than a discipline. Yoga's benefits extend well beyond the physical body. You can benefit from these benefits as long as you practise on a regular basis.

Because you're focusing on interior tranquilly, yoga has a lot of benefits. Yoga's foundation stones are self-awareness, attention, relaxation, and harmony. One of the most wonderful aspects of yoga is that it is completely free, regardless of the advantages it provides. Yoga does not necessitate any specific training equipment or environment. The beauty of yoga is that you can experience the advantages of yoga even after your first session. It doesn't matter what level of flexibility you have or whether you can fully enter the poses you're attempting. Yoga has both therapeutic and preventative effects. Regular yoga practise strengthens the body both inside and out. The risk of contracting any ailment is minimised when the body is in full harmony. Morning and evening practises can be quite beneficial to both the mind and the body. Performing the exercises first thing in the morning will help you maintain a balanced body and mind throughout the day and increase your vitality. An even session promotes peaceful and relaxing sleep.

To sum up, the central theme of "Yoga in Daily Life" is religious liberty. Yoga is not a religion; it is the source of all religions' spirituality and wisdom. Yoga bridges religious divides and shows the route to togetherness. Through the disciplines of Mantra Yoga and Kriya Yoga, "Yoga in Daily Life" provides

spiritual aspirants with guidance on their life's path. Humans, being the most advanced beings on the planet, are capable of recognising their true essence and inner Self, God. Yoga's spiritual goal is God-Realization, or the union of one's soul with God. The first step is to recognise that we are all connected to God and have a common root. Your health and well-being, as well as a free and happy life, are in your control. Success will be assured if you practise often and with a firm determination. I wish all Yoga practitioners, both current and future, happiness, success, health, peace, and joy in life, as well as God's blessing. References Swami Maheshwarananda, Paramhans Swami Maheshwarananda, Paramhans Swami Maheshwar The System of Yoga in Everyday Life.

A person who does yoga can have a lot of control over his or her mind, body, and spirit. It combines mental and physical disciplines to produce a quiet mind and body, and it aids in stress management and relaxation. It also enhances breathing, energy, and vitality while improving muscle strength, flexibility, and body tone. Yoga may appear to be nothing more than stretching, but it has a lot of benefits for your body, including how you feel, look, and move. This fact alone says eloquently about Yoga's appeal in today's environment. This event has brought the entire world together on a single platform. Meditation, like yoga, plays a vital part in strengthening the inner self in our daily lives; it can be extremely beneficial in resolving a variety of medical and psychological issues. Yoga is a classic form of meditation created by ancient Indian saints. They used yoga as a way to keep their minds and bodies in check. The mind is clear, concentrated, and tension is under control when the body is physically well. This allows you to connect with loved ones while still maintaining socially healthy connections. When you're in good health, you're in touch with your inner Self, people, and your surroundings on a much deeper level, which contributes to your spiritual well-being. All of these factors support the need for an International Yoga Day celebration in order to better equip humanity to tackle modern-day problems and stress in a healthy manner. In many regions of the world, the day chosen for the celebrations, June 21st, has special significance. In the Northern Hemisphere, today is the longest day of the year. As a result, the day provides people all around the world with the ideal opportunity to practise Yoga in the comfort of

their own homes. And we are glad to be Indians because the International Yoga Day is celebrated with zeal on June 21st all over the world. And India made history by setting a Guinness World Record for the largest yoga class, with 35,985 persons participating in the ancient Indian practise at the same time. Yoga is a never-ending process. So, practise, practise, practise! The benefits of yoga become more substantial as you progress in your practise. Yoga practise assists in the development of the body and mind, providing several health advantages, but it is not a substitute for medical treatment. It's critical to study and practise yoga poses under the guidance of a certified Yoga instructor.

REFERENCES:

1. Acharya Mahaprajna, Preksha Dhyan, Basic Principles—Jain Vishva Bharati, Ladnun (Raj.), January-2
2. M.Hiriyana, Outlines of Indian Philosophy, Motilal Banarsidass Publishers Private Ltd.Delhi, first edition, 1993.
3. Paramhans Swami Maheswarananda. Yoga In Daily Life-The system.Vienna: Iberverlag/European University Press; 2000.
4. Swami Manuvaryaji Maharaj, Yoga and Health—, Dundubhi printers, first edition, 1994.
5. Yogiraj Vethathiri Maharshi, Karma Yoga——Vethathiri publications, Erode (T.N.), third edition, 1995.

CHAPTER 7

TEACHER WELL-BEING: UNDERSTANDING STRESS AND BURNOUT IN EDUCATION

Dr. Amreen Sekhon
Assistant Professor, Department of Psychology
Panjab University, Chandigarh

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.07

ABSTRACT
Understanding the pivotal role teachers play in shaping the future, this chapter underscores the urgent need for educational management to recognize, acknowledge, and proactively address the mental health challenges faced by educators. By discussing the implications of stress and burnout on teaching effectiveness and student learning, the chapter emphasizes the significance of developing strategies and support systems to mitigate these challenges. It provides insights and recommendations to help educational institutions and administrators create an environment conducive to teacher well-being, fostering a healthier and more sustainable educational landscape.

KEYWORDS: *teachers, burnout, stress*

Introduction

Teachers stand as the indispensable pillars of any education system, shaping the future of a nation. Their role goes far beyond imparting knowledge; they nurture, inspire and guide the leaders of tomorrow. Teachers are the architects of society, influencing the minds that will shape the world. However, often their immense contribution and the weight of their responsibilities go unnoticed. The well-being of teachers is crucial as they shoulder the demanding task of educating and molding young minds. Stress and burnout are pervasive issues, undermining their ability to effectively execute their duties. Ignoring these

challenges can have profound consequences not just on the individual but on the entire education system.

Teacher stress and burnout impact their mental health, enthusiasm and instructional quality, ultimately affecting student learning experiences. Neglecting the mental and emotional health of teachers could lead to decreased productivity, reduced job satisfaction and a higher turnover rate. It's vital to recognize and address the factors contributing to teacher stress, such as workload, student behavior, administrative pressures and insufficient support.

Teachers in India currently operate within an environment characterized by unpredictability, upheaval, and sometimes animosity. Within the classroom, educators confront rising levels of violence, diminished support from both the public and parents, and an increased demand for accountability, all amid escalating administrative tasks and mounting workloads. The intensification of competition has brought about both favorable and adverse outcomes. Teacher burnout stands as a significant challenge within the teaching profession and is often linked to concerns surrounding teacher retention rates (Ingersoll & Smith, 2003). Furthermore, extensive research demonstrates that teacher burnout exerts a detrimental impact on the performance of both educators and students (Huberman & Vandenberge, 1999; Maslach & Leiter, 1999). The strains imposed by these pressures result in reduced job satisfaction and emotional exhaustion among teachers, leading to less effective teaching practices and diminished learning experiences for students. Consequently, addressing teacher burnout becomes not just a professional concern but a crucial component in safeguarding the quality of education.

Teacher burnout has emerged as a significant concern in recent years within academic settings. When teachers experience burnout, they encounter a depletion of energy, enthusiasm, joy, motivation, concentration, confidence, and humor (McGee-Cooper, 1990). Schwab and Iwanicki (1982) indicated that educators exhibit signs of emotional exhaustion when they feel incapable of delivering their full potential to students. Consequently, teachers might exhibit depersonalization and develop negative, cynical, and callous attitudes toward students, parents, and colleagues. These conditions might result in teachers yelling more frequently and experiencing cognitive impairments, impacting the quality of teaching (Schwab and Iwanicki, 1982). Singh and Billingsley

(1996) highlighted that stress, burnout, excessive work demands, and job satisfaction contribute to teacher attrition, while administrative support, reasonable role expectations, and reduced workplace stress influence teachers' intentions to stay in the profession. The level of a teacher's commitment directly influences the attainment of educational objectives. A teacher's job commitment typically corresponds with fulfilling their intrinsic needs, influencing the length of their tenure and their ability to positively impact students' performance. Therefore, it's evident that research into burnout, satisfaction, and commitment among teachers remains a significant and enduring area of interest.

Burnout

Burnout is fundamentally a psychological condition that individuals encounter, characterized by emotions that are challenging to articulate and thus complex to measure or evaluate. The daily interactions with colleagues and clients frequently result in immense pressures and difficulties for human service professionals. Such persistent stress may bring about negative physiological, psychological, and behavioral alterations. These effects of demanding and stressful work environments are identified as burnout (Freudenberger, 1974; Maslach, 2013).

Pines and Maslach (1978) described “burnout as a syndrome of physical and emotional exhaustion involving the development of negative self concept, negative job attitudes and loss of concern and feelings for clients.”

Edelwich and Brodsky (1980) considered “burnout as a progressive loss of idealism, energy, purpose and concern as a result of conditions of work.”

Freudenberger and Richelson (1980) referred “burnout as a state of fatigue or frustration brought about by devotion to a cause, way of life or relationship that failed to produce the expected reward.”

Meir (1983) defined “burnout as a state in which individuals expect little reward and considerable punishment from work because of a lack of valued reinforcement, controllable outcomes or personal competence.”

Stages of Burnout

Studies focusing on burnout emphasize that it is not an abrupt occurrence but rather a gradual process, unfolding in multiple phases. Teachers are part of a profession that involves working with students, constituting a category engaged in various forms of 'people work.' Clouse (1981) delineated three stages of teacher burnout:

Stage 1: Loss of Enthusiasm - Most teachers commence their careers with a genuine intent to aid their students. They typically possess high energy levels, robust ideals, decent value systems, and a strong sense of motivation. They maintain an inner optimism that something positive can be achieved for the students. However, when their expectations are not met, their enthusiasm diminishes.

Stage 2: Frustration - Frustration emerges as one of the initial indicators of burnout. The decline in teacher morale during this phase exacerbates frustration and burnout levels.

Stage 3: Alienation - The professional's detachment from the work environment can be seen as a response or consequence of powerlessness, frustration, and a loss of purpose in their work. Alienation manifests in detachment, withdrawal, and isolation within the work setting. At this stage, a teacher may perceive students as impersonal objects, be unavailable when students seek assistance, or even refuse to help them. Hence, a teacher experiencing burnout would exhibit a lack of enthusiasm, reduced morale, increased frustration, a sense of detachment, and a withdrawal from work.

Consequences of Burnout:

The significance of burnout as a practical concern is demonstrated by its link to negative organizational outcomes and various forms of personal dysfunction. While many of the consequences discussed do not necessarily result from burnout, they exemplify the potential costs and damages that burnout can incur, emphasizing the need for more effective management to address the issue. Kahill (1988) categorized the consequences of burnout into five categories: physical, emotional, interpersonal, attitudinal, and behavioral.

1. Physical and emotional consequences:

Burnout components have been associated with various mental and physical health issues (Maslach & Pines, 1977). Mental health deterioration is marked by reduced self-esteem, depression, irritability, helplessness, or anxiety (Jackson & Maslach, 1982; Kahill, 1988). Physical health problems include fatigue, insomnia, headaches, and gastrointestinal disturbances (Kahill, 1988).

2. Interpersonal consequences:

The detrimental effects of work-related activities on individuals' relationships with family and friends and on their personal lives have garnered increased attention. Researchers have acknowledged the link between work and non-work domains (Jackson & Maslach, 1982). Particularly, the connections between burnout, a decline in social and family relationships, and the conflict between work and non-work life have received empirical support (Jackson & Maslach, 1982).

3. Attitudinal consequences:

Attitudinal consequences involve the development of negative attitudes toward clients, the job, the organization, or oneself (Kahill, 1988).

4. Behavioral consequences:

The behavioral consequences of burnout pertain to work or organization-related behavior, as well as consumption behaviors. Organizational outcomes include turnover (Jackson et al., 1986), absenteeism (Firth & Britton, 1989), and a decline in job performance's quality and quantity (Maslach & Jackson, 1985). Consumption behaviors encompass actions like smoking, drug use, and alcohol consumption. Jackson and her colleagues (1986) discovered that teachers' contemplation of leaving their jobs significantly correlated with reported levels of all three burnout components, but actual turnover levels were significantly linked with emotional exhaustion.

Stress among Teachers

Teachers often confront various challenges in their profession that contribute to stress. Understanding these stressors is

crucial to address their impact on teacher well-being. Some of the common factors are:

1. Workload and Job Demands: Teachers often face heavy workloads, including lesson planning, grading, administrative tasks, and extracurricular activities. The pressure to meet curriculum standards, administrative requirements, and student needs can lead to high job demands, causing stress.
2. Student Behavior and Discipline Issues: Challenging student behavior, disciplinary problems, and disruptions in the classroom can be significant stressors for teachers. Dealing with student misbehavior, conflicts, or learning difficulties adds emotional strain.
3. Lack of Resources and Support: Inadequate resources, insufficient classroom materials, and a lack of teaching assistance contribute to stress. Teachers who lack support from school administration, colleagues, or access to professional development programs may experience increased stress levels.
4. High-Stakes Testing and Accountability: The pressure of standardized testing and the need to meet high-stakes assessment targets can create stress. Teachers often feel pressure to improve student performance, leading to anxiety and tension.
5. Work Environment and Organizational Culture: An unsupportive work environment, negative school culture, or challenging relationships with colleagues or administration can be sources of stress. Poor leadership, lack of autonomy, and conflicting school policies also add to teacher stress.
6. Role Conflict and Work-Life Balance: Teachers often face difficulties in maintaining a work-life balance. The conflict between professional responsibilities and personal life can lead to stress. Long working hours, including after-hours work on lesson plans and grading, can encroach on personal time.
7. Emotional Labor and Compassion Fatigue: The emotional demands of teaching, including the need for empathy and emotional support for students, can lead to emotional

exhaustion. Compassion fatigue, where teachers feel drained from providing emotional support, adds to their stress.

8. Job Insecurity and Job Satisfaction: Concerns about job security, particularly for new teachers or those on temporary contracts, can be stressful. Lower job satisfaction due to lack of recognition or motivation can also contribute to stress.
9. Professional Isolation and Coping Strategies: Feelings of professional isolation, where teachers lack opportunities for collaboration and peer support, can lead to increased stress. Ineffective coping strategies or inadequate stress management techniques also contribute to elevated stress levels.

Consequences of Stress

Wong and colleagues (2017) investigated the effects of stress and burnout among teachers on their behavior and student engagement. They noted a strong correlation between stress and lower teaching quality and student engagement, which also increased the likelihood of teachers leaving the profession. Conversely, when teachers received substantial instructional and emotional support to enhance teaching quality, student engagement, and long-term student progress, they experienced a reduction in work-related stress (Wong et al., 2017).

Other impacts found in research related to stress and burnout in teachers consist of: (a) reduced feelings of achievement (Embich, 2001), (b) interpersonal or professional relationship issues such as social isolation due to excessive work pressure, a lack of collaboration with colleagues, or a limited social life with peers in or outside the workplace (Maslach & Jackson, 1984), (c) negligence of other duties like insufficient time for paperwork completion, declining management skills, and reduced structure and consistency; (Zabel & Zabel, 1982), and (d) emotional exhaustion (like feeling excessively tired after work, no longer engaging in hobbies, and a lack of socializing with friends post-work). In the absence of adequate coping resources to manage their stress, teachers might encounter diminished enthusiasm and motivation, leading to a loss of purpose in their work (Matheny, Gfroerer, & Harris, 2000).

Conclusion:

Investing in the well-being of teachers is an investment in the future. Supporting teachers' mental health not only benefits the individual but enhances the quality of education. Strategies like offering mental health resources, professional development on stress management, establishing support networks, and promoting a positive work environment can significantly alleviate the burden on teachers. It's imperative for educational institutions and policymakers to acknowledge the pivotal role teachers play in the development of a nation and prioritize their well-being. By fostering a healthy and supportive environment for teachers, we uphold the foundation of a robust and sustainable education system, ensuring a brighter future for generations to come. It is vital to pay significant attention to the issue of burnout and stress among teachers due to its pervasive impact on the educational system and the well-being of educators.

Teacher burnout is a serious concern that not only affects the teachers themselves but also influences the quality of education they deliver to their students. When teachers experience high levels of stress, their emotional and physical health can be compromised, ultimately impacting their teaching effectiveness and student engagement. The consequences of burnout, including reduced motivation, feelings of accomplishment, and strained personal relationships, can lead to increased teacher turnover, potentially disrupting the stability of educational institutions. Prioritizing measures to manage and alleviate burnout among teachers is crucial to maintaining a positive learning environment and ensuring the continuous development and success of both educators and students.

REFERENCES

1. Clouse, R. W. (1983). Clouse-Whitaker career attitude inventory. *In stress and burnout in the schools*, 1-10, National School Resource Network.
2. Edelwich, J., & Brodsky, A. (1980). *Burn-out: Stages of disillusionment in the helping professions* (Vol. 1). New York: Human Sciences Press.
3. Embich, J. L. (2001). The relationship of secondary special education teachers' roles and factors that lead to professional

burnout. *Teacher education and special education*, *24*(1), 58-69.

4. Firth, H., & Britton, P. (1989). 'Burnout', absence and turnover amongst British nursing staff. *Journal of occupational Psychology*, *62*(1), 55-59.
5. Freudenberger, H. J. (1974). Staff burn-out. *Journal of social issues*, *30*(1), 159-165.
6. Freudenberger, H. J., & Torkelsen, S. E. (1984). Beyond the interpersonal: a system model of therapeutic care for homeless children and youth. *Psychotherapy: Theory, Research, Practice, Training*, *21*(1), 132-14.
7. Ingersoll, R. M., & Smith, T. M. (2003). The wrong solution to the teacher shortage. *Educational Leadership*, *60*(8), 30.
8. Jackson, S. E., & Maslach, C. (1982). After-effects of job-related stress: Families as victims. *Journal of organizational behavior*, *3*(1), 63-77.
9. Jackson, S. E., Schwab, R. L., & Schuler, R. S. (1986). Toward an understanding of the burnout phenomenon. *Journal of applied psychology*, *71*(4), 630.
10. Kahill, S. (1988). Symptoms of professional burnout: A review of the empirical evidence. *Canadian Psychology/ Psychologie canadienne*, *29*(3), 284.
11. Maslach, C. (2013). Burnout research in the social services: A critique. In *Burnout among social workers*, 95-105.
12. Maslach, C., & Jackson, S. E. (1984). Burnout in organizational settings. *Applied social psychology annual*.
13. Maslach, C., & Jackson, S. E. (1985). The role of sex and family variables in burnout. *Sex roles*, *12*(7-8), 837-851.
14. Maslach, C., & Leiter, M. P. (1999). Six areas of worklife: a model of the organizational context of burnout. *Journal of health and Human Services administration*, 472-489.
15. Maslach, C., & Pines, A. (1977). The burn-out syndrome in the day care setting. *Child care quarterly*, *6*, 100-113.
16. Matheny, K. B., Gfroerer, C. A., & Harris, K. (2000). Work Stress, Burnout, and Coping at the Turn of the Century: An Individual Psychology Perspective. *Journal of individual psychology*, *56*(1).
17. McGee-Cooper, A. (1990). Action Item. *You don't have to go home from work exhausted!*. Bowen and Rogers.

18. Meier, S. T. (1983). Toward a theory of burnout. *Human relations*, *36*(10), 899-910.
19. Pines, A., & Maslach, C. (1978). Characteristics of staff burnout in mental health settings. *Psychiatric services*, *29*(4), 233-237.
20. Schwab, R. L., & Iwanicki, E. F. (1982). Perceived role conflict, role ambiguity, and teacher burnout. *Educational administration quarterly*, *18*(1), 60-74.
21. Singh, K., & Billingsley, B. S. (1996). Intent to stay in teaching: Teachers of students with emotional disorders versus other special educators. *Remedial and Special Education*, *17*(1), 37-47.
22. Vandenberghe, R., & Huberman, A. M. (Eds.). (1999). *Understanding and preventing teacher burnout: A sourcebook of international research and practice*. Cambridge University Press.
23. Wong, V., Ruble, L. A., McGrew, J. H., & Yu, Y. (2018). An empirical study of multidimensional fidelity of COMPASS consultation. *School Psychology Quarterly*, *33*(2), 251.
24. Zabel, R. H., & Zabel, M. K. (1982). Factors in burnout among teachers of exceptional children.

CHAPTER 8

EFFECT OF ENVIRONMENTAL VARIABLES ON SPECIES COMPOSITION OF THREE DOMINANT FORESTS OF NAINITAL REGION, KUMAUN HIMALAYA

Dr. Sanjay Kumar
Assistant Professor, Department of Botany,
Govt. Post Graduate College Bageshwar (India)

Dr. Anupama Pandey
Assistant Professor, Department of Zoology,
Govt. Post Graduate College Bageshwar (India)
Email: anupamapnd02@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.08

ABSTRACT
Shrub and herb biomass with physical and chemical properties of soil in Chir Pine (*Pinus roxburghii* Sarg.), Oak-Chir Pine mixed (*Quercus leucotrichophora* A. camus – *P. roxburghii*) and Oak-Cypress mixed (*Q. leucotrichophora – Cupressus torulosa* Don.) forest located between 1300-2600 meters elevation was estimated for six months (October-February) in year 2013-14. At each site three different slope positions (ridge slope, mid hill slope and hill base) were selected for the study. The shrub density across the study sites ranged between 1040 to 2347 ind. ha^{-1} and herb density ranged between 4613 to 11120 ind. ha^{-1}. The chemical and physical property of soil was estimated upto 30 cm soil depth. The total biomass ranged between 0.63 and 2.11 t ha^{-1} in herb species while it ranged between 0.045 and 0.63 t ha^{-1} in shrub species. The environmental variables of all sites showed high inter-set correlation in Canonical Correspondence.

KEYWORDS: *Kumaun Himalaya, soil depth, biomass, physical property, chemical property*

Introduction

Oaks are extensively distributed at elevations between 1800-3600 m in the central Himalaya (Bhatt et al., 2021). Biodiversity of the Himalayan forest and hot spots were studied by Bhattacharya et al. (2020), Chaudhary et al. (2021) and Sharma et al. (2022). Himalayan forest plays an important role in tempering the inclemency of the climate, in cooling and purifying the atmosphere, in protecting the soil and in buffering up huge reserves of soil nutrients. Nutrient supply varies widely among ecosystems (Sardans et al., 2012) resulting in differences in plant community structure and production (van der Heijden et al., 2008 and Reich et al., 2014). The aboveground and belowground production influences the soil organic matter, soil development and its conservation (Kumar et al., 2017). Several authors (Sharma et al., 2020; Singh et al., 2021, Khare et al., 2022; Sharma et al., 2023) provide important characteristics of Himalayan soil. Soil organic carbon supports productivity of grassland (Mishra et al., 2017) while temperature and precipitation control grassland primary productivity (Zhang et al., 2019). The evergreen oak canopy induced environmental changes and competitive ability of the herbaceous species. Estimation of biomass is essential for determining the status and flux of biological nutrients in ecosystems and for understanding ecosystem dynamics.

Materials and Methods

Study area

The study area is located between 29^{o} 20’ and 29^{o} 30’ N latitude and 79^{o} 42’ E longitude between 1300 and 2600 a.s.l. in Uttarakhand, central Himalaya (Fig. 1). Meteorological data was taken from the State observatory, Nainital. Mean monthly maximum temperature ranged between 15 ^{o}C (January) to 27 ^{o}C (May) and mean minimum temperature ranged between 1 ^{o}C (January) to 16 ^{o}C (July). Average annual rainfall was 91.75 mm.

Vegetation sampling

Field survey was conducted from May 2013-April 2014. Fifteen quadrats of 50x50 cm were (5 at each hill base, mid hill slope, ridge slope) were established in each forest for determination of species richness and other vegetation parameters. Two vegetation layers, i.e. shrubs and herbs, were analysed for species

richness, density and diversity. Equitability (E) or species evenness was determined following Whittaker (1972), Concentration of dominance (Cd) was calculated by following (Simpson 1949) and species diversity (H') was calculated using the Shannon-Wiener information index (Shannon and Weaver 1963). Index of similarity between forests was calculated following Sorenson (1948).

Soil sampling and analysis

Soil samples were collected in polythene bags in triplicate from three depths i.e. 0-10, 10-20 and 20-30 cm from all sites. Fresh samples were weighed, dried in an Oven at 60 ^{o}C till constant weight to determine the moisture content. Soil mechanical analysis was done to find out the percentage of different size particles, such as sand, silt and clay through sieve method as proposed by Mishra (1968). Soil pH was determined in 1:5 soil solution ratio using pH meter (pH scan-2 electrode). Nitrogen estimation was done by the micro-Kjeldahl procedure (Misra 1968). Organic carbon was determined by following procedure described by (Walkely and Black 1934), phosphorus by phosphomolybdic blue colorimetric method and potassium by flame photometery (Jackson 1973).

Biomass

The belowground plant material was collected from each monolith (25 x 25 x 30 cm) from each harvested quadrat on sampling date after the aboveground components had been sampled. The monoliths were brought to the laboratory and washed with a fine jet of water using, successively, 2 mm and 0.5 mm mesh screens. The aboveground and belowground components were oven dried at 60°C to constant weight and their dry weight was recorded. The mean values were multiplied by their density and summed to get the total stands net primary production. The biomass values thus obtained were expressed in terms of tons per hectare (t ha^{-1}).

Result and Discussion

Physical-chemical properties of soil

The soil has high proportion of silt and clay particles and low sand in Oak-Cypress mixed forest while Chir Pine forest has higher proportion of sand particles. In all the forest sites the soil moisture

content was reported maximum in Oak-Cypress mixed forest (18.78%) compared to Oak-Chir Pine mixed (18.02%) and Chir Pine forest (9.10%). All forest sites consist of texture composition of sandy clay loam. The minimum and maximum values of bulk density ranged from 0.91 gm/cm^3 in Chir Pine forest to 0.85 gm/cm^3 in Oak-Cypress and Oak-Chir Pine mixed forest, respectively (Fig. 2).

Average percent of soil organic carbon and nitrogen was found maximum in Oak-Cypress mixed forest (0.65% and 0.21%). Maximum nitrogen content in Oak-Cypress mixed forest probably due to decomposed humus content added to the soil that maintain mineral content richness and fertility of the soil. Maximum value of available phosphorus was observed in Chir Pine forest (22.32 kg ha^{-1}) followed by Oak-Chir Pine mixed (19.99 kg ha^{-1}) and Oak-Cypress (15.97 kg ha^{-1}). In the Oak-Cypress mixed forest potassium concentration was less (179.09 kg ha^{-1}) as compared to pine (164.31 kg ha^{-1}) and Oak-Chir Pine mixed forest (201.60 kg ha^{-1}). The pH value was moderately acidic (5.6) in Chir Pine forest compared to slightly acidic in Oak-Chir Pine (7.22) and neutral in Oak-Cypress mixed forest (7.32). In the Chir Pine forest, soil pH was slightly acidic as the soil had high humus content. High amount of humus in forest soil is responsible for low pH (Dimri, et al. 1987). In both Oak-Chir Pine mixed and Oak-Cypress mixed forest, removal of litter and lopping of branches for the fuel purpose had turned the soil slightly acidic (Fig. 3). A significant relationship between sand with Phosphorus ($Df=1$; $F=11.98$; $p<0.002$) and Nitrogen ($Df=1$; $F=11.34$; $p<0.002$), silt with Phosphorus ($Df=1$; $F=13.19$; $p<0.001$) and Nitrogen ($Df=1$; $F=6.37$; $p<0.02$) and clay with nitrogen ($Df=1$; $F=6.61$; $p<0.02$) across all the forest was observed.

Community structure

Species composition of these forests indicates the dominance of few species in these forests. Out of a total of 29 species, 2 shrubs i.e. *B. albiflora* and *I. heterantha* in Oak-Cypress mixed oak forest have IVI<10%, while a large number of herb species have IVI<10%. Among shrubs *B. asiatica* and *P. crenulata* was present in all the forests. *A. racemosus, B. albiflora, I. heterantha. L. lanceolata* and *M. africana* were found only in Oak-Cypress mixed forest. *A. lancifolius, C. rotundus* and *E. karvinskianus* were the

dominant herb present in all the forests while *A. nilagirica* and *M. acuminate* were present only in Chir Pine forest, *A. bidentata*, *A. latifoliya*, *G. aparine*, *O. corniculata* and *R. cordifolia* in Oak-Chir Pine mixed oak forest and *R. indica*, *S. media* and *T. gracilis* in Oak-Cypress mixed forest (Fig. 4). Herb density was maximum in Oak-Chir Pine mixed forest (11120 ind. ha^{-1}) while minimum density was found in Oak-Cypress mixed forest (4613 ind. ha^{-1}). Maximum shrub density was observed in Oak-Cypress mixed forest (2347 ind. ha^{-1}) and minimum in Chir Pine forest (1040 ind. ha^{-1}).

Vegetational parameters in different forest sites are described in Table 1. High similarity in shrub species richness and herb species was present between Oak-Chir Pine mixed and Chir Pine forest (81% and 74% respectively) followed by Oak-Cypress mixed forest and Chir Pine forest (<50%) (Table 2 and Table 3).

Canonical Correspondence Analysis (CCA) is an ordination technique that correlates the species directly with environmental variables (Ter Braak 1986). This works on two sets of variables, one set of variables (i.e., dependent variables, density etc.) are computed in linear combinations of explanatory variables (usually environmental parameters) in a second set. Here chemical properties of soil are taken in consideration because it has strong influence on the forest structure and composition. CCA extracts the major gradient in the data that can be accounted for by the measured explanatory variables. The analysis was done using following 4 variables: carbon, potassium, phosphorus and nitrogen content in the site. All the physical property showed high inter-set correlation in Canonical Correspondence. Monte-Carlo test for Eigenvalue and species - Environment correlation showed significant correlation for axis 1, 2, and 3 respectively ($p<0.02$ and $p<0.05$) (Table 4 a, b).

Biomass

Herb biomass was the maximum in pine mixed forest (2.11 t ha^{-1}) and minimum in Oak-Cypress mixed forest (0.63 t ha^{-1}) however the shrub biomass was the maximum in Oak-Cypress mixed forest (0.24 t ha^{-1}) and minimum in Chir Pine forest (0.045 t ha^{-1}). The below ground net primacy production ranged 0.15-0.41 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 0.12-0.23 t ha^{-1} in Oak-Chir Pine mixed forest and 0.037-0.14 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest, while

aboveground net primary productivity ranged 0.22-0.54 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 0.13-0.27 t ha^{-1} oak Chir Pine forest and 0.096-0.15 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest. It was found that the total. The below biomass ranged 0.15-0.41 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 0.12-0.23 t ha^{-1} in Oak-Chir Pine mixed forest and 0.037-0.14 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest, while aboveground biomass ranged 0.22-0.54 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 0.13-0.27 t ha^{-1} oak Chir Pine forest and 0.096-0.15 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest (Fig. 5a and 5b). One way ANOVA showed a significant relationship between shrub biomass across all the forest sites (Df=2, F=12.513, $p<0.019$) while herb biomass showed no relationship (Df=2, F=4.294, $p<0.101$).

The organic carbon concentration was the maximum in Chir Pine forest (0.99%) and minimum in Oak-Cypress mixed forest (0.35%). According to Tamirat (1992) soils that form under forests tend to accumulate high levels of soil organic carbon near the surface and have lower carbon levels in the subsoil. Decrease in soil organic carbon with depth has been reported by Ramachandran et al. (2007) in Kolli hills in Eastern Ghats, Kumar (2003), Minj (2008), Goswami (2009) in Solan, Dinakaran and Krishnayya (2008) for tropical soils and Alamgir and Amin (2008) for Chittagong (south) Forest Division, Bangladesh, Sharma and Baduni (2000), Sheikh et al. (2009), Sharma et al. (2010), Gairola et al. (2012a), Raina and Gupta (2013), Tiwari et al. (2013) for Garhwal Himalaya. Percent nitrogen also increased with increase in total organic matter. Singh and Singh (1991) have reported high organic matter in oak forests and stated that the nitrogen also increased with increase in organic matter. Percent of nitrogen was found highest in Oak-Chir Pine mixed forest (0.31%) and lowest in Chir Pine forest (0.12%). Nitrogen is one of the most essential elements that are taken up by plants in greatest quantity after carbon, oxygen and hydrogen, but it is the most frequent deficient nutrient in crop production (L. Havlin et. al. 1999). Whitney and Zabowski (2004) studied on change in the concentration of total nitrogen when depth of soil increases. The concentration of nitrogen decreases as the depth of soil increases viz. in Chir Pine forest the amount of total nitrogen is ranged between 0.17-0.29% in surface layer (0-10cm), 0.14-0.26% in middle layer (10-20cm) and 0.12-0.22% in deeper layer (20-30cm). Phosphorus cycling in forest ecosystem can be described in terms of biological and

geochemical cycles (Schlesinger, 1991 and Walbridge *et. al.*, 1991). Variability of the level of available P is related to land use, altitude, slope position and other characteristics, such as clay and calcium carbonate content (Mohammed *et al.,* 2005). The Oak-Cypress mixed forest shows peak amount of available phosphorus amounting 36.20 kg ha^{-1} and Oak-Cypress mixed forest shows low amount of available phosphorus amounting 9.60 kg ha^{-1}. Unlike nitrogen and phosphorus, the organic matter in soils contains very little potassium but can hold potassium by cation exchange. Therefore, plant available potassium comes mainly from readily available forms or fertilizers. Smaller amounts are released from the slowly available forms. The maximum amount of available potassium was recorded in Oak-Cypress mixed forest (240.63 kg ha^{-1}) however minimum amount of available potassium was recorded in Chir Pine forest amounting 125.32 kg ha^{-1}.

The overall species richness was lower in pine and Oak-Chir Pine mixed forest (14 species) as compared to Oak-Cypress mixed forest (18 species). It may be noted that the biomass was never in a stabilized state for any long duration. Obviously, the adaptations are primarily oriented to complete various life cycle activities within the limited favourable periods, rather than to develop stable and complex biomass structure. May and Webber (1982) have reported that the pattern of above ground standing crop, below ground NPP and above: below ratios are controlled by water availability, length of growth season, exposure and soil stability. They have also reported that the biomass and production are possibly correlated with phenological development of plant species.

The herb biomass was 2.11 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 1.15 t ha^{-1} in Oak-Chir Pine mixed forest and 0.63 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest. The shrub biomass was 0.045 t ha^{-1} in Chir Pine forest, 0.091 t ha^{-1} in Oak-Chir Pine mixed forest and 0.24 t ha^{-1} in Oak-Cypress mixed forest. The values are found within the range of 1.22 t ha^{-1} yr^{-1} reported for banj oak forest, 1.23 t ha^{-1} yr^{-1} for tilonj oak forest (Rawat 1983), 3.9-5.9 t ha^{-1} yr^{-1} reported (Saxena et al. 1978) for oak forest and 4.7 t ha^{-1} yr^{-1} reported by (Pandey and Singh 1981a) for oak conifer forest of this region.

REFERENCES

1. Adhikari, B. (1992). Ecology of Oak Forests in the Central

Himalaya: Some Preliminary Observations. Journal of the Bombay Natural History Society, 89(1), 84-91.

2. Adhikari, B.S. (1992). Biomass, Productivity and Nutrient cycling of Kharsu Oak and Silver Fir Forest in Central Himalaya. Ph.D. Thesis, Kumaun University, Nainital. India.
3. Alamgir, M. and Amin, M.A. (2008). Storage of organic carbon in forest undergrowth, litter and soil within geoposition of Chittagong (south) forest division, Bangladesh. International Journal of Usufruct Management, 9(1): 75-91.
4. Arya, S. C. (2002). Forest Ecosystems in the Himalayas. In Himalayan Environment: Issues and Concepts (pp. 13-29). Springer.
5. Bhatt, M. P., Chitale, V. S., & Singh, G. P. (2021). Quantifying ecosystem services and biodiversity in oak forests of the Indian Himalayan region. Journal of Environmental Management, 295, 113080.
6. Bhattacharya, T., Bisht, N., & Kala, C. P. (2020). Biodiversity hotspots of the Indian Himalayan region: An appraisal. Biodiversity and Conservation, 29(9), 2763-2788.
7. Binkley, D., & Vitousek, P. M. (1989). Nutrient cycling and nutrient use efficiency. In Ecosystems of the world (pp. 69-86). Elsevier.
8. Champion, H.G. and Seth, S. K. (1968). A revised survey of the forest types of India. Government of India Publication, New Delhi.
9. Chapin III, F. S., Matson, P. A., & Vitousek, P. (2011). Principles of terrestrial ecosystem ecology. Springer Science & Business Media.
10. Chaudhary, R. P., Bhattarai, S., & Uprety, Y. (2021). Floristic diversity and composition of the Himalayan forests in Nepal. Journal of Forestry Research, 32(2), 495-508.
11. Dimri, B.M., Singh, S.B., Banerjee, S.K. and Singh, B. (1987). Relation of age and dominance of tree species with soil chemical attributes in Kalimpong and Kurseong District of West Bengal. Indian Forester, 113: 307-311.
12. Dinakaran, J. and Krishnayya, N.S.R. (2008).Variation in type of vegetal cover and heterogeneity of soil organic carbon in affecting sink capacity of tropical soils. Current Science, 94(9): 423-427.

13. Gairola, S., Ranbeer, S., Rawal and Dhar, U. (2009). Patterns of litterfall and return of nutrients across anthropogenic disturbance gradients in three subalpine forests of west Himalaya, India. J. For. Res14: 73–80.
14. Goswami, S. (2009). Appraisal of Agroforestry land use system for their carbon sequestration potential. M.Sc. Thesis. Dr. Y. S. Parmar University of Horticulture and Forestry, Nauni, Solan (H P) India.134p.
15. Havlin, J.L, Beaton, J.D., Tisdale, S.L. and Nelson, W.R. (1999). Soil fertility and fertilizers: An Introduction to Nutrient management. 6th Ed. Pearson Edition (Singapore) Pte. Ltd., Indian Branch, India.
16. Jackson, M.L. (1973). Soil chemical analysis, Oxford IBH publishing house, Bombay, pp. 38.
17. Jina, B. S., Sharma, E., & Sharma, C. M. (2011). Characteristics of soils of different forests in Western Himalaya, India. The Indian Forester, 137(3), 329-338.
18. Joshi, A., Rikhari, H. C., & Dhyani, P. P. (2013). Characteristics of soil in different forest types
19. Kumar, S. (2003). Carbon dynamics studies in agroforestry systems of Western Himalaya. M.Sc. Thesis. Department of Silviculture and Agroforestry. Dr. Y. S. Parmar University of Horticulture and Forestry, Nauni, Solan (H.P.) India. 97p.
20. May, D.E. and Webber, P.J. (1982). Spatial and temporal variation of the vegetation and its productivity, Niwot Ridge, Colorado. Ecol. Stud. Colorado Alp. Colorado, 37: 35-62.
21. Minj, A.V. (2008). Carbon sequestration potential of agroforestry systems-an evaluation in low & mid hills of western Himalayas. Ph. D. Thesis. Dr. Y. S. Parmar University of Horticulture and Forestry, Nauni, Solan (H.P.) India.124p.
22. Mishra, R. (1968). Ecology Work Book. Oxford and IBM publishing Co. Calcutta.
23. Mohammed, Assen, P.A.L., Leroux, C.H., Barker, Heluf Gebrekidan, (2005). Soil of Jelo Micro-Catchment in the Central Highlands of Eastern Ethiopia. I. Morphological and Physiochemical properties. Ethiopian J. Natural Resource, Vol. 7(1): 55-81.
24. Pandey, U. and Singh, J. S. (1981a). A quantitative study of the forest floor, litter fall and nutrient return in an oak-

conifer forest in Himalaya. I-I Composition and dynamics of forest floor. Oecol. Gener. 2: 49-61.

25. Raina, A.K. and Gupta, M.K. (2013). Fertility and Sequestered Organic Carbon Status in the Soils under different Forest Stands in Garhwal Himalayas, India. Concept. Pure Appl. Sci 1(1): 10-16.
26. Ramachandran, A., Jayakumar, S., Haroon, R.M., Bhaskaran, A. and Arockiasamy, D.I. (2007). Carbon sequestration: estimation of carbon stock in natural forests using geospatial technology in the Eastern Ghats of Tamil Nadu, India. Current Science, 92(3): 323-331.
27. Rawal, R.S. (1991). Woody vegetation analysis along an elevational gradient (1600-3400 m) of Upper Sarju Catchment (Kumaun Himalaya). Ph. D. Thesis, Kumaun University, Nainital; 349pp.
28. Rawat, Y.S. (1983). Plant biomass, net primary production and nutrient cycling in Oak forests. Ph.D. Thesis. Kumaun University, Nainital, India. 355p.
29. Reuss, J.O. and Innis, G.S. (1978). A grassland nitrogen-flow simulation model. In Grassland simulation model (pp. 185-203). Springer New York.
30. Saxena, A.K. (1979). Ecology of vegetation complex of north western catchment of river Gola. Ph .D. Thesis, Kumaun University, Nainital, India.
31. Saxena, A.K., Pandey, U. and Singh, J.S. (1978). On the ecology of Oak forest in Nainital Hills. Kumaun Himalaya. pp.167-180. In : J.S. Singh and B. Gopal (eds).
32. Schlesinger, W.H., and Bernhardt, E. S. (2013). Biogeochemistry: an analysis of global change. Academic press.
33. Shannon, C.E. and Wienner, W. (1963). The mathematical theory of communication. University lllionis Press, Urbana.
34. Sharma, C.M. and Baduni, N.P. (2000). Effect of aspects on the structure of some natural stands of Abies pindrow in Himalayan moist temperate forest. Environmentalist, 20(4): 309–317.
35. Sharma, C.M., Suyal S., Ghildiya, S.K. and Gairola, S. (2010). Role of physiographic factors in distribution of Abies pindrow (Silver Fir) along an altitudinal gradient in Himalayan temperate forests. Environmentalist, 30: 76–84.

36. Sheikh, M.A., Kumar, M. and Bussmann, R.W. (2009). Altitudinal variation in soil organic carbon stock in coniferous subtropical and broadleaf temperate forests in Garhwal Himalaya. Carbon Balance and Management, 4: 15-18.
37. Silori, C.S. (2001). Status and distribution of anthropogenic pressure in the buffer zone of Nanda Devi Biosphere Reserve in Western Himalaya, India. Biodiversity and Conservation, 10: 1113-1130.
38. Simpson, E.H. (1949). Measurement of Diversity. Nature, 163: 688.
39. Singh, G., Gupta, G.N. and Kuppusamy, V. (2000). Seasonal variations in organic carbon and nutrient availability in arid zone agroforestry system. Tropical Ecology, 41(1): 17-23.
40. Singh, J.S., Rawat, Y.S. and Chaturvedi, O.P. (1984). Replacement of oak forest with pine in the Himalaya affects the nitrogen cycle. Nature (London), 311: 54-56.
41. Singh, S.P., and Singh, J.S. (1991). Analytical conceptual plan to reforest Central Himalaya for sustainable development. Environmental Management, 15(3): 369-379.
42. Sorensen, T.A. (1948). A method of establishing groups of equal amplitude in plant sociology based on similarity of species content, and its application to analyses of the vegetation on Danish commons. K dan Vidensk Selsk Biol Skr, 5:1-34.
43. Tamirat, T. (1992). Vertisol of Central Highlands of Ethiopia: Characterization and Evaluation of Phosphorus Status. M.Sc. Thesis, Alemaya University, Ethiopia.
44. Ter Braak, C.J.F. (1986). Canonical Correspondence Analysis: A new eigenvector technique for multivariate direct gradient analysis. Ecology, 67(5): 1167-1179.
45. Tiwari, S.D., Joshi, R. and Rawat, A. (2013). Physico-chemical properties of soils in cooltemperate forests of the Nanda Devi Biosphere Reserve in Uttarakhand (India). J. Ecol. Nat. Environ 5(6): 109-118.
46. Walbridge, M.R., Richardson, C.J., and Swank, W.T. (1991). Vertical distribution of biological and geochemical phosphorus subcycles in two southern Appalachian forest soils. Biogeochemistry, 13(1), 61-85.

47. Walkely, A.J. and Black, C.A. (1934). An estimation of the digestion method for determining soil organic matter and a proposed modification of the chromic acid titration method. Soil Sci., 37: 29-38.
48. Whitney, N., and Zabowski, D. (2004). Total soil nitrogen in the coarse fraction and at depth. Soil Science Society of America Journal, 68(2): 612-619.
49. Whittaker, R.H. (1972). Evolution and measurements of species diversity. Taxon, 21:213-251.

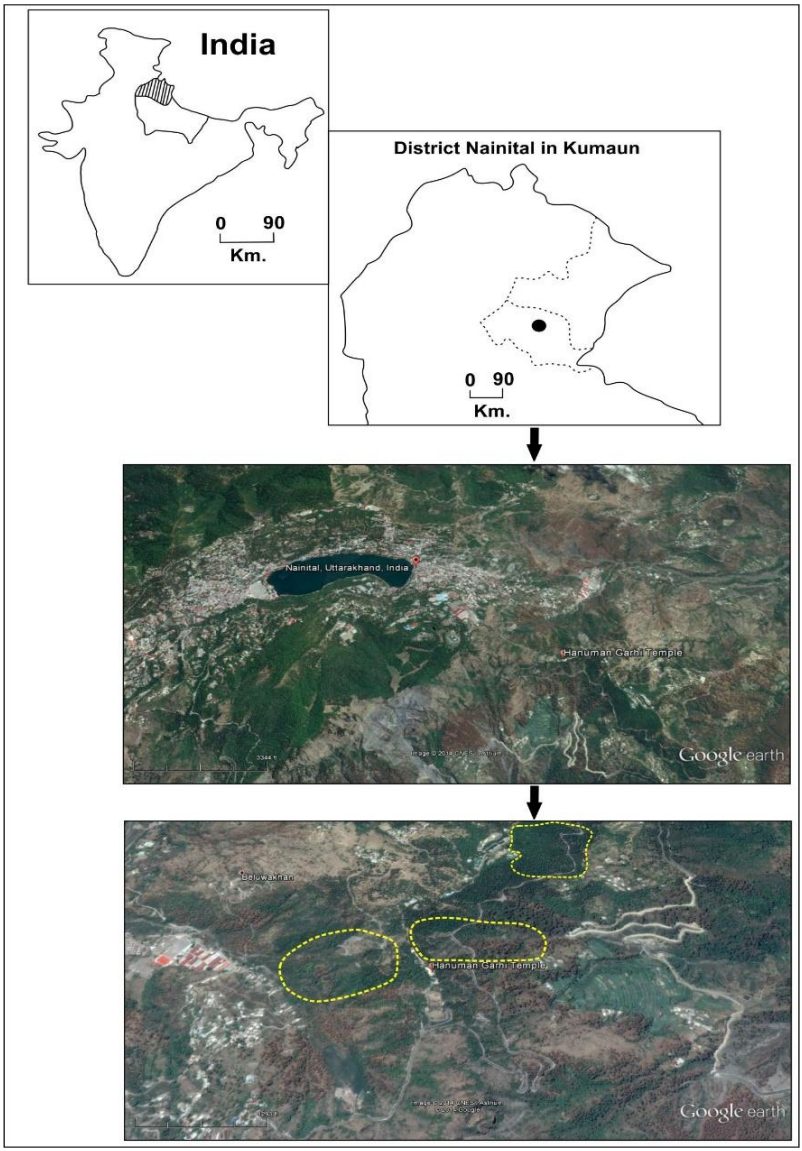


Fig. 1 Location map of the study area

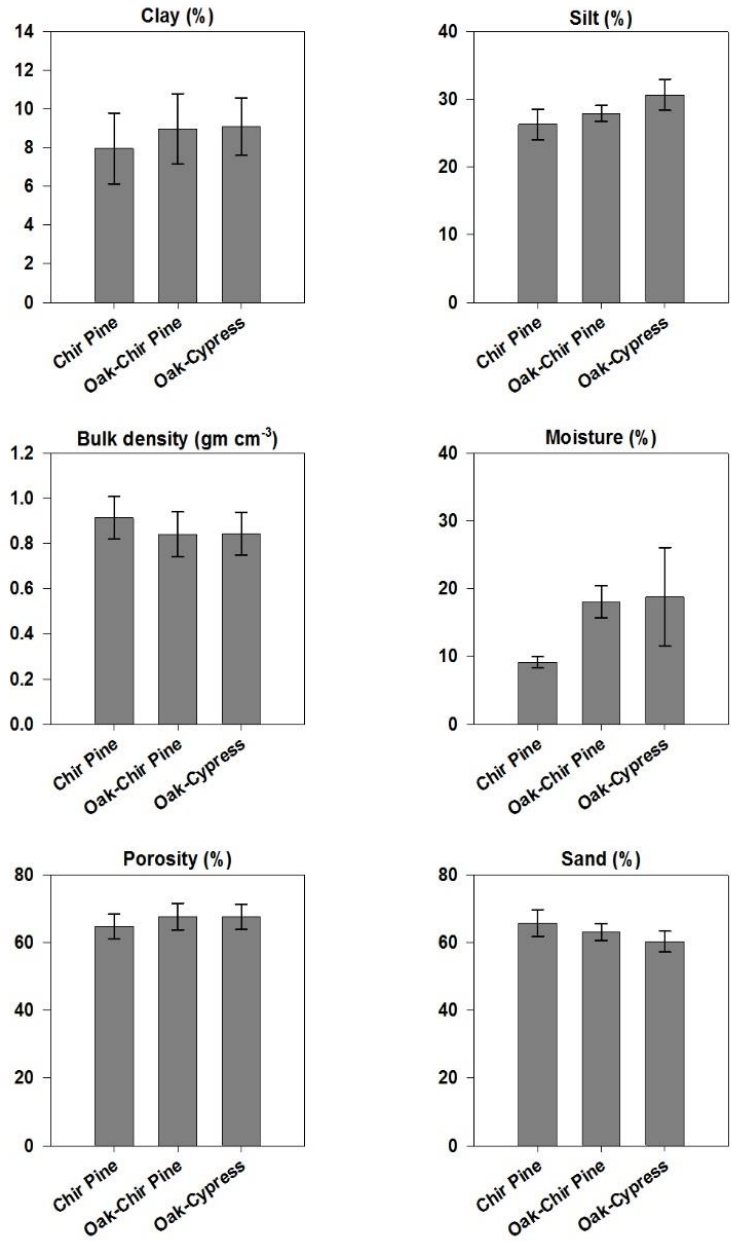


Fig. 2 Variation in clay, silt, bulk density, moisture, porosity and sand of Chir Pine, Oak-Chir Pine and Oak-Cypress mixed forest.

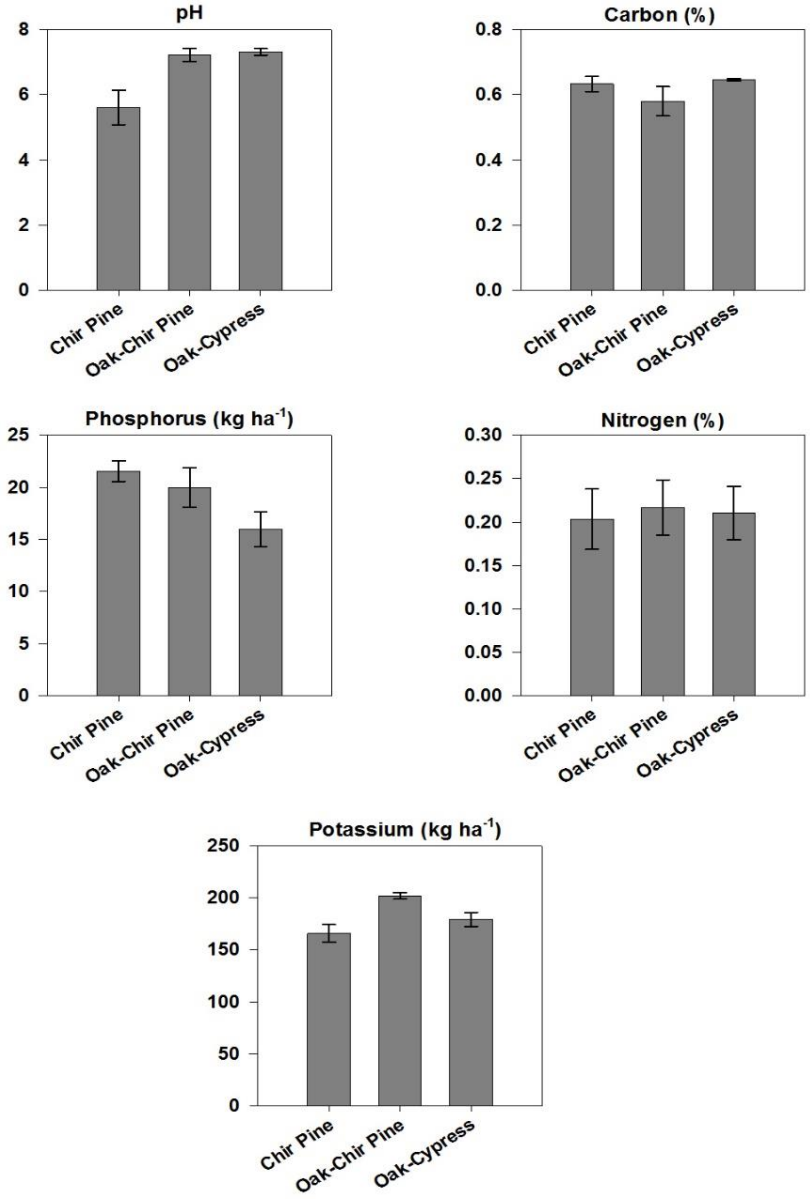


Fig. 3 Variation in pH, carbon, phosphorus, nitrogen and potassium of Chir Pine, Oak-Chir Pine and Oak-Cypress mixed forest.

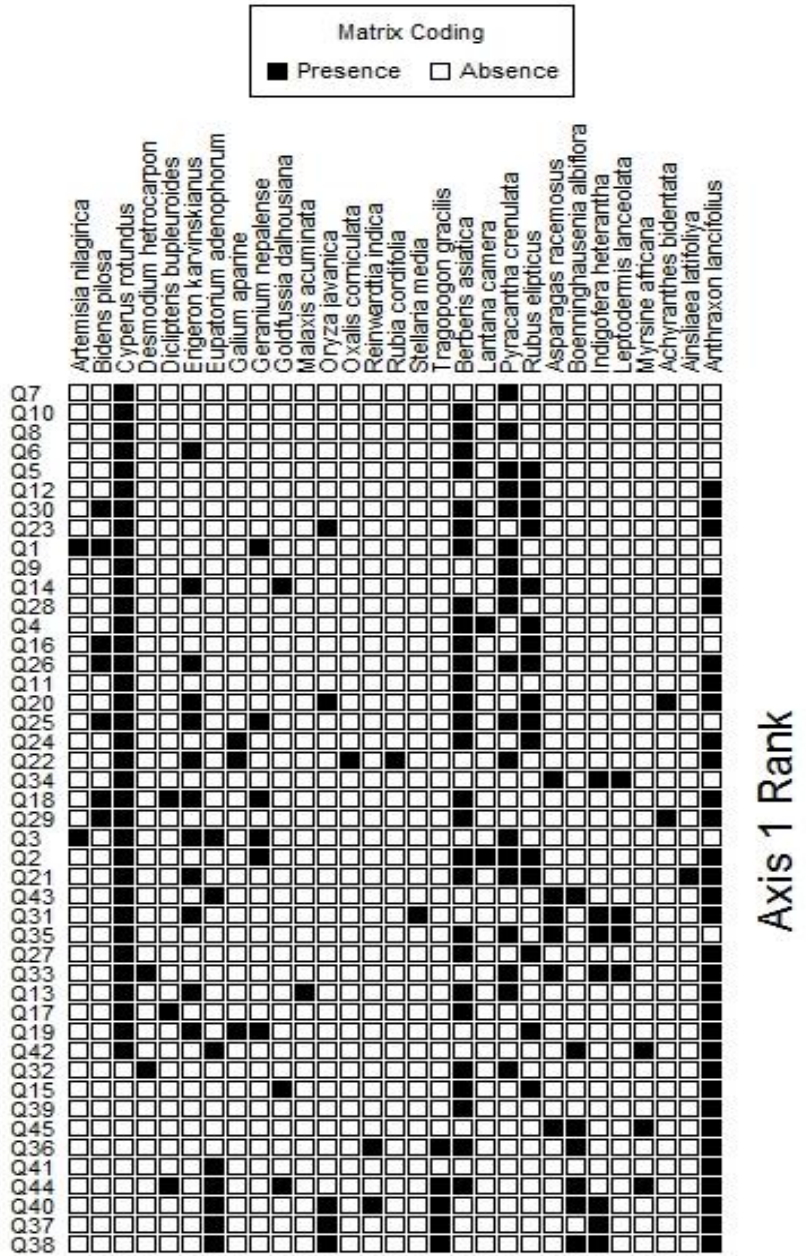


Fig. 4 Abundance of all species across all the forest sites

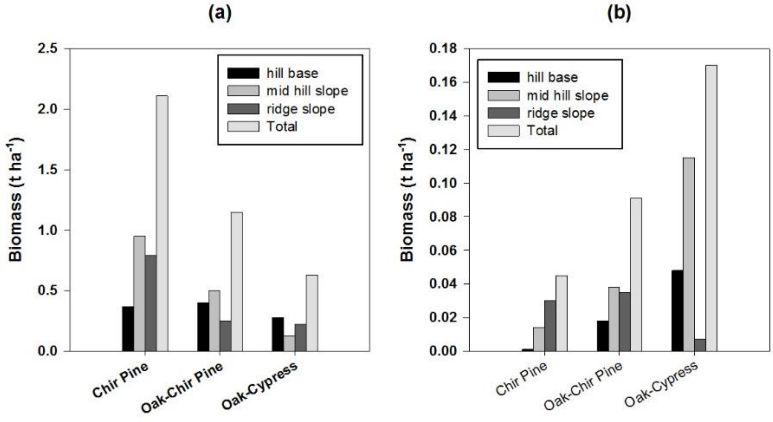


Fig. 5 Biomass (t ha^{-1}) of herb species (a) and shrub species (b) across all the forest sites

Table 1. Vegetation parameter in different forest sites

		Chir Pine	Oak-Chir Pine	Oak-Cypress
E	**Shrub**	0.85	0.95	0.95
	Herb	0.55	0.66	0.81
H'	**Shrub**	1.18	1.05	1.85
	Herb	1.26	1.58	1.94
Cd	**Shrub**	0.35	0.37	0.17
	Herb	0.42	0.28	0.18

Note: E = Equitability; H' = diversity; Cd = Concentration of dominance

Table 2. Percent similarity of shrub species among different forests

Forest type	**Forest type**		
	Chir Pine	**Oak-Chir Pine**	**Oak-Cypress**
Chir Pine	*	81.3187	26.7717
Oak-Chir Pine	*	*	24.2857
Oak-Cypress	*	*	*

Table 3. Percent similarity of herb species among different forests

Forest type	**Forest type**		
	Chir Pine	**Oak-Chir Pine**	**Oak-Cypress**
Chir Pine	*	73.822	36.1538
Oak-Chir Pine	*	*	29.4915
Oak-Cypress	*	*	*

Table 4.(a) Monte Carlo test results – Eigenvalues

		Randomized data			
	Real data	**Monte Carlo test, 499**			
Axis	**Eigenvalues**	**Mean**	**Minimum**	**Maximum**	***P***
1	0.317	0.179	0.113	0.299	0.0020
2	0.166	0.125	0.072	0.196	
3	0.099	0.088	0.043	0.143	

Note: p = proportion of randomized runs with eigenvalue greater than or equal to the observed eigenvalue; i.e., p = (1 + no. permutations >= observed)/(1 + no. permutations) p is not reported for axes 2 and 3 because using a simple randomization test for these axes may bias the p values.

Table 4.(b) Monte Carlo test results – Species - Environment correlation

		Randomized data			
	Real data	**Monte Carlo test, 499**			
Axis	**Species-Environment Correlation**	**Mean**	**Minimum**	**Maximum**	***P***
1	0.794	0.688	0.539	0.869	0.0360
2	0.732	0.639	0.481	0.791	
3	0.603	0.582	0.433	0.767	

Note: p = proportion of randomized runs with species-environment correlation greater than or equal to the observed species-environment correlation; i.e., p = (1 + no. permutations >= observed)/(1 + no. permutations)

CHAPTER 9

MYTHS AND CHALLENGES ASSOCIATED WITH WOMEN LEADERSHIP IN THE IT SECTOR

Dr. Mohammad Zahid
Assistant Professor
Department of Teacher Education Shibli
National P.G College Azamgarh

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.09

Introduction

The participation of women in senior positions continues to be under examination in the dynamic and constantly changing IT sector. It is important to understand that the IT business, like many others, struggles with the intricate interplay of gender dynamics and management paradigms as it embarks on this in-depth investigation of "Myths and Difficulties Associated with Women Management in the IT Sector." In addition, this study discusses gender equality, debunking gender stereotypes, busting misconceptions, and addressing the difficulties that women leaders encounter, this research aims to shed light on the different dimensions of women's leadership throughout the IT industry. It also examines this complex topic in depth in the parts that follow. This study begins by looking at how women are represented in senior positions in the IT sector.

Discussion and Analysis

Women in leadership

Women have been a catalyst for change. Even on gaining gender parity, they are less represented in various domains such as IT, leadership, politics and decision-making. Women in technical industries are gaining ground, thus making steady progress in reducing the gender gap and pay gap. As per the detailed research of Deloitte, large technological firms have shown 33% of women representation in their workforces and decision-making in the

financial year of 2022. In 2019, it was 31%, thus it shows a growth increase of 2% in the year 2022. The share of women in technical and leadership has maintained a proportion of 8-10 percentage points, thus showing amplification and rapid rise in women's leadership. In the overall technical roles, Deloitte has found that women's participation in the global tech workforce has increased by 6.9% in the year 2022 and their share in the technical part has seen a rise of 11.7% which leads to rapid growth. The budgeted gain of approximately 20% will be seen as per the involvement of women in the technical domain and decision-making. One-fourth of leadership roles will be held at technical companies, thus depicting a rise of 4% points since the year 2019. For instance in North America, the technological sector has seen the highest number of women on the board of directors, that is, 25% held by women in the year 2022 which came up from 17.4% in 2018, thus bringing diversity within the companies (Deloitte, 2023). Through women's leadership, companies have focused on gender parity and diversity and they are channeling their efforts to have a greater base in workforce and leadership diversity by age, race and other socioeconomic factors. Many companies have promised to reach the limit of 50% or above in gender equality focusing on directorship in the board and better labour representation (Deloitte, 2023). According to the survey of womendeliver.org, it has been seen that due to women's leadership, peace agreements have 35% more propensity to succeed and it would last for at least 15 years, thus leading to creation and evolution. It helps to create lower income inequality if women occupy the top management board. If women hold executive leadership posts, companies would have 21% more propensity to perform well as per the national average. In that case, women get equal opportunities to access resources and maintain their leadership in agriculture can increase the yield by 30% (Women Deliver, 2023). Women are never scared to face reality and can socialize to be perfect. They know to recognize their fear and harness their skills on it, thus exploring every opportunity to work well. According to Business News Daily, it has been seen that in the year 2020, The US saw a reduction in the gap of pay parity where women earned 83% of what men earned throughout the year(Martin, 2023). Through proper mentoring, they can help organisations grow and fetch businesses for the longer

run, thus helping them to set goals and attain them in no time which initiates better teamwork and personal development.

Gender equality, women empowerment work theory and leadership

Gender equality is a human right that is accessible to every person, thus giving equal opportunity and decision-making power to men and women. It has been seen that for years, women have had lesser participation, and lesser access to basic resources along with education, thus susceptible to greater risk related to health and safety and almost no political representation in legislature. Promising to provide all the above rights to women not only helps to achieve gender equality but also focuses on bringing cohesion amongst international goals. Women who are empowered contribute to productivity at work, thus creating an effect of ripples that benefit everyone in society. The word 'gender' has framed roles and responsibilities for women, thus making women feel underprivileged. In the case of an uplifting society, women are required to have greater representation and are to be allowed to feel empowered. Through gender equality, women are to be provided with financial independence and allowed personal development along with dignity. As per reports of UNFPA, it has found that even on international agreements that promise human rights, women are still susceptible to being poor and not educated and get lower access to property ownership, credit for work, training and employment and are yet considered as child-bearers but not as breadwinner in the family. The theories of women's empowerment are classical modernization which targets economic development provides rise to a gender-egalitarian attitude, historical factors that focus on cultural and political conditions and political engineering perception (Mate et al. 2019).

Modernization of economic development- It focuses on increasing democracy and helps in making choices that act as a direct outcome initiating economic development. It helps to develop opportunities providing benefits to women who get access to social power. Access to education and operational resources helps in providing personal development, thus providing power positions in the political arenas. Higher economic development brings social services to society (Dashper, 2020).

Gender-egalitarian attitude: This attitude has helped to raise an emancipative attitude in society and it targets the masses who are elite and inclusive. Growth in emancipative values has helped society work for the betterment of women where the human development perspective is attached to society's modernization to bring changes in the barrier. Modernization has helped economic development strongly relate to the measures of women empowerment, thus integrating cultural modernity with various dependent measures. According to the relationship established between the two processes, the human development approach channelises the required human resources which helps to make social inclusion and human choices, thus strengthening the modernity in women empowerment (Kang & Kalpan, 2019).

Historical factors focusing on cultural and political conditions: Social modernization has faced various legacies based on organizations focusing on cultural and institutional effects and the social ways to improve women's regular lives. Based on the nature of traditions, religions play a humongous role in the opportunity for women's emancipation and liberty. With the popular belief of sectarianism and volunteerism, Protestantism has been seen as a holistic approach which has been hospitable to domestic values such as respecting individuals and sovereignty. Society tries to bring secularity between rationality and expertise which gives rise to social services and modernity. Suffragist policy has helped elites and dominant groups represent themselves politically and create the legacy of political inclusion for women. State-financed welfarism highlights what society takes up to progress eventually. It fights for gender parity. This theory gives inclusion and social autonomy to women and this process does not restrict their roles to caretaking and household responsibilities. It focuses on mitigating the barriers for women and helping them to get involved in every domain and be given equal opportunities just like men (Allen et al., 2019).

Political engineering perception

The theory of modernization focuses on getting access to economic resources and creating value for women's empowerment throughout society and historical factors focus on what impacts the culture and politics impose on society, thus highlighting the relevance of women's empowerment. Women empowerment

through this theory has created relevance through creating strength in the democracy, the poll system and the gender elective quota system. Proportional representation has helped structure political party's remuneration including incentives and disincentives to place a woman's candidature. Women have accepted the challenges to reduce the socioeconomic factors and responsibilities as compared to men, thus keeping their aspirations higher through this theory (Maheshwari & Nayak, 2022).

Leadership has enhanced productivity, thus providing benefits to the organisations they are working with. It has helped them enhance collaboration, create dedication-making powers and improve their fairness at work. Female leaders have focused on creating various leadership styles which helps to figure out what goes better for the organisation and how it aligns with the mission and goals. They have established themselves as successful competitors and showcase various traits like compassion, sensitivity, ambition and intelligence. In the presence of women, team collaboration has immensely improved and women have never failed to exhibit qualities of conversation, thus enabling members to respond to one another well and use their presence of skills at their best (Mousa et al. 2021).

Gender stereotypes faced by women

The workplace has long been plagued by gender stereotypes, and this is no different in the IT industry. Despite the forward-looking steps taken in the direction of "gender equality, women in leadership" roles in the IT industry still have to deal with persistent preconceptions that influence their working experiences. In order to provide proper evidence regarding this crucial topic, this section will examine the pervasive gender preconceptions that women in the UK and all over the world's IT sector must contend with. It will do this by using specific cases, official statistics, and organizational insights.In IBM group which is one of te top IT firms in UK , it has only 29% of women employment in 2021.

The "Tech-Savvy" Stereotype

Men are often seen to be more tech-savvy than females, according to a stereotype. Because of this prejudice, many continue to believe that women are less qualified for technical jobs. The ***"Department for Digital, Culture, Media and Sport (DCMS)"*** of

the UK government, however, revealed in a report that this idea is untrue and that women are equally likely as males to use the World Wide Web. The research specifically mentions the 47% of UK women who possess advanced digital abilities (Gov.uk.2023).

The Stereotype: Men Rule the Tech Industry

The idea that males are naturally drawn to leadership positions in technology is a widespread stereotype in the IT industry. The excessive representation of men in these positions feeds into this misconception. Due to this stigma, women who do rise to leadership positions frequently face skepticism about their qualifications and skills. A female IT manager, for instance, could be subject to more scrutiny than her male competitors. Because of this serious stereotype regarding women's empowerment in the IT sector of the UK, the result is there is only 23.96% of female employment is measured in the Intel company (Mate, McDonald, & Do, 2019).

Stereotype: Insufficient leadership abilities

Assumptions that they lack the aggressiveness and determination often associated with male leadership are frequently leveled at women in leadership positions in the IT industry. The development of their careers and their capacity to successfully manage teams may be constrained by these prejudices. According to a study conducted in the UK, women in computing are "29% less" likely than males to think they have equal access to job options (Kang, & Kaplan, 2019).

The UK IT Sector's Gender Gap

Understanding the gender gap in the IT industry in the UK is essential before diving into misconceptions. Women comprise only 17% of "IT and communications professionals", according to figures from the "Office for National Statistics (ONS)". This glaring underrepresentation is due to historical prejudices, a lack of role models, and misconceptions that deter women from seeking employment in IT.

Glass Ceilings in UK IT Firms

Women in the UK's IT industry have a proverbial "glass ceiling," making it difficult for them to get beyond upper management. "Women hold only 9%" of senior roles in UK tech

businesses, according to data from Women in Tech UK (Madero et al. 2020). The prejudices that hold that women are not suitable for positions of greater leadership maintain this structural obstacle.

Diversity Promotion and Fighting Stereotypes

UK IT firms are putting inclusion and diversity strategies in place to fight these prejudices. Many organizations are attempting to establish inclusive environments and offer mentoring and programs for female executives. In an effort to dispel preconceptions from an early age, the UK administration has also initiated efforts to encourage more females to explore STEM fields. The effects of stereotypes regarding gender in IT leadership are extensive. Women may struggle to be recognized, go through impostor syndrome, or feel alone in their jobs. Furthermore, by discouraging young women from pursuing jobs in technology, these prejudices contribute to the industry's persistent gender gap (Madero et al.2020).

Gender stereotypes continue in "the IT sector", particularly in senior positions, leading to women being underrepresented and impeding their career advancement. Data from the United Kingdom indicates the magnitude of these difficulties. However, by working together on programs such as diversity and inclusion, mentorship, and schooling, the IT sector may become more equal and inclusive, enabling women to flourish in leadership roles.

Women's leadership myths and challenges in the IT sector

Male leadership has historically dominated the IT industry, and despite considerable advancements in the past few years, women in leadership positions still confront many stereotypes and obstacles. These beliefs support gender prejudices and impede women's success in the IT sector. In this section, we'll examine the common misconceptions about women in leadership positions in the IT industry as well as the particular difficulties these individuals face. This study wants to shed light on this crucial subject through an analysis of statistics, real-world examples, and professional perspectives.

The Problem of Underrepresentation

Myth: Women are neither drawn to nor qualified for leadership positions in IT.

Challenges: Women are not represented in "leadership positions" in the IT industry, according to data from the UK's ***"Office for National Statistics (ONS)"***, In 2021, women made up just 14.2% of IT directors and managers In the UK. The idea that women are underrepresented in IT leadership roles is refuted by this fact.

The stereotype of a lack of technical competence
Myth: Compared to males, women are less skilled in technology.

Challenges: The assumption that women in IT are not as technically adept is frequently fueled by gender prejudices. Women in the IT industry do, however, have technical abilities that are on par with those of their male colleagues, according to a study from the UK's ***"Women in Technology (WIT)"*** project. The limited possibilities for women to demonstrate their knowledge due to this preconception might impede their job advancement. Women represent only "18%" of the computer industry's workforce, according to research by "WIT group", a UK-based organization. This lack of representation suggests that hiring and promotion choices may be influenced by prejudices. Because of these kinds of stereotypes the number of women IT technicians in the UK is only 21% in the year 2019 (statista.com.2021).

Stereotypes of leadership
Myth: Compared to males, women leaders are less forceful and self-assured.

Challenges: Gender prejudices may cause others to believe that female leaders lack confidence and assertiveness. However, research has shown that women in leadership positions may display a variety of leadership styles, therefore it is important to recognize their value. Organizations in the UK should aggressively empower women to lead genuinely and with a variety of leadership philosophies. In this context ***"the Equality Act of 2010"*** forbids harassment based on gender, guaranteeing that women have legal options if gender preconceptions prevent them from advancing in their careers.

Parenting and Work-Life Balance Stereotypes
Myth: Because of their commitment to their families, women leaders are less devoted.

Challenges: "Women in the IT industry" sometimes deal with the perception that they are less dedicated to their work due to obligations to their families. In order to dispel this myth, the UK government has put in place regulations that encourage work-life balance, such as flexible schedules. It still exists, nevertheless, and hinders women's job advancement in many industries. Over the period, the percentage of "women working as IT professionals" decreased from "18 to 16" percent. This draws attention to the stark gender disparity in STEM disciplines in the UK (Offermann, & Foley, 020).

Stereotypes about promotion and advancement

Myth: In order to progress, women need more mentorship and assistance.

Challenges: While guidance and encouragement are crucial for job advancement, the belief that women require more help can undercut their accomplishments. Organizations in the UK should make sure that possibilities for promotion and development are based on merits rather than assumptions about the requirements of particular genders. Especially women in top positions within the UK IT industry, stereotypes about gender continue to pose significant obstacles (Rogers, & Rose, 2019). The preconceptions still exist and have an impact on employment decisions, job advancement, and pay notwithstanding the progress achieved in promoting equality between men and women. In addition to organizational activities and cultural shifts, rules and regulations from the government serve as a basis for the fight against stereotypes. In addition to encouraging gender diversity, recognizing and resolving these prejudices is crucial for the IT industry's performance and development.

The Myth of Risk Aversion

Myth: Women are naturally more risk-averse

Challenges: The idea that women are naturally risk-averse and unsuited for leadership positions in a sector where innovation and disruption are prevalent is another misconception. According to this misconception, women are less likely to purposefully take calculated probabilities or make bold judgments. On the other

hand, research from McKinsey & Company indicates that leadership teams with a diversity of genders are more likely to outperform their competitors in terms of profitability as well as value generation (Sinai et al. 2020).

The myth of negotiation
Myth: Women are worst with negotiation

Challenges: This has been a misconception that women are not good with negotiation and often ask for pay as frequently as men but it has been seen that men are more likely to get raises by 25% when they ask than the female employees present in the organisation. Women have got their own feminine traits which makes them technically sufficient as negotiators. Females manifest curiosity, cooperate well with their employees and have enough convincing power which has made negotiation techniques better for them(Sinai et al., 2020).

The myth based on leadership
Myth: Women with kids cannot meet leadership obligations

Challenges: People think that women cannot meet deadlines if they are mothers, thus questioning their management and leadership skills. They create stringent schedules which keep allocating specific time for their work and family and continue with the same strategy to keep fulfilling their leadership obligations. They have harnessed the skill of making important decisions in no time which shows that quality matters over quantity of time. Productivity is increased if the organisation makes economical family policies which retain better talents.

The myth of confidence
Myth: Women have less confidence to lead

Challenges: People think women do not have similar levels of ambitions when they start to work and they face obstacles which hamper their confidence to work. Men do not face so. Women do not get greater access to resources than men and have lesser career flexibility with fewer responsibilities. This leadership management

has helped to strengthen values among women helping them to embrace their weaknesses and ask for support whenever needed.

The myth of support
Myth: Women executives do not support other women
Challenges: There is a notion that successful women do not help the underprivileged ones. The myth has been busted through studies which show that 65% of women have gained career support from successful women and have supported new talents.

The myth of entrepreneurship
Myth: Womer are not great entrepreneurs

Challenges: This notion has been proved wrong through the 2016 BNP Paribas Global Entrepreneur Report that women entrepreneurs have established 13% greater revenues and the number of women entrepreneurs has grown by 10% every year. They are efficient at establishing bigger teams with competent talents and channelling them whenever needed to fulfill their mission.

The myth of numbers
Myth: Women are not good with numbers

Challenges: There has been a notion that female biology does not work when it tracks towards mathematics. The math-gender gap has been diminished thus weakening the cultural barriers which were present before in the society.

The myth of change
Myth: Things are changing and women cannot catch up

Challenges: As progress takes place, it is thought that women cannot keep up with the pace and women are not as fast as the present generation or the next. It was proved wrong that they face challenges and keep working with the allies smoothly without any discrimination and complaints(Djik et al., 2020)

Fighting biased attitudes and maintaining strong women's leadership

The ICT industry in the United Kingdom is a hotbed of innovation and growth in the economy. Gender discrepancies and biased views, on the other hand, remain, restricting female representation in leadership posts. This article, supported by statistics and examples, examines solutions for combating biased attitudes and fostering sustained female leadership in the IT industry.

Gender Disparities Must Be Addressed

Despite advancements, gender discrepancies in the UK technology sector persist. Women make up only 17% of IT and telecoms professionals, according to figures from the "Office for National Statistics (ONS)". It is critical to recognize and aggressively address these differences in order to retain good female leadership.

Confronting Biassed Attitudes

Biassed attitudes are impeding women's success in technology. Businesses should develop diversity and inclusion initiatives that educate personnel about unconscious prejudice. As an illustration, to promote a more "inclusive workplace, Google UK" made training on unconscious prejudice obligatory for all workers (Le Tran, et al.2020).

Programs for Leadership Development

Women's leadership development needs tailored programs. Women in technology might benefit from leadership training courses offered by organizations such as "BCS and theor the Chartered Institute for IT". These programs offer mentoring, coaching, and socializing possibilities to women, allowing them to succeed in their jobs.

Pay Equity and Opportunity

Gender wage disparities remain in technology, impacting women's motivation and professional advancement. In order to guarantee fair pay, businesses must undertake frequent pay audits. Vodafone UK is a prime instance of how it achieved a balance in terms of gender workforce by eliminating salary discrepancies and

establishing opportunities for women in leadership (Amis et al.2020).

Inclusive

To maintain strong female leadership, technology companies should rethink their recruiting practices. Blind recruiting practices, such as those employed by Deloitte UK, can help to decrease hiring prejudice, to achieve fair assessments, Diverse panel discussions should be constituted and the result is the proportion of female computer professionals in the United Kingdom climbed from 19 to 21 % between 2016 and 2019, resulting in nearly 10,000 additional female IT specialists.

Advocacy and Networking and Government Initiatives: It is critical to encourage women in technology to join organizations and networks. The Women in Tech UK Association supports women via mentorship and activism. Such networks are critical in increasing female management in the sector (Amis et al. 2020). The UK government may help to promote gender equality by enacting rules that encourage open salaries and diversity in company leadership. The "Hampton-Alexander Review", for illustration, established objectives for FTSE 350 businesses to increase the number of women serving on their boards.

The IT sector must keep up its efforts to eliminate prejudice and promote strong female leadership. Through addressing inequities, confronting prejudices, encouraging the advancement of leadership, assuring equal compensation and opportunity, adopting inclusive recruiting, and leveraging government assistance, the sector can prosper with diversified leadership, driving creativity and development (Sims, & Carter, 2019).

Conclusion

The erroneous assumptions and problems connected with women's leadership in the IT field are considerable but not insurmountable. While gender stereotypes exist, progress is being made in fighting biased views and establishing strong female leadership. By tackling these challenges front-on, fostering gender equality, and elevating women in positions of leadership, the IT sector may continue to progress into a more equitable and welcoming business. It is critical to recognize that female executives help organizations by fostering development and

success and that diversification is an asset that should be cherished and encouraged in the IT sector and beyond. Ultimately, gender equality at the highest echelons of technology organizations is not just an issue of fairness, but additionally a driver of innovation and success in this dynamic business.

REFERENCES

1. Allen, E., Lyons, H., & Stephens, J. C. (2019). Women's leadership in renewable transformation, energy justice and energy democracy: Redistributing power. *Energy Research & Social Science*, *57*, 101233.
2. Amis, J. M., Mair, J., & Munir, K. A. (2020). The organizational reproduction of inequality. Academy of Management Annals, 14(1), 195-230. DOI:https://doi.org/10.5465/annals.2017.0033
3. Dashper, K. (2020). Mentoring for gender equality: Supporting female leaders in the hospitality industry. *International Journal of Hospitality Management*, *88*, 102397.
4. Deloitte (2023) https://www.deloitte.com/global/en/about/people/social-responsibility/india.html
5. Gov.uk, (2023), UK Government Department for Culture, Media and Sport (DCMS). Available at:https://www.gov.uk/government/organisations/department-for-digital-culture-media-sport [Accessed on:06.09.2023]
6. Kang, S. K., & Kaplan, S. (2019). Working toward gender diversity and inclusion in medicine: myths and solutions. The Lancet, 393(10171), 579-586.2. DOI:10.1177/1948550618772582.
7. Kang, S. K., & Kaplan, S. (2019). Working toward gender diversity and inclusion in medicine: myths and solutions. *The Lancet*, *393*(10171), 579-586.
8. Le Tran, D., Martinez-Alier, J., Navas, G., & Mingorria, S. (2020). Gendered geographies of violence: a multiple case study analysis of murdered women environmental defenders. Journal of Political Ecology, 27(1), 1189-1212.. https://doi.org/10.2458/v23i1.20220
9. Madero Gómez, S., Ortiz Mendoza, O. E., Ramírez, J., & Olivas-Luján, M. R. (2020). Stress and myths related to the COVID-19 pandemic's effects on remote work. Management

Research: Journal of the Iberoamerican Academy of Management, 18(4), 401-420. https://doi.org/10.1108/MRJIAM-06-2020-1065

10. Madero Gómez, S., Ortiz Mendoza, O. E., Ramírez, J., & Olivas-Luján, M. R. (2020). Stress and myths related to the COVID-19 pandemic's effects on remote work. Management Research: Journal of the Iberoamerican Academy of Management, 18(4), 401-420.DOI:10.1108/MRJIAM-06-2020-1065
11. Maheshwari, G., & Nayak, R. (2022). Women leadership in Vietnamese higher education institutions: An exploratory study on barriers and enablers for career enhancement. *Educational Management Administration & Leadership*, *50*(5), 758-775.
12. Mate, S. E., McDonald, M., & Do, T. (2019). The barriers and enablers to career and leadership development: An exploration of women's stories in two work cultures. International Journal of Organizational Analysis, 27(4), 857-874.DOI 10.1108/IJOA-07-2018-1475
13. Mate, S. E., McDonald, M., & Do, T. (2019). The barriers and enablers to career and leadership development: An exploration of women's stories in two work cultures. *International Journal of Organizational Analysis*, *27*(4), 857-874.
14. Mousa, M., Boyle, J., Skouteris, H., Mullins, A. K., Currie, G., Riach, K., & Teede, H. J. (2021). Advancing women in healthcare leadership: a systematic review and meta-synthesis of multi-sector evidence on organisational interventions. *EClinicalMedicine*, *39*.
15. Offermann, L. R., & Foley, K. (2020). Is there a female leadership advantage?. In Oxford research encyclopedia of business and management.DOI: 10.1093/acrefore/9780190224851.013.61
16. Rogers, E. B., & Rose, J. (2019). A critical exploration of women's gendered experiences in outdoor leadership. Journal of Experiential Education, 42(1), 37-50.
17. Shih, K. Y., Chang, T. F., & Chen, S. Y. (2019). Impacts of the model minority myth on Asian American individuals and families: Social justice and critical race feminist

perspectives. Journal of Family Theory & Review, 11(3), 412-428.DOI:10.1111/jftr.12342

18. Sims, C. M., & Carter, A. D. (2019). Revisiting parker & ogilvie's African American women executive leadership model. The Journal of Business Diversity, 19(2), 99-112. doi:10.1002/ss.288
19. Sinai, I., Omoluabi, E., Jimoh, A., & Jurczynska, K. (2020). Unmet need for family planning and barriers to contraceptive use in Kaduna, Nigeria: culture, myths and perceptions. Culture, health & sexuality, 22(11), 1253-1268.DOI:10.1080/13691058.2019.1672894
20. Sinai, I., Omoluabi, E., Jimoh, A., & Jurczynska, K. (2020). Unmet need for family planning and barriers to contraceptive use in Kaduna, Nigeria: culture, myths and perceptions. *Culture, health & sexuality*, *22*(11), 1253-1268.
21. Statista.com, (2023), Breakdown of female IT professionals & IT technicians in the United Kingdom from 2016 to 2019. Available at:https://www.statista.com/statistics/1251347/united-kingdom-women-workforce-it-professionals-technicians/ [Accessed on:06.09.2023]
22. van Dijk, H., Kooij, D., Karanika-Murray, M., De Vos, A., & Meyer, B. (2020). Meritocracy a myth? A multilevel perspective of how social inequality accumulates through work. *Organizational Psychology Review*, *10*(3-4), 240-269.

CHAPTER 10

RELIGIOUS EDUCATION VIS ~A~VIS INDIAN CONSTITUTION

Dr. Rahul Yadav
Assistant Professor, Department of Law
Maharshi Dayanand University, Rohtak
Email: ryrahulyadav07@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.10

ABSTRACT:
India, a diverse and pluralistic nation, has a long and multifaceted history of religious education. The Constitution of India, adopted in 1950, is a visionary document that enshrines the principles of secularism, religious freedom, and equality of all religions, providing the foundational framework for the country's educational system. The Constitution of India, with its commitment to secularism, religious freedom, and equal treatment of all religions, plays a crucial role in shaping how religious education is conducted within the nation. The research rigorously examines the constitutional provisions, notably Article 28, Article 30, and Article 25, which directly impact religious education. It delves into the principles of secularism, religious freedom, and the freedom to establish and administer educational institutions while critically analysing how these constitutional tenets intersect with religious education. This paper provides a comprehensive analysis of the historical evolution of religious education in India, the relevant constitutional provisions, the role of religious institutions, challenges and controversies, and their socio-cultural impact. It also offers a comparative perspective on India's approach to religious education, explores government policies and recent reforms, and presents case studies to exemplify the complex interplay between religion and education.

KEYWORDS: *Religious education, Constitution of India, secularism, religious freedom, legal framework, educational policy.*

INTRODUCTION:

Religious education in India has played a significant role in shaping the cultural and moral fabric of the nation. It has been a subject of interest and debate due to its deep-rooted historical significance and the diverse religious landscape of the country. The religious diversity of India, home to several major religions including Hinduism, Islam, Christianity, Sikhism, Buddhism, and Jainism, has not only influenced individual lives but has also permeated the educational landscape of the country.

The Constitution of India, adopted in 1950, not only laid the foundation for a democratic and secular state but also established the framework within which education, including religious education, operates. The Constitution was a response to the historical experiences of colonial rule, which witnessed both the subjugation of India and a complex interplay of religious and educational systems. It serves as the compass that directs the nation towards a pluralistic society where religious and educational institutions coexist and operate in harmony.

HISTORICAL PERSPECTIVE:

Religious education in India has a deep-rooted historical significance, with its roots stretching back centuries. Before delving into the constitutional aspects, it is crucial to examine the historical backdrop that has influenced the role of religious education in the nation's life. This historical perspective helps us appreciate the need for a secular constitution and underscores the challenges of managing a diverse and pluralistic society in matters of education.

India's historical relationship with religious education can be traced to its ancient and medieval periods. Ancient institutions like Takshashila and Nalanda were centres of learning that imparted not only secular knowledge but also religious teachings. These institutions were pivotal in the dissemination of knowledge, including the teachings of Buddhism, which had a profound impact

on India and other parts of Asia.[1] During the medieval era, the influence of Islamic rulers and Persian scholars brought Islamic education and religious learning to the Indian subcontinent. Madrasas and other Islamic educational institutions became centres of religious education, contributing to the diversity of religious thought and learning in India.[2]

The colonial period witnessed significant changes in India's educational landscape. The British colonial rulers introduced a Western-style education system, which, while being secular, coexisted with traditional systems of religious education. This dual system had a profound impact on India's approach to education, as it attempted to strike a balance between secular and religious knowledge.[3] However, the colonial period also brought about religious tensions and conflicts, as religious and educational institutions were intertwined. This complex relationship between religion and education underscored the need for a constitution that could provide a framework for the peaceful coexistence of diverse religious and educational institutions.[4]

The Constitution of India, which was adopted in 1950, emerged as a response to these historical experiences. It not only sought to provide a legal and ethical framework for the new nation

---

[1] The ancient educational institutions of Takshashila and Nalanda were renowned for their role in imparting knowledge, including religious teachings. These institutions highlight the historical significance of religious education in India (Upinder Singh, "A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century," Pearson, 2009).

[2] The influence of Islamic rulers and scholars in medieval India led to the establishment of Islamic educational institutions like madrasas, contributing to the religious diversity and educational landscape of the subcontinent (Richard M. Eaton, "Islamic History as Global History," The Indian Economic & Social History Review, 1992).

[3] The British colonial period introduced a western-style education system in India, which coexisted with traditional systems of religious education. This dual system laid the foundation for the complex relationship between religious and secular education (Parimala V. Rao, "The History of Education in India," Sage Publications, 1991).

[4] The colonial period also witnessed religious tensions and conflicts due to the intertwining of religious and educational institutions. These conflicts emphasized the need for a constitution that could provide a framework for peaceful coexistence (Sumit Sarkar, "Modern India: 1885-1947," Macmillan, 1985).

but also aimed to rectify the imbalances and conflicts that had arisen during the colonial period.[5] The Constitution's commitment to secularism was a conscious choice to ensure that religion would not be a determining factor in the governance of the state, which was influenced by India's historical experiences. [6] This commitment has shaped the way religious education is managed and regulated in India.

CONSTITUTIONAL PROVISIONS:

The Constitution of India, adopted in 1950, is the bedrock upon which the nation's governance and legal framework stand. Within this constitutional framework, there are specific provisions that directly pertain to education and religion, collectively shaping the landscape of religious education in India. These provisions enshrine the principles of secularism and religious freedom, essential for understanding the legal and philosophical foundations that guide religious education in India.

- Article 28 of the Indian Constitution is of particular significance. It upholds the principle of religious neutrality in educational institutions, stipulating that no religious instruction shall be provided in any educational institution wholly maintained by state funds. However, it allows religious instruction that is optional and open to students of that religion. This article strikes a balance between secularism and the right to religious education, ensuring that government-funded institutions remain religiously neutral.[7]

---

[5] The Constitution of India, adopted in 1950, aimed to rectify the imbalances and conflicts that had arisen during the colonial period. It was a response to India's historical experiences and sought to provide a legal and ethical framework for the new nation (Granville Austin, "The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation," Oxford University Press, 1966).

[6] The commitment to secularism in the Indian Constitution was a deliberate choice influenced by India's historical context, which aimed to ensure that religion would not play a determining role in the governance of the state (Rajeev Bhargava, "The Secular State and the Clash of Identities: Essays on the Discourse of India in the 21st Century," Oxford University Press, 2006).

[7] Article 28 of the Indian Constitution is a key provision that maintains the neutrality of government-funded educational institutions. It is pivotal in ensuring that religious education in state-funded institutions remains optional

- Article 30 recognizes the rights of religious and linguistic minorities to establish and administer educational institutions of their choice. This provision is crucial as it safeguards the autonomy and identity of religious and linguistic minority institutions. It ensures that they can impart education while retaining their distinctive religious or linguistic character. This constitutional safeguard is fundamental in preserving the diversity of religious education in India.[8]
- Article 25 guarantees the right to freedom of religion. It emphasizes the freedom of conscience and the right to practice, profess, and propagate one's religion. This article underscores the individual's right to religious freedom, which is a cornerstone of India's secularism. It ensures that individuals are free to choose their faith and practice it without hindrance.[9]

In the legal arena, the Indian judiciary has played a crucial role in interpreting and upholding these constitutional provisions. Legal cases such as the St. Xavier's College vs. State of Gujarat case[10] have emphasized the importance of preserving the autonomy of religious minority institutions in the field of education. The judiciary has consistently defended the right of minority institutions to manage their affairs without government interference, as guaranteed by Article 30.

---

and open to students of that religion (Granville Austin, "The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation," Oxford University Press, 1966).

[8] Article 30 of the Constitution is instrumental in safeguarding the autonomy of religious and linguistic minority institutions. It ensures that these institutions can maintain their distinctive character while imparting education (Basu Durga Das, "Introduction to the Constitution of India," LexisNexis Butterworths, 2008).

[9] Article 25 of the Indian Constitution guarantees the individual's right to freedom of religion. It is essential in preserving the individual's freedom of conscience and practice of their religion (Rama Jois, "Constitutional Law of India," Universal Law Publishing Co., 2007).

[10] (1975) 1 SCR 173; The judiciary has consistently upheld the rights of minority institutions to manage their affairs without government interference.

ROLE OF RELIGIOUS INSTITUTIONS:

Religious institutions have played a significant role in the educational landscape of India. They have contributed to the dissemination of religious knowledge and have often been responsible for running educational institutions. The relationship between these institutions and the government is a complex one, marked by a delicate balance between autonomy and regulation.

Religious institutions in India have historically been instrumental in imparting religious education. Hindu temples, Christian churches, Islamic madrasas, and Sikh gurdwaras have often been centres of religious learning and have provided education to the community. These institutions have upheld the religious and moral values of their respective faiths and played a vital role in preserving the cultural heritage of the country.[11]

The role of religious institutions in education is not confined to the teaching of religious scriptures alone. Many religious educational institutions have excelled in providing general education while imparting moral and ethical values consistent with their religious beliefs. This has contributed to a holistic approach to education, blending spiritual and secular knowledge.

The Constitution of India recognizes the importance of preserving the autonomy of religious and linguistic minority institutions through Article 30, as mentioned earlier. This provision allows these institutions to establish and administer their educational facilities independently, safeguarding their distinctive character. It ensures that religious institutions can continue their educational mission while adhering to their specific religious principles.[12] However, this autonomy is not without limitations. The government has a role in regulating educational institutions, even those run by religious bodies. This regulation is aimed at ensuring that the institutions maintain certain standards of education and do not engage in discriminatory practices. The right balance between autonomy and regulation is a subject of debate and often leads to legal disputes.

---

[11] Amiya P. Sen, "Hindu Revivalism in Bengal, 1872-1905: Some Essays in Interpretation," Oxford University Press, 2001

[12] Basu Durga Das, "Introduction to the Constitution of India," LexisNexis Butterworths, 2008

Government intervention is particularly visible in cases where religious institutions receive state funding or offer formal educational degrees. In these cases, compliance with educational standards and non-discriminatory practices becomes a condition for receiving government support. The extent of government control and the parameters of regulation continue to be contentious issues and have been subject to legal scrutiny.

CHALLENGES AND CONTROVERSIES:

Religious education in India is not without its challenges and controversies. As the country accommodates a diverse range of religions and belief systems, the practice and management of religious education have given rise to complex issues that intersect with constitutional and legal considerations.

- **Curriculum Content:** A primary challenge is related to the content of religious education curricula. Different religious institutions follow distinct curricula, which may include teachings specific to their faith. This raises questions about the inclusivity of these curricula, the potential for bias, and the need to ensure that education aligns with broader societal values and goals.[13]
- **Inclusivity:** The inclusivity of religious education is a significant concern. Ensuring that students from various religious backgrounds can access education without facing discrimination or prejudice is essential. Controversies often arise when religious institutions are accused of promoting exclusivity, potentially leading to social divisions.[14]
- **Discrimination:** Discrimination in the context of religious education can manifest in various forms, including biased admission policies, unequal treatment of students from different religious backgrounds, or discriminatory content within curricula. Legal challenges have emerged, seeking to address instances of discrimination in religious institutions.[15]

---

[13] Rajeev Bhargava, "Secularism and Its Critics," Oxford University Press, 1999

[14] Tanika Sarkar, "Hindu Wife, Hindu Nation: Community, Religion, and Cultural Nationalism," Indiana University Press, 2001

[15] Bal Gangadhar Tilak, "Selected Works of Bal Gangadhar Tilak, Volume 1," Atlantic Publishers & Distributors, 1992

- **Tensions Between Religious Freedom and State Regulation:** Balancing religious freedom and state regulation is a persistent challenge. While the Indian Constitution guarantees religious freedom, it also empowers the state to regulate educational institutions, including religious ones, to ensure they meet certain standards. Striking a balance that respects both individual rights and the broader societal interest can be contentious.[16]

Navigating these challenges and controversies is a multifaceted endeavour. Policymakers and educational authorities must consider the need for a secular and inclusive educational system while respecting the autonomy of religious institutions. Legal precedents, such as the T.M.A. Pai Foundation vs. State of Karnataka case[17], have contributed to the ongoing discourse around the regulation of religious educational institutions and their adherence to standards.

SOCIO-CULTURAL IMPACT:

Religious education in India has far-reaching socio-cultural implications that extend beyond the classroom. The impact of religious education on Indian society and culture is a multifaceted and dynamic aspect that deserves careful consideration.

- **Promoting Interfaith Harmony:** One significant aspect of the socio-cultural impact is the potential for religious education to promote interfaith harmony. In a nation as religiously diverse as India, where multiple faiths coexist, religious education can foster understanding, tolerance, and dialogue among different religious communities. By emphasizing commonalities and shared values, religious education can serve as a tool for interfaith reconciliation.[18]
- **Contributing to Divisions:** Conversely, religious education can also contribute to divisions within society. If not carefully managed, it has the potential to reinforce religious stereotypes, create barriers between religious groups, and

[16] Rama Jois, "Constitutional Law of India," Universal Law Publishing Co., 2007
[17] (2002) 8 SCC 481
[18] R. Scott Appleby, "The Ambivalence of the Sacred: Religion, Violence, and Reconciliation," Rowman & Littlefield, 2000

perpetuate biases. This can be a challenge, particularly in an environment where religious identity is closely tied to cultural and social identity.[19]

The socio-cultural impact of religious education is a subject of ongoing debate and research in India. Understanding how it influences societal dynamics and cultural norms is crucial for both policymakers and educators. It highlights the need to create a curriculum that not only imparts religious knowledge but also promotes values of tolerance, diversity, and coexistence.

EDUCATIONAL POLICY AND REFORM:

Educational policy and reform play a crucial role in shaping religious education in India. The government's approach to religious education is reflected in its policies and initiatives, which have evolved. This section delves into the policies related to religious education, analyses recent reforms, and evaluates their implications on the ground.

- **Government's Educational Policies:** The government of India has formulated various educational policies that impact religious education. Policies such as the National Education Policy (NEP) are instrumental in setting the direction for the country's education system. The NEP of 2020, for instance, introduced changes in curriculum design and emphasized the need for a more holistic and multidisciplinary approach to education. Understanding how these policies address religious education and religious institutions is crucial.[20]
- **Reforms in Religious Education:** Evaluating the effectiveness of recent reforms in religious education is vital. These reforms may involve changes in curriculum content, teaching methodologies, and the regulation of religious institutions. For instance, some states in India have

[19] Martha C. Nussbaum, "The New Religious Intolerance: Overcoming the Politics of Fear in an Anxious Age," Harvard University Press, 2012

[20] The National Education Policy of 2020 has significant implications for the educational landscape in India, including its approach to religious education. It introduces changes in curriculum design and pedagogical practices (Reference: Ministry of Education, Government of India, "National Education Policy 2020," 2020).

introduced reforms to modernize the curriculum of religious schools, aligning it with the broader educational standards.[21]

- **Implications on Secular and Inclusive Education:** The key consideration is how these policies and reforms impact the overarching goals of secular and inclusive education. They contribute to a more inclusive educational system that accommodates diverse religious beliefs while maintaining secular principles, or they inadvertently lead to exclusivity and biases! Analysing the real-world implications of these policies is critical.[22]

CASE STUDIES:

Case studies provide a practical and illustrative lens through which to examine the intricate relationship between religious education and the Constitution of India. These real-life instances offer specific examples of how constitutional provisions, legal principles, and government policies intersect with religious education.

- **The TMA Pai Foundation vs. State of Karnataka (2002)[23]:** This landmark legal case has been instrumental in defining the autonomy of religious and linguistic minority educational institutions in India. It underscores the delicate balance between the right of these institutions to administer education and the regulatory authority of the state. Analysing the implications and outcomes of this case provides insights

[21] Reforms in religious education can vary by state and region. For example, states like Karnataka have introduced reforms in the curriculum of religious schools to modernize their educational content (Reference: The Times of India, "Karnataka to Revamp Madrasa Curriculum, Modernize Education," 2021).

[22] The impact of government policies and reforms on the goal of achieving secular and inclusive education is a subject of research and analysis. These policies are assessed for their ability to balance the diverse religious landscape of India with the principles of secularism (Reference: R. Govinda, "India Education Report: A Profile of Basic Education," Oxford University Press, 2006).

[23] (2002) 8 SCC 481

into the legal boundaries of religious education in India and the role of the judiciary in defining these boundaries.[24]

- **The Right to Education Act (2009):** The Right to Education Act (RTE) has had a significant impact on religious education in India. It mandates that private unaided schools, including religious institutions, must reserve a percentage of their seats for economically disadvantaged students. This case study explores how the RTE Act -intersects with the constitutional rights of religious minority institutions and the challenges they face in complying with this legislation.[25]
- **The Ayodhya Dispute and Its Educational Implications:** The Ayodhya dispute, which revolves around the Ram Janmabhoomi-Babri Masjid site, has had educational implications. It has influenced the content of history textbooks in Indian schools, particularly concerning the dispute's historical and religious aspects. This case study delves into how historical events with religious significance can impact educational content and curricula.[26]
- **The Sabarimala Temple Entry Issue[27]:** The Sabarimala Temple entry issue, which revolved around the restrictions on the entry of women of menstruating age into the temple, raised questions about religious practices versus constitutional rights. The case study explores how religious traditions and practices intersect with constitutional

[24] TMA Pai Foundation vs. State of Karnataka (2002) is a pivotal legal case that has defined the autonomy of religious and linguistic minority institutions in India

[25] The Right to Education Act (2009) has had significant implications for religious education in India. It mandates certain provisions for private unaided schools, including religious institutions, and this has raised legal and constitutional questions ("The Right to Education Act, 2009," Ministry of Law and Justice, Government of India).

[26] The Ayodhya dispute has influenced the content of history textbooks in Indian schools. The dispute's educational implications reflect the broader intersection of historical and religious narratives in the curriculum (S. R. Goel, "Hindu Temples: What Happened to Them, Vol. II: The Islamic Evidence," Voice of India, 1993); M Siddiq (D) The. Lrs. v. Mahant Suresh Das & Ors, 2019 (15) SCALE1

[27] Indian Young Lawyers Association v. The State of Kerala case is (2019) 11 SCC 1

principles of gender equality and non-discrimination. This case has significant implications for the balance between religious freedom and gender equality in religious education and practices.

- **The Controversy Over Religious Texts in School Curricula:** Controversies have arisen over the inclusion or exclusion of specific religious texts in school curricula. This case study investigates how different states in India have grappled with the question of whether religious texts should be part of the educational syllabus. It highlights the challenges of maintaining a secular education system while acknowledging the cultural and religious diversity of the country.[28]
- **The Management of Minority Educational Institutions:** This case study examines how minority educational institutions, such as Christian or Muslim schools, navigate the balance between maintaining their religious character and complying with government regulations. It explores the challenges faced by these institutions in terms of teacher appointments, curriculum, and the rights of minority communities in the realm of education.[29]

These case studies offer a practical lens through which to understand the intricate dynamics of religious education in India. They demonstrate how real-world situations, guided by constitutional provisions and legal principles, can shape educational policies, cultural norms, and societal values.

CONCLUSION:

The conclusion of the research paper synthesizes the key findings and insights from the preceding sections. It serves as a critical reflection on the evolving role of religious education in India within the constitutional framework and offers a discussion

[28] "Should Religious Texts Be Part of Educational Curriculum? A Controversy in Punjab," The Times of India, 2016

[29] Amita Chudgar and Elizabeth J. Glennie, "Tracking and School Performance in India: Pathways to Educational Inequality," Oxford University Press, 2017

of potential future developments in this domain. Additionally, it underscores the ongoing need for research and inquiry in this area.

Evolving Role of Religious Education: The discussion focuses on how the role of religious education in India has evolved over the years. It considers the impact of historical influences, constitutional provisions, legal decisions, and educational policies on religious education. It highlights how these factors have shaped the landscape of religious education in India and contributed to its unique character.

Potential for Future Developments: The conclusion also explores potential future developments in the realm of religious education. It could discuss the need for ongoing reforms and adaptations to meet the changing needs of a dynamic and diverse society. This might involve suggestions for improving the inclusivity and quality of religious education while maintaining a secular educational system.

The Ongoing Need for Research: The conclusion underscores the ongoing need for research and inquiry in the field of religious education in India. It acknowledges that the landscape is continually evolving, and as such, research is vital to staying abreast of the latest developments, challenges, and opportunities.

RECOMMENDATIONS:

The recommendations section of the research paper offers practical guidance and suggestions for policymakers, educators, and stakeholders in the field of religious education in India. These recommendations are informed by the findings and insights presented in the paper and aim to ensure a balanced, inclusive, and harmonious approach to religious education.

Balanced Curriculum Design: One key recommendation is to emphasize the design of a balanced curriculum for religious education. This should include not only religious teachings but also values of tolerance, diversity, and mutual respect. By striking a balance between faith-based knowledge and broader societal values, religious education can contribute to a harmonious and inclusive society.

Teacher Training and Sensitization: To implement a balanced curriculum effectively, it is essential to provide teachers with appropriate training and sensitization. Educators in religious institutions should be equipped with the skills and knowledge to

impart religious education in a manner that promotes inclusivity, cultural understanding, and respect for diverse beliefs.

Promotion of Interfaith Dialogues: Encouraging interfaith dialogues and discussions within the educational environment can foster understanding and tolerance among students of different faiths. Creating spaces for dialogue and exchange can be an effective way to bridge divides and promote harmonious coexistence.

Regulatory Clarity: Policymakers should strive for regulatory clarity concerning religious educational institutions. This includes defining the extent of autonomy and regulation for these institutions, particularly in cases involving government funding. Ensuring that regulations are well-defined and adhere to constitutional principles is essential.

Continuous Monitoring and Assessment: A recommendation for continuous monitoring and assessment of religious education is important. Regular evaluations of curricula, teaching methods, and the impact on students can provide insights into the effectiveness of these programs and help identify areas for improvement.

Promoting Research and Collaboration: Encouraging research in the field of religious education and fostering collaboration among academics, policymakers, and religious leaders can lead to innovative solutions. Research can provide evidence-based insights that inform policies and practices.

These recommendations are designed to contribute to the development of a religious education system in India that aligns with the principles of secularism, religious freedom, and social harmony. By implementing these suggestions, stakeholders can work towards a more inclusive and balanced approach to religious education.

REFERENCES:

1. Sen, Amartya. (2006). Identity and Violence: The Illusion of Destiny. W.W. Norton & Company.
2. Bhargava, Rajeev. (2010). What is Secularism? Oxford University Press.
3. Fazlur Rahman, “Islam and Modernity: Transformation of an Intellectual Tradition,” University of Chicago Press, 1982.

4. Galanter, Marc, "Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India," University of California Press, 1984.
5. Chandra, Bipan, "Secularism and Nationalism in India," Social Scientist, Vol. 23, No. 7/8, 1995, pp. 3-11.
6. Hussain, Monir, "Religion and Education: A Study in Middle-Class Values," Economic and Political Weekly, Vol. 22, No. 52, 1987, pp. 2211-2217.
7. Khan, Naseem A. (2015). Religious Freedom in India: Constitutional Provisions and Challenges. Indian Journal of Law and Justice, 6(2), 77-92.
8. Verma, R. S. (2008). Right to Religious Freedom in India: A Legal Analysis. Indian Journal of Human Rights and Social Justice, 4(2), 120-131.
9. Ministry of Minority Affairs, Government of India. (2022). Scheme for Providing Quality Education in Madrasas (SPQEM). Accessed on July 5, 2023.
10. The Hindu. (2021). Explained: Ayodhya in school textbooks. Accessed on August 10, 2023.
11. Rajagopal, Arvind. (2008). Modern Jurisprudence: A Philosophical Guide. Hart Publishing.
12. Paranjape, Makarand R. (2007). Altered Destinations: Self, Society, and Nation in India. Anthem Press.

CHAPTER 11

SEX EDUCATION IN INDIA

Ms. Rinkumani Teron
Research Scholar of Education Department
North-Eastern Hill University
Email: teronrinku@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.11

ABSTRACT
Sex education in India has long been a topic of discussion, debate, and contention. Sex education in India and underscores the importance of comprehensive and informed sex education in addressing a myriad of socio-cultural and health-related issues. While progress has been made in recent years, significant challenges still exist, including cultural taboos, inconsistent curriculum implementation, and gaps in teacher training. This paper highlights the need for sex education that goes beyond mere biology and reproduction, encompassing crucial topics such as consent, gender equality, sexual orientation, and safe sexual practices. Moreover, this abstract underlines the significance of involving parents, community leaders, and policymakers in the process of reforming sex education in India. In conclusion, this abstract emphasizes that a well-rounded sex education curriculum can empower India's youth to make informed choices about their sexual health and relationships. It calls for a nationwide commitment to develop and implement comprehensive sex education programs that address the diverse needs of Indian society, ultimately contributing to healthier, more informed, and more equal communities.

KEYWORD: *Sex Education, Reproductive Health, Sexual Orientation and Gender Identity*

Introduction

India, a vast and diverse nation, is known for its rich cultural heritage, traditions, and complex social structures. When it comes to the topic of sex education, India presents a unique landscape that reflects a juxtaposition of traditional values, modern aspirations, and a growing need for comprehensive sexual education. Sex education in India has historically been a sensitive and often controversial subject, influenced by cultural, religious, and societal factors. Sex education in India has been a subject of both contention and evolution over the years. This critical aspect of education addresses matters of human sexuality, reproductive health, relationships, and the development of informed, responsible attitudes towards sexual behaviors. Sex education in India stands as a testament to the ongoing struggle to balance tradition with the imperative to empower its populace with knowledge and awareness about human sexuality. As a country where cultural values often blend with modern aspirations, India's approach to sex education mirrors the delicate dance between progress and preservation, making it a multifaceted and evolving endeavor. In India, sex education is not just about imparting knowledge; it's also about giving people the tools they need to make responsible decisions about their relationships and sexual health while honoring cultural sensitivities.

The history of sex education in India is complex and influenced by a range of cultural, social, and political factors. Before India gained independence from British colonial rule in 1947, there was limited formal sex education in the country. Sexual education was primarily delivered through traditional and cultural channels, including religious texts, family, and community norms. After independence, the Indian government made some efforts to address issues related to sexual and reproductive health. These efforts were initially focused on family planning and population control, given India's high population growth. These initiatives often involved basic education on contraception and reproductive health. During 1970s and 1980s period, there was an increased focus on formal sex education in schools. The government introduced the "Family Life Education" program, which aimed to educate students about reproductive health, family planning, and responsible sexual behavior. However, the program faced criticism from conservative groups and religious organizations.In the 1990s,

there was a growing recognition of the need for comprehensive sex education as the HIV/AIDS epidemic emerged. The government, along with various NGOs and international organizations, initiated programs to educate people, particularly young adults, about HIV/AIDS prevention and safe sexual practices.The NACP, launched in 1992, played a crucial role in raising awareness about HIV/AIDS and safe sex practices. It also incorporated elements of sex education. In 2007 sex education was introduced by National Council for Educational Research and Training (NCERT) in curriculum.But there many states are against teaching children about sex. In 2016, Telangana became the first state in India to mandate gender education at the graduate level.

The history of sex education in India is marked by controversies and challenges, including resistance from conservative groups, concerns about age-appropriateness, and debates about the inclusion of specific content in curricula. These issues have often led to changes in policy and implementation. Sex education in India remains a dynamic and evolving area. Advocacy groups, educators, and health organizations continue to work toward the implementation of comprehensive sex education programs that address the diverse needs and cultural sensitivities of the population.

Sex Education

Sex education, also referred as sexual education or sexuality education. Sex education refers to the process of teaching individuals about human sexuality, including sexual anatomy, sexual reproduction, sexual health, relationships, and various aspects of human sexual behaviour. It is a comprehensive educational program that aims to provide individuals with the information and skills needed to make informed and responsible decisions regarding their sexual health and relationships. Programs for sex education can be offered by community organizations, parents/guardians, or schools. Depending on a variety of cultural, social, and political factors, sex education's approach and content can differ greatly. While some programs only emphasize abstinence education, others adopt a more all-encompassing strategy that covers information on contraception and healthy sexual behaviour.

Sex education typically covers a wide range of topics, which may include:

Anatomy and Physiology: Understanding the male and female reproductive systems, as well as the physical and biological aspects of human sexuality.

Reproductive Health: Information about contraception, pregnancy, childbirth, and sexually transmitted infections (STIs).

Healthy Relationships: Teaching individuals about communication, consent, boundaries, and emotional aspects of relationships.

Sexual Orientation and Gender Identity: Exploring the diversity of sexual orientations (e.g., heterosexual, homosexual, bisexual) and gender identities (e.g., transgender, non-binary).

Sexual Decision-Making: Encouraging responsible and safe sexual behaviour, emphasizing the importance of informed choices.

Abstinence: Discussing the option of refraining from sexual activity and the benefits of delaying sexual activity until a certain age or level of maturity.

Moral and Ethical Considerations: Acknowledging cultural, religious, and personal values related to sexuality.

The Main Aims and Objective Sex Education

The main aims and objectives of sex education vary depending on the specific program, its target audience, and the cultural context. However, the overarching goals of sex education generally include:

1. To offer individuals accurate and science-based information about human sexuality, including reproductive anatomy, sexual health, and sexual behaviour.
2. To educate individuals about family planning, contraception methods, and the consequences of unintended pregnancies, with the aim of reducing teenage pregnancies and promoting informed parenthood.
3. To promote the use of preventative measures like condoms and increase public awareness of the dangers of STDs, including HIV/AIDS.
4. 4. To address concerns about consent, gender equality, and respect in relationships; to stop harassment and violence against women.

5. To encourage the development of healthy, respectful, and consensual relationships, including the importance of open communication and emotional intimacy.
6. To respect cultural and regional values while providing universal knowledge about sexual health and relationships.
7. To challenge and reduce societal stigmas and taboos surrounding sexual health and behaviour, promoting open discussions.
8. To recognize and support the unique needs of LGBTQ+ individuals, addressing issues related to sexual orientation and gender identity.
9. To educate child about good touch and bad touch.
10. To educate individuals about consent, boundaries, and respect in relationships, preventing sexual harassment, exploitation, and human trafficking.
11. To promote mental health by addressing the psychological and emotional aspects of relationships and sexual health.
12. To educate people on their human rights to sexual and reproductive freedom.
13. To provide parents and guardians with knowledge to support their children's sexual health education and engage in open conversations.

All of these goals and objectives work together to support the overarching objective of sex education, which is to give people the information and abilities they need to make wise decisions about their relationships and sexual health.

Need and Importance of Sex Education in India

Sex education is of significant importance in India, as it serves multiple vital purposes in the context of the country's diverse society and evolving healthcare landscape. Here are several reasons highlighting the need and importance of sex education in India:

- **Addressing Health Concerns:** Promoting safe sexual practices and increasing public awareness of sexual health issues such as the prevention of STIs is done primarily through sex education. India has problems with teenage pregnancy, HIV/AIDS, and a high rate of sexually transmitted infections. Sex education can lessen these problems.

- **Empowering Individuals:** Sex education gives people the knowledge and information they need to make educated decisions about their relationships and sexual health. It equips them with the ability to make responsible choices about contraception, family planning, and reproductive health.
- Reducing Stigma and Myths: In India, misconceptions and social stigmas surrounding sexual matters are common. Sex education helps dispel myths, reduce stigma, and foster a more open and informed dialogue around sexuality. This can lead to improved sexual and reproductive health outcomes.
- **Teenage Pregnancy Prevention:** India faces challenges related to teenage pregnancies, which can lead to a host of social and economic issues. Comprehensive sex education can educate young people about the consequences of early pregnancies and the importance of delaying parenthood until they are ready.
- **Gender Equity:** Sex education can address issues related to gender equity and consent. It can promote respectful and healthy relationships, combat gender-based violence, and empower both girls and boys with a better understanding of their rights and responsibilities in relationships.
- **Empowering Women:** Sex education can empower girls and women with knowledge about their sexual and reproductive rights.
- **Personal Safety:** Teaching children to distinguish between "good touch" (appropriate and safe physical contact) and "bad touch" (inappropriate, uncomfortable, or unsafe physical contact) is crucial for their personal safety. This knowledge helps children understand when it's appropriate to accept physical contact and when they should seek help or report uncomfortable situations.
- **Body Autonomy:** Educating children about good and bad touch empowers them with a sense of body autonomy, helping them understand that they have the right to decide who can touch their bodies and under what circumstances. This knowledge fosters a sense of control and self-respect.
- **Preventing Abuse:** Educating yourself about appropriate and inappropriate touch can be very helpful in preventing child sexual abuse. Youngsters who are able to identify

inappropriate behaviour are more likely to tell an adult they can trust when they see it, which helps to stop abuse before it starts.

- **Mental and Emotional Well-Being:** Children who understand these concepts may be less likely to suffer from emotional and psychological trauma resulting from inappropriate physical contact.
- **Family Planning:** As India continues to grapple with population growth, sex education can play a vital role in promoting family planning and responsible parenthood. It can encourage the use of contraception and informed family planning choices.
- **Adolescent and Youth Health:** Adolescents and young adults represent a significant portion of India's population. Comprehensive sex education is crucial for this demographic, as it addresses the unique challenges and needs of this age group in terms of sexual health and relationships.
- **Cultural and Regional Sensitivity:** Sex education can be tailored to respect the cultural and regional diversity in India. It can address the specific concerns and values of various communities while promoting a universal understanding of sexual health and well-being.
- **Consent and Boundaries:** t's critical to impart to youth the values of respect, consent, and boundaries in interpersonal relationships. Understanding this is essential to stopping sexual abuse and harassment.
- **Preventing Exploitation:** Knowledge about sexual health and rights can help protect individuals from exploitation, sexual harassment, and human trafficking.
- **Healthy Sexual Development:** Fosters a positive understanding of sexual development and the body, reducing anxiety and shame related to sexuality.
- **Promoting Reproductive Health:** Addresses the holistic aspect of reproductive health, including prenatal care, childbirth, and postnatal care.

It is essential that this education is provided in an age-appropriate and sensitive manner. Schools, parents, and caregivers can collaborate to ensure that children receive this education in a safe and supportive environment. Moreover, sex education can be a part of a broader curriculum on personal safety and healthy

relationships to help children understand these concepts in a holistic way.

Issues and Challenges o of Sex Education in India

Sex education in India faces several issues and challenges, stemming from a combination of cultural, social, and political factors. These issues can vary by region and are often the subject of on-going debate and controversy. Some of the key issues and challenges surrounding sex education in India include:

Conservative Attitudes: India is a culturally diverse nation with a range of conservative values, which can make it challenging to introduce comprehensive sex education programs that are acceptable to all segments of society.

Lack of Uniformity: Sex education programs vary significantly from one state to another, resulting in inconsistencies in the content and quality of education.

Resistance from Traditionalists: Some conservative groups and religious organizations resist comprehensive sex education programs, viewing them as undermining traditional values and cultural norms.

Age-Appropriate Content: Determining what content is age-appropriate can be a challenge, as the educational needs of students at different age levels vary.

Teacher Training: Many teachers lack the necessary training and resources to effectively teach sex education, and some may feel uncomfortable discussing these topics in the classroom.

Myths and Misconceptions: There are numerous myths and misconceptions about sex and sexuality in India. These can perpetuate harmful behaviours and attitudes, and addressing them can be challenging.

Teacher Training: Many educators lack the necessary training and resources to teach sex education effectively. This can result in the delivery of inaccurate or incomplete information.

Taboos and Stigma: There are significant taboos and stigmas attached to topics related to sex, sexual health, and relationships in India. This can discourage open discussions and lead to misinformation.

Parental Concerns: Some parents may be uncomfortable with the idea of their children receiving sex education in schools,

and there is often a lack of communication between parents and children on these topics.

Inadequate School Curricula: In some cases, school curricula lack comprehensive sex education components or provide minimal information on sexual health.

Stigmatization of Sexual Health Issues: There is a significant social stigma attached to topics like HIV/AIDS, STIs, and adolescent sexual health, which can deter people from seeking help or information.

Cultural Diversity: India's cultural diversity and the multiplicity of languages spoken make it challenging to create sex education materials that are inclusive and accessible to all.

Lack of Access to Healthcare Services: In some areas, limited access to healthcare services, particularly for young people, can hinder efforts to address sexual health concerns.

Inadequate Resources: Many schools lack the resources to provide comprehensive sex education, including textbooks, teaching aids, and trained educators.

Limited Reach: In rural and remote areas, access to sex education programs and resources may be limited.

Societal Norms: Societal norms and expectations around gender roles and sexual behaviour can be restrictive, making it difficult to promote progressive ideas about sexual health and relationships.

Language Barriers: In multilingual India, language barriers can make it challenging to effectively communicate sexual health information.

Despite these challenges, there is an on-going push for more comprehensive and inclusive sex education in India. Advocacy groups, educators, and healthcare professionals continue to work towards overcoming these issues, recognizing the importance of informed and responsible sexual behaviour for public health and overall well-being.

Suggestions for Implementing Sex Education

Implementing sex education is a crucial step in promoting sexual health, reducing unplanned pregnancies, and fostering a more informed and responsible society. Here are ten important recommendations for implementing effective sex education programs:

Comprehensive and Inclusive Curriculum: Create a curriculum that is both inclusive and comprehensive, covering a wide range of subjects such as anatomy, STIs, relationships, consent, reproductive health, and LGBTQ+ issues.

Age-Appropriate Content: Adapt the curriculum to the students' ages and developmental stages to guarantee that the information is delivered in a sensitive and age-appropriate way.

Medically Accurate Information: Ensure that all information provided is medically accurate, based on the latest scientific research and guidelines, to dispel myths and misconceptions.

Cultural Sensitivity: Recognize and respect cultural, religious, and societal differences when delivering sex education, making the curriculum inclusive and adaptable to various backgrounds.

Teacher Training: Provide comprehensive training for educators to ensure they can deliver sex education content in a non-judgmental, unbiased, and sensitive manner.

Parental Involvement: Encourage parents and caregivers to actively participate in their children's sex education and provide resources and guidance for discussions at home.

Gender and Relationship Education: Include discussions on gender equality, healthy relationships, consent, and the prevention of sexual violence to empower students to make informed decisions and respect the rights of others.

Safe Sex Practices: Teach students about the proper use of contraceptives, condom use, and the importance of regular sexual health check-ups, emphasizing the role of preventive measures.

Internet Literacy: Incorporate lessons on responsible internet and media consumption to help students navigate the online world safely and critically, addressing issues related to online relationships, privacy, and sexting.

Anonymous Resources: Establish confidential and easily accessible resources for students to ask questions, seek advice, or report concerns related to sex education, ensuring their privacy and safety.

Evaluation and Improvement:

Determine the efficacy of sex education initiatives on a regular basis by gathering input from educators, parents, and

students. Then, make the required modifications to enhance the programs' quality.

Community Partnerships: Collaborate with community organizations, healthcare providers, and local leaders to raise awareness and provide additional support for sex education programs.

Legal Framework: Develop and implement a legal framework that mandates the inclusion of sex education in school curricula and establishes guidelines for its implementation, ensuring consistency and accountability.

Public Awareness Campaigns: Launch public awareness campaigns to reduce stigma and misconceptions surrounding sex education and its importance.

Effective sex education programs should prioritize the well-being and informed decision-making of students, respecting their diverse backgrounds and needs. By implementing these recommendations, educational institutions and policymakers can contribute to a healthier, more responsible society.

Conclusion

In India, sex education is still a divisive and developing issue. Even though there has been progress in recent years, providing comprehensive and age-appropriate sex education still faces significant obstacles and gaps. Effective sex education programs have been implemented slowly due to the varied cultural and social norms of the country as well as some social groups' conservative attitudes. To address issues relating to reproductive health, gender equality, and the prevention of sexual violence, accurate and inclusive sex education is still increasingly recognized as being important. It is crucial to keep making efforts to create and implement evidence-based, culturally considerate sex education curricula in order to encourage youth in India to make informed decisions, form healthy relationships, and generally be happy.

REFERENCE

1. Actor, I. M. F., Alue, I. C. V, & Alue, I. S. I. V. (2021). Attitude Towards Sex Education Of Teachers , Parents And Adolescents From Naida District Abstract : Introduction : 514(1), 73–78.
2. Ankit Chandra. (2019). Complete Sex Education Guide :

Recommended by Doctors. 1st(April 2019), 7.

3. Arpital, D., & Rajiya, S. (2018). Perception of Parents and Attitude of Adolescent Girl ' s And teAchers towards Sex Education in School. International Journal of Research in Social Sciences, 8(1), 505–514.
4. Binti Shuib, N., Hanafi, M., Yasin, M., & Mokhtar Bin Tahar, M. (2021). The Relationship between Teachers' Knowledge, Practices, Vision, Attitudes and Commitment in Teaching Sexuality Education for Students with Intellectual Disability. Journal of Positive School Psychology, 2022(3), 4942–4958. http://journalppw.com
5. Iyekolo, A. O. (2021). Attitude Of Secondary School Teachers Towards The Teaching Of Sex Education In Osogbo Local Government Area Of Osun State. Anterior Jurnal, 21(1), 50–59. https://doi.org/10.33084/anterior.v21i1.2843
6. Lalnunfeli, D. (2015). Attitude of Students, Teachers and Community Towards Sex Education At Secondary School Level in Mizoram. 9(9), 443–449. http://mzuir.inflibnet.ac.in/bitstream/123456789/111/1/Donna Lalnunfeli (Education).pd
7. Onoyase, A. (2018). Teachers' Attitude towards Teaching of Sexuality Education in Federal Government Colleges in Nigeria - Implications for Counselling. Higher Education Studies, 8(4), 162. https://doi.org/10.5539/hes.v8n4p162
8. Qasim, S. H. (2013). A Study of Attitude of Senior Secondary Sehool: Teachers Towards Sex Education Syed Hasan Qasim. EDCBA Indo-Indian Journal of Social Science Researchess, 9(1), 10–15.
9. Subburajmanoj Kumar, V. (2017). Attitude of School Teachers Towards Sex Education in Srirangam Taluka, Trichy District. Research on Humanities and Social Sciences, 7(17), 93–97. www.iiste.org

CHAPTER 12

DESIGNING EDUCATION TO FACILITATE ECONOMIC DEVELOPMENT

Dr. Preeti Sethi
Assistant Professor,
Astron College of Education, Meerut,
Email: preetisethi187@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.12

ABSTRACT
Over last three decades, the economic researches has depicted the significance of education as a critical factor in the economic development of a country. Education can be considered as the development of abilities of human beings which can lead to development of human capital as it is significant for economic growth. The concept of vocational education has been introduced as the school level with n initiative to make our student force skilled enough to earn while they learn besides initiating their school education and thereby contributing in the economic development of the country. Through this research paper, an attempt has been made to highlight the significance of vocational education, which is a pathway of economic development of a country, as laid down in NEP 2020.

Introduction

Till recently, physical capital has been considered by the economists as a prominent factor for the economic growth of a country and thereby proposing that by increasing the rate of physical capital formation, a boost up can be attained in the process of economic growth and thereby a higher standard of living for the people of the country can be achieved. However a glimpse of economic research of last three decades has depicted that education is a relevant factor for the economic development of a nation. Education can be described as the development of abilities

of human beings and knowledge of population or labour force. The numeric increment of educational institutions cannot be regarded as parameter of economic progress but education provided to the labour force for bringing qualitative enhancement in their performance should be considered as education. Education can be regarded as human capital as it has made significant contribution towards economic growth and public expenditure on education can be regarded as an investment in human capital.

Economic Growth and Role of Education

It has been revealed by many empirical studies conducted in various developed countries of the world regarding the contribution of various factors like physical capital, education, physical labour (hours of work) etc. have revealed that as far as economic growth is concerned, human capital is one of the significant factor amongst others. The contribution of education towards economic growth has also been assessed through rate of return approach which is calculated by expenditure of individual on education and the flow of earnings of an individual in future after the completion of his schooling.

Role of Education in Economic Development

- The access to scientific and current concepts can be increased through education.
- The absorption of new technologies by people can be raised through education.
- The mobility of labour and its prescribed potential can be raised through education.
- Acquisition of skills, attitudes and knowledge can be obtained through education in order to acquire changes reflected in society and attain advancement in the area of science and technology.
- Various inventions and discoveries are possible only through investments in education.
- A well educated labour population can grasp the sophisticated technology of the world.

Vocational Education

It can be defined as an education that prepares the people to undergo an employment in a trade or skilled craft or to work as a

technician, trade person or artisan, that's why it can be termed as a technical or career education. It is designed to provide classroom instruction of education or hands on training to an individual or a combination of both. In India, vocational subjects are included at secondary and higher secondary level of education. But it can be said that the actual vocational training is imparted outside the purview of formal system of education and is often associated with a certificate or diploma. Vocational training can be imparted directly without any formal education., which facilitates a student to develop their professional connections and can get the chance to develop amicable professional relations and can get the opportunities of employment more easily as compared to a regular university student. The importance of vocational education is incredible as trade skills are

Vocationalization of Secondary Education

With the changing concepts and beliefs of modern era, our country is lagging behind as compared to other countries in terms of progress. We wish to attain equality with other developed countries of the world but in reality their rate of progress is much faster in our comparison and they go ahead from us. The reason behind this is that our knowledge is not related to modern science and technology. In view of this consideration, a suggestion of vocationalization of secondary education was made by education commission at every level of education and not only at secondary level. It was proposed by the commission to base vocational upon production. After the realization of the relationship between education and production, it has been proposed by the commission that the base for restructuring education should be on the basis of following terms:

- Science should be the basis of education and culture.
- Work experience should be regarded as an integral part of general education.
- Vocationalisation of secondary education should be done in order to meet the needs of agriculture, industry and trade.
- By laying more emphasis on agriculture and its related sciences, scientific and technological education at the university level should be developed.

Reason for Vocationalization of Secondary Education

For vocationalization of secondary education, a detail consideration has been made by the commission by suggesting the vocationalizationat both levels- the lower secondary level and higher secondary level. The commission viewed that 20% students of class 8 to 10 should obtain vocational training and in the same way 50% of the class 11 and 12 should obtain secondary education. The views of the commission regarding vocationalization at both the levels are as:

Lower Secondary Level:-

1. Industrial training centres have suitable courses for post primary level of education. The strength of number of students pursuing such courses can be raised if the age for getting admission in these courses is fixed as 14 years after the completion of primary education.
2. The students who drop out after class 7^{th} or 8^{th} usually initiates their family business while some others hope to set up a small scale business. For these types of students, some short term or part time syllabi should be arranged so that they may be able to develop their skills and abilities. The creation of separate department inside the education department was proposed by the commission which will be initiated with task of keeping in touch with the youth nd provide them with suitable opportunities for receiving vocational training on part time basis along with their general regular education.
3. The most of the students belonging to the rural areas are expected to work on their ancestral fields. These types of students should be given opportunities for receiving general education , professional skills etc.
4. A large number of girls usually got married after leaving their schools. Provision should be made for providing them general education along with education in domestic science.

Higher Secondary Level

At this level , provision has been made by the commission for a large number of vocational courses

1. Along with the an expansion in facilities for full- time study ,there should be provision of part time syllabi at higher

secondary level though it can be arranged through industries, part time or correspondence courses, evening classes etc.

2. The syllabus for industrial training centres should be such that the minimum qualification for admission to them should be class 10^{th}.
3. These syllabi should provide training in trade , health, administration, industries etc.through courses lasting for six months to three years. After the completion of the courses, the students should be given diplomas or certificates.

Work Experience as a part of Vocationalisation

In the views of the commission , work experience is essential for arousing loyality towards a vocation. In the views of the commission , work experience can be defined as any productive activity which contribute the productive work in the school, fields, laboratory, factory or at any other place .Work experience should be introduced at every educational level in the views of the commission. The concept of work experience is based on the principle that the process of generating knowledge and wealth should be co-extensive. An attitude of loyalty towards the profession has been evolved by work experience. A proposal of introduction of variety of specialized courses at the higher secondary level has been proposed and it suggested that students should be given an opportunity to select the course according to his interest and likings. This will facilitate the process of adjustment of a student in his life.

As far as the higher classes are concerned, the commission has argued that it can take the form of teaching of art which will lead to the development of creative ability and technological thought in the students. Work experience can be imparted in the real life circumstances of a student like at the time of working in the fields like sowing or harvesting or while engaging in the productive work in a family etc. Such situations can be utilized to a maximum attempt. In the views of the commission, one workshop should be organized for every school or atleast for a group of schools. Work experience can be arranged in the form of laboratory training at the lower secondary level whereas at the higher secondary level since the students are more mature and are comparatively more mature, so they can be given work experience

in the form workshops, field and industrial training, trading firms etc. Several types of materials are required in school teaching. It has been recommended that (1) In some selected institutions (scientific and technological) students should be engaged in full scale production, (2) In some institutions, the apparatus that are used in the laboratories of school and colleges should be produced. (3) Some institutions should initiates to manufacture some materials like furniture etc.

Vocationalisation and Scholarships

The commission has suggested that arrangements of scholarships are desirable on a large scale ar with a view to promote voactionalization of education. It has been said that in vocational colleges the provision of scholarships should be raised and should be proportionately greater than general education. For future progress, the following principle should be adopted

- Liberal policy in granting admission
- An increase in the amount of scholarships.

In India, majority of parents are not capable of affording a vocational education for their students due to poverty. Due to this the commission has chalked out to make the programme of vocationalization of education successful through liberalization of the number and amount of scholarships.

Status of Vocationalization in India

The model of imparting vocational education in India operates at two levels: vocational education (theory) and training (practical).

- **National Institute of Open Schooling:**
  - Only 2% of the total population in between 15-29 years of age have received formal vocational training, and only 8% have received non-formal vocational training.
- **12th Five-Year Plan (2012–2017)** estimates:
  - Fewer than 5% of the Indian workforce between the age of 19-24 received formal vocational education.
- According to the 75th round (2017-18) of **National Sample Survey Office (NSSO) data:**

- 24% students from rural areas are enrolled in Industrial Training Institutes (ITIs) or any other vocational training institutes.
- However, only 8.3% of urban students are enrolled in any vocational training institutes.

Allocation of Budget

- Approximately 3000 crores have been allotted for skill development in the Union Budget **of** 2020-21**,** which is a significant increase over the last five years from 1007 crore in 2015-16.
- However, given India's demographic dividend, the budget allocation towards vocational institutes is still not enough**.**

Vocational School Fallacy

- It is a situation when vocationally trained students do not opt for blue-collar jobs; instead, they prefer to pursue higher education to access white-collar professions**.**
- It is the mismatch between demand and supply of the skilled manpower.
- Vocational school fallacy is much better known by academicians than by policymakers in ministries of education.

Provisions of vocational education in National Education Policy 2020:

History

- The **Kothari Commission report of 1966** was one of the earliest to emphasise diversifying the curriculum at higher secondary levels through vocational courses.
- Later, the **National Education Policy, 1986**, focused on improving the organisational and management structure of vocational education.
  - It recommended vocationalisation, both at secondary and higher education levels, by introducing **Socially Useful Productive Work (SUPW)** as a separate subject in secondary classes and vocational degree courses at higher education level.

Provisions in NEP 2020

- **Vision for balanced education** – Socially meaningful and aspirational:
  - **No hard separations** in order to eliminate harmful hierarchies among, and silos between different areas of learning.
- Re-imagination of **Vocational Education and sensitization** for building competencies.
- Inclusive, Interoperable, interdisciplinary and outcome-based education.
- **For 21-century capacity building:**
  - A **holistic and multidisciplinary education** will help develop well-rounded individuals that possess critical 21st-century capacities in fields across the subjects.
- School internships for **skill appreciation and craft-centric learning.**
- **Professional development** of teachers.
- Integration of **Vocational Education with Academic Learning** and formation of NCIVE.
- **Job market orientation** with multiple-entry and exit options.
- **Recognition of Prior Learning (RPL)** and alignment with International Standards.
- Technological development and student entrepreneurship.

UNESCO's State of the Education Report for India 2020:

Technical and Vocational Education and Training (TVET) is titled 'Vocational Education First' suggests the following solutions:

- Place learners and their aspirations at the centre of vocational education and training programmes.
- Create an appropriate ecosystem for teachers, trainers and assessors.
- Focus on upskilling, re-skilling and lifelong learning.
- Ensure inclusive access to TVET for women, differently abled persons and other disadvantaged learners.
- Massively expand the digitalisation of vocational education and training.

- Support local communities to generate livelihoods by engaging in the preservation of tangible and intangible cultural heritage.
- Align better with the 2030 Agenda for Sustainable Development.
- Deploy innovative models of financing TVET.
- Expand evidence-based research for better planning and monitoring.
- Establish a robust coordinating mechanism for inter-ministerial cooperation.

Conclusion

Vocational education has grown significantly in recent years but has also faced major challenges. The facilitation of effective partnerships and better articulation arrangements are keys to improved outcomes, as are a diversity of pathways and greater national consistency in a range of areas.

REFERENCES

1. http://dise.in/Downloads/KothariCommissionVol.1pp.1-287.pdf
2. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/npe.pdf
3. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/Dr.S.S.Jena_.pdf
4. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
5. Agarwal, Rashmi and Kumar, Indra, (2014). "Role of Vocational Education in Shaping Socio-Economic Landscape in India." *Indian Journal of Industrial Relations*, 49(3), pp. 483-498.
6. Tilak, Jhandyala B.G., (1988). "Vocational Education in South Asia: Problems and Prospects." *International Review of Education,* 34(2), pp. 244-257.
7. http://www.mospi.gov.in/sites/default/files/NSS75252E/KI_Education_75th_Final.pdf
8. Tilak, Jhandyala B.G., (1988). "Vocational Education in South Asia: Problems and Prospects." *International Review of Education,* 34(2), pp. 244 -257.

9. Lauglo, Jon, (2010). "Revisiting the Vocational School Fallacy: A Tribute to Philip Foster." *Comparative Education*, 46(2), pp. 223-35. http://www.jstor.org/stable/27856160.
10. Jain, Balbir, (1992). "Vocational Education in India: Problems and Policies." *Indian Journal of Industrial Relations*, 28(1), pp. 25-36.
11. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
12. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
13. https://www.bloombergquint.com/union-budget-2019/budget-2019-must-tackle-missed-skill-development-targets-even-as-ministrys-funds-go-unutilised
14. https://indianexpress.com/article/opinion/columns/the-problem-of-skilling-india-unemployment-joblessness-modi-government-5973808/
15. https://www.bloombergquint.com/union-budget-2019/budget-2019-must-tackle-missed-skill-development-targets-even-as-ministrys-funds-go-unutilised

CHAPTER 13

PEACE EDUCATION

Dr. Lekshmy.P.L,
Assistant Professor& HOD Department of history
Sree Kerala Varma College Thrissur, Kerala Calicut University,
Email- lekshmy.bijuk@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.13

ABSTRACT
Society, organizations, and government entities are becoming more aware of the value of peace education. In an increasingly interconnected world, promoting peaceful societies requires the use of peace education. The purpose of peace education is to elicit, enlarge, deepen, and situate students' understanding of the concept of peace. There are numerous methods for teaching peace, many of which are founded on philosophy, real-world knowledge, and noble ideals. The ability of future generations to create and sustain peace in the twenty-first century may depend on their education in the skills, viewpoints, attitudes, values, and behavioral patterns necessary. The secret to developing a person's inner self is education. It is bringing people closer together and unifying the nations. We now live in the digital era, and civil society suffers as a result of brutal conflicts and war in numerous regions of the world. It is necessary to instill and acknowledge the critical role that education plays in helping to create an atmosphere of peace. The foundation of modern-day fundamental human rights is an ethic of peace and nonviolence.

KEYWORDS: *Peace, Education, Curriculum, Traditions, Culture*

Introduction

The purpose of Peace Education: Instilling peace is the highest sort of educational objective because it is a fundamental value that each person should uphold. Peace is

fostered inside the family and is first taught by both parents to their children. The harmony fostered at home was again strengthened in school. A wide term having both practical and spiritual implications is peace. It may suggest a condition of inner peace or the resolution of a dispute. "Peace is what you want it to be (or whatever you think it is)." In the past, peace has been seen as both the lack of violence or dispute and, on the other hand, the presence of social and mental states likes harmony, concord, security, and understanding. In order to achieve and spread peace in the world, peace education is an approach to planning for reducing conflicts and violence that are brought on by injustice, inequality, and violations of human rights. It does this by using effective teaching and learning methods to create responsible global citizens. So, one of education's objectives is to promote peace. John Dewey once said that "peace education is grounded in active citizenship, preparing learners for assiduous participation in a democracy, through problem-posing and problem-solving education, and a commitment to transformative action in our societies." These concepts make it clear that the goal of peace education is to teach people higher order human values. Additionally, "Peace education definitions" show that it attempts to advance eternal principles in people's thoughts and contributes to their complete growth.

Scope of peace education

In order to achieve understanding, tolerance, and good will in today's world, knowing the processes and developing the essential abilities are key components of peace education. To improve human growth via learning, peace education combines many pedagogical traditions, educational ideas, and global efforts. The use of peace education provides an opportunity to advance students' overall welfare, promote young justice and fair treatment, and encourage personal and societal responsibility in both educators and students.

Gandhian Concept of Peace

Numerous Indian educational programs, as well as those in a number of other nations, are built around Gandhian concepts and the advancement of peace education through Gandhian studies. Gandhi meant nonviolent mass action to mean nonviolent, positive mass action. Gandhi did not specifically write about peace

education, but his entire thought and life have undoubtedly been significant in the fields of peace research and peace education, not just for India also for other countries throughout the globe as well (Prasad 1998). Gandhi's worldview is inextricably linked to his conception of peace and nonviolence. Gandhiji's worldview developed from his understanding of "self" and human nature. Gandhi highlighted that although all people possess innate goodness, they can all grow to the fullest extent of non-violence. He thought that all people were related to one another and that they were all a part of the divine. Gandhiji's idea of harmony is also widely accepted. For him, tranquility came from a manner of life. Therefore, justice, progress, and the environment are all closely related to peace.

Peace Education in India and its development

It is clear from the Vedas, Puranas, and Upanishads that India has a long history of fostering world peace, tolerance, and self-control. The Earth was envisioned by the ancient Indian sages as an interconnected community. They imagined it to be like "Vasudaiva Kudumbakam - The world is a family." The main goal of Swami Vivekananda was to teach humanity about its inherent divine as well as to make it visible in all aspects of life. According to him, the ultimate goal of education is to develop any country's spiritual foundation while establishing internal peace and stability. He advocated for religious and educational tolerance because they essentially lead to peace. He advocated for human brotherhood on a global scale. Outstanding individuals like the late Mahatma Gandhi, Iqbal, Rabindra Nath Tagore, and Bishnu Prasad Rava captured the world's attention with their ideas and deeds to advance peace. Most interpersonal conflicts are resolved without resorting to violence, although not always. If we want to stop using violence to settle conflicts both at home and abroad, we must cooperate to teach young people constructive conflict resolution techniques.

Concept and meaning of Education of Peace

A curriculum incorporating the teaching of universal principles and enduring attitudes, the development of skills that enable our children to become engaged global citizens, and education for peace is one such program that schools may design. Implementing this conceptual framework acknowledges the

practice of harmonious relationships at all spheres: interpersonal, familial, communal, intercultural, and global. It involves a process of learning new things and developing new skills that impacts how people behave both individually and in groups. It also serves as an illustration for the both the formal and the informal curricula of the school. Learning for peace is an approach and condition that affects all facets of school life, has repercussions for students, teachers, and administrators, and goes beyond the classroom to affect society at large.

Culture of Peace

UN Resolutions 1998 states that "culture of peace is an integral approach to preventing violence and violent conflicts, and an alternative to the culture of war and violence based on education for peace, the promotion of sustainable economic and social development, respect for human rights, equality between men and women, democratic participation, tolerance, the free flow of information, and disarmament." Only education that promotes inner tranquility, compassion and cooperation, comprehending acceptance, unity, participative interaction, equitable social and economic growth, nonviolence, and global security and peace can help establish this culture of peace.

Curriculum Development of Education of Peace

The word "curriculum" has a wide range of definitions. The phrase is most frequently used to describe the formal documents that educational systems create and disseminate to outline the subjects that students should study in school. These materials occasionally explain why, when, and how this information ought to be taught and learned. In certain cases, the definition of "curriculum" is much broader to reflect the fact that children learn less at education than just what is spelled down in formal documents. This broader concept is crucial when thinking about subjects like Education for Peace that concentrate on shaping attitudes and values. Education for peace's overarching objective, which focuses on fostering morals and behaviors. The main objective of schooling for peace is to help students comprehend peace and make a commitment to it, as well as to equip them with the necessary information, attitudes, and behaviors to live up to this pledge in all facets of their lives. The majority of kids' learning in

these subjects will take place outside of the walls of classrooms and textbooks. Instead, they learn from the school's culture and from the way their peers and teachers treat them, whether purposefully or not. The 'hidden' curriculum is a term that is frequently used to describe this learning. It would be fair to define "curriculum" because training curriculum for conflict resolution and prevention can be viewed as a component of both the official and 'hidden' curriculam.

Integrating Peace Education into Educational Systems

Integrating peace education into the educational system is a transformative step towards fostering harmonious societies and nurturing responsible global citizens. To achieve this, educational institutions must first develop comprehensive classes that encompass all age groups, from primary seminaries to universities. These classes should emphasize crucial principles of peace education, similar as non-violence, conflict resolution, forbearance, and mortal rights. School teacher training is essential, equipping preceptors with the knowledge and chops to effectively conduct these values and styles to their scholars. By furnishing professional development openings and coffers, preceptors can come facilitators of peace, nurturing the coming generation with the tools they need to address conflicts constructively. Inclusivity is another vital aspect of integration, as educational institutions should produce safe, inclusive literacy environment that replicate the ideas of peace education, successfully addressing problems of bullying, demarcation, and importunity. Eventually, educational systems should seek hookups with associations and institutions devoted to peace and conflict resolution. These collaborations can give precious coffers, moxie, and support, perfecting the quality and impact of peace education programs. As peace education is integrated into the educational system, it equips scholars with the knowledge, chops, and values to come responsible global citizens committed to non-violence, forbearance, and the creation of a culture of peace. By weaving these principles into the veritably fabric of education, societies can take a significant step towards erecting a more harmonious, just, and connected world.

Conclusion

Activities aimed at promoting peace education assist people develop the information, abilities, and attitudes necessary to prevent conflict, settle it peacefully, or foster a peaceful society. Peace education is based on the fundamental principles of social justice and nonviolence. Values like trust, freedom, and acceptance of human rights are examples of how nonviolence is demonstrated. The concepts of solidarity, accountability, and equality help to realize social justice. Programs for peace education worldwide cover an array of topics in order to realize these goals. These include nonviolence, methods for resolving conflicts, democracy, disarmament, equality for women and men, respect for human rights, stewardship of the environment, and knowledge of history, communication abilities, and tolerance for diversity on a global scale.

REFERENCE

1. Ansari, D; Coch, D (2006) Bridges over troubled waters: Education and cognitive neuroscience, *Trends in Cognitive Sciences*, 146–151.
2. Bartlett, Steve; Burton, Diana, (2003) Education studies: essential issues. London: Sage, ISBN 0761940499
3. Pravat kumar, Dhal (2019), Peace education, Shipra publication
4. Loknath Mishra, Peace Education, A Gender Perspective, Kalpaz Publications.
5. Subba dipty (2021) peace education the nation’s need, Red shine publication.
6. Jane Sahi (2014) Education and peace, Banyan tree
7. Arulsamy (2016) peace and value education, Neelkamal

CHAPTER 14

DISTANCE EDUCATION

Manisha Uniyal Bhatt
Assistant Professor, Dept. of Education
Nalanda College of Education, Miyawala, Dehradun

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.14

ABSTRACT
Distance education is a system of education in which the teacher and student do not need to be present at a particular places. At present, distance education is a great option for Indian educational institutions. Under this education system, students can get education through correspondence and online classes through educational institutions. Distance Education is a great option for those students who are unable to attend regular classes due to some reason. There is no difference between the degrees and certificates obtained through this education and the certificates obtained through regular classes, and the curriculum of both types of classes is also the same.

KEY WORDS- *Distance Education, Lifelong education, Education system*

INTRODUCTION

In India 3 words correspondence education distance education and personal exams are more popularly known as multimedia dimension. The university does not give the responsibility of educating the student but allows the student to sit in the examination in a personal manner, that is why it is called personal examination. The term distance education is more prevalent in India. There are some universities also call it the open universities system. Distance education is a highly welcome move as overcrowding in schools, colleges and universities is a chronic problem in a country like India. The infrastructure in the field of education is on the verge of collapse. Due to the development of

information technology, the possibilities of distance education have become more fruitful. The scope of traditional education may be limited as students interested in higher education may prefer to earn while pursuing education. Students will not have to cut short their studies due to financial constraints.

The development of distance education will make education accessible to all irrespective of financial, social and age factors. Equality can be achieved for rich and poor, urban and rural populations in the field of education. Kothari Commission in 1966 made a very meaningful comment on distance education. He said that home study or correspondence method does not provide an opportunity for inspirational contact with teachers. Interestingly, he commented that inspiring teachers are rare nowadays. There is a strong motivation to learn in the correspondence education system. It is a fact that distance education does not provide effective kind of close relationship between the teacher and the taught, but this shortcoming has been overcome by providing contact classes and study centers for the guidance of the students. The Open University system holds immense importance as a viable alternative to the traditional system of education. Indira Gandhi National Open University was established with these objectives in mind and has proved quite useful in its scope to encourage the open school system. Most of the universities in the country have come up with distance education programs as per the National Education Policy. In India we have a kind of dual system of distance education – Directorate of Distance Education and Open Universities. Open education in India arrived with the establishment of Andhra Pradesh Open University in 1982. Indira Gandhi National Open University (1985) and Kota Open University (1987) have promoted distance education in the country. According to an estimate, there were about 20.8 lakh students in distance education, while there were 65.9 lakh students in universities and colleges in the year 2000. The future of distance education is quite bright. Another beneficial feature of the education provided by open universities and distance learning systems is that the courses provided by these systems are not based on traditional study courses.

MEANING OF DISTANCE EDUCATION

Distance Education is that system of education in which it is not necessary to attend class daily i.e. to be present in daily class.

Distance Education, Regular Education which is taught in our schools and colleges, similarly Distance Education is also there, if there is some difference between Regular Education and Distance Education then it is that in Regular Education System it is mandatory for you to attend classes whereas in Distance Education System It is not mandatory for you to take classes. And this is the reason why Distance Education is also called open education. The meaning of such distance education in Hindi is distance education. In distance education system, it is not mandatory for you to attend classes, this does not mean that there are no classes in it, classes are also there in most of the distance education courses, classes are held on Sundays, but it is up to you whether you want to attend the class or not. It depends on the above, it is not that if you do not attend classes you will not be allowed to take the exam.That is, if you want to study but due to some job or any other reason it is difficult for you to do daily classes, then you can continue your studies without doing daily classes through distance education.

COURSES AVAILABLE IN INDIA UNDER DISTANCE EDUCATION

1. Bachelor of Computer Application
2. Bachelor of Business Administration
3. Bachelor of Law
4. Master of Business Administration
5. Human Resource Management
6. Hospitality Management Studies
7. Master of Commerce
8. Bachelor of Journalism and Mass Communication
9. Master of Science in Applied Psychology

CHARACTERISTICS OF DISTANCE EDUCATION

1. Distance education is different from traditional education. In this the teacher reaches the learner.
2. It is a multimedia approach. In this, multiple mediums of educational technology are used.
3. In distance education, more importance is given to the use of communication media.
4. Printed materials, audio-visual aids, computers etc. - These connect the teacher and the disciple and carry the study material.

5. Through distance education, favorable conditions can be created for 'open learning'.
6. In this method students are not taught collectively. Whatever they read or learn is based on personal study.
7. This system provides complete freedom in studies to the beneficiary or learner.
8. Technical specialization predominates in distance education.
9. Planning and preparation of study materials and student support services are influenced by both these educational organizations.
10. This system of education is related to the needs of the learners, their educational level and daily life related tasks.

NEED OF DISTANCE EDUCATION

Distance education has been invented to fulfill the educational needs. The following points are noteworthy in favor of its necessity-

(1) To meet the educational demand – In the modern era, the demand for education is increasing in all sections of the society. Due to the increasing population and inclination of the general public towards education, it is very difficult to arrange formal education for everyone, hence there is a need for distance education.

(2) Lifelong education – Education is a lifelong process. Formal education is received only for a few years. In such a situation, distance education can be obtained lifelong.

(3) For the system of universal education - in the modern era, education is not limited to any particular class and the principle of universality has been accepted. This need gave rise to the spread of distance education.

(4) For the arrangement of home education- Even today many people in the society remain deprived of formal education. Often the women at home are deprived of formal education, as a result it was felt that such an education system should be developed which can provide education to the people sitting at home, as a result the need for distance education was felt.

(5) To take advantage of technology in education – Distance education is also necessary to take advantage of technology in education. As a result of the development of

technology, radio, television, audio, video, cassettes etc. are no longer just means of entertainment but are being used for enhancing knowledge.

ADVANTAGES OF DISTANCE EDUCATION

There are many benefits of distance education. These can be mentioned briefly here-

1. This education provides education facilities to all within limited resources.
2. Distance education reduces the increasing pressure on formal educational institutions as a result of population growth.
3. This education is also beneficial from the point of view of expanding education and ensuring universal access to education.
4. Distance education provides a golden opportunity to those who have been deprived of formal education or who want to increase their knowledge while in service.
5. Distance education is self-directed which motivates the learner to do self-study as per his interest and pace.
6. This education provides new knowledge as per the need and social demand.
7. This is such an approach to education in which the learner does not have to go to the teacher, rather he receives education at his home.
8. This education is less expensive and there is no special restriction on time limit.

TYPES OF DISTANCE EDUCATION

Distance education does not reject traditional methods of learning. When used in the classroom or professional education. It is also called distributed learning.

Types of distance education based on medium
Internet
Video
Audio

Internet based courses: Students receive instruction through websites, email, electronic bulletin boards, and messaging systems.

video based courses: Two types of video based distance learning courses are available

Pre-Recorded – These are pre-recorded video tapes that are sent to the students which they can watch as per convenience

Two-Way Interactive – Computers, satellites, cameras, and television allow teachers and students to interact.

Audio based courses- This includes everything from phone conferencing, radio broadcasting, and prerecorded audio CDs.

DISADVANTAGES OF DISTANCE EDUCATION

1. Distance learning requires self-motivation.
2. Reduction of face-to-face time in virtual learning.
3. Distance learning does not provide immediate feedback.
4. Distance education should be recognized.
5. Distance learning does not give students the opportunity to work on oral communication skills.
6. Distance education does not always offer all required courses online.
7. Distance learning requires you to have constant, reliable access to technology.

CONCLUSION

Distance education is a system in which the student learning does not need to be physically present in the school. This is the reason why this type of education system is quite popular among working people who do not have time to go to school or college regularly. Actually, earlier this method of education was used through correspondence, in which correspondence between the school and the student was done through post. But at present it includes online education and there is contact between the student and the college through various mediums of internet and facilities like e-book, online classes are also provided to the students by the school. Actually, a distance education can be completely distance or some distance and some classroom can also be part of it.

REFERENCES

1. Baruch, O.,Barth, J., Lev, Y. & Shetinbok, A. (2003) Teacher – student interactions and learning outcomes in a distance learning environment, Internet and Higher Education, 6, p. 65 – 75.
2. Bates A.W. (1995): Technology, Open Learning and Distance Education. London, UK: Routledge

3. Casarotti, M., Filliponi, L., Pieti, L. & Sartori, R. (2002) Educational interaction in distance learning: Analysis of one-way video and two-way audio system. PsychNology Journal, 1(1), 28 – 38.
4. Popovich, C.J. & Neel, R.E. (2005), Characteristics of distance education programs at accredited business schools, The American Journal of Distance Education, 19(4), 229-240.
5. University Grants Commission (2019), Annual Report 2018-19, University Grants Commission, New Delhi, available at: https://www.ugc.ac.in/pdfnews/3060779_UGC-ANNUAL-REPORT--ENGLISH--2018-19.pdf (accessed 2 May 2020).
6. Satyanarayana, P. and Mantha, L. (2018), "Survey of research in Indian distance education", Asian Journal of Distance Education, Vol. 13 No. 2, pp. 17-145, available at: http://www.asianjde.org/ojs/index.php/AsianJDE/article/view/275 (accessed 9 June 2020).
7. Kanwar, A. and Balasubramanian, K. (2014), "Advancing research in ODL: where are the missing links?', opening keynote address", Proceedings of the 28th Annual Conference of the Asian Association of Open Universities, Hong Kong, China, 28 October 2014, available at: http://aaou2014.ouhk.edu.hk/e-keynote.html (accessed 10 June 2020).
8. Mishra, S. (1997), "A critical analysis of periodical literature in distance education", Indian Journal of Open Learning, Vol. 6 Nos 1 and 2, pp. 39-53.
9. Mishra, S. (2002), "Ten years of Indian journal of open learning", Indian Journal of Open Learning, Vol. 11 No. 2, pp. 279-290.
10. Moore, M. (2016), "Thirty years later: Self-directed learning and distance education - in retrospect", The Journal of Distance Education / Revue de l'ducation Distance, Vol. 31 No. 2, available at: https://www.learntechlib.org/p/183673/ (accessed 8 June 2020).
11. Gupta, A.K. and Arun, R. (1986), "Survey of recent Indian writings in distance education", Distance Education: An International Journal, Vol. 1 No. 2, pp. 20-26.
12. NAAC (2019), NAAC Institutional Accreditation Manual: Self Study Report Open University, NAAC, Bangalore,

available at: http://www.naac.gov.in/images/docs/Manuals/OpenUniversity-Manual-11-12-2019.pdfhttp://www.naac.gov.in/images/docs/Manuals/Draft-Dual-Mode-University-Manual.pdf (accessed 6 June 2020).

CHAPTER 15

भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था

डॉ. दिनेश कुमार सिंह
विभागाध्यक्ष (बी0एड0)
आर0सी0यू0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उत्तरकाषी।

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.15

भारतीय उच्च शिक्षा भारत में उच्चतर शिक्षा स्तर की शिक्षा को सूचित करती है, जिसमें स्नातक (ग्रेजुएशन), स्नातकोत्तर (पोस्ट–ग्रेजुएशन), डॉक्टरेट (फील्ड की डिग्री) और अन्य उच्चतर शिक्षा पाठ्यक्रम शामिल होते है, यह शिक्षा विभिन्न विश्वविद्यालयों, कॉलेजों अन्य शिक्षा संस्थानों में प्रदान की जाती है। भारतीय उच्च शिक्षा विविध विषयों, जैसे कि विज्ञान, कला, वाणिज्य, विधि, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रबन्धन, शिक्षा, साहित्य, और अन्य क्षेत्रों में उपलब्ध है, विश्वविद्यालयों और संस्थानों के माध्यम से, छात्र विभिन्न स्तरों की शिक्षा प्राप्त करते हैं, जिससे उन्हें अपने कैरियर की दिशा में विकल्प और नौकरी के अवसर मिलते हैं। उच्च शिक्षा के उद्देश्य छात्रों को विशिष्ट ज्ञान, दक्षता और विचारशीलता का विकास करने में मदद करना है, जिससे उन्हें पेशेवर और व्यक्तिगत विकास के लिए तैयार किया जा सके। उच्च शिक्षा विविधता और विशेषज्ञता के साथ अपने छात्रों को उच्च शिक्षा के बारे में विशेषज्ञता प्राप्त करने का मौका प्रदान करती है, और उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में सफलता पाने के लिए तैयार करती है। छात्र अपने रूचि और व्यवसायिक लक्ष्यों के आधार पर उच्च शिक्षा का चयन कर सकते हैं और अपने कैरियर की दिशा में प्रागणन कर सकते हैं।

उच्च शिक्षा के उद्देश्य–

इक्कीसवी सदी की आवश्यकताओं को देखते हुए, गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा का जरूरी उद्देश्य, अच्छे, चिंतनशील, बहुमुखी प्रतिभा वाले रचनात्मक व्यक्तियों का विकास करना होना चाहिए। यह एक व्यक्ति को एक या एक से अधिक विशिष्ट क्षेत्रों में गहन स्तर पर अध्ययन करने में सक्षम बनाती है, और साथ ही चरित्र, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों, बौद्धिक जिज्ञासा, वैज्ञानिक स्वभाव, रचनात्मकता, सेवा की भावना और विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी, भाषा, साथ ही व्यावसायिक, तकनीकी और व्यावसायिक विषयों सहित विभिन्न विषयों में 21 वीं सदी की क्षमताओं को विकसित करती है। उच्चतर गुणवत्ता वाली शिक्षा द्वारा व्यक्तिगत उपलब्धि और ज्ञान, रचनात्मक सार्वजनिक सहभागिता और समाज में उत्पादक योगदान को सक्षम करना चाहिए। इसे छात्रों और अधिक सार्थक और संतोषजनक जीवन और कार्य भूमिकाओं के लिए तैयार करना चाहिए और आर्थिक स्वतंत्रता को सक्षम करना चाहिए।

व्यक्तियों के समग्र विकास के उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि पूर्व–विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक, सीखने के प्रत्येक चरण में कौशल और मूल्यों का एक निर्धारित सेट शामिल किया जायेगा।

समाजिक स्तर पर, उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र को प्रबुद्ध, सामाजिक रूप से जागरूक, जानकार और सक्षम बनाना है जो कि नागरिकों का उत्थान कर सके, और अपनी समस्याओं के लिए सशक्त समाधानों को ढूँढकर लागू कर सके। उच्चतर शिक्षा देश में ज्ञान निर्माण और नवाचार का आधार भी बनाती है और इसके चलते राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार के अवसरों का सृजन करना ही नहीं बल्कि अधिक जीवंत और सामाजिक रूप से जुड़े हुए सहकारी समुदायों के साथ मिलकर एक अधिक खुशनुमा, सामंजस्यपूर्ण, सुसंस्कृत, उत्पादक, अभिनव, प्रगतिशील और समृद्ध राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना है।

भारतीय शिक्षा नीति 1986 की उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में संस्तुतियॉ–

1. ग्रामीण विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों को सहायता प्रदान की जाए परन्तु वे राज्य शिक्षा परिषदों के अन्तर्गत हो।
2. मौलिक अनुसंधान हेतु क्षेत्रों के चयन में उत्कृष्टता प्राप्त करने हेतु।
3. भारत में तथा भारतीय विद्वानों की विशेषज्ञता का लाभ उठाने हेतु।
4. भावी उपयोगकर्ताओं के साथ सम्पर्क स्थापित करके तथा उनके साथ संयुक्त रूप से कार्यक्रम चलाकर अनुसंधान परिणामों के संभव उपयोग को सुनिश्चित किया जाए।
5. राज्य कृषि विश्वविद्यालयों को ग्रामीण विकास हेतु केन्द्रों/संस्थानों की स्थापना करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
6. राष्ट्रीय स्तर पर सर्वोच्य निकाय के रूप में कार्य करने के लिए एक अन्य संस्था स्थापित न कर सरकारी प्रस्ताव के द्वारा एक उपयुक्त समन्वय तन्त्र को स्थापित किया जाए।
7. विश्वविद्यालय स्वयं को सम्बन्धित क्षेत्रों में विकास समस्याओं में सम्मिलित करें तथा इस प्रकार की विश्वविद्यालय प्रणाली का नारा 'विश्व ज्ञान, गॉव में ध्यान' हो।
8. योग्यता का परीक्षण उपयोगकर्ता एजेन्सियों पर हो चाहे वे नियोजक संस्थाऍ हो अथवा शैक्षिक संस्थाऍ हों।
9. राष्ट्रीय परीक्षण सेवा की आवश्यकता है परन्तु यह केन्द्रीकृत ढंग से परीक्षणें के संचालन का निकाय न हो। इसके बजाए यह अनुसंधानरत् विकास एजेन्सी तथा परीक्षणों के लिए प्रतिमानों के निर्माण में सहायक गतिविधि सहित कतिपय सेवा गतिविधियों को करने वाली विकास एजेन्सी मात्र हो। परीक्षण विकास, प्रशासन, अंकन आदि के लिए प्रतिमान संगठन के सेवा कार्य संचालनों के अंग के रूप में बनाये जा सकते हैं।

भारतीय शिक्षा नीति 2020 की उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में संस्तुतियॉ–

नई शिक्षा नीति पहले से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का पुनर्मूल्यांकन है। यह नई संरचनात्मक रूपरेखा द्वारा शिक्षा की संपूर्ण प्रणाली का परिवर्तन है। नई शिक्षा प्रणाली को एक उच्च उत्साही और उर्जावान नीति में देखा जा रहा है। शिक्षार्थी को उत्तरदायी और कुशल बनाने का प्रयास होना चाहिए। नई शिक्षा नीति में शिक्षक की शिक्षा और प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के सुधार पर भी जोर दिया गया है।

भाषायी विविधता का संरक्षण–

सामान्य रूप से प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर मात्रभाषा में शिक्षण को प्राथमिकता दी जायेगी, उच्च शिक्षा में अन्य भारतीय भाषा जैसे संस्कृत एवं अन्य भाषाओं का विकल्प उपलब्ध रहेगा, लेकिन शिक्षण एवं अध्ययन के लिए किसी भी स्तर पर भाषा के चुनाव में कोई बाध्यता रहीं रहेगी।

शारीरिक शिक्षा'

विद्यालयों में सभी स्तरों पर छात्रों को बागवानी, नियमित रूप से खेल–कूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की कोशिश की जाएगी ताकि बच्चे शारीरिक गतिविधियॉं एवं व्यायाम वगैरह में भाग लें सकें।

उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में आकलन नामांकन अनुपात को 26.3 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जायेगा।

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगें, और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा। (1 वर्ष के बाद प्रमाण–पत्र, 2 वर्षो के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षो के बाद शोध के साथ स्नातक)

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट दिया जायेगा, ताकि अलग–अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

भारतीय उच्च शिक्षा आयोग'

नई शिक्षा नीति में देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् भारतीय उच्च शिक्षा परिषद (भ्ब्) का गठन किया जायेगा, जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होगें। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक एकल निकाय के रूप में कार्य करेगा।

शिक्षकों की शिक्षा और भर्ती

शिक्षकों के लिए 4–वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम को वर्ष 2030 से अनिवार्य बना दिया जायेगा। जिसके तहत विभिन्न शिक्षण सहायक सामग्री के संबंध में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की जानी चाहिए। शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया में पारदर्शिता होनी चाहिए क्योंकि छात्रों के विकास के लिए एक शिक्षक ही केंद्रिकृत भूमिका में है।

प्रौद्योगिकी का प्रयोग एवं एकीकरण

प्रौद्योगिकी हस्तक्षेपों का मुख्य उद्देश्य शिक्षण–अधिगम और आंकलन प्रक्रियाओं को बेहतर बनाना, शिक्षकों को तैयारी एवं व्यावसायिक विकास में सहयोग करना, शैक्षिक पहुॅच को बढ़ाना, शैक्षिक नियोजन, प्रबंधन एवं प्रशासन को सरल एवं व्यवस्थित करना जिसमें प्रवेश, उपस्थिति, मूल्यांकन संबंधी प्रक्रियाएं आदि सम्मिलित है।

उच्च शिक्षा में प्रशासनिक व्यवस्था–

1. केन्द्रीय विश्वविद्यालय

जिन विश्वविद्यालयों के संविधान व अधिकार का निर्धारण केन्द्र सरकार करती है, उसे केन्द्रीय विश्वविद्यालय कहते हैं यथा – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, हेमवती नन्दन विश्वविद्यालय गढ़वाल, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुकत विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय आदि इसी प्रकार के विश्वविद्यालय हैं। केन्द्रीय विश्वविद्यालय के ऊपर केन्द्र का सीधा

नियंत्रण रहता है। केन्द्र सरकार राज्यीय विश्वविद्यालयों या किसी भी उच्च शिक्षण संस्था को अधिगृहित करके केन्द्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दे सकता है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का अध्यक्ष या विजिटर राष्ट्रपति होता है। विजिटर ही नियुक्ति समिति के प्रस्ताव पर केन्द्रीय विश्वविद्यालय में कुलपतियों की नियुक्ति करता है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विकासात्मक एवं मेन्टिनेन्स दोनों तरह का अनुदान देती है।

2. राज्यीय विश्वविद्यालय

जिन विश्वविद्यालयों की स्थापना राज्य की विधानसभा के द्वारा पारित विधेयक के द्वारा होता है तो उन्हें राज्यीय विश्वविद्यालय कहते हैं। इन विश्वविद्यालयों के ऊपर राज्य सरकारों का नियंत्रण रहता है। प्रदेश विधानसभाएँ राज्य विश्वविद्यालयों के लिए अधिकार व संविधान निर्धारित करती हैं व इन्हीं के अनुसार विश्वविद्यालयों के लिए सिण्डीकेट या कार्य परिषद द्वारा विभिन्न कार्य करते हैं। राज्यीय विश्वविद्यालयों का कुलाधिपति राज्यपाल होता है। इन विश्वविद्यालयों में कुलपतियों की नियुक्ति राज्यपाल करता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इन विश्वविद्यालयों को केवल विकासात्मक अनुदान देता हैं। इसके अतिरिक्त ये राज्य द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता पर आश्रित होते हैं।

विश्वविद्यालयों के प्रशासन के लिए मुख्य रूप से विश्वविद्यालय का अधिकारी वर्ग ही उत्तरदायी होता है। प्रमुख अधिकारी इस प्रकार है। कुलाधिपति, कुलपति, वित अधिकारी, कुलसचिव, संकाय अध्यक्ष, पुस्तकालयाध्यक्ष, अनुशासनाधिकारी इत्यादि। प्रदेशों के राज्यीय विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालय एवं राजकीय महाविद्यालयों पर सीधा नियंत्रण राज्य सरकार का होता है। इसके ऊपर प्रशासन एवं नियंत्रण के लिए राज्यों में शिक्षा निदेशालय होते हैं। शिक्षा निदेशालय में बैठा उच्च शिक्षा निदेशक महाविद्यालयों के क्रियाकलापों पर नियंत्रण रखता है। इस कार्य में उसकी सहायता क्षेत्रीय शिक्षा निदेशक करते हैं।

उच्च शिक्षा का निजीकरण

जनार्दन रेड्डी समिति 1992 की संस्तुति के आधार पर देश की उच्च शिक्षा का निजीकरण किया जाने लगा। शिक्षा के निजीकरण से तात्पर्य है शिक्षा के स्वामित्व में परिवर्तन अर्थात् शिक्षा के सरकारी स्वामित्व के स्थान पर निजी स्वामित्व। निजीकरण की धारणा के पीछे जो भावना है वह है– कुछ सम्पन्न तथा मुनाफाखोर व्यक्तियों को शिक्षा के क्षेत्र में धनोपार्जन करना। पहले शिक्षा संस्थानों की स्थापना धनी व्यक्तियों द्वारा धर्मार्थ कार्य समझकर की जाती थी। विद्यादान की भावना उसके पीछे थी। कुछ समाजसेवी भी इसी भावना से संस्थाओं की स्थापना कर शिक्षा का प्रसार कार्य करती थी। आज स्थिति बदल गयी है। सरकार ने शिक्षा के दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थता प्रकट की है। यही कारण है कि आज निजी उपक्रम को शिक्षा के काम में सहयोग देने का आमंत्रण दिया जाने लगा है।

प्रो0 बी0एम0 नाइक ने निजीकरण के सकारात्मक पहलू पर बल देते हुए लिखा है कि अमेरिका में प्राईवेट विश्वविद्यालय स्वतन्त्र रूप से उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, अतः भारत में उच्च शिक्षा और अनुसंधान के स्तर को उन्नत बनाने के लिए प्राईवेट विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। इन प्राइवेट विश्वविद्यालयों में कुलपति की नियुक्ति सरकार द्वारा न होकर विश्वविद्यालय बोर्ड द्वारा की जाती है। इन विश्वविद्यालयों में फीस अधिक होती है क्योंकि ये उच्च स्तर की प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय तथा शिक्षा प्रदान करते हैं। भारत में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना हुई जो कि राजकीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हैं। यह स्थिति आंशिक निजीकरण की है। इस मॉडल में गुणवत्ता का दायित्व विश्वविद्यालय पर रहता है। कई बार कुछ कॉलेजों ने अपने यहॉ परीक्षा में नकल करवाकर तथा अन्य अनैतिक कार्य करके विश्वविद्यालय की डिग्री का

बाजारीकरण किया है। ऐसी घटना प्राइवेट विश्वविद्यालयों में नहीं हो सकती क्योंकि उसे सदैव अपनी बंदी का भय रहता है। प्राइवेट विश्वविद्यालय के मामले में सबसे बड़ा डर इस बात का बना रहता है कि वे अपनी डिग्रियों को बेचने लगेंगें।

निजीकरण के विपक्ष में लोगों का कहना है कि शिक्षा के निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है। साथ ही, वह देश में नवीन अभिजात्य वर्ग की स्थापना करना चाहती है जो भारतीयों को पुनः दो वर्गो में विभक्त कर सकें। नवीन अभिजात्य वर्ग जो उत्तम प्रकार की सुख–सुविधाओं का भोग करने में समर्थ हो और दूसरा वर्ग क्षमताओं के होते हुए भी अपनी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता क्योंकि वह उस शिक्षा को प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यदि भारत सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहता है तो उसे जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए शिक्षा के बजट को प्राथमिकता प्रदान करके निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए कार्य करना चाहिए।

उच्च शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता

1 उच्च ज्ञान की प्राप्ति तथा नए ज्ञान की खोज

उच्च शिक्षा में यूवकों को मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान और अन्य क्षेत्रों का उच्च ज्ञान कराया जाता है इसके अतिरिक्त उन्हे नए ज्ञान की खोज और वास्तविक तथ्यों का पता लगाने के अवसर दिए जाते हैं। युवकों को ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में नए–नए आविष्कार करने के योग्य बनाया जाता है।

2 विशेषज्ञों का निर्माण

उच्च शिक्षा के द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों – धर्म, दर्शन, इंजीनियरिंग, अध्यापन, ज्ञान, विज्ञान, मैडिकल, विधि, संगठन और प्रशासन आदि के लिए विशेषज्ञ तैयार किए जाने के अतिरिक्त उच्चतम श्रेणी के मानव संसाधन तैयार किये जाते हैं।

3 कार्य कुशलता और नेतृत्व शक्ति का विकास

उच्च शिक्षा युवकों को अपनी रूचि, रूझान, योग्यता और क्षमता के अनुसार किसी कार्य को कुशलतापूर्वक करने योग्य बनाती है। यह मान्यता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही प्रायः जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करते हैं।

4 युवकों में विस्तृत दृष्टिकोण का विकास

– यह युवकों को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों का समुचित ज्ञान कराती है।
– यह युवकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का ज्ञान कराती है, जितना विस्तृत ज्ञान, उतना विस्तृत दृष्टिकोण।
– उच्च शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति संकीर्णता से निकलकर सहिष्णुता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं।
– उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में सामाजिक समानता, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का विकास होता है।

5. राष्ट्र का बहुमुखी विकास

राष्ट्र के विकास के लिए दो मूलभूत साधनों की आवश्यकता होती है–

1. प्राकृतिक संसाधन
2. मानवीय संसाधन

उच्च शिक्षा उच्च स्तर के मानव संसाधनों का निर्माण करती है। जिस राष्ट्र में उच्च स्तरीय मानव संसाधन की जितनी उपलब्धता होती है, वह राष्ट्र उतनी ही तीव्रगति से विकास करता है। राष्ट्र का आर्थिक विकास औद्योगीकरण पर निर्भर करता है – वैज्ञानिक एवं तकनीशियनों पर, इंजीनियर और प्रशासकों पर। उच्च शिक्षा द्वारा ही इनका निर्माण किया जाता है। इस प्रकार उच्च शिक्षा किसी भी राष्ट्र के बहुमुखी विकास का साधन होती है।

भारतीय उच्च शिक्षा की समस्याएँ–

1. उद्देश्य–विहीनता– आजकल छात्रों में उच्च–शिक्षा के प्रति उद्देश्य–विहीनता पायी जाती है। उनके सम्मुख शिक्षा–प्राप्ति का मुख्य लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता। बिना उद्देश्य के प्राप्त शिक्षा में हमें निराशा की हो ले जाती है। आज के अधिकतर स्नातकों में इसके लक्षण स्पष्ट प्रतीत होते हैं। प्रायः छात्र तृतीय श्रेणी में कई–कई एम0ए0 पास कर लेते हैं। इस प्रकार की शिक्षा के लाभ के स्थान पर हानि होने की संभावना अधिक रहती है। अतः हमें उच्च–शिक्षा की प्राप्ति में उसके उद्देश्य तथा लक्ष्य के संबंध में स्पष्ट होना चाहिए।
2. प्रवेश की समस्या– देश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारत जैसा गरीब देश सबको उच्च –शिक्षा प्रदान नहीं कर सकता। फिर कुछ छात्र ऐसे होते हैं जो प्रतिभाशाली तो अवश्य हैं किन्तु निर्धन हैं। उन्हें भी समानता के आधार पर शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है।
3. अध्यापकों की दशा– विश्वविद्यालय स्तर पर भी अध्यापकों की दशा अच्छी नहीं है। वेतन स्तर निम्न होने के कारण प्रतिभाशाली व्यक्ति इस ओर आकर्षित नहीं होते। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उन्हें आय के अन्य साधन जुटाने पड़ते हैं। जिसका प्रभाव उनके अध्यापन स्तर पर पड़ता है। प्राइवेट विश्वविद्यालयों व प्राइवेट महाविद्यालयों में यह स्थिति अत्यन्त दयनीय है। इस पर सरकार को विचार करना चाहिए।
4. परीक्षा तथा मूल्यांकन– आधुनिक परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। यह अनुशासनहीनता के लिए उत्तरदायी है। वह छात्र के ज्ञान की उचित माप नहीं करती है। उसे रटने व अनुचित साधनों के प्रयोग के लिए बाध्य करती है। यह प्रणाली का ही दोष है कि आज छात्र नकल करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है, अध्यापक को धमकी देता है, अतः इसमें अमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है, इसके स्थान पर मूल्यांकन की नवीन पद्धति को अपनाया जाये। यह परीक्षा का व्यापक स्वरूप है जो छात्र के ज्ञान की वास्तविक जॉच करती है।
5. दोषपूर्ण अध्यापन विधि– उच्च शिक्षा में प्रायः प्रवक्ता पूरे समय भाषण देता है और छात्र निष्क्रिय रूप से सुनते रहते हैं। इस प्रकार की शिक्षा यंत्रवत् तथा केवल सूचना मात्र है। वह उसके प्रयोग, कौशल तथा मूल्यांकन आदि स्तर तक नहीं पहुचती। छात्रों को भी इस कार्य में सक्रिय भाग लेना चाहिए। इसमें प्रश्नों तथा वाद–विवाद को भी स्थान दिया जाये। छात्रों को भी उस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता दी जाये। इसके लिए समय समय पर विचार–गोष्ठी, चर्चा, वाद–विवाद तथा वर्कशाप आदि का आयोजन आवश्यक है। हमें गतिशील अध्यापन विधियों का प्रयोग शिक्षण में करना चाहिए।
6. अपव्यय व स्थिरता की समस्या– नई शिक्षा नीति 2020 ने उच्च शिक्षा में प्रवेश का लक्ष्य 2030 तक 50 प्रतिशत प्राप्त करने का रखा है, लेकिन प्राथमिक शिक्षा की तरह उच्च शिक्षा में अपव्यय व अवरोधन की समस्या पायी जाती है। उक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शिक्षा व्यवस्था मे मूलभूत परिवर्तन करना होगा।
7. वित की समस्या– विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास में बड़ी समस्या धन की है। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कम्प्यूटर लैब, छात्रावास, खेल के मैदान, भवन निर्माण आदि के लिए काफी

धन की आवश्यकता होती है। उच्च स्तर के लिए छात्रों की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। शिक्षा राज्य का विषय हैं राज्य सरकारें इनके विकास के लिए धन जुटाने में असमर्थता दिखती हैं। केन्द्रीय सरकार भी समय–समय पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारीा आर्थिक सहायता प्रदान करती है। इस कार्य में उदारता की नीति अपनाई जाये।

8. शोध कार्यो का अभाव– विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सत्य की खोज करना है, अतः मौलिक शोध–कार्यों का विकास आवश्यक है। प्रायः इनका अभाव पाया जाता है। जो कुछ उपलब्ध है वह निम्न स्तर का है। आज पी0–एच0डी0 की उपाधि अनेक छात्र प्राप्त कर रहे हैं किन्तु उनमें कितनों का योगदान महत्वपूर्ण है, यह बतलाना कठिन कार्य है। इस कार्य में अनेक कुप्रवृतियों का जन्म हुआ है। यह हमारे नैतिक स्तर का द्योतक है। हमें अपने शिक्षा स्तर को उन्नत करना है। विश्वविद्यालयों में यह स्तर स्थापित होना आवश्यक है। जिसकी तुलना हम विश्व के किसी भी विश्वविद्यालय से कर सके।

संदर्भ सूची

1. भटनागर, ए0बी0 (2014): भारतीय शिक्षा प्रणालीः इतिहास, विकास एवं तात्कालिक समस्याएँ
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का फाईनल ड्राफ्ट
3. http://hi.m.wikipedia.org
4. डॉ0 सुरेश भटनागर, समकालीन भारत और शिक्षा
5. डॉ0 गिरीश पचौरी, भारतीय शिक्षा के ऐतिहासिक परिदृष्य
6. डॉ0 आर0ए0 शर्मा, भारतीय शिक्षा का विकास
7. डॉ0 सन्त कुमार मिश्रा, भारत में शिक्षा व्यवस्था
8. NCERT दृ श्रवनतदंसे

CHAPTER 16

वर्तमान परिदृश्य में मूल्य शिक्षा की प्रासंगिकता

डॉ. शैलेश मिश्र,
असिस्टेंट प्रोफेसर
पूरनमल बाजोरिया शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
नरगाकोठी, चम्पानगर, भागलपुर, बिहार

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.16

सारांश

मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिक नैतिक और लोकतांत्रिक समाज बनाना है। मूल्य शब्द अंग्रेजी भाषा के Value के समानार्थी है। यह लैटिन के Valere से बना है। इसका अर्थ योग्यता या महत्व होता है। संस्कृत में इसे 'इष्ट' कहा गया है। इष्ट का अर्थ "वह जो कि इच्छित है" है। मूल्य एक सामान्य और अमूर्त गुण है जो किसी वस्तु में निहित महत्व व गुरुत्व को इंगित करता है। मूल्य का शाब्दिक अर्थ उपयोगिता, वांछनीयता व महत्व है। किसी समाज के वे विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार मानदण्ड जिन्हें समाज के व्यक्ति महत्त्व देते हैं और जिनसे उनका व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होता है उस समाज एवं उसके व्यक्तियों के मूल्य होते हैं।

की वर्ड्स: मूल्यतंत्र, अर्थतंत्र, मूल्य द्वन्द्व, धर्म, संस्कृति

पृष्ठभूमि :

मूल्य शिक्षा का अर्थ है, दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी क्षेत्रों की समझ विकसित करना। इसके जरिए छात्र जवाबदेही, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्त्व, प्रजातांत्रिक तरीके से जीवन निर्वाह, सांस्कृतिक संज्ञान, उपयोगी सोच आदि को जान सकते हैं।

मूल्य के विषय में जेम्स शेवर ने स्पष्ट कहा है कि "मूल्य महत्व के बारे में निर्णय का एक मानदण्ड है, जिनसे हम चीजों का जैसे लोग, वस्तु, विचार, क्रिया, परिस्थिति के अच्छे, महत्वपूर्ण, वांछनीय होने अथवा खराब, महत्वहीन, तिरस्करणीय होने के बारे में निर्णय करते हैं।"

क्लाकहान ने मूल्य को "वांछनीय की संकल्पना" माना है जिसमें वांछनीय भी एक प्रकार की वरीयता का स्तर ही है।

जिद्दू कृष्णमूर्ति का विचार है कि - "अपने को समझने से ही भय का अन्त होता है। यदि क्षण-क्षण में व्यक्ति को जीवन से सामना करना है, उसकी जटिलताओं, उसके दुःखों और उसकी आकस्मिक आवश्यकताओं का सामना करना है, तो उसे अपरिमित रूप से विनम्र होना होगा। वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करना ही शिक्षा का कार्य है।" स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि व्यक्ति स्वयं को समझने तथा जीवन मूल्यों का ज्ञान कराने हेतु मूल्य शिक्षा परमावश्यक है।

भारतीय दर्शन में मूल्यों को पुरुषार्थ से जोड़ा गया है। मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम को पुरुषार्थ चतुष्ट्य कहा गया है। मोक्ष और धर्म को श्रेयस मूल्य तथा अर्थ एवं काम को प्रेयस मूल्य कहा गया है। श्रेयस आध्यात्मिक मूल्य होते हैं, जबकि प्रेयस मूल्य का आधार भौतिकवादी चिंतन होता है। समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक रूप से परिभाषित वे इच्छाएं और लक्ष्य जिन्हें व्यक्ति सीखकर या सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आत्मसात करता है और वे आत्मगत अभिरुचियां, अभिलाषाएं और आदर्श बन जाते हैं। मूल्यों में मुख्यतः अभय, अहिंसा, अपरिग्रह, आस्तेय, आदरभाव, आज्ञापालन, आत्मविश्वास, आत्मानुशासन, इन्द्रिय दमन, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, उदारता, करुणा, कर्मठता, कल्पनाशीलता, कर्तव्य परायणता, गुरुभक्ति, गतिशीलता, त्याग, देशप्रेम, दया, दान, दृढ़ता, धैर्य, निष्पक्षता, नम्रता, प्रेम, परोपकार, नियमितता, पवित्रता, बलिदान, भ्रातृत्व, मैत्री, विनय, साहस, संयम, संतोष, सदाचार, स्वतंत्रता, समानता, सहिष्णुता, स्नेह, सहानुभूति, संवेदना, सादगी, सहयोग, समन्वय, सेवा, शिष्टाचार, श्रमनिष्ठा, क्षमा एवं ज्ञान आदि आते हैं।

मूल्य कोई जन्मजात प्रवृत्ति नहीं होती इसे अर्जित किया जाता है। इसकी पढ़ाई भी नहीं की जा सकती है। इसलिए कहा भी गया है कि "मूल्य ग्रहण किए जाते हैं, पढ़ाए नहीं जाते हैं। (**Values are caught, not taught**) मूल्यों का अर्जन एक दिन में नहीं हो सकता, मूल्यों को सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा अर्जित किया जाता है। बच्चे अपने माता-पिता के सांस्कारिक मूल्यों को सीखते हैं। उनके आदर्शों को अपने जीवन में अपनाते हैं। तदुपरान्त बच्चे समाज के मूल्यों को ग्रहण करते हैं। समाज में प्रचलित आचार-विचार, नैतिकता आदि को आत्मसात करता है। वर्तमान दौर में यदि स्कूली कक्षाओं में मूल्यों की शिक्षा दी जाय तो बच्चे उतना प्रभावी तरीके से उस पर अमल नहीं कर पाते जितना वे अनौपचारिक तौर पर मूल्यों को ग्रहण करते हैं, क्योंकि पढ़ाई के जरिए बच्चों पर मूल्यपरक शिक्षा को थोपा जाता है। जिसमें रुचि नहीं रहने के कारण वह उसे हू-ब-हू ग्रहण नहीं कर पाता है, लेकिन अनौपचारिक एजेंसियों के माध्यम से जिन मूल्यों को वे ग्रहण करते हैं वे ज्यादा प्रभावशाली होते हैं।

समाज में ईमानदारी, उपकार की भावना, विनम्रता, अहंकार, निस्वार्थता, समभाव, मन, वचन, कर्म आदि गुणों का ह्रास हो रहा है। बच्चों बड़े बुजुर्गों का आदर, अतिथि सत्कार, सहिष्णुता और अनुशासन सरीखे नैतिक मूल्यों का अभाव देखा जा रहा है। ऐसे में विद्यालयों में मूल्यपरक शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता महसूस होना लाजिमी

है। वर्तमान समय में मूल्यों को बताने के लिए मात्र उपदेश ही पर्याप्त साधन नहीं हैं, बल्कि इसके लिए क्रियान्वयन के लिए विद्यालयों में भी इसकी शिक्षा दिये जाने की जरूरत है। बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे बच्चे समझ सकें कि वे क्या हैं? उनका दायित्व क्या है? उनके कर्तव्य क्या हैं? उसे जीवन में किसे प्राथमिकता देना चाहिए? निष्ठाओं का टकराव क्यों होता है? अहं का टकराव क्यों होता है? अगर इन सबके बारे में बच्चों को स्कूल में शिक्षा दी जाए तो वे अपने आप में अच्छे मूल्यों का विकास कर सकेंगे। इस निमित्त मूल्यपरक शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम में भी शामिल किए जाने की आवश्यकता है। मूल्यपरक शिक्षा के जरिए विद्यार्थी में देशप्रेम और राष्ट्रीय अखण्डता की भावना का विकास, माता-पिता, अध्यापकों एवं बड़ों के प्रति आदर, की भावना, अच्छाई न्यास, सत्यता, ईमानदारी की भावना, नैतिक, सौन्दर्य बोधात्मक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संवेदना, जनतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी समाज के रचनात्मक जीवन की तैयारी के साथ व्यक्ति को सहायता प्रदान करना है जिससे वह कार्य करने के लिए स्वतंत्र व्यक्तित्त्व का विकास कर सके और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक जीवन में सृजनात्मक रूप से भागीदारी का निर्वहन करने के साथ वैज्ञानिक अविष्कारों और जनसंचार से उत्पन्न समस्याओं के लिए तैयार हो सकेंगे तथा विश्व की समस्याओं के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा सार्वभौमिक दृष्टि से विचार कर सकेंगे। वर्तमान समय में वैयक्तिक मूल्यों में काफी गिरावट आई है।

मनुष्य सत्य और प्रेम के स्थान पर झूठ और घृणा, धैर्य व सहनशीलता के स्थान पर अधैर्य व असहनशीलता, त्याग और अनाशक्ति के स्थान पर भोग और आशक्ति, ऋजुता व मृदुता के स्थान पर कठोरता व कटुता, अभय और आत्मबल के स्थान पर भय और शक्तिहीनता, आत्मविश्वास व प्रामाणिकता के स्थान पर घोर अनास्था व अप्रामाणिकता को स्वीकारता जा रहा है। विकासवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण आध्यात्मिकता एवं आस्था की भावना का क्षीण होना, आधुनिक दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में माक्र्सवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद, भौतिकवाद का प्रचार-प्रसार होना, तर्क एवं बौद्धिकता का प्रयोग, औद्योगीकरण, नगरीकरण व जनसंख्या विस्फोट का होना, कृत्रिम यौनाचार को बढ़ावा देने वाले वैज्ञानिक उपकरणों एवं पद्धतियों का अविष्कार होना, राष्ट्र के कर्णधारों की कथनी और करनी में भिज्ञता, सामाजिक-राजनीतिक जीवन में व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्तियों का प्रभावी होना, असुरक्षा की भावना, समाज में सरोकारहीनता को बढ़ावा देना, असंयमयुक्त भोगवृत्ति का बढ़ना व उचितानुचित का विचार न करना मूल्यों में गिरावट के प्रमुख कारण हैं।

मूल्य तन्त्र :

व्यक्ति अपने समाज के मूल्यों को स्वीकार करता है यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह समाज में किन मूल्यों को अधिक महत्त्व देगा तथा किन मूल्यों को कम महत्त्व प्रदान

करेगा। समाज में व्यक्ति के मूल्यों का विकास होता है। व्यक्तियों में विकसित अनेक मूल्यों के तंत्र को मूल्यतंत्र कहा जाता है।

मूल्य द्वन्द्व :

व्यक्ति के मूल्यों में जब टकराव की स्थिति पायी जाती है अथवा व्यक्ति निश्चित नहीं कर पाता कि किस आदर्श का अनुसरण करे तथा किस का नहीं तो ऐसी स्थिति को मूल्य द्वन्द्व कहा जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (**NCERT**) ने मूल्यों से सम्बन्धित एक दस्तावेज प्रकाशित किया जिसमें 83 मूल्यों की सूची प्रकाशित की गयी जो निम्न है - दूसरों के सांस्कृति मूल्यों की सराहना, अस्पृश्यता विरोध, नागरिकता, दूसरों की चिन्ता, दूसरों का ध्यान रखना, सहयोग, सामान्य अच्छाई, प्रजातान्त्रिक निर्णय लेना, व्यक्ति की महत्ता, शारीरिक कार्य का सम्मान, साथी भावना, अच्छे आचरण, राष्ट्रीय समाकलन, आज्ञा पालन, समय का सदुपयोग, ज्ञान की खोज, संयम, करुणा, सामान्य लक्ष्य, शिष्टाचार, भक्ति, स्वास्थ्यकर जीवन, अखण्डता, शुचिता, निष्कपट, आत्म नियन्त्रण, साधन सम्पन्नता, नियमितता, दूसरों का सम्मान, वृद्धावस्था का सम्मान, सादा जीवन, सामाजिक न्याय, स्वानुशासन, स्वसहायता, स्वसम्मान, आत्मविश्वास, स्वसमर्थन, स्वाध्याय, आत्मनियन्त्रण, समाज सेवा, मानव जाति की एकात्मकता, अच्छे बुरे में विभेद का भाव, सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव, स्वच्छता, साहस, जिज्ञासा, धर्म, अनुशासन, सहनशीलता, समानता, भिन्नता, वफादारी, स्वतन्त्रता, दूरदर्शिता, सज्जनता, कृतज्ञता, ईमानदारी, सहायकता, मानवतावाद, न्याय, सत्यता, सहिष्णुता, सार्वभौमिक सत्य, सार्वभौमिक प्रेम, राष्ट्रीय व जनसम्पत्ति का महत्त्व, पहल, दयालुता, जीवों के प्रति दया, धर्म परायणता, नेतृत्व, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय चेतना, अहिंसा, शान्ति, देशभक्ति, समाजवाद, सहानुभूति, धर्मनिरपेक्षता, पृच्छा का भाव, दलभावना, समय की पाबंदी और दल कार्य मूल्य निर्माण के स्रोत: मनुष्य जीवन के मुख्य आयाम सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक।

समाजशास्त्रियों की दृष्टि से ये ही मूल्य निर्माण के मुख्य स्रोत हैं। समाज: मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह जिस समाज में जन्म लेता है उसी के सदस्यों के साथ उसकी अन्तःक्रिया द्वारा वह समाज के व्यवहार मानदण्ड सीखता है। उन्हीं के प्रति उसमें आस्था पैदा होती है उन्हीं को वह महत्त्व देता है और आगे चलकर वे ही उसके व्यवहार को निर्देशित एवं नियन्त्रित करते हैं। उसके मूल्य बन जाते हैं। इस प्रकार समाज मूल्य निर्माण का आधारभूत स्रोत होता है।

संस्कृति :

किसी समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति होती है। मनुष्य जिस समाज में रहता है सर्वप्रथम उसी की संस्कृति अर्थात उसी के रहन-सहन एवं खान-पान की

विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन एवं आदर्श और विश्वासों के विशिष्ट रूप को सीखता और धारण करता है फिर धीरे-धीरे उसमें उसके प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है। वह उन्हें महत्त्व देने लगता है और उसका व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होने लगता है। इस प्रकार संस्कृति मूल्य निर्माण का एक दूसरा बड़ा स्रोत होता है।

धर्म :

किसी समाज की संस्कृति का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व होता है धर्म। देखने में यह आता है कि बच्चा जिस धर्म को मानने वाले परिवार में पैदा होता है और रहता है उसी धर्म के नैतिक नियमों को स्वीकार करता है, उन्हें ही महत्त्व देता है और उन्हीं के द्वारा उसका व्यवहार निर्देशित व नियन्त्रित होने लगता है। इस प्रकार धर्म मूल्य निर्माण का मुख्य स्रोत होता है।

अर्थतन्त्र :

किसी समाज, राज्य अथवा राष्ट्र का अर्थतन्त्र भी अपने में मूल्य निर्माण का स्रोत होता है, जिस समाज में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था होती है उसमें दो वर्गों का निर्माण होता है-शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। शोषित वर्ग के व्यक्तियों में शोषक वर्ग के व्यक्तियों के प्रति घृणा और द्वेष का भाव उत्पन्न होता है और दूसरी तरफ जिस समाज में समाजवादी अर्थव्यवस्था होती है उसमें योग्य का आदर होता है सब एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, सब एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। तब कहना न होगा कि अर्थतन्त्र भी मूल्य निर्माण का स्रोत होता है।

राज्य तन्त्र :

राज्य का प्रभुत्व तो प्रारम्भ से ही रहा है, यह बात दूसरी है कि एकतन्त्र शासन प्रणाली में उसका प्रभुत्व अपेक्षाकृत कम होता है। तब राज्य तन्त्र द्वारा निश्चित सिद्धान्तों एवं आदर्शों को व्यक्ति द्वारा महत्व देना स्वाभाविक है। इस प्रकार राज्यतन्त्र भी मूल्य निर्माण का स्रोत होता है।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता :

जनहित की भावना उत्पन्न करना :

प्रत्येक जनमानस के अंदर प्रतिस्पर्धा में सम्मिलित होकर एक दूसरे को पीछे करने की होड़ लगी हुई है। इस भावना से व्यक्ति लोक कल्याण को उपेक्षित कर देता है। इस भावना का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव समाज के लिए हानिकारक साबित हो सकता है।

मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करना :

शिक्षा जब तक मूल्यपरक नहीं होगी वह समाज के लिए लाभप्रद नहीं हो सकती है। प्रत्येक विषय का शिक्षण मूल्य को दृष्टिगत करते हुए करना समीचीन है। शिक्षा में जब तक नैतिक शिक्षा को समाहित नहीं किया जाता तब तक विषय का अध्ययन-अध्यापन समाज कल्याण के लिए पूर्ण नहीं हो सकता है।

युवाओं का भविष्य :

विद्यालयों में संस्कारों का निर्माण एवं परिष्कार होता है। युवा पीढ़ी को उचित दिशा-निर्देश प्रदान करने से ही उनका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। ऐसी स्थिति में मूल्य शिक्षा का प्रयोजन युवाओं के भविष्य के मद्देनजर प्रासंगिक हो जाता है।

अनैतिक कार्यों का परित्याग :

घर, परिवार, विद्यालय, समाज, बाजार, सभा, आयोजन में चरित्र तथा व्यवहार स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मूल्य शिक्षा के माध्यम से ही उसकी समझ एवं समाज में व्याप्त अनैतिकता की भावना का परिष्कार किया जा सकता है।

उत्तम जीवन शैली :

वर्तमान समय में लोगों की उत्तम जीवन शैली के निमित्त उच्च मूल्यों एवं आदर्शों का होना अतीव आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसे में समाज में शान्तिपूर्ण माहौल उत्पन्न करके ही उत्कृष्ट जीवन शैली को अपनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक पहलुओं ने व्यक्तित्व विकास के निमित्त मूल्य शिक्षा को आवश्यक माना है। छात्रों को उनके भविष्य को समुचित आकार प्रदान करने की दिशा में मूल्य शिक्षा एक सकारात्मक दिशा प्रदान करती है। प्राथमिक, माध्यमिक, एवं उच्च शिक्षा हर स्तर पर छात्रों के नैतिक विकास के निमित्त मूल्य शिक्षा की प्रासंगिकता महसूस की जा रही है। मूल्य शिक्षा से व्यक्ति जिम्मेदार और समझदार बनने और अपने जीवन के उद्देश्यों को समझने के काबिल हो सकता है। ऐसे में शिक्षा के साथ ही मूल्य शिक्षा का महत्त्व अतीव आवश्यक हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, अल्का, भारतीय शिक्षा के सामयिक प्रकरण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. पाण्डेय, रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

3. लाल, रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
4. संजीव, कुमार, प्रतियोगिता शिक्षाशास्त्र, जानकी प्रकाशन, पटना, बिहार
5. सारस्वत, मालती एवं गौतम एस.एल., भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, आलोक प्रकाशन, लखनऊ

CHAPTER 17

पर्यावरण शिक्षा

डॉ. विनी शर्मा
सहायकाचार्या, राजनीति विज्ञान
केंद्रीय संस्कृत विश्विद्यालय जयपुर राजस्थान
Sharmavini1975@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.17

शोध सारांश:-

पिछले कुछ दशकों से पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी के बारे में विश्व स्तर पर गंभीर चिंतन व्यक्त किया जा रहा है। पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए आजकल पर्यावरण शिक्षा के महत्व को स्वीकारा जा रहा है। पर्यावरण शिक्षा वस्तुत: पर्यावरण संबंधी जानकारी व समझ उत्पन्न करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पर्यावरण और मानव के पारस्परिक संबंधों तथा पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार पर्यावरण द्वारा, पर्यावरण के लिए, पर्यावरण के बारे में जानकारी, अवबोधन, रुचियां, अभिवृत्तियों और कौशल के विकास संबंधी क्रियो को पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है। प्रश्न यह उठता है कि इस पर्यावरण शिक्षा का अध्ययन किस विषय के अंतर्गत किया जाए। पर्यावरण की प्रकृति निरंतर बदलती रहती है जहां अब से पहले तक पर्यावरण को केवल विज्ञान में, वनस्पति एवं जंतु विज्ञान की शाखा तक ही एक सीमित विषय माना जाता था। लेकिन अब यह महसूस किया जा रहा है कि पर्यावरण अध्ययन की प्रकृति एक विषय नहीं होकर यह बहुविषयक हो गई है। पर्यावरणीय घटकों के तीव्र गति से हो रहे दोहन के कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है। अब यह वनस्पति विज्ञान का विषय भी है, जंतु विज्ञान का विषय भी है, भूगोल का विषय भी है, समाजशास्त्र का विषय भी है, भौतिक शास्त्र का विषय भी है, रसायन शास्त्र का विषय भी है, कहने का तात्पर्य पर्यावरण का अध्ययन किसी एक विषय तक सीमित रखने पर पूर्ण नहीं किया जा सकता। इसकी प्रकृति बहुविषयक है। यह सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है पर्यावरण का विषय क्षेत्र विस्तृत हो गया है। प्राकृतिक विज्ञान के साथ-साथ समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, साहित्य आदि में भी पर्यावरण अध्ययन का समाविष्टीकरण किया गया है। इसलिए इसका अध्ययन प्रत्येक वर्ग विषय एवं संकाय के अध्यापक एवं छात्रों के लिए भी अनिवार्य किया गया है। स्पष्ट है कि पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र व्यापकता को लिए हुए हैं दिनों दिन हुए विस्तार में पर्यावरण अध्ययन को बहुविषेक बना दिया है। आज

पर्यावरण का अध्ययन जीव विज्ञान या भूगोल विषय की एक विशिष्ट शाखा मात्रा नहीं रहा बल्कि एक दृष्टिकोण बन गया है। पर्यावरण अध्ययन एक ऐसा विषय है जिसकी सीमाएं अनेक विषयों या शाखोंओं को स्पर्श करती हैं।

कूट शब्द:- पर्यावरण, पारिस्थितिकी, बहु विषयक, पर्यावरण संतुलन, हिमालय क्षेत्र, चिपको आंदोलन, भौतिक तत्वों, अजैविक तथा जैविक।

प्रस्तावना:- (अर्थ एवम् परिभाषा)

पर्यावरण से अभिप्राय एक ऐसी परिवृत्ति से है जो जंतु तथा वनस्पति समुदाय को प्रभावित करती है, इस परिवर्तन में भौतिक तत्वों की प्रधानता होती है। पर्यावरण अंग्रेजी शब्द Environment के दो शब्दों Envirom तथा ment के सामंजस्य से उत्पन्न हुआ है, जिनके अर्थ है क्रमशः Encirele या Enclose है अर्थात आसपास से घिरा हुआ। कुछ पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने Environment शब्द के स्थान पर Habitant या Milieu शब्द का अर्थ समस्त परिवृत्ति से है। **ए. एन. स्ट्रेहलर** के अनुसार मनुष्य का अस्तित्व जीव जंतुओं तथा पादप समुदायों के साथ संभव माना है। **पार्क** के अनुसार, "पर्यावरण उन दसों का योग कहलाता है जो मानव को निश्चित समय अवधि में नियम स्थान पर आवर्त करती है।"[1] **टान्सले** नामक परिस्थितिविद ने बताया कि "प्रभावकारी दशाओं का वह संपूर्ण योग पर्यावरण कहलाता है जिसमें जीव जंतु रहते हैं।"[2]

पर्यावरण भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का सम्मिलित आवरण है, जो संपूर्ण जीव मंडल को घेरे हुए हैं तथा जीव जंतु तथा पेड़ पौधों की उत्पत्ति तथा वृद्धि को सीमित करता है **विश्व शब्दकोश** में "पर्यावरण की परिभाषा इस प्रकार है कि पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों तथा प्रभावों का योग है जो जीवन में उनकी प्रजातियों के विकास, जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता है।" **डॉ. डेविस** ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "मनुष्य के संबंध में पर्यावरण से अभिप्राय भूतल पर मानव के चारों ओर फैले उन सभी भौतिक स्वरूपों से है जिसे वह निरंतर प्रभावित होता रहता है।"[3] **डडले स्टैंप** के अनुसार "पर्यावरण प्रभावों का ऐसा योग है जो किसी जीव के विकास एवं प्रकृति को परिवर्तित तथा निर्धारित करता है।"[4] **हार्सलोविट्स** के अनुसार "पर्यावरण उन सभी बाह्य दशाओं और प्रभावों का योग है जो पृथ्वी तल पर जीवों के विकास चक्र को प्रभावित करते हैं।"[5] अत: पर्यावरण भौतिक एवं जैविक संकल्पना है जिसमें पृथ्वी के अजैविक तथा जैविक संगठनों को समाहित किया जाता है।

पर्यावरण का विषय क्षेत्र:-

पर्यावरण बहूविषय प्रकृति का विषय होने के कारण इसका विषय क्षेत्र भी काफी व्यापक हो गया है। इसमें जैवमंडल के सभी जैविक एवं अजैविक घटकों एवं उनके अंतसंबंधों के विषय में अध्ययन किया जाता है। इसलिए सजीवों से संबंधित जलमंडल

वायुमंडल एवं स्थलमंडल भी इसी विषय के क्षेत्र में समाहित हो जाते हैं। पर्यावरण के विभिन्न तत्वों या घटकों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों ने अलग-अलग आधारों पर किया है। सामान्यतः इसके घटकों के जैविक तथा अजैविक दो वर्ग माने गए हैं जैविक वर्ग में पेड़-पौधे, जंतु शामिल है और अजैविक में जल, हवा, मृदा शामिल है पर्यावरण के विषय क्षेत्र के संबंध में निम्न प्रमुख पक्षों को देखा जा सकता है[6]:-

1. पारिस्थितिकी तंत्र:- इसमें मानव एवं पर्यावरण के पारस्परिक प्रभावों के अध्ययन के साथ ही मानव द्वारा अपने अनुकूल तथा रूपांतरण का भी अध्ययन किया जाता है।
2. परिस्तिथिकीय विश्लेषण:- इसमें किसी भौगोलिक प्रदेश के पर्यावरण के तत्वों और मनुष्य के मध्य जैविक एवं आर्थिक संबंधों के समाकलित अध्ययन का मूल्यांकन किया जाता है।
3. स्थानिक प्रणाली:- एक प्रदेश का पर्यावरण दूसरे प्रदेश के भूगोल से प्रभावित होता है तथा इस उसे प्रभावित करता है क्योंकि विभिन्न परस्पर स्थानिक संबंध रखते हैं।
4. स्थानीय विश्लेषण:- स्थानीय विश्लेषण के द्वारा किसी भौगोलिक प्रदेश के पर्यावरण की अवस्थितिय भिन्नताओं को समझा जा सकता है।
5. प्रादेशिक समिश्र विश्लेषण:- इसके द्वारा किसी पर्यावरण की क्षेत्रीय भिन्नताओं की प्रादेशिक इकाइयों में पारिस्थितिकी विश्लेषण और स्थानिक विश्लेषण दोनों का सम्मिश्रण अध्ययन होता है।
6. जैव मंडल का अध्ययन:- वर्तमान समय में जैव मंडलीय वृहद पारिस्थितिक तंत्र का पर्यावरण के अभिन्न घटक समूह के रूप में अध्ययन किया जाता है।
7. प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन:- ज्वालामुखी, भूकंप, बाढ़, सूखा, चक्रवर्ती तूफान आदि को पर्यावरणीय अध्ययन में महत्व मिला है।
8. पर्यावरण में मानव कृत परिवर्तनों की भविष्यवाणी के लिए वैज्ञानिक (भौगोलिक) विकास को भी महत्व मिला है।

पर्यावरणीय की संरचना[7]:-

1. स्थलमंडल:- पृथ्वी का लगभग 29 प्रतिशत भाग स्थल मंडल है, जो अधिकांश जीव जंतुओं तथा पेड़ पौधों के जीवन का सार है इसमें पठार, मृदा, खनिज, पहाड़, चट्टानें आदि शामिल है। जीवो को स्थलमंडल दो प्रकार से सहायता करता है। एक तरफ वे इन जीवों को आवास उपलब्ध कराते हैं तो दूसरी तरफ जीव चाहे स्थलीय हो या जलीय उसके लिए खनिजों का स्रोत स्थल मंडल ही होता है। इसके दो भाग होते हैं शैली एवं मृदा। शैल स्थलमंडल का संगठित एवं प्राय कठोर भाग है। मृदा का निर्माण तब होता है जब शैल का अपने स्थान से अपक्षयन होता है। मृदा का

निर्माण मूल शैल, जलवायु, संजीवो, समय तथा स्थलाकृतियों के मध्य पारस्परिक क्रियाओं द्वारा होता है।

2. जलमंडल:- जलमंडल पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि यह पृथ्वी पर स्थलीय व जलीय जीवन को संभव बनाने वाला प्रमुख कारण है। जलमंडल के अंतर्गत धरातलीय व भूमिगत जल को सम्मिलित किया गया है। पृथ्वी पर स्थित जल अनेक रूपों में पाया जाता है जैसे: महासागर, झीलें, बांध, नदियां, हिमनद, स्थल के नीचे स्थित भू गार्भिक जल इत्यादि। जीव जल को अपने विभिन्न उपापचय प्रक्रिया के लिए प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त जीवद्रव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक जल ही है। जलमंडल पर अधिकांश लवणीय जल है जो कि सागरों में महासागरों में स्थित है और मानव के लिए प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी नहीं है। अलवनीय / स्वच्छ जल का संग्रहण मुख्यत: नदियों, हिमनदियों व भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। पृथ्वी पर उपयोग हेतु उपलब्ध अलवण जल कुल जल की मात्रा के 1% से कम है।

3. वायुमंडल:- वायुमंडल जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है, इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसे पाई जाती है जिसमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड महत्वपूर्ण है।

- क्षोभमण्डल:- क्षोभमण्डल वायुमंडल की सबसे निचली परत है, जो ध्रुव पर 8 किलोमीटर तथा विषुवत रेखा पर 18 किलोमीटर की ऊंचाई तक पाई जाती है। इस मंडल में तापमान के गिरने की दर 165 मीटर की ऊंचाई पर एक डिग्री सेल्सियस तथा 1 किलोमीटर की ऊंचाई पर 6.4 डिग्री सेल्सियस होती है। क्षोभमंडल में वायुमंडल की कुल राशि का 90% भाग पाया जाता है। आंधी, बादल, वर्षा आदि प्राकृतिक घटनाएं मंडल में घटित होती है। धरातलीय जीवों का संबंध इसी मंडल से होता है। इसी के अंतर्गत भारी गैसों, जलवाष्प तथा धुलिकणो का अधिकतम भाग रहता है। इस मंडल की ऊंचाई सर्दी की अपेक्षा गर्मी में अधिक हो जाती है। इस मंडल की ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा भी कहते हैं।
- समतामंडल:- समतामंडल वायुमंडल से क्षोभमंडल के ऊपर पाया जाता है इसकी ऊंचाई विषुवत रेखा पर 18 किलोमीटर से लेकर 50 किलोमीटर तक पाई जाती है। इस मंडल में ओजोन परत पाई जाती है इसलिए इसको ओज़ोनोस्फीयर भी कहा जाता है।
- मध्यमंडल:- मध्य मंडल को मध्य मंडल की ऊंचाई 50 से 80 किलोमीटर तक होती है तथा तापमान में एकाएक गिरावट आ जाती है। मध्यमंडल में ऊंचाई के साथ तापमान में ह्रास हो जाता है। इसकी ऊपरी सीमा 90 डिग्री सेल्सियस द्वारा निर्धारित होती है जिसको मेसोपाज कहते हैं।
- तापमंडल:- मध्य मंडल (80 किलोमीटर) के ऊपर वाला वायुमंडलीय भाग (अनिश्चित ऊंचाई) तक तापमंडल कहलाता है। इसमें ऊंचाई के साथ तेजी से

तापमान बढ़ता जाता है। इस मंडल का तापमान अत्यधिक होने के बावजूद गर्मी महसूस नहीं होती है, क्योंकि इस ऊंचाई पर गैसें अत्यधिक विरल हो जाती हैं और बहुत कम उष्मा को ही रख पाती हैं। इस मंडल के दो भाग हैं आयनमंडल, बाह्यमंडल।

- आयनमंडल:- मध्य मंडल के ऊपर 80 से 640 किलोमीटर तक आयनमंडल का विस्तार होता है। इसमें विद्युत आवेशित कणों की अधिकता होती है। इसी भाग में विस्मयकारी विद्युतीय व चुंबकीय घटनाएं घटित होती है तथा ब्रह्मांड किरणों का परिलक्ष्ण होता है। रेडियो तरंगे इसी मंगल से परिवर्तित होकर संचार को संभव बनाती हैं। यदि यह मंडल न होता तो रेडियो तरंगे भूतल पर न आकर आकाश में असीमित ऊंचाई तक चली जाती। आयनमंडल तापमंडल का सबसे निचला भाग है।
- बाह्यमंडल:- बाह्यमंडल का विस्तार 640 किलोमीटर से ऊपर होता है। इस मंडल के बाद वायुमंडल अंतरिक्ष में विलीन हो जाता है।

4. जैवमंडल:- जैव मंडल पृथ्वी का वह हिस्सा है जहां जीवन संभव है। इसके अंतर्गत निचला वायुमंडल, स्थलमंडल एवं जलमंडल जहां जीवित जीव पाए जाते हैं को शामिल किया जाता है। अर्थात जैव मंडल ऐसा क्षेत्र होता है जहां वायुमंडल, स्थलमंडल एवं जलमंडल आपस में मिलते हैं। जैवमंडल में समुद्र तल से 200 मीटर नीचे तक एवं 6000 मीटर की ऊंचाई तक जीवन संभव है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव तथा ऊंचे पर्वतों एवं गहरे महासागरों में पाई जाने वाली विषम जलवायु जीवन को संभव नहीं होने देती है। अतः इन क्षेत्रों में जैवमंडल अनुपस्थित होता है। जैव मंडल में सूर्य से प्राप्त ऊर्जा जीवन को संभव बनाती है, जबकि जीवो को पोषकों की आपूर्ति वायु, जल एवम् मृदा से होती है। जलमंडल में जीवों का वितरण सामान नहीं है क्योंकि ध्रुवीय क्षेत्र में कुछ ही जीव पाए जाते हैं, जबकि विषुवतीय वर्षा वनों से अत्यधिक जीव प्रजातियां पाई जाती हैं।

पर्यावरण के संघटक[8]:-

पर्यावरण अनेक तत्वों का समूह है तथा प्रत्येक तत्व का इसमें महत्वपूर्ण स्थान है। प्राकृतिक पर्यावरण के तत्व ही पारिस्थितिकी के भी तत्व है क्योंकि पारिस्थितिकी का एक मूल घटक पर्यावरण है। सामान्य स्तर पर पर्यावरण के तत्वों को जैविक एवं अजैविक दो समूह में वर्गीकृत किया जाता है।

I. **जैविक घटक:-** पर्यावरण के जैविक घटकों के अंतर्गत पौधो, प्राणियों (मानव, जन्तु, परजीवी, सूक्ष्मजीव आदि) एवं अवघटको को शामिल किया जाता है। पारितंत्र के जैविकीय घटक अजैविक पृष्ठभूमि में परस्पर क्रिया करते है और इनमें प्राथमिक उत्पादक (स्वपोषी) एवं उपभोक्ता (परपोषी) आते हैं।

- **प्राथमिक उत्पादक जीव,** आधारभूत रूप में हरे पौधे कुछ खास जीवाणु एवं शैवाल जो सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में सरल अजैविक पदार्थों से अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं वे स्व पोषी अथवा प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं।
- **उपभोक्ता** वे जीव जो स्वयं भोजन नहीं बना सकते एवं अन्य जीवो से अपना भोजन प्राप्त करते हैं उन्हें परपोषी अथवा उपभोक्ता कहते हैं इनके उन्हें 3 वर्ग होते हैं।

✓ **प्राथमिक उपभोक्ता:** यह शाकाहारी जंतु होते हैं।

✓ **द्वितीयक उपभोक्ता:** यह मांसाहारी जंतु होते हैं।

✓ **तृतीयक उपभोक्ता या सर्वहारी:** इसके अंतर्गत मुख्य रूप से मनुष्य आता है, क्योंकि यह शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों को खाता है।

- **वियोजक/अपघटक:-** वे सूक्ष्म जीव होते हैं जो मृत पौधों जंतुओं तथा जैविक पदार्थ को वियोजित (सढ़ना-गलाना) करते हैं। इस क्रिया के दौरान यह अपना भोजन भी निर्मित करते हैं तथा जटिल कार्बनिक (जैविक) पदार्थ को एक दूसरे से पृथक कर उन्हें सामान्य बनाते हैं, जिनका स्वपोषित, प्राथमिक उत्पादक हरे पौधे उन्हें उपयोग करते हैं। इनमें से अधिकांश जीव सूक्ष्म बैक्टीरिया तथा कवक के रूप में मृदा में रहते हैं।

II. अजैविक घटक:- पर्यावरण के अजैविक घटकों में प्रकाश, वर्षण, तापमान, आर्द्रता एवं जल अक्षांश, ऊंचाई, उच्चावच आदि शामिल होते हैं।

- **प्रकाश:-** हरे पौधे के लिए प्रकाश आवश्यक है जिसके द्वारा वे प्रकाश संश्लेषण करते हैं। सभी प्राणी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हरे पौधों द्वारा निर्मित भोजन पदार्थ पर ही निर्भर होते हैं। सभी जीवो के लिए सूर्य से आने वाला प्रकाश (सौर ऊर्जा) ही ऊर्जा का अंतिम स्रोत है।
- **वर्षण:-** कोहरा, वर्षा, हिमपात अथवा ओलावृष्टि का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अजैविक कारक है। अधिकांश जीव सीधे अथवा परोक्ष रूप में किसी न किसी प्रकार से वर्षण पर निर्भर होते हैं, जो अधो भूमि से होता है। वर्षण की मात्रा अलग-अलग होती है जो इस प्रकार निर्भर है आप पृथ्वी पर कहां है।
- **तापमान:-** यह पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है, जो जीवन की उत्तरजीविता को वृहद रूप से प्रभावित करता है। जीव अपनी वृद्धि हेतु एक निश्चित सीमा तक के तापमान को ही बर्दाश्त कर सकते हैं। उस सीमा से कम या अधिक तापमान की स्थिति में जीवन की वृद्धि रुक जाती है।
- **आर्द्रता एवं जल:-** अनेक पौधों तथा प्राणियों के लिए वायु में नमी का होना अति आवश्यक है, जिससे वे सही कार्य कर सकें। कुछ प्राणी केवल रात में ही अधिक सक्रिय होते हैं जब आर्द्रता अधिक होती है। जलीय आवास पर, रसायन तथा गैस

की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का तथा गहराई में अंतर आने का प्रभाव पड़ता है।

- **अक्षांश:-** जैसे-जैसे हम विषुवत रेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे सूर्य का को भी सामान्य छोटा होता जाता है जिससे औसत तापमान गिरता जाता है।
- **ऊंचाई-:** विभिन्न ऊंचाइयों पर वर्षण तथा तापमान दोनों में भिन्नता पाई जाती है वर्षण आमतौर से ऊंचाई के साथ बढ़ता जाता है लेकिन चरम ऊंचाइयों पर यह काम हो सकता है।
- **उच्चावच:-** भू-आकार या उच्चावच पर्यावरण का एक अति महत्वपूर्ण तत्व है। संपूर्ण पृथ्वी का धरातल या उच्चावच विविधता से युक्त है। यह विविधता महाद्वीपीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक देखी जा सकती है। सामान्यतः उच्चावच के तीन स्वरूप: पर्वत, पठार एवं मैदान है।

पर्वत, पठार एवं मैदान में भी विस्तार, ऊंचाई, संरचना आदि की क्षेत्रीय विविधता होती है तथा अपरदन एवं अपक्षय क्रियाओं से अनेक भू-रूपों या स्थलाकृतियों का जन्म हो जाता है। जैसे: कहीं मरुस्थलीय स्थलाकृति है, तो कहीं चूना प्रदेश की और यदि एक और हिमानीकृत है, तो दूसरी और नदियों द्वारा निर्मित मैदानी डेल्टाई प्रदेश।

पर्यावरणीय शिक्षा[9]:-

पर्यावरणीय शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें रसायन विज्ञान भौतिक विज्ञान चिकित्सा विज्ञान जीव विज्ञान कृषि जन स्वास्थ्य आदि अध्ययन की एक शाखाएं शामिल हैं।

पर्यावरणीय शिक्षा के कारण[10]:-

पर्यावरणीय शिक्षा निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण होती है:-

- पर्यावरण में जीवन के प्रत्येक स्वरूप की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। अतः पृथ्वी पर मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि जैव विविधता को संरक्षित किया जाए। इसके लिए पर्यावरण की शिक्षा आवश्यक है।
- प्रकृति की संरचना विशिष्ट है तथा इसकी प्रत्येक क्रिया और कार्य का एक निश्चित उद्देश्य होता है। यह कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय जीवन को प्रभावित करती है और इसमें थोड़ा सा परिवर्तन मानव जीवन पर बड़ा संकट पैदा कर सकता है। ऐसे में पर्यावरणीय संरचना का ज्ञान आवश्यक है।
- पर्यावरण की शिक्षा जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य अनुकूलतम संबंधों की स्थापना हेतु आवश्यक है।

- पर्यावरण की शिक्षा द्वारा पर्यावरणीय जागरूकता का प्रसार कर सतत विकास एवं आर्थिक उन्नति को बढ़ाया जा सकता है।

पर्यावरणीय शिक्षा का क्षेत्र[11]:-

वर्तमान समय में पर्यावरण के संबंध में निम्नलिखित विषयों का विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है:-

- मानव द्वारा पर्यावरण में हो रही तापमान वृद्धि तथा वायुमंडल में तापमान वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन।
- ओजोन परत का ह्रास तथा महानगरों तथा अन्य स्थानों पर वायु प्रदूषण।
- प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन तथा मानव द्वारा जंगलों का विनाश।
- जैविक विषमता का ह्रास।
- संसाधनों का सदुपयोग तथा उनका संरक्षण।
- प्राकृतिक संसाधनों का लेखा-जोखा तैयार करना तथा जैविक विविधता का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाना।

मानव एवं पर्यावरण[12]:-

भूगोल में प्राय: मानव तथा पर्यावरण के पारस्परिक संबंध का अध्ययन किया जाता है। अमेरिका के प्रसिद्ध **भूगोलवेत्ता ऐलन सी-सेंपल** के अनुसार, "मानव अपने पर्यावरण की उत्पत्ति है "Man is the product of Earth or his Environment"

भूगोलवेत्ताओं द्वारा मानव एवं पर्यावरण के संबंध में कई विचारधाराओं/ अवधारणाओं का प्रतिपादन किया गया है जो इस प्रकार है:-

- **निश्चयवादी** 1859 ईस्वी में प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन के अनुसार मानव अपने पर्यावरण में संघर्ष करके वर्तमान स्वरूप में पहुंचा है। भूगोल में डार्विन के संघर्ष सिद्धांत का सर्वप्रथम एक रिटाजिल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक एंथ्रोपॉजियोग्राफी में किया था रिटाजिल महोदय ने मानव एवं पर्यावरण के संबंध में निश्चयवाद विचारधारा को जन्म दिया।
- **संभववादी** भूगोल विद मानते हैं कि मानव अपनी आवश्यकता अनुसार पर्यावरण में परिवर्तन करने में सक्षम है। अतः भी मानव को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इस विचारधारा के प्रवर्तक विडाल डी लाब्लाश है।
- **नवनिश्चयवाद:** वर्तमान में इन दोनों विचारधाराओं से अलग, लेकिन सम्मिलित रूप नव निश्चयवाद को अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है, जो मानव व पर्यावरण के मध्य संतुलन को महत्व देकर विकास का आधार तैयार करता है। नव निश्चयवाद को **रुको और जाओ नियतिवाद** भी कहा जाता है इस विचारधारा के जनक ग्रिफिथ टेलर है।

मानव पर पर्यावरण का प्रभाव[13]:-

विश्व की ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। पर्यावरण के भौतिक तत्व में सबसे अधिक प्रभाव जलवायु का मानव समाज और उनके जीवन शैली पर पड़ता है। इसके अंतर्गत मध्य एशियाई क्षेत्र तथा अफ्रीकी एवं अन्य विषम जलवायु वाले क्षेत्रों में वहां का पर्यावरण वहां निवास करने वाले लोगों के जीवन स्पष्ट तौर पर प्रभावित करता है।

जैसे:- मध्य एशियाई क्षेत्र के लोग पशु-चारण के द्वारा तथा कालाहारी तथा कांगो बेसिन के लोग शिकार तथा पारंपरिक कृषि एवं क्षेत्र के लोग बर्फ के घरों (इग्लू) में रहने के साथ ही उन क्षेत्र में पाए जाने वाले जंतुओं जीवो के सहारे जीवन यापन करते हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से प्रजातियों के रंग रूप, आंख, नाक शरीर की बनावट, बाल, ठोड़ी, कपाल तथा चेहरे की आकृति पर पड़ता है।

पर्यावरण पर मानव का प्रभाव[14]:-

पर्यावरण पर मानव के प्रभाव को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्रत्यक्ष प्रभाव और अप्रत्यक्ष प्रभाव।

- **प्रत्यक्ष प्रभाव:-** प्रत्यक्ष प्रभाव के अंतर्गत सुनियोजित तथा संकल्पित प्रकार के प्रभाव सम्मिलित होते हैं, क्योंकि मनुष्य किए जाने वाले कार्यों के परिणामों से अवगत रहता है। उदाहरण- भूमि उपयोग में परिवर्तनz नाभिकीय कार्यक्रम, मौसम रूपांतर कार्यक्रम, निर्माण तथा उत्खनन आदि। प्रत्यक्ष प्रभाव अल्पकाल में परिलक्षित हो जाते हैं तथा दीर्घकाल तक पर्यावरण को प्रभावित करते रहते हैं। यह परिवर्तनीय भी होते हैं।
- **अप्रत्यक्ष प्रभाव:-** इसके अंतर्गत वे प्रभाव आते हैं जो पहले से सोचे अथवा नियोजित नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए औद्योगिक विकास हेतु किए जाने वाले कार्यों के प्रभाव। शीघ्र परिलक्षित नहीं होते। इनमें से अधिकांश प्रदूषण तथा पर्यावरण अवनयन से संबंधित होते हैं। यह पारिस्थितिकी तंत्र से ऐसे परिवर्तन ले आते हैं जो मानव के लिए घातक होते हैं।

पर्यावरण का महत्व[15]:-

पर्यावरण के विषय में इतना अध्ययन करने के उपरांत अब हम इसके महत्व को नकार नहीं सकते हैं। मानव जीवन को सुखी एवं समृद्धशाली बनाने के लिए प्रत्येक के लिए पर्यावरण अध्ययन का महत्व स्वत: सिद्ध है। पर्यावरण का महत्व से आशय है पर्यावरण शिक्षा का महत्व क्योंकि इस शिक्षा के माध्यम से ही हम पर्यावरण के महत्व को जान सकते हैं।

1. पर्यावरण के अध्ययन के द्वारा हमें वन, वृक्ष, नदी, नाले आदि का हमारे जीवन में क्या महत्व है? इसकी उपयोगिता की जानकारी होती है।

2. पर्यावरण अध्ययन से पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत होने, सकारात्मक अभिवृत्तियां तथा पर्यावरण के प्रति भावनाओं का विकास होता है।
3. वर्तमान में विश्व में बढ़ते पर्यावरणीय प्रदूषण की जानकारी इसके प्रभाव तथा सामान्य जनता के प्रदूषण के प्रति उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य आदि के बारे में पर्यावरण अध्ययन अपना महत्वपूर्ण योगदान रखता है।
4. पर्यावरण अध्ययन आधुनिक समय में सर्वसाधारण को पर्यावरणीय समस्याओं की जानकारी, उनके बारे में विस्तृत विश्लेषण तथा समस्याओं के समाधान में उपयोगी योगदान प्रदान करता है।
5. पर्यावरणीय अध्ययन का महत्व उन क्षेत्रों में अधिक है जहां शिक्षा एवं ज्ञान का उच्च स्तर पाया जाता है, अज्ञान तथा अशिक्षा वाले क्षेत्रों में पर्यावरणीय सुरक्षा तथा संरक्षण के प्रति जनसाधारण में उदासीनता पाई जाती है।
6. पर्यावरण अध्ययन के द्वारा जनसाधारण को विभिन्न प्रदूषणों की उत्पत्ति, उनसे होने वाली हानि तथा प्रदूषण को रोकने के उपाय के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।
7. शहरीकरण एवं नगरीय कारण की प्रवृत्ति से उत्पन्न समस्याओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।
8. वर्तमान समय में परिवर्तन के विभिन्न साधनों की बढ़ती संख्या के कारण प्रदूषण का स्तर तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। पर्यावरणीय अध्ययन का परिवहन द्वारा उत्पन्न प्रदूषण की रोकथाम से विशेष महत्व है।
9. हमारी संस्कृति जिसमें अहिंसा, जीवन के प्रति दया भाव, प्रकृति पूजन आदि मुख्य मूलाधार है पर्यावरण अध्ययन संस्कृति के इन मूलाधारों के संरक्षण में सहायक है।
10. औद्योगीकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने तथा इससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान में पर्यावरणीय अध्ययन का महत्वपूर्ण योगदान है।
11. वर्तमान समय की विश्व की मुख्य समस्या तीव्र जनसंख्या वृद्धि है। पर्यावरण अध्ययन हमें जनसंख्या नियंत्रण के विभिन्न उपायों के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

जनजाग्रति की आवश्यकता[16] :-

पर्यावरण संरक्षण के लिए जन जागृति एक सशक्त माध्यम हो सकता है। संसाधन को बिगड़ते हुए पर्यावरण की एवं इससे उत्पन्न खतरे की जानकारी होनी चाहिए। केवल सरकारी प्रयासों से पर्यावरण का संरक्षण नहीं किया जा सकता है। पर्यावरण के संरक्षण हेतु जन जागृति की नितांत आवश्यकता इसलिए है कि प्राकृतिक संसाधन सीमित है। इनका उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना आवश्यक है अन्यथा एक दिन भविष्य में मानव सभ्यता के अस्तित्व को खतरा पैदा हो सकता है। पर्यावरण संरक्षण हेतु जन जागृति का एक महा अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है। लोगों में अब पर्यावरण के प्रति

सजकता बड़ी है, जन जागृति आई है, फिर भी अभी जितनी जनजागृति होनी चाहिए उसका अभाव है। ऐसी स्थिति में पर्यावरण संरक्षण हेतु किए जाने वाले प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं।

लगातार घटते जा रहे प्राकृतिक संसाधनों, ओजोन परत में बढ़ता छेद, तेजाबी वर्षा, ग्रीन हाउस प्रभाव आदि पर्यावरणीय समस्याओं ने 20वीं शताब्दी में विश्व समुदाय को जागृत किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में जून 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित विश्व पर्यावरण सम्मेलन में भारत सहित सम्मिलित 119 देश के राष्ट्रीय अध्यक्षों ने पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति पर गहरी जनता व्यक्त की। यह सम्मेलन पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रथम सामूहिक प्रयास था। तब से ही जन चेतना जाग्रत करने हेतु प्रतिवर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाने लगा। पृथ्वी पर मानवीय आवास एवं जीवन स्तर को गुणात्मक बनाने के लिए 1978 में नैरोबी (kenya) में "Habitat" नामक नामक संस्था का गठन किया गया। इससे पूर्व सितंबर 1977 में नैरोबी में ही मरुस्थलीकरण पर एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी "The United Nations Conference on Desertification" का आयोजन किया गया। इसमें 100 देश तथा 80 अंतर्सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के 1500 व्यक्तियों ने भाग लिया था। इसमें मरुस्थलीकरण तथा 1968-73 के भयंकर सूखा के बारे में विशुद्ध चर्चा करके भावी रणनीति तय की गई। स्टॉकहोम दस्तावेज के 10 वर्ष पूर्ण होने पर 1982 में नैरोबी में "National Declaration" द्वारा पर्यावरण संकट पर उन्हें अपने उत्तरदायित्व को दोहराया गया। इसके उपरांत विश्व के विभिन्न भागों में जगह-जगह पर्यावरण संबंधी गोष्ठियां आयोजित की जाने लगी। वर्तमान समय में राष्ट्रमंडल यूरोपीय साझा बाजार, ग्रुप-15 के देश आदि संगठन भी समय-समय पर पर्यावरण चेतना के कार्य कर रहे हैं। लेकिन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण हेतु क्रियान्वित किये जा रहे कार्यक्रमों के यथेस्ट परिणाम नहीं मिलना जन सहभागिता की कमी के कारण रहा। विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग 1987 की रिपोर्ट में विश्व समुदाय में पर्यावरण चेतना की कमी को चिंताजनक बताया गया है।

पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं को समझने तथा उनके समाधान के लिए संपूर्ण विश्व में विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों का गठन हुआ है। पर्यावरण शोध संरक्षण, चेतना एवं बोध की दिशा में अनेक अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं कार्यशील है जिनमें से निम्न प्रमुख है:-

- संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम, 1972
- अंतराष्ट्रीय जैव कार्यक्रम, 1964
- आधुनिक समाज की चुनौतियों से संबंधित समिति, 1969
- संयुक्त संघ का राष्ट्रीय आयोग, 1971
- यूनेस्को का मनुष्य एवं जीवमंडल कार्यक्रम, 1970
- विश्व वन्य जीव कोष, 1961
- अंतराष्ट्रीय भूमंडल जीवमंडल कार्यक्रम, 1986
- अंतर्राष्ट्रीय जैव कार्यक्रम के लिए विशेष समिति

- अंतरराष्ट्रीय जलीय कार्यक्रम पर्यावरणीय समस्याओं पर वैज्ञानिक समिति
- महासागरीय शोध पर वैज्ञानिक समिति
- जलीय शोध पर वैज्ञानिक समिति।

जलवायु परिवर्तन से संबंधित विभिन्न सम्मेलन[17]:-

- स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972
- मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, 1987
- हेलिंस्की की सम्मेलन, 1989
- कोपेनहेगन सम्मेलन, 1992
- प्रथम पृथ्वी सम्मेलन, 1992
- क्योटो प्रोटोकॉल सम्मेलन, 1997
- जोहानिसबर्ग सम्मेलन, 2002
- मोंट्रियल सम्मेलन, 2005
- बाली सम्मेलन, 2007
- कोपेनहेगन सम्मेलन, 2009
- कानकुन सम्मेलन, 2010
- डरबन सम्मेलन, 2011
- दोहा सम्मेलन, 2012
- रियो + 20 (2012)
- वारसा सम्मेलन, 2013
- लीमा सम्मेलन, 2014
- पेरिस सम्मेलन, 2015
- किगाली संशोधन, 2016
- स्टॉकहोम सम्मेलन, 2-3, जून 2022

भारत में पर्यावरण जागृति[18]:-

प्राचीन काल से भारत में पर्यावरण बोध की परंपरा रही है। भारतीय प्राचीन धर्म ग्रंथो में विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन किया गया है। सूर्य, वायु, जल, वनस्पति, भूमि आदि को देवता समान माना गया है। सूर्य को देवता के रूप में मानते हुए जगत की आत्मा कहा गया है। भारत में जल को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। ऋग्वेद के दसवें मंडल का 75वां सूक्त नदी सूक्त कहलाता है। इस सूक्त के सारे मंत्रो में नदियों का ही वर्णन है। सन 1763 में जोधपुर के खेजड़ली गांव की महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण के लिए संघर्ष किया था। इसका नेतृत्व खेजड़ली गांव के रामोजी कोड की पत्नी अमृता देवी तथा उसकी साथियों ने किया तथा अपने प्राण न्योछावर कर दिए। भारत में पर्यावरण चेतना के लिए चलाए गए प्रमुख आंदोलन इस प्रकार हैं:-

- हिमालय क्षेत्र की वन एवं जैव विविधता को बचाने के लिए चिपको आंदोलन चलाया गया।
- पलानी तथा नीलगिरि पर्वतीय क्षेत्र के वन बचाने के लिए अप्पीको आंदोलन चलाया गया।
- केरल के प्रस्तावित जल विद्युत परियोजना के विरुद्ध जिससे पश्चिमी घाट के वनों एवं जैव विविधता का संरक्षण हुआ इस हेतु शांति घाटी आंदोलन चलाया गया।
- राजस्थान में सरिस्का बनने अभ्यारण वी बाघ परियोजना को संरक्षण हेतु अरावली बचाओ आंदोलन चलाया गया।
- प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अन्ना हजारे द्वारा रालेगांव महाराष्ट्र में चलाया गया जल संरक्षण अभियान।
- ताजमहल की संरक्षण हेतु मथुरा तेल रिफाइनरी पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया क्योंकि इस रिफाइनरी से निकलने वाली सल्फर डाइऑक्साइड से समझ के क्षरण का खतरा पैदा हो गया था।
- पर्यावरण संरक्षण का एक अनूठा उदाहरण राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र में भी इतिहास के पन्नों में दर्ज हुआ है। (जोधपुर के भूतपूर्व महाराज ने अपने नए महल के निर्माण के लिए खेजड़ली नमक बिश्नोईयों के गांव में खड़े पेड़ों को काटने का आदेश दिया था)
- सन 1985 में मेधा पाटेकर के नेतृत्व में नर्मदा घाटी की जैव विविधता तथा मूल आदिवासियों के सांस्कृतिक पर्यावरण की रक्षा करने हेतु नर्मदा बचाओ आंदोलन चलाया गया। इस आंदोलन में बाबा आमटे तथा अरुंधति राय को सम्मिलित किया गया।
- मिट्टी बचाओ आंदोलन।
- उड़िया संयंत्र का विरोध। (मुंबई से 25 किलोमीटर दूर वैशड में)
- इंद्रावती नदी पर बांध का विरोध (मुंबई के इंद्रावती नदी पर गोपालपटनम एवं इचामपत्तली बांध का आदिवासियों द्वारा विरोध)।
- गंध मर्दन बॉक्साइट विरोध संबंधित क्षेत्र में संरक्षण के लिए किया जा रहा है पर्यावरण हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है।[19]
- पर्यावरण जन चेतना के कारण एक बड़ी सफलता यह भी रही कि पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली गैस क्लोरोफ्लोरोकार्बन का अब उपयोग काफी न्यू रह गया है। इसके उपयोग में 90% तक की कमी आई है। इस गैस से ओजोन परत प्रभावित होती है। इसी प्रकार लगभग सभी बड़े शहरों में शिक्षा युक्त पेट्रोल का बेचान बंद हो गया। अब शिक्षा रहित पेट्रोल ही दिया जाता है यह पर्यावरण के प्रति चेतना का एक अच्छा सफल उदाहरण है।

निष्कर्षत:-

कहा जा सकता है कि भारत में पर्यावरण के प्रति जागृति आई है। भारत सरकार द्वारा पर्यावरण शिक्षा की महत्व स्वीकार करने के फलस्वरूप राज्य सरकारों को इसे अपने-

अपने राज्य में प्रभावी रूप से प्रारंभ किए जाने के निर्देश भी दिए गए हैं। राज्य सरकारों ने इसे विद्यालय व महाविद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण शिक्षा लागू की है। विभिन्न स्तरीय कार्यरत शिक्षित समूह के लिए विभिन्न सेमिनार व कार्य गोष्ठियां और शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे हैं तथा अन्य लोगों के लिए दूरदर्शन आकाशवाणी और समाचार-पत्र अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। बढ़ते पर्यावरणीय खतरे के भय से अथवा सुखी जीवन में कोई व्यवधान पड़ जाने की आशंका ने लोगों में चिंता उत्पन्न की है। इससे वह अब अपने स्तर पर वृक्ष लगा रहे हैं। गंदगी कम फैलाने की बात करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों में मितव्ययता की बात सोच रहे हैं, पर यह संख्या अभी भी काफी न्यून है। आज इस बात की आवश्यकता है कि राज्य सरकार अपने-अपने स्तर पर बहुत व्यापक योजना तैयार कर उसे लागू करने के लिए सक्षम और कर्तव्यनिष्ठ लोगों की सेवाओं का उपयोग करें।

संदर्भ:-

1. Park, Chris, Ecology and environment management, 1980, p. 28
2. Tanskey, A.G., Practical plant ecology, 1926
3. Devis, D.A., The earth and man, 1955
4. Stamp, D.A. Glossary of geographical terms, 1979, p.186
5. Herskovits, Man and this book
6. गुर्जर, डॉ. रामकुमार, जाट, डॉ. बी.सी., पर्यावरण अध्ययन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ 6
7. पर्यावरण एवम् पारिस्थितिकी, अरिहंत पब्लिकेशन, लिमिटेड, पृ 3,4
8. उपरोक्त, पृ 5
9. उपरोक्त, पृ 5
10. उपरोक्त, पृ 6
11. उपरोक्त, पृ 6
12. उपरोक्त, पृ 6
13. उपरोक्त, पृ 7
14. उपरोक्त, पृ 7
15. गुर्जर, डॉ. रामकुमार, जाट, डॉ. बी.सी., पर्यावरण अध्ययन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ 17
16. उपरोक्त, पृ 18
17. उपरोक्त, पृ 19
18. शर्मा, डॉ. एम. एम., पर्यावरण अध्ययन, शिवम बुक हाउस, जयपुर, 2005, पृ 1.13

CHAPTER 18

नैतिक और चारित्रिक मूल्य : वर्तमान सन्दर्भ में

प्रो. बनवारी लाल जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.18

सारांश

नैतिक मूल्य के कारण शिक्षक अपना समाज एवं देश में स्थान खो रहा है| शिक्षक एवं छात्रों के बीच दूरियां बढ़ती जा रही है| अंतर्संबंधों का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है| नैतिक मूल्यों से संपन्न व्यक्ति निर्बल की रक्षा करता है, ईमानदारी पूर्ण व्यवहार करता है, दूसरों की मदद करता है, दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचता, स्नेह पूर्ण व्यवहार करता है, बुराईयां एवं कर्मियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है| वर्तमान में नैतिक मूल्यों का सटीक विवेचन कोहलवर्ग ने किया है और स्पष्ट किया है कि वर्तमान में किस अवस्था में कौनसा मूल्य विकसित होता है और कैसे श्रेष्ठ मूल्यों को विकसित किया जा सकता है|

शब्दावली- नैतिक, सापेक्ष भाव, पुरुषार्थ, अंतःकरण, चरित्र|

प्रस्तावना-

मोरल(Moral) शब्द का अनुवाद है- नैतिक| यह Moral शब्द लैटिन भाषा के Mores शब्द से व्युत्पन्न हुआ है| Mores शब्द का अर्थ है रीति रिवाज या आदत| नैतिक मूल्य का संबंध अच्छाई और बुराई, गुण एवं अवगुण, शुभ और अशुभ, करणीय और अकरणीय, लाभ और हानि, श्रेष्ठ और हीन से है| यह मूल्य सापेक्ष भाव को प्रदर्शित करता है| किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना का मूल्य अधिक श्रेष्ठ और काम श्रेष्ठ कोई भी हो सकता है| जैसे- भगवान श्री राम आदर्श गुण संपन्न थे, लेकिन रावण आदर्श गुणहीन व्यक्ति थे| नैतिक मूल्य "सत्यम शिवम सुंदरम" पर टिका हुआ है| चारित्रिक सद्गुणों का विकास नैतिक सद्गुणों से होता है| नी+ क्तिन प्रत्यय से नीति बना| नीति + इक प्रत्यय से नैतिक बना| जिसका अभिप्राय है लोक या समाज के लिए निर्दिष्ट किया हुआ आचार व्यवहार| भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ में निहित है, जैसे- अर्थ में आर्थिक मूल्य, काम में वैयक्तिक मूल्य, धर्म में धार्मिक मूल्य और मोक्ष में अध्यात्म मूल्य को समाहित किया है|

नैतिक मूल्यों का वर्गीकरण-

1. आर्थिक मूल्य- प्रमाणिकता, शुद्धता से धनोपार्जन, ईमानदारी|
2. व्यक्तित्व मूल्य- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, करुणा, सहिष्णुता, धैर्य, स्वावलंबन, मृदुता, अभय और कर्तव्यनिष्ठा आदि|
3. धार्मिक मूल्य- सर्वधर्म समभाव, संप्रदाय निरपेक्षता, आध्यात्मिकता, अनासक्ति|
4. मानसिक मूल्य- मानसिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन|
5. बौद्धिक मूल्य- सही निर्णय, सम्यक चिन्तन, समन्वयात्मक मूल्य|
6. वैज्ञानिक मूल्य- वैज्ञानिक स्वभाव|
7. सामाजिक मूल्य- सामाजिक न्याय, सह अस्तित्व|
8. राजनीतिक मूल्य- जनतांत्रिक चेतना, श्रेष्ठ नागरिक निर्माण|
9. राष्ट्रीय मूल्य- राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय श्रद्धा, राष्ट्रीय भक्ति,
10. अंतरराष्ट्रीय मूल्य-मानवीय एकता|
11. सांस्कृतिक मूल्य- सांस्कृतिक विरासत, सांस्कृतिक संरक्षण, सौंदर्य बोध|

उद्देश्य-

1. व्यक्ति के ज्ञान, भाव एवं क्रिया पक्षों के नैतिक आयाम का विकास करना|
2. शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक पक्षों के नैतिक आयाम का विकास करना|
3. राष्ट्रीय एकता, श्रद्धा एवं भक्ति का भाव विकसित करना|
4. नैतिकता के प्रति संवेदनशीलता, विवेकशीलता विकसित करना|
5. श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना|
6. आदर, सम्मान, न्याय, ईमानदारी, प्रमाणिकता का भाव विकसित करना|
7. जनतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी समाज की भावना का विकास करना|
8. सत्यम शिवम सुंदरम का विकास करना|

- **अंतःकरण की शुद्धता (मन, बुद्धि, चित्त व आत्म)**- मन की पवित्रता, मन की निष्कपटता, मन की शालीनता, मन की स्थिरता, चित्त की प्रसन्नता, चित्त की शुद्धता, पवित्र चित्त, सात्विक बुद्धि, निर्मल, पवित्र, स्वच्छ, आत्मीयभाव, सम्यक आचरण, शालीन व्यवहार, वाणी की मधुरता, स्वस्थ एवं स्वच्छ शरीर, शांत स्वभाव, सेवा भाव, परोपकारी, ईमानदार, सत्यवादी, अपरिग्रही, अचौर्य, अहिंसक और इन्द्रिय श्रेष्ठ, आदतों का पुंज, इच्छा शक्ति या संकल्प, मन की दृढ़ता, स्थाई भाव और संगठन की शक्ति, आनंद, हर्ष, आत्मसम्मान, आत्मनियंत्रण, संवेग नियंत्रण, आत्मअनुशासन, आत्मविश्वास, आत्मबोध, आध्यात्मिक चेतना, अनासक्ति, निरीक्षण, आत्मपरीक्षण, अभय, मृद्ता, संकल्पशक्ति, संयम अभाव आदि गुणों से युक्त व्यक्ति चारित्रिक एवं नैतिक सद्गुण वाला होता है| इसके विपरीत गुणों वाला व्यक्ति चारित्रिक दुर्गणों अथवा अनैतिक गुणों वाला होता है|

- **नैतिकता निरपेक्ष और सापेक्ष**- नैतिक आचरण देश, काल के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं| जैसे पश्चात्य देश में मद्यपान, धूमपान अनैतिक नहीं माने जाते हैं और भारत में इसे ही अनैतिक आचरण में मानते हैं| वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, दहेज प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा को भारत के लोग आदर्श व्यवस्था के रूप में मानते थे| लेकिन आज इसे एक अभिशाप के रूप में मानते हैं, इससे प्रतीत होता है कि नैतिकता देश,काल सापेक्ष है| एक देश काल में रहने वाले व्यक्तियों के भी आचरण में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है| किसी का लक्ष्य भौतिकता है तो किसी का लक्ष्य आध्यात्मिकता हो सकता है| व्यक्ति परिस्थिति देखकर हिंसा, असत्य भाषण, अशांति के क्रियाकलाप कर देता है| इससे प्रतीत होता है कि नैतिकता सार्वभामिक न होकर सापेक्ष है| अत; नैतिकता को सापेक्ष से निरपेक्ष में परिवर्तन करने का प्रयास देखा जाता है| नैतिकता और फैशन में कोई अंतर नहीं रहता है, जैसे- फैशन बदलता वैसे नैतिकता बदलती रहे| प्रमाणिकता, विश्वसनीयता, मानवीय एकता, संयम, सह-अस्तित्व, सत्यवादिता, सामाजिक आदर्शों का पालन, करुणा, निष्पक्षता आदि नैतिक गुण उसके चरित्र में परिलक्षित होते हैं| मैं शिक्षक हूं चौराहे पर इस प्रकार मुझे चार्ट पकौड़ी नहीं खानी चाहिए| मैं ईमानदार शिक्षक की श्रेणी में हूं मुझे रिश्वत नहीं लेनी चाहिए| मुझे महिलाओं से आदर पूर्वक बोलना चाहिए| मैं सम्मानित शिक्षक हूं, मुझे हिंसा और चरित्रहीनता के कार्य नहीं करने चाहिए| मैं एक शिक्षक के पद पर हूं आदि सोचने की प्रक्रिया में आत्मसम्मान का स्थाई भाव छिपा है| इसी प्रकार के आंतरिक व्यवहार से हमारा नैतिक और चारित्रिक पुष्ट होता है| आत्मसम्मान चरित्र का ही एक विशेष गुण है| मुझे वह कार्य नहीं करने हैं जो दूसरों की आत्मा को ठेस या दुःख पहुंचे| ये कार्य ही नैतिक और चरित्र को आत्मसम्मान प्रदान करते है| स्थाई भाव विविध परिस्थितियों में भी संगठित रूप में मिलते हैं, उनमें कमी नहीं दिखाई देती है, जैसे- छात्रा से कक्षा में अच्छे चरित्र की बात करना अकेले में गलत हरकतें करना| यह स्थाई भाव शासक या प्रमुख रूप में कार्य करते हैं|
- **चरित्र निर्माण की प्रक्रिया**- मूल प्रवृत्तियां से संवेगों की उत्पत्ति होती है, संवेगों से व्यवहार का व्यवहार बनता है, और व्यवहार से व्यक्तित्व का निर्माण होता हैं और व्यक्तित्व निर्माण चरित्र को प्रकट करता है| जैसे- भवन का मूल आधार नींव है, वैसे ही तत्व निर्माण का मूल आधार मूल प्रवृत्ति है| स्थाई भाव चरित्र की दीवारें और छत हैं, ईट संवेग है, आत्मसम्मान सीमेंट है, वह इन्हीं को जोड़ने का कार्य संपादित करती है| जिस प्रकार भवन निर्माण में विभिन्न सामग्री की आवश्यकता होती है वैसे ही चरित्र निर्माण में भी विविध जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियां कार्य करती हैं| संगठित आत्मा ही चरित्र है| भगवान कक्ष के बाहर जूते उतारने चाहिये| मुझे रिश्वत नहीं लेनी चाहिये| मैं सड़क के किनारे गलत तरीके से नहीं जाऊंगा| मैं बरमूडा पहनकर मन्दिर में नहीं जाऊँगा|

कोहलवर्ग ने नैतिक मूल्यों के विषय में बहुत श्रेष्ठ विचार प्रस्तुत किये है जो निम्न है-

कोहलवर्ग ने तीन स्तरों में नैतिक स्तरों की चर्चा की है-

अवस्था	**आयु**	**नैतिक स्थिति का विवरण**
1. पूर्व नैतिक स्तर	4-10 वर्ष	कोई नैतिक मूल्य नहीं होता है|
2. परम्परागत नैतिक स्तर	10-13 वर्ष	परम्पराओं एवं त्यौहारों से मूल्य विकसित होते है|
3. आत्म अंगीकृत नैतिक मूल्य	13 वर्ष से प्रौढ़ावस्था	इस अवस्था में मूल्यों को समझता है और उचित मूल्य को ग्रहण करता है|

कोहलवर्ग की नैतिक निर्माण की पांच अवस्था-

अवस्था	**आयु**	**नैतिक स्थिति का विवरण**
1. पूर्व नैतिक अवस्था	0-2 वर्ष	1. नैतिक मूल्य कोई समझ नहीं होती है 2. नुकसान एवं लाभ की जानकारी नहीं होती है 3. अच्छे या बुरे का भाव नहीं होता है 4. रोना, चिल्लाना, मारना, पीटना, तोड़ना, फ़ोड़ना आदि अनैतिक मार्ग का सहारा लेता है 5. मर्जी का मालिक होता है और जिद्दी होता है|
2. स्व केन्द्रित अवस्था	3-6 वर्ष	1. अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान देता है 2. हित या अहित से कोई मतलब नहीं होता है 3. आत्म कल्याण की भावना 4. स्वार्थी और मनमर्जी होता है 5. असामाजिक, अमर्यादित गुण होते हैं|
3. परम्पराओं को धारण करने वाली अवस्था	7 वर्ष से किशोरावस्था	1. सामाजिक गुण धारण करता है 2. समाज मूल्य, परंपराओं को धारण करता है 3. तीज, त्यौहार, पर्व आदि को आनंद के साथ मनाता है

		4. गुरु, मां-बाप की बात को मानता है 5. अच्छे और बुरे का ज्ञान हो जाता है|
4. आधारहीन आत्मचेतनावस्था	किशोरावस्था	1. स्वयं के गुण दोष समझता है 2. स्वयं से असंतुष्ट रहता है 3. परंपरा बदलने की प्रवृत्ति होती है 4. जो चीज अच्छी लगती है वही स्वीकृत करता है 5. आधारहीन भावनाएं होती हैं 6. नैतिक चरित्र का कोई आधार नहीं होता है|
5. आधारयुक्त चेतनावस्था	प्रौढ़ावस्था	1. मानसिक शक्तियों का विकास करता है 2. अहिंसा या युद्ध को समझता है 3. परिस्थिति के अनुसार मूल्य ग्रहण करता है 4. सोच समझकर नैतिक मूल्य ग्रहण करता है 5. संज्ञानात्मक शक्तियों का विकास होता है 6. तर्कसंगत एवं तर्कसम्मत एवं विचार युक्त बातों को स्वीकार करता है|

निष्कर्ष

नैतिक मूल्य से राष्ट्र के प्रति जागरूक एवं समर्पण की भावना विकसित होती है| नैतिक मूल्य से ईमानदारी, सत्यता, विश्वासनीयता, वैधता, सामंजस्य, सांवेगिक बौद्धिक अनुरूपता, नि:स्वार्थ, सरल, विनम्र, निष्कपट, इज्जतवान, ज्ञानी, मेहनती, संतोषी व्यक्तित्व का निर्माण होता हैं| इसके विपरीत गुण वाले व्यक्ति अनैतिक कहलाते हैं| चारित्रिक सद्गुणों का विकास नैतिक सद्गुणों से होता है| कोहलवर्ग के अनुसार नैतिक

विकास विविध अवस्था में अलग-अलग होता है, उसी के अनुसार विकास करना चाहिये| नैतिक विकास से ही चरित्रवान राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. जॉर्ज फर्नांडीज का लेख "नैतिक अधोपतन के पचास वर्ष, जनसत्ता दिल्ली, 13 अगस्त, 1997
2. नेगी, सुरेंद्र सिंह,(2000) नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता, आदित्य पब्लिर्स (मध्य प्रदेश), पेज 11 - 13
3. लोढ़ा, महावीर मल (2007 द्वितीय संशोधित संस्करण) नैतिक शिक्षा: विविध आयाम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज-107
4. कोठारी, गुलाब (2016) मानस: संस्कृति और सभ्यता, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर |
5. आचार्य महाश्रमण (2014), सुखी बनो, जैन विश्व भारती,

CHAPTER 19

विद्या, विद्यार्थी और वैल्यू एजुकेशन

प्रोफेसर (डॉ०) एस० हुसैन
विभागा अध्यक्ष
एस्ट्रोन कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन मेरठ

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.19

सारांश

शिक्षा समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता है] क्योंकि शिक्षा ही देश के विकास एवं उन्नति अथवा संपन्नता का आकलन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर करती है। कोई राष्ट्र कितना ही संपन्न क्यों न हो लेकिन उसकी पूर्णता: उसकी संपन्नता का प्रतीक उस देश की शिक्षा ही है। जिस प्रकार बिना सूर्य के लालिमा की कल्पना करना असंभव है, ठीक उसी प्रकार बिना शिक्षा के कोई भी राष्ट्र अपनी श्रेष्ठता, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकट नहीं कर सकता। हमारे जीवन में मूल्य शिक्षा का महत्व है। मूल्य शिक्षा के माध्यम से हर व्यक्ति समाज में सकारात्मक मूल्य के साथ क्षमताओ और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करते हैं, जिसमें वह रहता है। मूल्य शिक्षा का अर्थ है- दैनिक जीवन में कुशल व्यक्तित्व के साथ सभी को समझना। मूल्य शिक्षा से छात्रों में सहयोग समानता, साहस, प्रेम एवं करुणा, बंधुत्व, श्रम,गरिमा, वैज्ञानिक - दृष्टिकोण, विभेदीकरण करने की क्षमता, आदि गुणों का विकास होता है। मूल्य शिक्षा छात्रों को एक उत्तरदायी व आत्मनिर्भरता के साथ- साथ भावनात्मक एकता व राष्ट्रीय एकता मे सक्षम नागरिक बनने के लिए प्रशिक्षित व प्रेरित करती है।

कुंजी शब्दावली:- शिक्षा,शिक्षार्थी, मूल्य शिक्षा, उन्नति अथवा संपन्नता लालिमा, कल्पना,अंतर्राष्ट्रीय श्रेष्ठता , बंधुत्व, वैज्ञानिक -दृष्टिकोण और क्षमता।

प्रस्तावना

आज हम सब शिक्षा के महत्व को समझने और जानने के लिए शिक्षा के विभिन्न रूपों के साथ-साथ इसके विभिन्न आयामों को समझने का यह जानने का प्रयास करेंगे, और साथ चर्चा करेंगे की शिक्षा क्या है? इसमें क्या-क्या शामिल है- केवल परीक्षा पास करना ही नहीं बल्कि शिक्षित होने का पूरा तात्पर्य है क्या है? दरअसल हम इन सब चीजों के बारे में प्रतिदिन वार्ता करते और हर दिन हम एक दूसरे से कुछ ना कुछ सीखने और सीखते रहते हैं। क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़ लिख रहे हैं? क्या आप जानते

हैं? अभी की हमारी शिक्षा का अर्थ है-स्कूल जाना,पढ़ना-लिखना सीखना, परीक्षाएं पास करना और कुछ खेल आदि खेलना। विद्यालय की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद आप कॉलेज में जाने लगते हैं, फिर कहां से कुछ महीना या कुछ वर्षों तक कठिन परिश्रम करते हैं परीक्षाएं पास करते हैं और छोटी-मोटी नौकरी पा लेते हैं। फिल्म का मसला कहीं अधिक व्यापक है। इसका काम इतना ही नहीं है कि दुनिया में यह है आपको कोई नौकरी दिलाने में सहायक बल्कि यह भी है कि इस दुनिया का सामना करने में आपकी मदद भी करें। आप जानते हैं कि संसार क्या है इस संसार में चारों तरफ प्रतिस्पर्धा है इसका अर्थ है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ अपना लाभ देख रहा है। इस दुनिया में युद्ध, वर्ग विभाजन और आपसी लड़ाई-झगड़े जैसा की आप देख रहे हैं। राष्ट्रीय परिपेक्ष में की कुछ समय पहले यूक्रेन और रूस के बाद अब इजराइल में फिलीस्तीन हमास के मध्य है युद्ध छिड़ा है, जिसमें बेकसूर बच्चों महिलाओं का कतलेआम हो रहा है, जो मानवीयता के दृष्टिकोण से नींदनीय है। इसी के साथ छोटे स्तर पर यदि आप क्लर्क हैं तो और ऊंचा पद चाहते हैं। हर समय संघर्षरत रहते हैं। यदि आपके पास मोटर कर है, तो आप बड़ी कार लेने की फिराक में रहते हैं। इस प्रकार यह संघर्ष अनवरत रूप से चलता रहता है, न केवल अपने भीतर बल्कि अपने सभी पड़ोसियों के साथ भी यह संघर्ष हमारा जीवन है। सभी प्रकार की समस्याओं का ठीक ढंग से सामना करने के लिए आपको शिक्षित किया जाता है। यही शिक्षा है ना कि मात्रा कुछ परीक्षाएं पास कर लेना, कुछ बेहूदा विषयों का चयन करना । जिसमें कि आपकी रुचि बिल्कुल नहीं है, उनका अध्ययन कर लेना। सम्यक शिक्षा वही है जो विद्यार्थी को इस जीवन का सामना करने में मदद करें, ताकि वह जीवन को समझ सके, उससे हारने न माने, उसके बोझ से दब न जाए,जैसा कि हम जैसे अधिकांश लोगों के साथ होता है। लोग विचार देश जलवायु भजन लोकमत यह सब कुछ लगातार आपको उसे खास दिशा में धकेलते रहते हैं। जिसमें यह समाज आपको देखना चाहता है। आपकी शिक्षा ऐसी हो कि आप इस दबाव को समझने के योग्य बने। इसे उचित ठहरने के बजाय आप इसे समझें और इसके बाहर निकले,जिससे कि एक व्यक्ति होने के नाते एक मनुष्य होने का आपको एहसास और शक्ति प्रदान करें। केवल परंपरागत ढंग से ही विचार करते ना रह जाए, यही वास्तविक शिक्षा है। उतार-चढ़ाव के साथ नवीन तकनीकी माहौल में अनुकूलन स्थापित कर उसमें अपने कौशलों के माध्यम से स्वरोजगार के साथ-साथ आत्मनिर्भरता की संकल्पना को साकार करने की सिफारिश राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी की गई है जो एक सरकार का सकारात्मक कदम है आज का बालक आने वाले कल का पिता होगा वही हमारे देश का भविष्य भी है । इसलिए स्कूली शिक्षा ऐसी हो कि उसके समग्र व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

शिक्षा का शाश्वत अर्थ:-

स विद्या या विमुक्ते- जो मुक्ति दिलाई अर्थात शिक्षा मुक्ति का साधन है। बालक अथवा व्यक्ति के जीवन के अनुरूप शिक्षा का क्या उत्तरदायित्व होता है, और शिक्षा के

संरक्षण व विकास के लिए बालक अथवा व्यक्ति की क्या कर्तव्य निष्ठा होती है। दोनों बातें परस्पर इस बात पर निर्भर करती हैं, और किन्ही कारकों के द्वारा इन पर क्या प्रभाव पड़ता है। यहां पर इस बात को जानना और समझना बहुत आसान होगा कि दोनों के विकास के लिए वंशानुक्रम व वातावरण बहुत मायने रखता है, और हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि बच्चों को वंशानुक्रम व वातावरण के मध्य कैसे समन्वय स्थापित करने का प्रयास कर रहा है, कि बच्चा किस स्थान संस्थान अथवा संस्कृति आधारित परिवार में रहकर सीख रहा है। प्राय हम यह जानते हैं कि परिवार बालक की प्रथम पाठशाला और मां प्रथम शिक्षिका होती है। बच्चों को योग्य और सक्षम बनाना घर, परिवार में स्कूल का कर्तव्य है। बच्चा भी पहले एक मनुष्य है, फिर वह किसी का बेटा अथवा भाई है। मनुष्यता की आकांक्षाएं हैं, अपेक्षाएं विशेषताएं हैं। इनमें आहार, निद्रा, भय, मैथुन पशु - मनुष्य दोनों के समान लक्षण हैं, परंतु धर्म ही एक विशेष और विभेदक तत्व है, जो जो दोनों को अलग-अलग दर्शाता है, धर्म सांस्कृतिक मूल्यों आंतरिक परिष्कार और परिशुद्धि प्रक्षलन का तत्व है इसका शिक्षण पहले परिवार से मिलना चाहिए, बाद में स्कूल से प्रारंभ हो, इसका भी ख्याल रखना चाहिए। शिक्षा के शाश्वत स्वरूप को मजबूत करने के लिए जिससे सास्कृति विरासतों का चलन समाज में मजबूत हो। इसके लिए पांच सांस्कृतिक मूल्यों को उदाहरण स्वरूप रखा जा सकता है। सत्य, सेवा, क्षमा, अहिंसा और अनुशासन। परिवार बच्चों की प्राथमिक पाठशाला है। अभिमन्यु माता के गर्भ से ही चक्रव्यूह में प्रवेश करना जान गए थे। शिवाजी सरदार भगत सिंह चंद्रशेखर आजाद रामकृष्ण परमहंस महात्मा गांधी मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि को पहले परिवार फिर विद्यालयों में प्रयुक्त सांस्कृतिक मूल्यों का प्रशिक्षण मिला था जिसके कारण ही विद्यालय के पाठ्यक्रम में इनका समावेश होने के साथ सामान्य व्यवहार में भी उन्हें इस मूल्यात्मक शैक्षिक आवरण को अपने में बहुत सहायता मिली।

कर्म के साथ शिक्षण अधिगम:- शिक्षण अधिगम को परंपरागत तरीके से सामंजस्य बिठाने और उसको जीवन में उतरने के साथ जीवन उपयोगीता के महत्व को समझने के लिए आचार्य विनोबा भावे ने - जीवन और शिक्षण - लेख में इस बात पर जोर दिया कि बच्चों को जीवन के पग पग पर प्रतीक कार्य में कथनी-करनी का सामंजस्य दिखाते रहना चाहिए। भगवान श्री कृष्ण ने कोई क्लास लेकर अर्जुन को गीता का ज्ञान नहीं कराया था। उसे तो केवल कुरुक्षेत्र में जब दोनों और की सेनाऐ लड़ने को उतारू थी, तो भगवन ने सिर्फ कर्मवाद की शिक्षा दी थी। आता है बच्चों को परिवार और विद्यालय दोनों में सांस्कृतिक मूल्यों को जन्म घुट्टी के समान पिला दिया जाए, तो तो इसके विपरीत होता यह है कि उन्हें किताबिक ज्ञान कराया जाता है वे इन मूल्यों की शब्दावली रख तो लेते हैं परंतु महात्मा गांधी जी के बताएं मार्ग पर चने की सीख नहीं मिल पाती।

शिक्षक के कर्तव्य :

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ हैं। छात्रों के ऊपर शिक्षक व विद्यालय के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। **पर्शियन** ने कहा है कि " **जैसा अध्यापक होगा वैसा ही विद्यालय होगा"** - इन शब्दों के अर्थ को समझने के लिए हमें गुरु नानक देव के उपदेश से कुछ सीखने मिली सकेगा। गुरु नानक ने बुढ़िया के पोते को गुड़ खाने से उसे दिन मन नहीं किया कि वह स्वयं बहुत गुड कहते थे एक सप्ताह कठोर व्रत रखकर उन्होंने अपने गुण प्रेम पर नियंत्रण किया फिर उसे उपदेश दिया। इसलिए शिक्षक विद्यालय और इसके बाहर घर, परिवार, समाज देश में मूल्य के लिए समर्पित होंगे, तो निश्चित रूप से बच्चों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा व अनुकूल भी।

शिक्षक को बच्चों के साथ कभी कढ़ाई भी करनी पड़े तो करें पर ध्यान रखें उन्हें मानसिक आघात ना हो उनमें विकर्षण पैदा ना हो जाए। कुम्हार कच्चे घड़े को आकार देते समय ऊपर से काट के पीटने से उसे पिटता है। परंतु वह फूट न जाए या आकार न बिगड़ने पाए। इसलिए भीतर से हाथ दिए रहता है।

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढि गढि काढ़ै खोट ।
भीतर हाथ सहार दे, ऊपर मारे चोट ।। (कबीर दास)

अर्थात भौतिकता की अंधी दौड़ हमें कहां लेकर जाएगी पता नहीं। व्यक्तिवादिता के विकास धन व सत्ता के प्रति आसक्ति आदि ने मनुष्य का स्वत्व लिया है। यह मूल्य शिक्षा ही है एकमात् औषधि - जिससे मान्यता को जीवित और सुरक्षित रहा जा सकता है अतः सबका यह कर्तव्य है कि इस दिशा में सकारात्मक प्रयास करें।

विद्यार्थी और अनुशासन:-

अनुशासन अर्थात शासन का अनुकरण करना या समाज द्वारा निर्धारित नीति, नियमों, अचार संहिताओं मानदंणो का पालन करना। अनुशासन हमें नियमन, संयमन, नियंत्रण तथा उचित व निश्चित दिशा में चलना सीखना है। प्रकृति का सारा क्रिया कालाप अनुशासन से चलता है। ग्रह नक्षत्र निर्धारित गति से किंचित परिवर्तन कर लें, तो अनर्थ हो जाए। छात्र एक कच्ची मिट्टी के लोंदे समान है। जैसा आकार हम देना चाहे दे सकते हैं । यही इसकी बुनियाद है। इसी पर भविष्य का भव्य भवन खड़ा होता है। बच्चे विद्यालय के नियमों, आदेशों का पालन तो करते ही हैं अपने साथियों और छोटों को भी इस और प्रेरित करते हैं। प्रारंभ में बच्चों का अनुशासन चलता है बाद में अभ्यास होने पर अनुशासन से उनका तादात्म्य हो जाता है। इश्क का उनकी शक्ति का सही अर्थ में सदुपयोग होता है।इसका अभ्यास कहीं थोड़ी कड़ाई से और कहीं प्रेम से होना चाहिए। तभी उसका विकास सही ढंग से हो पाएगा।

मूल्यों को आत्मसात करने में विद्यालय की भूमिका:-

विद्यालय का वातावरण मूल्यपरक बनाने में शिक्षकों व प्रबंधन समिति का बहुत बड़ा रोल होता है। विद्यालय में समय-समय पर प्रत्येक दिन सांस्कृतिक व सामाजिक कार्य का संपादन करें। जो विद्यार्थियों के जीवन को सरल रोचक बनाने में अहम भूमिका निभाएं। विद्यार्थियों में मूल्य को विकसित करने के लिए निम्न प्रकार की बिंदुओं का सहारा लिया जा सकता है।

- प्रार्थना सभा से लेकर समापन सभा तक एक वातावरण का निर्माण जिसमें यह मूल्य अनुयुक्त हो।
- सांस्कृतिक आयोजन (नाटक संगीत नृत्य आदि) में इन मूल्यों को दृश्य बनाना गेय बनाना।
- शिक्षक अलग-अलग वार्डन इलाकों में जाकर छात्रों का औचक निरीक्षण करें और देखें कि उनके घर, परिवार, पड़ोस, समाज में तत्संबंधी क्या रुक रहता है।
- समय-समय पर देश-प्रेम, राष्ट्रीय - प्रेम, सेवा, त्याग, सत्य, अनुशासन, क्षमता ,अहिंसा, संबंधी व्रतचित्र और चलचित्र दिखाना। महान पुरुषों के प्रेरक प्रसंग पर व्याख्यान देना आदि।
- विद्यालय के हाते की दीवारों पर कुछ सूक्तियां, श्लोक, चित्रदि , जिनमें उपयुक्त मूल्य का प्रकाशन हो।

मूल्य की अवधारणा:-

मूल्य, अभिवृत्तियां तथा आदर्श हमारे व्यवहार को निर्देशित तथा नियंत्रित करते हैं। मुल्यो से अभिप्रेरणा को दिशा मिलती है। हमारे व्यवहार का नियंत्रण करने में मूल्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आवश्यकताओं की संपुष्टि के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के चयन में निर्णय लेने में निर्णायक कार्य करते हैं। जीवन और संसार को हम जिस अर्थ के संदर्भ में समझने की चेष्टा करते हैं, उसे अर्थ को सामान्य रूप से मूल्य कहा जाता है। कुछ दार्शनिक मूल्यों को वस्तुनिष्ठ अर्थात विषय अथवा पदार्थ पर आधारित मानते हैं, तो कुछ अन्य विचारक इन्हें कर्तव्य निष्ठा अर्थात व्यक्ति के अनुभव पर आधारित मानते हैं। मूल्य का वर्गीकरण ज्ञान शास्त्रीवर्गीकरण से भिन्न है। अतः मूल्य शास्त्र में वस्तुनिष्ठ का तात्पर्य है देश व कल में अस्तित्व से नहीं लगाया जा सकता। मूल्य एक न होकर अनेक होते हैं भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य के रूप में भी उनका वर्गीकरण किया जाता है नैतिक आर्थिक आदि दृष्टियों से भी मूल्य की श्रेणियां बनाई जाती हैं, किंतु यह वर्गीकरण सुविधा की दृष्टि से ही है।

शैक्षिक मूल्य:-

मूल्य एक मानक रूपी मानदंड है जिसके आधार पर मनुष्य अपने सामने उपस्थित क्रियाकलापों में से चयन करने में प्रभावित होता है। " मूल्य एक सामान्य और अमूर्त गुण है

जो किसी चीज में निहित होता है और उसके महत्व या गुरुत्व की ओर संकेत करता है। शिक्षा के जब लक्ष्य उद्देश्य पर विचार प्रारंभ हुआ तभी से शैक्षिक मूल्य का उद्भव हुआ। शिक्षा के प्रमुख मूल्य- संस्कृति अनुशासन सूचना या ज्ञान तथा उपादेयिता बताए जाते हैं। जो लोग चरित्र निर्माण को शिक्षण उद्देश्य मानते हैं उन्होंने चरित्र की शैक्षिक मूल्य में गणना नहीं की है संभावतय: चरित्र अनुशासन के अंतर्गत आता है। इसका संबंध मनुष्य की भावना तो पक्ष होता है जो कि उसके व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करता है। दर्शनशास्त्र में मनुष्य के जीवन के प्रति दृष्टिकोण को मूल्य की संज्ञा दी जाती है। छात्रों में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास करना शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। परिवार और विद्यालय द्वारा यही प्रयास किया जाता है कि बालक में सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का विकास हो तथा वांछनीय एवं अवांछनीय कार्यी में भेद कर सकने की शक्ति विकसित हो जाए। नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास के लिए उचित वातावरण का होना आवश्यक है तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति का आचरण आदर्श एवं मूल्य पर आधारित होना चाहिए। दुर्भाग्यवश वर्तमान समय में मानवीय मूल्य के प्रति आस्थाओं के टूटने बिखरने के कारण सामाजिक एवं नैतिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। यदि भाभी नागरिकों में सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों एवं आरक्षण के प्रति आरंभ से आस्था विकसित नहीं हो पाई तो ,भविष्य में समाज में अराजकता एवं विघटन की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना है।

मूल्य की आधारशिला-- चरित्र निर्माण।

मूल्य की आधारशिला चरित्र पर निर्भर करती है और चरित्र का निर्माण ज्ञान प्राप्ति के उपरांत प्रारंभ होता है। गांधी जी ने कहा था कि "ज्ञान का अंतिम लक्ष्य चरित्र निर्माण है" चरित्र निर्माण के प्रति गांधी जी ने कितने आग्रह किए थे वह उनकी इस बात से पता चलता है कि सच्चरित्ता के अभाव में केवल बौद्धिक ज्ञान सुगंधित शव के समान है। " शिक्षा में चरित्र निर्माण का इतना महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी आज इस संबंध में हमारी दशा बडी दयनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न स्तरों पर विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अनेक अनेक शिक्षण संस्थाएं या संस्थान खुले किंतु उनके संस्थापक या संचालक इन संस्था ऑन के संचालक चरित्र निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के प्रति उदासीन रहे धीरे-धीरे यह स्थिति आ गई कि अधिकांश में से यह पवित्र विद्या मंदिर,जातिवाद, भाई भतीजाबाद, सांप्रदायिकबाद, भ्रष्टाचार एवं शोषण के स्थान बनकर रह गए हैं। ठीक इसी प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस का विचार था कि" चरित्र निर्माण के लिए चरित्रवान बनो जंगल अपने आप मुक्त हो जाएगा।" चरित्र के संबंध में यह विचार बहुत ही व्यापक है कि राजनीतिक, सामाजिक, व्यवसायिक और प्रशासनिक क्षेत्र में अब जो गिरावट हम पा रहे हैं, इसका मुख्य कारण चरित्रवान व्यक्तियों का अभाव ही है।

निष्कर्ष:-

विद्या विद्यार्थी और वैल्यू एजुकेशन का मूल सार यह है कि यदि हम बालकों में अच्छे चरित्र का निर्माण कर उनको नैतिक कर्तव्य और दायित्वों को समझने के साथ उनका निर्वहन करने में सहयोग कर सकें। क्योंकि चरित्र निर्माण में मूल्य शिक्षा की भूमिका पाई जाती है। यह शिक्षा औपचारिक हो सकती है जो विद्यार्थियों एवं विश्वविद्यालय में विषयों के अध्यापन के साथ दी जा सकती है अथवा अनौपचारिक हो सकती है। जो दैनिक जीवन में घूमते-फिरते कार्य व्यापार करते मनोरंजन के समय मिले समारोह दावत और अदावत के अवसर पर भी दी जा सकती है। परिवार समाज देश एवं विश्व के किसी स्थान पर अनौपचारिक शिक्षा विभिन्न साधनों से व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिए दी और ली जा सकती है। बरहाल व्यक्ति को स्वयं चेष्टा करने की आवश्यकता होनी चाहिए। धार्मिक और नैतिक शिक्षा चरित्र निर्माण में प्राचीन काल से अब तक अपनी भूमिका निभाती आ रही है। आज पश्चिमी देश यद्यपि भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं फिर भी कुछ नए ढंग से नैतिक शिक्षा के लिए संस्तुति करते हैं। अपने देश में भी नैतिक शिक्षा की संस्तुति राधाकृष्णन विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, मुदलियार माध्यमिक शिक्षा आयोग, कोठारी राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के द्वारा की गई है, और अब 34 साल बाद नई ऊर्जा व आयामों के साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी प्रावधान रखे गए हैं। यह थी हमारा संविधान हमें धर्मनिरपेक्ष आचरण की शिक्षा दे रहा है। उपरोक्त विवेचना के साथ निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि आज के भौतिकवादी युग में भी मूल्य शिक्षा चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक साधन समझी गई है और उसे पर जोर दिया भी जा रहा है।

संदर्भ सूची:-

1. **माथुर, टी०वी०:** मूल्य पर शिक्षा रीजनल कॉलेज आफ एजुकेशन अजमेर
2. **पुरोहित, जे० एन० :** समबाय विधि से मानवीय मूल्यों का शिक्षण राजस्थान बोर्ड जनरल आफ एजुकेशन अजमेर
3. **पांडे रामशकल:** शिक्षा वर्तमान संदर्भ में, बोहरा पब्लिशर्स इलाहाबाद।
4. **शकुंतला पांडेया :** जीवन मूल्य राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान उदयपुर।
5. **रामसकल पांडे :** भारतीय शिक्षा दर्शन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, साहित्य परिचय का नैतिक शिक्षा विशेषांक।
6. **मृत्युंजय उपाध्याय :** स्कूली छात्रों में सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा, वॉल्यूम 1 नवंबर 2009।
7. नहीं भारत की न्यू राशि शिक्षा नीति 2020 अवनीश कुमार सिंह।
8. नई शिक्षा नीति 2020 और मेरे विचार जितेंद्र यादव।
9. शिक्षा नीति 2020 कुछ सतुतियां एवं विमर्श -डॉ० सुधांशु कुमार पांडे।
10. **शिक्षा नीतियाँ विद्यालय नेतृत्व एवम् प्रबन्धन –डॉ0 छाया श्रीवास्तव**

11. www.drishtiias.com दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा नीति महत्व व चुनौतियों 31 जुलाई 2020
12. www.neweducationpolicyfoundation.com नई शिक्षा नीति नए–भारत की नींव, 2 अगस्त 2020
13. मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जारी रिपोर्ट, भारत सरकार
14. www.hindikiduniya.com नई शिक्षा नीति 2020
15. www.shikshaniti.com राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–उद्देश्य सिद्धान्त और विजन

CHAPTER 20

विवेकवान नागरिक बनाने अनिवार्य है मूल्य आधारित शिक्षा

सुरभि नामदेव
सहायक प्राध्यापक
द भोपाल स्कूल ऑफ सोशल साइंसेस भोपाल मप्र

डॉ. धीरेंद्र शुक्ल
विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी
उच्च शिक्षा विभाग, मप्र शासन

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.20

शोध सारांश

मूल्य आधारित शिक्षा समाज को परिष्कृत परिमार्जित और संतुलित करने वाली आचरण संहिता का नाम है। मूल्य मानव जीवन की व्याख्या ही नहीं करते अपितु उसे सही दिशा और दर्शन भी कराते हैं। मानव जीवन के समस्त कार्य व्यापार, उसमें निहित समस्त संवेदनात्मक जीवन की गहनतम अभिव्यक्ति मूल्य में प्रतिबिंबित होती है, जिनका लक्ष्य जटिलताओं, विकृतियों और समस्याओं को पहचानकर उसका हल ढूंढना और जीवन का उन्नयन करना है। मूल्य मानव में सत्य - असत्य, सही - गलत, धर्म- अधर्म आदि के बोध की बुद्धि जागृत करते हैं। भौतिकवादी युग में इन मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। परंपरागत रूढ़ मान्यताओं के स्थान पर नए आदर्श, नए विश्वास, नए मूल्य उभर रहे हैं। अतः युगीन चेतना और सामाजिक संदर्भ में मूल्य को जानना और उन्हें अंगीकार करना आज की महती आवश्यकता है। मूल्य शब्द विभिन्न क्षेत्रों और विषयों में व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ है। हर एक क्षेत्र में इसके अर्थ को परिधि में सीमित करना कठिन है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, व्यक्तिवादी एवं अन्य विचारधाराओं में मूल्य का अर्थ विस्तृत होता गया है। मूल्यों की शिक्षा का महत्व समझते हुए ही इसे शिक्षा जगत में प्रमुखता से शामिल किया जा रहा है। यही कारण है कि एनसीईआरटी ने "Document of Social, Moral and Spritual Values in Education" में 83 मूल्यों को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया है इसके साथ ही उच्च शिक्षा ने इसे आधार पाठ्यक्रम का प्रमुख अंग स्वीकृत किया है।

बीज शब्द - मूल्य आधारित शिक्षा, मानव मूल्य, एनसीईआरटी, आधार पाठ्यक्रम,

प्रस्तावना

यह सर्वविदित सत्य है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति देश के प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त विज्ञान व तकनीकी के उच्च स्तर पर निर्भर करती है। परंतु देश के नागरिकों में उच्च मूल्यों के अभाव में देश के लिए अपनी प्रगति अक्षुण्य बनाए रख पाना कठिन होगा। आज हम वैज्ञानिक तकनीकी और प्रौद्योगिक दृष्टि से उन्नत विश्व में रह रहे हैं। इस विकास यात्रा में समाज में व्यापक परिवर्तन आया है। लोगों का दिन प्रतिदिन का जीवन बदल रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने संपूर्ण ब्रह्मांड को एक सूत्र में बांध दिया है। मूल्य आधारित शिक्षा विद्यार्थियों के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए एक सुनिश्चित आधारशिला प्रदान करती है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा है " बुद्धि और चरित्र ही सच्ची शिक्षा का लक्ष्य है"। मूल्यपरक शिक्षा ही वास्तव में हमें यह क्षमता देती है कि हम अच्छे और बुरे की पहचान कर सकें। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्रीय सीमाओं से निकलकर दर्शन, तर्क, धर्म, मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपयोग हुआ है। जॉर्ज सांत्यना के अनुसार "मूल्य जब अंत: प्रेरणा से प्रकट होता है और जब अंत: प्रेरणा संज्ञान एवं संवेदना से निबंधित हो जाती है तब मूल्य अपने सही अस्तित्व में आते हैं। मूल्य आधारित शिक्षा प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा से लेकर अत्याधुनिक नई शिक्षा नीति 2020 तक स्तंभ के रूप में स्थापित दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि जहां गुरुकुल परंपरा में जहां "प्रातः काल उठी के रघुनाथा, मात - पिता गुरु नावहिं माथा" जैसे श्लोक नैतिक मूल्यों को प्रतिपादित करते हैं। वहीं एनसीईआरटी ने "Document of Social, Moral and Spritual Values in Education" में 83 मूल्यों को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया है। इसी तरह उच्च शिक्षा ने भी नैतिक शिक्षा को आधार विषय के रूप में अनिवार्य घोषित किया है।

"मूल्य वर्गीकरण की बात करें तो विभिन्न विद्वानों ने मूल्यों के वर्गीकरण को भिन्न-भिन्न ढंग से प्रस्तुत किया है अर्बन ने मूल्यों को आठ भागों में बाटा है शरीर विषयक मूल्य के शारीरिक मूल्य आर्थिक मूल्य मनोरंजन आत्मक मूल्य सामाजिक मूल्य के अंतर्गत सामाजिक मूल्य चरित्र आत्मक मूल्य आध्यात्मिक मूल्य के अंतर्गत सौंदर्य मूल्य बौद्धिक मूल्य धार्मिक एवं ईश्वर अभिषेक मूल्य।" मूल्य आधारित शिक्षा वास्तव में परिपक्व व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला है। डॉ रमेश देशमुख ने मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है "शाश्वत और परिवर्तनीय शाश्वत मूल्य के अंतर्गत उन्होंने साध्य मूल्य रखे हैं। सौंदर्यात्मक मूल्य- सत्यम, शिवम, सुंदरम, नैतिक मूल्य- त्याग, समर्पण, अहिंसा, करुणा, उदारता, सेवा, परिवर्तनीय मूल्य के अंतर्गत साधन मूल्यों को रखा गया है, इनमें जैविक मूल्य, आर्थिक मूल्य, आर्थिक क्षमता, रोजगार के समान अवसर, अति जैविक मूल्य के अंतर्गत सामाजिक मूल्य, शोषण से मुक्ति, पारिवारिक मूल्य क्षमता, स्वतंत्रता,

आध्यात्मिक मूल्य में जप, तप, निषेध, जातीय संस्कार, आस्तिकता, आनंद, मोक्ष और राजनीतिक मूल्य में राष्ट्रीयता, देशप्रेम, कर्तव्य परायणता इत्यादि शामिल हैं।"

मूल्य अधारित शिक्षा और दर्शन

भारतीय दर्शन में मूल्य मीमांसा का प्राचीन काल से ही अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसके विपरीत पश्चिमी देशों में तुलनात्मक रूप से मूल्य मीमांसा अधिक विकसित नहीं हो पाई। यह सर्वविदित तथ्य है कि प्लेटो, सुकरात, अरस्तु, शॉपेनहावर और स्पिनोजा आदि ने अपने दर्शन द्वारा मूल्यों की अवधारणा से पश्चिमी जगत ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व को लाभान्वित किया है। मूल्य मात्र आदर्श अवधारणा ही नहीं अपितु नैतिक, मानसिक सशक्तिकरण का आधार भी हैं। धार्मिक कट्टरवाद, पर्यावरण में गिरावट, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का दुरुपयोग, असमानताएं, जनसंचार माध्यमों का दुष्प्रभाव, वैश्वीकरण, व्यवसायीकरण जैसी कुरीतियों के विरुद्ध मूल्य और मूल्यपरक शिक्षा ही एक सार्थक संसाधन है। मूल्यपरक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही आने वाली पीढ़ी को स्पष्ट दृष्टिकोण और कौशल के साथ सशक्त बनाना है। उच्चतम नैतिक एवं मानवीय मूल्य ही किसी व्यक्ति के अच्छे आचरण और सकारात्मक व्यवहार के लिए अनिवार्य है। हिंदू जीवन शैली मानव जीवन की गुणवत्तावृद्धि हेतु चार पुरुषार्थ या मुख्य मूल्य प्रदान करती है। यह चार पुरुषार्थ मानव मूल्यों के निर्माण को मूर्त रूप देते हैं। 'अर्थ' याने धन के आर्थिक मूल्य, 'काम' अर्थात सुख का मनोवैज्ञानिक मूल्य, 'धर्म' याने नैतिक मूल्य और 'मोक्ष' मुक्ति के मूल्य की अवधारणा को स्पष्ट करता है। महात्मा गांधी ने भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों को महत्वपूर्ण बताया है और आगाह किया है कि अंतरात्मा के बिना खुशी, सिद्धांतों के बिना राजनीति, भक्ति के बिना प्रार्थना, चरित्र के बिना शिक्षा, काम के बिना धन, मानवता के बिना विज्ञान और नैतिकता के बिना वाणिज्य उपयुक्त नहीं है।

मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता

"शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है, जिसका उपयोग आप दुनिया को बदलने के लिए कर सकते हैं"। नेल्सन मंडेला का यह उद्धरण शिक्षा के मूल्य और मूल्यों की शिक्षा को समझने में सबसे प्रसिद्ध कहावत है। अपनी आत्मकथा "लॉन्ग वॉक टु फ्रीडम" में मंडेला का वर्णन है कि कैसे शिक्षा और मूल्यों ने उनके जीवन में विभिन्न घटनाओं का समन्वय किया। रविंद्र नाथ टैगोर ने मूल्य आधारित शिक्षा पर विचार रखते हुए कहा है "मैं सोया और स्वप्न देखा कि जीवन आनंद है, मैं जागा और देखा कि जीवन सेवा है, मैंने सेवा की और पाया कि सेवा आनंद है"। टैगोर के अनुसार मानव जाति के कल्याण के लिए की गई सेवा ही जीवन को सुखमय बनाने का एकमात्र सूत्र है। रविंद्र नाथ टैगोर के अनुसार "हम महानता के सबसे करीब तब होते हैं जब हम विनम्रता में महान होते हैं और विनम्रता जीवन मूल्यों में प्रमुख है"। यह विनम्रता ज्ञान और शिक्षा की देन है। एक अच्छा विद्यार्थी ही कल एक बेहतर नागरिक होगा। मूल्य आधारित शिक्षा के माध्यम से ही विद्यार्थियों को

शिक्षा के मूल्य, नागरिकता के मूल्य, स्वास्थ्य शिक्षा के मूल्य, आत्मनिर्भरता के मूल्य, दृढ़ता और अधिकारों के प्रति मूल्य, कर्तव्य के प्रति मूल्य, मानवता के प्रति मूल्य, राजनीति के प्रति मूल्य और समावेशी मूल्यों के प्रति निष्ठावान बना सकेंगे। मूल्य आधारित शिक्षा से ही विश्व में एक अलग पहचान स्थापित करना संभव है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध कवि हेनरी वाड्सवर्थ लोंगफेलो की यह पंक्तियां इस बात को पुष्ट करतीं हैं -

" Lives of great men all reminds us
We can make our lives sublime,
And, departing, leave behind us,
Foot prints on the sands of time."

चुनौतियां और समाधान

सीएस लेविस के अनुसार "मूल्य रहित शिक्षा मनुष्य को एक चतुर शैतान बना देती है" लेविस का यह कथन आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर सत्य सिद्ध होता है। शिक्षा के वैश्वीकरण, बाजारीकरण, शिक्षकों की वर्तमान स्थिति, शिक्षा में अधिक पाश्चात्यकरण, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के अभाव में व्यक्ति केवल किताबी ज्ञान तक सीमित रह गया है। कहा जा सकता है कि शिक्षा केवल साक्षर बना सकती है किंतु मूल्य आधारित शिक्षा ज्ञान के साथ विवेक भी प्रदान करती है। विचारकों का मत है कि मूल्य को केवल पढ़ाया ना जाए बल्कि ग्रहण किया जाए। रविंद्र नाथ टैगोर वैश्विक मूल्यों को शिक्षा का उद्देश्य मानते थे अतः वे अंतरराष्ट्रीय समझ और सार्वभौमिक भाईचारे के लिए शिक्षा को भी मानते थे। तकनीक पर निर्भर होती जीवनशैली, आर्टिफिशियल इंटेलाइजेस एकल परिवार, प्रतिस्पर्धा, द्वेष, घटता लगाव, बढ़ता स्क्रीन टाइम ऐसे अनेक कारक हैं जो जीवन मूल्यों को ग्रहण करने में बाधा बन रही हैं। जिसके परिणाम बढ़ते अपराध, आत्महत्या, तनाव, विघटन के रूप में सामने आ रहे हैं।प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक मूल्य आधारित शिक्षण प्रणाली ही इन चुनौतियों का सकारात्मक समाधान है।

निष्कर्ष

वैश्विक समस्याओं से लड़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 2015 में 17 सतत विकास लक्ष्य एजेंडा 2030 के तहत निर्धारित किए हैं। यह 17 लक्ष्य भूख और गरीबी उन्मूलन, अच्छा स्वास्थ्य, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, स्वच्छता, पर्याप्त जल, सस्ती और पर्याप्त ऊर्जा, उचित कार्य और आर्थिक विकास, उद्योग नवाचार और बुनियादी ढांचा, कम असमानता, सतत शहर और समुदाय, जिम्मेदार उपभोग और उत्पादन, जलवायु संरक्षण, पानी के नीचे जीवन, जमीन पर जीवन, शांति और न्याय वाली मजबूत संस्थाएं, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए साझेदारी हैं। वैश्विक साझेदारी से ही इन लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव है। "भारतीय जीवन मूल्य आधारित शिक्षा द्वारा भारतीय जनमानस के बौद्धिक व भावनात्मक परिष्कार का कार्य कभी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने तो कभी योगीराज श्री

कृष्ण ने किया। आदि गुरु शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी भी इसी मूल्य परंपरा के ध्वजवाहक रहे हैं। मध्यकाल में तुलसी कबीर रहीम ने भारतीय जीवन मूल्यों के प्रचार - प्रसार का कार्य किया। पुनर्जागरण काल में राजा राममोहन राय स्वामी विवेकानंद दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस आदि समाज सुधारकों ने भारतीय जीवन मूल्यों को संबोधित किया तो 20वीं सदी में गांधी, डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, विनोबा भावे, जिद्दू कृष्णमूर्ति, आचार्य श्रीराम शर्मा व जयप्रकाश नारायण आदि महापुरुषों ने लोक मानस को भारतीय जीवन मूल्यों से शिक्षित कर लोक मंगल का प्रयास किया।"

"वसुधैव कुटुंबकम" वह अवधारणा है जो विश्व को एक परिवार मानने के लिए प्रेरित करती है यह अवधारणा मूल्य आधारित शिक्षा प्रणाली से ही मानव मन में विकसित की जा सकती है अतः मूल्यवान भविष्य, मूल्य अधारित शिक्षा से प्राप्त करना संभव है। अतः अलबर्ट आइंस्टीन के शब्दों में कहना उपयुक्त है कि " शिक्षा का उद्देश्य तथ्यों को सीखना नहीं होता, बल्कि शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्क को पोषित करना होता है"।

संदर्भ सूची:-

1. Urban, fundamental of Ethics, P. 64
2. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक के हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, पृष्ट 24
3. आधार पाठ्यक्रम, स्नातक स्तर, मप्र हिन्दी ग्रंथ अकादमी
4. Document of Social, Moral and Spritual Values in Education, NCERT
5. लॉन्ग वॉक टु फ्रीडम" नेल्सन मंडेला
6. लोकरंग-2 सुभाषचंद कुशवाहा
7. व्यक्तित्व विकास के विविध आयाम, डॉ. सुरेंद्र बिहारी गोस्वामी, डॉ. प्रदीप कुमार खरे
8. भारतीय लोक -संस्कृति और साहित्य - रघुवीर सहाय

CHAPTER 21

महिला शिक्षा

श्रीमती सुषमा
सहायक प्राध्यापिका (बी.एड. विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड।
ई-मेलः sulokesh151016@gmail.com

ISBN: 978-93-5879-758-9 | **DOI**: 10.25215/9358797584.21

शिक्षा किसी भी मनुष्य का मूल अधिकार है। बच्चा चाहे लड़की हो या लड़का, शिक्षा ने कोई सीमा तय नहीं की है। शिक्षा आत्मा को प्रबुद्ध करती है और मनुष्य को गलत और सही, न्याय और अन्याय के बीच अंतर कराती है। शिक्षा एक आवश्यकता नहीं, बल्कि जीवन की आवश्यकता है।

की-वर्डः महिला शिक्षा

प्रस्तावना

महिलाएँ समाज की निर्माण खण्ड हैं। वे समाज और राष्ट्र के हर पहलू को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कोई भी राष्ट्र सभी स्थापित और सशक्त माना जाता है जब उस देश की महिमा आबादी स्थापित, सशक्त और सुरक्षित हो। शिक्षा वह प्रमुख तत्व है जो प्रत्येक व्यक्ति को सबसे बड़े युद्ध को जीतने में मदद करती है और दुनिया में सबसे प्रभावशाली बदलाव भी लाती है। "आप किसी राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति देखकर उस राष्ट्र के हालात बता सकते हैं।"- जवाहरलाल नेहरू

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिक को अनदेखा नहीं किया जा सकता। महिला और पुरूष दोनों समान रूप से समाज के दो पहियों की तरह कार्य करते हैं और समाज को प्रगति की ओर ले जाते हैं। दोनों की समान भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक है कि उन्हें शिक्षा सहित अन्य सभी क्षेत्रों में समान अवसर दिये जाएँ, क्योंकि यदि कोई एक पक्ष भी कमजोर होगा तो सामाजिक प्रगति वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में महिला साक्षरता दर मात्र 64.46 फीसदी है, जबकि पुरूष साक्षरता दर 82.14 फीसदी है। उल्लेखनीय है कि भारत की महिला साक्षरता दर विश्व के औसत 79.7 प्रतिशत से काफी कम है।

एक महिला एक ऐसी इंसान है जिसके पास जीवन को सार्थक बनाने का ज्ञान और स्वभाव है। महिला शिक्षा को बढ़ावा देना उतना ही आवश्यक एवं उपयोगी है जितना सांस लेने के लिए ऑक्सीजन। भारत कुछ प्रसिद्ध नेताओं को जन्म देने में सक्षम रहा है और महिलाएं हैं। फिर भी, देश के अधिकांश हिस्सों में, महिलाओं को अभी भी शिक्षा प्राप्त करने का लाभ नहीं मिलता है और वे अपनी बुनियादी सुविधाओं और अधिकारों से वंचित हैं।

भारत में महिला शिक्षा का इतिहास

भारत में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति को समझाने के लिये आवश्यक है कि इतिहास में इसकी विकास यात्रा को भी समझा जाए। इसे मुख्यतः 3 भागों (1) प्राचीन वैदिक काल, (2) ब्रिटिश इंडिया और (3) स्वतंत्र भारत में विभाजित कर देखा जा सकता है।

प्राचीन वैदिक काल

- भारत में महिला शिक्षा का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि लगभग 3000 से अधिक वर्ष पूर्व वैदिक काल के दौरान महिलाओं को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था और उन्हंे पुरूषों के समान समाज का एक महत्वपूर्ण अंग समझा जाता था।
- वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार महिलाओं की देवी के रूप में पूजा शुरू हुई। उदाहरण के लिए शिक्षा की देवी सरस्वती।
- वैदिक शास्त्र कहते हैं कि "लड़कों के साथ लड़कियों को उचित देखभाल के साथ पोषित और प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।"
- वैदिक साहित्य में उन महिलाओं का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने वैदिक अध्ययन का रास्ता चुना।
- ब्रिटिश इंडिया
- इस काल में पहला ऑल-गर्ल्स बोर्डिंग स्कूल वर्ष 1821 में दक्षिण भारत के तिरूनेलवली में स्थापित किया गया था।
- वर्ष 1840 तक स्कॉटिश चर्च सोसाइटी द्वारा दक्षिण भारत में निर्मित छह स्कूल मौजूद थे जिनमें कुल 200 लड़कियों का नामांकन कराया गया था।
- वर्ष 1848 में पुणे में गर्ल्स स्कूल की शुरूआत करने वाले ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई पश्चिमी भारत में भी महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थे।
- पश्चिम भारत में महिला शिक्षा की शुरूआत पुणे में गर्ल्स स्कूल के निर्माण के साथ हुई जिसे वर्ष 1848 में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई ने शुरू किया था।

- उल्लेखनीय है कि 1850 तक मद्रास मिशनरियों ने स्कूल में लगभग 8,000 से अधिक लड़कियों का नामांकन कराया था।
- ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यक्रम वुड्स डिस्पैच ने वर्ष 1854 में महिलाओं की शिक्षा और उनके लिये रोजगार की आवश्यकता को स्वीकार किया।
- वर्ष 1879 में स्थापित बेथ्यून कॉलेज वर्तमान में एशिया का सबसे पुराना महिला कॉलेज है।
- गौरतलब है कि महिलओं की समग्र सारक्षरता दर वर्ष 1882 में 0.2 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1947 में 6 प्रतिशत हो गई।
- स्वतंत्र भारत
- स्वतंत्रता के समय देश में महिला साक्षरता दर काफी कम थी, जिसे सरकार द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1958 में सरकार ने महिला शिक्षा पर एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया, जिसकी सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली गई। इन सिफारिशों का सार यह था कि महिला शिक्षा को भी पुरूष शिक्षा के सामानांतर पहुँचाया जाए।
- वर्ष 1959 में इसी विषय पर गठित एक समिति ने लड़कों और लड़कियों के लिए एक समान पाठ्यक्रम को विभिन्न चरणों में लागू करने की सिफारिश की।
- वर्ष 1964 में स्थापित शिक्षा आयोग ने बड़े पैमाने पर महिला शिक्षा के विषय में बात की और वर्ष 1968 में भारत सरकार से एक राष्ट्रीय नीति विकसित करने की सिफारिश की।

भारत में महिला शिक्षा वर्तमान परिदृश्य

- भारत में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर काफी कम है। वर्ष 2011 की जनगणना के आँकड़ें दर्शाते हैं कि राजस्थान (52.12 प्रतिशत) और बिहार (51.50 प्रतिशत) मे महिला शिक्षा की स्थिति काफी खराब है।
- जनगणना आँकड़े यह भी दर्शाते है कि देश की महिला साक्षरता दर (64.46 प्रतिशत) देश की कुल साक्षरता दर (77.04 प्रतिशत) से भी कम है।
- बहुत कम लड़कियों का स्कूलों में दाखिला कराया जाता है और उनमें से भी कई बीच में ही स्कूल छोड़ देती है। इसके अलावा कई लड़कियाँ रूढ़िवादी सांस्कृतिक रवैये के कारण स्कूल नहीं जा पाती हैं।
- कई अध्ययनों के अनुसार भारत में 15-24 वर्ष की युवा महिलाओं की बेरोजगारी दर 11.5 प्रतिशत है, जबकि समान आयु के युवा पुरूषों के मामले में यह 9.8 प्रतिशत है।
- वर्ष 2018 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट में कहा गया था कि 15-18 वर्ष आयु वर्ग की लगभग 39.4 प्रतिशत लड़कियाँ स्कूली

शिक्षा हेतु किसी भी संस्थान में पंजीकृत नहीं हैं और इनमें से अधिकतर या तो घरेलू कार्यों में संलग्न होती हैं या भीख मांगने जैसे कार्यों में संलग्न होती है।

- आँकड़े यह भी बताते हैं कि भारत में अभी लगभग 145 मिलियन महिलाएँ हैं, जो पढ़ने या लिखने में असमर्थ हैं।
- उल्लेखनीय है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा स्थिति और अधिक गंभीर है।

महिला शिक्षा की आवश्यकता

- महिलाओं को शिक्षित करना भारत में कई सामाजिक बुराइयों जैसे- दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या और कार्यस्थल पर उत्पीड़न आदि को दूर करने की कुंजी साबित हो सकती है।
- यह निश्चित तौर पर देश के आर्थिक विकास में भी सहायक होगा, क्योंकि अधिक से अधिक शिक्षित महिलाएँ देश के श्रम बल में हिस्सा ले पाएंगी।
- हाल ही में स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा एक सर्वेक्षण जारी किया गया है, जिसमें बच्चों की पोषण स्थिति और उनकी माताओं की शिक्षा के बीच सीधा संबंध दिखाया गया है।
- इस सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि महिलाएँ जितनी अधिक शिक्षित होती हैं, उनके बच्चों को उतना ही अधिक पोषण आधार मिलता है।
- इसके अलावा कई विकास अर्थशास्त्रियों ने लंबे समय तक इस विषय का अध्ययन किया है कि किस प्रकार लड़कियों की शिक्षा उन्हें परिवर्तन के एजेंट के रूप में उभरने में सक्षम बनाती है।

महिला शिक्षा के मार्ग में बाधाएं

भारतीय समाज पुरूष प्रधान है। महिलाओं को पुरूषों के बराबर सामाजिक दर्जा नहीं दिया जाता है और उन्हें घर की चहारदीवारी तक सीमित कर दिया जाता है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में स्थिति अच्छी है, परन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आज भी देश की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।

- हम दुनिया की सुपर पॉवर बनने के लिये तेजी से प्रगति कर रहे हैं, परन्तु लैंगिक असमानता की चुनौती आज भी हमारे समक्ष एक कठोर वास्तविकता के रूप में खड़ी है। यहाँ तक कि देश में कई शिक्षित और कामकाजी शहरी महिलाएँ भी लैंगिक असमानता का अनुभव करती हैं।
- समाज में यह मिथ काफी प्रचलित है कि किसी विशेष कार्य या परियोजना के लिये महिलाओं की दक्षता उनके पुरूष समकक्षों के मुकाबले कम होती है और इसी कारण देश में महिलाओं तथा पुरूषों के औसत वेतन में काफी अंतर आता है।

- देश में महिला सुरक्षा अभी एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है, जिसके कारण कई अभिभावक लड़कियों को स्कूल भेजने से कतराते हैं। हालाँकि सरकार द्वारा इस क्षेत्र में काफी काम दिया गया है, परन्तु ये सभी प्रयास इस मुद्दे को पूर्णतः संबोधित करने में असफल रहे हैं।

महिला शिक्षा हेतु सरकार के प्रयास

- "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओं" की शुरूआत वर्ष 2015 में देश भर में घटते बाल लिंग अनुपात के मुद्दे को संबोधित करने हेतु की गई थी। यह महिला और बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा मानव संसाधन मंत्रालय की संयुक्त पहल है। इसके तहत कन्या भ्रूण हत्या रोकने, स्कूलों में लड़कियों की संख्या बढ़ाने, स्कूल छोड़ने वालों की संख्या को कम करने, शिक्षा के अधिकार के नियमों को लागू करने और लड़कियों के लिये शौचालयों के निर्माण में वृद्धि करने जैसे उद्देश्य निर्धारित किये गए है।
- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना की शुरूआत वर्ष 2004 में विशेष रूप से कम साक्षरता दर वाले क्षेत्रों में लड़कियों के लिये प्राथमिक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था करने हेतु की गई थी।
- महिला समाख्या कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1989 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्यों के अनुसार महिलाओं की शिक्षा में सुधार व उन्हें सशक्त करने हेतु की गई थी।
- यूनिसेफ भी देश में लड़कियों की गुणवतापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु भारत सरकार के साथ काम कर रहा है।
- इसके अलावा महिला शिक्षा के उत्थान की दिशा में झारखण्ड ने भी एक बड़ी पहल की है। झारखण्ड स्कूल ऑफ एजुकेशन ने कक्षा 9 से 12वीं तक की सभी छात्राओं को मुफ्त पाठ्य-पुस्तक, यूनिफॉर्म और नोटबुक बाँटने का फैसला किया है।

निष्कर्ष

महिला शिक्षा एक ज्वलंत विषय रही है जो दुनिया भर के नेताओं को गहन चर्चा के लिए आकर्षित करती है। जब बात किसी महिला को शिक्षित करने की आती है तो लोग अक्सर लापरवाह हो जाते हैं। लोगों का रूढ़ीवादी दिमाग सोचता है कि एक लड़की को शिक्षित करने से उसके जीवन जीने के तरीके पर असर पड़ेगा और वह पथभ्रष्ट हो जाएगी, जोकि प्रस्तावित विचारधारा के बिल्कुल विपरीत है। शिक्षा उन्हें बेहतर कल की तलाश करने का मौका, पंख और आशा देती है।

संदर्भ सूची

1. जे सी अग्रवाल (1जनवरी 2009). भारत में नारी शिक्षा, प्रभात प्रकाशन. आई.एस.बी.एन. 978-81-85828-77-0.
2. डॉ. जे. पी. सिंह (1अप्रैल 2016) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, आई.एस.बी.एन. 978-81-203-5232-2.
3. पाठक, पी.डी. (2013) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, आगरा-2ः विनोद पुस्तक मन्दिर.
4. लाल, रमन बिहारी एवं कृष्णकांत. (2015). भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं. मेरठः आर. लाल बुक डिपो.

Dr. Harish Kumar Yadav



Assistant Professor
Department of B.Ed.
RCU Govt. PG. College Uttarkashi, Uttarakhand.
Email: yadavh101@gmail.com

Dr. Amreen Sekhon



Assistant Professor,
Department of Psychology
Panjab University, Chandigarh

red'shine PUBLICATION INDIA

RED'SHINE PUBLICATION PVT. LTD.
88-90 REDMAC, Navamuvada,
Lunawada, India - 389230
Website: www.redshine.co.in
Email: info@redshine.in
Helpline: 0-76988 26988

₹ 750/-

ISBN 978-93-5879-758-9

9 789358 797589

प्रकीर्णक सञ्चय

(खण्ड-१)

(चतुःशरण-१,२, वीरस्तव, आतुरप्रत्याख्यान,१,२,३, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा,
संस्तारक, मरणविभक्ति, चन्द्रकवेध्यक)
(मूल पाठ, हिंदी अनुवाद, टिप्पण एवं अनेक परिशिष्ट सहित)

निर्देशन :
आचार्य महाश्रमण

संपादक/अनुवादक :
प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Scanned with OKEN Scanner

Publisher :
Adarsh Sahitya Vibhag
Jain Vishva Bharati
Post : Ladnun-341306
Distt : Nagaur (Rajasthan)
Phone : 01581-226080/224671
E-mail : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

ISBN No. 978-93-91023-78-2

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

Page : 50 + 410 = 460

Price : **Rs. 1200/- (One Thousand Two Hundred Rupees Only)**

Printers : **Shree Vardhaman Press** Naveen Shahdara, Delhi-110032

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथानुक्रम

*	संपादकीय संक्षेप	०५
*	प्रकाशकीय	०७
*	भूमिका	११
*	विषयसूची	१
१.	चतुःशरण	१३
२.	कुशलानुबंधि चतुःशरण	२३
३.	दौष्कृत	३७
४.	आतुरप्रत्याख्यान-१	४६
५.	आतुरप्रत्याख्यान-२	५२
६.	आतुरप्रत्याख्यान-३	५७
७.	महाप्रत्याख्यान	७२
८.	भक्त-परिज्ञा	९३
९.	संस्तारक	११५
१०.	मरणविभक्ति	१३१
११.	चन्द्रकवेध्यक	२१८

परिशिष्ट

१.	पदानुक्रम	२५३
२.	कथाएं	२७३
३.	उपमा, रूपक एवं दृष्टान्त	३६२
४.	सूक्तियां	३६५
५.	प्रयुक्त देशीशब्द	३६८
६.	एकार्थक	३७०
७.	निरुक्त	३७०
८.	विशेषनामानुक्रम	३७१
९.	टिप्पण-अनुक्रम	३८३
१०.	तुलनात्मक संदर्भ	३९०
११.	तप के चित्र	३९५
१२.	संकेतिका	४००
१३.	प्रयुक्त ग्रंथ सूची	४०३

Scanned with OKEN Scanner

पूर्वाचार्य एवं आचार्य वीरभद्र कृत

प्रकीर्णक सञ्चय-खण्ड-२

(आराधना पताका-१,२)

(मूल पाठ, हिंदी अनुवाद, टिप्पण एवं अनेक परिशिष्टों सहित)

निर्देशन :

आचार्य महाश्रमण

संपादन/अनुवाद एवं व्याख्या :

प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती,
पोस्ट : लाडनूं 341306
जिला : डीडवाना-कुचामन (राज.)
फोन नं. (01581) 226080/224671
E-mail : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

ISBN No. 978-81-973136-7-7

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

पृष्ठ संख्या : 42 + 518 = 560
मूल्य : 1300/- (एक हजार तीन सौ रुपये मात्र)
मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस, नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथानुक्रम

* मंगल संदेश
* प्रकाशकीय
* भूमिका
  - प्रकीर्णक का स्वरूप ११
  - आगम-साहित्य में प्रकीर्णकों का स्थान ११
  - प्रकीर्णकों की संख्या १३
  - प्रकीर्णकों की प्राचीनता १५
  - प्रकीर्णकों के विषय १७
  - रचयिता १७
  - रचनाकाल १८
  - ग्रन्थगत प्रकीर्णकों का परिचय १८
    - आराधना पताका-१ १८
    - आराधना पताका-२ २२
  - निदान २७
    - निदान का स्वरूप २७
    - निदान विविध संदर्भों में २८
    - निदान का परिणाम २८
    - निदान के कारण २९
    - निदान के भेद २९
      - प्रशस्त निदान
      - अप्रशस्त निदान
      - भोग निदान
  - निदान की प्ररूपणा क्यों ? ३०
  - अनिदानता श्रेयस्करी ३३

Scanned with OKEN Scanner

- वासुदेवों का नियमतः निदान ३३
- देवों द्वारा निदान की प्रेरणा ३४
- ग्रंथ वैशिष्ट्य ३५
- भाषा-शैली ३५
- अन्य ग्रंथों पर प्रभाव ३८
- प्रकीर्णक सञ्चय का पाठ ३८
- गाथाओं का अनुवाद ३९
- प्रयुक्त परिशिष्ट ४०
- प्रकीर्णक सञ्चय का इतिहास ४१
- कृतज्ञता-ज्ञापन ४२

* विषयानुक्रम ३

१. आराधना पताका-१ १७

आराधना पताका-१ : टिप्पण १०२

२. आराधना पताका-२ १६५

आराधना पताका-२ : टिप्पण २५५

प्रयुक्त परिशिष्ट **२९१**

१. पदानुक्रम २९३

२. कथाओं की सूची ३१९

- कथाएं ३२२
- कथा-अनुक्रम ४४८

३. उपमा, रूपक एवं दृष्टान्त ४५१

४. सूक्तियां ४५४

५. परिभाषा ४६०

६. विशेषनामानुक्रम ४६१

७. प्रयुक्त देशीशब्द ४८६

८. तुलनात्मक संदर्भ ४८९

९. टिप्पण-अनुक्रम ४९८

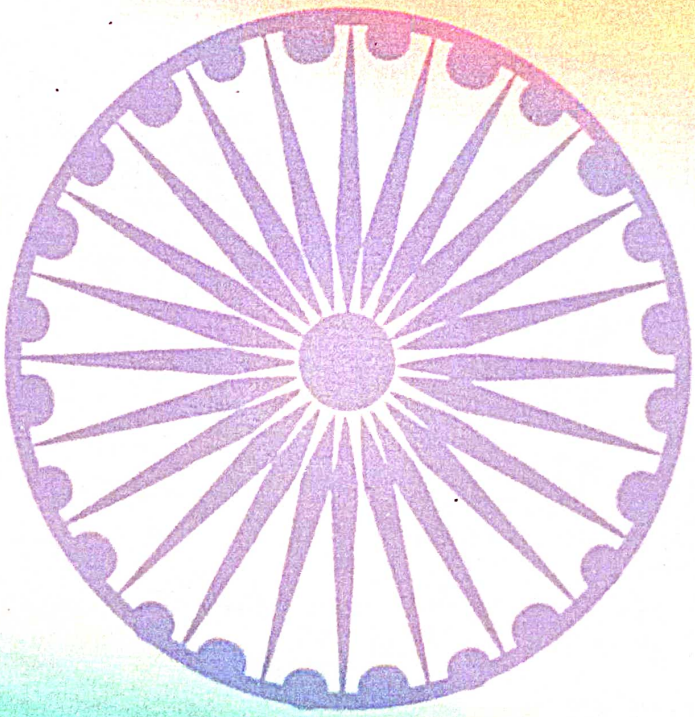
१०. संकेतिका ५०८

११. प्रयुक्त ग्रंथ सूची ५११

Scanned with OKEN Scanner

Azadi Ka Amrit Mahotsav

अमृतकाल में लोकप्रशासन



संपादक

प्रो. मनरूप सिंह मीना • प्रो. जनक सिंह मीना

अमृतकाल में लोकप्रशासन

संपादक

प्रो. (डॉ.) जनक सिंह मीना
पीएच.डी., डी.लिट्.
अध्यक्ष एवं प्रोफेसर, गांधीवादी विचार एवं शांति अध्ययन केन्द्र, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर, गुजरात

प्रो. (डॉ.) मनरूप सिंह मीना
एम.फिल., पीएच.डी.
समकुलपति, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

हंस प्रकाशन
नई दिल्ली

प्रकाशक

हंस प्रकाशन
(पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स)
बी-336/1, गली नं. 3, दूसरा पुस्ता
सोनिया विहार, नई दिल्ली, 110094
दूरभाष : 9868561340, 7217610640
email : hansprakashan56@gmail.com
website : www.hansprakashan.com

विक्रय कार्यालय
4637/20, हरि सदनए 217, द्वितीय तल
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली, 110002
दूरभाष : 9868561340, 7217610640

प्रथम संस्करण : 2023
ISBN : 978-81-964076-8-1
© : **मनरूप सिंह मीना एवं जनक सिंह मीना**
मूल्य : 695/-

मुद्रक : एस. के. ऑफसेट, दिल्ली

प्रकीर्णक सञ्चय

(खण्ड-१)

(चतुःशरण-१,२, वीरस्तव, आतुरप्रत्याख्यान,१,२,३, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा,
संस्तारक, मरणविभक्ति, चन्द्रकवेध्यक)
(मूल पाठ, हिंदी अनुवाद, टिप्पण एवं अनेक परिशिष्ट सहित)

निर्देशन :
आचार्य महाश्रमण

संपादक/अनुवादक :
प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Scanned with OKEN Scanner

Publisher :
Adarsh Sahitya Vibhag
Jain Vishva Bharati
Post : Ladnun-341306
Distt : Nagaur (Rajasthan)
Phone : 01581-226080/224671
E-mail : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

ISBN No. 978-93-91023-78-2

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

Page : 50 + 410 = 460

Price : **Rs. 1200/- (One Thousand Two Hundred Rupees Only)**

Printers : **Shree Vardhaman Press** Naveen Shahdara, Delhi-110032

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथानुक्रम

*	संपादकीय संक्षेप	०५
*	प्रकाशकीय	०७
*	भूमिका	११
*	विषयसूची	१
१.	चतुःशरण	१३
२.	कुशलानुबंधि चतुःशरण	२३
३.	दौष्कृत	३७
४.	आतुरप्रत्याख्यान-१	४६
५.	आतुरप्रत्याख्यान-२	५२
६.	आतुरप्रत्याख्यान-३	५७
७.	महाप्रत्याख्यान	७२
८.	भक्त-परिज्ञा	९३
९.	संस्तारक	११५
१०.	मरणविभक्ति	१३१
११.	चन्द्रकवेध्यक	२१८

परिशिष्ट

१.	पदानुक्रम	२५३
२.	कथाएं	२७३
३.	उपमा, रूपक एवं दृष्टान्त	३६२
४.	सूक्तियां	३६५
५.	प्रयुक्त देशीशब्द	३६८
६.	एकार्थक	३७०
७.	निरुक्त	३७०
८.	विशेषनामानुक्रम	३७१
९.	टिप्पण-अनुक्रम	३८३
१०.	तुलनात्मक संदर्भ	३९०
११.	तप के चित्र	३९५
१२.	संकेतिका	४००
१३.	प्रयुक्त ग्रंथ सूची	४०३

Scanned with OKEN Scanner

पूर्वाचार्य एवं आचार्य वीरभद्र कृत

प्रकीर्णक सञ्चय-खण्ड-२

(आराधना पताका-१,२)

(मूल पाठ, हिंदी अनुवाद, टिप्पण एवं अनेक परिशिष्टों सहित)

निर्देशन :

आचार्य महाश्रमण

संपादन/अनुवाद एवं व्याख्या :

प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती,
पोस्ट : लाडनूं 341306
जिला : डीडवाना-कुचामन (राज.)
फोन नं. (01581) 226080/224671
E-mail : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

ISBN No. 978-81-973136-7-7

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

पृष्ठ संख्या : 42 + 518 = 560
मूल्य : 1300/- (एक हजार तीन सौ रुपये मात्र)
मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस, नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथानुक्रम

* मंगल संदेश
* प्रकाशकीय
* भूमिका
  - प्रकीर्णक का स्वरूप ११
  - आगम-साहित्य में प्रकीर्णकों का स्थान ११
  - प्रकीर्णकों की संख्या १३
  - प्रकीर्णकों की प्राचीनता १५
  - प्रकीर्णकों के विषय १७
  - रचयिता १७
  - रचनाकाल १८
  - ग्रन्थगत प्रकीर्णकों का परिचय १८
    - आराधना पताका-१ १८
    - आराधना पताका-२ २२
  - निदान २७
    - निदान का स्वरूप २७
    - निदान विविध संदर्भों में २८
    - निदान का परिणाम २८
    - निदान के कारण २९
    - निदान के भेद २९
      - प्रशस्त निदान
      - अप्रशस्त निदान
      - भोग निदान
  - निदान की प्ररूपणा क्यों ? ३०
  - अनिदानता श्रेयस्करी ३३

Scanned with OKEN Scanner

- वासुदेवों का नियमतः निदान ३३
- देवों द्वारा निदान की प्रेरणा ३४
- ग्रंथ वैशिष्ट्य ३५
- भाषा-शैली ३५
- अन्य ग्रंथों पर प्रभाव ३८
- प्रकीर्णक सञ्चय का पाठ ३८
- गाथाओं का अनुवाद ३९
- प्रयुक्त परिशिष्ट ४०
- प्रकीर्णक सञ्चय का इतिहास ४१
- कृतज्ञता-ज्ञापन ४२

* विषयानुक्रम ३

१. आराधना पताका-१ १७

आराधना पताका-१ : टिप्पण १०२

२. आराधना पताका-२ १६५

आराधना पताका-२ : टिप्पण २५५

प्रयुक्त परिशिष्ट **२९१**

१. पदानुक्रम २९३

२. कथाओं की सूची ३१९

- कथाएं ३२२
- कथा-अनुक्रम ४४८

३. उपमा, रूपक एवं दृष्टान्त ४५१

४. सूक्तियां ४५४

५. परिभाषा ४६०

६. विशेषनामानुक्रम ४६१

७. प्रयुक्त देशीशब्द ४८६

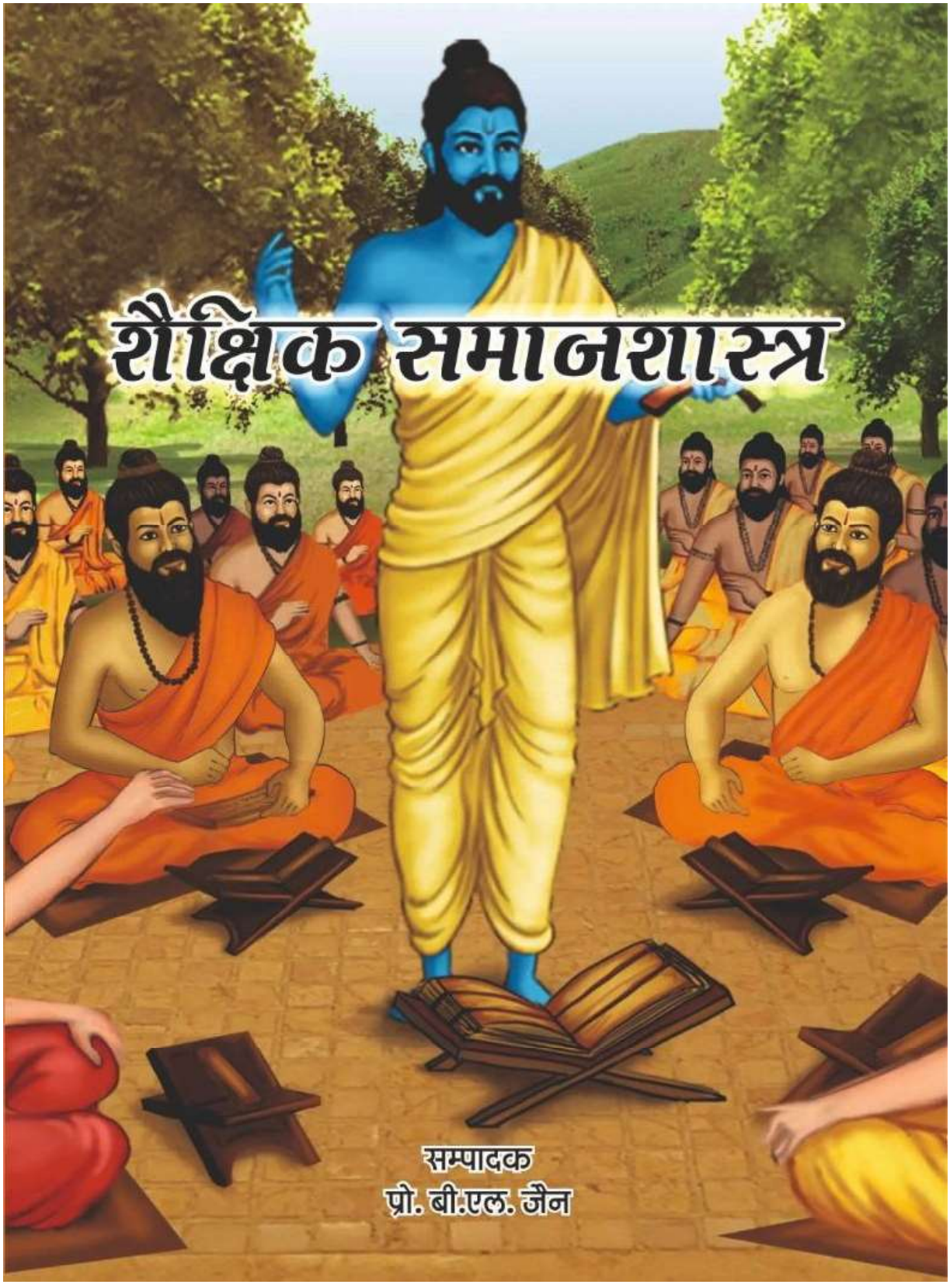
८. तुलनात्मक संदर्भ ४८९

९. टिप्पण-अनुक्रम ४९८

१०. संकेतिका ५०८

११. प्रयुक्त ग्रंथ सूची ५११

Scanned with OKEN Scanner


शैक्षिक समाजशास्त्र
सम्पादक
प्रो. बी.एल. जैन

शैक्षिक समाजशास्त्र

प्रो. बी. एल. जैन
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं 341306 (राजस्थान)

INFINITY EDUCATIONS
A-30, Anita Colony, Bajaj Nagar Enclave,
Tonk Road, Jaipur (Raj.) 302015

ISBN : 978-93-93567-73-4

कृति : शैक्षिक समाजशास्त्र

सम्पादक : प्रो. बी. एल. जैन
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय),
लाडनूं 341306 (राजस्थान)

सम्पादक मण्डल :
डॉ. बी.एल. जैन
डॉ. आभा सिंह
डॉ. सरोज राय
डॉ. गिरिराज भोजक
डॉ. भावग्राहीप्रधान
डॉ. अमिता जैन
डॉ. गिरधारी लाल शर्मा
डॉ. अदिति गौतम
डॉ. मनीष भटनागर

संस्करण : नवम्बर, 2023

मूल्य :

प्रकाशन : Infinity Educations (Publication)
A-30, Anita Colony,
Bajaj Nagar Enclave, Tonk Road,
Jaipur-302015
Email : infinityeducations.hs@gmail.com
Ph : 9650992378, 7665634999
Website : www.infinityeducations.com

कम्प्यूटराईज्ड : Infinity Educations, Jaipur

मुद्रक : Infinity Educations, Jaipur (Raj.)

अनुक्रमणिका

1.	शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ -प्रो. बी. एल. जैन	1-21
2.	भारत में परिवार और शिक्षा -डॉ. भाबाग्राही प्रधान	22-26
3.	शिक्षा-एक सामाजिक उप-व्यवस्था के रूप में -डॉ. आभा सिंह	27-38
4.	धर्म और शिक्षा -डॉ. अमिता जैन	39-53
5.	सामाजिक गतिशीलता -डॉ. अमिता जैन	54-65
6.	संस्कृति और शिक्षा -डॉ. गिरधारी लाल शर्मा	66-83
7.	समाजीकरण -डॉ. गिरधारी लाल शर्मा	84-98
8.	सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा -डॉ. सरोज राय	99-118
9.	शिक्षा और लोकतंत्र -डॉ. अदिति गौतम	119-138
10.	आधुनिकीकरण एवं शिक्षा -डॉ. गिरिराज भोजक	139-150
11.	सामाजिक स्तरण या स्तरीकरण -प्रो. बी. एल. जैन	151-171
12.	शिक्षा और राजनीति -डॉ. मनीष भटनागर	172-189
13.	शैक्षिक अवसरों की समानता -डॉ. मनीष भटनागर	190-218
14.	शिक्षा और समुदाय -डॉ. अदिति गौतम	219-236

आमुख

शैक्षिक समाजशास्त्र पुस्तक बी.एड., एम.एड. के प्रशिक्षणार्थियों के लिए अत्यंत परमोपयोगी है। यह पुस्तक नेट के परीक्षार्थियों के लिए भी लाभदायक है। संस्थान के शिक्षाविदों ने अपने विभिन्न आलेखों से इस पुस्तक को संजोया है। इस पुस्तक में शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ, भारत में परिवार और शिक्षा, शिक्षा एक सामाजिक उपव्यवस्था के रूप में, धर्म और शिक्षा, और लोकतंत्र, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा, सामाजिक स्तरण या स्तरीकरण, शिक्षा और राजनीति, शैक्षिक अवसरों की समानता, शिक्षा ओर समुदाय आदि पाठों में शिक्षा और समाज से सम्बन्धित अपने विचारों को समाहित किया है। यह शिक्षार्थियों के साथ अन्य सामाजिक लोगों के लिये भी उपयोगी है। इस पुस्तक में शिक्षा और समाज की विषय सामग्री संकलित है। इस पुस्तक में जीवन पथ, समाज के रचनात्मक विचारों को सूत्रबद्ध रूप में पिरोया है। संस्थान के कुलपति महोदय को सादर नमन करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से इस प्रकार के कार्य का सम्पादन करने में हम सफलीभूत रहे हैं। उन सभी शिक्षाविदों को आभार ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के लेखन में सहायता प्रदान की है। अंत में इंफिनिटीव एलूकेशन, पब्लिशर्स, जयपुर को कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, समय पर प्रकाशन का कार्य और सहयोग प्रदान हेतु।

प्रो. बी.एल.जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान,
लाडनूं (राजस्थान)

1. विषय प्रवेश
2. समाजशास्त्र
3. शैक्षिक समाजशास्त्र
4. शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ व परिभाषा
5. शैक्षिक समाजशास्त्र की अवधारणा
6. शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रति दृष्टिकोण
7. शैक्षिक समाजशास्त्र की परिभाषाएँ
8. शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य
9. शैक्षिक समाजशास्त्र व शिक्षा का समाजशास्त्र में अन्तर
10. शैक्षिक समाजशास्त्र का क्षेत्र
11. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक समाजशास्त्र की आवश्यकता
12. समाजशास्त्र और शिक्षा में सम्बन्ध
13. समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव
14. शिक्षा का समाजशास्त्र पर प्रभाव
15. शिक्षा समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
16. शिक्षा समाजशास्त्र के अध्ययन के उद्देश्य



महाविद्यालय के विषय में

शासकीय महाविद्यालय लवकुशनगर की स्थापना सन् 1983 में हुई थी। यह छतरपुर जिला मुख्यालय से 60 किलोमीटर तथा अंतर्राष्ट्रीय धरोहर खजुराहो से 50 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। इस महाविद्यालय में स्नातक (कला एवं विज्ञान संकाय) तथा स्नातकोत्तर (हिन्दी, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित एवं जन्तुविज्ञान) की कक्षायें संचालित हैं। जिसमें लगभग 3200 छात्र/छात्रायें अध्ययनरत हैं। जो लगभग आसपास के 40 किलोमीटर की दूरी तय करके आते हैं। छात्रों को बहुआयामी शिक्षा प्रदान करने एवं सभी गतिविधियों में शामिल करने, उनमें समग्र विकास को प्रोत्साहित करने एवं एक शिक्षित, सक्षम और जागरुक व्यक्ति बनाने में महाविद्यालय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है। महाविद्यालय में अध्ययन कर चुके छात्र विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं तथा महाविद्यालय का नाम रोशन कर रहे हैं।

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी -508 गली नं. 17,विजय पार्क,दिल्ली -110053
मो.08527460252,9990236819
ई मेल : jtspublications@gmail.com

ISBN 978-81-973891-4-6

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
(व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण)
डॉ0 संजीव कुमार विश्वकर्मा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

(व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण)



सम्पादक
डॉ0 संजीव कुमार विश्वकर्मा

अनुक्रमणिका

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : निखरती प्रतिभाएं 17
   डॉ0 एच.सी. अहिरवार
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 20
   डॉ. बलराम चौरसिया
3. उच्च शिक्षा में मानवीय मूल्यों की भूमिका का अध्ययन 24
   ज्योति शर्मा
4. नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों से प्रेरित महापुरुषों के जीवन चरित्र से व्यक्तित्व विकास 33
   डॉ. अभय कुमार गुप्ता
5. मूल्य आधारित शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 37
   मानसी शर्मा
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 48
   डॉ. गायत्री शर्मा
7. व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 54
   डॉ. भरत लाल चौरसिया
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: व्यक्तित्व का विकास एवं चरित्र का निर्माण 63
   डॉ. लक्किडि कोमुरा रेड्डी
9. व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण : एक विस्तृरत अध्ययन 68
   डॉ. नारायण दत्त विलसन
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण 2020 76
    भारती सरोहा
11. विद्यार्थियों के विकास एवं चरित्र निर्माण में खेल की भूमिका 86
    डॉ. सोना विश्वकर्मा
12. चरित्र एवं नैतिक विकास 92
    डॉ. भुपेन्द्र कौर

13. भारतीय ज्ञान परंपरा की वाहक है राष्ट्रीय शिक्षा नीति : एक अध्ययन 105
डॉ. गोपीराम शर्मा
14. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 112
डॉ. हरजिंदर कौर
15. नई शिक्षा नीति 2020 में अंतनिर्हित व्यक्तिगत विकास में बोली भाषाओं का महत्व 120
चौहान शुभांगी मगनसिंह
16. समतामूलक समावेशी शिक्षा 129
सूर्यप्रकाश नौटियाल
17. आधुनिक युगीन शिक्षा– एक दृष्टि 140
अजय पोद्दार 'अनमोल'
18. नई शिक्षा नीति 2020 का महत्व (आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में) 147
नीलम
19. व्यक्तित्व विकास मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका 151
कमलेश कुमार चावले
20. छात्र विकास में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 158
संदीप सोनी
21. नई शिक्षा नीति कार्यान्वयन तथा शिक्षकों एवं छात्रों का पद इस नीति का प्रभाव 165
डॉ. सरिता भवानी मालवीय
22. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 176
डॉ. सुपर्णा मुखर्जी
23. भारतीय ज्ञान परम्परा से समाज का एवं व्यक्तित्व का विकास 181
डॉ. सुनिता इन्दौरिया
24. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 192
सुजाता कुमारी
25. हिंदी समाचार पत्र और हिंदी भाषा के बदलते रुझान 199
शुभम कुमार साह, नंदिनी घोष

26. राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में 208
डॉ. रश्मी मालगी
27. व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण की पक्षधर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 213
सरिता
28. समाज में व्यक्तित्व की महत्ता 220
नेहा विश्वकर्मा
29. व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण सम्बन्धी महत्वपूर्ण आयाम 223
डा0 कृष्णा जी श्रीवास्तव
30. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण 225
गणेश कुमार जाट
31. Positive Mindset: How to Develop a Positive Mental Attitude 227
Dr. Mukund Gokhale
32. Student Autonomy and Empowerment in Accordance With Nep-2020 235
Dr. Jyoti Agrawal
33. Basic Concept and Importance of New Education Policy 2020 240
D. P. Kori[a] , Bharti Kori[b] , Lovely Kori[c]
34. National Education Policy 2020 245
Priya Kannoujia
35. Freedom & Discipline In Education 253
Mrs. Madhumita Guha
36. National Education Policy-2020 258
Aarti Singh